जैन भारती

नित नया उन्मेष जिस मस्तिष्क का संधान है।
वाचना के प्रमुख तुलसी का सकल अनुदान है।
भाष्य-युग की शृंखला में एक नव्य प्रयोग है।
राष्ट्रभाषा में विनिर्मित "भगवती"-अनुयोग है।।

वाचना-प्रमुख
आचार्य तुलसी

संपादक : भाष्यकार
आचार्य महाप्रज्ञ

विआहपण्णत्ती
(खण्ड-३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवई

भगवान् महावीर (ईस्वी पूर्व ५९९-५२७) की वाणी द्वादशांगी में संकलित है। उस द्वादशांगी के पांचवें अंग का नाम है–विआहपण्णत्ती जो 'भगवती सूत्र' के नाम से सुप्रसिद्ध है। जैन साहित्य में तत्त्वज्ञान की दृष्टि से भगवती को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। इसमें दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र, जीवविद्या, लोक-विद्या, सृष्टिविद्या, परामनोविज्ञान आदि अनेक विषयों का समावेश है। प्रस्तुत खंड में चार शतकों (८ से ११) के मूलपाठ, संस्कृत छाया तथा हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन विस्तृत भाष्य के साथ हुआ है। साथ में अभयदेवसूरि-कृत वृत्ति भी प्रकाशित है।

आठवां शतक सृष्टिवाद, ज्ञान, परामनो-विज्ञान और कर्मवाद आदि अनेक सिद्धांतों का सूत्रात्मक शैली में लिखा हुआ महाभाष्य है।

नौवां शतक में भूगोल, खगोल, तत्त्वचर्चा अहिंसा दर्शन और जीवन-वृत्त इन सबका समाहार हुआ है।

दसवां शतक में दिशा, शरीर, ईर्यापथिकी क्रिया, अद्वाईस द्वीप, देवों के शिष्टाचार के अतिरिक्त त्रायस्त्रिंश देवों की उत्पत्ति का वर्णन बहुत ही रसप्रद और मननीय है।

ग्यारहवां शतक के प्रथम आठ उद्देशक वनस्पति से संबद्ध हैं। इस शतक में शिव राजर्षि के विभंगज्ञान का उल्लेख, सात द्वीप और सात समुद्र की स्थापना और उसका प्रतिवाद एक रोचक घटना है। सुदर्शन श्रेष्ठी के प्रश्न और भगवान महावीर के द्वारा उनका समाधान एक नई शैली में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ को समग्र दृष्टि से भारतीय दार्शनिक वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवई

विआहपण्णत्ती

(खण्ड-३)

(शतक-८, ९, १०, ११)

(मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य तथा अभयदेवसूरिकृत वृत्ति एवं
परिशिष्ट–शब्दानुक्रम आदि सहित)

वाचना-प्रमुख :
आचार्य तुलसी

संपादक/भाष्यकार
आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६ (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

सौजन्य : पूज्य पिताजी स्व. प्रवीणचंद्र रूपचंद वकील की पुण्य स्मृति में तथा पूज्य माताजी जयाबेन प्रवीणचंद्र वकील के जन्म दिवस के उपलक्ष में उनकी सुपुत्री निशिता-जवाहर जवेरी एवं मीना-हर्षद शाह (मुंबई)

प्रथम संस्करण : ६ नवम्बर २००५

पृष्ठ संख्या : ५७५+२०=५९५

मूल्य : ५००/- (पांच सौ रुपया मात्र)

टाईप सेटिंग : सर्वोत्तम प्रिण्ट एण्ड आर्ट

मुद्रक : कला भारती, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHAGAWAĪ

VIĀHAPAṆṆATTĪ

[Volume - III]

(Śataka 8, 9, 10, 11)

(Prakrit Text, Sanskrit Renderings, Hindi Translation and Bhāṣya [Critical Annotations] with Vṛtti of Abhayadevasūri and Appendices-Indices etc.)

Synod-chief
(Vāchanā-pramukha)
ACHARYA TULSI

Editor and Annotator (Bhāṣyakāra)
ACHARYA MAHAPRAJNA

JAIN VISHVA BHARATI
Ladnun - 341 306 (Rajasthan) INDIA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Publishers :
Jain Vishva Bharati
Ladnun - 341 306 (Raj.)

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

Courtsey : Nishita-Javahar Zaveri and Mina-Harshad Shah (Mumbai) in the memory of his respectable father Late Pravinchandra Vakil and on the eve of the birth-day of his respectable Mother Jayaben Pravinchandra Vakil.

First Edition : 6 November 2005

Pages : 575+20=595

Price : Rs. 500/-

Type Setting : Sarvottam Print & Art

Printed by : Kala Bharati, Naveen Shahdara, Delhi-32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

।।१।।

पुट्ठो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से।।

।।२।।

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीयमच्छं।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से।।

।।३।।

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में, मेरे में।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से।।

विनयावनत

आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दना

वाणी-वन्दना

सत्य की अभिव्यक्ति में अक्षर सहज अक्षर बना ।
वन्दना उस आप्त वाणी की करें पुलकितमना ।
भारती कैवल्य-पथ से अवतरित अधिगम्य है ।
सुचिर-संचित तम-विदारक रम्य और प्रणम्य है ।।

वीर वन्दना

पुरुष के पुरुषार्थ का अधिकृत प्रवक्ता जो रहा ।
चेतना-निष्णात हो जो कुछ हुआ सबको सहा ।
समन्वय का सूत्र सम्यग् दृष्टि का पहला चरण ।
वीर प्रभु के चरण-चिह्नों का करें हम अनुसरण ।।

भिक्षु-वन्दना

अगम-आगम के पदों का काव्य था जिसने लिखा
सहज प्रज्ञा से अपथ का पंथ था जिसको दिखा ।
भिक्षु का वर मार्गदर्शन भाग्य से उपलब्ध है ।
सूत्र-सम्पादन नियति का वह बना प्रारब्ध है ।।

जय-कालु-वन्दना

सुचिर पोषित आप्त-वाङ्मय-धेनु का दोहन किया
मुनिप जय ने भिक्षु-गण में प्रवर सूर्योदय किया ।
उदय की इस उर्वरा का बीज हर आलेख है ।
पूज्य कालू के सुचिन्तन का नया अभिलेख है ।

वाचना-प्रमुख आचार्य तुलसी-वन्दना

नित नया उन्मेष जिस मस्तिष्क का संधान है ।
वाचना के प्रमुख तुलसी का सकल अनुदान है ।
भाष्य-युग की शृंखला में एक नव्य प्रयोग है ।
राष्ट्रभाषा में विनिर्मित "भगवती"-अनुयोग है ।।

विनयावनत

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का जो अपने हाथों से उस और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगे। संकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूं, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

संपादक : भाष्यकार	-	**आचार्य महाप्रज्ञ**
श्रुतलेखन, सम्पादन एवं अनुवाद सहयोगी	-	**मुनि धनंजय कुमार**
संस्कृत छाया	-	**युवाचार्य महाश्रमण**
सहयोगी संस्कृत छाया	-	**मुनि विमल कुमार**
सहयोगी सम्पादन भाष्य	-	**मुनि वीरेन्द्र कुमार**
वीक्षा-समीक्षा	-	**मुनि हीरालाल**

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूं और कामना करता हूं कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

भगवई विआहपण्णत्ती का तृतीय खंड पाठक के सम्मुख प्रस्तुत हो रहा है। इसके सम्पूर्ण मूलपाठ का सम्पादन अंगसुत्ताणि भाग २ में हो चुका है। हमने जो सम्पादन-शैली स्वीकृत की है, उसमें पाठ-शोधन और अर्थ-बोध दोनों समवेत हैं। अर्थ बोध के लिए शुद्ध पाठ अपेक्षित है और पाठ शुद्धि के लिए अर्थ-बोध अनिवार्य है।

प्रस्तुत संस्करण अर्थ-बोध कराने वाला है। इसमें मूल पाठ के अतिरिक्त संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और सूत्रों का हिन्दी भाष्य समवेत है। पाठ-सम्पादन का काम जटिल है। अर्थ-बोध का काम उससे कहीं अधिक जटिल है। कथा-भाग और वर्णन-भाग में तात्पर्य-बोध की जटिलता नहीं है। किन्तु तत्त्व और सिद्धांत का खण्ड बहुत गंभीर अर्थ वाला है। उसकी स्पष्टता के लिए हमारे सामने दो आधारभूत ग्रंथ रहे हैं–

१. **अभयदेव सूरिकृत वृत्ति**–इसे अभयदेवसूरि ने स्वयं विवरण ही माना है और उसे पढ़ने पर वह विवरण-ग्रंथ का बोध ही कराता है, व्याख्या-ग्रंथ का बोध नहीं देता।

२. **भगवती जोड़**–इसमें श्रीमज्जयाचार्य ने अभयदेवसूरि की वृत्ति का पूरा उपयोग किया है। 'धर्मसी का टबा' का भी अनेक स्थलों पर उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त आगम और अपने तत्त्वज्ञान के आधार पर अनेक समीक्षात्मक वार्तिक लिखे हैं।

हमने भाष्य के लिए आगम-सूत्रों, श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा का ग्रंथ साहित्य, वैदिक और बौद्ध परंपरा के अनेक ग्रंथों का उपयोग किया है। 'आयारो' का भाष्य संस्कृत भाषा में लिखा गया है। भगवती का भाष्य हिन्दी में लिखा गया है। ठाणं, सूयगडो आदि की सम्पादन-शैली यह रही–मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी-अनुवाद तथा स्थान और अध्ययन की समाप्ति पर टिप्पण अथवा भाष्य। भगवती की संपादन शैली में एक नया प्रयोग किया गया है–प्रत्येक सूत्र अथवा प्रत्येक आलापक (प्रकरण) के साथ भाष्य की समायोजना है। अन्त में छह परिशिष्ट हैं–

१. नामानुक्रम

(क) व्यक्ति और स्थान

(ख) देवलोक-संबंधी

(ग) पशु-पक्षी

२. शब्द एवं शब्द-विमर्शानुक्रम

३. भाष्यविषयानुक्रम

४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम

५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति–शतक आठ से ग्यारह

६. आधारभूत ग्रंथ-सूची।

प्रत्येक शतक के पहले एक आमुख है। पाद–टिप्पण में संदर्भ वाक्य उद्धृत हैं।

उपलब्ध आगम-साहित्य में 'भगवती सूत्र' सबसे बड़ा ग्रंथ है। तत्त्वज्ञान का अक्षयकोष है। इसके अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाले दुर्लभ सूत्र विद्यमान हैं। इस पर अनेक विद्वानों ने काम किया है। किन्तु जितने श्रम-बिन्दु झलकने चाहिए, उतने नहीं झलक रहे हैं, यह हमारा विनम्र अभिमत है। गुरुदेव तुलसी की भावना थी कि भगवती पर गहन अध्यवसाय के साथ कार्य होना चाहिए। हमने उस भावना को शिरोधार्य किया है और उसके अनुरूप फलश्रुति भी हुई है। इसका मूल्यांकन गहन अध्ययन करने वाले ही कर पाएंगे। हमारा यह निश्चित मत है कि सभी परम्पराओं के ग्रंथों के व्यापक अध्ययन और व्यापक दृष्टिकोण के बिना प्रस्तुत आगम के आशय को पकड़ना सरल नहीं है।

सहयोगानुभूति

जैन परम्परा में वाचना का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज से १५०० वर्ष पूर्व तक आगम की चार वाचनाएं हो चुकी हैं। देवर्द्धिगणी के बाद कोई सुनियोजित आगम-वाचना नहीं हुई। उसके वाचना-काल में जो आगम लिखे गए थे, वे इस लम्बी अवधि में बहुत ही अव्यवस्थित हो गए। उनकी पुनर्व्यवस्था के लिए आज फिर एक सुनियोजित वाचना की अपेक्षा थी। गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने सुनियोजित सामूहिक वाचना के लिए प्रयत्न भी किया था, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारी वाचना अनुसन्धानपूर्ण, तटस्थ दृष्टि-समन्वित तथा सपरिश्रम होगी, तो वह अपने-आप सामूहिक हो जाएगी। इसी निर्णय के आधार पर हमारा यह आगम-वाचना का कार्य प्रारंभ हुआ।

हमारी इस वाचना के प्रमुख आचार्यश्री तुलसी रहे हैं। वाचना का अर्थ अध्यापन है। हमारी इस प्रवृत्ति में अध्यापन-कर्म के अनेक अंग हैं- पाठ का अनुसंधान, भाषान्तरण, समीक्षात्मक अध्ययन आदि आदि। इन सभी प्रवृत्तियों में गुरुदेव का हमें सक्रिय योग, मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। यही हमारा इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने का शक्ति-बीज है।

प्रस्तुत ग्रंथ भगवती का सानुवाद और सभाष्य संस्करण है। प्रथम खण्ड में भगवती के प्रथम दो शतक व्याख्यात हैं। दूसरे खण्ड में तृतीय शतक से सप्तम शतक तक व्याख्यात हैं। तीसरे खण्ड में आठवें शतक से ग्यारहवां शतक तक व्याख्यात हैं। मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य और उनके संदर्भ-स्थल तथा परिशिष्ट—ये सब प्रस्तुत संस्करण के परिकर हैं।

भाष्य के श्रुत लेखन, संपादन एवं अनुवाद में मुनि धनंजय कुमार मेरे सहयोगी रहे हैं। संस्कृत छाया का कार्य युवाचार्य महाश्रमण ने किया है। इस कार्य में मुनि विमलकुमारजी उनके सहयोगी रहे हैं। संपादन एवं भाष्य के कार्य में मुनि वीरेन्द्र कुमारजी का भी सहयोग रहा है। इसकी वीक्षा समीक्षा, परिशिष्ट निर्माण, प्रूफरीडिंग आदि में मुनि हीरालालजी ने बहुत श्रम किया है। मुनि दिनेशकुमारजी, मुनि योगेश कुमार जी ने परिशिष्ट निर्माण, प्रूफरीडिंग आदि में तन्मयता से कार्य किया है। पाण्डुलिपि लेखन में अनेक समणियों ने निष्ठापूर्वक श्रम किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में अनेक साधु-साध्वियों का योग है। गुरुदेव के वरद हस्त की छाया में बैठकर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं। फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूं, जिनका इस कार्य में स्पर्श हुआ है।

—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

मुझे यह लिखते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि 'जैन विश्व भारती' द्वारा आगम-प्रकाशन के क्षेत्र में जो कार्य संपन्न हुआ है, वह मूर्धन्य विद्वानों द्वारा स्तुत्य और बहुमूल्य बताया गया है।

हम बत्तीस आगमों का पाठान्तर शब्दसूची तथा 'जाव' की पूर्ति से संयुक्त सुसंपादित मूलपाठ प्रकाशित कर चुके हैं। उसके साथ-साथ आगम-ग्रंथों का मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं प्राचीनतम व्याख्या-सामग्री के आधार पर सूक्ष्म ऊहपोह के साथ लिखित विस्तृत मौलिक टिप्पणों से मंडित संस्करण प्रकाशित करने की योजना भी चलती रही है।

इस शृंखला में आठ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं–

१. **दसवेआलियं**	५. **समवाओ**
२. **उत्तरज्झयणाणि**	६. **नंदी**
३. **सूयगडो**	७. **अनुओगदाराइं**
४. **ठाणं**	८. **नायाधम्मकहाओ**

आयारो पर संस्कृत में आचारांग-भाष्यम् भी प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत आगम **भगवई विआहपण्णत्ती** इसी शृंखला का महत्त्वपूर्ण आगम है। बहुश्रुत वाचना-प्रमुख **आचार्यश्री तुलसी** एवं अप्रतिम विद्वान् संपादक-भाष्यकार **आचार्यश्री महाप्रज्ञ** ने जो श्रम किया है, वह ग्रंथ के अवलोकन से स्वयं स्पष्ट होगा।

भगवई विआहपण्णत्ती खण्ड १ में प्रथम दो शतकों का प्रकाशन भाष्य-सहित सन् १९९४ में हो चुका है। सन् २००० में प्रकाशित द्वितीय खंड में तीसरे से सातवें शतक तक का समावेश है। प्रस्तुत तृतीय खंड में आठवें से ग्यारहवें शतक तक की सभाष्य प्रस्तुति है।

श्रद्धेय **युवाचार्यश्री महाश्रमण** के अतिरिक्त मुनिश्री हीरालालजी, मुनिश्री विमलकुमारजी, मुनि धनंजय कुमारजी, मुनि दिनेश कुमारजी, मुनि वीरेन्द्र कुमारजी और मुनि योगेश कुमारजी ने इसे सुसज्जित करने में अनवरत श्रम किया है। ग्रंथ की पाण्डुलिपि तैयार करने में आदरणीय समणीवृन्द का बहुत सहयोग रहा है। इसकी कंपोजिंग में सर्वोत्तम प्रिण्ट एण्ड आर्ट के श्री किशन जैन एवं श्री प्रमोद प्रसाद का योग रहा है।

ऐसे सुसम्पादित आगम ग्रंथ को प्रकाशित करने का सौभाग्य **जैन विश्व भारती** को प्राप्त हुआ है।

आशा है पूर्व प्रकाशनों की तरह यह प्रकाशन भी विद्वानों की दृष्टि में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

२० अक्टूबर २००५
नई दिल्ली

सिद्धराज ढड्ढा
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-निदेशिका

अणु.–अणुओगदाराइं

अनु.–अनुयोगद्वार

अनु. वृ.–अनुयोगद्वार वृत्ति

आ. चू.–आयार चूला

आ. नि.–आवश्यक निर्युक्ति

आप्टे–Apte's Sanskrit English Dictionary

आव.–आवश्यक

आव.चू.–आवश्यक चूर्णि

आव. नि. दीपिका–आवश्यक निर्युक्ति दीपिका

आव. वृ.–आवश्यक वृत्ति

आ. हा. वृ.–आचारांग हारिभद्रीय वृत्ति

उत्तर.–उत्तरज्झयणाणि

उत्तर. नि.–उत्तराध्ययन निर्युक्ति

ओव.–ओववाइयं

औप. वृ.–औपपातिक वृत्ति

गो.–गोम्मटसार

जीवा.–जीवाजीवाभिगमे

जै. सि. को.–जैनेन्द्र सिद्धांत कोश

ज्ञाता. वृ.–ज्ञाताधर्मकथा वृत्ति

त. भा.–तत्त्वार्थ भाष्य

त. रा. वा.–तत्त्वार्थ राज वार्तिक

त. सू.–तत्त्वार्थ सूत्र

त. सू. भा.–तत्त्वार्थ सूत्राधिगम भाष्य

त. सू. भा. वृ.–तत्त्वार्थ सूत्राधिगम भाष्य वृत्ति

ति. प.–तिलोय पण्णत्ति

नंदी चू.–नंदी चूर्णि

नंदी, मवृ.–नंदी मलयगिरीयावृत्ति

नंदी. हा. वृ.–नंदी हारिभद्रीय वृत्ति

नाया.–नायाधम्मकहाओ

नि. भा.–निशीथ भाष्य

नि. भा. चू.–निशीथ भाष्य चूर्णि

दस/दसवे.–दसवेआलियं

पज्जो.–पज्जोवसणाकप्पो

पण्ण.–पण्णवणा

प्रज्ञा. वृ.–प्रज्ञापना वृत्ति

प्र. सा.–प्रवचनसार

बृ. क. भा.–बृहत्कल्प भाष्य

भ.–भगवती

भ. जो.–भगवती जोड़

भ. वृ.–भगवती वृत्ति

मनु.–मनुस्मृति

राय.–रायपसेणइयं

व्य. भा.–व्यवहारभाष्य

वव.–ववहारो

वि. भा.–विशेषावश्यक भाष्य

वै. सू.–वैशेषिक सूत्र

ष. ख.–षट्खण्डागम

सम.–समवाओ

सूत्र. चू.–सूत्रकृतांग चूर्णि

सूय.–सूयगडो

स्था. वृ.–स्थानांग वृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ.–अध्ययन

उ.–उद्देशक

ख.–खण्ड

गा.–गाथा

प.–पत्र

पु.–पुस्तक

पू.–पूर्ति स्थल

पृ.–पृष्ठ

(भा.)–भाष्य

भा.–भाग

सू.–सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

आठवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		३-४
प्रथम उद्देशक		
	संग्रहणी गाथा	५
१	पुद्गल परिणति पद	५-६
२-१७	प्रयोग परिणति पद	६-९
१८-२६	पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१०-११
२७-३१	शरीर की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	११-१३
३२-३४	इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१३
३५	शरीर और इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१४
३६	वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१४
३७	शरीर और वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१५
३८	इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति पद	१५
३९	शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणनि पद	१६
४०-४१	मिश्र परिणति पद	१७
४२	विस्रसा परिणति पद	१८
४३	एक द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल परिणति पद	१८
४४	प्रयोग परिणति पद	१९
४५-४७	मन प्रयोग परिणति पद	१९
४८	वचन प्रयोग परिणति पद	१९
४९-६४	काय प्रयोग परिणति पद	२०-२४
६५-६६	मिश्र परिणति पद	२४-२५
६७-७२	विस्रसा परिणति पद	२५
७३-७८	दो द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति पद	२७
७९-८१	तीन द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति पद	२७-२८
८२-८४	चार द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति पद	२८-३१
दूसरा उद्देशक		
८६-९५	आशीविष पद	३२-३६
९६	छद्मस्थ केवली पद	३६-३७
९७-१०३	ज्ञान पद	३७-४०
१०४-११०	जीवों का ज्ञानित्व-अज्ञानित्व पद	४०-४२
१११-११४	अंतरालगति की अपेक्षा	४३
११५-११७	इंद्रिय की अपेक्षा	४४
११८-११९	काय की अपेक्षा	४४-४५
१२०-१२२	सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा	४५
१२३-१३०	पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा	४५-४६
१३१-१३४	भवस्थ की अपेक्षा	४७
१३५-१३७	भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक की अपेक्षा	४७
१३८	संज्ञी असंज्ञी की अपेक्षा	४७
१३९-१४६	लब्धि पद	४७-५०
१४७-१५८	ज्ञान लब्धि की अपेक्षा ज्ञानित्व अज्ञानित्व पद	५०-५२
१५९-१६०	दर्शन की अपेक्षा	५२-५३
१६१-१६२	चरित्र की अपेक्षा	५३-५४
१६३	चारित्राचारित्र की अपेक्षा	५४
१६४	दान आदि की अपेक्षा	५४
१६५	बाल आदि वीर्य की अपेक्षा	५४-५५
१६६-१७१	इंद्रिय की अपेक्षा	५५-५६
१७२-१७५	जीवों का ज्ञानित्व-अज्ञानित्व पद	५६-५७
१७६	योग की अपेक्षा	५७
१७७-१७८	लेश्या की अपेक्षा	५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र		पृष्ठ
१७९-१८०	कषाय की अपेक्षा	५८
१८१	वेद की अपेक्षा	५८
१८२-१८३	आहारक की अपेक्षा	५८
१८४-१९१	ज्ञान का विषय पद	५९-६८
१९२-१९९	ज्ञानी का संस्थिति पद	६९-७०
२००-२०४	ज्ञानी का अंतर पद	७१-७२
२०५-२०७	ज्ञानी का अल्प-बहुत्व पद	७२-७३
२०८-२११	ज्ञानपर्यव पद	७४
२१२-२१४	ज्ञानपर्यवों का अल्प-बहुत्व पद	७४-७५
तीसरा उद्देशक		
२१६-२२१	वनस्पति पद	७६-७९
२२२-२२३	जीव प्रदेशों का अन्तर पद	७९-८०
२२४-२२७	चरम-अचरम पद	८०
चौथा उद्देशक		
२२८	क्रिया पद	८१
पांचवां उद्देशक		
२३०-२४४	आजीवक के संदर्भ में श्रमणोपासक पद	८२-९२
छट्ठा उद्देशक		
२४५-२४७	श्रमणोपासककृत दान का परिणाम पद	९३-९५
२४८-२५०	उपनिमंत्रितपिण्डादि परिभोगविधि पद	९५-९६
२५१-२५५	आलोचनाभिमुख का आराधक पद	९६-१००
२५६-२५७	ज्योति-उत्क्षेपन पद	१००
२५८-२६९	क्रिया पद	१०१-१०३
सातवां उद्देशक		
२७१-२८४	अन्ययूथिक-संवाद पद अदत्त की अपेक्षा	१०४-१०८
२८५-२९०	हिंसा की अपेक्षा	१०८-१०९
२९१-२९३	गम्यमान गत की अपेक्षा	१०९-१११
आठवां उद्देशक		
२९५-३००	प्रत्यनीक पद	११२-११४
३०१	पांच व्यवहार पद	११४-११८
३०२	बंध पद	११९
३०३-३०८	ऐर्यापथिक बंध पद	११९-१२१
३०९-३१४	सांपरायिक बंध पद	१२१-१२६
३१५-३२८	कर्म प्रकृतियों में परीषह समवतार पद	१२६-१३०
३२९-३३९	सूर्य पद	१३०-१३३
३४०-३४४	ज्योतिष्कों का उपपत्ति पद	१३३
नौवां उद्देशक		
३४५	बंध पद	१३४
३४६-३५३	विस्रसा बंध पद	१३४-१३७
३५४	प्रयोग बंध पद	१३८
३५५	आलापन की अपेक्षा	१३९
३५६-३६२	आलीनकरण बंध की अपेक्षा	१३९-१४१
३६३-३६५	शरीर की अपेक्षा	१४१-१४२
३६६	शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१४२-१४३
३६७-३८५	औदारिक शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१४३-१५०
३८६-४०४	वैक्रिय शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१५०-१५६
४०५-४११	आहारक शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१५६-१५७
४१२-४१८	तैजस शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१५७-१६०
४१९-४३३	कर्म शरीर प्रयोग की अपेक्षा	१६०-१६७
४३४-४४८	प्रयोगबंध का देशबंध-सर्वबंध पद	१६७-१७४
दसवां उद्देशक		
४४९-४५०	श्रुतशील पद	१७५-१७६
४५१-४६६	आराधना पद	१७७-१८१
४६७-४६९	पुद्गल परिणाम पद	१८१-१८२
४७०-४७४	पुद्गलप्रदेश का द्रव्यादि भंग पद	१८२-१८४
४७५-४७६	प्रदेश परिमाण पद	१८४
४७७-४८४	कर्मों का अविभाग परिच्छेद पद	१८५-१८७
४८५-४९८	कर्मों का परस्पर नियम-भजना पद	१८७-१९०
४९९-५०३	पुद्गली पुद्गल पद	१९०-१९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		१९५-१९६
	संग्रहणी गाथा	१९७
पहला उद्देशक		
१-२	जम्बूद्वीप पद	१९७
दूसरा उद्देशक		
३-६	ज्योतिष पद	१९८-१९९
३-३० उद्देशक		
७-८	अन्तर्द्वीप पद	२००
तेतीसवां उद्देशक		
९-५१	अश्रुत्वा-उपलब्धि पद	२०१-२१८
५२-७६	श्रुत्वा-उपलब्धि पद	२१८-२२५
बत्तीसवां उद्देशक		
७७-७८	पार्श्वापत्यीय गांगेय प्रश्न पद	२२६
७९-८५	सांतर-निरन्तर उपपन्न आदि पद	२२६-२२७
८६-११९	प्रवेशन पद	२२७-२६१

सूत्र		पृष्ठ
१२०	सांतर-निरंतर उपपन्न आदि पद	२६१-२६२
१२१-१२२	सत् असत् उपपन्न आदि पद	२६२-२६३
१२३-१२४	स्वतः अथवा परतः ज्ञान पद	२६४-२६५
१२५-१३२	स्वतः परतः उपपन्न पद	२६५-२६८
१३३-१३६	गांगेय का संबोधि-पद	२६८-२६९
तेत्तीसवां उद्देशक		
१३७-१५५	ऋषभदत्त देवानंदा पद	२७०-२८१
१५६-२४५	जमालि पद	२८१-३२३
चौतीसवां उद्देशक		
२४६-२४८	एक के वध में अनेक वध पद	३२४
२४९-२५०	ऋषि के वध में अनंत वध पद	३२५
२५१-२५२	वैर बंध पद	३२५-३२६
२५३-२५७	पृथ्वीकायिक आदि का आन-पान पद	३२६-३२७
२५८-२६३	क्रिया पद	३२७-३२८

दसवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		३३१-३३२
पहला उद्देशक		
	संग्रहणी गाथा	३३३
१-७	दिशा पद	३३३-३३६
८-१०	शरीर पद	३३६
दूसरा उद्देशक		
११-१४	संवृत का क्रिया पद	३३७-३३९
१५	योनि पद	३३९
१६-१७	वेदना पद	३३९
१८	भिक्षु प्रतिमा पद	३४०
१९-२२	अकृत्य-स्थान-प्रतिसेवन पद	३४०-३४१
तृतीय उद्देशक		
२३	आत्मर्धिक-परर्धिक व्यतिव्रजन पद	३४२

सूत्र		पृष्ठ
२४-३८	देवों का विनयविधि पद	३४३-३४५
३९	अश्व का 'खु-खु' करण पद	३४५
४०-४१	प्रज्ञापनी भाषा पद	३४५-३४६
चतुर्थ उद्देशक		
४२-६३	तावत्त्रिंशक देव पद	३४७-३५२
पांचवां उद्देशक		
६४-९८	देवों का अंतःपुर के साथ दिव्य-भोग पद	३५३-३६१
छट्ठा उद्देशक		
९९	सुधर्मा सभा पद	३६२
१००-१०१	शुक्र पद	३६२
७-३४ उद्देशक		
१०२-१०३	अन्तरद्वीप पद	३६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		३६७-३६८
	संग्रहणी गाथा	३६९
	पहला उद्देशक	
१-४१	उत्पल जीवों का उपपात आदि पद	३६९-३८१
	दूसरा उद्देशक	
४२-४३	शालु आदि जीवों का उपपात आदि पद	३८२
४४-४६	**तीसरा उद्देशक**	३८३
४७-४८	**चौथा उद्देशक**	३८४
४९-५०	**पांचवां उद्देशक**	३८५
५१-५२	**छट्ठा उद्देशक**	३८६
५३-५४	**सातवां उद्देशक**	३८७
५५-५६	**आठवां उद्देशक**	३८८
	नौवां उद्देशक	
५७-८९	शिवराजर्षि पद	३८९-४०३
	दसवां उद्देशक	
९०-९७	क्षेत्रलोक पद	४०४-४०६
९८	लोकसंस्थान पद	४०६
९९	अलोकसंस्थान पद	४०६
१००-१०८	लोक-अलोक जीव-अजीव मार्गणा पद	४०७-४१०
१०९	लोक का परिमाण पद	४१०-४११
११०	अलोक का परिमाण-पद	४११-४१३
१११-११३	लोकाकाश में जीव प्रदेश पद	४१४-४१५
	ग्यारहवां उद्देशक	
११५-१७३	सुदर्शन श्रेष्ठी पद	४१६-४४१
	बारहवां उद्देशक	
१७४-१८५	ऋषिभद्रपुत्र पद	४४२-४४६
१८६-१९९	पुद्गल परिव्राजक पद	४४६-४५१

परिशिष्ट

		पृष्ठ
१. नामानुक्रम—	(क) व्यक्ति और स्थान	४५५-४५७
	(ख) देव	४५८-४६२
	(ग) पशु-पक्षी	४६३-४६४
२. शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम		४६५-४६८
३. भाष्य-विषयानुक्रम		४६९-४७२
४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम		४७३-४८०
५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति—शतक ८,९,१०,११		४८१-५६८
६. आधारभूत ग्रंथ सूची		५६९-५७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं सयं

आठवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

आठवां शतक सृष्टिवाद, ज्ञान, परामनोविज्ञान और कर्मवाद आदि अनेक सिद्धांतों का सूत्रात्मक शैली में लिखा हुआ महाभाष्य है। जैन दृष्टि से सृष्टि के विषय में आगम साहित्य के आधार पर बहुत कम चिंतन हुआ है। दार्शनिक जगत् में उसकी अभिव्यक्ति भी बहुत कम हुई है। जैन सृष्टि का मौलिक सूत्र है अनेकांतवाद। उसके अनुसार प्रत्येक द्रव्य नित्यानित्य, परिणामीनित्य है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये पांच मूल द्रव्य हैं। इनका एक परमाणु नए सिरे से उत्पन्न नहीं होता और विनष्ट नहीं होता। इनमें परिणमन होता रहता है। वह परिणमन अनित्य है। जैन सृष्टि की व्याख्या का मूल आधार परिणमन अथवा पर्याय है। सर्वथा असत् से सत् की सृष्टि हुई—यह सिद्धांत मान्य नहीं है। सत् से सत् की सृष्टि होती है। मूल द्रव्य सत् है। पर्याय परिवर्तित होते रहते हैं। नए पर्याय के उत्पन्न होने पर पूर्व पर्याय असत बन जाता है। इस प्रकार पर्याय वर्तमान काल में सत् रहता है। अतीत और अनागत की अपेक्षा वह असत् होता है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय—इन तीन द्रव्यों का जगत् सदा अव्यक्त रहता है। इनमें सूक्ष्म और एक समयवर्ती पर्यायगत परिवर्तन नहीं होता—व्यंजन पर्याय नहीं होता।

जीव और पुद्गल का जगत् व्यक्त है। इनमें स्थूल और दीर्घकालिक पर्यायगत परिवर्तन होता है इसलिए दृश्य सृष्टि जीव और पुद्गलकृत सृष्टि है।

परिणमन का चक्र निरंतर चलता है। उसके तीन हेतु हैं—प्रयोग, मिश्र और स्वभाव। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति की सृष्टि जीव के प्रयोग से होती है इसलिए यह प्रयोगकृत परिणमन से होने वाली सृष्टि है।

सृष्टि के विकास की संकल्पना केवल इस पृथ्वी के आधार पर नहीं होगी, जिस पृथ्वी पर हम रह रहे हैं। पृथ्वीकायिक जीव अपने शरीर का निर्माण करते हैं। उसका स्वरूप बदलता रहता है किन्तु सर्वथा अभाव नहीं होता। जलकायिक जीव जल का निर्माण करते हैं। उसके लिए भी वातावरण की अनुकूलता अपेक्षित रहती है। एकांत स्निग्ध और एकांत रूक्ष काल में अग्नि उत्पन्न नहीं होती। स्निग्ध और रूक्ष का संतुलन होने पर उसकी उत्पत्ति होती है। सृष्टि के आधारभूत सूत्रों को समझने के लिए जीव और पुद्गल के प्रयत्नों को समझना आवश्यक है।

ईश्वरवाद के द्वारा सृष्टि की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। सृष्टि के वैचित्र्य की व्याख्या में ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वशक्ति-सम्पन्नता और वीतरागता का दर्शन नहीं होता। परिणमनवाद के आधार पर सृष्टि के वैचित्र्य की सम्यक् व्याख्या की जा सकती है। जीव अपने प्रयत्न से नाना रूपों में परिणत होता है। उस नानात्व में पुद्गल सहयोगी बनता है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक की जीव जातियां अपने-अपने शरीर का निर्माण करती हैं। सृष्टि का एक बड़ा भाग जीवच्छरीर है। वनस्पति जगत् से लेकर मनुष्य तक के सभी छोटे-मोटे प्राणी जन्म लेते हैं, नए शरीर को धारण करते हैं, मरते हैं, पुराने शरीर को छोड़ देते हैं। छोड़ा हुआ शरीर अथवा जीवमुक्त शरीर सृष्टि की विचित्रता का दूसरा बड़ा भाग है। शरीर की रचना, इन्द्रियों की रचना, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की रचना जीव स्वयं अपने अनाभोग वीर्य से करता है।

परमाणु का जगत् भी बहुत विशाल है। वे अपने स्वभाव से नानारूपों में परिणत होते रहते हैं। उनके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान का परिवर्तन तथा वर्ण आदि में गुणात्मक परिवर्तन होते रहते हैं।

प्रायोगिक परिणमन में कार्य—कारण का सिद्धांत लागू होता है। स्वाभाविक परिणमन में कार्य-कारण का नियम लागू नहीं होता। अनेकांत दर्शन में प्रत्येक घटना के साथ कार्य-कारण की अनिवार्यता नहीं है। न्याय-वैशेषिक दर्शन ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है। ईश्वर कर्तृत्व के विषय में पूर्व पंक्तियों में संक्षिप्त विमर्श किया गया है। सृष्टिवाद के लिए द्रष्टव्य सूयगडो १/११-६५ का टिप्पण।

पश्चिमी दार्शनिकों ने सृष्टि-रचना और उसमें घटित होने वाली घटनाओं के विषय में यंत्रवाद और प्रयोजनवाद के अभ्युपगम प्रस्तुत किए हैं। क्या सृष्टि रचना का कोई प्रयोजन है अथवा वह प्रयोजन शून्य है? जर्मन दार्शनिक हेगेल प्रयोजनवादी हैं। वे प्रयोजन को आंतरिक मानते हैं। सृष्टि के विकास के नाना स्तरों पर उसका आभास होता है। यंत्रवादी दार्शनिकों का मत है—सृष्टि का विकास प्राकृतिक नियमों से होता है। प्रयोजन मानवीय मस्तिष्क का प्रत्यय है।

प्रस्तुत प्रकरण में अनेकांत दृष्टि से सृष्टि की व्याख्या की गई है। जगत् की समस्त घटनाओं की व्याख्या एकांत यंत्रवाद और एकांत प्रयोजनवाद से नहीं की जा सकती। परमाणु में होने वाले गुणात्मक परिवर्तन की व्याख्या स्वाभाविक परिणमन के आधार पर की जा सकती है। जीव समूह में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या प्रायोगिक परिणमन अथवा आंतरिक प्रयोजन के आधार पर की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व और उनमें ज्ञान की खोज जैन दर्शन की मौलिक स्थापना है।[1] सूक्ष्म जीव संपूर्ण लोक में व्याप्त हैं।[2] वे पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय--इन पांच कायों के जीव समूह हैं। उन्हें इन्द्रियज्ञान और अनुमान से नहीं जाना जा सकता। इन्द्रिय ज्ञान और मानसिक ज्ञान के अनंत पर्यायों का सिद्धांत चेतना के असंख्य स्तरों को समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, यह मनोविज्ञान की नई दिशा को उद्घाटित करने वाला सूत्र है।[3] प्रयोग से होने वाली रचना (प्रयोग बंध) का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। शरीर की रचना (शरीर बंध) और शरीर प्रयोग की रचना (शरीर प्रयोग बंध) परामनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत मननीय है।

सूत्र ३६९ में शरीर प्रयोग की रचना के हेतुओं का वर्गीकरण है। उससे ज्ञात होता है कि औदारिक शरीर के प्रयोग की रचना प्रारंभिक निषेचित कोशिका से ही नहीं होती। वह मात्र शरीर रचना का एक घटक तत्त्व है किंतु उसका हेतु नहीं है। औदारिक आदि शरीरों की रचना की वर्गणाएं (घटक तत्त्व) भिन्न-भिन्न हैं। औदारिक आदि शरीरों की कालावधि पर विशद रूप में विचार किया गया है। कर्म शरीर की रचना के हेतुओं पर विस्तृत विचार उपलब्ध है। उसका आचार-शास्त्र का भी गहरा संबंध है।[4]

प्रस्तुत शतक में तत्त्वविद्या के साथ कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी संकलन है। आजीवकों का स्थविरों के पास आगमन और उनसे चर्चा, आजीवक के बारह श्रमणोपासकों का नामोल्लेख और उनके आचार का निरूपण आजीवक संप्रदाय के विधि-विधानों की जानकारी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रसंग में एक उल्लेखनीय तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। उवासगदसाओ में श्रावक की आचार संहिता है। उसमें भी उदुम्बर, बड़, पीपल, कठूमर और पाकर आदि पांच फलों तथा प्याज, लहसुन, कंद-मूल आदि के वर्जन का उल्लेख नहीं है। उत्तरवर्ती ग्रंथों में इनके वर्जन पर अधिक बल दिया गया है।[5] क्या उस पर आजीवक के आचार-शास्त्र का प्रभाव नहीं है?[6] मनुस्मृति में भक्ष्य और अभक्ष्य का निरूपण है। उसमें ब्राह्मण के लिए लहसुन, प्याज आदि का निषेध है।[7] इसके प्रभाव को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अन्ययूथिकों के साथ भगवान् महावीर के स्थविरों के संवाद का उल्लेख सातवें उद्देशक में है। भिन्न-भिन्न संप्रदाय के साधुओं का मिलन, वार्तालाप और प्रश्नोत्तर का क्रम सांप्रदायिक उदारता का सूचक है।

प्रस्तुत शतक में विभंगज्ञान का सूत्र ज्ञान मीमांसा की प्राचीन परम्परा का अवशेष है।[8] आगम साहित्य में ज्ञान के संस्थानों का प्रज्ञापन था। उसका अनुमान इस अवशेष से होता है। नंदी सूत्र और उसकी चूर्णि में भी ज्ञान के संस्थानों का इतना स्पष्ट निर्देश नहीं है। षट्खण्डागम में संस्थान का उल्लेख मिलता है। ये संस्थान हठयोग के चक्र की कोटि के हैं। इनके आधार पर अवधिज्ञान तथा मति श्रुत ज्ञान के संस्थानों की खोज का द्वार प्रशस्त होता है।

प्रस्तुत शतक में 'गतिप्रवाद' अध्ययन का उल्लेख है। इस नाम का कोई स्वतंत्र अध्ययन उपलब्ध नहीं है। प्रज्ञापना का सोलहवां पद प्रयोग पद है। उसका एक भाग गतिप्रवाद है।[9] इस प्रकार प्रस्तुत शतक में तत्त्वविद्या के अनेक सूत्र, इतिहास के अनेक प्रसंग और ज्ञानराशि के प्रकीर्ण बिन्दु उपलब्ध होते हैं।

---

१. भ. ८/२०।

२. उत्त. ३६/१०० सुहुमा सव्वलोगंमि।

३. भ. ८/२०८-२०९।

४. वही, ८/४१९-४३३।

५. (क) सागार धर्मामृत २/१३।

(ख) योगशास्त्र ३/४२-४३।

उदुम्बर वटप्लक्ष-काकोदुंबर शाखिनाम्।
पिप्पलस्य च नाश्नीयात् फलं कृमि कुलाकुलम्॥

अप्राप्नुवन्नन्यभक्ष्यमपि क्षामो बुभुक्षया।
न भक्षयति पुण्यात्मा, पंचोदुम्बरजं फलम्॥

६. भ. ८/२३०-२४२।

७. मनु. ५/५

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥

८. भ. ८/१०३।

९. प्रज्ञा. १६/१७-५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं सयं : आठवां शतक

पढमो उद्देसो : प्रथम उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी व्याख्या
संगहणी गाथा १. पोग्गल २.आसीविस ३. रुक्ख ४.किरिय५.आजीव ६,७.फासुकमदत्ते। ८.पडिणीय ९. बंध १०.आराहणा य दस अट्ठमंमि सते॥१॥	**संग्रहणी गाथा** पुद्गलाशीविषरूक्ष-क्रिया आजीवप्रासुकादत्तानि। प्रत्यनीकबन्धाराधनाश्च दशाष्टमे शते॥१॥	**संग्रहणी गाथा** आठवें शतक के दस उद्देशक हैं–१. पुद्गल २. आशीविष ३. वृक्ष ४. क्रिया ५. आजीवक ६. प्रासुक ७. अदत्त ८. प्रत्यनीक ९. बन्ध १०. आराधना।
पोग्गलपरिणति-पदं १. रायगिहे जाव एवं वदासी– **कतिविहा णं भंते! पोग्गला पण्णत्ता?** **गोयमा! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–पयोगपरिणया, मीसा-परिणया, वीससापरिणया॥**	**पुद्गलपरिणति-पदम्** राजगृहे यावत् एवमवादीत्–कतिविधाः भदन्त! पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! त्रिविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्रयोगपरिणताः, मिश्रपरिणताः, विस्रसापरिणताः।	**पुद्गलपरिणति-पद** १. [1]राजगृह नगर में भगवान् का समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भन्ते! पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। गौतम! पुद्गल तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत, विस्रसा-परिणत।

भाष्य

१. सूत्र १

प्रस्तुत आलापक में कार्य-कारणवाद के सापेक्ष दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। सिद्धसेन गणि ने एक गाथा उद्धृत कर परिणामी (उपादान), निमित्त और निर्वर्तक–इन तीन कारणों का उल्लेख किया है।[1] वैशेषिक दर्शन में समवायि, असमवायि और निमित्त ये तीन कारण माने गए हैं। सूत्रकार का प्रतिपाद्य यह है–विस्रसा परिणत द्रव्य कार्य-कारण के नियम से मुक्त होता है। प्रयोग परिणत द्रव्य निमित्त कारण के नियम से मुक्त होता है। मिश्र परिणत द्रव्य में निर्वर्तक और निमित्त कारण की संयोजना होती है। इस प्रकार जैन दर्शन में कार्य-कारण का सिद्धांत सापेक्ष है। प्रत्येक कार्य के पीछे कारण खोजने की अनिवार्यता नहीं है।

उमास्वाति ने पुद्गल के कार्यों का वर्गीकरण किया है। उनमें एक कार्य है बंध। परमाणुओं के संयोग और वियोग से अनेक पुद्गल स्कंधों का निर्माण होता है।

उस निर्माण या पुद्गल स्कंध की संरचना के तीन हेतु हैं–

१. प्रयोग

२. प्रयोग और स्वभाव का मिश्रण

३. स्वभाव।

शरीर की संरचना जीव के प्रयत्न से होती है। वह प्रयोग परिणत द्रव्य है।[2]

सिद्धसेन गणि ने प्रयोग का अर्थ जीव का व्यापार किया है।[3] अकलंक ने प्रयोग का अर्थ पुरुष का शरीर, वाणी और मन का संयोग किया है।[4]

मिश्र परिणत–जीव के प्रयोग और स्वभाव–इन दोनों के योग से जो परिणमन होता है, वह मिश्र परिणत द्रव्य है। सिद्धसेन गणि ने मिश्र का अर्थ किया है जीव प्रयोग सहचरित अचेतन द्रव्य की परिणति, जैसे–स्तंभ और घट।[5]

अकलंक ने बंध के दो ही भेद बतलाए हैं। उन्होंने मिश्र का स्वतंत्र

---

१. त. भा. वृ. ५/१७

'निर्वर्तको निमित्तं परिणामी च त्रिधेष्यते हेतुः।
कुम्भस्य कुम्भकारो, कर्ता मृच्चेति समसंख्यकम्॥

२. त. वृ. ८ १–जीवव्यापारेण शरीरादितया परिणताः।

३. त. सू. भा. सू. ५/२४ प्रयोगो जीवव्यापारस्तेन घटिता बंधः प्रायोगिकः।

४. त. रा. वा. ५/२४–प्रयोगः पुरुषकायवाङ्मनःसंयोगलक्षणः।

५. त. सू. भा. वृ. ५/२४–प्रयोगविस्रसाभ्यां जीवप्रयोगसहचरिताचेतन-द्रव्यपरिणतिलक्षणः स्तम्भकुम्भादिर्मिश्रः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख नहीं किया है, उसकी पूर्ति प्रयोग के दो भेद बतलाकर की है—अजीव विषयक प्रायोगिक और जीवाजीव विषयक प्रायोगिक। अजीव विषयक प्रायोगिक को समझाने के लिए जतुकाष्ठ का उदाहरण दिया है।[1]

सिद्धसेन गणि ने भी इस उदाहरण का प्रयोग किया है।[2] जीवाजीव विषयक प्रायोगिक दो प्रकार के होते हैं—

१. कर्मबंध- ज्ञानावरण आदि का बंध

२. नोकर्मबंध—औदारिक आदि शरीर का निर्माण।[3]

अभयदेव सूरि ने मिश्र को समझाने के लिए दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

१. मुक्त जीव का शरीर

२. औदारिकादि वर्गणाओं का शरीर रूप में परिणमन।

शरीर का निर्माण जीव ने किया है इसलिए वह जीव के प्रयोग से परिणत द्रव्य है। स्वभाव से उसका रूपान्तरण होता है इसलिए वह मिश्र परिणत द्रव्य है।

औदारिक आदि वर्गणा स्वभाव से निष्पन्न है। जीव के प्रयोग से वे शरीर रूप में परिणत होती हैं। इसमें भी जीव का प्रयोग और स्वभाव दोनों का योग है।

उन्होंने स्वयं प्रश्न प्रस्तुत किया—प्रयोग परिणाम और मिश्र परिणाम में क्या अंतर है? उन्होंने समाधान में कहा—प्रयोग परिणाम में भी स्वभाव परिणाम है किन्तु वह विवक्षित नहीं है।[4] सिद्धसेन गणि ने भी 'मिश्र परिणाम में प्रयोग और स्वभाव—दोनों प्रधान रूप से विवक्षित हैं' इसका उल्लेख किया है।[5]

उक्त दोनों व्याख्याओं की संगति कार्य-कारण के संदर्भ में ही बिठायी जा सकती है। मिश्र परिणाम के उदाहरण हैं घट और स्तंभ। घट के निर्माण में मनुष्य का प्रयत्न है और मिट्टी में घट बनने का स्वभाव है इसलिए घट मिश्रपरिणत द्रव्य है। इसकी तुलना वैशेषिक सम्मत समवायि कारण से की जा सकती है।

प्रयोग परिणाम में किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा नहीं होती। उसका निर्माण जीव के आंतरिक प्रयत्न से ही होता है। मिश्र परिणाम में जीव के प्रयत्न के साथ निमित्त कारण का भी योग होता है। स्वभाव परिणाम जीव के प्रयत्न और निमित्त—दोनों से निरपेक्ष होता है।[6]

सूत्रकार ने प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्यों का वर्णन विस्तार से किया है।[7] इससे फलित होता है—जीव अपने प्रयत्न से शरीर की रचना, इन्द्रिय की रचना, वर्ण का निष्पादन और संस्थान (आकार) की संरचना करता है।

प्रयोग परिणाम से पुरुषार्थवाद और स्वभाव परिणाम से स्वभाववाद फलित होता है। जैन दर्शन अनेकान्तवादी है इसलिए उसे सापेक्ष दृष्टि से पुरुषार्थवाद और स्वभाववाद—दोनों मान्य है। द्रष्टव्य ८/३४५-३६५ का भाष्य।

शब्द विमर्श

प्रयोग—जीव का प्रयत्न

मिश्र—प्रयत्न और स्वभाव दोनों का योग।

विस्रसा—स्वभाव।[8]

पयोगपरिणति-पदं

२. पयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदियपयोगपरिणया, बेइंदियपयोगपरिणया, तेइंदियपयोग-परिणया, चउरिंदियपयोगपरिणया, पंचिंदियपयोगपरिणया॥

प्रयोगपरिणति-पदम्

प्रयोगपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः, द्वीन्द्रिय प्रयोग-परिणताः, त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणताः, चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणताः, पञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः।

प्रयोगपरिणति-पद

२. भन्ते! प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत, द्वीन्द्रियप्रयोग-परिणत, त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणत, चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणत और पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत।

३. एगिंदियपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइयएगिंदियपयोग-परिणया, आउकाइयएगिंदिय-पयोगपरिणया,

एकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथ्वी - कायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः अप्कायिकैकेन्द्रियप्रयोग - परिणताः, तेज-

३. भन्ते! एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पृथ्वीकायिकएकेन्द्रियप्रयोगपरिणत, अप्कायिकएकेन्द्रियप्रयोगपरिणत, तैजस-

१. त. रा. वा. ५/२४ स द्वेधा अजीवविषयो जीवाजीवविषयश्चेति। तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादि लक्षणः।

२. त. सू. भा. वृ. ५/२४ प्रायोगिकः औदारिकादिशरीर- जतुकाष्ठादिविषयः।

३. त. रा. वा. ५/२४—जीवाजीवविषयः कर्म नोकर्मबंधः। कर्मबंधो ज्ञानावरणादिरष्टधा वक्ष्यमाणः। नोकर्मबंधः औदारिकादिविषयः।

४. भ. वृ. ८/१ मिश्रकपरिणताः प्रयोगविस्रसाभ्यां परिणताः। प्रयोगपरिणामस्तज्जन्यो विस्रसा स्वभावान्तरमापादिता मुक्तकदेहशरीरिणः। अथवौदारिकादिवर्गणारूपा विस्रसया निष्पादिताः संतः जीवप्रयोगेणैकेन्द्रियादिशरीरप्रभृतिपरिणाममापादितास्ते मिश्रपरिणताः ननु प्रयोगपरिणामोऽप्येवंविध एव ततः क एषां विशेषः? सत्यं: किन्तु प्रयोगपरिणतेषु विस्रसा सत्यपि न विवक्षिता।

५. त. सू. भा. वृ. ५/२४—अत्र चोभयमपि प्राधान्येन विवक्षितम्।

६. वही, ५/२४—प्रयोगनिरपेक्षो विस्रसा बंधः।

७. भ. ८/२-३१।

८. त. रा. वा.—५/२४—विस्रसा विधिविपर्ययौ निपातः पौरस्त्येय- परिणामापेक्षः विधिः, तद्विपर्ययो विस्रसाशब्दो निपातो द्रष्टव्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउकाइयएगिंदिय-पयोगपरिणया, वाउकाइयएगिंदिय-पयोगपरिणया, वणस्सइकाइय-एगिंदियपयोगपरिणया॥

स्कायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, वायुकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, वनस्पतिकायिकैकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः।

कायिकएकेन्द्रियप्रयोगपरिणत, वायुकायिकएकेन्द्रियप्रयोगपरिणत और वनस्पतिकायिकएकेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

४. पुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोग-परिणया, बादरपुढविकाइय-एगिंदियपयोगपरिणया य। आउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया एवं चेव। एवं दुयओ भेदो जाव वणस्स-इकाइया य॥

पृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, बादर-पृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोग-परिणताश्च। अप्कायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः एवं चैव। एवं द्विकः भेदः यावत् वनस्पतिकायिकाश्च।

४. भन्ते! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत और बादर-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोग-परिणत। अप्कायिकएकेन्द्रियप्रयोग-परिणत पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार तैजसकाय यावत् वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर इन दो भेदों की वक्तव्यता।

५. बेइंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! अणेगविहा पण्णत्ता। एवं तेइंदिय-चउरिंदियपयोगपरिणया वि॥

द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः। एवं त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणताः अपि।

५. द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणत अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणत भी अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं।

६. पंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—नेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया, तिरिक्ख मणुस्सदेवपंचिंदिय-पयोगपरिणया॥

पञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिक-प्रयोगपरिणताः, तिर्यग्-मनुष्य-देवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

६. पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—नैरयिक पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत, तिर्यंच पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत, मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

७. नेरइयपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभपुढविनेरइयपंचिंदिय-पयोगपरिणया वि जाव अहेसत्तम-पुढविनेरइय - पंचिंदियपयोग परिणया वि॥

नैरयिकपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।

गौतम! सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभ- पृथ्वीनैरयिकपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः अपि यावत् अधःसप्तमपृथ्वी-नैरयिकपञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः अपि।

७. नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रत्नप्रभा-पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत यावत् अधःसप्तमीपृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत।

८. तिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोग-परियाणं पुच्छा।
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरतिरिक्ख-जोणियपंचिंदिय-पयोगपरिणया, थलचरतिरिक्ख-जोणिय - पंचिंदियपयोगपरिणया,

तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचर- तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः, स्थलचरतिर्यग्योनिक-पञ्चेन्द्रियप्रयोगपरि-णताः, खेचर-

८. तिर्यग्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—जलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत, स्थलचर तिर्यक्योनिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खहचरतिरिक्ख-जोणियपंचिंदिय-पयोगपरिणया॥

तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः।

पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, खेचर (नभचर) तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत।

९. जलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमजलचरतिरिक्ख-जोणिय-पंचिंदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कं-तियजलचर - तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-पयोगपरिणया॥

जलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्मूर्च्छिमजलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः, गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचर-तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

९. जलचर तिर्यक् योनिक पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत की पृच्छा।
गौतम! जलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यक्-योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, गर्भाव-क्रान्तिक जलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत।

१०. थलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पयोगपरिणया, परिसप्पथलचरति-रिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया॥

स्थलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चतुष्पद स्थलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः, परिसर्पस्थलचरतिर्यग्-योनिकपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

१०. स्थलचर तिर्यक् योनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—चतुष्पद स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, परिसर्प स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

११. चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमचउप्पयथलचरतिरिक्ख-जोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलचरतिरिक्ख-जोणियपंचिंदियपयोगपरिणया॥

चतुष्पदस्थलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्मू-र्च्छिमचतुष्पदस्थलचरतिर्यग्योनिकपञ्चे-न्द्रियप्रयोगपरिणताः, गर्भव्युत्क्रान्तिक-चतुष्पदस्थलचरतिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः।

११. चतुष्पद स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! चतुष्पद स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, गर्भावक्रान्तिक चतुष्पद तिर्यक् योनिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

१२. एवं एएणं अभिलावेणं परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उरपरिसप्पा य भुय-परिसप्पा य। उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य। एवं भुयपरिसप्पा वि। एवं खहयरा वि॥

एवम् एतेन अभिलापेन परिसर्पाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उरः-परिसर्पाश्च, भुजपरिसर्पाश्च। उरःपरि-सर्पाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्मूर्च्छिमाश्च गर्भव्यु-त्क्रान्तिकाश्च। एवं भुजपरिसर्पाः अपि। एवं खेचराः अपि।

१२. इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार परिसर्प दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उर-परिसर्प और भुज परिसर्प। उर परिसर्प दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्मूर्च्छिम और गर्भावक्रान्तिक। इसी प्रकार भुज परिसर्प की वक्तव्यता। इसी प्रकार खेचर की वक्तव्यता।

१३. मणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिममणुस्सपंचिंदियपयोग-परिणया, गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदियपयोगपरिणया॥

मनुष्यपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्मू-र्च्छिममनुष्यपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः।

१३. मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत, गर्भाव-क्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. देवपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासिदेवपंचिंदियपयोग-परिणया, एवं जाव वेमाणिया॥

देवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, एवं यावत् वैमानिकाः।

१४. देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—भवनवासी देव पंचेन्द्रियप्रयोग परिणत, इसी प्रकार यावत् वैमानिक देव पंचेन्द्रियप्रयोग परिणत।

१५. भवणवासिदेवपंचिंदियपयोग-परिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमारदेवपंचिंदियपयोग-परिणया जाव थणियकुमारदेव-पंचिंदियपयोगपरिणया॥

भवनवासिदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—असुरकुमारदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः यावत् स्तनितकुमारदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

१५. भवनवासी देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! भवनवासी देव पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत दस प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—असुरकुमार देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत यावत् स्तनितकुमार देव पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत।

१६. एवं एएणं अभिलावेणं अट्ठविहा वाणमंतरा पिसाया जाव गंधव्वा। जोतिसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—चंदविमाणजोतिसिया जाव तारा-विमाणजोतिसिय-देव-पंचिंदियपयोग-परिणया। वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कप्पो-वगवेमाणिया कप्पातीतग-वेमाणिया। कप्पोवगवेमाणिया दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मकप्पोवगवेमाणिया जाव अच्चुयकप्पोवगवेमाणिया। कप्पा-तीतगवेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—गेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया, अणुत्तरो - ववातियकप्पातीतग-वेमाणिया। गेवेज्जग-कप्पातीत-गवेमाणिया नवविहा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीतग-वेमाणिया जाव उवरिमउवरि-मगेवेज्जग-कप्पातीतगवेमाणिया॥

एवम् एतेन अभिलापेन अष्टविधाः वानमन्तराः पिशाचाः यावत् गन्धर्वाः। ज्योतिष्काः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चन्द्रविमानज्योतिष्काःयावत् ताराविमान-ज्योतिष्कदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः। वैमानिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कल्पोपगवैमानिकाः कल्पातीतक-वैमानिकाः। कल्पोपगवैमानिकाः द्वादश-विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मकल्पो-पगवैमानिकाः यावत् अच्युतकल्पोपग-वैमानिकाः। कल्पातीतक-वैमानिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ग्रैवेयक-कल्पातीतकवैमानिकाः, अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतकवैमानिकाः। ग्रैवेयककल्पा-तीतकवैमानिकाः नवविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तनाधस्तनग्रैवेयककल्पा-तीतकवैमानिकाः यावत् उपरिम-नोपरितन-ग्रैवेयककल्पातीतकवैमानिकाः।

१६. इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार वानमंतर आठ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं—पिशाच यावत् गंधर्व। ज्योतिष्क पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—चन्द्रविमान ज्योतिष्क यावत् ताराविमान ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत। वैमानिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कल्पोपग-वैमानिक और कल्पातीतगवैमानिक। कल्पोपगवैमानिक बारह प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सौधर्मकल्पोपगवैमानिक यावत् अच्युतकल्पोपगवैमानिक। कल्पातीत-गवैमानिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ग्रैवेयक कल्पातीतगवैमानिक, अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक। ग्रैवेयक कल्पातीतगवैमानिक नौ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सबसे नीचे वाले ग्रैवेयक कल्पातीतगवैमानिक यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक कल्पातीत-गवैमानिक।

१७. अणुत्तरोववातियकप्पातीतगवेमा-णियदेवपंचिंदियपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—विजयअणुत्तरोववातियकप्पा-तीतग-वेमाणियदेवपंचिंदियपयोग-परिणया जाव सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववातिय-कप्पातीतगवेमाणिय-देवपंचिंदिय-पयोगपरिणया॥

अनुत्तरौपपातिककल्पातीतकवैमानिक-देवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—विजयानुत्तरौपपातिककल्पातीतकवैमानिक-देवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः यावत् सर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिककल्पातीतक-वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

१७. भन्ते! अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतग-वैमानिक देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—विजय अनुत्तरौपपातिक कल्पा-तीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तापज्जत्तं पडुच्च पयोग-परिणति-पदं

१८. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोग-परिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदिय-पयोगपरिणया य, अपज्जत्तासुहुम-पुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य। बादरपुढविकाइयएगिंदियपयोग-परिणया एवं चेव, एवं जाव वणस्सइकाइया। एक्केक्का दुविहा सुहुमा य, बादरा य, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा॥

पर्याप्तापर्याप्तं प्रतीत्य प्रयोगपरिणति-पदम्

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोग-परिणताश्च, अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोग-परिणताश्च।

बादरपृथ्वीकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः एवं चैव, एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः। एकैके द्विविधाः सूक्ष्माश्च, बादराश्च। पर्याप्तकाः अपर्याप्तकाश्च भणितव्याः।

पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

१८. भन्ते! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत और अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत।

इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इनमें से प्रत्येक दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म और बादर के दो-दो प्रकार हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१९. बेइंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगबेइंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य। एवं तेइंदिया वि, एवं चउरिंदिया वि॥

द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तक-द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणताश्च, अपर्याप्तक यावत् परिणताश्च। एवं त्रीन्द्रियाः अपि, एवं चतुरिन्द्रियाः अपि।

१९. द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक द्वीन्द्रियप्रयोग-परिणत और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियप्रयोग-परिणत। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

२०. रयणप्पभपुढविनेरइयपयोग-परिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगरयणप्पभ जाव परिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य। एवं जाव अहेसत्तमा॥

रत्नप्रभपृथिवीनैरयिकप्रयोगपरिणतानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तक-रत्नप्रभ यावत् परिणताश्च, अपर्याप्तक यावत् परिणताश्च। एवं यावत् अधःसप्तमी।

२०. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकप्रयोगपरिणत की पृच्छा।
गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकप्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकप्रयोग-परिणत और अपर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकप्रयोगपरिणत। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमीपृथ्वीनैरयिक प्रयोगपरिणत।

२१. संमुच्छिमजलचरतिरिक्ख—पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तग अपज्जत्तग। एवं गब्भ-वक्कंतिया वि। संमुच्छिमचउप्पय-थलचरा एवं चेव। एवं गब्भवक्कंतिया वि। एवं जाव संमुच्छिमखहयर-गब्भवक्कंतिया य। एक्केक्के पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

सम्मूर्च्छिमजलचरतिर्यक्—पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाः, अपर्याप्तकाः। एवं गर्भ-व्युत्क्रान्तिकाः अपि। सम्मूर्च्छिमचतुष्पद-स्थलचराः एवं चैव। एवं गर्भव्युत्क्रान्तिकाः अपि। एवं यावत् सम्मूर्च्छिमखेचर-गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च। एकैके पर्याप्तकाः अपर्याप्तकाश्च भणितव्याः।

२१. सम्मूर्च्छिमजलचर तिर्यंच की पृच्छा।
गौतम! संमूर्च्छिम जलचर तिर्यंच दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इसी प्रकार गर्भावक्रान्तिक जलचर तिर्यंच की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् संमूर्च्छिम खेचर और गर्भावक्रान्तिक खेचर की वक्तव्यता। प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद वक्तव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. संमुच्छिममणुस्सपंचिंदिय–पुच्छा।
गोयमा! एगविहा पण्णत्ता–अपज्जत्तगा चेव॥

सम्मूर्च्छिममनुष्यपञ्चेन्द्रिय–पृच्छा।
गौतम! एकविधाः प्रज्ञप्ताः, अपर्याप्तकाश्चैव।

२२. संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय की पृच्छा।
गौतम! संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय एक प्रकार के ही प्रज्ञप्त हैं–वे अपर्याप्तक ही होते हैं।

२३. गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–पज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि, अपज्जत्तग-गब्भवक्कंतिया वि॥

गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यपञ्चेन्द्रिय पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकाः अपि, अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकाः अपि।

२३. गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय की पृच्छा।
गौतम! गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पर्याप्तक गर्भावक्रान्तिक और अपर्याप्तक गर्भावक्रान्तिक।

२४. असुरकुमारभवणवासिदेवाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–पज्जत्तगअसुरकुमार, अपज्जत्तग-असुरकुमार। एवं जाव थणियकुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य॥

असुरकुमारभवनवासिदेवानां पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पर्याप्तकासुरकुमाराः, अपर्याप्तकासुरकुमाराः। एवं यावत् स्तनितकुमाराः पर्याप्तकाः अपर्याप्तकाश्च।

२४. असुरकुमार भवनवासी देवों की पृच्छा।
गौतम! असुरकुमार भवनवासी दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पर्याप्तक असुरकुमार और अपर्याप्तक असुरकुमार। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार के पर्याप्तक-अपर्याप्तक की वक्तव्यता।

२५. एवं एतेणं अभिलावेणं दुयएणं भेदेणं पिसाया जाव गंधव्वा। चंदा जाव ताराविमाणा। सोहम्म-कप्पोवगा जाव-च्चुता। हेट्ठिमहेट्ठि-मगेवेज्जकप्पातीत जाव उवरिम-उवरिमगेवेज्ज। विजय-अणुत्तरोववाइय जाव अपराजिय।

एवम् एतेन अभिलापेन द्विकेन भेदेन पिशाचाः यावत् गन्धर्वाः। चन्द्राः यावत् ताराविमानानि। सौधर्मकल्पोपगाः यावत् अच्युताः। अधस्तनाधस्तनग्रैवेयक कल्पातीताः यावत् उपरितनोपरितन-ग्रैवेयकाः। विजया-नुत्तरौपपातिकाः यावत् अपराजिताः।

२५. इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार पिशाच यावत् गंधर्व के दो-दो भेद–पर्याप्तक और अपर्याप्तक वक्तव्य हैं। चन्द्र यावत् ताराविमान, सौधर्म कल्पोपग यावत् अच्युत, सबसे नीचे वाले ग्रैवेयक कल्पातीतग यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक कल्पातीतग। विजय अनुत्तरौपपातिक यावत् अपराजित।

२६. सव्वट्ठसिद्धकप्पातीत–पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय, अपज्जत्तासव्वट्ठ जाव परिणया वि॥

सर्वार्थसिद्धकल्पातीत–पृच्छा।
गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पर्याप्तकसर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिकाः, अपर्याप्तकसर्वार्थ यावत् परिणताः अपि।

२६. सर्वार्थसिद्ध कल्पातीतग की पृच्छा।
गौतम! सर्वार्थसिद्ध कल्पातीतग दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक, अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिकप्रयोगपरिणत।

सरीरं पडुच्च पयोगपरिणति-पदं

२७. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइय-एगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालियतेया - कम्मासरीरप्पयोग-परिणया। जे पज्जत्तासुहुम जाव-परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मा-सरीरप्पयोगपरिणया। एवं जाव चउरिंदिया पज्जत्ता, नवरं–जे पज्जत्ताबादरवाउकाइयएगिंदिय-प्पयोगपरिणया ते ओरालिय-

शरीरं प्रतीत्य प्रयोगपरिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते औदारिक-तैजस-कर्मक-शरीरप्रयोगपरिणताः। ये पर्याप्तकसूक्ष्म यावत् परिणताः ते औदारिक-तैजस-कर्मकशरीर-प्रयोगपरिणताः। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाः पर्याप्तकाः, नवरं–ये पर्याप्तक-बादरवायुकायिकै-केन्द्रियप्रयोगपरिणताः ते औदारिक-वैक्रिय तैजस-कर्मकशरीरप्रयोग-परिणताः। शेषं तच्चैव।

शरीर की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

२७. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं। जो पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय पर्याप्तप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है–जो पर्याप्त बादर वायुकायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियतेयाकम्मासरीरप्पयोग-परिणया। सेसं तं चेव॥

एकेन्द्रियप्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कर्मशरीरप्रयोग-परिणत हैं--शेष जो अपर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं वे औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोग-परिणत हैं।

२८. ते अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोग-परिणया। एवं पज्जत्तगा वि। एवं जाव अहेसत्तमा॥

ये अपर्याप्तरत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक-पञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः ते वैक्रिय-तैजस-कर्मक-शरीरप्रयोगपरिणताः। एवं पर्याप्तकाः अपि। एवं यावत् अधःसप्तमी।

२८. जो अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वैक्रिय, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता।

२९. जे अपज्जत्तासंमुच्छिमजलचर जाव परिणया ते आरोलिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया। एवं पज्जत्तगा वि। गब्भवक्कंतिय-अपज्जत्ता एवं चेव। पज्जत्तगा णं एवं चेव, नवरं--सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउकाइयाणं पज्ज-त्तगाणं। एवं जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एवं चउप्पय-उरपरिसप्पभुयपरिसप्पखहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा॥

ये अपर्याप्तकसम्मूर्च्छिमजलचर यावत् परिणताः ते औदारिक-तैजस-कर्मकशरीर यावत् परिणताः। एवं पर्याप्तकाः अपि। गर्भव्युत्क्रान्तिकापर्याप्ताः एवं चैव। पर्याप्तकाः एवं चैव, नवरं--शरीरकाणि चत्वारि यथा बादरवायुकायिकानां पर्याप्त-कानाम्। एवं यथा जलचरेषु चत्वारः आलापकाः भणिताः। एवं चतुष्पदोरपरिसर्प-भुजपरिसर्प-खेचरेषु अपि चत्वारः आलापकाः भणितव्याः।

२९. जो अपर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार पर्याप्त गर्भावक्रान्तिक जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है कि बादर वायुकायिक की भांति शरीर चार होते हैं। जैसे--जलचर के चार आलापक कहे गए हैं वैसे ही चतुष्पद उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर के भी चार आलापक वक्तव्य हैं।

३०. जे संमुच्छिममणुस्सपंचिंदिय-पयोगपरिणया ते आरोलिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया। एवं गब्भवक्कंतिया वि। अपज्जत्तगा वि, पज्जत्तगा वि एवं चेव, नवरं--सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि।

ये सम्मूर्च्छिममनुष्यपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः ते औदारिक-तैजस-कर्मकशरीर-प्रयोगपरिणताः। एवं गर्भव्युत्क्रान्तिकाः अपि। अपर्याप्तकाः अपि, पर्याप्तकाः अपि एवं चैव, नवरं--शरीरकाणि पञ्च भणितव्यानि।

३०. जो संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रियप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अपर्याप्तक की वक्तव्यता। पर्याप्तक की वक्तव्यता भी इसी प्रकार है। केवल इतना विशेष है कि पांच शरीर वक्तव्य हैं।

३१. जे अपज्जत्ताअसुरकुमारभवण-वासि जहा नेरइया तहेव। एवं पज्जत्तगा वि। एवं दुयएणं भेदेणं जाव थणियकुमारा। एवं पिसाया जाव

ये अपर्याप्तकासुरकुमारभवनवासिनः यथा नैरयिकाः तथैव। एवं पर्याप्तकाः अपि। एवं द्विकेन भेदेन यावत् स्तनितकुमाराः। एवं पिशाचाः यावत् गन्धर्वाः। चन्द्राः यावत्

३१. जो अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी-प्रयोगपरिणत हैं वे नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार पर्याप्त असुर-कुमार भवनवासीप्रयोगपरिणत की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंधव्वा। चंदा जाव तारा-विमाणा। सोहम्मकप्पो जावच्चुओ हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग जाव उवरिम-उवरिमगेवेज्जग। विजयअणुत्तरोववाइय जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय। एक्केक्के दुयओ भेदो भाणियव्वो जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतग-वेमाणियदेवपंचिंदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया- कम्मा - सरीरप्पयोग-परिणया॥

तारविमानानि। सौधर्मकल्पः यावदच्युतः। अधस्तनाधस्तनग्रैवेयक यावत् उपरि-तनोपरितनग्रैवेयकः। विजयानुत्तरौपपातिक यावत् सर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिकः। एकैकस्मिन् द्विकः भेदः भणितव्यः यावत् ये पर्याप्तक - सर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिक-कल्पातीतकवैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोग-परिणताः ते वैक्रिय-तैजस्क-कर्मकशरीर-प्रयोगपरिणताः।

वक्तव्यता। इसी प्रकार दो-दो भेद के अनुसार यावत् स्तनितकुमार भवन-वासीप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार पिशाच यावत् गंधर्व की वक्तव्यता। चन्द्र यावत् ताराविमान की वक्तव्यता। सौधर्म कल्प यावत् अच्युत की वक्तव्यता। सबसे नीचे वाले ग्रैवेयक यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक की वक्तव्यता। विजय अनुत्तरौपपातिक यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक की वक्तव्यता। प्रत्येक के अपर्याप्त और पर्याप्त—ये दो भेद वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत हैं वे वैक्रिय, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं।

इंदियं पडुच्च पयोगपरिणति-पदं

३२. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइय-एगिंदियपयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया जे पज्जत्ता-सुहुमपुढविकाइय एवं चेव। जे अपज्जत्ताबादरपुढविकाइय एवं चेव। एवं पज्जत्तगा वि। एवं चउक्कएणं भेदेण जाव वणस्सति-काइया।

इन्द्रियं प्रतीत्य प्रयोगपरिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरि-णताः, ये पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकाः एवं चैव। ये अपर्याप्तकबादरपृथ्वीकायिकाः एवं चैव। एवं पर्याप्तकाः अपि। एवं चतुष्केण भेदेन यावत् वनस्पतिकायिकाः।

इंद्रिय की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

३२. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे स्पर्शनेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार पर्याप्त पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इस प्रकार चार-चार भेदों के अनुसार यावत् वनस्पति-कायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता।

३३. जे अपज्जत्ताबेइंदियपयोग-परिणया ते जिब्भिंदियफासिंदिय-पयोगपरिणया, जे पज्जत्ताबेइंदिय एवं चेव। एवं जाव चउरिंदिया, नवरं—एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं॥

ये अपर्याप्तकद्वीन्द्रियप्रयोगपरिणताः ते जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणताः, ये पर्याप्तकद्वीन्द्रियाः एवं चैव। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाः, नवरं—एकैकम् इन्द्रियं वर्धितव्यम्।

३३. जो अपर्याप्त द्वीन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त द्वीन्द्रिय प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है—त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में क्रमशः एक-एक इन्द्रिय की वृद्धि करनी चाहिए।

३४. जे अपज्जत्तरयणप्पभपुढवि-नेरइय-पंचिंदियपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय - घाणिंदिय-जिब्भिंदिय - फासिंदियपयोगपरिणया। एवं पज्जत्तगा

ये अपर्याप्तरत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक पञ्चे-न्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय - घ्राणेन्द्रिय - जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियप्रयोग-परिणताः। एवं पर्याप्तकाः

३४. जो अपर्याप्त रत्नप्रभा नैरयिक पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि। एवं सव्वे भाणियव्वा तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय कप्पातीत - गवेमाणियदेव-पंचिंदियपयोगपरिणया ते सो-इंदिय - चक्खिंदिय - घाणिंदिय-जिब्भिंदिय - फासिंदियपयोग-परिणया॥

अपि। एवं सर्वे भणितव्याः। तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवाः यावत् ये पर्याप्तकसर्वार्थ-सिद्धानुत्तरौपपातिक - कल्पातीतक-वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियप्रयोगपरिणताः ते श्रोत्रेन्द्रिय - चक्षुरिन्द्रिय - घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः।

पर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार शेष सब की वक्तव्यता। तिर्यग् योनिक, मनुष्य और देव यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतग-वैमानिक देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं।

सरीरं इंदियं च पडुच्च पयोग-परिणति-पदं

३५. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइय-एगिंदियओरालिय - तेया - कम्मा-सरीरप्पयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया। जे पज्जत्ता-सुहुम एवं चेव। बादरअपज्जत्ता एवं चेव। एवं पज्जत्तगा वि।

शरीरम् इन्द्रियं च प्रतीत्य प्रयोग-परिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-औदारिक-तेजस्क-कर्मक शरीरप्रयोग-परिणताः ते स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणताः। ये पर्याप्तक-सूक्ष्म एवं चैव। बादरापर्याप्तकाः एवं चैव। एवं पर्याप्तकाः अपि।

शरीर और इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

३५. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस, कर्मशरीर-प्रयोगपरिणत हैं वे स्पर्शनेन्द्रियप्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस, कर्मशरीरप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-तैजस-कर्मशरीर-प्रयोगपरिणत की वक्तव्यता।
इसी प्रकार बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-तैजस-कर्मशरीर-प्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार जिसके जितनी इन्द्रियां और शरीर हैं उसके वे सब वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रियवैक्रिय, तैजस, कर्मशरीरप्रयोग-परिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं

एवं एतेण अभिलावेणं जस्स जति इंदियाणि सरीराणि य तस्स ताणि भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्ध - अणुत्तरोववाइयकप्पा-तीतगवेमाणिय देवपंचि दियवेउव्विय-तेयाकम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते सोइंदियचक्खिंदिय जाव फासिंदियप्पयोगपरिणया॥

एवम् एतेन अभिलापेन यस्य यति इन्द्रियाणि शरीराणि च तस्य तानि भणितव्यानि यावत् ये पर्याप्तकसर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिक-कल्पातीतकवैमानिकदेवपञ्चेन्द्रिय-वैक्रिय-तेजस्क-कर्मकशरीरप्रयोगपरिणताः ते श्रोत्रेन्द्रिय - चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणताः।

वण्णादिं पडुच्च पयोगपरिणति-पदं

३६. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल-वण्णपरिणया वि; गंधओ सुब्भि-गंधपरिणया वि, दुब्भि-गंधपरिणया वि; रसओ तित्तरस-परिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसाय-रसपरिणया वि, अंबिलरस-परिणया वि, महुररसपरिणया वि; फासओ कक्खडफासपरिणया वि,

वर्णादिं प्रतीत्य प्रयोगपरिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते वर्णतः कालवर्ण-परिणताः अपि, नील-लोहित-हारिद्र-शुक्लवर्णपरि-णताः अपि, गन्धतः सुरभि-गन्धपरिणताः अपि, दुरभिगन्धपरिणताः अपि, रसतः तिक्तरसपरिणताः अपि, कटुकरसपरिणताः अपि, कषायरस-परिणताः अपि, आम्लरस-परिणताः अपि, मधुररसपरिणताः अपि, स्पर्शतः कर्कशट-स्पर्शपरिणताः अपि, मृदुकस्पर्शपरिणताः-

वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

३६. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं, नील, लाल, पीत और शुक्ल वर्ण परिणत भी हैं, गंध से सुगंध परिणत भी हैं, दुर्गन्ध परिणत भी हैं, रस से तिक्तरस परिणत भी है, कटुक रस परिणत भी हैं, कषाय रस परिणत भी हैं, अम्ल रस परिणत भी हैं, मधुर रस परिणत भी हैं, स्पर्श से कठोर स्पर्श परिणत भी हैं, मृदु स्पर्श परिणत भी हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मउय-फासपरिणया वि, गरुयफास-परिणया वि, लहुयफासपरिणया वि, सीतफासपरिणया वि,उसिण-फासपरिणया वि, णिद्धफास-परिणया वि, लुक्खफासपरिणया वि; संठाणओ परिमंडलसंठाण-परिणया वि, वट्ट-तंस-चउरंस-आयतसंठाणपरिणया वि।

जे पज्जत्तासुहुमपुढवि एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए नेयव्वं जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठ - सिद्धअणुत्तरो-ववाइय जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाणपरिणया वि॥

अपि, गुरुकस्पर्श-परिणताः अपि, लघु-कस्पर्शपरिणताः अपि, शीतस्पर्शपरिणताः अपि, उष्णस्पर्श- परिणताः अपि, स्निग्धस्पर्शपरिणताः अपि, रूक्षस्पर्श-परिणताः अपि, संस्थानतः परिमण्डल-संस्थानपरिणताः अपि, वृत्त- त्र्यस्र-चतुरस्रायत-संस्थानपरिणताः अपि। ये पर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवी एवं चैव। एवं यथानुपूर्व्या नेतव्यं यावत् ये पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिक यावत् परिणताः ते वर्णतः कालवर्णपरिणताः अपि यावत् आयतसंस्थानपरिणताः अपि।

गुरु स्पर्श परिणत भी हैं, लघु स्पर्श परिणत भी हैं, शीत स्पर्श परिणत भी हैं, उष्ण स्पर्श परिणत भी हैं, स्निग्ध स्पर्श परिणत भी हैं, रूक्ष स्पर्श परिणत भी हैं; संस्थान से परिमण्डल संस्थान परिणत भी हैं, वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-आयत संस्थान परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार क्रमशः ज्ञातव्य है यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

सरीरं वण्णादिं च पडुच्च पयोग-परिणति-पदं

३७. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मा-सरीरपयोगपरिणया ते वण्णओ काल-वण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाण-परिणया वि।

जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए नेयव्वं, जस्स जइ सरीराणि जाव जे पज्जत्तासव्व - ट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीत-गवेमाणिदेव -पंचिंदिय - वेउव्विय - तेया-कम्मा-सरीरपयोग-परिणया। ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-संठाणपरिणया वि॥

शरीरं वर्णादि च प्रतीत्य प्रयोग-परिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-औदारिक - तेजस्क - कर्मकशरीरप्रयोग-परिणताः ते वर्णतः कालवर्णपरिणताः अपि यावत् आयतसंस्थानपरिणताः अपि। ये पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक एवं चैव।

एवं यथानुपूर्व्या ज्ञातव्यम्, यस्य यति शरीराणि यावत् ये पर्याप्तकसर्वार्थ-सिद्धानुत्तरौपपातिक - कल्पातीतक-वैमानिकदेव-पञ्चेन्द्रिय-वैक्रिय-तेजस्क-कर्मकशरीर-प्रयोगपरिणताः। ते वर्णतः कालवर्ण-परिणताः अपि, यावत् आयत-संस्थानपरिणताः अपि।

शरीर और वर्ण आदि की अपेक्षा से प्रयोग परिणति-पद

३७. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यथाक्रम ज्ञातव्य है, जिसके जितने शरीर हैं वे वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रियवैक्रिय-तैजस और कर्मशरीरप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

इंदियं वण्णादिं च पडुच्च पयोग-परिणति-पदं

३८. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्का-इय - एगिंदियफासिंदियपयोग-परिणया ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया वि जाव आयतसंठाण-परिणया वि।

जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए जस्स जति इंदियाणि तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीतग-वेमाणिय देवपंचिंदिय-

इन्द्रियं वर्णादि च प्रतीत्य प्रयोग-परिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियप्रयोग परिणतास्ते वर्णतः कालवर्ण-परिणताः अपि यावत् आयतसंस्थानपरिणताः अपि।

ये पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक एवं चैव। एवं यथानुपूर्व्या यस्य यति इन्द्रियाणि तस्य तति भणितव्यानि यावत् ये पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिककल्पातीतक-वैमानिकदेव-पञ्चेन्द्रियश्रोत्रेन्द्रिय यावत्

इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

३८. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यथाक्रम जिसके जितनी इन्द्रियां हैं उसके उतनी वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोतिंदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत- संठाणपरिणया वि।।

स्पर्शेन्द्रियप्रयोग-परिणताः। ते वर्णतः कालवर्णपरिणताः अपि यावत् आयतसंस्थानपरिणताः अपि।

पातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रियप्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

सरीरं इंदियं वण्णादिं च पडुच्च पयोगपरिणति-पदं

३९. जे **अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिया - तेया-कम्मा-फासिं-दियपयोगपरिणया ते वण्णओ काल-वण्णपरिणया वि जाव आयत-संठाणपरिणया वि।**

जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए, जस्स जति सरीराणि इंदियाणि य तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पा-तीतगवेमाणियदेव-पंचिदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सोइंदिय जाव फासिं-दियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-संठाणपरिणया वि। एते नव दंडगा।।

शरीरम् इन्द्रियं वर्णादि च प्रतीत्य प्रयोगपरिणति-पदम्

ये अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिकैकेन्द्रिय-औदारिक - तैजस्क - कर्मक - स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते वर्णतः कालवर्ण-परिणताः अपि यावत् आयतसंस्थान-परिणताः अपि।

ये पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक एवं चैव। एवं यथानुपूर्व्या. यस्य यति शरीराणि इन्द्रियाणि च तस्य तति भणितव्यानि यावत् ये पर्याप्तकसर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिककल्पा-तीतक - वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियवैक्रिय-तेजस्ककर्मक-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणताः ते वर्णतः कालवर्ण-परिणताः अपि यावत् आयतसंस्थान-परिणताः अपि। एते नव दण्डकाः।[1]

शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग परिणति-पद

३९. जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस, कर्मशरीर स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से कालवर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी है।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस, कर्मशरीर स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता. इसी प्रकार यथाक्रम जिसके जितने शरीर और इन्द्रियां हैं वे वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रियवैक्रिय, तैजस, कर्मशरीर श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से कालवर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं। प्रयोगपरिणत के ये नौ दण्डक हैं।

भाष्य

१. सूत्र–२-३९

प्रस्तुत प्रकरण में प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य के नौ दण्डक बतलाए गए हैं-

१. जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का सामान्य वर्गीकरण।

२. पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

३. शरीर की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

४. इन्द्रिय की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

५. शरीर और इन्द्रिय की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

६. वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

७. शरीर और वर्ण आदि की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

८. इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।

९. शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा जीव के प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का वर्गीकरण।[2]

जैन दृष्टि के अनुसार सृष्टि के दो रूप बनते हैं–

१. जीव कृत सृष्टि

२. अजीव निष्पन्न सृष्टि

जीव अपने वीर्य से शरीर, इन्द्रिय और शरीर के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श एवं संस्थान का निर्माण करता है। यह जीव कृत सृष्टि है। उसके नानात्व का हेतु है शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि का वैचित्र्य।[3]

प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य के प्रकरण में शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि के आधार पर जीव कृत सृष्टि के नानात्व का निरूपण किया गया है।

शरीर और इन्द्रिय पौद्गलिक हैं। वर्ण, गंध, रस और स्पर्श–ये

---

१. (क) भ. वृ. ८ ३०।
(ख) भ. जो. २ · १३० · ४९-१३९।
(ग) विस्तार के लिए देखें उत्तर. ३६ ६८-२४७

२. (घ) पण्ण. १ १०-८८
२. उत्तर. ३६/८३, १०५, ११६, १२५, १३५, १५४, १६१, १७८, १८९, २०३, २४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल के गुण हैं। संस्थान पुद्गल का लक्षण है। जीव कृत सृष्टि का नानात्व पुद्गल द्रव्य के संयोग से होता है इसीलिए उसके नानात्व के निरूपण में शरीर, इन्द्रिय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान का निरूपण किया गया है। जीव जैसे शरीर और इन्द्रिय का निर्माण करता है, वैसे ही अपने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान का भी निर्माण करता है।

जीव का वीर्य दो प्रकार का होता है—आभोगिक वीर्य और अनाभोगिक वीर्य। इच्छा प्रेरित कार्य करने के लिए वह आभोगिक वीर्य का प्रयोग करता है अनाभोगिक वीर्य स्वतः चालित वीर्य है। शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि की रचना अनाभोगिक वीर्य से होती है। प्रायोगिक बंध अनाभोगिक वीर्य से होता है। सिद्धसेन गणि ने दो गाथाएं उद्धृत कर इसका समर्थन किया है।[1]

इस प्रकरण में शरीर के पांच, इन्द्रिय के पांच, वर्ण के पांच, गंध के दो, रस के पांच, स्पर्श के आठ और संस्थान के पांच प्रकार निरूपित है। इनके नानात्व के आधार पर जीवकृत सृष्टि का नानात्व परिलक्षित होता है।

मीसपरिणति-पदं

४०. मीसापरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिंदिय-मीसापरिणया॥

मिश्र-परिणति-पदम्

४०. मिश्रपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रियमिश्रपरिणताः यावत् पञ्चेन्द्रिय-मिश्रपरिणताः।

मिश्र परिणति-पद

४०. भन्ते! मिश्र परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! मिश्रपरिणत पुद्गल पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—एकेन्द्रियमिश्र परिणत यावत् पंचेन्द्रिय मिश्र परिणत।

४१. एगिंदियमीसापरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

एवं जहा पयोगपरिणएहिं नव दंडगा भणिया, एवं मीसापरिणएहिं वि नव दंडगा भाणियव्वा, तहेव सव्वं निरवसेसं, नवरं—अभिलावो 'मीसापरिणया' भाणियव्वं, सेसं तं चेव जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय जाव आयत-संठाणपरिणया वि॥

एकेन्द्रियमिश्रपरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

एवं यथा प्रयोगपरिणतेषु नव दण्डकाः भणिताः, एवं मिश्रपरिणतेषु अपि नव दण्डकाः भणितव्याः, तथैव सर्वं निरवशेषं, नवरं—अभिलापः 'मिश्रपरिणताः' भणितव्यः शेषं तच्चैव यावत् ये पर्याप्तकसर्वार्थसिद्धानुत्तरौपपातिक यावत् आयतसंस्थान-परिणताः अपि।

४१. भन्ते! एकेन्द्रिय मिश्र परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

जैसे—प्रयोगपरिणत के नौ दण्डक कहे गए हैं उसी प्रकार मिश्र परिणत के भी नौ दण्डक वक्तव्य हैं। शेष सब पूर्ववत्, केवल इतना विशेष है—प्रयोगपरिणत के स्थान पर मिश्र परिणत कहना चाहिए यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४०-४१

१. प्रयोग परिणत पुद्गल द्रव्य का पहला उदाहरण है एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत (सूत्र ८/२)। इसी प्रकार मिश्र परिणत पुद्गल द्रव्य का उदाहरण भी एकेन्द्रिय मिश्र परिणत द्रव्य है किन्तु दोनों का स्वरूप एक नहीं है। एकेन्द्रिय जीव ने औदारिक वर्गणा के जिन पुद्गलों से औदारिक शरीर की रचना की है, वे पुद्गल एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

एकेन्द्रिय जीव के मुक्त शरीर का स्वभाव से परिणामान्तर होता है। वह एकेन्द्रिय मिश्र परिणत है। इसमें जीव का पूर्व कृत प्रयोग तथा स्वभाव से रूपान्तर में परिणमन—दोनों विद्यमान हैं।

घड़ा मिट्टी से बना। मिट्टी पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीव का शरीर है। वह निर्जीव हो गया, एकेन्द्रिय जीव उससे च्युत हो गया। इस अवस्था में मिट्टी उसका मुक्त शरीर है। उसमें घट रूप में परिणत होने की क्षमता है। मिट्टी का परिणामान्तर हुआ और घट बन गया इसलिए वह एकेन्द्रिय मिश्र परिणत द्रव्य है।

हमारा दृश्य जगत पौद्गलिक जगत है। जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह या तो जीवच्छरीर है या जीवमुक्त शरीर है। जीवच्छरीर प्रयोग परिणत द्रव्य का उदाहरण है। उसके मौलिक रूप पांच हैं—

१. एकेन्द्रिय जीवच्छरीर
२. द्वीन्द्रिय जीवच्छरीर
३. त्रीन्द्रिय जीवच्छरीर
४. चतुरिन्द्रिय जीवच्छरीर
५. पंचेन्द्रिय जीवच्छरीर।

इनके अवान्तर भेद असंख्य बन जाते हैं। जीवमुक्त शरीर के भी मौलिक रूप पांच ही हैं। उनके परिणामान्तर से होने वाले भेद असंख्य बन जाते हैं।

प्रयोग परिणाम, मिश्र परिणाम और स्वभाव परिणाम—ये सृष्टि रचना के आधारभूत तत्त्व हैं। प्रथम दो परिणाम जीवकृत सृष्टि हैं। स्वभाव परिणाम अजीव कृत सृष्टि है। वर्ण आदि का परिणमन पुद्गल के स्वभाव से ही होता है। इसमें जीव का कोई योग नहीं है।

---

१. त. सू. भा. वृ. ८/३ वृत्ति—

अपि चायं प्रायोगिक बधः, स च भवति कर्तृ सामर्थ्यात्।
इष्टश्च स प्रयोगोऽनाभोगिकवीर्यतस्तस्य॥
ननु वीर्येणानाभोगिकेन, परिपाच्य रसमुपाहरति।
परिणमयति धातुतया, स च तमनाभोगवीर्येण॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीससापरिणति-पदं

४२. वीससापरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–वण्णपरिणया, गंधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, संठाणपरिणया। जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–कालवण्णपरिणया जाव सुक्किल-वण्णपरिणया। जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–सुब्भि-गंधपरिणया, दुब्भिगंधपरिणया।

जे रसपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–तित्तरसपरिणया जाव महुररसपरिणया। जे फासपरिणया ते अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा– कक्खडफासपरिणया जाव लुक्ख-फासपरिणया।

जे संठाणपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–परिमंडलसंठाण-परिणया जाव आयतसंठाण-परिणया। जे वण्णओ कालवण्ण-परिणया ते गंधओ सुब्भिगंध-परिणया वि, दुब्भिगंधपरिणया वि। एवं जहा पण्णवणाए तहेव निरवसेसं जाव जे संठाणओ आयतसंठाण-परिणया ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया वि जाव लुक्खफास-परिणया वि॥

विस्रसापरिणति-पदम्

विस्रसापरिणताः भदन्त! पुद्गलाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–वर्णपरिणताः, गन्धपरिणताः, रसपरिणताः, स्पर्शपरिणताः, संस्थानपरिणताः। ये वर्णपरिणताः ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कालवर्णपरिणताः यावत् शुक्लवर्णपरिणताः।

ये गन्धपरिणताः ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सुरभिगन्धपरिणताः, दुरभिगन्धपरिणताः।

ये रसपरिणताः ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तिक्तरसपरिणताः यावत् मधुररसपरिणताः। ये स्पर्शपरिणताः ते अष्टविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कर्कशस्पर्शपरिणताः यावत् रूक्षस्पर्शपरिणताः।

ये संस्थानपरिणताः ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–परिमण्डलसंस्थानपरिणताः यावत् आयतसंस्थानपरिणताः। ये वर्णतः कालवर्ण-परिणताः ते गन्धतः सुरभिगन्धपरिणताः अपि, दुरभिगन्धपरिणताः अपि। एवं यथा प्रज्ञापनायां तथैव निरविशेषं यावत् ये संस्थानतः आयतसंस्थानपरिणताः ते वर्णतः कालवर्णपरिणताः अपि यावत् रूक्षस्पर्शपरिणताः अपि।

विस्रसा परिणति-पद

४२. 'भन्ते! विस्रसा परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! विस्रसा परिणत पुद्गल पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–वर्णपरिणत, गंधपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत, संस्थानपरिणत। जो वर्ण परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कालवर्ण परिणत यावत शुक्लवर्ण परिणत। जो गंधपरिणत हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे सुगंधपरिणत और दुर्गन्धपरिणत।

जो रस परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–तिक्तरसपरिणत यावत् मधुररसपरिणत। जो स्पर्श परिणत हैं वे आठ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कठोर स्पर्शपरिणत यावत् रूक्षस्पर्शपरिणत।

जो संस्थान परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–परिमण्डल संस्थान परिणत यावत् आयत संस्थान परिणत। जो वर्ण से कालवर्णपरिणत हैं वे गन्ध से सुगंध परिणत भी हैं, दुर्गन्धपरिणत भी हैं।

जैसे प्रज्ञापना में है वैसे ही अविकल रूप में वक्तव्य हैं यावत् जो संस्थान से आयत संस्थान परिणत हैं वे वर्ण से कालवर्ण परिणत भी हैं यावत रूक्षस्पर्श परिणत भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र-४२

प्रस्तुत सूत्र में पुद्गल द्रव्य के स्वाभाविक परिणमन का निरूपण

छत्तीसवें सूत्र में वर्ण आदि का निरूपण किया गया है। वह जीव है।[1] कृत प्रायोगिक परिणमन का निरूपण है।

एगं दव्वं पडुच्च पोग्गलपरिणति-पदं

४३. एगे भंते! दव्वे किं पयोग-परिणए? मीसापरिणए? वीससा-परिणए?

गोयमा! पयोगपरिणए वा, मीसापरिणए वा, वीससापरिणए वा॥

एकं द्रव्यं प्रतीत्य पुद्गलपरिणति-पदम्

एकं भदन्त! द्रव्यं किंप्रयोगपरिणतम्? मिश्रपरिणतम्? विस्रसापरिणतम्?

गौतम! प्रयोगपरिणतं वा, मिश्रपरिणतं वा, विस्रसापरिणतं वा।

एक द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल परिणत-पद

४३. 'भन्ते! एक द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत है? मिश्र परिणत है? अथवा विस्रसा परिणत है?

गौतम! वह प्रयोगपरिणत है अथवा मिश्रपरिणत है अथवा विस्रसा परिणत है।

१. द्रष्टव्य जैन दर्शन : मनन और मीमांसा पृ. ३३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोगपरिणति-पदं

४४. जइ पयोगपरिणए किं मणपयोगपरिणए? वइपयोगपरिणए? कायपयोग परिणए?
गोयमा! मणपयोगपरिणए वा, वइपयोगपरिणए वा, कायपयोगपरिणए वा॥

प्रयोगपरिणति-पदम्

यदि प्रयोगपरिणतं किं मनःप्रयोगपरिणतम्? वाक्प्रयोगपरिणतम्? कायप्रयोगपरिणतम्?
गौतम! मनःप्रयोगपरिणतं वा, वाक्प्रयोगपरिणतं वा, कायप्रयोगपरिणतं वा।

प्रयोगपरिणति-पद

४४. यदि प्रयोगपरिणत है तो क्या मनप्रयोगपरिणत है? वचनप्रयोगपरिणत है? अथवा कायप्रयोगपरिणत है?
गौतम! वह मनप्रयोगपरिणत है अथवा वचनप्रयोगपरिणत है अथवा कायप्रयोग परिणत है।

मणपयोगपरिणति-पदं

४५. जइ मणपयोगपरिणए किं सच्चमणपयोगपरिणए? मोसमणपयोगपरिणए? सच्चामोसमणपयोगपरिणए? असच्चामोसमणपयोगपरिणए?
गोयमा! सच्चमणपयोगपरिणए वा, मोसमणपयोगपरिणए वा, सच्चामोसमणपयोगपरिणए वा, असच्चामोसमणपयोगपरिणए वा॥

मनःप्रयोगपरिणति-पदम्

यदि मनःप्रयोगपरिणतं किं सत्यमनःप्रयोगपरिणतम्? मृषामनःप्रयोगपरिणतम्? सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणतम्? असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणतम्?
गौतम! सत्यमनःप्रयोगपरिणतं वा, मृषामनः प्रयोगपरिणतं वा, सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणतं वा, असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणतं वा।

मनप्रयोग परिणति-पद

४५. यदि मनप्रयोगपरिणत है तो क्या सत्य मनप्रयोगपरिणत है? मृषामनप्रयोगपरिणत है? सत्यामृषामनप्रयोगपरिणत है? अथवा असत्यामृषामनप्रयोगपरिणत है?
गौतम! वह सत्यमनप्रयोगपरिणत है अथवा मृषामनप्रयोगपरिणत है अथवा सत्यामृषामनप्रयोगपरिणत है अथवा असत्यामृषामनप्रयोगपरिणत है।

४६. जइ सच्चमणपयोगपरिणए किं आरंभसच्चमणपयोगपरिणए? अणारंभसच्चमणपयोगपरिणए? सारंभसच्चमणपयोगपरिणए? असारंभसच्चमणपयोगपरिणए? समारंभसच्चमणपयोगपरिणए? असमारंभसच्चमणपयोगपरिणए?
गोयमा! आरंभसच्चमणपयोगपरिणए वा जाव असमारंभसच्चमणपयोग-परिणए वा॥

यदि सत्यमनःप्रयोगपरिणतं किं आरम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतम्? अनारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतम्? सारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतम्? असारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतम्? समारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणम? असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतम्?
गौतम! आरम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतं वा यावत् असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतं वा।

४६. यदि सत्यमनप्रयोगपरिणत है तो क्या आरम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है? अनारंभ सत्यमनप्रयोगपरिणत है? सारम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है? असारम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है? समारम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है? अथवा असमारम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है?
गौतम! आरम्भ सत्यमनप्रयोगपरिणत है अथवा यावत् असमारम्भसत्यमनप्रयोग-परिणत है।

४७. जइ मोसमणपयोगपरिणए किं आरंभमोसमणपयोगपरिणए?
एवं जहा सच्चेणं तहा मोसेण वि। एवं सच्चामोसमणपयोगेण वि। एवं असच्चामोसमणपयोगेण वि॥

यदि मृषामनःप्रयोगपरिणतं किं आरम्भमृषामनःप्रयोगपरिणतम्?
एवं यथा सत्येन तथा मृषा अपि। एवं सत्यामृषामनःप्रयोगेण अपि। एवं असत्यामृषामनःप्रयोगेण अपि।

४७. यदि मृषामनप्रयोगपरिणत है तो क्या आरम्भमृषा मनप्रयोगपरिणत है?
इस प्रकार जैसे सत्यमनप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता है वैसे ही मृषामनप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार सत्यमृषामनप्रयोगपरिणत की और इसी प्रकार असत्यमृषामनप्रयोगपरिणत की वक्तव्यता।

वइपयोगपरिणति-पदं

४८. जइ वइपयोगपरिणए किं सच्चवइपयोगपरिणए? मोसवइपयोगपरिणए?
एवं जहा मणपयोगपरिणए तहा

वाक्प्रयोगपरिणति-पदम्

यदि वाक्प्रयोगपरिणतः किं सत्यवाक्प्रयोगपरिणतः? मृषावाक्प्रयोगपरिणतः?
एवं यथा मनःप्रयोगपरिणतः तथा वाक्-

वचनप्रयोग परिणति-पद

४८. यदि वचनप्रयोग परिणत है तो क्या सत्यवचनप्रयोगपरिणत है? मृषा वचनप्रयोगपरिणत है?
इस प्रकार जैसे मनप्रयोगपरिणत की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वइपयोग-परिणए वि जाव असमारंभवइपयोगपरिणए वा॥

प्रयोगपरिणतोऽपि यावत् असमारम्भवाक्-प्रयोगपरिणतः वा।

वक्तव्यता वैसे वचनप्रयोगपरिणत की भी वक्तव्यता यावत् अथवा असमारम्भ सत्य वचनप्रयोगपरिणत है।

कायपयोगपरिणति-पदं

४९. जइकायपयोगपरिणए किं ओरालिय-सरीरकायपयोग-परिणए? ओरालियमीसासरीर-कायपयोग-परिणए? वेउव्विय-सरीरकायपयोग-परिणए? वेउव्विय-मीसासरीरकाय-पयोगपरिणए? आहारगसरीरकाय-पयोगपरिणए? आहारगमीसा-सरीरकायपयोग-परिणए? कम्मा-सरीरकायपयोग-परिणए?

गोयमा! ओरालियसरीरकाय-पयोगपरिणए वा जाव कम्मासरीर-कायपयोगपरिणए वा॥

कायप्रयोगपरिणति-पदम्

यदिकायप्रयोगपरिणतः किम् औदा-रिकशरीरकायप्रयोगपरिणतः? औदारिक-मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणतः? वैक्रिय-शरीरकायप्रयोगपरिणतः? वैक्रियमिश्र-शरीरकायप्रयोगपरिणतः? आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणतः? आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणतः? कर्मकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः?

गौतम! औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणतः वा यावत् कर्मकशरीरकायप्रयोगपरिणतः वा।

कायप्रयोग परिणति-पद

४९. यदि कायप्रयोगपरिणत है तो क्या औदारिकशरीर कायप्रयोगपरिणत है? औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है? वैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणत है? वैक्रिय-मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है? आहारक शरीरकायप्रयोगपरिणत है? आहारक-मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है? कर्म-शरीरकायप्रयोगपरिणत है?

गौतम! औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है अथवा यावत् कर्मशरीर कायप्रयोगपरिणत है।

५०. जइ ओरालियसरीरकायपयोग-परिणए किं एगिंदियओरालिय-सरीरकायपयोगपरिणए? जाव पंचिंदियओरालियसरीरकायपयोग-परिणए?

गोयमा! एगिंदियओरालियसरीर-कायपयोगपरिणए वा जाव पंचिंदियओरालिय - सरीरकाय-पयोगपरिणए वा॥

यदि औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणतः किम् एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणतः? यावत् पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणतः?

गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः वा यावत् पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणतः वा।

५०. यदि औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है?

गौतम! एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है।

५१. जइ एगिंदियओरालियसरीर-काय-पयोगपरिणए किं पुढ-विक्काइय-एगिंदियओरालियसरीर-कायपयोग-परिणए? जाव वणस्सइ-काइयएगिंदिय - ओरालियसरीर-कायपयोगपरिणए?

गोयमा! पुढविक्काइयएगिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा॥

यदि एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणतः किं पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणतः? यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणतः?

गौतम! पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणतः वा यावत् वनस्पतिकायिक - एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोगपरिणतः वा।

५१. यदि एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है? यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है?
गौतम! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोगपरिणत है अथवा यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोगपरिणत है।

५२. जइ पुढविक्काइयएगिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए? बादरपुढ-विक्काइय जाव परिणए?

यदि पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणतः किं सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक--यावत् परिणतः? बादर-पृथ्वीकायिक-यावत्--परिणतः?

५२. यदि पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत है? बादर पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सुहुमपुढविकाइयएगिंदिय जाव परिणए वा, बादरपुढ-विक्काइय जाव परिणए वा॥

गौतम! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय यावत् परिणतः वा, बादरपृथ्वीकायिक यावत् परिणतः वा।

कायप्रयोग-परिणत है?
गौतम! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है अथवा बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणत है।

५३. जइ सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए किं पज्जत्तासुहुमपुढ-विक्काइय जाव परिणए? अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए?

यदि सूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् परिणतः किं पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत्-परिणतः? अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् परिणतः?

५३. यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है? अथवा अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है?

गोयमा! पज्जत्तासुहुमपुढविक्का-इय जाव परिणए वा, अपज्जत्ता-सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा। एवं बादरा वि। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं चउक्कओ भेदो। बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दुयओ भेदो– पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

गौतम! पर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् परिणतः वा, अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् परिणतः वा। एवं बादरा अपि। एवं यावत् वनस्पतिकायिकानां चतुष्ककः भेदः। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां द्विककः भेदः पर्याप्तकाश्च अपर्याप्तकाश्च।

गौतम! वह पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है, अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है। इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक के चार-चार भेदों की वक्तव्यता। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के दो-दो भेद पर्याप्तक और अपर्याप्तक की वक्तव्यता।

५४. जइ पंचिंदियओरालियसरीर-कायपयोगपरिणए किं तिरिक्ख-जोणियपंचिंदियओरालियसरीर-काय-पयोगपरिणए? मणुस्स-पंचिंदिय जाव परिणए?

यदि पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः किं तिर्यक्योनिक-पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणतः? मनुष्यपञ्चेन्द्रिय यावत् परिणतः?

५४. यदि पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है तो क्या तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है? अथवा मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है?

गोयमा! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा, मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए वा॥

गौतम! तिर्यक्योनिक यावत् परिणतः वा, मनुष्यपञ्चेन्द्रिय यावत् परिणतः वा।

गौतम! तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है अथवा मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है।

५५. जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलचरतिरिक्ख-जोणिय जाव परिणए? थलचर-खहचर जाव परिणए?

यदि तिर्यक्योनिक यावत् परिणतः किं जलचरतिर्यक्योनिक यावत् परिणतः? स्थल-चर-खेचर यावत् परिणतः?

५५. यदि तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या जलचर तिर्यक्योनिक औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणत है? अथवा स्थल-चरखेचर तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है?

एवं चउक्कओ भेदो जाव खहचराणं॥

एवं चतुष्ककः भेदः यावत् खेचराणाम् वा।

इस प्रकार तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेचर के चार-चार भेदों की वक्तव्यता।

५६. जइ मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं संमुच्छिममणुस्स-पंचिंदिय जाव परिणए? गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए?

यदि मनुष्यपञ्चेन्द्रिय यावत् परिणतः किं सम्मूर्छिममनुष्यपञ्चेन्द्रिय यावत् परिणतः? गर्भावक्रान्तिकमनुष्य यावत् परिणतः?

५६. यदि मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर-कायप्रयोगपरिणत है तो क्या संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणत है? अथवा गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है?

गोयमा! दोसु वि॥

गौतम! द्वयोरपि।

गौतम! दोनों ही मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत हैं।

५७. जइ गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्तागब्भवक्कंतिय जाव परिणए? अपज्जत्तागब्भ-वक्कंतिय जाव परिणए?

यदि गर्भावक्रान्तिकमनुष्य यावत् परिणतः किं पर्याप्तकगर्भावक्रान्तिक यावत् परिणतः? अपर्याप्तकगर्भावक्रान्तिक यावत् परिणतः?

५७. यदि गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या पर्याप्त गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है? अथवा अपर्याप्त गर्भाव-क्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीरकायप्रयोगपरिणत है?

गोयमा! पज्जत्तागब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा, अपज्जत्ता-गब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा॥

गौतम! पर्याप्तकगर्भावक्रान्तिक यावत् परिणतः वा, अपर्याप्तकगर्भावक्रान्तिक यावत् परिणतः वा।

गौतम! पर्याप्त गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत है अथवा अपर्याप्त गर्भावक्रान्तिक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है।

५८. जइ ओरालियमीसासरीरकाय-पयोगपरिणए किं एगिंदियओरालिय-मीसासरीर-कायपयोगपरिणए? बेइंदिय जाव परिणए? जाव पंचिंदियओरालिय जाव परिणए?

यदि औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणतः किम् एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः? द्वीन्द्रिय यावत् परिणतः? यावत् पञ्चेन्द्रिय-औदारिक यावत् परिणतः?

५८. यदि औदारिक मिश्रशरीरकायप्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय औदारिक मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है? द्वीन्द्रिय औदारिक मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक मिश्र-शरीरकायप्रयोगपरिणत है?

गोयमा! एगिंदियओरालियमीसा-सरीरकायपयोगपरिणए एवं जहा ओरालिय - सरीरकायपयोग-परिणएणं आलावगो भणिओ तहा ओरालिय-मीसासरीरकायपयोगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो, नवरं—बादरवाउक्काइय गब्भवक्कंतिय-पंचिंदियतिरिक्खजोणियगब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं एएसिणं पज्ज-त्तापज्जत्तगाणं, सेसाणं अपज्जत्त-गाणं॥

गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-काय-प्रयोगपरिणतः एवं यथा औदारिक-शरीरकाय-प्रयोगपरिणतेन आलापकः भणितः तथा औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगपरिणतेनापि आलापकः भणितव्यः नवरं—बादरवायु-कायिक-गर्भावक्रान्ति-कपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-योनिक-गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्याणाम्एतेषां पर्याप्ता-पर्याप्तकानां, शेषाणाम् अपर्याप्तकानाम्।

गौतम! एकेन्द्रिय औदारिक मिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत है। इस प्रकार जैसे औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत का आलापक कहा गया है वैसे ही औदारिक मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत का आलापक वक्तव्य है। केवल इतना विशेष है—बादर वायुकायिक, गर्भावक्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक और गर्भाव-क्रान्तिक मनुष्य—ये पर्याप्तक, अपर्याप्तक दोनों तथा शेष सभी केवल अपर्याप्तक होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. जइ वेउव्वियसरीरकायपयोग-परिणए किं एगिंदियवेउव्वियसरीर-कायपयोगपरिणए? पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर जाव परिणए?
गोयमा! एगिंदिय जाव परिणए वा, पंचिंदिय जाव परिणए वा।

यदि वैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणतः किम् एकेन्द्रियवैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणतः? पञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीर यावत् परिणतः?
गौतम! एकेन्द्रिय यावत् परिणतः वा पञ्चेन्द्रिय यावत् परिणतः वा।

५९. यदि वैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या एकेन्द्रियवैक्रियशरीरकायप्रयोग-परिणत है? अथवा पंचेन्द्रियवैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत है?
गौतम! एकेन्द्रियवैक्रियशरीरकायप्रयोग-परिणत है अथवा पंचेन्द्रियवैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत है।

६०. जइ एगिंदिय जाव परिणए किं वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए? अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए?
गोयमा! वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए, नो अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए। एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरं भणियं तहा इह वि भाणियव्वं जाव पज्जत्ता - सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो - ववाइय-कप्पातीतावेमाणियदेव-पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-काय-पयोगपरिणए वा, अपज्जत्ता-सव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरो-ववाइय जाव परिणए वा॥

यदि एकेन्द्रिय यावत् परिणतः किं वायुकायिकैकेन्द्रिय यावत् परिणतः? अवायुकायिकैकेन्द्रिय यावत् परिणतः?
गौतम! वायुकायिकैकेन्द्रिय यावत् परिणतः, नो अवायुकायिकैकेन्द्रिय यावत् परिणतः। एवम् एतेन अभिलापेन यथा अवगाहना- संस्थाने वैक्रियशरीरं भणितं तथा इहापि भणितव्यं यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध - अनुत्तरौपपातिककल्पातीतक - वैमानिकदेव - पञ्चेन्द्रियवैक्रिय-शरीरकायप्रयोगपरिणतः वा, अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध - अनुत्तरौपातिक यावत् परिणतः वा।

६०. यदि एकेन्द्रियवैक्रियशरीरकायप्रयोग-परिणत है तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणत है? अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रियवैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत है?
गौतम! वायुकायिक एकेन्द्रियवैक्रिय-शरीरकायप्रयोगपरिणत है, अवायुकायिक एकेन्द्रियवैक्रियशरीरकाय - प्रयोगपरिणत नहीं है। इस प्रकार इस वायुकाय के अभिलाप के अनुसार जैसा अवगाहना संस्थान नामक प्रज्ञापना के २१वें पद में वैक्रियशरीर की वक्तव्यता है वैसा यहां भी वक्तव्य है।[1] यावत् पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतग वैमानिक देव पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणत है अथवा अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतग वैमानिक देवपंचेन्द्रियवैक्रिय - शरीरकायप्रयोग - परिणत है।

६१. जइ वेउव्वियमीसासरीरकाय-पयोगपरिणए किं एगिंदियमीसा-सरीरकायपयोगपरिणए? जाव पंचिं-दियमीसासरीर-कायपयोग-परिणए।
एवं जहा वेउव्वियं तहा वेउव्विय-मीसगं पि, नवरं—देव-नेरइयाणं अपज्जत्तगाणं, सेसाणं अपज्जत्त-गाणं जाव नो पज्जत्ता-सव्वट्ठ सिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय - देवपंचिंदिय-वेउव्वियमीसासरीरकाय-पयोग-परिणए॥

यदि वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणतः किम् एकेन्द्रियमिश्रकशरीरकायप्रयोगपरिणतः? यावत् पञ्चेन्द्रियमिश्रकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः?
एवं यथा वैक्रियं तथा वैक्रियमिश्रकमपि, नवरं—देव-नैरयिकाणाम् अपर्याप्तकानाम्, शेषाणां पर्याप्तकानां यावत् नो पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् परिणतः, अपर्याप्तकसर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव - पञ्चेन्द्रियवैक्रिय-मिश्रकशरीर-कायप्रयोग-परिणतः।

६१. यदि वैक्रिय मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या एकेन्द्रिय मिश्रशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है? अथवा यावत् पंचेन्द्रिय मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है?
इस प्रकार जैसे वैक्रिय की वक्तव्यता है वैसे ही वैक्रिय मिश्र की भी वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है—देव नैरयिकों के अपर्याप्तक और शेष के पर्याप्तक यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रियवैक्रियमिश्रशरीरकाय - प्रयोग-परिणत नहीं हैं, अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रियवैक्रिय मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है।

१. पण्ण. २१ : ५०-५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. जइ आहारगसरीरकायपयोग-परिणए किं मणुस्साहारगसरीर-कायपयोगपरिणए? अमणुस्सा-हारग जाव परिणए।
एवं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढि पत्तपमत्त-संजयसम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय जाव परिणए, नो अणिड्ढिपत्तपमत्त-संजयसम्मदिट्ठि-पज्जत्तसंखेज्जवासाउय जाव परिणए।।

यदि आहारकशरीरकायप्रयोगपरिणतः किं मनुष्याहारकशरीरकायप्रयोगपरिणतः? अमनुष्याहारक यावत् परिणतः?

एवं यथा अवगाहनासंस्थाने यावत् ऋद्धिप्राप्तप्रमत्त-संयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क यावत् परिणतः नो अनृद्धिप्राप्तप्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्क यावत् परिणतः।

६२. यदि आहारकशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या मनुष्य आहारकशरीरकाय-प्रयोगपरिणत है? अथवा अमनुष्य आहारकशरीरकायप्रयोगपरिणत है?
इस प्रकार जैसी अवगाहनासंस्थान नामक प्रज्ञापना के २१वें पद में आहारकशरीर की वक्तव्यता है वैसी यहां भी वक्तव्य है यावत् ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्येयवर्ष आयुष्य वाला आहारकशरीरकायप्रयोगपरिणत है, ऋद्धि-अप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्ष आयुष्य वाला आहारकशरीरकायप्रयोगपरिणत नहीं है।[1]

६३. जइ आहारगमीसासरीरकाय-पयोगपरिणए किं मणुस्साहारग-मीसासरीरकायपयोगपरिणए?
एवं जहा आहारगं तहेव मीसगं पि निरवसेसं भाणियव्वं।।

यदि आहारकमिश्रकशरीरकायप्रयोग-परिणतः किं मनुष्याहारकमिश्रकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः?
एवं यथा आहारकं तथैव मिश्रकमपि निरवशेषं भणितव्यम्।

६३. यदि आहारक मिश्रशरीरकायप्रयोग-परिणत है तो क्या मनुष्य आहारक-मिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणत है?
इस प्रकार जैसी आहारकशरीर की वक्तव्यता है वैसे आहारकमिश्रशरीर के विषय में भी अविकल रूप से वक्तव्य है।

६४. जइ कम्मासरीरकायपयोग-परिणए किं एगिंदियकम्मासरीर-कायपयोग-परिणए? जाव पंचिंदिय-कम्मा-सरीरकायपयोग-परिणए?
गोयमा! एगिंदियकम्मासरीरकाय-पयोगपरिणए, एवं जहा ओगाहण-संठाणे कम्मगस्स भेदो तहेव इह वि जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो-ववाइय कप्पातीतगवेमाणियदेव-पंचिंदिय-कम्मासरीरकायपयोग-परिणए वा, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय जाव परिणए वा।।

यदि कर्मकशरीरकायप्रयोगपरिणतः किम एकेन्द्रियकर्मकशरीरकायप्रयोगपरिणतः? यावत् पञ्चेन्द्रियकर्मकशरीरकायप्रयोग-परिणतः?
गौतम! एकेन्द्रियकर्मकशरीरकायप्रयोग-परिणतः, एवं यथा अवगाहनासंस्थाने कर्मकस्य भेदस्तथैव इहापि यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिककल्पातीतक-वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियकर्मकशरीरकाय-प्रयोगपरिणतः वा, अपर्याप्तकसर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् परिणतः वा।

६४. यदि कर्मशरीरकायप्रयोगपरिणत है तो क्या एकेन्द्रिय कर्मशरीरकायप्रयोग-परिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय कर्मशरीर-कायप्रयोगपरिणत है?
गौतम! एकेन्द्रिय कर्मशरीरकायप्रयोग-परिणत है। इस प्रकार जैसी अवगाहना-संस्थान नामक प्रज्ञापना के २१वें पद में कर्म के भेद की वक्तव्यता है वैसे यहां भी वक्तव्य है यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रिय कर्मशरीरकायप्रयोगपरिणत है, यावत् अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौप-पातिक कल्पातीतगवैमानिक देव पंचेन्द्रिय कर्मशरीरकायप्रयोगपरिणत है।

मीसपरिणति-पदं

६५. जइ मीसापरिणए किं मणमीसा-परिणए? वइमीसापरिणए? काय-मीसापरिणए?
गोयमा! मणमीसापरिणए वा, वइमीसापरिणए वा, कायमीसा-परिणए वा।।

मिश्रपरिणति-पदम्

यदि मिश्रकपरिणतः किं मनोमिश्रकपरिणतः? वाङ्मिश्रकपरिणतः? कायमिश्रकपरिणतः?
गौतम! मनोमिश्रकपरिणतः वा, वाङ्मिश्रक-परिणतः वा, कायमिश्रकपरिणतः वा।

मिश्रपरिणति-पद

६५. यदि मिश्रपरिणत है तो क्या मन मिश्र परिणत है? वचन मिश्रपरिणत है? अथवा काय मिश्रपरिणत है?
गौतम! वह मन मिश्रपरिणत है अथवा वचन मिश्रपरिणत है, अथवा काय मिश्रपरिणत है।

१. (क) पण्ण. २१/५०-३५
(ख) सम. प. १६४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. जइ मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए? मोसमणमीसापरिणए?
जहा पयोगपरिणए तहा मीसा-परिणए वि भाणियव्वं निरवसेसं जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो - ववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मा-सरीरगमीसापरिणए वा, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरो-ववाइय जाव कम्मासरीरमीसा-परिणए वा॥

यदि मनोमिश्रकपरिणतः किं सत्यमनोमिश्रकपरिणतः? मृषामनोमिश्रकपरिणतः?
यथा प्रयोगपरिणतः तथा मिश्रकपरिणतः अपि भणितव्यम् निरवशेषं यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् देव-पञ्चेन्द्रियकर्मकशरीरकमिश्रकपरिणतः वा, अपर्याप्तकसर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत कर्मकशरीरमिश्रकपरिणतः वा।

६६. यदि मन मिश्रपरिणत है तो क्या सत्यमन मिश्र परिणत है? मृषा-मन मिश्रपरिणत है?
जैसे प्रयोगपरिणत की वक्तव्यता है वैसे ही मिश्रपरिणत भी अविकल रूप से वक्तव्य है यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक यावत् देव पंचेन्द्रिय कर्मशरीर मिश्रपरिणत है अथवा अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक यावत कर्मशरीर मिश्रपरिणत है।

वीससापरिणति-पदं

६७. जइ वीससापरिणए किं वण्णपरिणए? गंधपरिणए? रस-परिणए? फासपरिणए? संठाण-परिणए?
गोयमा! वण्णपरिणए वा, गंध-परिणए वा रसपरिणए वा, फास-परिणए वा, संठाणपरिणए वा॥

विस्रसापरिणति-पदम्

यदि विस्रसापरिणतः किं वर्णपरिणतः? गन्धपरिणतः? रसपरिणतः? स्पर्शपरिणतः? संस्थानपरिणतः?
गौतम! वर्णपरिणतः वा, गन्धपरिणतः वा, रसपरिणतः वा, स्पर्शपरिणतः वा, संस्थान-परिणतः वा।

विस्रसा परिणति-पद

६७. यदि विस्रसा परिणत है तो क्या वर्ण परिणत है? गंधपरिणत है? रस परिणत है? स्पर्श परिणत है? संस्थान परिणत है?
गौतम! वह वर्णपरिणत भी है, गंधपरिणत भी है, रसपरिणत भी है, स्पर्शपरिणत भी है, संस्थानपरिणत भी है।

६८. जइ वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए जाव सुक्किलवण्णपरिणए?
गोयमा! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्णपरिणए वा॥

यदि वर्णपरिणतः किं कालवर्णपरिणतः यावत् शुक्लवर्णपरिणतः?
गौतम! कालवर्णपरिणतः वा यावत् शुक्ल-वर्णपरिणतः वा।

६८. यदि वर्णपरिणत है तो क्या कालवर्ण परिणत है यावत् शुक्लवर्ण परिणत है?
गौतम? वह कालवर्णपरिणत भी है यावत् शुक्लवर्णपरिणत भी है।

६९. जइ गंधपरिणए किं सुब्भिगंधपरिणए? दुब्भिगंधपरिणए?
गोयमा! सुब्भिगंधपरिणए वा, दुब्भिगंधपरिणए वा॥

यदि गन्धपरिणतः किं सुरभिगन्ध-परिणतः? दुरभिगन्धपरिणतः?
गौतम! सुरभिगन्धपरिणतः वा, दुरभि-गन्धपरिणतः वा।

६९. यदि गन्ध परिणत है तो क्या सुगन्ध-परिणत है? दुर्गन्धपरिणत है?
गौतम! वह सुगन्धपरिणत भी है अथवा दुर्गन्धपरिणत भी है?

७०. जइ रसपरिणए किं तित्तरस-परिणए? पुच्छा।
गोयमा! तित्तरसपरिणए वा जाव महुररसपरिणए वा॥

यदि रसपरिणतः किं तिक्तरसपरिणतः? पृच्छा।
गौतम! तिक्तरसपरिणतः वा यावत् मधुर-रसपरिणतः वा।

७०. यदि रसपरिणत है तो क्या तिक्तरस-परिणत है? पृच्छा।
गौतम! वह तिक्तरसपरिणत भी है यावत् मधुररसपरिणत भी है।

७१. जइ फासपरिणए किं कक्खड-फासपरिणए जाव लुक्खफास-परिणए?
गोयमा! कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए॥

यदि स्पर्शपरिणतः किं कर्कशस्पर्श-परिणतः यावत् रूक्षस्पर्शपरिणतः?
गौतम! कर्कशस्पर्शपरिणतः यावत् रूक्ष-स्पर्शपरिणतः।

७१. यदि स्पर्शपरिणत है तो क्या कठोर-स्पर्शपरिणत है यावत् रूक्षस्पर्शपरिणत है?
गौतम! कठोर स्पर्शपरिणत भी है यावत् रूक्षस्पर्शपरिणत भी है।

७२. जइ संठाणपरिणए–पुच्छा।
गोयमा! परिमंडलसंठाणपरिणए वा जाव आयतसंठाणपरिणए वा॥

यदि संस्थानपरिणतः–पृच्छा।
गौतम! परिमंडलसंस्थानपरिणतः वा यावत् आयतसंस्थानपरिणतः वा।

७२. यदि संस्थान परिणत है–पृच्छा।
गौतम! परिमण्डल संस्थान परिणत भी है अथवा यावत् आयत संस्थान परिणत भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोण्णि दव्वाइं पडुच्च पोग्गल-परिणति-पदं

७३. दो भंते! दव्वा किं पयोग-परिणया? मीसापरिणया? वीससा-परिणया?

गोयमा! १. पयोगपरिणया वा २. मीसापरिणया वा ३. वीससा-परिणया वा ४. अहवेगे पयोग-परिणए, एगे मीसापरिणए ५. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे वीससापरिणए ६. अहवेगे मीसा-परिणए, एगे वीससापरिणए॥

द्वे द्रव्ये प्रतीत्य पुद्गल-परिणति-पदम्

द्वे भदन्त! द्रव्ये किं प्रयोगपरिणते? मिश्रकपरिणते? विस्रसापरिणते?

गौतम! १. प्रयोगपरिणते वा २. मिश्रक-परिणते वा ३. विस्रसापरिणते वा ४. अथवा एकं प्रयोगपरिणतम्, एकं मिश्रकपरिणतम् ५. अथवा एकं प्रयोगपरिणतम्, एकं विस्रसा-परिणतम् ६. अथवा एकं मिश्रक-परिणतम्, एकं विस्रसापरिणतम्।

दो द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति-पद

७३. भन्ते! दो द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत हैं? क्या मिश्र परिणत हैं? क्या विस्रसा परिणत हैं?

गौतम! १. प्रयोग परिणत भी हैं २. मिश्र परिणत भी हैं ३. विस्रसा परिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोग परिणत है, एक मिश्र परिणत है, ५. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, एक विस्रसा परिणत है ६. अथवा एक मिश्र परिणत है, एक विस्रसा परिणत है।

७४. जइ पयोगपरिणया किं मण-पयोगपरिणया? वइपयोग-परिणया? कायपयोगपरिणया?

गोयमा! १. मणपयोपरिणया वा २. वइप-योगपरिणया वा ३. काय-पयोगपरिणया वा ४. अहवेगे मणपयोगपरिणए, एगे वइपयोग-परिणए ५. अहवेगे मणपयोग-परिणए, एगे कायपयोगपरिणए ६. अहवेगे वइप-योगपरिणए, एगे कायपयोगपरिणए॥

यदि प्रयोगपरिणते किं मनःप्रयोगपरिणते? वाक्प्रयोगपरिणते? कायप्रयोगपरिणते?

गौतम! १. मनःप्रयोगपरिणते वा २. वाक्-प्रयोगपरिणते वा ३.कायप्रयोगपरिणते वा ४. अथवा एकं मनःप्रयोगपरिणतम्, एकं वाक्-प्रयोगपरिणतम् ५. अथवा एकं मनः-प्रयोगपरिणतम्, एकं कायप्रयोगपरिणतम् ६. अथवा एकं वाक्प्रयोगपरिणतम्, एकं कायप्रयोगपरिणतम्।

७४. यदि प्रयोगपरिणत हैं तो क्या मनप्रयोगपरिणत हैं? वचनप्रयोगपरिणत हैं? अथवा कायप्रयोगपरिणत हैं?

गौतम! १. मनप्रयोगपरिणत हैं २. वचन-प्रयोगपरिणत भी हैं ३. कायप्रयोगपरिणत भी हैं ४. अथवा एक मनप्रयोगपरिणत है, एक वचनप्रयोगपरिणत है ५. अथवा एक मनप्रयोगपरिणत है, एक कायप्रयोग-परिणत है ६. अथवा एक वचनप्रयोग-परिणत है, एक कायप्रयोगपरिणत है।

७५. जइ मणपयोगपरिणया किं सच्च-मणपयोगपरिणया? असच्चमणपयोग-परिणया? सच्चमोसमण - पयोग-परिणया? असच्चमोसमणपयोग-परिणया?

गोयमा! १-४. सच्चमणपयोग-परिणया वा जाव असच्चमोस-मणपयोगपरिणया वा ५. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे मोस-मणपयोगपरिणए ६. अहवेगे सच्च-मणपयोगपरिणए, एगे सच्चमोस-मणपयोगपरिणए ७. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे असच्च-मोसमणपयोगपरिणए ८. अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे सच्च-मोसमणपयोगपरिणए ९. अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्च-मोसमणपयोगपरिणए १०. अहवेगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए।

यदि मनःप्रयोगपरिणते किं सत्यमनः-प्रयोगपरिणते? असत्यमनःप्रयोगपरिणते? सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणते? असत्यामृषा-मनःप्रयोगपरिणते?

गौतम! १-४. सत्यमनःप्रयोगपरिणते वा यावत् असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणते वा ५. अथवैकं सत्यमनःप्रयोगपरिणतम्, एकं मृषामनः-प्रयोगपरिणतम् ६. अथवैकं सत्यमनःप्रयोग-परिणतम्, एकं सत्य-मृषामनःप्रयोगपरिणतम् ७. अथवैकं सत्य-मनःप्रयोगपरिणतम्, एकम् असत्या-मृषामनःप्रयोगपरिणतम्। ८. अथवैकं मृषामनःप्रयोगपरिणतम्, एकं सत्यमृषा-मनःप्रयोगपरिणतम्,९. अथवैकं मृषामनः-प्रयोगपरिणतम्, एकम् असत्यामृषामनः-प्रयोगपरिणतम् १०. अथवैकं सत्यमृषा-मनःप्रयोगपरिणतम्, एकम् असत्या-मृषामनः-प्रयोगपरिणतम्।

७५. यदि मनप्रयोगपरिणत हैं तो क्या सत्यमनप्रयोगपरिणत हैं? असत्य मनप्रयोगपरिणत हैं? सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत हैं? अथवा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत हैं?

गौतम! १-४. सत्यमनप्रयोगपरिणत भी हैं, असत्यामृषामनप्रयोगपरिणत भी हैं ५. अथवा एक सत्यमन प्रयोगपरिणत है, एक मृषामन प्रयोगपरिणत है ६. अथवा एक सत्यमन प्रयोगपरिणत है, एक सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत है ७. अथवा एक सत्यमन प्रयोगपरिणत है, एक असत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत है, ८. अथवा एक मृषामन प्रयोगपरिणत है, एक सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत है ९. अथवा एक मृषामन प्रयोगपरिणत है, एक असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत है १०. अथवा एक सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत है, एक असत्या-मृषामन प्रयोगपरिणत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. जइ सच्चमणपयोगपरिणया किं आरंभसच्चमणपयोगपरिणया? जाव असमारंभसच्चमणपयोग-परिणया?
गोयमा! आरंभसच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असमारंभसच्च-मणपयोग-परिणया वा, अहवेगे आरंभसच्च-मणपयोगपरिणए, एगे अणारंभसच्च-मणपयोगपरिणए। एवं एएणं गमेणं दुयासंजोएणं नेयव्वं, सव्वे संजोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा जाव सव्वट्ठसिद्ध-गत्ति॥

यदि सत्यमनःप्रयोगपरिणते किम् आरम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणते? यावत् असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणते?
गौतम! आरम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणते वा यावत् असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणते वा अथवैकम् आरम्भसत्यमनःप्रयोग-परिणतम्, एकम् अनारम्भसत्यमनःप्रयोग-परिणतम्। एवम् एतेन गमेन द्विकसंयोगेन नेतव्यम्. सर्वे संयोगाः यत्र यावन्तः उत्तिष्ठन्ति ते भणितव्याः यावत् सर्वार्थ-सिद्धका इति।

७६. यदि सत्यमन प्रयोगपरिणत हैं तो क्या आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत हैं? यावत् असमारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत हैं?
गौतम! आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत भी हैं यावत् असमारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत भी हैं। अथवा एक आरम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत है, एक अनारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत है। इस प्रकार इस गमक के अनुसार दो के संयोग से होने वाले भंग ज्ञातव्य हैं, सब सांयोगिक भंग जहां जितने हो सकते हैं, वे सब यावत सर्वार्थसिद्ध तक वक्तव्य हैं।

७७. जइ मीसापरिणया किं मणमीसा-परिणया?
एवं मीसापरिणया वि॥

यदि मिश्रकपरिणते किं मनोमिश्रकपरिणते?

एवं मिश्रकपरिणते अपि।

७७. यदि मिश्रपरिणत हैं तो क्या मन मिश्रपरिणत हैं?
इस प्रकार मिश्रपरिणत की भी वक्तव्यता।

७८. जइ वीससापरिणया किं वण्ण-परिणया? गंधपरिणया?
एवं वीससापरिणया वि जाव अहवेगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आयतसंठाणपरिणए॥

यदि विस्रसापरिणते किं वर्णपरिणते? गन्धपरिणते?
एवं विस्रसापरिणते अपि यावत् अथवैकं चतुरस्रसंस्थानपरिणतम्, एकम् आयत-संस्थानपरिणतम्।

७८. यदि विस्रसापरिणत हैं तो क्या वर्ण परिणत हैं? गन्धपरिणत हैं?
इस प्रकार विस्रसा परिणत की भी वक्तव्यता यावत् अथवा एक चतुरस्र संस्थान परिणत है, एक आयत संस्थान परिणत है।

तिण्णि दव्वाइं पडुच्च पोग्गल-परिणति-पदं

७९. तिण्णि भंते! दव्वा किं पयोग-परिणया? मीसापरिणया? वीससा-परिणया?
गोयमा! १. पयोगपरिणया वा २. मीसापरिणया वा ३. वीससा-परिणया वा ४. अहवेगे पयोग-परिणए, दो मीसापरिणया ५. अहवेगे पयोगपरिणए, दो वीस-सापरिणया ६. अहवा दो पयोग-परिणया, एगे मीसापरिणए ७. अहवा दो पयोगपरिणया, एगे वीससापरिणए ८. अहवेगे मीसा-परिणए, दो वीससापरिणया ९. अहवा दो मीसा-परिणया, एगे वीससापरिणए १०.अहवेगे पयोग-परिणए, एगे मीसापरिणए. एगे वीससापरिणए॥

त्रीणि द्रव्याणि प्रतीत्य पुद्गल-परिणति-पदम्

त्रीणि भदन्त! द्रव्याणि किं प्रयोग-परिणतानि? मिश्रकपरिणतानि? विस्रसा-परिणतानि?
गौतम! १.प्रयोगपरिणतानि वा २. मिश्रक-परिणतानि वा ३. विस्रसापरिणतानि वा ४. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, द्वे मिश्रकपरिणते ५. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, द्वे विस्रसा-परिणते ६. अथवा द्वे प्रयोगपरिणते, एकं मिश्रकपरिणतम् ७. अथवा द्वे प्रयोगपरिणते एकं विस्रसापरिणतम् ८. अथवैकं मिश्रक-परिणतम, द्वे विस्रसापरिणते ९. अथवा द्वे मिश्रकपरिणते, एकं विस्रसापरिणतम् १०. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, एकं मिश्रक-परिणतम्, एकं विस्रसापरिणतम्।

तीन द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति-पद

७९. भन्ते! तीन द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत हैं? मिश्रपरिणत हैं? विस्रसापरिणत है?

गौतम! १.प्रयोगपरिणत भी हैं २. मिश्रपरिणत भी हैं ३. विस्रसापरिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, दो मिश्रपरिणत हैं ५. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, दो विस्रसापरिणत हैं ६. अथवा दो प्रयोगपरिणत हैं, एक मिश्रपरिणत है ७. अथवा दो प्रयोगपरिणत हैं, एक विस्रसापरिणत है ८. अथवा एक मिश्रपरिणत है, दो विस्रसा परिणत हैं ९. अथवा दो मिश्र परिणत हैं, एक विस्रसापरिणत है। १०. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, एक मिश्रपरिणत है, एक विस्रसापरिणत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८०. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया? वइपयोग-परिणया? कायपयोगपरिणया?
गोयमा! मणपयोगपरिणया वा, एवं एक्कासंयोगो, दुयासंयोगो, तियासंयोगो य भाणियव्वो॥

यदि प्रयोगपरिणतानि किं मनःप्रयोग-परिणतानि? वाक्प्रयोगपरिणतानि? काय-प्रयोगपरिणतानि?
गौतम! मनःप्रयोगपरिणतानि वा. एवम् एककसंयोगः, द्विककसंयोगः, त्रिकक-संयोगश्च भणितव्यः।

८०. यदि प्रयोगपरिणत हैं तो क्या मनप्रयोग परिणत हैं? वचनप्रयोगपरिणत हैं? कायप्रयोगपरिणत हैं?
गौतम! मनप्रयोगपरिणत भी हैं, इस प्रकार एक सांयोगिक, द्विक सांयोगिक और त्रिक सांयोगिक भंग वक्तव्य हैं।

८१. जइ मणपयोगपरिणया किं सच्चमणपयोगपरिणया? असच्च-मणपयोगपरिणया? सच्चमोसमण-पयोगपरिणया? असच्चमोसमण-पयोगपरिणया?
गोयमा! सच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असच्चामोसमणपयोगपरिणया वा. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, दो मोसमणपयोगपरिणया। एवं दुवा-संयोगो, तियासंयोगो भाणियव्वो एत्थ वि तहेव जाव अहवेगे तंससंठाणपरिणए, एगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आयत-संठाणपरिणए॥

यदि मनःप्रयोगपरिणतानि किं सत्यमनः-प्रयोगपरिणतानि? असत्यमनःप्रयोग-परिणतानि? सत्यमृषामनःप्रयोगपरिण-तानि? असत्यमृषामनःप्रयोगपरिणतानि?

गौतम! सत्यमनःप्रयोगपरिणतानि वा यावत् असत्यमृषामनःप्रयोगपरिणतानि वा, अथवैकं सत्यमनःप्रयोगपरिणतं, द्वे मृषामनः-प्रयोगपरिणते। एवं द्विकक-संयोगः, त्रिककसंयोगः भणितव्यः अत्रापि तथैव यावत् अथवैकं त्र्यस्रसंस्थान-परिणतम्, एकं चतुरस्रसंस्थानपरिणतम्, एकम् आयत-संस्थानपरिणतम्।

८१. यदि मनप्रयोगपरिणत हैं तो क्या सत्यमनप्रयोगपरिणत हैं? असत्य मन-प्रयोगपरिणत हैं? सत्यमृषा-मनप्रयोग-परिणत हैं? असत्यामृषामन- प्रयोग-परिणत हैं?
गौतम! सत्यमनप्रयोगपरिणत भी हैं यावत् असत्यमृषामनप्रयोगपरिणत भी हैं। अथवा एक सत्यमनप्रयोगपरिणत है, दो मृषामनप्रयोगपरिणत हैं। इस प्रकार द्विकसांयोगिक और त्रिकसांयोगिक भंग वक्तव्य हैं। यहां द्रव्यक्य के अधिकार में भी द्रव्यद्वय के अधिकार (सूत्र ७३ से ७८) के समान वक्तव्यता यावत् अथवा एक त्र्यस्रसंस्थान परिणत है, एक चतुरस्रसंस्थान परिणत है, एक आयत संस्थान परिणत है।

चत्तारि दव्वाइं पडुच्च पोग्गल-परिणति-पदं

८२. चत्तारि भंते! दव्वा किं पयोगपरिणया? मीसापरिणया? वीससापरिणया?
गोयमा! १. पयोगपरिणया वा २. मीसापरिणया वा ३. वीससा-परिणया वा ४. अहवेगे पयोग-परिणए, तिण्णि मीसा-परिणया ५. अहवेगे पयोग-परिणए, तिण्णि वीससापरिणया ६. अहवा दो पयोगपरिणया, दो मीसापरिणया ७. अहवा दो पयोग-परिणया, दो वीससापरिणया ८. अहवा तिण्णि पयोगपरिणया, एगेमीसा-परिणए ९. अहवा तिण्णि पयोग-परिणया, एगे वीससापरिणए १०. अहवेगे मीसापरिणए, तिण्णि वीससा-परिणया ११. अहवा दो मीसा-परिणया, दो वीससा-परिणया १२. अहवा तिण्णि मीसापरि-णया, एगे वीससापरिणए

चत्वारि द्रव्याणि प्रतीत्य पुद्गल-परिणति-पदम्

चत्वारि भदन्त! द्रव्याणि किं प्रयोग-परिणतानि? मिश्रकपरिणतानि? विस्रसा-परिणतानि?
गौतम! १. प्रयोगपरिणतानि वा २. मिश्रक-परिणतानि वा ३. विस्रसापरिणतानि वा ४. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, त्रीणि मिश्रक परिणतानि ५. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, त्रीणि विस्रसापरिणतानि ६. अथवा द्वे प्रयोग-परिणते, द्वे मिश्रकपरिणते ७. अथवा द्वे प्रयोगपरिणते, द्वे विस्रसापरिणते ८. अथवा त्रीणि प्रयोगपरिणतानि, एकं मिश्रकपरिणतम् ९. अथवा त्रीणि प्रयोगपरिणतानि, एकं विस्रसापरिणतम् १०. अथवैकं मिश्रक-परिणतम्, त्रीणि विस्रसापरिणतानि ११. अथवा द्वे मिश्रकपरिणते, द्वे विस्रसापरिणते १२. अथवा त्रीणि मिश्रकपरिणतानि, एकं विस्रसापरिणतम् १३. अथवैकं प्रयोग-

चार द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल परिणति-पद

८२. भन्ते! चार द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत हैं? मिश्रपरिणत हैं? विस्रसापरिणत हैं?

गौतम! १. वे प्रयोगपरिणत भी हैं २. मिश्र-परिणत भी हैं ३. विस्रसापरिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, तीन मिश्र-परिणत हैं ५. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, तीन विस्रसापरिणत हैं ६. अथवा दो प्रयोगपरिणत हैं, दो मिश्रपरिणत हैं ७. अथवा दो प्रयोगपरिणत हैं, दो विस्रसा परिणत हैं ८. अथवा तीन प्रयोगपरिणत हैं, एक मिश्रपरिणत है ९. अथवा तीन प्रयोगपरिणत हैं, एक विस्रसापरिणत है १०. अथवा एक मिश्रपरिणत है, तीन विस्रसापरिणत हैं ११. अथवा दो मिश्रपरिणत हैं, दो विस्रसापरिणत हैं १२. अथवा तीन मिश्रपरिणत हैं, एक विस्रसा परिणत है १३. अथवा एक प्रयोगपरिणत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया १४. अहवेगे पयोग-परिणए, दो मीसापरिणया, एगे वीससा-परिणए १५. अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए॥

परिणतम्, एकं मिश्रकपरिणतम्, द्वे विस्रसा-परिणते १४. अथवैकं प्रयोगपरिणतम्, द्वे मिश्रकपरिणते, एकं विस्रसापरिणतम् १५. अथवा द्वे प्रयोगपरिणते, एकं मिश्रक-परिणतम्, एकं विस्रसापरिणतम्।

है, एक मिश्रपरिणत है, दो विस्रसा परिणत हैं १४. अथवा एक प्रयोगपरिणत है, दो मिश्रपरिणत हैं, एक विस्रसापरिणत है १५. अथवा दो प्रयोगपरिणत हैं, एक मिश्रपरिणत है, एक विस्रसापरिणत है।

८३. जइ पयोगपरिणया किं मण-पयोगपरिणया? वइपयोग-परिणया? कायपयोगपरिणया?
एवं एएणं कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा अणंता य दव्वा भाणियव्वा दुयासंजोएणं तियासंजोएणं जाव दससंजोएणं बारससंजोएणं उवजुंजिऊणं जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा; एए पुण जहा नवमसए पवेसणए भणिहामो तहा उवजुंजि-ऊणं भाणियव्वा जाव असंखेज्जा अणंता एवं चेव, नवरं—एक्कं पदं अब्भहियं जाव अहवा अणंता परिमंडलसंठाणपरिणया जाव अणंता आयतसंठाणपरिणया॥

यदि प्रयोगपरिणतानि किं मनःप्रयोगपरिणतानि? वाक्प्रयोगपरिणतानि? काय-प्रयोग-परिणतानि?
एवम् एतेन क्रमेण पञ्च षट् सप्त यावत् दश संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि च द्रव्या-णि भणितव्यानि द्विकसंयोगेन त्रिकक-संयोगेन यावत् दशसंयोगेन द्वादश-संयोगेन उपयुज्य यत्र यावन्तः संयोगा उत्तिष्ठन्ति ते सर्वे भणितव्याः एतान् पुनः यथा नवमशते प्रवेशनके भणिष्यामः तथा उपयुज्य भणि-तव्या यावत् असंख्येया अनन्ता एवं चैव, नवरं— एकं पदमभ्यधिकं यावत् अथवा अनन्ताः परिमंडलसंस्थान-परिणता यावत् अनन्ता आयतसंस्थान-परिणताः।

८३. यदि प्रयोगपरिणत हैं तो क्या मनप्रयोगपरिणत हैं? वचनप्रयोगपरिणत हैं? कायप्रयोगपरिणत हैं?
इस प्रकार इस क्रम से पांच, छह, सात, यावत् दस, संख्येय, असंख्येय और अनन्त द्रव्य वक्तव्य हैं—द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग यावत् दस संयोग और द्वादश संयोग की उपयोजना कर जहां जितने संयोग बनते हैं वे सब वक्तव्य हैं। इन्हें जैसे नवें शतक के प्रवेशनक प्रकरण (सूत्र ८६ से ११९) में कहेंगे वैसे ही उपयोजना कर वक्तव्य हैं यावत् असंख्येय और अनन्त की इसी प्रकार वक्तव्यता, इतना विशेष है—एक पद अधिक है यावत् अथवा अनन्त परिमण्डलसंस्थानपरिणत हैं यावत् अनन्त आयतसंस्थानपरिणत हैं।

८४. एएसि णं भंते! पोग्गलाणं पयोगपरिणयाणं, मीसापरिणयाणं, वीस-सापरिणयाणं य कयरे कयरे-हिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा पयोग-परिणया, मीसापरिणया अणंत-गुणा, वीससा-परिणया अणंत-गुणा॥

एतेषां भदन्त! पुद्गलानां प्रयोग-परिणतानां, मिश्रकपरिणतानां विस्रसा-परिणतानाञ्च कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा? बहुका वा? तुल्या वा? विशेषाधिका वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः पुद्गलाः प्रयोग-परिणताः, मिश्रकपरिणताः अनन्तगुणाः, विस्रसापरिणताः अनन्तगुणाः।

८४. भन्ते! इन प्रयोगपरिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसापरिणत पुद्गलों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?
गौतम! प्रयोगपरिणत पुद्गल सबसे कम हैं, मिश्रपरिणत उनसे अनन्तगुना हैं, विस्रसापरिणत उनसे अनन्त गुना हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४३-८४

भारतीय दर्शनों में सृष्टिवाद

प्रस्तुत आलापक के संदर्भ में समग्र सृष्टिवाद की विज्ञान-सम्मत एवं तर्क-संगत व्याख्या संभव है। सृष्टिवाद को विभिन्न भारतीय दर्शनों ने भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। उसकी मीमांसा प्रयोग, मिश्र और स्वभाव जन्य परिणमनों के सन्दर्भ में की जा सकती है।

चार्वाक

चार्वाक दर्शन, जिसे आगमयुगीन भाषा में अक्रियावाद कहा जाता है, केवल पुद्गल-द्रव्य का अस्तित्व एवं उसके परिणमन को ही सृष्टि का कारण मानता है। चेतना या आत्मा का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं जो है वह केवल पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—इन पांच महाभूतों की ही परिणति विशेष है मरणोपरान्त पुनः इन्हीं पांच महाभूतों में प्राणी-विशेष का अस्तित्व विलीन हो जाता है। इस प्रकार प्रयोग-परिणमन का अस्तित्व चार्वाक को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्य नहीं है। उनके मत में जो है वह केवल 'विस्रसा' ही है। प्राणी द्वारा निष्पन्न सारे परिणमन भी अन्ततोगत्वा पुद्गलों का अपना ही परिणमन है—नितान्त विस्रसा है। मिश्र-परिणमन भी प्रयोग-परिणमन के अभाव में सम्भव नहीं है। इस प्रकार चार्वाक का सृष्टि-दर्शन केवल विस्रसा-परिणमन को मानकर ही अपना मत प्रस्तुत करता है।

ईश्वरवाद

ईश्वरवादी दर्शन—चाहे वह न्याय हो वैशेषिक हो या अन्य—सारे परिणमनों को ईश्वरकृत प्रयोग के परिणमन के रूप में ही मानता है। उनके मतानुसार मिश्र या विस्रसा परिणमन संभव ही नहीं है। ईश्वर सृष्टिवाद के निरूपण में जीव प्रयोग परिणाम, मिश्र परिणाम और विस्रसा परिणाम के मूल में तो ईश्वर प्रयोग ही सर्वेसर्वा है। ईश्वर की इच्छा ही इस सृष्टि का जनक है। सारा परिणमन-चक्र इसी केन्द्र को धुरी मानकर घूमता रहता है।

सांख्य

सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति के द्वैत को स्वीकार करता है, पर पुरुष (आत्मा) को सदा निष्क्रिय मानता है।[1] अतः जीव-प्रयोग-परिणाम को संभव नहीं मानता। प्रकृति का परिणमन मूलतः विस्रसा है। प्रकृति के स्पर्श, रस आदि गुणों (विषयों) से इन्द्रियां और इन्द्रियों से चित्त तथा चित्त से अन्ततोगत्वा पुरुष 'अयस्कांतमणिवत्' दूर से प्रभावित होता है, पर मूलतः अक्रिय होने से परिणमन में उसका सीधा प्रभाव कहीं नहीं है। ध्येयवाद या Teloology की तरह उसे केवल परिणमन का 'दूर-स्रोत' माना जा सकता है। ध्येयवाद या Teloology में भविष्य को प्रेरक माना जाता है। भविष्य हेतु बनता है— वर्तमान परिणमन का। इस प्रकार अक्रिय पुरुष का भविष्य वर्तमान परिणमन का हेतु बनता है। इस प्रकार की मान्यता के आधार पर सांख्य दर्शन प्रकृति को कथंचित् 'प्रयोग-परिणमन' की अधिष्ठात्री मानता है। निष्कर्षतः विस्रसा के अतिरिक्त प्रयोग या मिश्र परिणामों का तत्त्वतः कोई स्थान सांख्य स्वीकार कैसे कर सकता है?

पातञ्जल योग दर्शन

इसे सेश्वर सांख्यवाद के रूप में माना जाता है। सांख्य दर्शन सम्मत पुरुष प्रकृति के रूप में तत्त्व-निरूपण को स्वीकार करते हुए भी ईश्वर-पुरुष विशेष के अस्तित्व को माना है। स्रष्टा, कर्त्ता तथा संहर्त्ता सगुण ईश्वर मानकर योगदर्शन ने प्रयोग परिणाम को स्वीकार किया है, यह स्पष्ट है। योगी जो विशेष सिद्धियों, जैसे—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व, यत्रकामावशायित्व आदि के द्वारा अपनी इच्छा या संकल्प के अनुसार प्रकृति में परिणमन कर सकते हैं, यह जीव-प्रयोग परिणमन का स्पष्ट स्वीकार है। योग सिद्धों को ये शक्तियां होने पर भी वे पदार्थों में वैपरीत्य नहीं करते हैं या नहीं कर सकते। पदार्थ-विपर्यास न करने का हेतु यह है कि ब्रह्माण्ड के पूर्व-सिद्ध हिरण्यगर्भ ईश्वर को ब्रह्माण्ड की ऐसी अवस्थिति में यत्रकामावशायित्व है; अर्थात् ब्रह्माण्ड ऐसा ही रहे जैसा कि वर्तमान है, ताकि प्रजागण कर्म करें तथा कर्मफल भी भोगें—ऐसा पूर्वसिद्ध प्रजापति का संकल्प रहने के कारण ही योगी शक्तिमान होने पर भी पदार्थ वैपरीत्य नहीं करते। योगीकरण ईश्वर-संकल्प से मुक्त पदार्थों में यथोचित शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।[2]

बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन ने सत्त्व लोक एवं भाजन लोक के रूप में जगत् को दो भागों में बांटा है। सारा लोक वैचित्र्य (जगत्-परिणमन) कर्मज है तथा कर्म चेतना द्वारा कृत है। इस प्रकार समग्र परिणमन चेतना कृत (जीव प्रयोग-परिणाम) है। रूप या पुद्गल स्वतंत्र परिणमन करता है—ऐसा बौद्ध दर्शन स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार विस्रसा परिणमन और मिश्र परिणमन को बौद्ध दर्शन ने स्वीकार नहीं किया है।[3]

वेदान्त

वेदान्त कूटस्थनित्यवादी तथा ब्रह्माद्वैतवादी दर्शन है। उसके अनुसार सारा परिणमन वास्तविक नहीं है। इस दृष्टि से परिणमन-मात्र को वेदान्त तत्त्वतः स्वीकार ही नहीं करता।

ईश्वरवादी धारणा में जहां ब्रह्म को सब जगत् का कारण माना है।[4] समग्र जगत् जीव प्रयोग परिणाम ही सिद्ध होता है। काल, नियति, स्वभाव, यदृच्छा, पुरुष सभी को मूलतः कारण नहीं माना गया।

वैज्ञानिक अवधारणा

भौतिक विज्ञान में न्यूटन के यांत्रिक विश्व की अवधारणा में सारा परिणमन एक निश्चित नियमावली के अन्तर्गत स्वतः घटित होता है और इन वस्तुनिष्ठ नियमों की खोज ही विज्ञान का लक्ष्य है। पुद्गल या भौतिक पदार्थ एवं ऊर्जा का परिणमन विस्रसा रूप में ही स्वीकार किया गया। चेतन की स्वतंत्र सत्ता विज्ञान का विषय नहीं है। इस प्रकार वैज्ञानिक अवधारणा के जगत् केवल विस्रसा परिणमनों के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

आधुनिक विज्ञान में सूक्ष्म कणों के परिणमनों की व्याख्या के साथ चेतना के सम्बन्ध की संभावना स्वीकार की गई है।

---

१. जैन दर्शन : मनन और मीमांसा पृ. २४५
अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्मः, आत्मा कपिलदर्शने॥

२. हरिहरानन्द, पा. यो. द. १/४५।
टीका पृ. ३८५-३८६।

३. कर्मजं लोक वैचित्र्यं, चेतना तन् कृतं च तत्।
चेतना मानसं कर्म, तच्च वाक्कायकर्मणी॥

४. श्वेताश्वतर ३४०. १/२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डेविड, बोहम आदि वैज्ञानिकों की यह निश्चित धारणा बन चुकी है कि सूक्ष्म पारमाणविक प्रक्रिया में चैतन्य (ज्ञान) का हस्तक्षेप परिलक्षित होता है। भौतिक परिणमनों के साथ चैतन्य का प्रभाव जुड़ा हुआ है—इस प्रकार की अवधारणा आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत प्रवेश पा चुकी है। यद्यपि चैतन्य (जीव-प्रयोग) परिणाम के स्वरूप का निर्धारण अभी संभव नहीं बनता है, फिर भी सैद्धान्तिक आधार पर आधुनिक विज्ञान जीव-प्रयोग परिणाम और विस्रसा-परिणाम दोनों परिणमनों को स्वीकार करता है, ऐसा कहा जा सकता है।

८५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

८५. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देशो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
आसीविस-पदं	**आशीविष-पदम्**	**आशीविष-पद**
८६. कतिविहा णं भंते! आसीविसा पण्णत्ता?	कतिविधाः भदन्त! आशीविषाः प्रज्ञप्ताः?	८६. भन्ते! आशीविष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा! दुविहा आसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—जातिआसीविसा य, कम्म-आसीविसा य॥	गौतम! द्विविधाः आशीविषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जात्याशीविषाश्च, कर्माशी-विषाश्च।	गौतम! आशीविष दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—जातिआशीविष और कर्मआशीविष।
८७. जातिआसीविसा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?	जात्याशीविषाः भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?	८७. भन्ते! जातिआशीविष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मंडुक्कजाति-आसीविसे, उरग-जाति-आसिविसे, मणुस्सजाति-आसीविसे।	गौतम! चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—वृश्चिकजात्याशीविषः, मण्डूकजात्या-शीविषः, उरग-जात्याशीविषः, मनुष्य-जात्याशीविषः।	गौतम! चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—वृश्चिकजातिआशीविष, मंडूक जाति-आशीविष, उरगजातिआशीविष और मनुष्यजातिआशीविष।
८८. विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?	वृश्चिकजात्याशीविषस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?	८८. भन्ते! वृश्चिकजातिआशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?
गोयमा! पभू णं विच्छुयजाति-आसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्ट-माणं पकरेत्तए। विसए से विस-ट्ठयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा॥	गौतम! प्रभुः वृश्चिकजात्याशीविषः अर्धभरतप्रमाणमात्रां 'बोंदिं' विषेण विष-परिगतां दलन्तीं प्रकर्तुम्। विषयस्तस्य विषार्थतया, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा।	गौतम! वृश्चिकजातिआशीविष अर्ध भरतप्रमाणशरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है, क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।
८९. मंडुक्कजातिआसीविसस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?	मण्डूकजात्याशीविषस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?	८९. भन्ते! मण्डूकजातिआशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?
गोयमा! पभू णं मंडुक्कजाति-आसिविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्टमाणं पकरेत्तए। विसए से विसट्ठयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा॥	गौतम! प्रभुः मण्डूकजात्याशीविषः भरत-प्रमाणमात्रां 'बोंदिं' विषेण विषपरिगतां दलन्तीं प्रकर्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतया, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा।	गौतम! मंडूकजातिआशीविष भरतप्रमाण शरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।
९०. उरगजातिआसीविसस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?	उरगजात्याशीविषस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः।	९०. भन्ते! उरगजातिआशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पभू णं उरगजातिआसी-विसे जंबुद्दीवप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्टमाणं पकरेत्तए। विसए से विसट्ठयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा॥

गौतम! प्रभुः उरगजात्याशीविषः जम्बूद्वीप- प्रमाणमात्रां 'बोंदिं' विषेण विषपरिगतां दलन्तीं प्रकर्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतया, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा।

गौतम! उरगजातिआशीविष जम्बूद्वीप प्रमाणशरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

९१. मणुस्सजातिआसिविसस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! पभू णं मणुस्सजाति-आसीविसे समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्ट-माणं पकरेत्तए। विसए से विसट्ट-याए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा॥

मनुष्यजात्याशीविषस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

गौतम! प्रभुः मनुष्यजात्याशीविषः समय-क्षेत्रप्रमाणमात्रां 'बोंदिं' विषेण विषपरिगतां दलन्तीं प्रकर्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतया, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा।

९१. भन्ते! मनुष्यजातिआशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

गौतम! मनुष्यजातिआशीविष समयक्षेत्र (अढाई द्वीप) प्रमाणशरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

भाष्य

१. सूत्र ८६-९१

जिसकी दाढा में विष होता है, वह आशीविष कहलाता है। कुछ प्राणी जन्म से आशीविष होते हैं और कुछ कर्म से। बिच्छू, मेंढक, सर्प और मनुष्य ये जाति आशीविष हैं—जन्म से आशीविष हैं।[1]

सूत्रकार ने इनकी विषयात्मक क्षमता का निरूपण किया है। प्रायोगिक रूप में उसका त्रैकालिक प्रतिषेध किया है।

तपश्चरण अथवा विद्या मंत्र आदि की साधना से अथवा किसी अन्य गुण से आशीविष की उपलब्धि हो जाती है, वे कर्म से आशीविष कहलाते हैं।[2]

अकलंक ने आशीविष के स्थान पर आस्यविष का प्रयोग किया है। प्रकृष्ट तपोबल वाला यति आस्यविष ऋद्धि को प्राप्त होता है। वह मरण का अभिशाप देता है। अभिशप्त व्यक्ति के शरीर में विष व्याप्त हो जाता है और वह मर जाता है।[3] तिलोयपण्णत्ति और धवला में आशीविष ऋद्धि का उल्लेख मिलता है। उसका तात्पर्य है इस ऋद्धि वाला 'मर जाओ' इस प्रकार का वचन प्रयोग करता है और व्यक्ति मर जाता है।[4]

९२. जइ कम्मआसीविसे किं नेरइय-कम्मआसीविसे? तिरिक्खजोणिय-कम्मआसीविसे? मणुस्सकम्म-आसीविसे? देवकम्मआसीविसे?

गोयमा! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरि-क्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देव-कम्मासीविसे वि॥

यदि कर्माशीविषः किं नैरयिककर्माशीविषः? तिर्यग्योनिककर्माशीविषः? मनुष्यकर्माशी-विषः? देवकर्माशीविषः?

गौतम! नो नैरयिककर्माशीविषः, तिर्यग्-योनिककर्माशीविषोऽपि, मनुष्यकर्माशी-विषोऽपि, देवकर्माशीविषोऽपि।

९२. यदि कर्म आशीविष है तो क्या नैरयिक कर्मआशीविष है? तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष है? मनुष्यकर्मआशीविष है? अथवा देवकर्मआशीविष है?

गौतम! नैरयिक कर्मआशीविष नहीं है। तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष भी है, मनुष्य कर्मआशीविष भी है और देव कर्म-आशीविष भी है।

भाष्य

१. सूत्र ९२

कर्म से आशीविष तीन गति के जीव होते हैं—तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देव। मनुष्य अपनी गुणात्मक विशेषता के कारण कर्म से आशीविष होता है।

तिर्यक्योनिक में संख्येय वर्ष की आयु वाला गर्भज तिर्यक् पंचेन्द्रिय कर्म से आशीविष होता है। यह ऋद्धि उसे किस गुणात्मक विशेषता से प्राप्त होती है, इसका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं है। वायुकाय और संख्येय वर्ष आयु वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यक् के वैक्रिय लब्धि होती है। प्रज्ञापना में इसका निर्देश है।[5] जैसे वैक्रिय लब्धि होती है वैसे ही आशीविष लब्धि भी उसे प्राप्त हो सकती है।

देवों को कर्म से आशीविष ऋद्धि उपलब्ध नहीं होती इसलिए पर्याप्त अवस्था में उसका निषेध किया गया है। जन्म की प्रारम्भ

१. भ. वृ. ८/८६-९०—जात्या—जन्मनाऽऽशीविषाः, जात्याशीविषाः।

२. वही, ८/८६-९०—कर्मणा क्रियया शापादिनोपघातकरणेन आशीविषाः कर्माशीविषाः। तत्र पंचेन्द्रियतिर्यंचो मनुष्याश्च कर्माशीविषाः पर्याप्तका एव, एतेऽपि तपश्चरणानुष्ठानतोऽन्यतो वा गुणतः खल्वाशीविषाः भवन्ति, शापप्रदानेनैव व्यापादयन्तीत्यर्थः।

३. त. रा. वा. ३/३६—प्रकृष्टतपोबलयतयो यं ब्रुवंतो म्रियस्वेति स तत्क्षण एव महाविष-परीतो म्रियते, ते आस्यविषाः।

४. (क) ति. प. ४/१०७८।
(ख) ष. खं. धवला ९/४।

५. पण्ण. २१/५३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालीन अपर्याप्त अवस्था में कर्म से आशीविष ऋद्धि को स्वीकार किया गया है। वृत्तिकार के अनुसार आशीविष ऋद्धि वाले जीव आठवें कल्प तक उत्पन्न होते हैं इसलिए सहस्रार नामक आठवें कल्प पर्यन्त अपर्याप्त अवस्था में पूर्वानुभूत भाव की दृष्टि से देवों में कर्माशीविष का उल्लेख किया गया है।[1]

९३. जइ तिरिक्खजोणियकम्मासी-विसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणिय-कम्मासीविसे जाव पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियकम्मा-सीविसे?
गोयमा! नो एगिंदियतिरिक्ख-जोणियकम्मासीविसे जाव नो चउरिंदियतिरिक्ख - जोणियकम्मा-सीविसे, पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-कम्मासीविसे।
जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मा-सीविसे किं संमुच्छिमपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे? गब्भ-वक्कंतियपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिय-कम्मासीविसे?

यदि तिर्यग्योनिककर्माशीविषः किम् एकेन्द्रियतिर्यग्योनिककर्माशीविषः यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिककर्माशीविषः?

गौतम! नो एकेन्द्रियतिर्यग्योनिककर्माशी-विषः यावत् नो चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिक-कर्माशीविषः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक-कर्माशीविषः।

यदि पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिककर्माशीविषः किं सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक-कर्माशी-विषः? गर्भावक्रान्तिकपञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिककर्माशीविषः?

९३. यदि तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष है तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्म-आशीविष है यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यक्-योनिक कर्मआशीविष है?
गौतम! एकेन्द्रियतिर्यक्योनिक कर्म-आशीविष नहीं है यावत् चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष नहीं है। पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष है।

यदि पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्म-आशीविष है तो क्या संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष है? अथवा गर्भावक्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक-कर्मआशीविष है?

एवं जहा वेउव्वियसरीरस्स भेदो जाव पज्जत्तासंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कं-तियपंचिंदियतिरिक्ख-जोणियकम्मा-सीविसे, नो अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे॥

एवं यथा वैक्रियशरीरस्य भेदः यावत् पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्कगर्भावक्रान्तिक-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिककर्माशीविषः, नो अपर्याप्तक संख्येयवर्षायुष्क यावत् कर्माशीविषः।

इस प्रकार जैसी प्रज्ञापना (२१/५३) में वैक्रियशरीर के भेद की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् पर्याप्त संख्येय वर्ष आयुष्य वाले गर्भावक्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक कर्मआशीविष है, अपर्याप्त संख्येय वर्ष आयुष्य वाले गर्भावक्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक कर्मआशीविष नहीं है।

९४. जइ मणुस्सकम्मासीविसे किं संमुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे? गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे?
गोयमा! नो संमुच्छिममणुस्सकम्मा-सीविसे गब्भवक्कंतिय-मणुस्सकम्मा-सीविसे, एवं जहा वेउव्वियसरीरं जाव पज्जत्त-संखेज्जवासाउयकम्मभूमा-गब्भ-वक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, नो अपज्जत्ता जाव कम्मासीविसे?

यदि मनुष्यकर्माशीविषः किं सम्मूर्च्छिम-मनुष्यकर्माशीविषः? गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यकर्माशीविषः?
गौतम! नो सम्मूर्च्छिममनुष्यकर्माशीविषः गर्भावक्रान्तिकमनुष्यकर्माशीविषः, एवं यथा वैक्रियशरीरं यावत् पर्याप्तसंख्येय-वर्षायुष्ककर्मभूमकगर्भावक्रान्तिकमनुष्य-कर्माशीविषः, नो अपर्याप्तक यावत् कर्माशीविषः।

९४. यदि मनुष्य कर्मआशीविष है तो क्या संमूर्च्छिम मनुष्य कर्मआशीविष है? अथवा गर्भावक्रान्तिक मनुष्य कर्मआशीविष है?
गौतम! संमूर्च्छिम मनुष्य कर्मआशीविष नहीं है, गर्भावक्रान्तिक मनुष्य कर्म-आशीविष है। इस प्रकार जैसी प्रज्ञापना (२१/५४) में मनुष्य पंचेन्द्रियवैक्रियशरीर की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् पर्याप्त संख्येय वर्ष आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भावक्रान्तिक मनुष्य कर्म-आशीविष है, अपर्याप्त संख्येय वर्ष आयुष्य वाला कर्मभूमिज गर्भावक्रान्तिक मनुष्य कर्मआशीविष नहीं है।

---

१. भ. वृ. ८ ८६-८७–एते चाशीविषलब्धिमत्त्वभावात् सहस्रारान्तदेवेष्वे-वोत्पद्यन्ते, देवाश्चैवं एव ये देवत्वेनोत्पन्नास्तेऽपर्याप्तकावस्थाया-मनुभूतभावत्वया कर्माशीविषा इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. जइ देवकम्मासीविसे किं भवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे?
गोयमा! भवणवासिदेवकम्मासी-विसे, वाणमंतरजोतिसियवेमाणिय-देवकम्मासीविसे वि।
जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे किं असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासी-विसे जाव थणियकुमारभवणवासि-देवकम्मासीविसे?
गोयमा! असुरकुमारभवणवासि-देवकम्मासीविसे वि जाव थणिय-कुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि।
जइ असुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे किं पज्जत्तगअसुर-कुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे? अपज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे?

गोयमा! नो पज्जत्तगअसुरकुमार-भवणवासिदेवकम्मासीविसे, अपज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे। एवं जाव थणिय-कुमाराणं।

जइ वाणमंतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमंतरदेवकम्मासीविसे? एवं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं जोइसियाणं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं।

जइ वेमाणियदेव कम्मासीविसे किं कप्पोववेमाणियदेवकम्मासीविसे? कप्पातीयवेमाणियदेवकम्मासीविसे?

गोयमा! कप्पोववेमाणियदेव-कम्मासीविसे, नो कप्पातीया-वेमाणियदेवकम्मासीविसे।
जइ कप्पोववेमाणियदेवकम्मा-सीविसे किं सोहम्मकप्पोववेमाणियदेवकम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोववेमाणियदेवकम्मासी-विसे?
गोयमा! सोहम्मकप्पोववेमाणिय-देवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोववेमाणियदेवकम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोववेमाणिय-देवकम्मासीविसे जाव नो अच्चुय-कप्पोववेमाणियदेवकम्मासीविसे?

यदिदेवकर्माशीविषः किं भवनवासिदेवकर्माशीविषः यावत्वैमानिकदेवकर्माशीविषः?
गौतम! भवनवासिदेवकर्माशीविषः वानमन्तरज्योतिष्क-वैमानिकदेवकर्माशीविषोऽपि।
यदि भवनवासिदेवकर्माशीविषः किम् असुरकुमारभवनवासिदेव - कर्माशीविषः यावत् स्तनितकुमारभवनवासिदेवकर्माशीविषः?
गौतम! असुरकुमारभवनवासिदेवकर्माशीविषोऽपि यावत् स्तनितकुमारभवनवासिदेवकर्माशीविषोऽपि।
यदि असुरकुमारभवनवासिदेवकर्माशीविषः किं पर्याप्तकासुरकुमारभवनवासिदेव-कर्माशीविषः? अपर्याप्तकासुरकुमारभवनवासिदेवकर्माशीविषः?

गौतम! नो पर्याप्तकासुरकुमारभवनवासिदेव-कर्माशीविषः, अपर्याप्तकासुरकुमारभवन-वासिदेवकर्माशीविषः। एवं यावत् स्तनित-कुमाराणाम्।

यदि वानमन्तरदेवकर्माशीविषः किं पिशाचवानमन्तरदेवकर्माशीविषः एवं सर्वेषाम् अपर्याप्तकानाम्। ज्योतिष्काणां सर्वेषाम् अपर्याप्तकानाम्।

यदिवैमानिकदेवकर्माशीविषः किं कल्पोपकवैमानिकदेवकर्माशीविषः? कल्पातीतकवैमानिकदेवकर्माशीविषः?

गौतम! कल्पोपकवैमानिकदेवकर्माशीविषः, नो कल्पातीतकवैमानिकदेवकर्माशीविषः।
यदि कल्पोपकवैमानिकदेवकर्माशी-विषः किं सौधर्मकल्पोपकवैमानिकदेवकर्माशीविषः यावत् अच्युतकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः?
गौतम! सौधर्मकल्पोपकवैमानिकदेवकर्माशी-विषोऽपि यावत् सहस्रारकल्पोपकवैमानिक-देवकर्माशीविषोऽपि, नो आनतकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः यावत् नो अच्युतकल्पोपक-

९५. यदि देव कर्मआशीविष है तो क्या भवनवासी देव कर्मआशीविष है यावत वैमानिक देव कर्म आशीविष है?
गौतम! भवनवासीदेव कर्मआशीविष है, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव कर्म आशीविष भी हैं।
यदि भवनवासी देव कर्मआशीविष है तो क्या असुरकुमार भवनवासीदेव कर्मआशीविष है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव कर्मआशीविष है?
गौतम! असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष भी है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव कर्मआशीविष भी है।
यदि असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष है तो क्या पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्मआशीविष है? अथवा अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष है?
गौतम! पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्मआशीविष नहीं है, अपर्याप्त असुर कुमार भवनवासी देव कर्मआशीविष है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।
यदि वानमन्तर देव कर्मआशीविष हैं तो क्या पिशाच वानमन्तर देव कर्मआशीविष है? इस प्रकार सब अपर्याप्तक वानमन्तर देवों की वक्तव्यता। सब अपर्याप्तक ज्योतिष्क देवों की वक्तव्यता।
यदि वैमानिक देव कर्मआशीविष है तो क्या कल्पोपगवैमानिक देव कर्मआशीविष है? अथवा कल्पातीतग-वैमानिक देव कर्म-आशीविष है?
गौतम! कल्पोपगवैमानिक देव कर्म-आशीविष है, कल्पातीतगवैमानिक देव कर्मआशीविष नहीं है।
यदि कल्पोपग-वैमानिक देव कर्मआशी-विष है तो क्या सौधर्म कल्पोपगवैमानिक देव कर्मआशीविष यावत् अच्युत कल्पोपगवैमानिक देव कर्मआशीविष है?
गौतम! सौधर्म कल्पोपगवैमानिकदेव कर्मआशीविष भी है यावत् सहस्रार कल्पोपगवैमानिक देव कर्मआशीविष भी है आनत कल्पोपगवैमानिक देव कर्मआशी-विष नहीं है यावत् अच्युत कल्पोपग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेमाणियदेवकम्मासीविसे।
जइ सोहम्मकप्पोववेमाणियदेव-कम्मासीविसे किं पज्जत्तासोहम्म-कप्पोवा-वेमाणियदेवकम्मासीविसे। अपज्जत्तासोहम्मकप्पोवा-वेमाणिय-देवकम्मासीविसे?
गोयमा! नो पज्जत्तासोहम्म-कप्पोवा-वेमाणियदेवकम्मासीविसे, अपज्जत्ता-सोहम्मकप्पोवा - वेमाणियदेव-कम्मा-सीविसे, एवं जाव नो पज्जत्तासहस्सार-कप्पोवा-वेमाणियदेव-कम्मासीविसे, अपज्जत्ता-सहस्सारकप्पोववेमाणिय-देवकम्मासीविसे॥

वैमानिकदेवकर्माशीविषः।
यदि सौधर्मकल्पोपकवैमानिकदेवकर्मा-शीविषः किं पर्याप्तकसौधर्मकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः? अपर्याप्तक-सौधर्मवैमानिकदेवकर्माशीविषः?

गौतम! नो पर्याप्तकसौधर्मकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः, अपर्याप्तक-सौधर्मकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः एवं यावत् नो पर्याप्तक सहस्रारकल्पोपक-वैमानिकदेवकर्माशीविषः, अपर्याप्तक-सहस्रारकल्पोपकवैमानिकदेव-कर्माशी-विषः।

वैमानिक देव कर्मआशीविष नहीं है।
यदि सौधर्म कल्पोपगवैमानिकदेव कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त सौधर्म कल्पोपगवैमानिकदेव कर्मआशीविष है? अथवा अपर्याप्त सौधर्म कल्पोपग-वैमानिक-देव कर्मआशीविष है?
गौतम! पर्याप्त सौधर्म कल्पोपगवैमानिक-देव कर्मआशीविष नहीं है, अपर्याप्त सौधर्म कल्पोपगवैमानिकदेव कर्मआशीविष है। इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार कल्पोपगवैमानिकदेव कर्मआशीविष नहीं है, अपर्याप्त सहस्रार कल्पोपगवैमानिकदेव कर्मआशीविष है।

छउमत्थ-केवलि-पदं

९६. दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा–१. धम्मत्थिकायं २. अधम्मत्थिकायं ३. आगासत्थिकायं ४. जीवं असरीर-पडिबद्धं ५. परमाणुपोग्गलं ६. सद्दं ७. गंधं ८. वातं ९. अयं जिणे भविस्सइ वा न वा भविस्सइ १०. अयं सव्व-दुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा न वा करेस्सइ।
एयाणि चेव उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा–धम्मत्थि-कायं, अधम्मत्थि-कायं, आगास-त्थिकायं, जीवं असरीर-पडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं, वातं, अयं जिणे भविस्सइ वा न वा भविस्सइ, अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा न वा करेस्सइ॥

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

दश स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेण न जानाति न पश्यति, तद्यथा–१. धर्मास्तिकायम् २. अधर्मास्तिकायम् ३. आकाशास्तिकायम् ४. जीवम् अशरीर-प्रतिबद्धं ५. परमाणुपुद्गलं ६. शब्दं ७. बन्धं ८. वातम् ९. अयं जिनो भवि-ष्यति वा न वा भविष्यति १०. अयं सर्व-दुःखानामन्तं करिष्यति वा न वा करिष्यति।

एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेण जानाति पश्यति, तद्यथा–धर्मास्तिकायम्, अधर्मास्ति-कायम्, आकाशा-स्तिकायं, जीवम् अशरीरप्रतिबद्धं, परमाणु पुद्गलं, शब्दं, गन्धं, वातम्, अयं जिनः भविष्यति वा न वा भविष्यति, अयं सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति वा न वा करिष्यति।

छद्मस्थ केवली-पद

९६. [1]दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है, जैसे–१. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. शरीरमुक्त जीव ५. परमाणु पुद्गल ६. शब्द ७. गंध ८. वायु ९. यह जिन होगा या नहीं १०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं, जैसे–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीरमुक्त जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द, गन्ध, वायु, यह जिन होगा या नहीं, यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

भाष्य

१. सूत्र ९६

छद्मस्थ और केवली–ये दो शब्द जैन आगमों में सुप्रसिद्ध हैं। इनके विभाग का मूल हेतु ज्ञान का विकास है। ज्ञानावरण क्षीण नहीं होता, तब तक चार ज्ञान उपलब्ध होते हैं–मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव। ज्ञानावरण के क्षीण होने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है। जिसका ज्ञानावरण क्षीण नहीं है, वह छद्मस्थ है। जिसका ज्ञानावरण क्षीण हो चुका, वह केवली है। ज्ञान के आधार पर छद्मस्थ के चार विकल्प बनते हैं[1]–

१. मति, श्रुत ज्ञान युक्त।
२. मति, श्रुत और अवधि ज्ञान युक्त।

---

१. भ. ८/१०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मति, श्रुत और मनःपर्यव ज्ञान युक्त।

४. मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव ज्ञान युक्त।

अवधि और मनःपर्यव—ये दो अतीन्द्रिय ज्ञान हैं। मति और श्रुत इन्द्रियजन्य ज्ञान हैं। अभयदेव सूरि ने लिखा है—यहां इन्द्रिय ज्ञान वाला छद्मस्थ विवक्षित है। उनका तर्क है—अतिशय अवधिज्ञानी परमाणु को जानता है और सूत्र का निर्देश है कि छद्मस्थ परमाणु को नहीं जानता, इससे फलित होता है कि यहां मतिश्रुतज्ञानयुक्त छद्मस्थ ही विवक्षित है।[1]

अतिशय ज्ञानी छद्मस्थ परमाणु को जान सकता है, किन्तु उसके सब पर्यायों को नहीं जान सकता इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में सर्वभाव का अर्थ सर्वपर्याय नहीं है। अभयदेव सूरि ने भगवती की वृत्ति में इसका अर्थ साक्षात्कार—इन्द्रिय प्रत्यक्ष किया है।[2] उन्होंने स्थानांग सूत्र की वृत्ति में सर्वभाव का अर्थ सर्व प्रकार किया है।[3]

दस स्थानों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और शरीरमुक्त जीव—ये चार अमूर्त हैं। अमूर्त तत्त्व को छद्मस्थ नहीं जान सकता, भले फिर वह सामान्य ज्ञानी हो अथवा अतिशय ज्ञानी। परमाणु-पुद्गल, शब्द, गंध और वायु—ये मूर्त्त हैं। परमाणु पुद्गल सूक्ष्म-सूक्ष्म है, उसे अतिशय अवधिज्ञानी जान सकता है। चाक्षुष प्रत्यक्ष से वह नहीं जाना जा सकता। शब्द और गंध सूक्ष्म-स्थूल हैं। ये भी चाक्षुष प्रत्यक्ष से नहीं जाने जा सकते। वायु भी चक्षु का विषय नहीं है। प्रतीत होता है—चाक्षुष प्रत्यक्ष की अपेक्षा से इन्हें छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय बतलाया गया है। जिन होगा और सब दुःखों का अंत करेगा, यह भविष्य का ज्ञान निरतिशय ज्ञानी के लिए संभव नहीं है।

नाण-पदं	ज्ञान-पदम्	ज्ञान-पद
९७. कतिविहे णं भंते! नाणे पण्णत्ते!	कतिविधं भदन्त! ज्ञानं प्रज्ञप्तम्?	९७. भन्ते! ज्ञान कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलनाणे॥	गौतम! पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानं, मनःपर्यवज्ञानं, केवलज्ञानम्।	गौतम! ज्ञान पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान।
९८. से किं तं आभिणिबोहियनाणे? आभिणिबोहियनाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा। एवं जहा 'रायप्पसेणइज्जे' नाणाणं भेदो तहेव इह भाणियव्वो जाव सेत्तं केवलनाणे॥	अथ किं तत् आभिनिबोधकज्ञानम्? आभिनिबोधिकज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवग्रहः, ईहा, अवायः, धारणा। एवं यथा 'राजप्रश्नीये' ज्ञानानां भेदः तथैव इह भणितव्यः यावत् तदेतत् केवलज्ञानम्।	९८. वह आभिनिबोधिक ज्ञान क्या है? आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। इस प्रकार जैसे राजप्रश्नीय में ज्ञानों के भेद की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् वह केवलज्ञान है।
९९. अण्णाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?	अज्ञानं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?	९९. भन्ते! अज्ञान कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे, विभंगनाणे॥	गौतम! त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मति-अज्ञानं, श्रुत-अज्ञानं, विभंगज्ञानम्।	गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान।
१००. से किं तं मइअण्णाणे? मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा॥	अथ किं तत् मति-अज्ञानम्? मति-अज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवग्रहः, ईहा, अवायः, धारणा।	१००. वह मतिअज्ञान क्या है? मतिअज्ञान चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

---

१. (क) भ. वृ. ८ ९६—छद्मस्थ इत्यवध्याद्यतिशयविकलो गृह्यते, अन्यथाऽमूर्त्तत्वेन धर्मास्तिकायादीनजानन्नपि परमाणवादि जानात्येवासौ, मूर्त्तत्वात्तस्य, समस्तमूर्त्तविषयत्वाच्चावधेर्विशेषस्य।

(ख) स्था., वृ. प. ४८०—नवरं छद्मस्थ इह निरतिशय एव द्रष्टव्योऽन्यथाऽवधिज्ञानी परमाण्वादि जानात्येव।

२. भ. वृ. ८/९६—अथ सर्वभावेनेत्युक्तं ततश्च तत् कथञ्चिज्जानन्नप्यनन्तपर्यायतया न जानातीति, सत्यं, केवलमेव दर्शयति संख्यानियमो व्यर्थः स्यात् घटादीनां सुबहूनामर्थानामेकेनापि सर्वपर्यायतया ज्ञातुमशक्यत्वात्, सर्वभावेन च साक्षात्कारेण चक्षुष्प्रत्यक्षेणेति हृदयम्।

३. स्था., वृ. प. ४८०—सव्वभावेणं ति सर्वप्रकारेण स्पर्शरसगंधरूपज्ञानेन घटमेवेत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०१. से किं तं ओग्गहे?
ओग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य। एवं जहेव आभिणि-बोहियनाणं तहेव, नवरं–एगट्ठियवज्जं जाव नोइंदिय-धारणा। सेत्तं धारणा, सेत्तं मइअण्णाणे॥

अथ किं सः अवग्रहः?
अवग्रहः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च। एवं यथैव आभिनिबोधिकज्ञानं तथैव, नवरं–एकार्थिकवर्जं यावत् नोइन्द्रियधारणा। सा एषा धारणा। तदेतत् मतिअज्ञानम्।

१०१. वह अवग्रह क्या है?
अवग्रह दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। इस प्रकार जैसे आभिनिबोधिक ज्ञान की वक्तव्यता है वैसे ही मतिअज्ञान की वक्तव्यता। इतना विशेष है कि इसमें एकार्थिक नामों का उल्लेख करणीय नहीं है यावत् यह पाठ नोइंद्रिय धारणा तक वक्तव्य है। वह है धारणा। वह है मति अज्ञान।

१०२. से किं तं सुयअण्णाणे?
सुयअण्णाणे–जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धि-मइ-विग्गपियं, तं जहा–भारहं, रामायणं जहा नंदीए जाव चत्तारि वेदा संगोवंगा। सेत्तं सुयअण्णाणे॥

अथ किं तत् श्रुत-अज्ञानम्?
श्रुत-अज्ञानं–यत् इदं अज्ञानिभिः मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धि-मतिविकल्पितम्, तद्यथा–भारतं, रामायणं यथा नन्द्यां यावत् चत्वारः वेदाः साङ्गोपाङ्गाः। तदेतत् श्रुत-अज्ञानम्।

१०२. वह श्रुतअज्ञान क्या है?
श्रुतअज्ञान–जो यह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, स्वच्छन्द बुद्धि और मति द्वारा विरचित है जैसे–भारत, रामायण। जैसे नंदी में यावत् अंग, उपांग सहित चार वेद। वह श्रुत-अज्ञान है।

१०३. से किं तं विभंगनाणे?
विभंगनाणे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–गामसंठिए, नगरसंठिए, जाव सण्णिवेससंठिए, दीवसंठिए, समुद्द-संठिए, वाससंठिए, वासहरसंठिए, पव्वयसंठिए, रुक्खसंठिए, थूभ-संठिए, हयसंठिए, गयसंठिए, नरसंठिए, किन्नर-संठिए, किंपुरिससंठिए, महोरगसंठिए, गंधव्व-संठिए, उसभसंठिए, पसुसंठिए, पसयसंठिए, विहगसंठिए, वानर-संठिए–नाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते॥

अथ किं तत् विभङ्गज्ञानम्?
विभङ्गज्ञानम् अनेकविधं प्रज्ञप्तं तद्यथा–ग्रामसंस्थितं, नगरसंस्थितं यावत् सन्निवेशसंस्थितं, द्वीपसंस्थितं, समुद्रसंस्थितं, वर्षसंस्थितं, वर्षधरसंस्थितं, पर्वतसंस्थितं, रुक्षसंस्थितं, स्तूपसंस्थितं, हयसंस्थितं, गजसंस्थितं, नरसंस्थितं, किन्नरसंस्थितं, किम्पुरुषसंस्थितं, महोरगसंस्थितं, गन्धर्व-संस्थितं, ऋषभसंस्थितं, पशुसंस्थितं, 'पसय' संस्थितं, विहगसंस्थितं, वानर-संस्थितं–नानासंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तम्।

१०३. वह विभंगज्ञान क्या है?
विभंगज्ञान अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–ग्रामसंस्थित (गांव के आकार वाला) नगर संस्थित यावत् सन्निवेश-संस्थित, द्वीपसंस्थित, समुद्रसंस्थित, वर्षसंस्थित (भरत क्षेत्र आदि के आकार वाला), वर्षधरसंस्थित (हिमवत आदि वर्षधर पर्वत के आकार वाला), पर्वतसंस्थित, वृक्षसंस्थित, स्तूपसंस्थित, हयसंस्थित (अश्व के आकार वाला), गजसंस्थित, नरसंस्थित, किन्नरसंस्थित किंपुरुष-संस्थित, महोरगसंस्थित, गंधर्व-संस्थित, वृषभसंस्थित, पशुसंस्थित, मृगाकार-संस्थित, विहगसंस्थित (पक्षी के आकार वाला), वानरसंस्थित–नाना संस्थानों के आकार वाला प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र ९७-१०३

भगवती सूत्रगत ज्ञान की परम्परा राजप्रश्नीय और नंदीगत ज्ञान की परम्परा में समानता और असमानता–दोनों के तत्त्व विद्यमान हैं। समानता के जितने तत्त्व हैं, उनका यहां संक्षेपीकरण किया गया और उनके विस्तार के लिए राजप्रश्नीय और नंदीसूत्र देखने का निर्देश दिया गया।

असमानता के तत्त्व ये हैं–नंदी ज्ञान मीमांसा का मुख्य आगम है। उसमें अज्ञान के दो ही प्रकार किए गए हैं, विभंगज्ञान का उल्लेख नहीं है; उसके संस्थान भी निर्दिष्ट नहीं हैं। मति अज्ञान के अवग्रह आदि का भी उल्लेख नहीं है।

राजप्रश्नीय में केवल ज्ञान के भेद बतलाए गए हैं। उसमें अज्ञान की चर्चा नहीं है। प्रतीत होता है–विभंगज्ञान का उल्लेख सर्वप्रथम भगवती में हुआ है। इसके पश्चात् अनुयोगद्वार में अज्ञान के तीन प्रकार उपलब्ध हैं।[1] उमास्वाति ने अवधिज्ञान के विपर्यय का उल्लेख किया है।[2]

स्थानांग में विभंगज्ञान के सात भेद विस्तार के साथ निरूपित

१. अणु. २८५–खओवसमिया मइअन्नाणलद्धी खओवसमिया सुयअन्नाणलद्धी खओवसमिया विभंगनाणलद्धी।
२. त. सू. भा. वृ. १/३२–मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं।[1] प्रस्तुत प्रकरण में संस्थान के आधार पर विभंगज्ञान के अनेक प्रकारों का उल्लेख है। आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि और विशेषावश्यक भाष्य में अवधिज्ञान के संस्थानों का निरूपण उपलब्ध है। उनमें क्षेत्र की अपेक्षा संस्थानों की चर्चा की गई है। यह विमर्शनीय है। आवश्यक निर्युक्ति में अवधिज्ञान के क्षेत्र परिमाण पर विचार कर तदनन्तर उसके संस्थान पर विचार किया गया है। पैंतालीस गाथा से तिरेपन गाथा तक अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का निरूपण है।[2] चौपनवीं और पचपनवीं गाथा में उसके संस्थान का निरूपण किया गया है।[3] जघन्य अवधिज्ञान का संस्थान जल बिन्दु के समान, उत्कृष्ट अवधिज्ञान का संस्थान वर्तुल और लोक की अपेक्षा किंचित् आयत तथा मध्यम अवधिज्ञान का संस्थान क्षेत्र की अपेक्षा अनेक प्रकार का होता है। जैसे–

१. छोटी नौका–डोंगी। इस आकार का अवधिज्ञान नैरयिकों के होता है।

२. पल्यक–अनाज का कोठा। इस आकार का अवधिज्ञान भवनपति देवों के होता है।

३. पटह–इस आकार का अवधिज्ञान वाणमंतर देवों के होता है।

४. झल्लरी–इस आकार का अवधिज्ञान ज्योतिष्क देवों के होता है।

५. मृदंग–इस आकार का अवधिज्ञान कल्पवासी (सौधर्म से अच्युत तक) वैमानिक देवों के होता है।

६. पुष्प चंगेरी–फूलों की टोकरी। इस आकार का अवधिज्ञान ग्रैवेयक देवों के होता है।

७. यवनालक–कन्या का चोला। इस आकार का अवधिज्ञान अनुत्तरोपपातिक देवों के होता है।[4]

नैरयिक और देवों का अवधिज्ञान नियत संस्थान वाला होता है। तिर्यंच और मनुष्यों का अवधिज्ञान अनियत संस्थान वाला भी होता है।[5]

तिर्यंच और मनुष्य के मध्यम अवधिज्ञान के संस्थान भी अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे–

१. हय संस्थान

२. गज संस्थान

३. पर्वत संस्थान।[6]

निर्युक्ति में अवधिज्ञान के क्षेत्र परिमाण और संस्थान का अन्तर विमर्शनीय है। चूर्णिकार के अनुसार संस्थान क्षेत्र की अपेक्षा से है फिर क्षेत्र परिमाण और संस्थान के बीच भेदरेखा खींचना आवश्यक है। नंदी में अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र तीन समय का आहारक सूक्ष्म पनक जीव बतलाया गया है।[7] आवश्यक निर्युक्ति में जघन्य अवधिज्ञान का संस्थान जल बिन्दु बतलाया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि क्षेत्र परिमाण ज्ञेय की दृष्टि से बतलाया गया है और उसका संस्थान ज्ञान के आकार की दृष्टि से बतलाया गया है।

षट्खण्डागम में ये संस्थान शरीर के बतलाए गए हैं। उसका उल्लेख है–जैसे शरीर और इन्द्रियों का प्रतिनियत संस्थान होता है, वैसे अवधिज्ञान का प्रतिनियत नहीं होता किन्तु अवधि- ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम प्राप्त जीव प्रदेशों के करण-रूप शरीर प्रदेश अनेक संस्थानों से संस्थित होते हैं।[8] वे संस्थान शरीरगत होते हैं। कुछ संस्थानों के नामों का उल्लेख भी मिलता है। श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक, नंदावर्त आदि अनेक आकार होते हैं।[9]

धवला में विभंगज्ञान के क्षेत्र संस्थानों का उल्लेख मिलता है।[10] आवश्यक निर्युक्ति के व्याख्याकारों ने अवधिज्ञान के संस्थानों को शरीरगत संस्थान नहीं माना। गोम्मटसार, धवला में उन्हें शरीरगत संस्थान माना गया है। यह शरीरगत संस्थान वाला मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

अवधिज्ञान की रश्मियों का निर्गमन शरीर के माध्यम से होता है। जैसे जालीदार ढक्कन के छिद्रों से दीये का प्रकाश बाहर फैलता है वैसे ही अवधिज्ञान का प्रकाश शरीर के स्पर्धकों के माध्यम से बाहर फैलता है, यह आवश्यक वृत्ति में स्पष्ट है।[11] नंदी चूर्णि में भी इसका उल्लेख मिलता है।[12] श्वेताम्बर आचार्यों ने अवधिज्ञान की प्रकाश रश्मियों के संस्थान का प्रतिपादन किया किन्तु उनके संस्थान का आधार शरीरगत संस्थान बनते हैं, इसका उल्लेख नहीं किया। शरीरगत संस्थान के आधार पर ही प्रकाश रश्मियों के संस्थान का निर्धारण हो सकता है।

प्रस्तुत सूत्र में विभंगज्ञान को नाना संस्थान संस्थित कहा गया है किन्तु अवधिज्ञान के संस्थान का कोई उल्लेख नहीं है।

शब्द विमर्श

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान–आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान–दोनों इन्द्रियजन्य ज्ञान हैं। अभयदेव सूरि के अनुसार आभिनिबोधिक ज्ञान

---

१. ठाणं ७/२।

२. आ. नि. पृ. २४-२६।

३. वही, पृ. २६।

४. (क) आव. चू. पृ. ५५-५६।
(ख) वि. भा. गा. १०६-१११।

५. वही, १११

६. आ. चू. पृ. ५६-५९–इयाणिं तिरियमणुयाणं जारिसं ओहिस्स संठाणं तं भणति, सो य तिरियमणुओहि हयगयादी संठाणसंठितो पुव्विं चेव भणितोत्ति..... तहा हयसंठाणसंठियं खेत्तं पडुच्च हयसंठिओ भवति, गयसंठाणसंठियं खेत्तं पडुच्च गयसंठितो भवति. एवमाई, पव्वयसंठाणसंठियं खेत्तं पडुच्च पव्वयसंठिओ भवति. एवमादि।

७. नंदी सू.–१८ गाथा १।

८. ष. खं. पुस्तक १३ पृ. २९६ सू. ५७–खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा।
..... जहा कायाणिंदियाणं च पडिणियदं संठाणं तहा ओहिणाणस्स ण होदि किन्तु ओहिणाणावरणीयखओवसमगदजीवपदेसाणं करणीभूदसरीरपदेसा अणेयसंठाणसंठिदा होंति।

९. वही, पुस्तक १३ पृ. २९७, सू. ५८–सिरिवच्छकलससंख-सोत्थियणंदावत्तादीणि सठाणाणि णादव्वाणि भवंति।

१०. वही, पुस्तक १३ पृ. २९८ सू. ५८।

११. आ. हा. वृ. सू. ६१–इह फड्डकानि अवधिज्ञाननिर्गमद्वाराणि अथवा गवाक्षजालादिव्यवहितप्रदीपप्रभावफड्डकानीव फड्डकानि।

१२. नंदी चू. सू. १३ पृष्ठ १५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला बोध है।[1] श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला श्रुतग्रन्थानुसारी बोध है।[2]

अवधिज्ञान–इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष अवधान से होने वाला ज्ञान अवधिज्ञान है। इससे अधोवर्ती वस्तु का परिच्छेद होता है।[3]

मनःपर्यवज्ञान–मनोवर्गणा के आधार पर मन के भावों को जानने वाला ज्ञान।

केवलज्ञान–सब द्रव्यों और सब पर्यायों का साक्षात् करने वाला ज्ञान।

मतिअज्ञान–मति ज्ञान का विपर्यय।

श्रुत अज्ञान–श्रुत ज्ञान का विपर्यय।

विभंगज्ञान–अवधि ज्ञान का विपर्यय।

० **अवग्रह**–इन्द्रिय और अर्थ का संयोग होने पर दर्शन के पश्चात् जो सामान्य का ग्रहण होता है, उसे अवग्रह कहा जाता है।[4]

० **व्यंजनावग्रह**–व्यंजन के द्वारा व्यंजन के ग्रहण– अव्यक्त ज्ञान को व्यंजनावग्रह कहा जाता है।[5]

० **अर्थावग्रह**–व्यंजनावग्रह की अपेक्षा कुछ व्यक्त किन्तु जाति, द्रव्य, गुण आदि कल्पना से रहित जो अर्थ का ग्रहण होता है, उसे अर्थावग्रह कहा जाता है, जैसे–यह कुछ है।[6]

० **ईहा**–'अमुक होना चाहिये' इस प्रकार के प्रत्यय को ईहा कहा जाता है।[7]

० **अवाय**–'अमुक ही है' ऐसे निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय कहा जाता है, जैसे–यह शब्द ही है।[8]

० **धारणा**–निर्णयात्मक ज्ञान की अवस्थिति।[9]

० **पसय**–Indian Bison–गौर, दो खुर वाला जंगली पशु।

जीवाणं नाणि-अण्णाणित्त-पदं

१०४. जीवा णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! जीवा नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी, अत्थेगतिया एगनाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणि-बोहियनाणी सुयनाणी य। जे तिण्णाणी ते आभिणि-बोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, अहवा आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, मणपज्जवनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहि-नाणी, मणपज्जवनाणी। जे एगनाणी ते नियमाकेवलनाणी॥

जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी। जे दुअण्णाणी ते मइ-अण्णाणी सुयअण्णाणी य। जे ति-अण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुय-अण्णाणी, विभंगनाणी॥

जीवानां ज्ञानि-अज्ञानित्व-पदम्

जीवाः भदन्त! किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! जीवाः ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानि-नोऽपि। ये ज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-ज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः, अस्त्येकके चतु-र्ज्ञानिनः, अस्त्येकके एक-ज्ञानिनः। ये द्विज्ञानिनः ते आभिनि-बोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च। ये त्रि-ज्ञानिनः ते आभिनि-बोधिकज्ञानिनः, श्रुत-ज्ञानिनः, अवधि-ज्ञानिनः, अथवा आभि-निबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, मनःपर्यव-ज्ञानिनः। ये चतुर्ज्ञानिनः ते आभि-निबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधि-ज्ञानिनः, मनःपर्यव-ज्ञानिनः। ये एकज्ञानिनः ते नियमात् केवलज्ञानिनः।

ये अज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-अज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रिअज्ञानिनः। ये द्वि-अज्ञानिनः ते मति-अज्ञानिनः श्रुत-अज्ञानिनश्च। ये त्रि-अज्ञानिनः ते मति-अज्ञानिनः, श्रुत-अज्ञानिनः, विभंगज्ञानिनः।

जीवों का ज्ञानि-अज्ञानित्व-पद

१०४. 'भन्ते! जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! जीव ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछ दो ज्ञान वाले, कुछ तीन ज्ञान वाले, कुछ चार ज्ञान वाले और कुछ एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं अथवा आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान वाले हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमतः केवलज्ञानी हैं।

जो अज्ञानी हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले, कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान वाले हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान वाले हैं।

भाष्य

१. सूत्र १०४

प्रस्तुत सूत्र में जीव शब्द संसारी जीव के लिए विवक्षित है। सम्यक्दृष्टि का बोध ज्ञान और मिथ्यादृष्टि का बोध अज्ञान कहलाता है। जीव शब्द सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों का संग्राहक है इसलिए उसे ज्ञानी और अज्ञानी दोनों कहा गया है।

ज्ञान पांच हैं। उसकी उपलब्धि की दृष्टि से चार विकल्प होते हैं:–

१. भ. वृ. ८ ९०–आभिनिबोधिकं ज्ञानं इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तो बोध इति।
२. वही, ८ ९०–श्रुतज्ञानं–इन्द्रियमनोनिमित्तः श्रुतग्रन्थानुसारी बोध इति।
३. वही, ८ ९०–अवधीयते–अधोऽधो विस्तृतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः।
४. जैन सिद्धान्त दीपिका पृ. ३७।
५. वही पृ. ३७।
६. जैन सिद्धांत दीपिका पृ. ३८।
७. वही पृ. ३८।
८. वही पृ. ३८।
९. वही पृ. ३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **द्विज्ञानी**—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान सम्पन्न।

२. **त्रिज्ञानी**—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्पन्न अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्यवज्ञान सम्पन्न।

३. **चतुर्ज्ञानी**—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान सम्पन्न।

४. **एकज्ञानी**—नियमतः केवलज्ञान सम्पन्न।

अज्ञान तीन हैं। उसकी उपलब्धि की दृष्टि से दो विकल्प होते हैं—

द्वि-अज्ञानी—मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान से सम्पन्न।

त्रि-अज्ञानी—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंग ज्ञान से सम्पन्न।

१०५. नेरइया णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी, वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी, तं जहा—आभिणिबोहियनाणी, सुय-नाणी, ओहिनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी। एवं तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए॥

नैरयिकाः भदन्त! किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते नियमात् त्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-अज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रिअज्ञानिनः। एवं त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

१०५. [1]भन्ते! नैरयिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, जैसे—आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं। जो अज्ञानी हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले, कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन अज्ञान की भजना है।

भाष्य

१. सूत्र १०५

जो असंज्ञी जीव नरक में उत्पन्न होते हैं, उन्हें अपर्याप्तक अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता इसलिए उत्पत्ति काल में उनमें दो अज्ञान होते हैं। इस अपेक्षा से द्वि-अज्ञानी विकल्प बनता है। जो मिथ्यादृष्टि संज्ञी नरक में उत्पन्न होते हैं, उनमें भव प्रत्यय विभंगज्ञान होता है। इस प्रकार वे त्रि-अज्ञानी होते हैं। यह अभयदेव सूरि की व्याख्या है।[1]

१०६. असुरकुमारा णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?
जहेव नेरइया तहेव, तिण्णि नाणाणि नियमा, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए? एवं जाव थणियकुमारा॥

असुरकुमाराः भदन्त! किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
यथैव नैरयिकाः तथैव, त्रीणि ज्ञानानि नियमात्, त्रीणि अज्ञानानि भजनया एवं यावत् स्तनितकुमाराः।

१०६. [2]भन्ते! असुरकुमार क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
जैसे नैरयिकों की वक्तव्यता वैसे ही यहां वक्तव्य है—तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र १०६

भवनपति और व्यंतर देवों (सूत्र १०८) में असंज्ञी अमनस्क तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। प्रस्तुत आगम के प्रथम शतक में स्पष्ट निर्देश है कि असंज्ञी जीव जघन्यतः भवनपति, उत्कृष्टतः वानमंतर में उत्पन्न होते हैं।[2] इसलिए उनमें नैरयिक की भांति द्वि-अज्ञानी और त्रि-अज्ञानी दोनों विकल्प मिलते हैं।

१०७. पुढविक्काइया णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य। एवं जाव वणस्सइकाइया॥

पृथ्वीकायिकाः भदन्त! किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! नो ज्ञानिनः, अज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते नियमात् द्वि-अज्ञानिनः—मति-अज्ञानिनः, श्रुत-अज्ञानिनश्च। एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः।

१०७. [3]भन्ते! पृथ्वीकायिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान वाले। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

---

१. भ. वृ. ८/१०५—असंज्ञिनः खलु ये नारकेषूत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तकावस्थायां विभंगाभावाद्यमेवाज्ञानद्वयमिति ते द्व्यज्ञानिनः। ये तु मिथ्यादृष्टि संज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते तेषां भवप्रत्ययो विभंगो भवतीति ते त्र्यज्ञानिनः।

२. (क) भ. १/११३।
(ख) वही, १/११३ का भाष्य पृ. ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८. बेइंदियाण पुच्छा।
गोयमा! वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी, तं जहा—आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य। एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि॥

द्वीन्द्रियाणाम् पृच्छा।
गौतम! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते नियमात् द्विज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनश्च। ये अज्ञानिनः ते नियमात् द्वि-अज्ञानिनः तद्यथा—मति-अज्ञानिनः, श्रुत-अज्ञानिनश्च। एवं त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाः अपि।

१०८. द्वीन्द्रिय की पृच्छा।
गौतम! ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं वे नियमतः दो ज्ञान वाले होते हैं, जैसे—आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान वाले; जो अज्ञानी होते हैं वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं, जैसे—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान वाले। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

१०९. पंचिंदियतिरिक्ख - जोणियाणं पुच्छा।
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।
जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी।
जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया ति-अण्णाणी। एवं तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए। मणुस्सा जहा जीवा, तहेव पंच नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए। वाणमंतरा जहा नेरइया। जोइसियवेमाणियाणं तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि नियमा॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां पृच्छा।
गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्विज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-अज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रि-अज्ञानिनः। एवं त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि भजनया। मनुष्याः यथा जीवाः, तथैव पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि भजनया। वानमन्तराः यथा नैरयिकाः। ज्योतिष्क-वैमानिकानां त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि नियमात्।

१०९. पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक की पृच्छा।
गौतम! ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं उनमें कुछ दो ज्ञान वाले और कुछ तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले और कुछ तीन अज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य हैं। जीव की भांति उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। वानमन्तर नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं—न्यून और अधिक नहीं होते।

११०. सिद्धाणं भंते! पुच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी; नियमा एगनाणी—केवलनाणी॥

सिद्धानां भदन्त! पृच्छा।
गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः, नियमात् एकज्ञानिनः—केवलज्ञानिनः।

११०. भन्ते! सिद्धों की पृच्छा।
गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। नियमतः एक ज्ञानी—केवलज्ञानी हैं।

भाष्य

१. सूत्र १०७-११०

सम्यक्त्व छूट रहा है और मिथ्यात्व अभी आया नहीं है—इस अंतराल अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व से गिरने वाला जीव विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होता है, उस समय अपर्याप्त अवस्था में उसमें सास्वादन सम्यग्दर्शन लब्ध होता है इस अपेक्षा से वह द्वि-ज्ञानी है।[1] जयाचार्य ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।[2]

इस प्रसंग में आचार्यवर ने कर्मग्रन्थ के द्वारा सम्मत एकेन्द्रिय में सास्वादन सम्यग्दर्शन का उल्लेख कर उसे आगम से असम्मत बतलाया है।[3] कर्मग्रन्थ का मत है—सास्वादन सम्यक्त्व में पांच अपर्याप्त हैं—बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा दो संज्ञी अपर्याप्त और पर्याप्त—कुल सात जीवस्थान हैं।[4]

प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय में ज्ञान का निषेध किया गया है और कर्मग्रन्थ में एकेन्द्रिय में सास्वादन सम्यक्त्व स्वीकार किया गया है। इसका फलित है—वह दो ज्ञान वाला भी है। यह आगम से भिन्न मत है।

---

१. भ. वृ. ८. १०८- द्वीन्द्रियाः केचित् ज्ञानिनोऽपि सास्वादनसम्यग्दर्शनभावेनाऽपर्याप्तकावस्थायां भवन्तीत्यत उच्यते।

२. भ. जो. २. १३५. १०-
सम्यक्त्व वमतो जाण, विकलेन्द्री में ऊपजै।
सास्वादन गुणठाण अपर्याप्त विषे हुवै॥

३. वही, २. १३५. १६-
एवं जाव वणस्सइ कहियै, ज्ञानी नहिं ते अज्ञानी।
कर्म ग्रंथ दूजो गुणठाणो, आख्यो तेह विरुध जाणी॥

४. कर्मग्रंथ भाग ४ गुणस्थान अधिकार गाथा ४५
सव्व जियठाण मिच्छे, सग सासणि पणअपज्ज सन्निदुगं।
समे सन्नी दुविहो, एसे सु संनिपज्जत्तो॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अंतरालगतिं पडुच्च–

१११. निरयगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। तिण्णि नाणाइं नियमा, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए॥

अन्तरालगतिं प्रतीत्य–

नैरयकगतिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः
गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। त्रीणि ज्ञानानि नियमात्, त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

अन्तरालगति की अपेक्षा से

१११. [1]भन्ते! नरक की अन्तराल गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

११२. तिरियगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी। अण्णाणी?
गोयमा! दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा॥

तिर्यग्गतिकाः भदन्त! जीवा किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! द्वे ज्ञाने, द्वे अज्ञाने नियमात्।

११२. भन्ते! तिर्यंच की अन्तराल गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! नियमतः दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान होते हैं।

११३. मणुस्सगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा। देवगतिया जहा निरयगतिया॥

मनुष्यगतिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! त्रीणि ज्ञानानि भजनया, द्वे अज्ञाने नियमात्। देवगतिकाः यथा निरयगतिकाः।

११३. मनुष्य की अंतराल गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! तीन ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं। देव की अंतराल गति में विद्यमान जीवों की नरक की अंतराल गति में विद्यमान जीवों की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र १११-११३

प्रस्तुत प्रकरण में निरयगतिक, तिर्यक्गतिक और मनुष्यगतिक का प्रयोग सापेक्ष है। निरयगति में उत्पन्न होने वाला जीव वर्तमान में अंतराल गति में है, उसे निरयगतिक कहा गया है। इसी प्रकार तिर्यंच और मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाले जीवों को अंतरालगति की अपेक्षा क्रमशः तिर्यक्गतिक और मनुष्यगतिक कहा गया है। नैरयिक में तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, यह इस अपेक्षा से कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि नैरयिकों के अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक होता है। भव का प्रारम्भ अन्तराल गति के पहले समय से होता है, अतः भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान अन्तराल गति में ही हो जाता है।

तीन अज्ञान की भजना की अपेक्षा यह है–असंज्ञी जीव नरक में जाते हैं। उनके अपर्याप्तक अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता। संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव नरक में जाते हैं, उनके भवप्रत्ययिक विभंगज्ञान अंतराल गति में हो जाता है। इस अपेक्षा से अज्ञान के दो नियम बन जाते हैं।[2]

तिर्यक्गतिक में दो ज्ञान का नियम इस अपेक्षा से है कि तिर्यक् गति में उत्पन्न होने वाला सम्यक्दृष्टि जीव अवधि ज्ञान को साथ लेकर तिर्यंचगति में उत्पन्न नहीं हो सकता, दो अज्ञान का नियम इस अपेक्षा से है कि तिर्यक्गति में उत्पन्न होने वाला मिथ्यादृष्टि जीव भी विभंगज्ञान को साथ लेकर तिर्यंच गति में उत्पन्न नहीं हो सकता।[3]

मनुष्यगतिक में तीन ज्ञान की भजना इस अपेक्षा से है कि कुछ सम्यक्दृष्टि जीव अवधिज्ञान सहित मनुष्यगति में उत्पन्न होते हैं। यह अभिमत है कि तीर्थंकर अवधिज्ञान सहित उत्पन्न होते हैं। कुछ सम्यग्दृष्टि जीव अवधिज्ञान रहित उत्पन्न होते हैं इसलिए तीन ज्ञान और दो ज्ञान–ये दो विकल्प बन जाते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव विभंगज्ञान के साथ मनुष्य गति में उत्पन्न नहीं होते इसलिए उनमें नियमतः दो अज्ञान होते हैं।[4]

देवगतिक की वक्तव्यता निरयगतिक के समान है।

११४. सिद्धगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सिद्धा॥

सिद्धगतिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा सिद्धाः।

११४. [1]भन्ते! सिद्ध की अंतराल गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं?
सिद्धों (सूत्र ८/११०) की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ११४

सिद्ध में एक केवलज्ञान होता है। सिद्धिगतिक में भी एक केवलज्ञान होता है। सिद्ध और सिद्धिगतिक का समय एक ही है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है फिर भी गति के प्रकरण में उनका उल्लेख किया गया है।

१. भ. वृ. ८. १११।
२. वही, ८. ११२।
३. वही, ८/११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदियं पडुच्च–

११५. सइंदिया णं भंते! जीवा किं नाणी! अण्णाणी?
गोयमा! चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए॥

इन्द्रियं प्रतीत्य–

सइन्द्रियाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

इन्द्रिय की अपेक्षा से

११५. भन्ते! स-इन्द्रिय जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

११६. एगिंदिया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा पुढविकाइया। बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया णं दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा। पंचिंदिया जहा सइंदिया॥

एकेन्द्रियाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा पृथ्वीकायिकाः। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाः द्वे ज्ञाने, द्वे अज्ञाने नियमात्। पञ्चेन्द्रियाः यथा स-इन्द्रियाः।

११६. भन्ते! एकेन्द्रिय जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
पृथ्वीकायिक जीवों की भांति वक्तव्यता। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के नियमतः दो ज्ञान और दो अज्ञान होते हैं। पंचेन्द्रिय जीव सइन्द्रिय जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

११७. अणिंदिया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सिद्धा॥

अनिन्द्रियाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा सिद्धाः।

११७. भन्ते! अनिन्द्रिय जीव क्या ज्ञानी हैं। अज्ञानी हैं।
सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ११५-११७

ज्ञान के विकास की दो अवस्थाएं हैं– स-इन्द्रिय और अनिन्द्रिय। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव–ये चार ज्ञान सेन्द्रिय कोटि के ज्ञान हैं। मति और श्रुत–इन दो ज्ञानों में इन्द्रिय ज्ञान का प्रत्यक्ष उपयोग रहता है। अवधि और मनःपर्यव में इन्द्रिय ज्ञान का परोक्ष उपयोग रहता है। ये अतीन्द्रिय ज्ञान हैं। फिर भी सर्वथा इन्द्रिय निरपेक्ष नहीं हैं। केवलज्ञान अतीन्द्रियज्ञान है। वह इन्द्रिय के उपयोग से सर्वथा निरपेक्ष है।

वास्तव में अतीन्द्रिय कोटि का ज्ञान केवलज्ञान ही है।

ज्ञान के ये विकल्प लब्धि की दृष्टि से किए गए हैं। उपयोग की दृष्टि से सब जीवों के एक ही ज्ञान होता है।[1]

इन्द्रिय चेतना वाले जीव में ज्ञान के तीन विकल्प होते हैं–

१. दो ज्ञान
२. तीन ज्ञान
३. चार ज्ञान

अनिन्द्रिय चेतना वाले जीव में एक ही ज्ञान–केवलज्ञान होता है।

कायं पडुच्च–

११८. सकाइया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए। पुढविक्का-इया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अण्णाणी, नियमा दुअण्णाणी, तं जहा–मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। तसकाइया जहा सकाइया॥

कायं प्रतीत्य–

सकायिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि-भजनया। पृथ्वीकायिकाः यावत् वनस्पति-कायिकाः नो ज्ञानिनः, अज्ञानिनः, नियमात् द्वि-अज्ञानिनः, तद्यथा–मति-अज्ञानिनश्च श्रुत-अज्ञानिनश्च। त्रसकायिकाः यथा सकायिकाः।

काय की अपेक्षा

११८. भन्ते! सकायिक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पति-कायिक जीव ज्ञानी नहीं हैं; अज्ञानी हैं, नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे– मति-अज्ञान और श्रुतअज्ञान वाले। त्रसकायिक जीव सकायिक जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

११९. अकाइया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सिद्धा॥

अकायिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा सिद्धाः।

११९. भन्ते! अकायिक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

---

१. भ. वृ. ८/११५–व्यादिभाक्श्च ज्ञानानि लब्ध्यपेक्षया उपयोगापेक्षया तु सर्वेषामेकैकमेव ज्ञानम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ११८-११९

आत्मा के दो रूप हैं–

१. सकाय–सशरीरी।

२. अकाय–अशरीरी।

सकाय में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान के सब विकल्प मिलते हैं। अकाय सिद्ध होता है। उसमें एक ही ज्ञान होता है–केवलज्ञान।

सुहुम-बादरं पडुच्च–

१२०.सुहुमा णं भंते! जीवा किं नाणी? जहा पुढविक्काइया॥

सूक्ष्मबादरं प्रतीत्य–

सूक्ष्माः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? यथा पृथ्वीकायिकाः।

सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा

१२०. भन्ते! सूक्ष्म जीव क्या ज्ञानी हैं? पृथ्वीकायिक जीवों की भांति वक्तव्यता।

१२१. बादरा णं भंते! जीवा किं नाणी? जहा सकाइया॥

बादराः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? जहा सकायिकाः।

१२१. भन्ते! बादर जीव क्या ज्ञानी हैं? सकायिक की भांति वक्तव्यता।

१२२. नोसुहुमा-नोबादरा णं भंते! जीवा किं नाणी? जहा सिद्धा॥

नो सूक्ष्माः-नो बादराः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? यथा सिद्धाः।

१२२. भन्ते! नोसूक्ष्म- नोबादर जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं? सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र १२०-१२२

सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिनका शरीर अप्रतिघात वाला होता है–न किसी दूसरे को बाधा पहुंचाता है और न किसी दूसरे से बाधित होता है, वे सूक्ष्म जीव कहलाते हैं। जिनका शरीर प्रतिघातयुक्त होता है, वे बादर कहलाते हैं। सूक्ष्म जीव केवल एकेन्द्रिय में ही होते हैं। वे पृथ्वीकाय की भांति नियमतः दो-अज्ञानी हैं। बादर जीव सकायिक (सूत्र ११८) की भांति वक्तव्य हैं। सिद्ध अशरीरी होने के कारण नोसूक्ष्म-नोबादर होते हैं।

पज्जत्तापज्जत्तं पडुच्च–

१२३. पज्जत्ता णं भंते! जीवा किं नाणी? जहा सकाइया॥

पर्याप्तापर्याप्तं प्रतीत्य–

पर्याप्ताः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? यथा सकायिकाः।

पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा

१२३. भन्ते! पर्याप्त जीव क्या ज्ञानी हैं? सकायिक जीवों की भांति वक्तव्यता।

१२४. पज्जत्ता णं भंते! नेरइया किं नाणी?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमा। जहा नेरइया एवं थणियकुमारा। पुढविक्काइया जहा एगिंदिया। एवं जाव चउरिंदिया॥

पर्याप्ताः भदन्त! नैरयिकाः किं ज्ञानिनः?

त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि नियमात्। यथा नैरयिकाः एवं स्तनितकुमाराः। पृथ्वीकायिकाः यथा एकेन्द्रियाः। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाः।

१२४. भन्ते! पर्याप्त नैरयिक जीव क्या ज्ञानी हैं? नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है। पर्याप्त पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता एकेन्द्रिय की भांति ज्ञातव्य है। इसी प्रकार यावत् पर्याप्त चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

१२५. पज्जत्ता णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नाणी? अण्णाणी? तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा–भयणाए। मणुस्सा जहा सकाइया। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया॥

पर्याप्ताः भदन्त! पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः? त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया। मनुष्याः यथा सकायिकाः। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा नैरयिकाः।

१२५. भन्ते! पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं? तीन ज्ञान, तीन अज्ञान की भजना है। पर्याप्त मनुष्यों की वक्तव्यता सकायिक जीवों की भांति ज्ञातव्य है। पर्याप्त वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १२५

तिर्यक्पंचेन्द्रिय—कुछ सम्यग्दृष्टि जीवों में अवधिज्ञान होता है, कुछ में नहीं होता, इस अपेक्षा से तीन ज्ञान की भजना है। कुछ मिथ्यादृष्टि जीवों में विभंगज्ञान होता है, कुछ में नहीं होता, इस अपेक्षा से उनमें तीन अज्ञान की भजना है।

१२६. अपज्जत्ता णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—भयणाए॥

अपर्याप्ताः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि—भजनया।

१२६. 'भन्ते! अपर्याप्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

भाष्य

१. सूत्र १२६

अपर्याप्तक अवस्था में अवधिज्ञान और विभंगज्ञान की भजना है। देखें सूत्र १११-११३ का भाष्य।

१२७. अपज्जत्ता णं भंते! नेरइया किं नाणी? अण्णाणी?

तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए। एवं जाव थणियकुमारा। पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया जहा एगिंदिया॥

अपर्याप्ताः भदन्त! नैरयिकाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

त्रीणि ज्ञानानि नियमात्, त्रीणि अज्ञानानि भजनया। एवं यावत् स्तनितकुमाराः। पृथ्वीकायिकाः यावत् वनस्पतिकायिकाः यथा एकेन्द्रियाः।

१२७. 'भन्ते! अपर्याप्त नैरयिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता एकेन्द्रिय की भांति ज्ञातव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १२७

नैरयिक में तीन ज्ञान का नियम और तीन अज्ञान की भजना। देखें सूत्र १११-११३ का भाष्य।

१२८. बेइंदियाणं पुच्छा।

दो नाणा, दो अण्णाणा—नियमा। एवं जाव पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं॥

द्वीन्द्रियाणां पृच्छा।

द्वे ज्ञाने, द्वे अज्ञाने—नियमात्। एवं यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम्।

१२८. 'द्वीन्द्रिय की पृच्छा।

दो ज्ञान और दो अज्ञान नियमतः होते हैं। इस प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र १२८

द्वीन्द्रिय में दो ज्ञान और दो अज्ञान का नियम। देखें सूत्र १०७-१०८ का भाष्य।

१२९. अपज्जत्तगा णं भंते! मणुस्सा किं नाणी? अण्णाणी?

तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा। वाणमंतरा जहा नेरइया। अपज्जत्तगाणं जोइ-सियवेमाणियाणं तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—नियमा॥

अपर्याप्तकाः भदन्त! मनुष्याः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

त्रीणि ज्ञानानि भजनया, द्वे अज्ञाने नियमात्। वानमन्तराः यथा नैरयिकाः। अपर्याप्तकानां ज्योतिष्क-वैमानिकानां त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि नियमात्।

१२९. 'भन्ते! अपर्याप्तक मनुष्य क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं। अपर्याप्त वानमन्तर की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है। अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिक के नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र १२९

सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तक मनुष्यों में तीन ज्ञान की भजना और दो अज्ञान का नियम। देखें सूत्र १११-११३ का भाष्य।

वानमंतर की नैरयिक की भांति वक्तव्यता। देखें सूत्र १११-११३ का भाष्य।

१३०. नोपज्जत्तगा-नोअपज्जत्तगा णं भंते! जीवा किं नाणी?

जहा सिद्धा॥

नो पर्याप्तकाः-नो अपर्याप्तकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?

यथा सिद्धाः।

१३०. भन्ते! नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव क्या ज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भवत्थं पडुच्च–

१३१. निरयभवत्था णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
जहा निरयगतिया॥

भवस्थं प्रतीत्य–

निरयभवस्थाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
यथा निरयगतिकाः।

भवस्थ की अपेक्षा

१३१. भन्ते! नैरयिक के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
नरक की अंतरालवर्ती गति में विद्यमान जीव की भांति वक्तव्यता।

१३२. तिरियभवत्था णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा–भयणाए॥

तिर्यग्भवस्थाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

१३२. भन्ते! तिर्यंच के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१३३. मणुस्सभवत्था?
जहा सकाइया॥

मनुष्यभवस्थाः?
यथा सकायिकाः।

१३३. मनुष्य के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
सकायिक की भांति वक्तव्यता।

१३४. देवभवत्था णं भंते।

जहा निरयभवत्था। अभवत्था जहा सिद्धा॥

देवभवस्थाः भदन्त!

यथा निरयभवस्थाः। अभवस्थाः यथा सिद्धाः।

१३४. भन्ते! देव के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
नैरयिक के भव में स्थित जीव की भांति वक्तव्यता। अभवस्थ की वक्तव्यता सिद्ध की भांति ज्ञातव्य है।

भवसिद्धियाभवसिद्धियं पडुच्च–

१३५. भवसिद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सकाइया॥

भवसिद्धिकाभवसिद्धिकं प्रतीत्य–

भवसिद्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा सकायिकाः।

भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक की अपेक्षा

१३५. भंते! भवसिद्धिक जीव क्या ज्ञानी हैं?
सकायिक की भांति वक्तव्यता।

१३६. अभवसिद्धियाणं पुच्छा।
गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी; तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए॥

अभवसिद्धिकानां पृच्छा।
गौतम! नो ज्ञानिनः, अज्ञानिनः, त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

१३६. अभवसिद्धिकों की पृच्छा।
गौतम! ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

१३७. नोभवसिद्धिया - नोअभव-सिद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सिद्धा॥

नो भवसिद्धिका-नो अभवसिद्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः?
यथा सिद्धाः।

१३७. भंते! नोभवसिद्धिक-नोअभव-सिद्धिक जीव क्या ज्ञानी हैं?
सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

सण्णि-असण्णिं पडुच्च–

१३८. सण्णीणं पुच्छा।
जहा सइंदिया। असण्णी जहा बेइंदिया। नोसण्णी-नोअसण्णी जहा सिद्धा॥

संज्ञि-असंज्ञिनौ प्रतीत्य

संज्ञिनां पृच्छा।
यथा स-इन्द्रियाः। असंज्ञी यथा द्वीन्द्रियाः। नो संज्ञी-नो असंज्ञी यथा सिद्धाः।

संज्ञी असंज्ञी की अपेक्षा

१३८. संज्ञी जीवों की पृच्छा।
सइन्द्रिय जीवों की भांति वक्तव्यता। असंज्ञी की द्वीन्द्रिय की भांति वक्तव्यता। नोसंज्ञी - नोअसंज्ञी की सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

लद्धि-पदं

१३९. कतिविहा णं भंते! लद्धी पण्णत्ता?

लब्धि-पदम्

कतिविधा भदन्त! लब्धिः प्रज्ञप्ता?

लब्धि-पद

१३९. भंते! लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा–१. नाणलद्धी २. दंसणलद्धी ३. चरित्तलद्धी ४. चरित्ताचरित्त-लद्धी ५. दाणलद्धी ६. लाभलद्धी ७. भोगलद्धी ८. उवभोगलद्धी ९. वीरियलद्धी १०. इंदियलद्धी॥

गौतम! दशविधा लब्धिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा–१. ज्ञानलब्धिः, २. दर्शनलब्धिः ३. चरित्रलब्धिः ४. चरित्राचरित्रलब्धिः ५. दानलब्धिः ६. लाभलब्धिः ७. भोगलब्धिः ८. उपभोगलब्धिः ९. वीर्यलब्धिः १०. इन्द्रियलब्धिः।

गौतम! लब्धि दस प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–१. ज्ञानलब्धि २. दर्शनलब्धि ३. चरित्रलब्धि ४. चरित्राचरित्रलब्धि ५. दानलब्धि ६. लाभलब्धि ७. भोगलब्धि ८. उपभोगलब्धि ९. वीर्यलब्धि १०. इन्द्रियलब्धि।

१४०. नाणलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–आभिणिबोहियनाणलद्धी जाव केवलनाणलद्धी॥

ज्ञानलब्धिः कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिः यावत् केवलज्ञानलब्धिः।

१४०. भंते! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् केवलज्ञानलब्धि।

१४१. अण्णाणलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–मइअण्णाणलद्धी, सुयअण्णाण-लद्धी, विभंगनाणलद्धी॥

अज्ञानलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–मति-अज्ञानलब्धिः, श्रुत-अज्ञानलब्धिः, विभङ्ग-ज्ञानलब्धिः।

१४१. भंते! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–मतिअज्ञानलब्धि, श्रुतअज्ञानलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि।

१४२. दंसणलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसण-लद्धी, सम्मामिच्छादंसणलद्धी॥

दर्शनलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–सम्यग्-दर्शनलब्धिः, मिथ्यादर्शनलब्धिः, सम्यग्-मिथ्यादर्शनलब्धिः।

१४२. भंते! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि।

१४३. चरित्तलद्धी णं भंते! कति-विहा पण्णत्ता?
गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–सामाइयचरित्तलद्धी, छेदोवट्ठावणियचरित्तलद्धी, परिहारविसुद्धि-चरित्तलद्धी, सुहुमसंपरायचरित्त-लद्धी, अहक्खायचरित्तलद्धी॥

चरित्रलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–सामायिकचरित्रलब्धिः, छेदोपस्थापनिकचरित्रलब्धिः, परिहारविशुद्धिचरित्र-लब्धिः, सूक्ष्मसम्पराय- चरित्रलब्धिः, यथाख्यातचरित्रलब्धिः।

१४३. भंते! चरित्रलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! वह पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–सामायिकचरित्रलब्धि, छेदोपस्थापनीय-चरित्रलब्धि, परिहारविशुद्धिचरित्रलब्धि, सूक्ष्मसम्परायचरित्रलब्धि, यथाख्यात-चरित्रलब्धि।

१४४. चरित्ताचरित्तलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! एगागारा पण्णत्ता। एवं जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता॥

चरित्राचरित्रलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! एकाकारा प्रज्ञप्ता। एवं यावत् उपभोगलब्धिः एकाकारा प्रज्ञप्ता।

१४४. भंते! चरित्राचरित्रलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! वह एक ही आकार वाली प्रज्ञप्त है। इस प्रकार यावत् उपभोगलब्धि एक ही आकार वाली प्रज्ञप्त है।

१४५. वीरियलद्धी णं भंते! कति-विहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–बालवीरियलद्धी, पंडियवीरिय-लद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी॥

वीर्यलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?
गौतम! त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तद्यथा–बालवीर्यलब्धिः, पण्डितवीर्यलब्धिः बालपण्डितवीर्यलब्धिः।

१४५. भंते! वीर्यलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?
गौतम! वह तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–बालवीर्यलब्धि, पण्डितवीर्यलब्धि और बालपण्डितवीर्यलब्धि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४६. इंदियलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–सोइंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी॥

इन्द्रियलब्धिः भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?

गौतम! पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा– श्रोत्रेन्द्रियलब्धिः यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-लब्धिः।

१४६. भन्ते! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे– श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-लब्धि।

भाष्य

१. सूत्र १३९-१४६

लब्धि का अर्थ है कर्म के क्षयोपशम और क्षय से होने वाला ज्ञान आदि गुणों का लाभ।[1]

ज्ञानलब्धि–ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम अथवा क्षय से होने वाला ज्ञान का गुणात्मक विकास।

दर्शनलब्धि–दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम, उपशम अथवा क्षय से होने वाला दर्शन का गुणात्मक विकास।

चरित्रलब्धि–चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम, उपशम अथवा क्षय से होने वाला चरित्र का गुणात्मक विकास।

चरित्राचरित्र लब्धि–अप्रत्याख्यान कषाय मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला चरित्र का गुणात्मक विकास।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य लब्धि–अंतराय कर्म के क्षयोपशम और क्षय से होने वाला शक्ति का विकास।

इन्द्रिय लब्धि–ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से होने वाला गुणात्मक विकास।

ज्ञान लब्धि के साथ अज्ञान लब्धि के तीन प्रकार बतलाए गए हैं–दशविध लब्धि की सूची में अज्ञान लब्धि का पृथक् उल्लेख नहीं है किन्तु विस्तार में उसके प्रकारों का उल्लेख किया गया है। जयाचार्य ने इस विषय की समीक्षा की है। उनका अभिमत है– मतिज्ञान और मतिअज्ञान–दोनों का आवरणीय (मतिज्ञानावरणीय) एक है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान और श्रुतअज्ञान का आवरणीय (श्रुत ज्ञानावरणीय) भी एक है। अवधिज्ञान और विभंगज्ञान का आवरणीय (अवधिज्ञानावरणीय) भी एक है। अज्ञान के तीनों प्रकार ज्ञानावरण के क्षयोपशम से निष्पन्न हैं। अनुयोगद्वार इसका साक्ष्य है। उसमें ज्ञान के चार प्रकारों और अज्ञान के तीन प्रकारों को क्षयोपशम निष्पन्न कहा गया है।[2]

ज्ञान और अज्ञान का विभाग पात्र के आधार पर किया गया है। सम्यग्दृष्टि का बोध ज्ञान और मिथ्यादृष्टि का बोध अज्ञान कहलाता है।[3] मिथ्यादर्शन लब्धि और सम्यक्दर्शन लब्धि भी क्षयोपशम निष्पन्न है। जयाचार्य ने प्रश्न उपस्थित किया है–विपरीत श्रद्धा को लब्धि कैसे कहा जा सकता है? इसका समाधान इस प्रकार किया–लब्धि आत्मा की उज्ज्वलता है। विपरीत श्रद्धा मिथ्यात्व है, आत्मा की मलिनता है। मिथ्यादृष्टि का प्रयोग विपरीत श्रद्धा के अर्थ में विवक्षित नहीं है किन्तु मिथ्यात्व युक्त जीव के जो क्षायोपशमिक दृष्टि होती है उस अर्थ में मिथ्यादृष्टि का प्रयोग किया गया है।[4]

अभयदेव सूरि ने मिथ्यादृष्टि का अर्थ किया है–अशुद्ध मिथ्यात्व

---

१. भ. वृ. ८/१३९ तत्र लब्धिः आत्मनो ज्ञानादिगुणानां तत्र कर्मक्षयादिनो लाभः।

२. अणु. सू. २८५

३. भ. जो. २ १३६ ।२२-२७–

१. ज्ञानावरणी जाण, क्षयोपशम सेती लहै।
ज्ञान अज्ञान पिछाण, अनुयोगद्वारे आखियो॥२२॥

२. अज्ञानी रै नाम, सम जाणपणो जेतलो।
अज्ञान तिण रो नाम, भाजन लारै बाजियो॥२३॥

३. जाणै जाय नै गाय, दिवस भणी जाणै दिवस।
इत्यादि कहिवाय, जाणपणो सम छै तिको॥२४॥

४. तिण सूं क्षयोपशम भाव, निरवद्य उज्जल लेख ए।
देख विचारो न्याव, उण कारण लब्धी कही॥२५॥

५. ज्ञानावरणी कर्म, पंच प्रकृति है तेहनी।
जेवो एहनो मर्म, मति ज्ञानावरणी प्रमुख॥२६॥

६. मति ज्ञानावरणी जेह, क्षयोपशम तेहनों थयां।
वर मति ज्ञान लहेह, मति अज्ञान पामै बलि॥२७॥

७. श्रुत ज्ञानावरणी जाण, क्षयोपशम तेहनों थयां।
वर श्रुतज्ञान प्रधान, श्रुत अज्ञान लहै वली॥२८॥

८. अवधि ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम तिण रो थयां।
अवधि ज्ञान लब्धीह, विभंग अनाण लहै वली॥२९॥

९. नवावरणी कर्म सोय, क्षय उपशम थी विभंग है।
सूत्र भगवती जोय, इकतीसम नवमें अख्युं॥३०॥

१०. अवधि विभंग नुं जान, आवरणी तं एक है।
तेहनुं नाम पिछाण, अवधि ज्ञानावरणी अछै॥३१॥

११. नमु क्षय उपशम होय, अवधि विभंग दोनुं लहै।
ए दोनुं नो जोय, अवधि दर्शन पिण एक है॥३२॥

१२. विभंग ज्ञानावरणीह, क्षय उपशम थी विभंग है।
पिण ए भेद सुतीह, अवधि ज्ञानावरणी तणुं॥३३॥

१३. जाती-समरण पाय, समदृष्टि नैं मिच्छदिट्ठी।
क्षय उपशम जे थाय, मति ज्ञानावरणी तणुं॥३४॥

१४. ज्ञाता गज भव ईह, जाती-समरण ऊपनों।
मति ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम थी वृत्ति में॥३५॥

१५. समदृष्टी रै सोय, वर मतिज्ञान कह्यो तसु।
मिच्छदिट्ठि रै जोय, मति अज्ञान कही जिये॥३६॥

१६. तिण सुं धुर विहुं ज्ञान, बलि तीनूं अज्ञान ने।
क्षयोपशम ए जान, लब्धी उज्जल जीव ए॥३७॥

४. वही, २/१३६ का वार्तिक–

इहां दर्शन-लब्धी में जे उदय भाव–कोयी श्रद्धा ते लब्धि में किम न लेखवी? उत्तर–ए लब्धि उज्जल जीव छै, निरवद्य छै। अनै कोयी श्रद्धा मिथ्यात आश्रव बिगड़यो जीव छै, सावद्य छै ते माटे। मिथ्यादृष्टि रै या मिश्रदृष्टि रै जेतली शुद्ध श्रद्धा क्षयोपशम भावे छै अनै सम्यग्दृष्टि रै सर्व शुद्ध श्रद्धा छै, ते दर्शण लब्धी में लेखवी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिक के उदय से होने वाला जीव का परिणाम।[1]

जयाचार्य ने मिथ्यादृष्टि को क्षायोपशमिक भाव बतलाया है। उन्होंने इसकी मीमांसा करते हुए लिखा है—अनुयोगद्वार में उदय निष्पन्न के प्रकरण में मिथ्यादृष्टि का उल्लेख है, वह विपरीत श्रद्धात्मक मिथ्यादृष्टि औदयिक भाव है। वह इस लब्धि के प्रकरण में विवक्षित नहीं है।[2] अनुयोगद्वार में क्षायोपशमिक भाव के प्रकरण में मिथ्यादृष्टि का उल्लेख है।[3] यहां वह विवक्षित है।[4]

नाणलद्धिं पडुच्च-नाणि-अण्णाणित्त-पदं

१४७. नाणलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, एवं पंच नाणाइं भयणाए॥

ज्ञानलब्धिं प्रतीत्य ज्ञानि-अज्ञानित्व-पदम्

ज्ञानलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। अस्त्येकके द्वि-ज्ञानिनः, एवं पञ्च ज्ञानानि भजनया।

ज्ञानलब्धि की अपेक्षा ज्ञानित्व अज्ञानित्व-पद

१४७. भंते! ज्ञानलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ दो ज्ञान वाले हैं, इस प्रकार यावत् पांच ज्ञान की भजना है।

१४८. तस्स अलद्धीया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी। अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणा भयणाए॥

तस्य अलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! नो ज्ञानिनः अज्ञानिनः। अस्त्येकके द्वि-अज्ञानिनः, त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

१४८. भंते! उस ज्ञान के अलब्धिक ज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। कुछ दो अज्ञान वाले हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

१४९. आभिणिबोहियनाणलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, चत्तारि नाणाइं भयणाए॥

आभिनिबोधिकलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। अस्त्येकके द्वि-ज्ञानिनः, चत्वारि ज्ञानानि भजनया।

१४९. भंते! आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ दो ज्ञान वाले हैं, यावत् चार ज्ञान की भजना है।

१५०. तस्स अलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी—केवलनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। एवं सुयनाणलद्धिया वि। तस्स अलद्धिया वि जहा आभिणिबोहिय-

तस्य अलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते नियमात् एकज्ञानिनः—केवलज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-अज्ञानिनः, त्रीणि अज्ञानानि भजनया। एवं श्रुतज्ञानलब्धिकाः अपि। तस्य अलब्धिकाः अपि यथा आभिनिबोधिकज्ञानस्य

१५०. [5]भंते! आभिनिबोधिकज्ञान के अलब्धिक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमतः एक ज्ञान वाले—केवलज्ञान वाले हैं। जो अज्ञानी हैं वे कुछ दो अज्ञान वाले हैं। तीन अज्ञान की भजना है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान लब्धि वाले जीवों की वक्तव्यता। श्रुतज्ञान के अलब्धिक

---

१. भ. वृ. ८. १४२—मिथ्यादर्शनमशुद्धमिथ्यात्व-दलिकोदयसमुत्थो जीवपरिणामः।
२. अणु. २७५
३. वही, २८५
४. भ. जो. २. १३६/३९-४७—
१. दर्शन मोह उपाधि, उपशम क्षायक क्षयोपशम।
सम्यक्त्व उपशम आदि, समदर्शण लद्धी निको॥३९॥
२. दर्शन मोह पिछाण क्षयोपशम थी नीपजे।
मिथ्यादृष्टि सुजाण, दृष्टि समामिथ्या वली॥४०॥
३. मिथ्याती रै नाम, ऊंधी श्रद्धा जेतली।
मिथ्यादृष्टिज नाम, एह उदय भावे कही॥४१॥
४. मिथ्याती रे इष्ट सूधी श्रद्धा जेतली।
ए पिण मिथ्यादृष्ट, पिण क्षयोपशम भाव ए॥४२॥
५. अनुयोगद्वार मझार, उदय निष्पन्न रा बोल में।
मिथ्यादृष्टि विचार, ए उदयभाव ऊंधी श्रद्धा॥४३॥
६. ए आश्रव मिथ्यात, दर्शन मोह उदय थकी।
लब्धि में न कहात, उदय भाव मिथ्यादृष्टि॥४४॥
७. अनुयोगद्वार मझार, क्षय उपशम निष्पन्न विषे।
तीन दृष्टि सुविचार, भाव क्षयोपशम शुद्ध श्रद्धा॥४५॥
८. तिण सूं मिथ्यादृष्ट, क्षय उपशम भाव तिका।
उज्जल जीव सुदृष्ट, लद्धी में आखी इहां॥४६॥
९. समामिथ्यादृष्ट भाव क्षयोपशम जिन कह्या;
मिश्र गुणठाणे इष्ट, तसु शुद्ध श्रद्धा जेतली॥४७॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नाणस्स अलद्धीया॥	अलब्धिकाः।	जीवों की वक्तव्यता आभिनिबोधिक ज्ञान के अलब्धिक जीवों की भांति ज्ञातव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १५०

आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों का ज्ञान पंचक में आदि स्थान है। जिनभद्र ने बतलाया है—इनके होने पर शेष ज्ञान होते हैं। इनके अभाव में कोई भी ज्ञान नहीं होता।[1] आभिनिबोधिक ज्ञान के अभाव में श्रुत, अवधि और मनःपर्यव ज्ञान नहीं हो सकते। इसलिए आभिनिबोधिक की अलब्धि वाले जीवों में एक केवलज्ञान ही हो सकता है।

आभिनिबोधिक की अलब्धि वाले जीवों में अज्ञान दो होते हैं अथवा तीन भी हो सकते हैं।

१५१. ओहिनाणलद्धियाणं पुच्छा।	अवधिज्ञानलब्धिकानां पृच्छा।	१५१. अवधिज्ञानलब्धि वाले जीवों की पृच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी॥	गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः, अस्त्येकके चतुर्ज्ञानिनः। ये त्रिज्ञानिनः ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः। ये चतुर्ज्ञानिनः, ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः, मनःपर्यवज्ञानिनः।	गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान वाले हैं।
१५२. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।	तस्य अलब्धिकानां पृच्छा।	१५२. अवधिज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। एवं ओहिनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए॥	गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। एवं अवधिज्ञानवर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि—भजनया।	गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। इस प्रकार अवधिज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।
१५३. मणपज्जवनाणलद्धियाणं पुच्छा।	मनःपर्यवज्ञानलब्धिकानां पृच्छा।	१५३. मनःपर्यवज्ञानलब्धि वालों की पृच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, मणपज्जवनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी मणपज्जवनाणी।	गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः, अस्त्येकके चतुर्ज्ञानिनः। ये त्रिज्ञानिनः ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः मनःपर्यवज्ञानिनः। ये चतुर्ज्ञानिनः, ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः, मनःपर्यवज्ञानिनः।	गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। उनमें कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यवज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान वाले हैं।

भाष्य

१. सूत्र १५३

मति, श्रुत और अवधि ज्ञान का प्रतिपक्ष है—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। मनःपर्यवज्ञान का कोई प्रतिपक्ष नहीं है। वह केवल संयमी मुनि के ही होता है इसलिए उसके प्रतिपक्ष रूप में अज्ञान नहीं है।

---

१. (क) वि. भा. गा. ८५—

नब्भावे रेसणि य नेणाईए महसुयाइं॥

(ख) वि. भा. गा. ८५ मलधारी वृत्ति—

तदभावे मतिश्रुतज्ञानसद्भाव एव शेषाण्यवध्यादीनि ज्ञानान्यवाप्नुवन्ति नान्यथा न हि स कश्चित् प्राणी भूतपूर्वः अस्ति भविष्यति वा यो मतिश्रुतज्ञाने अनासाद्य प्रथममेवाऽवध्यादीनि शेषज्ञानानि प्राप्तवान् प्राप्नोति प्राप्स्यति वेति भावः ततस्तदवाप्तौ शेषज्ञानाऽवाप्तेश्चादौ मतिश्रुतोपन्यासः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५४. तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं– भयणाए।

तस्य अलब्धिकानां पृच्छा।

गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। मनः-पर्यवज्ञानवर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

१५४. मनःपर्यवज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१५५. केवलनाणलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी–केवलनाणी॥

केवलज्ञानलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। नियमात् एकज्ञानिनः–केवलज्ञानिनः।

१५५. भंते! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। नियमतः एक ज्ञान–केवलज्ञान वाले हैं।

१५६. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। केवलनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए॥

तस्य अलब्धिकानां पृच्छा।

गौतम! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि। केवल-ज्ञानवर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

१५६. केवलज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। केवलज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१५७. अण्णाणलद्धियाणं पुच्छा।

गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी। तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए॥

अज्ञानलब्धिकानां पृच्छा।

गौतम! नो ज्ञानिनः, अज्ञानिनः। त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

१५७. अज्ञानलब्धि वालों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। तीन अज्ञान की भजना है।

१५८. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। पंच नाणाइं भयणाए। जहा अण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भणिया, एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा। विभंगनाणलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं नियमा। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा।

तस्य अलब्धिकानां पृच्छा।

गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। पञ्च ज्ञानानि भजनया। यथा अज्ञानस्य च लब्धिकाः अलब्धिकाश्च भणिताः, एवं मति-अज्ञानस्य श्रुत-अज्ञानस्य च लब्धिकाः अलब्धिकाश्च भणितव्याः। विभंगज्ञान-लब्धिकानां त्रीणि अज्ञानानि नियमात्। तस्य अलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनया, द्वे अज्ञाने नियमात्।

१५८. अज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। पांच ज्ञान की भजना है। जैसी अज्ञान के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता है वैसी ही मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है। विभंगज्ञानलब्धि वाले के नियमतः तीन अज्ञान होते हैं। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

दंसणं पडुच्च–

१५९. दंसणलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं– भयणाए॥

दर्शनं प्रतीत्य–

दर्शनलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

दर्शन की अपेक्षा

१५९. भंते! दर्शनलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६०. तस्स अलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! तस्स अलद्धिया नत्थि। सम्मदंसणलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए॥

तस्य अलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! तस्य अलब्धिकाः न सन्ति। सम्यग्-दर्शनलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनया। तस्य अलब्धिकानां त्रीणि अज्ञानानि भजनया।

१६०. भंते! दर्शन के अलब्धिक जीव क्या ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं?

गौतम! उसके अलब्धिक नहीं हैं। सम्यग्-दर्शनलब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के तीन अज्ञान की भजना है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मिच्छादंसणलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं–भयणाए।

मिथ्यादर्शनलब्धिकानां त्रीणि अज्ञानानि भजनया। तस्य अलब्धिकानां पञ्च-ज्ञानानि, त्रीणि च अज्ञानानि–भजनया।

मिथ्यादर्शनलब्धि वालों के तीन अज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

सम्मामिच्छादंसणलद्धिया, अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धिया अलद्धिया तहेव भाणियव्वा॥

सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिकाः अलब्धिकाश्च यथा मिथ्यादर्शनलब्धिकाः अलब्धिकाः तथैव भणितव्याः।

सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि वाले और उसके अलब्धिकों की वक्तव्यता मिथ्या-दर्शनलब्धि वाले और उसके अलब्धिकों की भांति ज्ञातव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १५९-१६०

दर्शनलब्धि वाले जीव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि–दोनों प्रकार के होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीवों में पांच ज्ञान की भजना है। मिथ्यादृष्टि जीवों में तीन अज्ञान की भजना है।

कोई भी जीव दर्शनलब्धि से शून्य नहीं होता इसलिए उसका अलब्धिक कोई नहीं है। मिथ्यादर्शन की अलब्धि वाले जीव सम्यग्दृष्टि और मिश्रदृष्टि दोनों प्रकार के होते हैं। सम्यग्दृष्टि में पांच ज्ञान और मिश्रदृष्टि में तीन अज्ञान की भजना है।

चरित्तं पडुच्च–

चरित्रं प्रतीत्य–

चरित्र की अपेक्षा

१६१. चरित्तलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! पंच नाणाइं भयणाए॥
तस्स अलद्धीयाणं मणपज्जव-नाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए।

चरित्रलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! पञ्च ज्ञानानि भजनया।
तस्य अलब्धिकानां मनःपर्यवज्ञानवर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि च अज्ञानानि भजनया।

१६१. भंते! चरित्रलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! पांच ज्ञान की भजना है। उस (चरित्र) के अलब्धिकों के मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६२. सामाइयचरित्तलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी–केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं–भयणाए।
एवं जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धीया य भणिया, एवं जाव अहक्खाय चरित्तलद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा, नवरं–अहक्खाय-चरित्तलद्धीयाणं पंच नाणाइं भयणाए॥

सामायिकचरित्रलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! ज्ञानिनः–केवलवर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया। तस्य अलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि च अज्ञानानि–भजनया। एवं यथा सामायिकचरित्रलब्धिकाः अलब्धिकाश्च भणिताः, एवं यावत् यथाख्यात-चरित्रलब्धिकाः अलब्धिकाश्च भणितव्याः। नवरं–यथाख्यातचरित्रलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनया।

१६२. भंते! सामायिक चरित्र की लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी हैं–केवलज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान की भजना है। उस (सामायिक चरित्र) के अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार जैसी सामायिक चरित्र की लब्धि वाले और अलब्धिकों की वक्तव्यता वैसी ही यावत् यथाख्यात चरित्र की लब्धिवाले और अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है। केवल इतना विशेष है–यथाख्यात चरित्र की लब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है।

भाष्य

१. सूत्र. १६१-१६२

चरित्र लब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते हैं इसलिए उनमें पांच ज्ञान की भजना है।

मनःपर्यवज्ञान केवल चारित्री में ही होता है इसलिए चरित्र की अलब्धि वाले जीवों में उसे छोड़कर चार ज्ञान की भजना है। असंयमी सम्यग्दृष्टि में दो ज्ञान अथवा तीन ज्ञान। सिद्ध चरित्रलब्धि शून्य होते हैं। न चारित्री होते हैं और न अचारित्री। उनमें केवल एक ज्ञान केवलज्ञान होता है।

चरित्र की अलब्धि वाले अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भजना है।[1]

सामायिक चरित्र लब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान की भजना है। केवलज्ञान यथाख्यात चरित्र वालों में ही होता है इसलिए सामायिक चरित्र में उसका वर्जन है।

सामायिक चरित्र के अलब्धि वाले जीव छेदोपस्थापनीय आदि चार चरित्र वाले अथवा सिद्ध होते हैं उनमें पांच ज्ञान की भजना है। सामायिक चरित्र की अलब्धि वाले अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान की भजना है।

यथाख्यात चरित्र लब्धि वाले जीव छद्मस्थ और केवली दोनों प्रकार के होते हैं इसलिए उनमें पांच ज्ञान की भजना है।

चरित्ताचरित्तं पडुच्च–

१६३. चरित्ताचरित्तलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी।

तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए॥

चरित्राचरित्रं प्रतीत्य–

चरित्राचरित्रलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। अस्त्येकके द्वि-ज्ञानिनः, अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः। ये द्वि-ज्ञानिनः ते आभिनिबोधिकज्ञानिनश्च श्रुत-ज्ञानिनश्च। ये त्रिज्ञानिनः ते आभिनि-बोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधि-ज्ञानिनः।

तस्य अलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया॥

चरित्राचरित्र की अपेक्षा

१६३. भंते! चरित्राचरित्र की लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। उनमें कुछ दो ज्ञान वाले और कुछ तीन ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे आभि-निबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं।

उस (चरित्राचरित्र) के अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

दाणाइं पडुच्च–

१६४. दाणलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए॥

दानानि प्रतीत्य–

दानलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया॥

दान आदि की अपेक्षा

१६४. दानलब्धि वालों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६५. तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी–केवलनाणी। एवं जाव वीरियस्स लद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा।

तस्य अलब्धिकानां पृच्छा॥

गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। नियमात् एकज्ञानिनः-केवलज्ञानिनः। एवं यथा वीर्य-स्य लब्धिकाः अलब्धिकाः च भणितव्याः॥

१६५. दानलब्धि के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। नियमतः एक ज्ञानी–केवलज्ञानी हैं। इसी प्रकार यावत् वीर्य के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है।

बालाइवीरियं पडुच्च–

बालवीरियलद्धियाणं तिण्णि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

पंडियवीरियलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं मण-पज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अण्णाणाणि य भयणाए।

बालपंडियवीरियलद्धियाणं तिण्णि नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए॥

बालादिवीर्यं प्रतीत्य–

बालवीर्यलब्धिकानां त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया। तस्य अलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनया।

पण्डितवीर्यलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनया। तस्य अलब्धिकानां मनःपर्यव-ज्ञानवर्ज्यानि ज्ञानानि, अज्ञानानि च भजनया।

बालपण्डितवीर्यलब्धिकानां त्रीणि ज्ञानानि भजनया। तस्य अलब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

बाल आदि वीर्य की अपेक्षा

बालवीर्यलब्धि वालों के तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान की भजना है। पण्डितवीर्यलब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर ज्ञान और अज्ञान की भजना है। बालपण्डितवीर्य-लब्धि वालों के तीन ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

---

१. भ. वृ. ८/१६१–चरित्रलब्धिका ज्ञानिन एव, तेषां च पंच ज्ञानानि भजनया, यतः केवल्यपि चारित्री। चारित्रलब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेषां मनःपर्यववर्ज्यानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया भवन्ति, कथम्? असंयतत्वे आद्ये ज्ञानद्वये, तत्त्वं वा, सिद्धत्वे च केवलज्ञानं, सिद्धानामपि चरित्रलब्धिशून्यत्वाद्, यतस्ते नोचारित्रिणो नो अचारित्रिण इति, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १६५

सिद्ध दान की लब्धि से शून्य होते हैं दान के अलब्धि वालों में एक ही ज्ञान केवलज्ञान होता है।

बाल वीर्य लब्धि वाले असंयमी होते हैं। वे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि—दोनों प्रकार के होते हैं। सम्यग्दृष्टि में तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि में तीन अज्ञान की भजना है।

पण्डित वीर्य की अलब्धि वाले तीन प्रकार के जीव होते हैं—असंयत, संयतासंयत और सिद्ध। असंयत में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना। संयताऽसंयत में तीन ज्ञान की भजना। सिद्धों में एक ज्ञान—केवलज्ञान। मनःपर्यवज्ञान पंडित वीर्य लब्धि वालों के ही होता है। इसलिए पंडित वीर्य के अलब्धि वालों में उसकी वर्जना की गई है।[1]

बाल पण्डित वीर्य के लब्धि वाले संयतासंयत होते हैं। उनमें तीन ज्ञान की भजना है।

इंदियं पडुच्च—	इन्द्रियं प्रतीत्य—	इन्द्रिय की अपेक्षा
१६६. इंदियलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी? गोयमा! चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए॥	इन्द्रियलब्धिकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः? गौतम! चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि च अज्ञानानि-भजनया।	१६६. भंते! इन्द्रियलब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं? गौतम! चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।
१६७. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा। गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी—केवलनाणी॥	तस्य अलब्धिकानां पृच्छा। गौतम! ज्ञानिनः, नो अज्ञानिनः। नियमात् एकज्ञानिनः—केवलज्ञानिनः।	१६७. इन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा। गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। नियमतः एक ज्ञान—केवलज्ञान वाले हैं।
१६८. सोइंदियलद्धिया णं जहा इंदियलद्धिया॥	श्रोत्रेन्द्रियलब्धिकाः यथा इन्द्रियलब्धिकाः।	१६८. श्रोत्रेन्द्रियलब्धि वालों की वक्तव्यता इन्द्रियलब्धि वालों की भांति ज्ञातव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १६६-१६८

केवली में इन्द्रिय का उपयोग नहीं होता इसलिए इन्द्रिय लब्धि वाले जीवों में केवलज्ञान को वर्ज कर शेष चार ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना है।

श्रोत्रेन्द्रिय की अलब्धि वाले जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के होते हैं।

ज्ञानी—१. केवलज्ञानी—एक ज्ञान—केवल ज्ञान।

२. विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) अपर्याप्तक अवस्था में सास्वादन सम्यग्-दर्शनी होते हैं इसलिए उनमें द्विज्ञानी हैं—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी।

अज्ञानी—अज्ञानी में दो अज्ञान मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान होते हैं।

१६९. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा। गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया एगनाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी। जे एगनाणी ते केवल-नाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। चक्खिंदिय-घाणिंदियाणं लद्धीया अलद्धीया य जहेव सोइंदियस्स॥	तस्य अलब्धिकानां पृच्छा। गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते अस्त्येकके द्वि-ज्ञानिनः, अस्त्येकके एकज्ञानिनः। ये द्वि-ज्ञानिनः ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः। ये एकज्ञानिनः ते केवलज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते नियमात् द्वि अज्ञानिनः, तद्यथा—मति-अज्ञानिनश्च श्रुत-अज्ञानिनश्च। चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिययोः लब्धिकाः अलब्धिकाश्च यथैव श्रोत्रेन्द्रियस्य।	१६९. श्रोत्रेन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा। गौतम! वे ज्ञानी भी हैं अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछेक दो ज्ञान वाले हैं, कुछेक एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं, वे केवलज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे—मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय वाले जीवों के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता श्रोत्रेन्द्रिय की भांति वक्तव्य है।
१७०. जिब्भिंदियलद्धियाणं चत्तारि नाणाइं तिण्णि य अण्णाणाइं— भयणाए॥	जिह्वेन्द्रियाणां चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि च अज्ञानानि—भजनया।	१७०. जिह्वेन्द्रियलब्धि वालों के चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

---

१. भ. वृ. ८ १६५—तस्स अलद्धियाणं ति असंयतानां संयतासंयतानां सिद्धानां चेत्यर्थः तत्रासंयतानामाद्यं ज्ञानत्रयमज्ञानत्रयं च भजनया, संयतासंयतानां तु ज्ञानत्रयं भजनयैव भवति, सिद्धानां तु केवलज्ञानमेव, मनःपर्यायज्ञानं तु पण्डितवीर्यलब्धिमतामेव भवति नान्येषाम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७१. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी—केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा— मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। फासिंदिय-लद्धीया अलद्धीया य जहा इंदिय-लद्धिया अलद्धिया य॥

तस्य अलब्धिकानां पृच्छा।

गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते नियमात् एकज्ञानिनः—केवल-ज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते नियमात् द्वि-अज्ञानिनः, तद्यथा—मति-अज्ञानिनश्च श्रुत-अज्ञानिनश्च। स्पर्शनेन्द्रियलब्धिकाः अलब्धिकाश्च यथा इन्द्रियलब्धिकाः अलब्धिकाश्च।

१७१. जिह्वेन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! जिह्वेन्द्रिय के अलब्धिक ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः एक ज्ञान वाले—केवलज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे—मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी। स्पर्शनेन्द्रिय के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता इन्द्रिय के लब्धिकों और अलब्धिकों के समान है।

भाष्य

१. सूत्र १७१

जिह्वा की अलब्धि वाले जीव दो प्रकार के होते हैं—केवली और एकेन्द्रिय।[1]

उवउत्ताणं नाणि-अण्णाणित्त-पदं

१७२. सागारोवउत्ता णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए।

उपयुक्तानां ज्ञानि-अज्ञानित्व-पदम्—

साकारोपयुक्ताः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि—भजनया।

जीवों का ज्ञानित्व और अज्ञानित्व-पद

१७२. भंते! साकारोपयुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! साकारोपयुक्त जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१७३. आभिणिबोहियनाणसागारो-वउत्ता णं भंते?

चत्तारि नाणाइं भयणाए। एवं सुयनाणसागारोवउत्ता वि। ओहि-नाणसागारोवउत्ता जहा ओहि-नाणलद्धिया। मणपज्जवनाण-सागारोवउत्ता जहा मणपज्जव-नाणलद्धीया। केवलनाणसागारो-वउत्ता जहा केवलनाणलद्धीया।

मइअण्णाणसागारोवउत्ताणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। एवं सुय-अण्णाणसागारोवउत्ता वि। विभंग-नाणसागारोव-उत्ताणं तिण्णि अण्णाणाइं नियमा॥

आभिनिबोधिकज्ञानसाकारोपयुक्ताः भदन्त?

चत्वारि ज्ञानानि भजनया। एवं श्रुतज्ञान-साकारोपयुक्ताः अपि। अवधिज्ञान-साकारोपयुक्ताः यथा अवधिज्ञान-लब्धिकाः। मनःपर्यवज्ञानसाकारोपयुक्ताः यथा मनः-पर्यवज्ञानलब्धिकाः। केवलज्ञान-साकारोपयुक्ताः यथा केवलज्ञानलब्धिकाः। मति-अज्ञानसाकारोपयुक्तानां त्रीणि अज्ञानानि भजनया। एवं श्रुत-अज्ञान-साकारोपयुक्ताः अपि। विभंगज्ञान-साकारोपयुक्तानां त्रीणि अज्ञानानि नियमात्।

१७३. भंते! आभिनिबोधिकज्ञान साकारोपयुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! आभिनिबोधिकज्ञान साकारोपयुक्त जीवों के चार ज्ञान की भजना है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान साकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता। अवधिज्ञान साकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता अवधिज्ञान लब्धिकों के समान है। मनःपर्यवज्ञान साकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता मनः-पर्यवज्ञानलब्धिकों के समान है। केवल-ज्ञान साकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता केवलज्ञान लब्धिकों के समान है।

मतिअज्ञान साकारोपयुक्त जीवों के तीन अज्ञान की भजना है।

इसी प्रकार श्रुतअज्ञान साकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता। विभंगज्ञान साकारोपयुक्त जीवों के नियमतः तीन अज्ञान होते हैं।

१७४. अणागारोवउत्ता णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। एवं चक्खुदंसणअचक्खु-

अनाकारोपयुक्ताः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

पञ्च ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि—भजनया। एवं चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शनानाकारोपयुक्ताः

१७४. भंते! अनाकारोपयुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! अनाकारोपयुक्त जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। इसी

१. भ. वृ. ८/१७०-१७१—ते च केवलिन एकेन्द्रियाश्च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणअणागारोवउत्ता वि, नवरं–चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं–भयणाए॥

अपि, नवरं–चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि–भजनया।

प्रकार चक्षु, अचक्षुदर्शन अनाकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता, इतना विशेष है–उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१७५. ओहिदंसणअणागारोवउत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहिय-नाणी, सुयनाणी, ओहीनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा तिअण्णाणी, तं जहा–मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगनाणी। केवलदंसण-अणागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धिया॥

अवधिदर्शनानाकारोपयुक्तानां पृच्छा।

गौतम! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि। ये ज्ञानिनः ते अस्त्येकके त्रिज्ञानिनः, अस्त्येकके चतुर्ज्ञानिनः। ये त्रिज्ञानिनः ते आभिनि-बोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधि-ज्ञानिनः। ये चतुर्ज्ञानिनः ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः यावत् मनःपर्यवज्ञानिनः। ये अज्ञानिनः ते नियमात् त्रि-अज्ञानिनः तद्यथा–मति-अज्ञानिनः, श्रुत-अज्ञानिनः, विभंगज्ञानिनः। केवलदर्शनानाकारोपयुक्ताः यथा केवलज्ञानलब्धिकाः।

१७५. अवधिदर्शन अनाकारोपयुक्त जीवों की पृच्छा।

गौतम! अवधिदर्शन अनाकारोपयुक्त जीव ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, उनमें कुछेक तीन ज्ञान वाले हैं और कुछेक चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मनः पर्यवज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन अज्ञान वाले हैं, जैसे–मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभंगज्ञानी। केवलदर्शन अनाकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता केवलज्ञानलब्धिकों के समान है।

जोगं पडुच्च–

१७६. सजोगी णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

जहा सकाइया। एवं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी वि। अजोगी जहा सिद्धा॥

योगं प्रतीत्य–

सयोगिनः भदन्त! जीवा किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

यथा सकायिकाः। एवं मनोयोगिनः, वाग्योगिनः, काययोगिनोऽपि। अयोगिनः यथा सिद्धाः।

योग की अपेक्षा–

१७६. भंते! योगयुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

काययुक्त जीव की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी की वक्तव्यता। अयोगी सिद्ध की भांति वक्तव्य हैं।

लेस्सं पडुच्च–

१७७. सलेस्सा णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

जहा सकाइया॥

लेश्यां प्रतीत्य–

सलेश्याः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

यथा सकायिकाः।

लेश्या की अपेक्षा–

१७७. भंते! लेश्यायुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

काययुक्त जीव की भांति वक्तव्यता।

१७८. कण्हलेस्सा णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?

जहा सइंदिया। एवं जाव पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा। अलेस्सा जहा सिद्धा॥

कृष्णलेश्याः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?

यथा स-इन्द्रियाः। एवं यथा पद्मलेश्याः, शुक्ललेश्याः यथा सलेश्याः। अलेश्याः यथा सिद्धाः।

१७८. भंते! कृष्णलेश्या वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

इन्द्रिययुक्त जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले जीव लेश्यायुक्त जीव की भांति वक्तव्य हैं। लेश्यामुक्त जीव सिद्ध की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र १७८

अलेश्य–चतुर्दश गुणस्थान का अधिकारी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसायं पडुच्च–

१७९. सकसाई णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
जहा सइंदिया। एवं जाव लोभ-कसाई॥

कषायं प्रतीत्य–

सकषायिणः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
यथा स-इन्द्रियाः। एवं यथा लोभकषायिणः।

कषाय की अपेक्षा

१७९. भंते! कषाययुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
इन्द्रिययुक्त जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् लोभकषायी वक्तव्य हैं।

१८०. अकसाई णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
पंच नाणाइं भयणाए॥

अकषायिणः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
पञ्च ज्ञानानि भजनया।

१८०. भंते! कषायमुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
कषायमुक्त जीवों के पांच ज्ञान की भजना है।

भाष्य

१. सूत्र १८०

अकषायी–वीतराग। छद्मस्थ वीतराग में चार ज्ञान की भजना। केवली वीतराग में एक ज्ञान–केवलज्ञान।

वेदं पडुच्च–

१८१. सवेदगा णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
जहा सइंदिया। एवं इत्थिवेदगा वि, एवं पुरिसवेदगा वि, एवं नपुंसगवेदगा वि। अवेदगा जहा अकसाई॥

वेदं प्रतीत्य–

सवेदकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
यथा स-इन्द्रियाः। एवं स्त्रीवेदकाः अपि, एवं पुरुषवेदकाः अपि, एवं नपुंसकवेदकाः अपि। अवेदकाः यथा अकषायिणः।

वेद की अपेक्षा

१८१. भंते! वेदयुक्त जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
इन्द्रिययुक्त जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक-वेद वाले जीवों की वक्तव्यता। वेदमुक्त जीव कषायमुक्त जीव की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र १८१

अवेदक–नवें गुणस्थान के उत्तर भाग में अवेदक अवस्था प्राप्त होती है अतः अनिवृत्ति गुणस्थान से अग्रिम गुणस्थानों के अधिकारी अवेदक होते हैं।

आहारगं पडुच्च–

१८२. आहारगा णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
जहा सकसाई, नवरं–केवलनाणं पि॥

आहारकं प्रतीत्य–

आहारकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
यथा सकषायिणः, नवरं– केवलज्ञानमपि।

आहारक की अपेक्षा–

१८२. भंते! आहारक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
कषाययुक्त जीव की भांति वक्तव्यता। इतना विशेष है–आहारक जीवों के केवलज्ञान भी होता है।

१८३. अणाहारगा णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
मणपज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अण्णाणाइं तिण्णि–भयणाए॥

अनाहारकाः भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
मनःपर्यवज्ञानवर्ज्यानि ज्ञानानि, अज्ञानानि त्रीणि–भजनया।

१८३. भंते! अनाहारक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?
अनाहारक जीवों के मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

भाष्य

१. सूत्र १८२-१८३

केवली भी आहारक होते हैं इसलिए आहारक में पांच ज्ञान की भजना है।[1] अनाहारक की चार अवस्थाएं हैं–

१. विग्रह गति २. केवली समुद्घात
३. शैलेशी या अयोगी अवस्था ४. सिद्ध अवस्था।

विग्रह गति में तीन ज्ञान, तीन अज्ञान हो सकते हैं, केवली समुद्घात की अवस्था, शैलेशी और सिद्धावस्था में केवलज्ञान होता है। मनःपर्यवज्ञान छद्मस्थ मुनि के ही होता है। इसलिए अनाहारक अवस्था में उसका वर्जन किया गया है।[2]

---

१. भ. वृ. ८/१८२–सकषाया भजनया चतुर्ज्ञानस्त्र्यज्ञानाश्चोक्ताः आहारकाः अप्येवमेव नवरमाहारकाणां केवलमप्यस्ति केवलिन आहारकत्वादपीति।

२. भ. वृ. ८/१८३–मनःपर्यवज्ञानमाहारकाणामेव आद्यं पुनर्ज्ञानत्रयमज्ञानत्रयं च विग्रहे भवति, केवलं च केवलिसमुद्घातशैलेशीसिद्धावस्थास्वनाहारकाणामपि स्यादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणाणं विसय-पदं

१८४. आभिणिबोहियनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ।

खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ-पासइ।

कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ-पासइ।

भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ-पासइ॥

ज्ञानानां विषय-पदम्

आभिनिबोधिकज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः।

द्रव्यतः आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वद्रव्याणि जानाति-पश्यति। क्षेत्रतः आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति-पश्यति। कालतः आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति-पश्यति। भावतः आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति-पश्यति।

ज्ञान का विषय-पद

१८४. [1]भंते? आभिनिबोधिकज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! आभिनिबोधिकज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशतः सब द्रव्यों को जानता, देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशतः सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशतः सर्वकाल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशतः सब भावों को जानता-देखता है।

१८५. सुयनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ।

खेत्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वखेत्तं जाणइ-पासइ।

कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वकालं जाणइ-पासइ।

भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ-पासइ॥

श्रुतज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः।

द्रव्यतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति-पश्यति। क्षेत्रतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वक्षेत्रं जानाति पश्यति। कालतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वकालं जानाति-पश्यति। भावतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वभावान् जानाति पश्यति।

१८५. भंते! श्रुतज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! श्रुतज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त अवस्था में (ज्ञेय के प्रति दत्तचित्त होने पर) सब द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सब क्षेत्रों को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सर्वकाल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सब भावों को जानता-देखता है।

१८६. ओहिनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ-पासइ। उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ-पासइ।

खेत्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं

अवधिज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः।

द्रव्यतः अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति-पश्यति। उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति-पश्यति।

क्षेत्रतः अवधिज्ञानी जघन्येन अंगुलस्य असंख्येयतमं भागं जानाति-पश्यति।

१८६. भंते! अवधिज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! अवधिज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अनंत रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है।

उत्कृष्टतः वह सब रूपी द्रव्यों को जानता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगुलस्स असंखेज्जइभागं जाणइ-पासइ। उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोगे लोय-मेत्ताइं खंडाइं जाणइ-पासइ।
कालओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं आवलि-याए असंखेज्जइभागं जाणइ-पासइ। उक्कोसेणं असंखे-ज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पि-णीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ-पासइ॥
भावओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ-पासइ। उक्को-सेण वि अणंते भावे जाणइ-पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ-पासइ॥

उत्कर्षेण असंख्येयानि अलोके लोक-मात्राणि खण्डानि जानाति-पश्यति।
कालतः अवधिज्ञानी जघन्येन आवलिकायाः असंख्येयतमं भागं जानाति-पश्यति। उत्कर्षेण असंख्येयाः अवसर्पिणीः उत्सर्पिणीः अतीतमनागतं च कालं जानाति-पश्यति।
भावतः अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान् जानाति-पश्यति। उत्कर्षेणापि अनन्तान् भावान् जानाति-पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति-पश्यति।

देखता है।
क्षेत्र की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः वह अलोक में लोक-प्रमाण असंख्यात खण्डों को जानता-देखता है—जान सकता है, देख सकता है।
काल की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः वह असंख्येय अवसर्पिणी उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत और भविष्य काल को जानता-देखता है।
भाव की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अनंत भावों को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः भी अनंत भावों को जानता-देखता है, सर्व भावों के अनंतवें भाग को जानता-देखता है।

१८७. मणपज्जवनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए खंधे जाणइ-पासइ। ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिर-तराए जाणइ-पासइ।

खेत्तओ णं उज्जुमई अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डागपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिम-तले, तिरियं जाव अंतो-मणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णए अंतरदीवगेसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ-पासइ।

तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहि-मंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरं खेत्तं जाणइ-पासइ।

कालओ णं उज्जुमई जहण्णेणं

मनःपर्यवज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?
गौतम! स समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्-यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः कालतः, भावतः।

द्रव्यतः ऋजुमतिः अनन्तान् अनन्त-प्रदेशिकान् स्कन्धान् जानाति-पश्यति। तान् चैव विपुलमतिः अभ्यधिकतरान् विपुल-तरान् विशुद्धतरान् वितिमिरतरान् जानाति-पश्यति।

क्षेत्रतः ऋजुमतिः अधः यावत् अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः उपरितन-अधस्तान् 'खुड्डाग' प्रतरान्, ऊर्ध्वं यावत् ज्योतिषः उपरितनतलान्, तिर्यक् यावत् अन्तर-मनुष्यक्षेत्रे अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु पञ्च-दशसु कर्मभूमिषु त्रिंशत्-अकर्मभूमिषु षटपञ्चाशत् अन्तरद्वीपकेषु संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् जानाति-पश्यति।

तच्चैव विपुलमतिः अर्धतृतीयैः अङ्गुलैः अभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं क्षेत्रं जानाति-पश्यति।

कालतः ऋजुमतिः जघन्येन पल्योपमस्य

१८७. भंते! मनःपर्यवज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?
गौतम! मनःपर्यवज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।
द्रव्य की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी मनोवर्गणा के अनंत अनंत प्रदेशी स्कंधों को जानता-देखता है।
विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी उन स्कन्धों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर रूप में जानता देखता है।
क्षेत्र की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी नीचे की ओर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्ववर्ती-क्षुल्लक प्रतर से अधस्तन क्षुल्लक प्रतर तक, ऊपर की ओर ज्योतिष्चक्र के उपरितल तक, तिरछे भाग में मनुष्य क्षेत्र के भीतर अढ़ाई द्वीप समुद्र तक पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तर्द्वीपों में वर्तमान पर्याप्त समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है।
विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी उस क्षेत्र में अढ़ाई अंगुल अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर क्षेत्र को जानता-देखता है।
काल की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलिओवमस्स, असंखिज्जयभागं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं अतीय-मणागयं वा कालं जाणइ-पासइ।

असंख्येयकभागम्, उत्कर्षेणाऽपि पल्योपमस्य असंख्येयकभागम् अतीतमनागतं वा कालं जानाति-पश्यति।

जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत और भविष्य को जानता-देखता है।

तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं विति-मिरतरागं जाणइ-पासइ।

तच्चैव विपुलमतिः अभ्यधिकतरकं विपुल-तरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति-पश्यति।

विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी उस काल खण्ड को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है।

भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ-पासइ, सव्वभावाणं अणंत-भागं जाणइ-पासइ।

भावतः ऋजुमतिः अनन्तान् भावान् जानाति-पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति-पश्यति।

भाव की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी अनंत भावों को जानता-देखता है।

तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं विति-मिरतरागं जाणइ-पासइ॥

तच्चैव विपुलमतिः अभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति-पश्यति।

विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी उन भावों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है।

१८८. केवलनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

केवलज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

१८८. भंते! केवलज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः भावतः।

गौतम! केवलज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ।

द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति-पश्यति।

द्रव्य की दृष्टि से केवलज्ञानी सब द्रव्यों को जानता-देखता है।

खेत्तओ णं केवलनाणी सव्वं खेत्तं जाणइ-पासइ।

क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति-पश्यति।

क्षेत्र की दृष्टि से केवलज्ञानी सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है।

कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ-पासइ।

कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति-पश्यति।

काल की दृष्टि से केवलज्ञानी सर्वकाल को जानता-देखता है।

भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ-पासइ।

भावतः केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति-पश्यति।

भाव की दृष्टि से केवलज्ञानी सब भावों को जानता-देखता है।

भाष्य

१. सूत्र १८४-१८८

प्रस्तुत प्रकरण में ज्ञान तथा अज्ञान की ज्ञेय-वस्तु का प्रतिपादन किया गया है।

ज्ञेय के चार प्रकार हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। प्रस्तुत सूत्र में ज्ञेय के आधार पर ज्ञान के चार भेद किए गए हैं।

आभिनिबोधिक ज्ञानी सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल और सर्वभाव को जानता है।

आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। परोक्ष ज्ञान के द्वारा सूक्ष्म, दूरस्थ और व्यवहित विषय को नहीं जाना जा सकता इसीलिए आदेश शब्द का प्रयोग किया गया है।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने आदेश का अर्थ प्रकार किया है आभिनिबोधिकज्ञानी ओघादेस (सामान्य आदेश) से सब द्रव्यों को जानता है किन्तु वह सब विशेषों की दृष्टि से सब द्रव्यों को नहीं जानता। तात्पर्य की भाषा में यह आभिनिबोधिक ज्ञान के ज्ञेय की सीमा का निर्देश है। वह सामान्यतः कुछेक पर्यायों से विशिष्ट द्रव्य को जानता है।[1]

आभिनिबोधिकज्ञानी सब भावों को जानता है। जिनभद्रगणि ने इसका अर्थ किया है—आभिनिबोधिकज्ञानी औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक—इन पांच भावों को सामान्य या जाति के रूप में जानता है।[2]

---

१. (क) वि. भा. गा. ४०२-४०४—
तं पुण चउव्विहं, नयभेयओ नेण जं तदुवउत्तो।
आदेसेणं सव्वं दव्वाइ चउव्विहं मुणइ॥
आएसोत्ति पगारे, ओहादेसेण सव्वदव्वाइं।
धम्मत्थि आइयाइं जाणइ न उ सव्वभेएणं॥
खेत्तं लोगालोगं कालं सव्वद्धमहव निविहंति।
पंचोदयाई ए भावे जं नेयमेव इयं॥
(ख) भ. वृ. ८/१८४-१८५।

२. वि. भा. गा. ४०४—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेश का दूसरा अर्थ सूत्र किया गया है। आभिनिबोधिक ज्ञानी सूत्र के अनुसार सब द्रव्यों को जानता है।[1] इस आदेश शब्द के द्वारा केवलज्ञान और आभिनिबोधिकज्ञान के ज्ञेय की सीमा को स्पष्ट किया गया है।

श्रुतज्ञानी के साथ उपयुक्त शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य है कि वह श्रुतोपयोग पूर्वक सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र सर्वकाल, और सर्वभाव को जानता है।

उपयुक्त शब्द के द्वारा केवलज्ञान और श्रुतज्ञान के ज्ञेय की सीमा स्पष्ट होती है। देखें तुलनात्मक यंत्र–

आभिनिबोधिक	श्रुतज्ञान	केवलज्ञान
द्रव्य आदेशतः सर्व द्रव्यों को जानता-देखता है।	श्रुतोपयोग अवस्था में सर्व द्रव्यों को जानता-देखता है।	सर्व द्रव्यों को जानता-देखता है।
क्षेत्र आदेशतः सर्व क्षेत्रों को जानता-देखता है।	श्रुतोपयोग अवस्था में सर्व क्षेत्रों को जानता-देखता है।	सर्व क्षेत्रोंको जानता-देखता है।
काल आदेशतः सर्व काल को जानता-देखता है।	श्रुतोपयोग अवस्था में सर्व काल को जानता-देखता है।	सर्व काल को जानता-देखता है।
भाव आदेशतः सर्व भाव को जानता-देखता है।	श्रुतोपयोग अवस्था में सर्व भावों को जानता-देखता है।	सर्व भावों को जानता-देखता है।

तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक और वैज्ञानिक अपनी मति से संपूर्ण विश्व रचना और विश्ववर्ती पदार्थों के बारे में चिंतन करते हैं, शोध करते हैं और नई नई स्थापना करते हैं। उनमें औत्पत्तिकी बुद्धि का विकास भी होता है। उसके द्वारा अदृष्ट और अश्रुत तत्त्वों को जान लेते हैं। किसी पूर्व परंपरा और शास्त्र का अनुसरण किए बिना अनेक नए तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं इसलिए आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञान की केवलज्ञान से सापेक्ष दृष्टि से तुलना की जाती है। इस सापेक्षता को बताने के लिए ही आदेश और उपयुक्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

नंदी में "ण पासइ" पाठ उपलब्ध है। नंदी की चूर्णि में इसका अर्थ किया है–आभिनिबोधिक ज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्यों को नहीं देखता, उचित देश में अवस्थित रूप आदि को चक्षु-अचक्षुदर्शन के द्वारा देखता भी है।[2]

भगवती में 'पासई' और नंदी में "ण पासइ" इन दो विरोधी वक्तव्यों का समन्वय नंदी के व्याख्या ग्रन्थों के आधार पर किया जा सकता है। आभिनिबोधिकज्ञानी सब द्रव्यों को देखता है, इसकी अपेक्षा यह है कि वह चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के विषयभूत सब द्रव्यों को देखता है। निषेध की अपेक्षा यह है कि आभिनिबोधिक- ज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त द्रव्यों को नहीं देखता इसलिए वह सब द्रव्यों को नहीं देखता।

श्रुतज्ञानी सब द्रव्यों को देखता है। अभयदेवसूरि ने इसकी व्याख्या की है। उन्होंने सब द्रव्यों का नियामक सूत्र दिया है। जो अभिलाप्य द्रव्य हैं, उन सब द्रव्यों को जानता है। जानने के दो साधन हैं–श्रुतानुवर्ती मानसज्ञान और अचक्षुदर्शन। संपूर्ण दशपूर्वधर आदि तथा श्रुतकेवली सर्व अभिलाप्य द्रव्यों को जानता-देखता है, संपूर्ण दशपूर्व से निम्न ज्ञान वालों के लिए भजना है।[3] वृद्ध व्याख्या के अनुसार 'पश्यति' का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–प्रज्ञापना में श्रुतज्ञान की पश्यत्ता का प्रतिपादन किया गया है।[4] विशेषावश्यक-भाष्य में भी पश्यत्ता की चर्चा उपलब्ध है।[5]

श्रुतज्ञानी के द्वारा अनुत्तरविमान आदि अदृष्ट भूखण्डों का आलेख्य किया जाता है। सर्वथा अदृष्ट का आलेख्य नहीं किया जा सकता।[6] यद्यपि अभिलाप्य भावों का अनंतवां भाग श्रुतनिबद्ध है फिर भी सामान्य विवक्षा में सब अभिलाप्य भाव श्रुतज्ञान के ज्ञेय हैं, ऐसा कहा जाता है। इस अपेक्षा से यह पाठ है कि श्रुतज्ञानी सब भावों को जानता-देखता है।[7]

भगवती (१/२०४) में अवधिज्ञान के दो प्रकार बतलाए गए हैं–आधोवधिक और परमाधोवधिक। स्थानांग में अवधिज्ञान के देशावधि और सर्वावधि–ये दो प्रकार निर्दिष्ट हैं।[8] जयधवला में अवधिज्ञान के तीन प्रकार मिलते हैं–देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।[9] प्रस्तुत सूत्र में विषयवस्तु का प्रतिपादन अवधिज्ञान के तीनों प्रकारों को लक्ष्य में रखकर किया गया है। अवधिज्ञानी

१. वही, ४०५–
आएसो त्ति व सुत्तं सुउवलद्धेसु तस्स मइनाणं।
पासइ तब्भावणया विणा वि सुत्तानुसारेण॥

२. नंदी चू. पृ. ४२–ण पस्सइ त्ति सव्वे सामण्णविसेसादेसद्वितेधम्मादिए, चक्खुअचक्खुदंसणेण सव्व महादिसे केयि पासति त्ति।

३. भ. वृ. ८/१८५–सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि 'जानाति' विशेषतोऽवगच्छति, श्रुतज्ञानस्य तत्स्वरूपत्वात्, पश्यति च श्रुतानुवर्तिनामानसेन अचक्षुर्दर्शनेन सर्वद्रव्याणि चाभिलाप्यान्येव जानाति पश्यति चाभिन्नपूर्वदशधरादिः श्रुतकेवली तदवस्तस्तु भजना, सा पुनर्मतिविशेषतो भावनीयेति।

४. पण्ण. ३० २।

५. वि. भा. गा. ५५३-५६१।

६. भ. वृ. ८ १८५–दृष्टेः पुनः पश्यत्तान्यवेदमुक्तं ननु पश्यतीति कथं? कथं च न, सकलगोचरदर्शनायोगात्? अत्रोच्यते, प्रज्ञापनायां श्रुतज्ञानपश्यनायाः प्रतिपादितत्वादनुत्तरविमानादीनां चालेख्यकरणात् सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्तेः।

७. वही, ८/१८५–ननु भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ इति यदुक्तमिह तत् 'सुए चरित्ते न पन्नवए सव्वे'ति (अभिलाप्यापेक्षया) अनेन च सह कथं न विरुध्यते? उच्यते, इह सूत्रे सर्वग्रहणेन पंचेंद्रियकाठगो भावा गृह्यन्ते, तांश्च सर्वान् जानितो जानाति, अथवा यद्यप्यभिलाप्यानां भावानामनंतभाग एव श्रुतनिबद्धस्तथापि प्रसंगानुप्रसंगतः सर्वेष्वभिलाप्याः श्रुतविषया उच्यन्ते अनन्तदर्शेक्षया सर्वभावान् जानातीत्युक्तम्, अनभिलाप्यभावापेक्षया तु 'सुए चरित्ते न पन्नवए सव्वे' इत्युक्तमिति न विरोधः।

८. ठाणं २/१९३-२०० तथा १९३ का टिप्पण द्रष्टव्य।

९. क. पा. भाग १, पृष्ठ १७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्यतः अनंत रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है, यह सर्व सामान्य निर्देश है। अवधिज्ञानी उत्कृष्टतः सब रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है, यह निर्देश परमावधि और सर्वावधि की अपेक्षा से है। अनंत की व्याख्या आवश्यक निर्युक्ति में मिलती है। पुद्गल की आठ वर्गणाएं हैं–

१. औदारिक वर्गणा २. वैक्रिय वर्गणा ३. आहारक वर्गणा ४. तैजस वर्गणा ५. भाषा वर्गणा ६. श्वासोच्छवास वर्गणा ७. मनो वर्गणा ८. कर्म वर्गणा।

निर्युक्ति के अनुसार प्रारंभिक अवस्था वाला अवधिज्ञानी तैजस और भाषा वर्गणा के मध्यवर्ती द्रव्यों को जानता है।[1]

विशेषावश्यक भाष्य, नंदी चूर्णि, नंदी की हारिभद्रीया वृत्ति और मलयगिरीया वृत्ति में भी इसी मत का अनुसरण है।[2] विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य है नंदी (सूत्र १.२२) के पाद टिप्पण।

अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान का विषय है रूपी (मूर्त) द्रव्य। अरूपी द्रव्य उनका विषय नहीं है। अवधिज्ञान का विषय है सब रूपी द्रव्य। मनःपर्यवज्ञान का विषय केवल मनोवर्गणा के पुद्गल स्कंध हैं। समनस्क जीव मनन अथवा चिंतन करने के लिए मनोवर्गणा के पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करता है मनन के अनुरूप उन पुद्गल स्कंधों की आकृतियां बनती जाती हैं। उन आकृतियों की संज्ञा पर्याय है। मनःपर्यवज्ञानी[3] मन की उन आकृतियों या पर्यायों का साक्षात्कार करता है। तात्पर्य की भाषा में मनन करने वाले व्यक्ति के विचारों का साक्षात् कर लेता है, विचार के समय जो चिन्त्यमान वस्तु होती है उसका साक्षात्कार नहीं होता। जिनभद्रगणि के अनुसार चिन्त्यमान वस्तु को वह अनुमान से जानता है।[4]

सिद्धसेन ने अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान को एक ही माना है। उपाध्याय यशोविजयजी ने ज्ञान बिन्दु प्रकरण में उसका उल्लेख कर नय दृष्टि से उस पर विचारणा की है।[5] पंडित सुखलालजी ने मनःपर्यवज्ञान के विषय में एक विमर्श प्रस्तुत किया है–

मनःपर्यवज्ञान का विषय मन के द्वारा चिन्त्यमान वस्तु है या चिन्तन-प्रवृत्त मनोद्रव्य की अवस्थाएं हैं–इस विषय में जैन परंपरा में ऐकमत्य नहीं। निर्युक्ति और तत्त्वार्थसूत्र एवं तत्त्वार्थसूत्रीय व्याख्याओं में पहला पक्ष वर्णित है जबकि विशेषावश्यक भाष्य में दूसरे पक्ष का समर्थन किया गया है। परन्तु योगभाष्य तथा मज्झिमनिकाय में जो परचित्त ज्ञान का वर्णन है, उसमें केवल दूसरा ही पक्ष है, जिसका वर्णन जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने किया है। योग भाष्यकार तथा मज्झिमनिकायकार स्पष्ट शब्दों में यही कहते हैं कि ऐसे प्रत्यक्ष के द्वारा दूसरों के चित्त का ही साक्षात्कार होता है, चित्त के आलम्बन का नहीं। योगभाष्य में तो चित्त के आलंबन का ग्रहण हो न सकने के पक्ष में दलीलें भी दी गई हैं।

यहां विचारणीय दो बातें हैं–एक तो यह कि मनःपर्यायज्ञान के विषय के बारे में जो जैन वाङ्मय में दो पक्ष देखे जाते हैं, इसका स्पष्ट अर्थ क्या यह नहीं है कि पिछले वर्णनकारी साहित्य युग में ग्रंथकार पुरानी आध्यात्मिक बातों का तार्किक वर्णन तो करते थे पर आध्यात्मिक अनुभव का युग बीत चुका था। दूसरी बात विचारणीय यह है कि योगभाष्य, मज्झिमनिकाय और विशेषावश्यक भाष्य में पाया जाने वाला ऐकमत्य स्वतंत्र चिन्तन का परिणाम है या किसी एक का दूसरे पर असर भी है?[6]

मनःपर्यवज्ञान का विषय वास्तव में चिन्तन प्रवृत्त मनोद्रव्य की अवस्थाएं हैं। चिन्त्यमान वस्तु से उसका सीधा संबंध नहीं है। नंदी के चूर्णिकार ने इस विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है, उनका वक्तव्य है–चिन्त्यमान वस्तु मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार की हो सकती है। अमूर्त वस्तु मनःपर्यवज्ञान का विषय नहीं है; इसलिए मनःपर्यवज्ञान से मनोद्रव्य के पर्यायों का प्रत्यक्ष किया जा सकता है और चिन्त्यमान वस्तु को अनुमान से जाना जा सकता है। अनुमान परोक्षज्ञान है इसलिए उसका मनःपर्यवज्ञान से सीधा संबंध नहीं है।[7]

ज्ञान के दो विभाग हैं–क्षायोपशमिक और क्षायिक। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव–ये चार ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होते हैं इसलिए क्षायोपशमिक हैं। केवलज्ञान ज्ञानावरण के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होता है इसलिए वह क्षायिक है।

क्षायोपशमिक ज्ञान का विषय है मूर्तद्रव्य–पुद्गलद्रव्य। क्षायिक ज्ञान का विषय मूर्त और अमूर्त दोनों द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और जीव–ये अमूर्त द्रव्य हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान के द्वारा इनका प्रत्यक्षज्ञान नहीं हो सकता। अमूर्त का ज्ञान परोक्षात्मक शास्त्र ज्ञान से होता है।[8]

दार्शनिक युग में केवलज्ञान की विषय वस्तु के आधार पर सर्वज्ञवाद की विशद चर्चा हुई है। पण्डित सुखलालजी ने उस चर्चा का समवतार इस प्रकार किया है–न्याय, वैशेषिक दर्शन जब सर्व

१. आव. नि. गा. ३८

२. (क) वि. भा. गा. ६८३–
तेयाकम्मप्पगरं तेलादव्वे य भारादव्वे य
(ख) नंदी चू. पृ. २०।
(ग) हा. वृ. पृ. ३०।
(घ) नंदी मलयगिरीया वृ. प. १७।

३. वि. भा. गा. ८१३-८१४–
मुणइ मणो दव्वाइं तल्लोए से मणिज्जमाणाइ।
काले भूय-भविस्से पलियासंखेज्जभागम्मि॥
दव्वमणोपज्जाए जाणइ पासइ य तग्गएणं से।
तेणावभासिए उण जाणइ बज्झेऽणुमाणेणं॥

४. ज्ञान. प्र. पृ. १८

५. वही, भूमिका पृ. ४१-४२

६. नंदी चू. पृ. २४–सण्णिणा मणत्तेण मणिते मणोखंधे अणंते अणंतपदेसिए, दव्वट्ठताए तग्गते य वण्णादिए भावे मणपज्जवणाणेणं पच्चक्खं पेक्खमाणो जाणातित्ति भणितं। मणितमत्थं पुण पच्चक्खं ण पेक्खति जेण मणालंबणं मुत्तममुत्तं वा सो य छदुमत्थो तं अणुमाणतो पेक्खति त्ति एतो पारंपरता भणिता।

७. द्रष्टव्य भ. ८ १८५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयक साक्षात्कार का वर्णन करता है तब वह सर्व शब्द से अपनी परंपरा में प्रसिद्ध द्रव्य, गुण आदि सातों पदार्थों को संपूर्ण भाव से लेता है। सांख्य योग जब सर्व विषयक साक्षात्कार का चित्रण करता है तब वह अपनी परंपरा में प्रसिद्ध प्रकृति। पुरुष आदि पच्चीस तत्त्वों के पूर्ण साक्षात्कार की बात कहता है। बौद्ध दर्शन सर्व शब्द से अपनी परम्परा में प्रसिद्ध पंच स्कन्धों को संपूर्ण भाव से लेता है। वेदान्त दर्शन सर्व शब्द से अपनी परंपरा में पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध एकमात्र पूर्ण ब्रह्म को ही लेता है। जैन दर्शन भी सर्व शब्द से अपनी परंपरा में प्रसिद्ध सपर्याय षड्द्रव्यों को पूर्णरूपेण लेता है। इस तरह उपर्युक्त सभी दर्शन अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार माने जाने वाले सब पदार्थों को लेकर उनका पूर्ण साक्षात्कार मानते हैं और तदनुसारी लक्षण भी करते हैं।[1]

पण्डित सुखलालजी की सर्वज्ञता विषयक मीमांसा का स्पष्ट फलित है कि 'सर्व' पद के विषय में सब दार्शनिक एक मत नहीं हैं। इसका मूल हेतु आत्मा और ज्ञान के संबंध की अवधारणा है। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। वह एक है, अक्षर है, उसका नाम केवल ज्ञान है।[2]

आचार्य कुन्दकुन्द ने केवलज्ञान का लक्षण व्यवहार और निश्चय—दो दृष्टियों से किया है—व्यवहार नय से केवली भगवान सबको जानते हैं और देखते हैं। निश्चय से केवलज्ञानी अपनी आत्मा को जानते हैं और देखते हैं।[3]

जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान स्व-पर प्रकाशी है। वह स्वप्रकाशी है, इस आधार पर केवलज्ञानी निश्चय नय से आत्मा को जानता-देखता है, यह लक्षण संगत है। वह पर प्रकाशी है, इस आधार पर वह सबको जानता-देखता है, यह लक्षण संगत है।

केवल ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। वह स्वभाव है इसलिए मुक्त अवस्था में भी विद्यमान रहता है। प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कारित्व उसका स्वाभाविक गुण है। ज्ञानावरण कर्म से आच्छन्न होने के कारण उसके मति, श्रुत आदि भेद बनते हैं। संग्रह दृष्टि से चार भेद किये गए हैं—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव। तारतम्य के आधार पर असंख्य भेद बन सकते हैं। ज्ञानावरण का सर्व विलय होने पर ज्ञान के तारतम्य जनित भेद समाप्त हो जाते हैं और केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

केवलज्ञान का अधिकारी सर्वज्ञ होता है। सर्वज्ञ और सर्वज्ञता न्याय प्रधान दर्शन युग का एक महत्त्वपूर्ण चर्चनीय विषय रहा है। जैन दर्शन को केवलज्ञान मान्य है इसलिए सर्वज्ञवाद उसका सहज स्वीकृत पक्ष है। आगम युग में उसके स्वरूप और कार्य का वर्णन मिलता है किन्तु उसकी सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया। दार्शनिक युग में मीमांसक, चार्वाक आदि ने सर्वज्ञत्व को अस्वीकार किया तब जैन दार्शनिकों ने सर्वज्ञत्व की सिद्धि के लिए कुछ तर्क प्रस्तुत किए। ज्ञान का तारतम्य देखा जाता है, जिसका तारतम्य होता है, उसका अंतिम बिन्दु तारतम्य रहित होता है। ज्ञान का तारतम्य सर्वज्ञता में परिनिष्ठित होता है। इस युक्ति का उपयोग मल्लवादी, हेमचन्द्र, उपाध्याय यशोविजय आदि सभी दार्शनिकों ने किया है।[4] पण्डित सुखलालजी ने इस युक्ति का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए लिखा है—'यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न है कि प्रस्तुत युक्ति का मूल कहां तक पाया जाता है और वह जैन परंपरा में कब से आई देखी जाती है। अभी तक के हमारे वाचन-चिन्तन से हमें यही जान पड़ता है कि इस युक्ति का पुरातनम उल्लेख योगसूत्र के सिवाय अन्यत्र नहीं है। हम पातंजल योगसूत्र के प्रथम पाद में 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' (१.२५) ऐसा सूत्र पाते हैं, जिसमें साफ तौर से यह बतलाया गया है कि ज्ञान का तारतम्य ही सर्वज्ञ के अस्तित्व का बीज है जो ईश्वर में पूर्णरूपेण विकसित है। इस सूत्र के ऊपर के भाष्य में व्यास ने तो मानो सूत्र के विधान का आशय हस्तामलकवत् प्रकट किया है। न्याय-वैशेषिक परंपरा जो सर्वज्ञवादी है उसके सूत्र-भाष्य आदि प्राचीन ग्रंथों में इस सर्वज्ञास्तित्व की साधक युक्ति का उल्लेख नहीं है। हां, हम प्रशस्तपाद की टीका व्योमवती (पृ. ५६०) में उसका उल्लेख पाते हैं। पर ऐसा कहना निर्युक्तिक नहीं होगा कि व्योमवती का वह उल्लेख योगसूत्र तथा उसके भाष्य के बाद का ही है। काम की किसी भी अच्छी दलील का प्रयोग जब एक बार किसी के द्वारा चर्चा क्षेत्र में आ जाता है तब फिर वह आगे सर्वसाधारण हो जाता है। प्रस्तुत युक्ति के बारे में भी यही हुआ जान पड़ता है। संभवतः सांख्ययोग परंपरा ने उस युक्ति का आविष्कार किया फिर उसने न्याय, वैशेषिक तथा बौद्ध परंपरा के ग्रन्थों में भी प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया और उसी तरह वह जैन परंपरा में भी प्रतिष्ठित हुई।

जैन परंपरा के आगम, निर्युक्ति, भाष्य आदि प्राचीन अनेक ग्रंथ सर्वज्ञत्व के वर्णन से भरे पड़े हैं, पर हमें उपर्युक्त ज्ञानतारतम्य वाली सर्वज्ञत्व साधक युक्ति का सर्वप्रथम प्रयोग मल्लवादी की कृति में ही देखने को मिलता है।[5] अभी यह कहना संभव नहीं कि मल्लवादी ने किस परंपरा से वह युक्ति अपनाई। पर इतना तो निश्चित है कि मल्लवादी के बाद के सभी दिगंबर-श्वेताम्बर तार्किकों ने इस युक्ति का उदारता से उपयोग किया है।[6]

जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का गुण है। वह अनावृत

---

१. दर्शन चिन्तन पृ. ४२९-३०

२. नंदी सू. ११

३. नियमसार गाथा १२.१.१५९—
जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणयेण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥

४. (क) नयचक्र लिखित प्रति पृ. १२३ अ।
(ख) प्रमाण मीमांसा-अध्ययन१, आह्निक १, सूत्र १८ पृ. १५।
(ग) ज्ञान. प्र. पृ. १९।

५. ज्ञान. प्र. भूमिका पृ. ४३-४४।

६. तत्त्व संग्रह पृ. ८२५।

७. नयचक्र लिखित प्रति पृ. १२३ अ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवस्था में भेद या विभाग शून्य होता है। आवरण के कारण उसके विभाग होते हैं और तारतम्य होता है। ज्ञान के तारतम्य के आधार पर उसकी पराकाष्ठा को केवलज्ञान मानना एक पक्ष है किन्तु इससे अधिक संगत पक्ष यह है कि केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव अथवा गुण है। ज्ञानावरण कर्म के कारण उसमें तारतम्य होता है। ज्ञानावरण के क्षय होने पर स्वभाव प्रगट हो जाता है।

किसी अन्य दर्शन में ज्ञान आत्मा का स्वभाव या गुण रूप में स्वीकृत नहीं है इसलिए उनमें सर्वज्ञता का वह सिद्धान्त मान्य नहीं है जो जैन दर्शन में है। पंडित सुखलालजी ने सर्व शब्द को दर्शन के साथ जोड़ा है। उनके अनुसार जो दर्शन जितने तत्त्वों को मानता है, उन सबको जानने वाला सर्वज्ञ होता है। जैन दर्शन ने 'सर्व' शब्द को स्वाभिमत द्रव्य की सीमा में आबद्ध नहीं किया है। उसे द्रव्य के अतिरिक्त क्षेत्र, काल और भाव के साथ संयोजित किया है। केवलज्ञान का विषय है–

१. सर्व द्रव्य २. सर्व क्षेत्र ३. सर्व काल ४. सर्व भाव।

द्रव्य का सिद्धान्त प्रत्येक दर्शन का अपना अपना होता है किन्तु क्षेत्र, काल और भाव ये सर्व सामान्य हैं। सर्वज्ञ सब द्रव्यों को सर्वथा, सर्वत्र और सर्व काल में जानता देखता है।[1]

न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों में ज्ञान आत्मा के गुण के रूप में सम्मत नहीं है इसलिए उन्हें मनुष्य की सर्वज्ञता का सिद्धांत मान्य नहीं हो सकता। बौद्ध दर्शन में अन्वयी आत्मा मान्य नहीं है इसलिए बौद्ध भी सर्वज्ञवाद को स्वीकार नहीं करते। वेदान्त के अनुसार केवल ब्रह्म ही सर्वज्ञ हो सकता है, कोई मनुष्य नहीं। सांख्य दर्शन में केवलज्ञान अथवा कैवल्य की अवधारणा स्पष्ट है।[2]

जैनदर्शन सम्मत सर्वज्ञता के विरोध में मीमांसकों ने प्रबल तर्क उपस्थित किए। उनके अनुसार प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान, आगम, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि–किसी भी प्रमाण से सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं हो सकती।

न्याय और वैशेषिक ईश्वरवादी दर्शन हैं, वे ईश्वर को सर्वज्ञ मानते हैं। कालक्रम से उनमें योगि-प्रत्यक्ष की अवधारणा प्रविष्ट हुई है पर जैन दर्शन सम्मत सर्वज्ञत्व की अवधारणा उनमें नहीं है। जैन दर्शन में केवलज्ञान या सर्वज्ञत्व मोक्ष की अनिवार्य शर्त है। न्याय और वैशेषिक का मत है–मुक्त अवस्था में योगि-प्रत्यक्ष नहीं रहता। ईश्वर का ज्ञान नित्य है और योगि-प्रत्यक्ष अनित्य।[3]

शांतरक्षित ने कुमारिल के तर्कों का उत्तर दिया।[4] किन्तु शांतरक्षित के उत्तर सर्वज्ञत्व की सिद्धि में बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकते। बौद्ध दर्शन सर्वज्ञत्व के विरोध में अग्रणी रहा है। उत्तरवर्ती बौद्धों ने सर्वज्ञत्व का जो स्वीकार किया है, वह अस्वीकार और स्वीकार के मध्य झूलता दिखाई देता है। सर्वज्ञत्व की सिद्धि में सर्वाधिक प्रयत्न जैन दार्शनिकों का है। इस प्रयत्न की पृष्ठभूमि में दो हेतु हैं–

१. सर्वज्ञता आत्मा का स्वभाव है।

२. मोक्ष के लिए सर्वज्ञत्व अनिवार्य है।

बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति ने सर्वज्ञता का खण्डन किया, उसका उत्तर आचार्य हरिभद्र[5] ने दिया। कुमारिल के तर्कों का उत्तर सुमतिभद्र,[6] अकलंक,[7] विद्यानन्द,[8] प्रभाचन्द्र[9] आदि ने दिया है। यदि हम तर्कजाल को सीमित करना चाहें तो नंदी का यह सूत्र पर्याप्त है–ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। ज्ञानावरण के क्षीण होने पर सकल ज्ञेय को जानने की उसमें क्षमता है।[10]

केवलज्ञान की परिभाषा

नंदी के अनुसार जो ज्ञान सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव को जानता देखता है वह केवलज्ञान है।[11]

आचारचूला से फलित होता है–केवलज्ञानी सब जीवों के सब भावों को जानता-देखता है। ज्ञेय रूप सब भावों की सूची इस प्रकार है–१. आगति २. गति ३. स्थिति ४. च्यवन ५. उपपात ६. भुक्त ७. पीत ८. कृत ९. प्रतिसेवित १०. आविष्कर्म–प्रगट में होने वाला कर्म ११. रहस्य कर्म १२. लपित १३. कथित १४. मनो-मानसिक।[12]

षट्खण्डागम में भी आचारचूला के समान ही सूत्र उपलब्ध है।[13] देखें यंत्र–

---

१. नंदी चू. पृ. २८–णत्थं दव्वादिया सव्वे सव्वधा सव्वत्थ सव्वकालं उवयुत्ते सागारोवओगलक्खणेहिं णाणदंसणेहिं जाणति पासति य।

२. सांख्यकारिका श्लोक ६४,६८ –
एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि, न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद् विशुद्धं, केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥
प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात्, प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।

३. न्यायमंजरी पृ. ५०८–
तदेवं धिषणादीनां नवानामपि मूलतः।
गुणानामात्मनो ध्वंसः सोपवर्गः प्रकीर्तितः॥

४. तत्त्व संग्रह पृ. ८४६।

५. शास्त्रवार्ता समुच्चय ६२७-६४३।

६. आप्तमीमांसा पृ. १२ कारिका ५।

७. न्यायविनिश्चय कारिका न. ३६१, ३६२, ४१०, ४१४, ४६५।

८. अष्टसहस्री पृ. ५०।

९. प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ. २२५।

१०. (क) नंदी सू. ७१।
(ख) नंदी सू. ३३ : १ –
अह सव्वदव्वपरिणाम-भाव-विण्णत्ति-कारणमणंतं।
सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं॥

११. नंदी सू. ३३।

१२. आ. चू. १५/३९–से भगवं अरिहं जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी, सदेवमणुया सुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा–आगतिं गतिं ठितिं चयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे, एवं च णं विहरइ।

१३. ष. ख. १३/५,५,८२ पृ. ३४६–सई भयवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुरमणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिभागं तक्कं कलं मणोमाणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं रहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मं समं जाणदि पस्सदि विहरदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयारचूला	षट्खण्डागम
१. आगति	१. आगति
२. गति	२. गति
३. स्थिति	३. च्यवन
४. च्यवन	४. उपपात
५. उपपात	५. बंध
६. भुक्त	६. मोक्ष
७. पीत	७. ऋद्धि
८. कृत	८. स्थिति
९. प्रतिसेवित	९. अनुभाग
१०. आविष्कर्म	१०. तर्क
११. रहस्य कर्म	११. कल
१२. लपित	१२. मनोमानसिक भाव
१३. कथित	१३. भुक्त
१४. मनोमानसिक भाव	१४. कृत
१५. सर्व लोक	१५. प्रतिसेवित
१६. सर्व जीव	१६. आदि कर्म
१७. सर्व भाव	१७. रहस्य कर्म
	१८. सर्व लोक
	१९. सर्व जीव
	२०. सर्व भाव

केवली मित और अमित दोनों को जानता है। अमित को जानता है यह नंदी आदि उत्तरवर्ती सूत्र-ग्रन्थों का वक्तव्य है। केवली मित को जानता है, इसकी व्याख्या आचारचूला के उक्त संदर्भ से स्पष्ट होती है। अमित और मित की व्याख्या दो नयों के आधार पर की जा सकती है। निश्चय नय का सिद्धान्त यह है कि केवली समग्र को जानता है, उसका ज्ञान अनावृत है[1] इसलिए उसमें सबको जानने की क्षमता है। व्यवहार नय के आधार पर कहा जा सकता है कि केवली मित को जानता है, जिस समय जितना प्रयोजनीय है, उतना जानता है। अभयदेवसूरि ने मित के उदाहरण के रूप में गर्भज मनुष्य, जीव द्रव्य आदि का उल्लेख किया है और अमित के उदाहरण के रूप में वनस्पति, पृथ्वी, जीव द्रव्य आदि का उल्लेख किया है।[2] किन्तु अमित को जानता है फिर मित को जानता है—इस वचन की सार्थकता प्रतीत नहीं होती। इसलिए मित की व्याख्या व्यवहार नय के आधार पर और अमित की व्याख्या निश्चय नय के आधार पर की जाए तो अधिक संगत प्रतीत होती है।

जो मूर्त्त और अमूर्त्त सब द्रव्यों को सर्वथा, सर्वत्र और सर्वकाल में जानता-देखता है, वह केवलज्ञान है।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द ने निश्चय और व्यवहार नय के आधार पर केवलज्ञान की परिभाषा की है।[4]

बृहत्कल्प भाष्य में केवलज्ञान के पांच लक्षण बतलाए हैं—

१. असहाय—इंद्रिय मन निरपेक्ष।

२. एक—ज्ञान के सभी प्रकारों से विलक्षण।

३. अनिवारित व्यापार—अविरहित उपयोग वाला।

४. अनंत—अनंत ज्ञेय का साक्षात्कार करने वाला।

५. अविकल्पित—विकल्प अथवा विभाग रहित।[5]

तत्त्वार्थ भाष्य में केवलज्ञान का स्वरूप विस्तार से बतलाया गया है। वह सब भावों का ग्राहक, संपूर्ण लोक और अलोक को जानने वाला है। इससे अतिशायी कोई ज्ञान नहीं है। ऐसा कोई ज्ञेय नहीं है जो केवलज्ञान का विषय न हो।[6]

उक्त व्याख्याओं के सन्दर्भ में सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की व्याख्या इस प्रकार फलित होती है—सर्व द्रव्य का अर्थ है—मूर्त्त और अमूर्त्त सब द्रव्यों को जानने वाला। केवलज्ञान के अतिरिक्त कोई भी ज्ञान अमूर्त्त का साक्षात्कार अथवा प्रत्यक्ष नहीं कर सकता।

सर्व क्षेत्र का अर्थ है—संपूर्ण आकाश (लोकाकाश और अलोकाकाश) को साक्षात् जानने वाला।

सर्वकाल का अर्थ है—सीमातीत अतीत और भविष्य को जानने वाला। शेष कोई ज्ञान असीम काल को नहीं जान सकता।

सर्व भाव का अर्थ है—गुरुलघु और अगुरुलघु सब पर्यायों को जानने वाला।

केवलज्ञान या सर्वज्ञता की इतनी विशाल अवधारणा किसी अन्य दर्शन में उपलब्ध नहीं है।

पण्डित सुखलालजी ने 'निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' योगदर्शन के इस सूत्र को सर्वज्ञ-सिद्धि का प्रथम सूत्र माना है। जैन आचार्यों ने भी इस युक्ति का अनुसरण किया है किन्तु सर्वज्ञता की सिद्धि का मूल सूत्र आगम में विद्यमान है। वह प्राचीन है तथा योगदर्शन के सूत्र से सर्वथा भिन्न है। सर्वज्ञता की सिद्धि का हेतु है अनिन्द्रियता।[7] इन्द्रिय ज्ञान स्पष्ट है। उसका प्रतिपक्ष है अनिन्द्रिय ज्ञान। जो सत् है, उसका प्रतिपक्ष अवश्य है। इन्द्रियज्ञान का प्रतिपक्ष है अनिन्द्रिय ज्ञान। सर्वज्ञता इन्द्रिय और मन से सर्वथा निरपेक्ष है।

केवलज्ञानी जानता-देखता है—जाणई पासई—इन दो पदों का

---

१. भ. वृ. ५/६७ मियं पिनि परिणामवद् गर्भजमनुष्यजीवद्रव्यादि। अमियं पिनि अनंतमसंख्येय वा वनस्पति, पृथिवी, जीव द्रव्यादि।

२. नंदी चू., पृ. २८।

३. द्रष्टव्य नियमसार गाथा १२,१.१५९, पृ. १४६।

४. बृ. भा. पीठिका गाथा ३८—

दव्वादि कसिण विसयं, केवलमेगं तु केवलन्नाणं।
अणिवारियवावारं, अणंतमविकप्पियं नियतं॥

५. त. सू. भा. वा. १/३० —सर्वद्रव्येषु सर्वपर्यायेषु च केवलज्ञानस्य विषयनिबंधो भवति। नहि सर्वभावग्राहकं संभिन्नलोकालोकविषयम्। ततः परं ज्ञानमस्ति। न च केवलज्ञानविषयात् किंचिदन्यज्ज्ञेयमस्ति। केवलं परिपूर्णं समग्रमसाधारणं निरपेक्षं विशुद्धं सर्वभावज्ञापकं लोकालोकविषयमनंतपर्यायमित्यर्थः।

६. भ. ८/११७—अणिंदिया णं भंते! जीवा किं णाणी?
जहा सिद्धा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत सूत्र में साकार और अनाकार उपयोग की चर्चा नहीं है। नंदी में भी उनकी चर्चा नहीं है। भगवती में केवलज्ञान को साकार उपयोग और केवलदर्शन को अनाकार उपयोग बतलाया गया है।[1] केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग के बारे में तीन मत मिलते हैं–

१. क्रमवाद २. युगपत्वाद ३. अभेदवाद

क्रमवाद आगमानुसारी है। उसके मुख्य प्रवक्ता हैं जिनभद्रगणि। युगपत्वाद के प्रवक्ता हैं मल्लवादी। अभेदवाद के प्रवक्ता हैं सिद्धसेन दिवाकर।

जिनभद्रगणि ने विशेषणवती में तीनों पक्षों की चर्चा की है किन्तु किसी प्रवक्ता का नामोल्लेख नहीं किया।[2] जिनदास महत्तर ने नंदी चूर्णि (विक्रम की आठवीं शताब्दी) में विशेषणवती को उद्धृत किया है। उन्होंने किसी वाद के पुरस्कर्ता का उल्लेख नहीं किया।[3]

हरिभद्रसूरि (विक्रम की आठवीं शताब्दी) ने चूर्णिगत विशेषणवती की गाथाओं को उद्धृत किया है और पुरस्कर्ता आचार्यों का नामोल्लेख भी किया है। उनके अनुसार युगपत्वाद के प्रवक्ता हैं–आचार्य सिद्धसेन आदि। क्रमवाद के प्रवक्ता हैं जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण आदि। अभेदवाद के प्रवक्ता के रूप में वृद्धाचार्य का उल्लेख किया है।[4]

मलयगिरी (विक्रम की बारहवीं शताब्दी) ने हरिभद्रसूरि का ही अनुसरण किया है।[5]

सन्मति के टीकाकार अभयदेवसूरि (विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी) ने तीनों वादों के प्रवक्ताओं के नामों का उल्लेख किया है–

क्रमवाद के प्रवक्ता–जिनभद्र, युगपत्वाद के प्रवक्ता–मल्लवादी, अभेदवाद के प्रवक्ता–सिद्धसेन।

क्रमवाद के विषय में हरिभद्र और अभयदेव एक मत हैं। युगपत्वाद और अभेदवाद के बारे में दोनों के मत भिन्न हैं। सिद्धसेन अभेदवाद के प्रवक्ता हैं, यह सन्मति तर्क से स्पष्ट है। उन्हें युगपत्वाद का प्रवक्ता नहीं माना जा सकता। इस स्थिति में युगपत्वाद के प्रवक्ता के रूप में मल्लवादी का नामोल्लेख संगत हो सकता है। उपलब्ध द्वादशार नयचक्र में इस विषय का कोई उल्लेख नहीं है। अभयदेव ने किस ग्रन्थ के आधार पर इसका उल्लेख किया, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

उपाध्याय यशोविजयजी ने तीनों वादों की समीक्षा की है और नय दृष्टि से उनके समन्वय का प्रयत्न किया है।[6]

१८९. मइअण्णाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

मति-अज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?

गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः भावतः।

१८९. 'भंते! मति अज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! मति अज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

दव्वओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ-पासइ।

द्रव्यतः मति-अज्ञानी मति-अज्ञानपरिगतानि द्रव्याणि जानाति-पश्यति।

द्रव्य की दृष्टि से मति अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को जानता-देखता है।

खेत्तओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयं खेत्तं जाणइ-पासइ।

क्षेत्रतः मति-अज्ञानी मति-अज्ञानपरिगतं क्षेत्रं जानाति पश्यति।

क्षेत्र की दृष्टि से मति अज्ञानी मति अज्ञान के विषयभूत क्षेत्र को जानता-देखता है।

कालओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयं कालं जाणइ-पासइ।

कालतः मति-अज्ञानी मति-अज्ञानपरिगतं कालं जानाति-पश्यति।

काल की दृष्टि से मति अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत काल को जानता-देखता है।

भावओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगए भावे जाणइ-पासइ॥

भावतः मति-अज्ञानी मति-अज्ञानपरिगतान् भावान् जानाति-पश्यति।

भाव की दृष्टि से मति अज्ञानी मति अज्ञान के विषय भूत भावों को जानता-देखता है।

---

१. (क) भ. १६ : १०८।
(ख) पण्ण. २९. १-३।

२. विशेषणवती गाथा १५३-१५४:
केयी भणंति जुगवं जाणइ पासति य केवली नियमा।
अण्णे एगंतरियं इच्छंति सुत्तोवदेसेणं॥
अण्णे ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स।
जं चिय केवलनाणं तं चिय से दंसणं बेंति॥

३. नंदी चू. पृ. २८-३०।

४. नंदी वृ. पृ. ४० केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति। किम्? युगपद एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च। कः? केवली, न त्वन्यः, नियमाद नियमेन। अन्ये जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः एकांतरितं जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छन्ति श्रुतोपदेशेन यथाश्रुतागमानुसारेणेत्यर्थः अन्ये तु वृद्धाचार्याः 'न' नैव विष्वक् पृथक् तद्दर्शनमिच्छंति जिनवरेन्द्रस्य केवलिनः इत्यर्थः। किं तर्हि? यदेव केवलज्ञानं तदेव तस्य केवलिनो न दर्शनं ब्रुवते, क्षीणावरणस्य देशज्ञानाभावात केवलदर्शनाभावादिति भावना।

५. नंदी वृ. पत्र १३४।

६. सन्मति, टीका पृ. ६०८।

७. ज्ञान. पृ. ३३-४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९०. सुयअण्णाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं सुयअण्णाणी सुय-अण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं आघ-वेइ, पण्णवेइ, परूवेइ।
खेत्तओ णं सुयअण्णाणी सुय-अण्णाणपरिगयं खेत्तं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ।
कालओ णं सुयअण्णाणी सुय-अण्णाणपरिगयं कालं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ॥
भावओ णं सुयअण्णाणी सुय-अण्णाणपरिगए भावे आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ॥

श्रुत-अज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?
गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्-यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः।

द्रव्यतः श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानपरिगतानि द्रव्याणि आख्याति, प्रज्ञापयति, प्ररूपयति।
क्षेत्रतः श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानपरिगतं क्षेत्रम् आख्याति, प्रज्ञापयति, प्ररूपयति।
कालतः श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानपरिगतं कालम् आख्याति, प्रज्ञापयति, प्ररूपयति।
भावतः श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानपरिगतान् भावान् आख्याति, प्रज्ञापयति, प्ररूपयति।

१९०. भंते! श्रुत अज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?
गौतम! श्रुत अज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।
द्रव्य की दृष्टि श्रुत अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।
क्षेत्र की दृष्टि से श्रुत अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।
काल की दृष्टि से श्रुत अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषय भूतकाल का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।
भाव की दृष्टि से श्रुत अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषयभूत काल का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।

१९१. विभंगनाणस्स णं भंते। केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं विभंगनाणी विभंगनाण-परिगयाइं दव्वाइं जाणइ-पासइ।
खेत्तओ णं विभंगनाणी विभंग-नाणपरिगयं खेत्तं जाणइ-पासइ।
कालओ णं विभंगनाणी विभंग-नाणपरिगयं कालं जाणइ-पासइ।
भावओ णं विभंगनाणी विभंग-नाणपरिगए भावे जाणइ-पासइ।

विभंगज्ञानस्य भदन्त! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः?
गौतम! सः समासतः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः।

द्रव्यतः विभंगज्ञानी विभंगज्ञानपरिगतानि द्रव्याणि जानाति-पश्यति।
क्षेत्रतः विभंगज्ञानी विभंगज्ञानपरिगतं क्षेत्रं जानाति-पश्यति।
कालतः विभंगज्ञानी विभंगज्ञानपरिगतं कालं जानाति-पश्यति।
भावतः विभंगज्ञानी विभंगज्ञानपरिगतान् भावान् जानाति-पश्यति।

१९१. भंते! विभंगज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?
गौतम! विभंगज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।
द्रव्य की दृष्टि से विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयभूत द्रव्य को जानता-देखता है।
क्षेत्र की दृष्टि से विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयभूत क्षेत्र को जानता-देखता है।
काल की दृष्टि से विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयभूत काल को जानता-देखता है।
भाव की दृष्टि से विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयभूत भावों को जानता-देखता है।

भाष्य

१. सूत्र १८९-१९१

मति, श्रुत और अवधि–इन तीन का विपर्यय अज्ञान कहलाता है।

१. मति ज्ञान का विपर्यय–मति अज्ञान।
२. श्रुतज्ञान का विपर्यय–श्रुत अज्ञान।
३. अवधिज्ञान का विपर्यय–विभंगज्ञान।

मिथ्यादर्शन से युक्त होने के कारण इनसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता इसलिए इनकी संज्ञा अज्ञान है।[1]

अज्ञान त्रय के विषय का निरूपण नंदी में उपलब्ध नहीं है। विशेषावश्यक भाष्य भी इस विषय में मौन है। प्रज्ञापना में भी इसकी चर्चा नहीं है। मतिज्ञान सम्यग्दर्शन युक्त होता है इसलिए व्यापक बनता है। मति अज्ञान मिथ्यादर्शन युक्त होता है इसलिए उसका विषय मतिज्ञान की अपेक्षा सीमित है। मतिज्ञान से द्रव्य के जितने पर्याय सम्यक् रूप से जाने जाते हैं, वे मति अज्ञान से नहीं जाने जा सकते इसलिए सूत्रकार ने 'आएसेणं सव्वदव्वाइं' के स्थान पर 'मइअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं' का प्रयोग किया है। यह नियम श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान पर भी लागू होता है।

१. त. सू. भा. वृ. १/३२ पृष्ठ ११२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणीणं संठिइ-पदं

१९२. नाणी णं भंते! नाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! नाणी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–१. सादीए वा अपज्जवसिए २. सादीए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाइं॥

ज्ञानिनां संस्थिति-पदम्

ज्ञानी भदन्त! ज्ञानीति कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! ज्ञानी द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–१. सादिकः वा अपर्यवसितः २. सादिकः वा सपर्यवसितः। तत्र यः एषः सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण षट्षष्टिं सागरोपमाणि सातिरेकाणि।

ज्ञानी का संस्थिति-पद

१९२. भंते! ज्ञानी ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?
गौतम! ज्ञानी दो प्रकार का प्रज्ञप्त है। जैसे–१. सादि अपर्यवसित २. सादि सपर्यवसित। जो सादि सपर्यवसित है, वह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः कुछ अधिक छासठ सागरोपम तक ज्ञानी के रूप में रहता है।

१९३. आभिणिबोहियनाणी णं भंते! आभिणिबोहियनाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! एवं चेव॥

आभिनिबोधिकज्ञानी भदन्त! आभिनिबोधिकज्ञानीति कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! एवं चैव।

१९३. भंते! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है।
गौतम! सादि सपर्यवसित ज्ञानी की भांति वक्तव्य है।

१९४. एवं सुयनाणी वि॥

एवं श्रुतज्ञानी अपि।

१९४. इसी प्रकार श्रुतज्ञानी की वक्तव्यता।

१९५. ओहिनाणी वि एवं चेव, नवरं–जहण्णेणं एक्कं समयं॥

अवधिज्ञानी अपि एवं चैव, नवरं-जघन्येन एकं समयम्।

१९५. इसी प्रकार अवधिज्ञानी की वक्तव्यता, इतना विशेष है–उसकी जघन्य स्थिति एक समय की है।

१९६. मणपज्जवनाणी णं भंते! मणपज्जव-नाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं॥

मनःपर्यवज्ञानी भदन्त! मनःपर्यवज्ञानीति कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण देशोनां पूर्वकोटिम्।

१९६. भंते! मनःपर्यवज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?
गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः देशोन पूर्वकोटि।

१९७. केवलनाणी णं भंते! केवल-नाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! सादीए अपज्जवसिए॥

केवलज्ञानी भदन्त! केवलज्ञानीति कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! सादिकः अपर्यवसितः।

१९७. भंते! केवलज्ञानी केवलज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?
गौतम! केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित होता है।

१९८. अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी णं भंते! पुच्छा।
गोयमा! अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुय-अण्णाणी य तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–१. अणादीए वा अपज्जव-सिए २. अणादीए वा सपज्जव-सिए ३. सादीए वा सपज्जव-सिए। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–अणंता ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं॥

अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी भदन्त! पृच्छा?
गौतम! अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी च त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– १. अनादिकः वा अपर्यवसितः २. अनादिकः वा सपर्यवसितः ३. सादिकः वा सपर्यवसितः। तत्र यः एषः सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम् अनन्ताः अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीः कालतः, क्षेत्रतः अपार्धं पुद्गलपरिवर्तं देशोनम्।

१९८. भंते! अज्ञानी, मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी की पृच्छा।
गौतम! अज्ञानी, मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे– १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित ३. सादि सपर्यवसित
जो सादि सपर्यवसित है, वह जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंत काल–अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, क्षेत्र की दृष्टि से देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरिवर्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९९. विभंगनाणी णं भंते! पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं॥

विभंगज्ञानी भदन्त! पृच्छा।
गौतम! जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि देशोनया पूर्वकोट्या अभ्यधिकानि।

१९९. भंते! विभंगज्ञानी की पृच्छा।
गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः देशोन पूर्वकोटि अधिक तेंतीस सागरोपम।

भाष्य

१. सूत्र १९२-१९९

प्रस्तुत आलापक में ज्ञानी की कालावधि पर विचार किया गया है।

१. केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित होता है इसलिए उसकी कोई कालावधि नहीं है।

२. सादि-सपर्यवसित—मति और श्रुतज्ञान की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त मात्र होती है।

सादि सपर्यवसित मति, श्रुत और अवधि की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छासठ सागर बतलाई गई है। उसकी अपेक्षा यह है—एक संयमी व्यक्ति विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित संज्ञक—इन चार अनुत्तर विमानों में से किसी एक में उत्पन्न होता है वहां से च्युत हो, मनुष्य जन्म प्राप्त कर, मृत्यु के उपरान्त फिर वहीं (अनुत्तर विमान) उत्पन्न होता है। अनुत्तर विमानों की स्थिति तैंतीस सागर है। अतः ३३ सागर×मनुष्य भव की स्थिति×३३ सागर=६६ सागर से कुछ अधिक हो जाती है।[1]

अवधिज्ञान की जघन्य स्थिति एक समय की है। वृत्तिकार ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—कोई विभंगज्ञानी सम्यक्त्वी बनता है, उसके प्रथम समय में ही विभंगज्ञान अवधिज्ञान में बदल जाता है और उसके अनंतर समय में वह अवधिज्ञान प्रतिपतित हो जाता है। इस अवस्था में अवधिज्ञान की जघन्य स्थिति एक समय की होती है।[2]

जयाचार्य ने एक समय की स्थिति का दूसरा हेतु भी बतलाया है—अवधिज्ञान की उत्पत्ति के प्रथम समय में ही आयु पूर्ण होने पर उसकी जघन्य स्थिति एक समय की होती है।[3]

मनःपर्यव ज्ञान अप्रमत्त क्षण में वर्तमान संयमी के उत्पन्न होता है। यदि उत्पत्ति के अनंतर ही वह विनष्ट हो जाता है तो उस स्थिति में उसकी जघन्य स्थिति एक समय की घटित होती है। चारित्र का उत्कृष्ट कालमान देशोन पूर्व कोटि है। चारित्र की प्रतिपति के अनंतर ही मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है। और आजन्म उसका अनुवर्तन होता है, इस स्थिति में उसकी उत्कृष्ट स्थिति देशोन कोटि पूर्व हो जाती है।[4]

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव—ये चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं—ज्ञानावरण के विलय की तरतमता से उत्पन्न होते हैं इसलिए इसकी आदि भी है और पर्यवसान भी है। प्रथम तीन ज्ञान सम्यग् दर्शन सापेक्ष हैं। मनःपर्यवज्ञान चारित्र सापेक्ष है। केवलज्ञान ज्ञानावरण के सर्वथा विलय होने पर उत्पन्न होता है। एक बार आवरण के सर्वथा नष्ट होने पर पुनः ज्ञान आवृत नहीं होता इसलिए वह अपर्यवसित है और वही आत्मा का स्वभाव है। जैन दर्शन के अनुसार मुक्त अवस्था में भी केवल-ज्ञान विद्यमान रहता है।

मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी के तीन विकल्प हैं—

१. अनादि अपर्यवसित—

इसका निदर्शन है अभव्य जीव, जिनमें मोक्ष जाने की अर्हता नहीं है।

२. अनादि सपर्यवसित—

इसका निदर्शन है भव्य जीव, जिनमें मोक्ष जाने की अर्हता है।

३. सादि सपर्यवसित—

सम्यक्त्व का प्रतिपतन हुआ और अंतर्मुहूर्त्त के बाद फिर सम्यक्त्व प्राप्त हो गया, इस अपेक्षा से उसकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त है।[5]

सम्यक्त्व का प्रतिपतन होने पर जीव वनस्पति आदि में चला जाता है। वहां अनंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहकर वहां से बाहर आ पुनः सम्यग् दर्शन को प्राप्त होता है। उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।[6] **अपार्ध पुद्गल परिवर्त क्षेत्र की अपेक्षा**—देशोन अपार्ध पुद्गल परिवर्त चार प्रकार के होते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में क्षेत्र पुद्गल परिवर्त का निर्देश है।[7]

विभंग ज्ञान उत्पन्न हुआ और उत्पत्ति के अनंतर ही उसका प्रतिपतन हो गया, इस अवस्था में उसकी जघन्य स्थिति एक समय की होती है।[8] मनुष्य जीवन में देशोन पूर्वकोटि तक विभंग ज्ञान का अनुभव रहा और वह जीव मरकर सप्तम नरक में उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से विभंगज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्व कोटि अधिक तैंतीस सागर की बतलाई गई।[9]

---

१. (क) भ. वृ. ८ १९२-१९५।
(ख) भ. जो. २ १३९-६-१।

२. भ. वृ. ८ १९३-१९५-यदा विभंगज्ञानी सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते तत् प्रथमसमय एव विभंगमवधिज्ञानं भवति तदनन्तरमेव च तत् प्रतिपतति तदा एकं समयमवधिर्भवतीत्युच्यते।

३. भ. जो. २ पृ. ३८१ वार्तिक—विभंग अज्ञानी नो अवधिज्ञानी किम हुवै? अनै तेहनी एक समय नीं थिति किम? देवता, नारक, मनुष्य, तिर्यंच-पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टि तेहनें तीन अज्ञान हुवै। हिवै मिथ्यादृष्टि नो समदृष्टि थयो, निवारे तीन अज्ञान नां ज्ञान थया, विभंग नो अवधि थयो। निवारे एक समय पछेज तेहनो आयु पूर्ण थयो अथवा अनेरे प्रकारे एक समय ने अवधि रही पाछो पडयो पिण सम्यक्त नहीं गई। कारण मति, श्रुत ज्ञान नीं जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त नी छे, सम्यक्त नीं पिण एतलीज पूछै। इण न्याय अवधिज्ञान नीं स्थिति जघन्य एक समय नीं।

४. भ. वृ. ८/१९६-संयतस्याप्रमत्ताद्धायां वर्तमानस्य मनः-पर्यवज्ञानमुत्पन्नं तत् उत्पत्तिसमयसमनन्तरमेव विनष्टं चेत्येवमेकं समयम् तथा चरणकाल उत्कृष्टो देशोना पूर्वकोटी,तत्प्रतिपत्ति-समनन्तरमेव च यदा मनः-पर्यवज्ञानमुत्पन्नमाजन्म चानुवृत्तं तदा भवति मनःपर्यवस्योत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति।

५. भ. वृ. ८/१९७-सम्यक्त्वप्रतिपतितस्यान्तर्मुहूर्त्तोपरि सम्यक्त्वप्रतिपन्नौ।

६. वही, ८/१९८-सम्यक्त्वाद् भ्रष्टस्य वनस्पत्यादिष्वनंता उत्सर्पिण्यवसर्पिणी इति वाद्य पुनः प्राप्तसम्यग्दर्शनस्येति।

७. भ. जो. २, वार्तिक-द्रव्यादिक मैं करिकै च्यार प्रकार नें पुद्गलपरावर्त तें मध्य क्षेत्र थकी पुद्गलपरावर्त जाणवो।

८. भ. वृ. ८/१९९।

९. वही, ८/१९९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणीणं अंतर-पदं

२००. आभिणिबोहियनाणिस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं॥

ज्ञानिनाम् अंतरपदम्

आभिनिबोधिज्ञानिनः भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं यावत्अपार्धं पुद्गलपरिवर्तं देशोनम्।

ज्ञानी का अन्तर पद

२००. भंते! आभिनिबोधिकज्ञानी कितने अंतराल के बाद पुनः आभिनिबोधिक-ज्ञानी बनता है!

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल यावत् क्षेत्र की दृष्टि से देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरिवर्त।

२०१. सुयनाणि - ओहिनाणि -मण-पज्जवनाणीणं एवं चेव।

श्रुतज्ञानि - अवधिज्ञानि - मनःपर्यव-ज्ञानिनामेवं चैव।

२०१. श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनः-पर्यवज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी की भांति वक्तव्य हैं।

२०२. केवलनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा! नत्थि अंतरं॥

केवलज्ञानिनः पृच्छा।
गौतम! नास्ति अन्तरम्।

२०२. भंते! केवलज्ञानी की पृच्छा।
गौतम! अंतराल नहीं होता।

२०३. मइअण्णाणिस्स सुयअण्णा-णिस्स य पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं॥

मति-अज्ञानिनः श्रुत-अज्ञानिनश्च पृच्छा।

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि।

२०३. मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी की पृच्छा।
गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः कुछ अधिक छासठ सागरोपम।

२०४. विभंगनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो॥

विभंगज्ञानिनः पृच्छा।
गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण वनस्पतिकालः।

२०४. विभंगज्ञानी की पृच्छा।
गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टतः वनस्पतिकाय।

भाष्य

१.सूत्र-२००-२०४

दो सदृश अवस्थाओं के बीच का काल अन्तर काल होता है।

आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान--

सम्यक्त्व का प्रतिपतन होने पर आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान में बदल जाते हैं। अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् सम्यक्त्व की पुनः प्राप्ति होने पर वे पुनः ज्ञान बन जाते हैं। इस प्रकार उनका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

सम्यक्त्व का प्रतिपतन होने पर जो जीव वनस्पति आदि में चला जाता है वहां अनंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहकर वहां से बाहर आ पुनः सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है। उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

पांच ज्ञान और तीन अज्ञान के अंतर काल की तालिका--

	जघन्य अन्तरकाल	उत्कृष्ट अन्तरकाल
आभिनिबोधिक ज्ञान	अन्तर्मुहूर्त	अनंत काल तक अथवा कुछ कम अपार्ध पुद्गल परिवर्त
श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान	अन्तर्मुहूर्त	अनंत काल तक अथवा कुछ कम अपार्ध पुद्गल परिवर्त
केवलज्ञान	अंतरकाल नहीं	अंतरकाल नहीं
मति अज्ञान श्रुत अज्ञान	अंतर्मुहूर्त	कुछ अधिक छासठ सागरोपम
विभंग ज्ञान	अंतर्मुहूर्त	वनस्पति काल (अनंत काल)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुमति विपुलमति मनःपर्यवज्ञान में अंतर

	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
ऋजुमति मनःपर्यव-ज्ञानी	मनोवर्गणा के अनंत अनंत प्रदेशी स्कंधों को जानता-देखता है	नीचे की ओर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्ववर्ती क्षुल्लक प्रतर से अधस्तन क्षुल्लक प्रतर तक, ऊपर की ओर ज्योतिश्चक्र के ऊपरी तल तक, तिरछे भाग में मनुष्य क्षेत्र के भीतर अढ़ाई द्वीप समुद्र तक, पंद्रह कर्म भूमि, तीस अकर्म भूमि और छप्पन अंतर्द्वीपों में, वर्तमान पर्याप्त समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है।	जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग को, उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत और भविष्य को जानता-देखता है।	अनंत भावों को ही जानता-देखता है। सब भावों के अनंतवें भाग को ही जानता-देखता है।
विपुल मति मनःपर्यव-ज्ञानी	उन स्कंधों को अधिकतर विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर रूप में जानता-देखता है।	उस क्षेत्र से अढ़ाई अंगुल अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर क्षेत्र को जानता-देखता है।	उस काल खंड को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है।	उन भावों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है

पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति

		जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुतज्ञान	सादि सपर्यवसित	अन्तर्मुहूर्त	कुछ अधिक छासठ सागरोपम
अवधिज्ञान	सादि सपर्यवसित	एक समय	कुछ अधिक छासठ सागरोपम
मनःपर्यवज्ञान	सादि सपर्यवसित	एक समय	देशोन पूर्वकोटि
केवलज्ञान	सादि अपर्यवसित		
मति अज्ञान श्रुत अज्ञान	अनादि अपर्यवसित अभव्य की अपेक्षा। अनादि सपर्यवसित भव्य की अपेक्षा। सादि सपर्यवसित प्रतिपाति सम्यक्त्व की अपेक्षा।	सादि सपर्यवसित की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त	सादि अपर्यवसित की अपेक्षा अनंत काल-अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी
विभंग ज्ञान	सादि सपर्यवसित	एक समय	देशोन पूर्व कोटि अधिक तैंतीस सागरोपम

नाणीणं अप्पाबहुयत्त-पदं

२०५. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं, सुयना-णीणं, ओहिनाणीणं मणपज्जव-नाणीणं केवलनाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मण-पज्जवनाणी, ओहिनाणी असंखेज्ज-

ज्ञानिनाम् अल्पबहुत्व-पदम्

एतेषां भदन्त! जीवानाम् आभिनिबोधिक-ज्ञानिनां, श्रुतज्ञानिनाम्, अवधिज्ञानिनां, मनःपर्यवज्ञानिनां केवलज्ञानिनां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः मनःपर्यव-ज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः असंख्येयगुणाः,

ज्ञानी का अल्प बहुत्व-पद

२०५. 'भंते! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मनःपर्यवज्ञानी जीव सबसे अल्प, अवधिज्ञानी उनसे असंख्येय गुण अधिक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणा, आभिणिबोहिय-नाणी सुयनाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया, केवलनाणी अणंत-गुणा॥

आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः द्वावपि तुल्याः विशेषाधिकाः, केवलज्ञानिनः अनन्तगुणाः।

आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु अवधिज्ञानी से विशेषाधिक, केवलज्ञानी उनसे अनन्तगुण हैं।

२०६. एतेसि णं भंते! जीवाणं मइअण्णाणीणं, सुयअण्णाणीणं, विभंगनाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभंगनाणी, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा।

एतेषां भदन्त! जीवानां मति-अज्ञानिनां, श्रुत-अज्ञानिनां, विभंगज्ञानिनां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः विभंगज्ञानिनः, मति-अज्ञानिनः श्रुत-अज्ञानिनः द्वावपि तुल्याः अनन्तगुणाः।

२०६. भंते! इन मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी विभंगज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! विभंगज्ञानी जीव सबसे अल्प हैं। मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु विभंगज्ञानी से अनन्त गुण हैं।

२०७. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं सुयनाणीणं ओहिनाणीणं मणपज्जवनाणीणं केवलनाणीणं मतिअण्णाणीणं सुय-अण्णाणीणं विभंगनाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मण-पज्जवनाणी, ओहिनाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य दो वि तुल्ला विसे-साहिया, विभंगनाणी असंखेज्ज-गुणा, केवल-नाणी अणंतगुणा, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा॥

एतेषां भदन्त! जीवानाम् आभिनि-बोधिकज्ञानिनां श्रुतज्ञानिनां अवधिज्ञानिनां मनःपर्यवज्ञानिनां केवलज्ञानिनां मति-अज्ञानिनां श्रुतअज्ञानिनां विभंगज्ञानिनां च कतरे कतरेभ्यः, अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः मनःपर्यव-ज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः असंख्येयगुणाः, आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनश्च द्वावपि तुल्याः विशेषाधिकाः, विभंग-ज्ञानिनः असंख्येयगुणाः, केवलज्ञानिनः अनन्तगुणाः, मति-अज्ञानिनः श्रुत-अज्ञानिनश्च द्वावपि तुल्याः अनन्तगुणाः।

२०७. भंते! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभंगज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मनःपर्यवज्ञानी जीव सबसे अल्प, अवधिज्ञानी उनसे असंख्येय गुण अधिक, आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु अवधिज्ञानी से विशेषाधिक, विभंगज्ञानी उनसे असंख्येय गुण अधिक, केवलज्ञानी अनन्त गुण, मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु उनसे अनन्त गुण हैं।

भाष्य

१. सूत्र २०५-२०७

मनःपर्यवज्ञान केवल ऋद्धि प्राप्त संयति के होता है इसलिए मनःपर्यवज्ञानी अल्पसंख्यक हैं।[1]

अवधिज्ञान चारों गति के जीवों में होता है इसलिए अवधि-ज्ञानी की संख्या मनःपर्यवज्ञानी से असंख्येयगुण अधिक है।[2]

आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान—दोनों की सह व्याप्ति है इसलिए आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी परस्पर तुल्य तथा अवधिज्ञानी की अपेक्षा विशेषाधिक होते हैं। मति और श्रुतज्ञान सम्यक्दर्शनी पंचेन्द्रिय जीवों में होता है। इसके अतिरिक्त सास्वादन सम्यक्दर्शन विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) जीवों में भी होता है।[3]

केवलज्ञानी इनसे अनंत गुणाधिक हैं। इसका हेतु यह है—सिद्ध सर्व ज्ञानी जीवों से अनंतगुण अधिक होते हैं।[4]

केवल पंचेन्द्रिय जीव ही विभंगज्ञानी होते हैं, इसलिए अल्पसंख्यक हैं। मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य तथा विभंगज्ञानी से अनंत गुण अधिक हैं।[5]

---

१. भ. वृ. ८/२०५-२०७–यस्माद् ऋद्धिप्राप्तादि संयतस्यैव तदभवति।

२. वही, ८/२०५-२०७–अवधिज्ञानिनस्तु चतसृष्वपि गतिषु संतीति तेभ्योऽसंख्येयगुणाः।

३. वही, ८/२०५-२०७–आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्चान्योन्यं तुल्याः अवधिज्ञानिभ्यस्तु विशेषाधिका यतस्तेऽवधिज्ञानिनोऽपि मनः-पर्यायज्ञानिनोऽपि अवधिमनःपर्यायज्ञानिनोऽपि अवध्यादिरहिता अपि पंचेन्द्रिया भवन्ति सास्वादनसम्यग्दर्शनसद्भावे विकलेन्द्रियाऽपि च श्रुतज्ञानिनो लभ्यन्त इति।

४. भ. वृ. ८/२०५-२०७–सिद्धानां सर्वज्ञानिभ्योऽनंतगुणत्वात्।

५. वही, ८/२०५-२०७–विभंगज्ञानिनः स्तोकाः यस्मात् पंचेन्द्रिया एव ते भवन्ति, तेभ्योऽनन्तगुणाः मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः यतो मत्यज्ञानिनः श्रुता-ज्ञानिनश्चैकेन्द्रिया अपीति। तेन तेभ्यस्तेऽनन्तगुणाः परस्परतश्च तुल्याः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणपज्जव-पदं

२०८. केवतिया णं भंते! आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता?
गोयमा! अणंता आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता॥

२०९. केवतिया णं भंते! सुयनाणपज्जवा पण्णत्ता?
एवं चेव॥

२१०. एवं जाव केवलनाणस्स। एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स॥

२११. केवतिया णं भंते! विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता?
गोयमा! अणंता विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता॥

नाणपज्जवाणं अप्पाबहुयत्त-पदं

२१२. एतेसि णं भंते! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं, सुयनाण-पज्जवाणं, ओहि-नाणपज्जवाणं, केवलनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा, ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयनाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियनाण-पज्जवा अणंतगुणा, केवलनाण-पज्जवा अणंतगुणा॥

२१३. एएसि णं भंते! मइअण्णाणपज्जवाणं, सुयअण्णाणपज्जवाणं, विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा विभंगनाणपज्जवा, सुयअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, मइ-अण्णाणपज्जवा अणंतगुणा॥

२१४. एएसि णं भंते! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं जाव केवल-नाण-

ज्ञानपर्यव-पदम्

कियन्तः भदन्त! आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! अनन्ताः आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः प्रज्ञप्ताः।

कियन्तः भदन्त! श्रुतज्ञानपर्यवाः प्रज्ञप्ताः?

एवं चैव।

एवं यावत् केवलज्ञानस्य। एवं मति-अज्ञानस्य, श्रुत-अज्ञानस्य।

कियन्तः भदन्त! विभंगज्ञानपर्यवाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! अनन्ताः विभंगज्ञानपर्यवाः प्रज्ञप्ताः।

ज्ञानपर्यवाणाम् अल्पबहुत्व-पदम्

एतेषां भदन्त! आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणां, श्रुतज्ञानपर्यवाणां, अवधिज्ञानपर्यवाणां, मनःपर्यवज्ञानपर्यवाणां, केवलज्ञानपर्यवाणां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः मनःपर्यवज्ञानपर्यवाः, अवधिज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, श्रुतज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, केवलज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः।

एतेषां भदन्त! मति-अज्ञानपर्यवाणां, श्रुत-अज्ञानपर्यवाणां, विभंगज्ञानपर्यवाणां च कतरे कतरेभ्यः, अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः विभंगज्ञानपर्यवाः, श्रुत-अज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, मति-अज्ञान-पर्यवाः अनन्तगुणाः।

एतेषां भदन्त! आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणां यावत् केवलज्ञानपर्यवाणाम् मति-

ज्ञानपर्यव-पद

२०८. भंते! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यव अनन्त हैं।

२०९. भंते! श्रुतज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! श्रुतज्ञान के पर्यव अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

२१०. इसी प्रकार अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान तथा मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान के पर्यव भी अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

२११. भंते! विभंगज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! विभंगज्ञान के पर्यव अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

ज्ञान पर्यवों का अल्प बहुत्व-पद

२१२. भंते! इन आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! मनःपर्यवज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। अवधिज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण हैं। श्रुतज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण, आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यव उनसे अनंत- गुण, केवलज्ञान के पर्यव उनसे अनन्तगुण हैं।

२१३. भंते! इन मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! विभंगज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। श्रुत अज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण, मति अज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण हैं।

२१४. भंते! इन मतिज्ञान पर्यवों यावत् केवलज्ञान के पर्यवों तथा मति अज्ञान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जवाणं, मइअण्णाणपज्जवाणं, सुयअण्णाणपज्जवाणं, विभंगनाण-पज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

अज्ञानपर्यवाणां, श्रुत-अज्ञानपर्यवाणां, विभंगज्ञानपर्यवाणां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः? विशेषाधिकाः वा?

श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाण-पज्जवा, विभंगनाणपज्जवा अणंतगुणा, ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा, सुय-अण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयनाण-पज्जवा विसेसाहिया, मइअण्णाण-पज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहिय-नाण-पज्जवा विसेसाहिया, केवल-नाणपज्जवा अणंतगुणा॥

गौतम! सर्वस्तोकाः मनःपर्यवज्ञानपर्यवाः, विभंगज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, अवधि-ज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः, श्रुत-अज्ञान-पर्यवाः अनन्तगुणाः, श्रुतज्ञानपर्यवाः-विशेषाधिकाः, मति-अज्ञानपर्यवाः अनन्त-गुणाः, आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः विशेषाधिकाः, केवलज्ञानपर्यवाः अनन्त-गुणाः।

गौतम! मनःपर्यवज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। विभंगज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण, अवधिज्ञान के पर्यव उनसे अनन्त-गुण, श्रुत अज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण, श्रुतज्ञान के पर्यव उनसे विशेषाधिक, मति अज्ञान के पर्यव उनसे अनंतगुण, मतिज्ञान के पर्यव उनसे विशेषाधिक, केवलज्ञान के पर्यव उनसे अनन्तगुण हैं।

भाष्य

४३. सूत्र २०८-२१४

प्रस्तुत आलापक में ज्ञान के पर्यवों—विशेष धर्मों का प्रतिपादन किया गया है।

आभिनिबोधिक ज्ञान—यह सामान्य निर्देश है। उसका विकास सब आभिनिबोधिकज्ञानी जीवों में समान नहीं होता। अभयदेवसूरि ने क्षयोपशम की तरतमता के आधार पर पर्यवों को षट्स्थान पतित बतलाया है—

१. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी अनन्त भाग वृद्धि से विशुद्ध।
२. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी असंख्य भाग वृद्धि से विशुद्ध।
३. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी संख्येय भाग वृद्धि से विशुद्ध।
४. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी संख्येय गुण वृद्धि से विशुद्ध।
५. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी असंख्येय गुण वृद्धि से विशुद्ध।
६. कोई आभिनिबोधिकज्ञानी अनंत गुण वृद्धि से विशुद्ध।[1]

अनंत पर्यव का दूसरा विकल्प—आभिनिबोधिकज्ञान का ज्ञेय अनंत है और वह प्रत्येक ज्ञेय के प्रति भिन्न होता है इसलिए उसके पर्यव अनंत हैं।

अनंत पर्यव का तीसरा विकल्प—मतिज्ञान को अविभाग परिच्छेदों के द्वारा छिन्न करने पर उसके अनंत खण्ड हो जाते हैं। फलतः उसके अनंत पर्यव हैं।[2]

यह प्रतिपादन स्वपर्याय की अपेक्षा से है। वृत्तिकार ने पर पर्याय की अपेक्षा से भी अनंत पर्यवों का प्रतिपादन किया है।[3]

उसका आधार विशेषावश्यक भाष्य है।[4] ज्ञानी-अज्ञानी और ज्ञान-अज्ञान के पर्यवों का अल्प बहुत्व इस प्रकार है। देखें यंत्र—

ज्ञानी अज्ञानी का अल्प बहुत्व		ज्ञान-अज्ञान के पर्यवों का अल्प-बहुत्व	
मनःपर्यवज्ञानी	सबसे अल्प	मनःपर्यवज्ञान के पर्यव	सबसे अल्प
अवधिज्ञानी	मनःपर्यवज्ञानी से असंख्येय गुण अधिक	विभंगज्ञान के पर्यव	उनसे अनंत गुण
आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी	परस्पर तुल्य किन्तु अवधि ज्ञानी से विशेषाधिक	अवधिज्ञान के पर्यव	उनसे अनंत गुण
विभंगज्ञानी	उनसे असंख्येयगुण अधिक	श्रुत अज्ञान के पर्यव	उनसे अनंत गुण
केवल ज्ञानी	उनसे अनंत गुण	श्रुतज्ञान के पर्यव	उनसे विशेषाधिक
मति अज्ञानी श्रुत अज्ञानी	परस्पर तुल्य किन्तु केवलज्ञानी से अनंत गुण अधिक	मति अज्ञान के पर्यव	उनसे अनंत गुण
		मतिज्ञान के पर्यव	उनसे विशेषाधिक
		केवलज्ञान के पर्यव	उनसे अनंत गुण

२१५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२१५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१. भ. वृ. ८/२०८।
२. वही, ८/२०८—नज्ञेयस्यानन्तत्वात् प्रतिज्ञेयं च तस्य भिद्यमानत्वात् अथवा मतिज्ञानमविभागपरिच्छेदैर्बुद्ध्या छिद्यमानमनंतखंडं भवतीत्येवमनन्ता-स्तत्पर्यवाः।
३. वही, ८/२०८।
४. वि. भा. गा. ४८०-४८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइयो उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल

वणस्सइ-पदं

२१६. कतिविहा णं भंते ! रुक्खा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा–संखेज्जजीविया, असंखेज्ज-जीविया, अणंतजीविया॥

२१७. से किं तं संखेज्जजीविया ?

संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

ताल तमाले तक्कलि,
तेयलि साले य सालकल्लाणे।
सरले जावति केयइ,
कंदलि तह चम्मरुक्खे य॥१॥
भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे,
लवंगरुक्खे य होति बोधव्वे।
पूयफली खज्जूरी,
बोधव्वा नालिएरी य॥२॥

जे यावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं संखेज्जजीविया॥

२१८. से किं तं असंखेज्जजीविया ?

असंखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–एगट्ठिया य बहुबीयगा य॥

२१९. से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

निंबंब जंबु कोसंब,
साल अंकोल्ल पीलु सेलू य।
सल्लइ मोयइ मालुय,
बउय पलासे करंजे य॥१॥
पुत्तंजीवयरिट्ठे,
विभोलए हरडए य भल्लाए।
उंबभरिया खीरिणि,
बोधव्वे धायइ पियाले॥२॥

संस्कृत छाया

वनस्पति-पदम्

कतिविधा भदन्त ! रुक्षाः प्रज्ञप्ताः ?

गौतम ! त्रिविधाः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–संख्येयजीविताः, असंख्येयजीविताः अनन्तजीविताः।

अथ किं तत् संख्येयजीविताः ? संख्येय-जीविताः अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–

ताल तमालः तक्कलि,
तेतलि सालौ च सालकल्याणः।
सरलः जावई केतकी,
कन्दली तथा चर्मरुक्षश्च॥१॥
भुजरुक्षः हिंगरुक्षः,
लवङ्गरुक्षः च भवति बोधव्यः।
पूगफली खर्जूरी,
बोधव्याः नालिकेरी च॥२॥

ये यावदन्ये तथाप्रकाराः। ते तत् संख्येय-जीविताः।

अथ किं तत् असंख्येयजीविताः ? असंख्येयजीविताः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकास्थिकाः च बहुबीजकाः च।

अथ किं तत् एकास्थिकाः ? एकास्थिकाः अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–

निम्बाम्रौ जम्बू कोशाम्रः,
सालः अंकोठः पीलुः सेलुश्च।
सल्लकी मोचकी मालुकः,
बकुलः पलाशः करञ्जश्च॥१॥
पुत्रंजीवकारिष्टौ,
विभीतकः हरीतकी च भल्लातः।
उंबभरिया क्षीरिणी,
बोधव्यः धातकी प्रियालः॥२॥

हिन्दी अनुवाद

वनस्पति-पद

२१६. भंते ! वृक्ष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं ?

गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–संख्येय जीव वाले, असंख्येय जीव वाले, अनंत जीव वाले।

२१७. भंते ! संख्येय जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं ?

गौतम ! संख्येय जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–ताल, तमाल, अरणी, तेतली, साल, साल-कल्याण, चीड़, जावित्री, केवड़ा, कंदली तथा भोजपत्र, अखरोट, हींग का वृक्ष, लवंग वृक्ष, सुपारी, खजूर, नारियल। ये तथा इस प्रकार के अन्य संख्येय जीविक वृक्ष हैं।

२१८. असंख्येय जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं ?

असंख्येय जीव वाले वृक्ष दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–एक अस्थि वाले, बहुबीज वाले।

२१९. एक अस्थि वाले वृक्ष कौनसे हैं ?

एक अस्थि वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। जैसे–

नीम, आम, जामुन, कोसम, साल, ढेरा अंकोल, पीलू, लिसोड़ा, सल्ल, शाल्मली, काली तुलसी, मौलसरी ढाक, कंटक करंज, जिया-पोता, गीठा, बेहड़ा, हरड़, भिलावा, वायविडंग, गंभीरी, धाय, चिरौंजी, पोई, महानीम–बकायन, निर्मली, सीसम, विजयसार, जायफल, सुलतान, चंपा, सेहुंड कायफल, अशोक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूइयनिंबारग सेण्हा,
तह सीसवा य असणे य।
पुण्णाग नागरुक्खे,
सीवण्णि तहा असोगे य॥३॥
जे यावण्णे तहप्पगारा। एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि। पत्ता पत्तेय-जीविया। पुप्फा अणेग-जीविया। फला एगट्ठिया। सेत्तं एगट्ठिया॥

पोदकी निम्बारकः श्लक्ष्णकः,
तथा शिंशपाः चाशनं च।
पुन्नागः नागरुक्षः,
श्रीपर्णी तथा अशोकश्च॥३॥
ये यावदन्ये तथाप्रकाराः। एतेषां मूलान्यपि असंख्येयजीवितानि, कन्दाः स्कन्धाः अपि त्वक् अपि, साला अपि प्रवालाः अपि। पत्राणि प्रत्येकजीवितानि। फलानि एकास्थिकानि। तत एतत् एकास्थिकाः।

ये तथा इस प्रकार के अन्य असंख्येय जीविक वृक्ष एक अस्थिवाले हैं। इनके मूल भी असंख्येय जीव वाले हैं। स्कंध, त्वचा, शाखा और प्रवाल भी असंख्येय जीव वाले हैं। पत्र प्रत्येक जीव वाले हैं। पुष्प अनेक जीव वाले हैं। फल एक अस्थिवाले हैं। ये हैं—एक अस्थि वाले वृक्ष।

२२०. से किं तं बहुबीयगा?
बहुबीयगा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—
अत्थिय तिंदु कविट्ठे,
अंबाडग माउलिंग बिल्ले य।
आमलग फणस दाडिम,
आसोत्थे उंबर वडे य॥१॥
निग्गोह नंदिरुक्खे,
पिप्पलि सयरी पिलुक्खरुक्खे य।
काउंबरी कुत्थुंभरि,
बोधव्वा देवदाली य॥२॥
तिलए लउए छत्तोह,
सिरीसे सत्तिवण्ण दहिवण्णे।
लोद्ध धव चंदणज्जुण,
नीमे कुडए कयंबे य॥३॥
जे यावण्णे तहप्पगारा। एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि। पत्ता पत्तेयजीविया। पुप्फा अणेग-जीविया।
फला बहुबीयगा। सेत्तं बहुबीयगा। सेत्तं असंखेज्जजीविया॥

अथ किं तत् बहुबीजकाः?
बहुबीजकाः अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अस्थिकतिन्दुक कपित्था,
आम्रातक मातुलिंगबिल्वाश्च।
आमलकपनसदाडिमाः,
अश्वत्थः उदुम्बरः वटश्च॥१॥
न्यग्रोधः नन्दिरुक्षः
पिप्पली शतावरी प्लक्षरुक्षश्च।
काकोदुम्बरिका कुस्तुम्भरी,
बोधव्या देवदाली च॥२॥
तिलकः लकुचः छत्रौघः,
शिरीषः सप्तपर्णः दधिपर्णः।
लोध्रः धवः चन्दनार्जुनौ,
नीमः कुटजः कदम्बश्च॥३॥
ये चान्ये तथाप्रकाराः। एतेषां मूलान्यपि असंख्येयजीवितानि, कन्दाः अपि स्कन्धाः अपि त्वक् अपि साला अपि प्रवालाः अपि। पत्राणि प्रत्येकजीवितानि। पुष्पाणि अनेकजीवितानि। फलानि बहुबीजकानि। तत् एतत् बहुबीजकाः। तत् एतत् असंख्येयजीविताः।

२२०. बहुबीज वाले वृक्ष कौनसे हैं?
बहुबीज वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—
हड़संधारा-हड़जोड़ी, तेंदु-आबनूस, कैथ, आमड़ा, बिजौरा, बेल, आंवला, कटहल, अनार, पीपल, गूलर, बड़, खेजड़ी, तून, पीपर, शतावरी, पाकर, कठूमर, धनिया, धधर बेल, तिलिया, बड़हर, गुण्डतृण, सिरस, छतिवन, कैथ, लोध, धौ, चंदन, अर्जुन, नीम, धारीकदम्ब, कुड़ा-कदम।
ये तथा इस प्रकार के अन्य असंख्येय जीविक बहुबीज वाले हैं। इनके मूल भी असंख्येय जीव वाले हैं। कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा और प्रवाल भी असंख्येय जीव वाले हैं। पत्र प्रत्येक जीव वाले हैं। पुष्प अनेक जीव वाले हैं। फल बहुबीज वाले हैं। ये वृक्ष बहुबीज वाले जीव हैं। ये हैं असंख्येय जीव वाले वृक्ष।

२२१. से किं तं अणंतजीविया?
अणंतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—आलुए, मूलए, सिंगबेरे—एवं जहा— सत्तमसए जाव सिउंढी, मुसुंढी। जे यावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं अणंतजीविया॥

अथ किं तत् अनन्तजीविताः?
अनन्तजीविताः अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आलुकः, मूलकः, शृंगबेरम्—एवं यथा—सप्तमशते यावत् सिउण्ढी, मुषुण्ढी। ये चान्ये तथाप्रकाराः। तत् एतत् अनन्तजीविताः।

२२१. अनंत जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं?
अनंत जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आलू, मूली, अदरक, इसी प्रकार सातवें शतक (भगवती ७/६६) में यावत् योहर, काली मुसली। ये तथा इस प्रकार के अन्य अनंत जीव वाले वृक्ष हैं। ये हैं अनंत जीव वाले वृक्ष।

भाष्य

१. सूत्र २१६-२२१

वनस्पति का प्रकरण प्रस्तुत आगम के अतिरिक्त प्रज्ञापना, उत्तराध्ययन और जीवाजीवाभिगम में उपलब्ध है। प्रज्ञापना में यह विषय विस्तार से वर्णित है। प्रस्तुत आगम में यह प्रकरण प्रज्ञापना से ही उद्धृत है, ऐसा संक्षिप्त पाठ के अध्ययन से प्रतीत होता है। प्रस्तुत आलापक के विवरण के लिए देखें वनस्पति कोष।[1]

शब्द विमर्श

एकास्थिक—जिस फल में एक बीज होता है, वह एकास्थिक

१. भ. वृ. ८/२१६-२२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहलाता है। अस्थि का अर्थ बीज अथवा गुठली है।

बहुबीजक—जिस फल में बहुत बीज होते हैं, वह बहुबीजक अथवा अनेकास्थिक कहलाता है।

दशवैकालिक में बहुबीजक के अर्थ में बहु अट्ठियं का प्रयोग मिलता है।[1]

प्रस्तुत आगम में वनस्पति के संख्येयजीविक, असंख्येयजीविक और अनंतजीविक—ये तीन भेद किए गए हैं। प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम और उत्तराध्ययन में वनस्पति के मुख्य भेद दो किए गए हैं—प्रत्येक शरीरी और साधारण शरीरी। देखें तालिका—

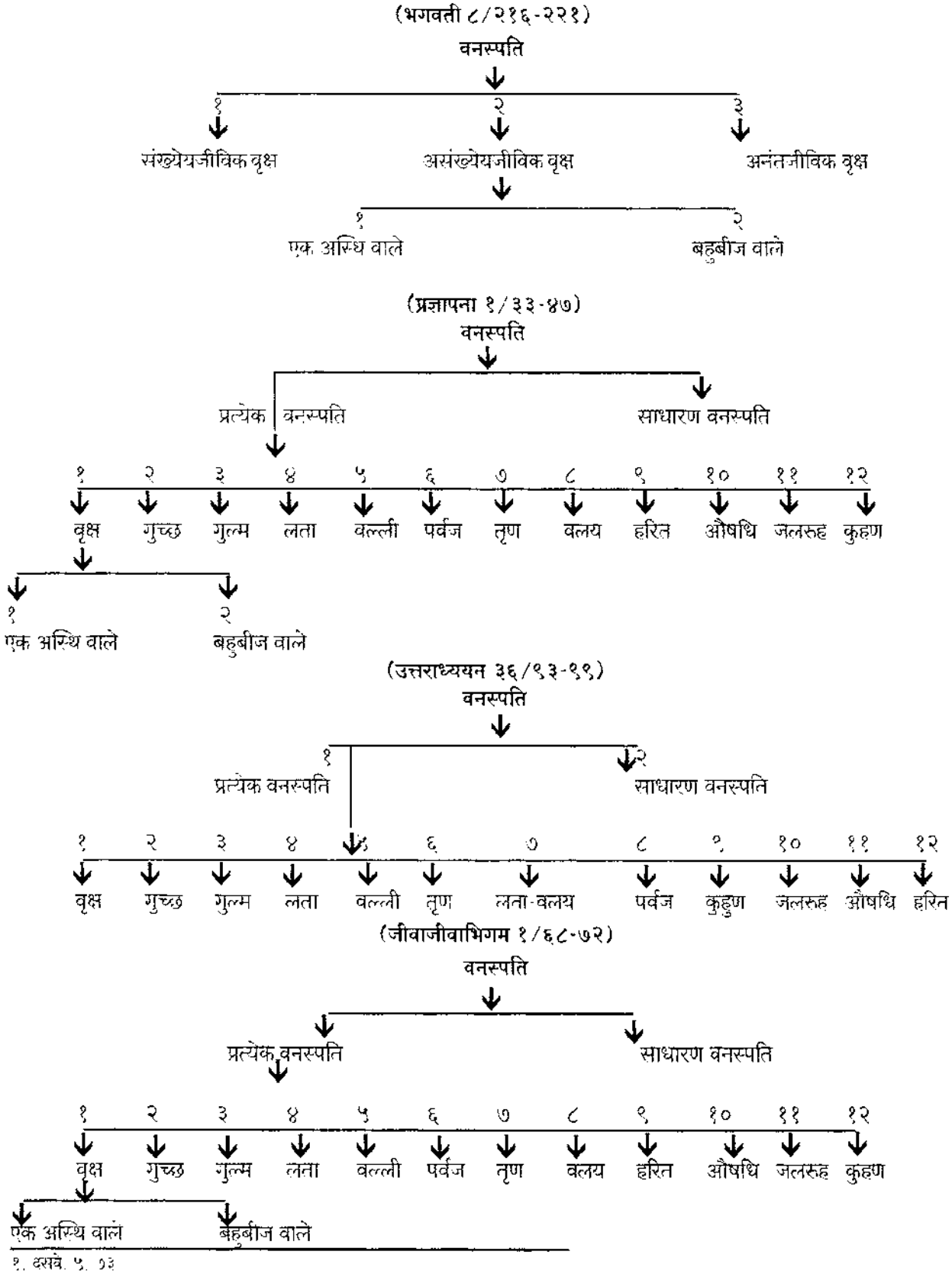

१. दसवे. ५. ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	भगवती		प्रज्ञापना			जीवाजीवाभिगम		
संख्येयजीविक वृक्ष	असंख्येयजीविक वृक्ष		संख्येय जीविक	असंख्येय जीविक		संख्येय जीविक	असंख्येय जीविक	
	एक अस्थिवाले	बहुबीज वाले	एक अस्थि वाले	बहुबीज वाले	वलय वनस्पति	एक अस्थि वाले	बहुबीज वाले	वलय वनस्पति
ताल, तमाल, अरणी तेवली, साल, सालकल्याण चीड़, नाविरी, केवड़ा, कंदली, भोजपत्र, अखरोट, हींग, लवंग, सुपारी, खजूर, नारियल,	नीम, आम, जामुन, कोसम्ब, साल ढेरा अंकोल, पीलू, तिसोड़ा, सलइ, शाल्मली, काली तुलसी, मौलसिरी, ढाक, कंटक, करंज जियापोता, रीठा, बेहड़ा हरड, मिलावा, कायविडंग गंभीरी, धाय चिरौंजी, पोई महानीम-वकायन, निर्मली, सीसम, विजयसार, जायफल, सुलतान, चंपा, सेहुंड कायफल, अशोक।	हड़संधारी, हड़जोड़ी तेंदू, आबनूस, कैथ, आमड़ा, बिजौरा, बेल, आंवला, कटहल, अनार, पीपल, गुलर बड़ खेजरी, तून, पीपर, शतावरी, पाकर, कठूमर, धनिया, घघरबेल, तिलिया, बड़हर, गुण्डतृण सिरस, घतिवन कैथ, लौध धौं, चंदन, अर्जुन, धाराकदंब, कुडाकदम	नीम आम यावत् कायफल अशोक भगवती सूत्रवत्	हड़संधारी हड़जोड़ी यावत् कुड़ा-कदम भगवती सूत्रवत्	ताल-तमाल अरणी यावत् खजूर नारियल भगवती सूत्रवत्	नीम, आम जामुन, कोसम, साल, ढेरा, अंकोल, पीलू, तिसोड़ा, यावत् प्रज्ञापनावत् जायफल, सेहुंड, कायफल, अशोक	हड़संधारी हड़जोड़ी तेंदू, गूलर, कैथ, आंवला, कटहल, अनार, खेजड़ी, कठूमर, तिलिया, बड़हर लोध, धौं	प्रज्ञापनावत्

अनंतजीविक वनस्पति के लिए देखें भगवई ७/६६ का भाष्य।

जीवपएसाणं-अंतर-पदं

२२२. अह भंते! कुम्मे, कुम्मा-वलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणा, गोणा-वलिया, मणुस्से मणुस्सावलिया, महिसे, महिसा-वलिया—एएसि णं दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा?

हंता फुडा॥

जीवप्रदेशानाम्-अन्तर-पदम्

अथ भदन्त! कूर्मः, कूर्मावलिका, गोधा, गोधावलिका, गोणा, गोणावलिका, मनुष्य, मनुष्यावलिका, महिषः, महिषावलिका—एतेषां द्विधा वा त्रिधा वा संख्येयधा वा छिन्नानां ये अन्तरा ते अपि तैः जीवप्रदेशैः स्पृष्टाः?

हन्त! स्पृष्टाः।

जीव प्रदेशों का अन्तर-पद

२२२. भंते! कछुआ, कच्छुए की आवलिका, गोह, गोह की आवलिका, बैल, बैल की आवलिका, मनुष्य, मनुष्य की आवलिका, भैंसा, भैंसे की आवलिका—इन जीवों के शरीर के दो, तीन अथवा संख्येय खण्डों में छिन्न हो जाने पर जो अंतराल होता है, क्या वह उन जीव-प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?

हां, स्पृष्ट होता है।

२२३. पुरिसे णं भंते! अंतरे हत्थेण वा पादेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा आमुसमाणे वा संमुसमाणे वा आलिहमाणे वा विलिहमाणे वा अण्णयरेण वा तिक्खेणं सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा विछिंदमाणे वा, अगणिकाएण वा समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचि आबाहं वा विबाहं वा उप्पाएइ? छविच्छेदं वा करेइ?

पुरुषः भदन्त! अन्तरं हस्तेन वा पादेन वा अंगुलिकया वा शलाकया वा काष्ठेन वा किलिंचेन वा आमृशन् वा संमृशन् वा आलिखन् वा विलिखन् वा अन्यतरेण वा तीक्ष्णेण शस्त्रजातेन आछिन्दन् वा विछिन्दन् वा अग्निकायेन वा समदह्यमानः तेषां जीवप्रदेशानां किंचित् आबाधां वा विबाधां वा उत्पादयति? छविच्छेदं वा करोति?

२२३. भंते! कोई पुरुष जीव के छिन्न अवयवों के अंतराल का हाथ, पैर अथवा अंगुली से तथा शलाका, काष्ठ अथवा खपाची से स्पर्श, संस्पर्श आलेखन, विलेखन करता है अथवा किसी अन्य तीखे शस्त्र से उसका आच्छेदन विच्छेदन करता है अथवा अग्नि से उसको जलाता है। क्या ऐसा करता हुआ वह उन जीव-प्रदेशों के लिए किञ्चित आबाधा अथवा विशिष्ट बाधा उत्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है अथवा उनका छविच्छेद करता है?

णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ॥

नो अयमर्थः समर्थः, नो खलु तत्र शस्त्रं क्रामति॥

यह अर्थ संगत नहीं है, उस अन्तर में शस्त्र का संक्रमण नहीं होता.

भाष्य

१. सूत्र २२२-२२३

कृमि आदि प्राणियों के शरीर के दो या अनेक खण्ड कर देने पर उन सबमें स्पंदन होता है। उसके आधार पर जिज्ञासा की गई है--क्या शरीर के छिन्न खण्डों में जीव-प्रदेश का स्पर्श होता है? इसका उत्तर स्वीकार में दिया गया है। इसका आधार है जीव का संकोच-विस्तारात्मक स्वभाव।[1] संकुचित होना और फैलना--ये दोनों क्रियाएं जीव-प्रदेशों में होती हैं। समुद्घात का सिद्धांत संकोच और विस्तार का सिद्धांत है। समुद्घात की अवस्था में जीव के प्रदेश बाहर फैलते हैं और उसकी संपन्नता पर फिर सिमट कर जीवस्थ हो जाते हैं। दो या अधिक खण्डों में जो प्रकंपन होता है, उसका हेतु जीव प्रदेशों का विस्तार है। मूल शरीरस्थित जीव से उन प्रदेशों की संलग्नता या निरन्तरता बनी रहती है।

वे जीव-प्रदेश सूक्ष्मतम हैं। उनसे जुड़ा हुआ कर्मशरीर सूक्ष्मतर है और तैजसशरीर सूक्ष्म है, इसलिए अंतरालवर्ती जीव-प्रदेश को किसी भी स्थूल वस्तु से आबाधा-विबाधा नहीं होती।

अनुयोगद्वार में परमाणु के विषय में भी इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध है।[2]

चरिम-अचरिम-पदं

२२४. कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?
गोयमा! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा--रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा, ईसीपब्भारा॥

चरिम-अचरिम पदं

कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! अष्ट पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा--रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमा, ईषत्प्राग्भारा।

चरम-अचरम-पद

२२४. भंते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! पृथ्वियां आठ प्रज्ञप्त हैं जैसे--रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी और ईषत्प्राग्भारा।

२२५. इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा? अचरिमा?
चरिमपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव--

इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी किं चरमा? अचरमा?
चरमपदं निरवशेषं भणितव्यम् यावत्--

२२५. भंते! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या चरम है? अथवा अचरम है?
यहां प्रज्ञापना का चरम पद निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत्--

२२६. वेमाणिया णं भंते! फासचरिमेणं किं चरिमा? अचरिमा?
गोयमा! चरिमा वि, अचरिमा वि॥

वैमानिकाः भदन्त! स्पर्शचरमेण किं चरमाः? अचरमाः?
गौतम! चरमा अपि, अचरमा अपि।

२२६. भंते! वैमानिक देव स्पर्शचरम से क्या चरम हैं अथवा अचरम हैं?
गौतम! चरम भी हैं, अचरम भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र २२४-२२६

प्रस्तुत आलापक में चरम और अचरम का प्रतिपादन किया गया है। ये दोनों शब्द सापेक्ष हैं, पर्यन्तवर्ती के अर्थ में चरम और मध्यवर्ती के अर्थ में अचरम का प्रयोग किया गया है।[3]

चरम अचरम का सूत्र यहां प्रज्ञापना से उद्धृत प्रतीत होता है। इसका विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना के दसवें पद में है। रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में अन्य पृथ्वी नहीं है इसलिए वह चरम नहीं है। उसके बाहरी भाग में अन्य पृथ्वी नहीं है इसलिए वह अचरम भी नहीं है।[4]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना का दसवां पद।

२२७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति॥

२२७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. त. भा. वृ. ५/१६--प्रदेश संहार विसर्गाभ्यां प्रदीपवत्।

२. अणु. सू. ३१६-३१८।

३. भ. वृ. ८/२२४-२२६--चरमं नाम प्रान्तं पर्यन्तवर्ति आपेक्षिकं च चरमत्वं, यदुक्तम् 'अन्य द्रव्यापेक्षयेदं चरमं द्रव्यमिति यथा पूर्वशरीरापेक्षया चरमशरीर' मिति, तथा अचरमं नाम अप्रान्तं मध्यवर्ति, आपेक्षिकं चाचरमत्वं, यदुक्तम् 'अन्यद्रव्यापेक्षयेदमचरमं द्रव्यं यथाऽन्यशरीरापेक्षया मध्यशरीरमिति।

४. वही, ८/२२४-२२४--यदि हि रत्नप्रभाया मध्येन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्याश्चरमत्वं युज्यते न चास्ति सा तस्मात्र चरमासौ तथा यदि तस्या बाह्यतोन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्या अचरमत्वं युज्यते न चास्ति सा तस्मान्नाचरमाऽसाविति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल

किरिया-पदं

२२८. रायगिहे जाव एवं वयासी–कति णं भंते! किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ता-ओ, तं जहा–काइया, अहिगरणिया, पाओसिया, पारियाव-णिया, पाणाइ-वायकिरिया–एवं किरियापदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव सव्वत्थोवाओ मिच्छादंसण-वत्तियाओ किरियाओ, अप्पच्चक्खाणकिरियाओ विसेसा-हियाओ, पारिग्गहियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ, आरंभियाओ किरि-याओ विसेसाहियाओ, मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ॥

संस्कृत छाया

क्रिया-पदं

राजगृहे यावत् एवमवादीत्–कति भदन्त! क्रियाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातक्रिया–एवं क्रियापदं निरवशेषं भणितव्यं यावत् सर्वस्तोकाः मिथ्यादर्शनप्रत्ययाः क्रियाः, अप्रत्याख्यानक्रियाः विशेषाधिकाः, पारिग्रहिक्यः क्रियाः विशेषाधिकाः, आरम्भिकाः क्रियाः विशेषाधिकाः, मायाप्रत्ययाः क्रियाः विशेषाधिकाः।

हिन्दी अनुवाद

क्रिया-पद

२२८. 'राजगृह नगर में समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! क्रियाएं कितनी प्रज्ञप्त है?

गौतम! क्रियाएं पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपात क्रिया–इस प्रकार प्रज्ञापना का क्रिया-पद निरवशेष रूप में वक्तव्य है। यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया सबसे अल्प है। अप्रत्याख्यान क्रिया उससे विशेषाधिक है। पारिग्रहिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है। आरंभिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है। मायाप्रत्ययिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है।

भाष्य

१. सूत्र २२८

प्रस्तुत क्रियापद प्रज्ञापना (बाईसवां पद) से उद्धृत प्रतीत होता है। क्रिया की जानकारी के लिए द्रष्टव्य है भगवई (३/१३४-१३८) का भाष्य। पांच क्रियाओं का अल्प बहुत्व सापेक्ष दृष्टि से है। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया केवल मिथ्यादृष्टि जीवों में ही होती है। अप्रत्याख्यान क्रिया मिथ्यादृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि–इन दोनों जीवों में होती है इसलिए वह मिथ्यादृष्टिप्रत्यया से विशेषाधिक है। पारिग्रहिकी क्रिया मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत–इन तीनों प्रकार के जीवों में होती है इसलिए वह अप्रत्याख्यान क्रिया से विशेषाधिक है। आरंभिकी क्रिया मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्त संयत–इन चारों जीवों में होती है इसलिए वह पारिग्राहिकी क्रिया से विशेषाधिक है। माया-प्रत्यया क्रिया मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत–इन पांचों जीवों में होती है इसलिए वह आरंभिकी क्रिया से विशेषाधिक है।[1]

२२९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति॥

२२९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

[redacted]

१. भ. वृ. ८ २२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
आजीवियसंदब्भे समणोवासय-पदं	**आजीविकसंदर्भे श्रमणोपासक-पदम्**	**आजीवक के संदर्भ में श्रमणोपासक-पद**
२३०. रायगिहे जाव एवं वयासी–आजीविया णं भंते! थेरे भगवंते एवं वयासी–समणोवासगस्स णं भंते! सामाइयकडस्स समणो-वस्सए अच्छमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा, से णं भंते! तं भंडं अणुगवेसमाणे किं सभंडं अणु-गवेसइ? परायगं भंडं अणुग-वेसइ?	राजगृहे यावत् एवमवादीत्–आजीविकाः भदन्त! स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः–श्रमणोपासकस्य भदन्त! सामायिककृतस्य श्रमणोपाश्रये आसीनस्य कोऽपि भाण्डं अपहरेत्, सः भदन्त! तत् भाण्डं अनुगवेषयन् किं स्वभाण्डं अनुगवेषयति? परकं भाण्डं अनुगवेषयति?	२३०. 'राजगृह नगर में समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! आजीवकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा– भंते! कोई श्रमणोपासक श्रमणों के उपाश्रय में आसीन होकर सामायिक कर रहा है। उस समय कोई पुरुष उसके भाण्ड, वस्त्र आदि वस्तु का अपहरण कर लेता है, भंते! सामायिक पूर्ण होने के पश्चात् श्रमणोपासक उस भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है तो क्या अपने भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है अथवा पराए भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है?
गोयमा! सभंडं अणुगवेसइ, नो परायगं भंडं अणुगवेसइ॥	गौतम! स्वभाण्डम् अनुगवेषयति, नो परकं भाण्डम् अनुगवेषयति।	गौतम! वह अपने भाण्ड की अनुगवेषणा करता है, पराए भाण्ड की अनुगवेषणा नहीं करता।
२३१. तस्स णं भंते! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं से भंडे अभंडे भवइ?	तस्य भदन्त! तैः शीलव्रत-गुणविरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासैः तद् भाण्डम् अभाण्डं भवति?	२३१. भंते! श्रमणोपासक शीलव्रत, गुण-विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास की आराधना करता है। क्या उसका भाण्ड अभाण्ड हो जाता है, पराया हो जाता है?
हंता भवइ।	हन्त भवति।	हां, उसका भाण्ड अभाण्ड बन जाता है।
२३२. से केणं खाइ णं अट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सभंडं अणुगवेसइ, नो परायगं भंडं अणुगवेसइ?	तत् केन 'खाइ' अर्थेन भदन्त! एवमुच्यते–स्वभाण्डं अनुगवेषयति, नो परकं भाण्डं अनुगवेषयति?	२३२. भंते! यह कैसे कहा जा सकता है–श्रमणोपासक अपने भाण्ड की अनुगवेषणा करता है, पराए भाण्ड की अनुगवेषणा नहीं करता?
गोयमा! तस्स णं एवं भवइ–नो मे हिरण्णे, नो मे सुवण्णे, नो मे कंसे, नो मे दूसे, नो मे विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्प-वाल-रत्तरयणमादीए संतसार-सावदेज्जे,	गौतम! तस्य एवं भवति-नो मे हिरण्यम्, नो मे सुवर्णम्, नो मे कांस्यम्, नो मे दूष्यम्, नो मे विपुलधन-कनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शंख-शिला-प्रवाल-रक्तरत्नादिके सत्सार-स्वापतेये ममत्वभावः, पुनः तस्य	गौतम! उसका ऐसा संकल्प होता है–हिरण्य मेरा नहीं है, सुवर्ण मेरा नहीं है, कांस्य मेरा नहीं है, दूष्य (वस्त्र) मेरा नहीं है, विपुल धन, सोना, रत्न, मणि, मोती, शंख, मैनसिल, प्रवाल, रक्त-रत्न आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाए भवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सभंडं अणुगवेसइ, नो परायगं भंडं अणुगवेसइ॥

अपरिज्ञातः भवति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते स्वभाण्डं अनुगवेषयति, नो परकं भाण्डम् अनुगवेषयति।

प्रवर सार-वर्ण का वैभव मेरा नहीं है, फिर भी उसका ममत्व भाव अपरिज्ञात होता है, प्रत्याख्यात नहीं होता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–श्रमणोपासक अपने भाण्ड की अनुगवेषणा करता है, पराए भाण्ड की अनुगवेषणा नहीं करता।

२३३. समणोवासगस्स णं भंते! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ जायं चरेज्जा, से णं भंते! किं जायं चरइ? अजायं चरइ?

श्रमणोपासकस्य भदन्त! सामायिककृतस्य श्रमणोपाश्रये आसीनस्य कोऽपि जायां चरेत्, सः भदन्त! किं जायां चरति? अजायां चरति?

२३३. भंते! कोई श्रमणोपासक श्रमणों के उपाश्रय में आसीन होकर सामायिक कर रहा है। उस समय कोई पुरुष उसकी जाया (भार्या) का सेवन करता है? तो क्या वह उसकी जाया का सेवन करता है? अथवा अजाया (अभार्या) का सेवन करता है?

गोयमा! जायं चरइ, नो अजायं चरइ॥

गौतम! जायां चरति, नो अजायां चरति।

गौतम! वह श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता।

२३४. तस्स णं भंते! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं सा जाया अजाया भवइ?
हंता भवइ॥

तस्य भदन्त! तैः शीलव्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासैः सा जाया अजाया भवति?
हन्त भवति।

२३४. भंते! वह श्रमणोपासक शीलव्रत, गुण-विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास की आराधना करता है, क्या उसकी जाया अजाया हो जाती है?
हां, उसकी जाया अजाया हो जाती है।

२३५. से केणं खाइ णं अट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ–जायं चरइ? नो अजायं चरइ?

तत् केन 'खाइ' अर्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–जायां चरति? नो अजायां चरति?

२३५. भंते! यह कैसे कहा जा सकता है–कोई पुरुष श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता?

गोयमा! तस्स णं एवं भवइ–नो मे माता, नो मे पिता, नो मे भाया, नो मे भगिणी, नो मे भज्जा, नो मे पुत्ता, नो मे धूया, नो मे सुण्हा; पेज्जबंधणे पुण से अव्वोच्छिन्ने भवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जायं चरइ, नो अजायं चरइ॥

गौतम! तस्य एवं भवति–नो मे माता, नो मे पिता, नो मे भ्राता, नो मे भगिनी, नो मे भार्या, नो मे पुत्राः, नो मे दुहिता, नो मे स्नुषा, प्रेयोबन्धनं पुनः तस्य अव्यवच्छिन्नं भवति। तत् तेनार्थेन। गौतम! एवम् उच्यते–जायां चरति, नो अजायां चरति।

गौतम! उसका ऐसा संकल्प होता है–माता मेरी नहीं है, पिता मेरा नहीं है, भाई मेरा नहीं है, बहिन मेरी नहीं है, भार्या मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है, वधू मेरी नहीं है, फिर भी उसका प्रेयस बंधन विच्छिन्न नहीं होता।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता।

भाष्य

१. सूत्र २३०-२३५

भगवान महावीर के समय में श्रमणों के अनेक संप्रदाय थे। उत्तरकालीन साहित्य में केवल पांच श्रमण संप्रदायों का उल्लेख मिलता है[1]–

१. निर्ग्रंथ, २. शाक्य, ३. तापस, ४. गैरिक–परिव्राजक, ५. आजीवक।

१. (क) नि. भा. गा. ४४२०–निग्गंथसक्कतावसगेरुयआजीव पंचहा समणा। (ख) प्र. सा. गा. ७३१-७३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजीवक संप्रदाय महावीर के काल में बहुत शक्तिशाली था। निर्ग्रंथ और आजीवकों के पारस्परिक मिलन के अनेक प्रसंग आगम और उसके व्याख्या साहित्य में उपलब्ध हैं।[1] प्रस्तुत प्रसंग उसी शृंखला की एक कड़ी है। आजीवक संप्रदाय के कुछ व्यक्ति स्थविरों से मिले और उनके सामने अपने प्रश्न प्रस्तुत किए।

आजीवक के शिष्य साधु थे अथवा गृहस्थ—इसका स्पष्ट निर्देश नहीं है। स्थविरों का भी नाम निर्देश नहीं है। स्थविरों ने उत्तर दिए अथवा नहीं, इसका भी कोई निर्देश नहीं है। प्रस्तुत प्रकरण में गौतम महावीर के सामने आजीवकों द्वारा पूछे गए प्रश्न रख रहे हैं और भगवान महावीर उनका समाधान कर रहे हैं। इसका पूरा विवरण लिपि काल में संक्षिप्त किया गया अथवा किसी कारणवश त्रुटित हो गया, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

आजीवकों द्वारा पूछे गए प्रश्न का संबंध सामायिक की अवस्था से है। सामायिक काल में श्रमणोपासक अपने उपकरणों का परित्याग करता है फिर भी वे उपकरण उसी के रहते हैं। इन दोनों क्रियाओं को अनेकांत दृष्टि से समझाया गया है। श्रमणोपासक ने सामायिक में उपकरणों का त्याग कर दिया, इस दृष्टि से वे उपकरण उसके नहीं रहे किन्तु उनके प्रति उसका ममत्व अपरित्यक्त है, इस अपेक्षा से वे उपकरण उस श्रमणोपासक के हैं। इस उत्तर से दो तथ्य फलित होते हैं—

१. वस्तु पर स्वामित्व।

२. वस्तु के प्रति ममत्व की चेतना।

श्रमणोपासक सामायिक काल में स्वामित्व का परित्याग करता है। सूत्रकार ने उसका स्पष्ट निर्देश किया है—'हिरण्य मेरा नहीं है, स्वर्ण मेरा नहीं है' आदि आदि। यह वस्तु के प्रति स्वामित्व की चेतना का परिवर्तन है और साधधिक है। सामायिक का काल सम्पन्न होने पर उन पर स्वामित्व की चेतना फिर प्रारंभ हो जाती है। ममत्व का सूत्र सामायिक में भी अविच्छिन्न रहता है इसलिए पुनः स्वामित्व की चेतना जागृत होती है। इस ममत्व चेतना के आधार पर ही महावीर ने कहा—सामायिक में चुराए गए उपकरण की अनुगवेषणा करने वाला अपने उपकरण की अनुगवेषणा करता है, किसी दूसरे के उपकरण की अनुगवेषणा नहीं करता।

अभयदेवसूरि ने ममत्व और अनुमोदन की एकरूपता बतलाई है। उनका वक्तव्य है—अनुमोदन का प्रत्याख्यान नहीं होना इसलिए सामायिक में चुराया गया उपकरण उसी का है, किसी दूसरे का नहीं।[2]

जयाचार्य ने भिक्षु स्वामी को उद्धृत करते हुए सामायिक में किए जाने वाले प्रत्याख्यान की तीन कोटियां बतलाई हैं—

१. छह कोटि—करूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से,
कराऊंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।

२. आठ कोटि—करूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
कराऊंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
अनुमोदूंगा नहीं वचन से, काया से।

३. नव कोटि—करूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
कराऊंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।

इन तीनों विकल्पों में भी ममत्व अथवा अनुमोदना का सर्वथा परित्याग नहीं होता।[3]

जयाचार्य ने आगम साक्ष्य से प्रमाणित किया है कि सामायिक में आत्मा अधिकरण होती है इसलिए उसके सर्वथा त्याग नहीं होता।[4]

दूसरा प्रश्न जाया (पत्नी) के विषय में है। सामायिक काल में जाया अजाया नहीं होती। वह सामायिक काल में संकल्प करता है—माता मेरी नहीं है, पिता मेरा नहीं है, भाई मेरा नहीं है, फिर भी प्रेम का बंधन व्युच्छिन्न नहीं होता इसलिए जाया अजाया नहीं होती।

२३६. समणोवासगस्स णं भंते! पुव्वामेव थूलए पाणाइवाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ?

गोयमा! तीयं पडिक्कमति, पडुप्पन्नं संवरेति, अणागयं पच्चक्खाति॥

श्रमणोपासकस्य भदन्त! पूर्वमेव स्थूलः प्राणातिपातः अप्रत्याख्यातः भवति, सः भदन्त! पश्चात् प्रत्याख्यान किं करोति?

गौतम! अतीतं प्रतिक्रामति, प्रत्युत्पन्नं संवृणोति, अनागतं प्रत्याख्याति।

२३६. 'भंते! श्रमणोपासक के स्थूल प्राणातिपात का पहले प्रत्याख्यान नहीं होता। भंते! फिर वह उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

गौतम! वह अतीत का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवरण और अनागत का प्रत्याख्यान करता है।

---

१. (क) सूय. २ । ६ । १-५५।
(ख) भ. १५ । १०१-११५।

२. भ. वृ. ८ । २३७ परिग्रहादिविषये मनोवाक्कायानां करणकारणे तेन प्रत्याख्यात ममत्वभावः पुनः हिरण्यादिविषये ममत्वपरिणामः पुनः अपरिज्ञातः अप्रत्याख्यातो भवति अनुमतेरप्रत्याख्यानत्वात् ममत्वभावस्य चानुमतिरूपत्वादिति।

३. भ. जो. २ । १४१ । २६-२८—
करना प्रति जे अनुमोदे नहीं, उपलक्षण थी आम।
करावना प्रति अनुमोदे नहीं, अनुमोदना प्रति आम।।
वध घर-कृत अथवा आतम कियो, अनुमोदे जहि जेह।
मन कर वध चिनवे करि तसु अनुमोदन थी नेह॥

४. वही, २ । १४१ । २१-३२
इम न करे हिंसा वचन करी, हा मुझ हणियो एण।
तिण दिन मैं इणनें हणियो नहीं, इम बोल्यां थी तेण।।
करावे वच करि हिंसा प्रतें, हा तिण हणियो मोय।
अन्य पास तसु म्हें न हणावियो, इम बोल्यां थी सोय॥
वध प्रति अनुमोदे नहिं वच थकी, अतीत हिंसा प्रतेह।
अनुमोदे ते सगवे वध करी, रूडो हणियो एह॥
काय करी न करे नहिं करावे, अनुमोदे नहिं काय।
अंग विशेष तथाविध करण थी अतीत काल कृत तेण॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३७. तीयं पडिक्कममाणे किं? १. तिविहं तिविहेणं पडिक्कमति २. तिविहं दुविहेणं पडिक्कमति? ३. तिविहं एगविहेणं पडिक्क-मति? ४.दुविहं तिविहेणं पडिक्क-मति? ५. दुविहं दुविहेणं पडिक्क-मति?६.दुविहं एगविहेणं पडिक्क-मति? ७. एगविहे तिविहेणं पडिक्कमति? ८. एगविहं दुविहेणं पडिक्कमति? ९. एगविहं एग-विहेणं पडिक्कमति?

अतीतं प्रतिक्रामन् किम्? १. त्रिविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामति २. त्रिविधं द्विविधेन प्रतिक्रामति? ३. त्रिविधम् एकविधेन प्रतिक्रामति? ४. द्विविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामति ५. द्विविधं द्विविधेन प्रतिक्रामति? ६. द्विविधम् एकविधेन प्रतिक्रामति? ७ एकविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामति? ८. एकविधं द्विविधेन प्रतिक्रामति ९. एकविधम् एकविधेन प्रतिक्रामति?

२३७. अतीत का प्रतिक्रमण करता हुआ क्या १. वह तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? २. तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ३. तीन योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है? ४. दो योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? ५. दो योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ६.दो योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है? ७. एक योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? ८. एक योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ९. एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है?

गोयमा! तिविहं वा तिविहेणं पडिक्कमति, तिविहं वा दुविहेणं पडिक्कमति, एवं चेव जाव एगविहं वा एगविहेणं पडिक्कमति। १. तिविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा।

२. तिविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा ३. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा ४. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा।

५. तिविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा ६. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणु-जाणइ वयसा ७. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ कायसा। ८. दुविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ९. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा १०. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा।

११. दुविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, मणसा वयसा १२. अहवा न करेइ, न कारवेइ मणसा कायसा १३. अहवा न करेइ, न कारवेइ वयसा कायसा १४. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा १५. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा

गौतम! त्रिविधं वा त्रिविधेन प्रतिक्रामति, त्रिविधं वा द्विविधेन प्रतिक्रामति, एवं चैव यावत् एकविधं वा एकविधेन प्रतिक्रामति। १. त्रिविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा कायेन। २. त्रिविधं द्विविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा ३. अथवा न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा कायेन ४. अथवा न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा कायेन। ५. त्रिविधम् एकविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा ६. अथवा न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा ७. अथवा न करोति, न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन ८. द्विविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति मनसा, वचसा, कायेन, ९. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा कायेन १०. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा कायेन। ११. द्विविधं द्विविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति मनसा वचसा १२. अथवा न करोति न कारयति मनसा कायेन १३. अथवा न करोति, न कारयति वचसा कायेन १४. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा.१५. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा कायेन १६. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा कायेन १७ अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति

गौतम! तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है, तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है, इस प्रकार यावत् एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है। १. तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से काया से २. तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से ३. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से ४. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से ५. तीन योग का एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से ६. अथवा न करता है न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से ७. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से ८. दो योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है मन से, वचन से, काया से ९. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से, काया से १०. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से, काया से ११. दो योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायसा १६. अहवा न करेइ, करेंतं नाणु-जाणइ वयसा कायसा १७. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा १८. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा १९. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा। २०. दुविहं एक्कविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ मणसा २१. अहवा न करेइ, न कारवेइ वयसा २२. अहवा न करेइ, न कारवेइ कायसा २३. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा २४. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ वयसा २५. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ कायसा २६. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा २७. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ वयसा २८. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ कायसा।

२९. एगविहं तिविहेणं पडिक्कम-माणे न करेइ, मणसा वयसा कायसा ३०. अहवा न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ३१. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा।

३२. एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कम-माणे न करेइ मणसा वयसा ३३. अहवा न करेइ मणसा कायसा ३४. अहवा न करेइ वयसा कायसा ३५. अहवा न कारवेइ मणसा वयसा ३६. अहवा न कारवेइ मणसा कायसा ३७. अहवा न कारवेइ वयसा कायसा ३८. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा ३९. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा ४०. अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा।

४१. एगविहं एगविहेणं पडिक्कम-माणे न करेइ मणसा ४२. अहवा न करेइ वयसा ४३. अहवा न करेइ कायसा ४४. अहवा न कारवेइ मणसा ४५. अहवा न कारवेइ वयसा ४६. अहवा न कारवेइ कायसा ४७. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा ४८. अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा ४९. अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा॥

मनसा वचसा १८. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा कायेन १९. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा कायेन।

२०. द्विविधम् एकविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, न कारयति मनसा २१. अथवा न करोति, न कारयति वचसा २२. अथवा न करोति, न कारयति कायेन २३. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा २४. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा २५. अथवा न करोति, कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन २६. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा २७. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा २८. अथवा न कारयति, कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन। २९. एकविधं त्रिविधेन प्रतिक्रामन् न करोति, मनसा वचसा कायेन ३०. अथवा न कारयति मनसा, वचसा, कायेन ३१. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा, वचसा, कायेन। ३२. एकविधं द्विविधेन प्रतिक्रामन् न करोति मनसा, वचसा ३३. अथवा न करोति मनसा कायेन, ३४ अथवा न करोति वचसा, कायेन ३५ अथवा न कारयति मनसा वचसा ३६. अथवा न कारयति मनसा कायेन ३७. अथवा न कारयति वचसा कायेन ३८ अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा वचसा ३९. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा कायेन ४०. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा कायेन। ४१. एकविधम् एकविधेन प्रतिक्रामन् न करोति मनसा ४२. अथवा न करोति वचसा ४३. अथवा न करोति कायेन ४४ अथवा न कारयति मनसा ४५. अथवा न कारयति वचसा ४६ अथवा न कारयति कायेन ४७. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति मनसा ४८. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा ४९. अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन।

है, न करवाता है मन से, वचन से १२. अथवा न करता है न करवाता है मन से, काया से १३. अथवा न करता है न करवाता है वचन से, काया से १४. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से १५. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से १६. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से १७. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से १८. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है, मन से, काया से १९. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से २०. दो योग एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है मन से २१. अथवा न करता है, न करवाता है वचन से २२. अथवा न करता है, न करवाता है काया से। २३. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से २४. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से २५. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से २६. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से २७. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, २८. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से २९. एक योग तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से, वचन से, काया से, ३०. अथवा न करवाता है मन से, वचन से, काया से, ३१. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से, काया से, ३२. एक योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से, वचन से ३३. अथवा न करता है मन से काया से ३४. अथवा न करता है वचन से, काया से, ३५. अथवा न करवाता है मन से, वचन से ३६. अथवा न करवाता है मन से, काया से ३७. अथवा न करवाता है वचन से, काया से ३८. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ३९. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से ४०. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से ४१. एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से ४२. अथवा न करता है वचन से ४३. अथवा न करता है काया से ४४. अथवा न करवाता है मन से ४५. अथवा न करवाता है वचन से ४६. अथवा न करवाता है काया से ४७. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से ४८. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से ४९. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।

२३८. पडुप्पन्नं संवरेमाणे किं तिविहं तिविहेणं संवरेइ?
एवं जहा पडिक्कममाणेणं एगूणपन्नं भंगा भणिया एवं संवरमाणेण वि एगूणपन्नं भंगा भाणियव्वा॥

प्रत्युत्पन्नं संवृण्वन् किं त्रिविधं त्रिविधेन संवृणोति?
एवं यथा प्रतिक्रामता एकोनपञ्चाशत् भंगाः भणिताः एवं संवृण्वता अपि एकोनपञ्चाशत् भंगाः भणितव्याः।

२३८. वर्तमान का संवरण करने वाला क्या तीन योग का तीन करण से संवरण करता है? जैसे प्रतिक्रमण करने वाले के उनपचास भंग कहे गए हैं उसी प्रकार संवरण करने वाले के उनपचास भंग वक्तव्य हैं।

२३९. अणागयं पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेणं पच्चक्खाइ?
एवं एते चेव भंगा एगूणपन्नं भाणि-यव्वा जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा॥

अनागतं प्रत्याख्यान् किं त्रिविधं त्रिविधेन प्रत्याख्याति।
एवम् एते चैव भंगा एकोनपंचाशत् भणितव्याः यावत् अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन।

२३९. अनागत का प्रत्याख्यान करने वाला क्या तीन योग का तीन करण से प्रत्याख्यान करता है?
इस प्रकार उनपचास भंग वक्तव्य हैं यावत अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।

२४०. समणोवासगस्स णं भंते! पुव्वामेव थूलए मुसावाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ?
एवं जहा पाणाइवायस्स सीयालं भंगसयं भणियं, तहा मुसावायस्स वि भाणियव्वं। एवं अदिन्नादाणस्स वि, एवं थूलगस्स वि मेहुणस्स, थूलगस्स वि परिग्गहस्स जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा।

एते खलु एरिसगा समणोवासगा भवंति, नो खलु एरिसगा आजीविओवासगा भवंति॥

श्रमणोपासकस्य भदन्त! पूर्वमेव स्थूलः मृषावादः अप्रत्याख्यातः भवति, सः भदन्त! पश्चात् प्रत्याख्यान् किं करोति?

एवं यथा प्राणातिपातस्य सप्तचत्वारिंशत् भंगशतंभणितं, तथा मृषावादस्यापि भणितव्यम्। एवम् अदत्तादानस्यापि, एवं स्थूलकस्यापि मैथुनस्य, स्थूलकस्यापि परिग्रहस्य यावत् अथवा कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन।

एते खलु ईदृशकाः श्रमणोपासकाः भवन्ति, नो खलु ईदृशकाः आजीविकोपासकाः भवन्ति।

२४०. भन्ते! श्रमणोपासक के स्थूल मृषावाद का पहले प्रत्याख्यान नहीं होता। भन्ते! फिर वह उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?
जैसे प्राणातिपात के एक सौ सैंतालीस भंग कहे गए हैं वैसे ही मृषावाद के भी एक सौ सैंतालीस भंग वक्तव्य हैं। उसी प्रकार स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह की वक्तव्यता, यावत अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।
श्रमणोपासक ऐसे होते हैं, उक्त विधि से प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान करने वाले होते हैं। आजीवक के उपासक ऐसे नहीं होते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र २३६-२४०

प्रस्तुत आलापक में श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान विधि के विकल्पों का निरूपण किया गया है। महावीर के श्रमणोपासक इन विधि विकल्पों का अनुपालन करते थे। निष्कर्ष में कहा गया है कि आजीवक के उपासक ऐसी विधि का अनुपालन नहीं करते थे।

प्रत्याख्यान के तीन भंग हैं—

१. अतीत का प्रतिक्रमण—प्रत्याख्यान करने वाला व्यक्ति अतीत में किए गए प्राणातिपात आदि से अपना निवर्तन करता है।

२. प्रत्युत्पन्न का संवरण—वह वर्तमान काल में प्राणातिपात आदि का संवर करता है, उसका आचरण नहीं करता।

३. अनागत का प्रत्याख्यान—भविष्य में नहीं करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा करता है।[1] देखें तालिका—

अतीत के प्रतिक्रमण के उनपचास भंग

विकल्प	करण	योग	भंग	प्रत्याख्यान के ४९ भंगों का विवरण
१	३	३	१	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
२	३	२	३	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, काया से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं वचन से, काया से।
३	३	१	३	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं वचन से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं काया से।
४	२	३	३	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं मन से, वचन से, काया से,
				करूंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से काया से।
				कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से।
५	२	२	९	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं मन से, वचन से काया से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं मन से, काया से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं वचन से काया से।
				करूंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से।
				करूंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, काया से।
				करूंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं वचन से, काया से।
				कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से।
				कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं मन से, काया से।
				कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं वचन से, काया से।
६	२	१	९	करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं मन से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं वचन से।
				करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं काया से।
				करूंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं मन से।
				करूंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं वचन से।
				करूंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं काया से।
				कराऊंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं मन से।
				कराऊंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं वचन से।
				कराऊंगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं काया से।

१. भ. वृ. ८ २३९-२४०—अतीतकालकृतं प्राणातिपातं प्रतिक्रामति ततो निन्दाकरणेन निवर्तत इत्यर्थः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानकालीनं प्राणातिपातं संवृणोति न करोतीत्यर्थः अनागतं—भविष्यत्कालविषयं प्रत्याख्याति न करिष्यामीत्यादि प्रतिजानीते।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

७	१	३	३	करूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से। कराऊंगा नहीं मन से, वचन से, काया से। अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से, काया से।
८	१	२	९	करूंगा नहीं मन से, वचन से। करूंगा नहीं मन से, काया से। करूंगा नहीं वचन से, काया से। कराऊंगा नहीं मन से, वचन से। कराऊंगा नहीं मन से, काया से। कराऊंगा नहीं वचन से, काया से। अनुमोदूंगा नहीं मन से, वचन से। अनुमोदूंगा नहीं मन से, काया से। अनुमोदूंगा नहीं वचन से, काया से।
९	१	१	३	करूंगा नहीं मन से। करूंगा नहीं वचन से। करूंगा नहीं काया से। कराऊंगा नहीं मन से। कराऊंगा नहीं वचन से। कराऊंगा नहीं काया से। अनुमोदूंगा नहीं मन से। अनुमोदूंगा नहीं वचन से। अनुमोदूंगा नहीं काया से।

इसी प्रकार वर्तमान के संवरण और अनागत के प्रत्याख्यान के उनपचास-उनपचास भंग बनते हैं। ये एक सौ सैंतालीस भंग (४९×३) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के हैं। प्राणातिपात आदि पांच अणुव्रतों के कृत भंग (१४७×५) सात सौ पैंतीस होते हैं।

२४१. आजीवियसमयस्स णं अयमट्ठे—अक्खीणपडिभोइणो सव्वे सत्ता; से हंता,छेत्ता,भेत्ता,लुंपित्ता, विलुंपित्ता, उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति।।

आजीविकसमयस्य अयमर्थः—अक्षीणप्रतिभोजिनः सर्वे सत्वाः, तत् हत्वा, छित्त्वा, भित्त्वा, लुप्त्वा, विलुप्य, उपद्रुत्य आहारमाहरन्ति।

२४१. आजीवक समय का यह अर्थ प्रतिपाद्य है सब प्राणी सजीव का परिभोग करने वाले हैं इसलिए वे जीवों को हनन, छेदन, भेदन, लोपन, विलोपन और प्राण वियोजन कर आहार करते हैं।

२४२. तत्थ खलु इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवंति,तं जहा— १. ताले २. तालपलंबे ३. उव्विहे ४. संविहे ५. अवविहे ६. उदए ७. नामुदए ८. णम्मुदए ९. अणुवालए १०. संखवालए ११. अयंपुले १२. कायरए—इच्चेते दुवालस आजीवि-ओवासगा अरहंतदेवतागा, अम्मापिउसुस्सूसगा,पंचफलपडिक्कंता, (तं जहा—उंबेरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं) पलंडुल्हसुणकंदमूलविवज्जगा, अणिल्लंछिएहिं अणक्कभिन्नेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं छेत्तेहिं वित्तिं

तत्र खलु इमे द्वादश—आजीविकोपासकाः भवन्ति, तद्यथा— १. तालः २. तालप्रलम्बः ३. उद्विधः ४. संविधः, ५. अवविधः ६. उदकः ७. नामोदकः ८. नर्मोदकः ८. अनुपालकः १० शंखपालकः ११. अयम्पुलः १२. कायरकः—इत्येते द्वादश आजीविकोपासकाः अर्हद्देवतकाः, अम्बापितृशुश्रूषकाः पञ्चफलप्रतिक्रान्ताः (तद्यथा—उदुम्बरैः, वटैः, बदरैः, सतरैः प्लक्षैः) पलाण्डुलशुन-कन्दमूलविवर्जकाः, अनिर्लाञ्छितैः, अनक्रभिन्नैः गोभिः त्रसप्राणविवर्जितैः क्षेत्रैः वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति। ते अपि तावत् एवम् इच्छन्ति किमंग! पुनः ये इमे श्रमणोपासकाः

२४२. आजीवक समय में बारह आजीवकोपासक हैं, जैसे—१. ताल, २. ताल प्रलंब ३. उद्विध ४. संविध ५. अपविध ६. उदक ७. नामोदक ८. नर्मोदक ९. अनुपालक १० शंखपालक ११. अयंपुल १२. कायरक—ये बारह आजीवकोपासक अर्हत को अपना देवता मानते हैं, माता-पिता की शुश्रूषा करने वाले हैं, पांच फलों का परित्याग करने वाले हैं, (जैसे—उदुम्बर, वट, पीपल अंजीर, पाकर) प्याज, लहसुन, कंद और मूल का वर्जन करने वाले हैं, नपुंसक बनाए बिना, नाक का छेदन किए बिना, बैलों से खेत जोत कर त्रस जीवों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्पेमाणा विहरंति। एए वि ताव एवं इच्छंति किमंग! पुण जे इमे समणोवासगा भवंति, जेसिं नो कप्पंति इमाइं पन्नरस कम्मादाणाइं सयं करेत्तए वा, कारवेत्तए वा, करेंतं वा अन्नं समणुजाणेत्तए, तं जहा–इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडी-कम्मे, दंतवा-णिज्जे, लक्खवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, रसवा-णिज्जे, विसवाणिज्जे जंतपीलण-कम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गि-दावणया, सर-दहतलागपरिसोसणया, असतीपोसणया।

भवन्ति. येषां नो कल्पन्ते इमानि पंचदश कर्मादानानि स्वयं कर्तुं वा, कारयितुं वा, कुर्वन्तं वा अन्यं समनुज्ञातुम्, तद्यथा–अंगारकर्म, वनकर्म, शकटीकर्म, भाटीकर्म, स्फोटीकर्म, दन्त-वाणिज्यम्, लाक्षावाणिज्यम्, केश-वाणिज्यम्, रसवाणिज्यम्, विषवाणिज्यम्, यन्त्रपीडनकर्म, निर्लांछन-कर्म, दवाग्निदापनम्, सरोद्रह-तडागपरिशोषणम् असतीपोषणम्।

हिंसा न करते हुए कृषि द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं।
ये आजीविकोपासक भी इस प्रकार का जीवन जीना चाहते हैं तो वे जो श्रमणोपासक होते हैं, उनका कहना ही क्या? उन श्रमणोपासकों के लिए इन पन्द्रह कर्मादानों का आसेवन स्वयं करना, दूसरों से करवाना और करने वालों का अनुमोदन करना– कर्णाय नहीं है. (पन्द्रह कर्मादान) जैसे–अंगारकर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटककर्म, स्फोटनकर्म दंतवाणिज्य, लाक्षावाणिज्य, केशवाणिज्य रसवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीलनकर्म, निर्लांछनकर्म, दवाग्निदापन, सर-द्रह-तडाग-परिशोषण, असतीपोषण।

इच्चेते समणोवासगा सुक्का, सुक्काभिजातीया भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति॥

इत्येते श्रमणोपासकाः शुक्लाः, शुक्लाभिजात्या भूत्वा कालमासं कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवत्वेन उपपत्तारो भवन्ति।

ये श्रमणोपासक शुक्ल, शुक्ल अभिजाति वाले होकर कालमास में काल कर किसी देवलोक में देवरूप में उपपन्न होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र २४१-२४२

वृत्तिकार ने अक्षीण प्रतिभोजी का अर्थ अप्रासुक या सचित्त भोजी किया है। इसका तात्पर्यार्थ आहार योग की आसक्ति वाला है।[1] वेसम ने इसका अर्थ भिन्न प्रकार से किया है। उनके अनुसार जिनकी उपभोग करने की शक्ति क्षीण नहीं हुई है, वे अक्षीण प्रतिभोजी हैं। जोजेफ डेल्यू ने वृत्तिकार और वेसम दोनों के मत को अस्वीकार किया है। उन्होंने शुब्रिंग के मत को मान्य कर अपनी व्याख्या की है। शुब्रिंग के अनुसार अक्षीण प्रतिभोजी का अर्थ यह है–जिस कर्म के द्वारा सात-असात का परिभोग होता है, उस कर्म का जिनमें उदय नहीं हुआ है, वे अक्षीण प्रतिभोजी हैं। क्योंकि सब जीवों को अवश्य सुख दुःख भोगना है, अतः आजीवक लोग सब तरह की हिंसा आहार संग्रह के लिए करते हैं।[2]

आजीवक के बारह उपासकों के नाम बतलाए गए हैं। उनकी पांच विशेषताओं का निर्देश है–

१. अर्हत् को अपना देव मानते हैं। श्रमणों में अर्हत का प्रयोग व्यापक रूप से होता रहा है। जैन, बौद्ध, आजीवक–इन सब परम्पराओं में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। इसकी व्यापकता का साक्ष्य है **इसिभासियाइं**। उसमें पैंतालीस अर्हतों के प्रवचनों का संकलन है।[3] वे अर्हत् अनेक परम्पराओं के हैं।

२. माता-पिता की शुश्रूषा करने वाले।

३. उदुम्बर आदि पांच फलों का वर्जन करने वाले।

४. मूल का वर्जन करने वाले।

५. बधिया न किए हुए, नथनी न डाले हुए बैलों से त्रस प्राणी रहित खेतों में कृषि कर अपनी आजीविका चलाते हैं। सूत्रकार ने

---

१. भ. वृ. ८/२४१–अक्षीण–अक्षीणायुष्कमप्रासुकं परिभुञ्जन इत्येवंशीला अक्षीणपरिभोगिनः अथवा इन् प्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वादक्षीणपरिभोगा–अनपगताहारभोगासक्तय इत्यर्थः।

२. Viyah Pannatti Jozef deleu Page 149--
(369b) According to the doctrine (samaya) of the ajivyas all beings are akkhina-padibhoi (comm.: a. paribhoi), which means that they experience (karman) not yet realized (in agreeable or disagreeable feelings). Consequently (scil. because all beings are bound to suffer) the ajivyas (think it is allowed to) use all kinds of violence to get their food. These ajivya laymen, though, (their names Tala, Talapalamba, Uvviha, Samviha, Avaviha, Udaya, Namudaya, Namudaya, Anuvalaya, Sankhavalaya, Ayambula, Kayaraya) shun five fruits as well as performing, causing and allowing fifteen practices. They will be reborn in the heavens.
I do not follow Abhny's explanation of akkhina (aksinam : aksin' ayuskam aprasukam, i.e. Prakrit aphasuyam), nor BASHAM's (History and Doctrines of the Ajivikas, London 1951, P. 122 : 'all beings whose (capacity for) enjoyment is unimpaired obtain their food by killing.'), but SCHUBRING's (in his review of Basham's work, ZDMG 104 (1954), p. 262 seq.).--For the term anantadevataga, see BASHAM o.c., p. 140 and 276, and SCHUBRING, o.c., p. 263.--There of the proper names also appeared in VI 1.0', where they were names of annauthiyas, we shall meet Ayampula again in XV C 8.
(370a) The four classes of (gods and their) abodes.

३. इसिभासियाइं परिशिष्ट २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजीवक उपासकों के आजीविका विवेक के संदर्भ में श्रमणोपासकों की आजीविका का विवेक प्रस्तुत किया है।

बारह व्रती श्रमणोपासक पंद्रह कर्मादानों का वर्जन कर आजीविका चलाते हैं। कर्मादान के वर्गीकरण में तत्कालीन पंद्रह व्यवसायों का उल्लेख है। हिंसा की अधिकता के कारण इन व्यवसायों को कर्मादान कहा गया।

सिद्धसेनगणि ने इन्हें बहुसावद्य कर्म बतलाया है।[1]

१. इंगाल कम्मे–अंगार कर्म, कोयला बनाना, ईंट बनाना आदि, उनका विक्रय करना।

२. वण कम्मे–वन कर्म, जंगल की कटाई, विक्रय।

३. साडी कम्मे–शकट कर्म, गाड़ी, रथ आदि का निर्माण, वाहन और विक्रय।

४. भाडी कम्मे–भाटी कर्म, बैलगाड़ी आदि के द्वारा दूसरों के माल को देशांतर ले जाना।

५. फोडी कम्मे–स्फोट कर्म, सुरंग आदि बिछाकर विस्फोट करना, खानें खोदना।

६. दंतवाणिज्जे–दंतवाणिज्य, हाथी दांत आदि का व्यापार।

७. लक्खवाणिज्जे–लाक्षावाणिज्य, लाख का व्यापार।

८. केसवाणिज्जे–केशवाणिज्य, केश वाले जीव–गाय, भैंस, स्त्री आदि का व्यापार।

९. रसवाणिज्जे–रसवाणिज्य, मादक द्रव्यों का व्यापार।

१०. विषवाणिज्जे–विष वाणिज्य, विष का व्यापार।

११. जंतपीलणकम्मे–यंत्रपीलनकर्म, तिल, ईक्षु आदि को पेलना।

१२. निल्लंछणकम्मे–निर्लांछन कर्म, बैल आदि को बधिया करना।

१३. दवग्गिदावणया–जंगल को जलाना।

१४. सरदहतलाय सोसणया–सरोवर, ह्रद, तालाब आदि को सुखाना।

१५. असईजणपोसणया–असतीजन पोषणता, आजीविका के लिए दासी तथा कुर्कुट, मार्जार आदि का पोषण करना।[2]

जयाचार्य ने असती पोषण पर विस्तार से विचार किया है। उसका निष्कर्ष है–आजीविका के लिए असंयमी का पोषण करना असती पोषण है।[3]

दिगम्बर साहित्य में कर्मादान के स्थान पर खरकर्म शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका अर्थ प्राणियों को पीड़ा देने वाला क्रूरकर्म किया गया है।[4]

१. वनजीविका–स्वयं टूटे हुए अथवा तोड़कर वृक्ष आदि को बेचना, गेहूं आदि धान्यों को पीस-कूट कर व्यापार करना।

२. अग्निजीविका–कोयला तैयार करना।

३. अनोजीविका (शकट जीविका)–गाड़ी, रथ तथा उसके चक्र आदि स्वयं बनाना अथवा दूसरे से बनवाना, गाड़ी जोतने का व्यापार स्वयं करना।

४. स्फोटजीविका–पटाखे, आतिशबाजी आदि बारूद की चीजों से आजीविका करना।

५. भाटक जीविका–गाय, घोड़ा आदि से बोझा ढोकर आजीविका करना।

६. यंत्रपीड़न जीविका–तिल आदि को कोल्हू में पिलवाना, कोल्हू चलाना, तिल आदि के बदले तैल आदि लेना।

७. निर्लाञ्छन कर्म–बैल आदि पशुओं के नाक आदि छेदने का धंधा करना, शरीर के अवयव छेदना।

८. असतीपोष–हिंसक प्राणियों का पालन पोषण करना, भाड़े की उत्पत्ति के लिए दास-दासियों का पोषण करना।

९. सरःशोष–अनाज बोने के लिए जलाशयों से नाली खोदकर पानी निकालना।

१०. दवदाह–वन में घास आदि को जलाने के लिए आग लगाना।

११. विष वाणिज्य–प्राणघातक विष का व्यापार करना।

१२. लाक्षा वाणिज्य–लाख का व्यापार। इसी प्रकार टाकनखार, मनसिल, गुगल, धाय के फूल, जिनसे मद्य बनता है, आदि पदार्थों का व्यापार करना।

१३. दंत वाणिज्य–भीलों आदि से हाथी दांत आदि खरीदना।

१४. केश वाणिज्य–दास-दासी और पशुओं का व्यापार करना।

१५. रस वाणिज्य–मक्खन, मधु, चरबी, मद्य आदि का व्यापार करना।[5]

श्रमणोपासकों के लिए शुक्ल और शुक्लाभिजाति–इन दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है। अभयदेव सूरि ने शुक्ल का अर्थ अभिन्न चारित्र वाला, अमत्सरी, कृतज्ञ, सत्प्रवृत्ति वाला और हित का अनुबंध रखने वाला तथा शुक्लाभिजाति का अर्थ शुक्लप्रधान किया है।[6] पूरणकाश्यप, आजीवक मत के आचार्य गोशालक तथा भगवान बुद्ध ने छह अभिजातियों का प्रतिपादन किया है।[7] इससे ज्ञात होता है–अभिजाति का प्रयोग तत्कालीन श्रमण साहित्य में बहुत प्रचलित था। आगम साहित्य में इसका प्रयोग विरल रूप में ही मिलता है, केवल भगवती में ही उपलब्ध है।[8]

श्रमणोपासक अन्यतर देवलोक में उपपन्न होते हैं। इसमें किसी देवलोक का नामोल्लेख नहीं है। प्रथम शतक में श्रमणोपासक के पुनर्जन्म के विषय में निर्देश मिलता है। श्रमणोपासक जघन्यतः प्रथम स्वर्ग और उत्कृष्टतः बारहवें स्वर्ग में उपपन्न होता है।[9]

---

१. त. सू. भा. वृ. ७/१६–प्रदर्शनं चैतद् बहुसावद्यानां कर्मणाम्।

२. भ. वृ. ८/२४२।

३. भ. जो. २/१४३/३८-४७।

४. सागारधर्मामृत ५/२१-२३।

५. जै. सि. को. ४, पृ. ४२२।

६. भ. वृ. ८/२४२–ते निर्ग्रंथस्तका शुक्लाः शुक्ला अभिन्नवृत्ता अमत्सरिणः कृतज्ञाः सदारम्भिणः हितानुबंधाश्च शुक्लाभिजातीयत्वेन शुक्लाभिजात्याः शुक्लप्रधानाः।

७. उत्तराध्ययनः एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ. २४२-२४३।

८. (क) भ. १४/१३६–तेण परं सुक्के सुक्काभिजाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।
(ख) वही १५/१०१।

९. भ. वृ. सू.–१/११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्दालपुत्र बारहव्रती श्रावक था और वह कुम्भकार का बहुत बड़ा व्यवसाय करता था। वह व्यवसाय अंगारकर्म के अंतर्गत आता है। सद्दाल ने उसका वर्जन क्यों नहीं किया ? यह प्रश्न समय-समय पर चर्चित होता रहा है। सेन प्रश्नोत्तर में बताया गया है कि पंद्रह कर्मादान का निषेध आधुनिक -उत्तरकालीन है ; उत्सर्ग मार्ग में श्रावक पंद्रह कर्मादान के व्यवसाय का वर्जन करे ; अपवाद मार्ग में इनका वर्जन नहीं किया जाता।[1]

आचार्य भिक्षु का अभिमत यह है--श्रावक मर्यादा के उपरांत पंद्रह कर्मादान का प्रयोग न करे।[2]

२४३. कतिविहा णं भंते! देवलोगा पण्णत्ता?

गोयमा! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा–भवणवासी, वाणमंतरा जोइसिया, वेमाणिया॥

कतिविधाः भदन्त! देवलोकाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! चतुर्विधाः देवलोकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–भवनवासिनः, वानमन्तराः, ज्योतिष्काः, वैमानिकाः।

२४३. भन्ते! देवलोक कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! देवलोक चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–भवनवासी, वानमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक।

२४४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२४४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. सेन प्रश्नोत्तर उल्लास १, प्रश्न १०४ तथा भगवत्यां श्राद्धानां पञ्चदश कर्मादाननिषेधे पोषधे तत्संवत्ते कल्पते न वा इति प्रश्नोत्तरत्वम् श्राद्धानां पञ्चदश-कर्मादाननिषेध आधुनिको ज्ञेयः। उत्सर्गपदे तु, परिहारशक्तौ शकटालादीनामिव तानि कल्प-तेषीति।

२. बारह व्रत चौपाई, ढाल ८ : १६

ए पनरे कर्म तणो विसतार, मरजादा बांध करे परिहार।
व्यापार रह्या सावद्य व्यापार करे आजीविका अलीक्षण हार॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छट्ठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी व्याख्या
समणोवासगकयस्स दाणस्स परिणाम-पदं	श्रमणोपासककृतस्य दानस्य परिणाम-पदम्	श्रमणोपासककृत दान का परिणाम पद
२४५. समणोवासगस्स णं भंते! तहा-रूवं समणं वा माहणं वा फासु-एसणिज्जेणं असण - पाण - खाइम - साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ?	श्रमणोपासकस्य भदन्त! तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा प्रासुक-एषणीयेन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन प्रतिलाभयतः किं क्रियते?	२४५. 'भन्ते! तथारूप श्रमण, माहन को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है- उसे क्या फल मिलता है?
गोयमा! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ॥	गौतम! एकान्तशः तस्य निर्जरा क्रियते, नास्ति च तस्य पापं कर्म क्रियते।	गौतम! उसके एकान्ततः निर्जरा होती है, पाप कर्म का बंध नहीं होता।
२४६. समणोवासगस्स णं भंते! तहा-रूवं समणं वा माहणं वा अफासु-एणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभे-माणस्स किं कज्जइ?	श्रमणोपासकस्य भदन्त! तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अप्रासुकेन अनेषणीयेन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन प्रतिलाभयतः किं क्रियते?	२४६. भन्ते! तथारूप श्रमण, माहन को अप्रासुक अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है- उसे क्या फल मिलता है?
गोयमा! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ॥	गौतम! बहुतरिका तस्य निर्जरा क्रियते, अल्पतरका तस्य पापं कर्म क्रियते।	गौतम! उसे बहुतर निर्जरा होती है, अल्पतर पाप कर्म का बंध होता है।
२४७. समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पाव कम्मं फासुएण वा, अफासुएण वा, एसणिज्जेण वा, अणेसणिज्जेण वा असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभे-माणस्स किं कज्जइ?	श्रमणोपासकस्य भदन्त! तथारूपम् असंयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्म प्रासुकेन वा, अप्रासुकेन वा, एषणीयेन वा, अनेषणीयेन वा अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन प्रतिलाभयतः किं क्रियते?	२४७. भन्ते! तथारूप असंयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यातपापकर्म वाले व्यक्ति को प्रासुक अथवा अप्रासुक एषणीय अथवा अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है- उसे क्या फल मिलता है?
गोयमा! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ॥	गौतम! एकान्तशः तस्य पापं कर्म क्रियते, नास्ति तस्य काचिन् निर्जरा क्रियते।	गौतम! उसके एकान्ततः पापकर्म का बंध होता है, कोई निर्जरा नहीं होती।

भाष्य

१. सूत्र २४५-२४७

प्रस्तुत आलापक के तीन सूत्रों में दान के तीन रूप मिलते हैं।

दान लेने वाला	देय वस्तु	लाभ
१. संयत	प्रासुक एषणीय	एकांत निर्जरा, पाप नहीं
२. संयत	अप्रासुक अनेषणीय	बहुतर निर्जरा, अल्पतर पाप
३. असंयत	प्रासुक अथवा अप्रासुक एषणीय अथवा अनेषणीय	एकांत पाप, निर्जरा नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयदेवसूरि ने बहुनिर्जरा और अल्प पाप के पाठ की समीक्षा की है। उन्होंने अप्रासुक आहार देने की स्थिति में बहुतर निर्जरा का हेतु चारित्र काय का उपष्टम्भ और अल्पतर पाप का हेतु जीव-वध बतलाया है। पाप की अपेक्षा निर्जरा बहुत होती है और निर्जरा की अपेक्षा पाप का बंध अल्पतर होता है।[1] उन्होंने भाष्यकार के मत को उद्धृत कर लिखा है—आहार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, उस स्थिति में अशुद्ध अप्रासुक अनवेषणीय दान देने वाला और उसे लेने वाला दोनों अहित पक्ष का आसेवन करते हैं। निर्वाह के लिए पर्याप्त आहार न मिलने की स्थिति में अशुद्ध आहार लेने और देने वाले हित पक्ष का सेवन करते हैं। इस मान्यता के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि द्वादश वर्षीय दुष्काल जैसी परिस्थितियों में इस प्रकार की मान्यता स्थापित हुई है। भाष्यकार ने उसी मान्यता का प्रतिपादन किया है।[2]

अभयदेव सूरि ने एक अन्य सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया है। उसमें परिणाम के आधार पर बहुतर निर्जरा और अल्पतर पाप का समर्थन है। परिणाम के प्रामाण्य को प्राधानता देकर मिश्र धर्म का समर्थन किया गया है। उनके मतानुसार किसी विशेष कारण के बिना भी गुणवान् पात्र को कोई दाता अप्रासुक आदि दान देता है, इस स्थिति में परिणाम की विशुद्धि होने पर बहुतर निर्जरा और अल्पतर पाप का बंध होता है।[3]

वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने इस विषय का उपसंहार 'तत्त्व केवलीगम्य है'—इन शब्दों में किया है।[4]

आधाकर्म आहार का निषेध आचारांग सूत्र में है, वह सबसे प्राचीन उल्लेख है।[5]

सूत्रकृतांग[6], भगवती[7], उत्तराध्ययन[8], दशवैकालिक[9] आदि अनेक आगमों में आधाकर्म का निषेध किया गया है। उन स्थलों में बहुतर निर्जरा और अल्पतर पाप का सूत्र कहीं नहीं है। संपूर्ण आगम साहित्य में बहुत निर्जरा और अल्पतर पाप का कोई उल्लेख नहीं है। आचार्य भिक्षु ने इस सूत्र की गहरी समीक्षा की है। जयाचार्य ने प्रस्तुत आलापक की व्याख्या में आचार्य भिक्षु के मत को उद्धृत किया है। उसका सारांश यह है—मुनि को दिया जाने वाला आहार सचित्त है और अनेषणीय है किन्तु दाता अपने व्यवहार में शुद्ध जान कर मुनि को देता है, उससे बहुतर निर्जरा होती है, पाप कर्म का बंध नहीं होता। यहां अल्पतर शब्द निषेध के अर्थ में है। आचार्य भिक्षु ने निष्कर्ष की भाषा में लिखा—मैंने सूत्र के आधार पर इस अर्थ का अनुमान किया है। वास्तविक तत्त्व केवलीगम्य है।[10]

---

१. भ. वृ. ८ : २४६—गुणवते पात्रायाप्रासुकादि द्रव्यदाने चारित्र-कायोपष्टम्भो जीवघातो व्यवहारतश्च चारित्रबाधा च भवति, ततश्च चारित्रकायोपष्टम्भाद्निर्जरा, जीवघातादेश्च पापं कर्म बन्ध च स्वल्पहेतु सामर्थ्यात पापापेक्षया बहुतरा निर्जरा निर्जरापेक्षया चाल्पतरं पापं भवति।

२. भ. वृ. ८ : २४६—इह च विवेचका मन्यन्ते अगारिस्वरणादिकारणात एवाप्रासुकादिदाने बहुतरनिर्जरा नाकारणे, अत उक्तम्—

संथरणंमि असुद्धं दोण्हवि गिण्हंत दितयाणहियं।
आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे॥

३. भ. वृ. ८ : २४६—अन्येत्वाहुः अकारणेपि गुणवत्पात्रायाः प्रासुकादिदाने परिणामवशाद् बहुतरा निर्जरा भवत्यल्पतरं च पापं कर्मेति निर्विशेषणत्वात् सूत्रस्य परिणामस्य च प्रमाणत्वात्, आह च—

परमरहस्समिसीणं समत्तगणिपिडगदारियसाराणं।
परिणामियं पमाणं निच्छयमवलंबमाणाणं॥

४. वही, ८ : २४६—यत्पुनरिह तत्त्वं तत्केवलिगम्यम्।

५. आयारो २ : १०८—सव्वामगंधं परिण्णाय, निरामगंधो परिव्वए।

६. सूय. २ : १ : ६५, २ : २ : ४१, २ : ५ : ८१।

७. भ. १ : १ : ४३६, ३ : १६५, ५ : ६ : १४०।

८. उत्तर. २० : ४७।

९. दसवे. ३ : ३।

१०. भ. जो. २ : १४४ : ३३-४४

ए चार आहार सचित नैं अणूझतो छै,
श्रावक तो सुध जाणे नैं वेहरावे।
आपणी तरफ सूं सुध व्यवहार करै नैं,
साधां नैं हरष सूं दियो छै दान॥
तिण रो पात्र में सचित पंखीआदिक न्हाख्यो,
अथवा सचित रजादिक लाग्यो छै आय।
तिण री श्रावक नैं कांइ खबर नहीं छै,
तिण व्यवहार सूं सुध जाण दियो वेहराय॥
इण रीते आहार सचित नैं अणूझतो छै,
श्रावक तो सुध जाणे नैं वेहरावे।
अल्प पाप ते पाप तणो छै नकारो,
चोखा परिणाम सूं बोहत निरजरा थावै।
कै तो अजाणपणे साधु नैं वेहरावे,
तिणरी तरफ सूं फासू नैं सूझतो जाण।
इण रीते ए पाठ नों अर्थ हुवै तो,
अल्प पाप ते पाप तणो छै नकारो,
चोखा परिणाम सूं बोहत निरजरा थावै॥
कै तो अजाणे साधु नैं वेहरावे,
तिणरी तरफ सूं फासू नैं सूझतो जाण।
इण रीते ए पाठ नों अर्थ हुवे तो,
ते पिण केवलज्ञानी वदे ते प्रमाण॥
ऊनो पाणी तिसंक सूं श्रावक जाणे छै,
तिण पाणी नैं घर रा बाहर दियो ताय।
तिण ठाम में काचो पाणी घर रा घाल्यो,
तिणरी तो श्रावक नैं खबर नै काय॥
तिण पाणी नैं श्रावक ऊनो जाण नैं,
निसंक सूं साधां नैं दियो वेहराय॥
तिण रे अल्प पाप ते बोहत निरजरा हुवै तो,
ते पिण केवली नैं दीधो भलाय॥
कोरा चिणा पड्या छै भूंगडादिक में,
सचित गेहूं पड्या छै पाणी रै मांय।
तिणरी श्रावक नैं खबर न कांइ,
सूझता जाणी साधां नै दिया वेहराय॥
अचित दाखां में सचित्त दाखां पडी छै,
अचित खादम में सचित खादम छै ताय।
तिणरी श्रावक नैं तो खबर न कांइ,
ते सूझतो जाण ने दियो वेहराय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु ने व्रताव्रत की चौपाई में भी इसी अर्थ का समर्थन किया है।[1]

प्राचीन काल में पाठ शोधन और पाठ-मीमांसा की पद्धति प्रायः प्रचलित नहीं थी इसलिए पाठ के विषय में कोई समीक्षा प्राप्त नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर अनुमान किया जा सकता है कि यह पाठ द्वादशवर्षीय दुष्काल जैसी स्थिति में रचा गया और फिर वह किसी कालखंड में प्रस्तुत आगम में प्रक्षिप्त हो गया। भाष्य के असंस्तरण और संस्तरण संबंधी उल्लेख से इस अनुमान की पुष्टि होती है।[2]

उवनिमंतितपिंडादि-परिभोगविहि-पदं

२४८. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठं केइ दोहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि। से य तं पडिग्गा-हेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया। जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए, एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया॥

उपनिमंत्रितपिण्डादि-परिभोगविधि पदम्

निर्ग्रन्थं च 'गाहावइ' कुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविष्टं कोऽपि द्वाभ्यां पिण्डाभ्यां उपनिमन्त्रयेत्एकम् आयुष्यमन्! आत्मना भुंक्ष्व, एकं स्थविरेभ्यः देहि। सः च तं प्रतिगृह्णीयात्, स्थविराः च तस्य अनुगवेषयितव्याः स्युः। यत्रैव अनुगवेषयन् स्थविरान् पश्येत् तत्रैव अनुप्रदातव्यः स्यात्, नो चैव अनुगवेषयन् स्थविरान् पश्येत् तं नो आत्मना भुञ्जीत, नो अन्येभ्यः दद्यात्, एकान्ते अनापाते अचित्ते बहुप्रासुके स्थण्डिले प्रतिलेख्य प्रमृज्य परिष्ठापयितव्यः स्यात्।

उपनिमंत्रितपिण्डादि परिभोगविधि-पद

२४८. 'निर्ग्रंथ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति दो पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मान्! एक पिण्ड आप खा लेना और दूसरा पिण्ड स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रंथ उन दोनों पिण्डों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे वहीं एक पिण्ड उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे तो उस दूसरे पिण्ड को न स्वयं खाए, न किसी अन्य को दे, एकान्त, अनापात, अचित्त बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उस पिण्ड का वहां परिष्ठापन कर दे।

२४९. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंड-वायपडियाए अणुप्पविट्ठं केइ तिहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, दो थेराणं दल-याहि। से य तं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया। जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा ते नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए, एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वा सिया। एवं जाव दसहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा, नवरं—एगं आ-उसो! अप्पणा भुंजाहि, नव थेराणं

निर्ग्रन्थं च 'गाहावइ' कुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविष्टं कोऽपि त्रीभिः पिण्डैः उपनिमन्त्रयेत्-एकम् आयुष्यमन्! आत्मना भुंक्ष्व, द्वौ स्थविरेभ्यः दद्यात्। सः च तान् प्रति-गृह्णीयात्, स्थविराः च तस्य अनुगवेष-यितव्याः स्युः। यत्रैव अनुगवेषयन् स्थविरान् पश्येत् तत्रैव अनुप्रदातव्यः स्यात्, नो चैव अनुगवेषयन् स्थविरान् पश्येत् तान् नो आत्मना भुंजीत, नो अन्येभ्यो दद्यात्, एकान्ते अनापाते अचित्ते बहुप्रासुके स्थण्डिले प्रतिलेख्य प्रमृज्य परिष्ठापयितव्यः स्यात्। एवं यावत् दशभिः पिण्डैः उपनिमन्त्रयेत्, नवरम्—एकम् आयुष्यमन्! आत्मना भुंजीत नव स्थविरेभ्यः दद्यात्। शेषं तच्चैव यावत्

२४९. निर्ग्रंथ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति तीन पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मान्! एक पिण्ड आप खा लेना और दो पिण्ड स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रंथ उन तीनों पिण्डों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे वहीं दो पिण्ड उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे, तो उन दो पिण्डों को न स्वयं खाए, न किसी अन्य को दे एकान्त, अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उन पिण्डों का वहां परिष्ठापन कर दे। इस प्रकार

इत्यादिक अनेक सचित्त वस्तु छै,
तो श्रावक निसंक सूं अचित्त जाणे।
ने पिण आपरी तरफ सूं चोकस करने,
साधां नैं वहरावे घणो हरष आण।
इण रीते श्रावक रै बोहत निरजरा होवे,
तो पिण केवलज्ञानी जाणै।
म्हैं तो अटकल सूं उनमान कर्यो छै,
वले सूत्र रा अनुसारा प्रमाणै॥

१. भिक्षु ग्रंथ रत्नाकार भाग-१ व्रताव्रत की चौपई, ढाल १५/५-१२।
२. बृ. क. भा. गा. १६०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलयाहि। सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वा सिया॥

परिष्ठापयितव्याः स्युः।

यावत् कोई गृहपति दस पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—जैसे आयुष्मान्! एक आप रख लेना और नौ स्थविरों को दे देना। शेष पूर्ववत् वक्तव्य है यावत् परिष्ठापन कर दे।

२५०. निग्गथं च णं गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुप्पविट्ठं केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा पडिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि। से य तं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया। जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए, एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहेत्ता पम्मज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया। एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं।

एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया, एवं गोच्छग - रयहरण - चोलपट्टग-कंबल-लट्ठि-संथारगवत्तव्वया य भाणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा जाव परिट्ठावेयव्वा सिया॥

निर्ग्रन्थं च 'गाहावइ' कुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविष्टं कोऽपि द्वाभ्यां प्रतिग्रहाभ्यां उपनिमन्त्रयेत्-एकम् आयुष्यमन्! आत्मना प्रतिभुंक्ष्व, एकं स्थविरेभ्यः दद्यात्। सः तं प्रतिगृह्णीयात् स्थविराः तस्य अनु-गवेषयितव्याः स्युः। यत्रैव अनुगवेषयन्, स्थविरान् पश्येत् तत्रैव अनुप्रदातव्यः स्यात्, नो चैव अनुगवेषयन् स्थविरान् पश्येत् न नो आत्मना परिभुंजीत, नो अन्येभ्यः दद्यात्, एकान्ते अनापाते अचित्ते बहुप्रासुके स्थण्डिले प्रतिलेख्य प्रमृज्य परिष्ठापयितव्यः स्यात्। एवं यावत् दशभिः प्रतिग्रहैः।

एवं यथा प्रतिग्रहवक्तव्यता भणिता, एवं गोच्छक-रजोहरण-चोलपट्टक-कंबल-यष्टि-संस्तारकवक्तव्यता च भणितव्या यावत् दशभिः संस्तारकैः उपनिमन्त्रयेत् यावत् परिष्ठापयितव्यः स्यात्।

२५०. निर्ग्रंथ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति दो पात्रों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मान्! एक पात्र का आप परिभोग कर लेना और दूसरा स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रन्थ उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे, वहीं एक पात्र उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे तो उस दूसरे पात्र का न स्वयं परिभोग करे, न किसी अन्य को दे, एकान्त, अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उस पात्र का वहां परिष्ठापन कर दे। इसी प्रकार यावत् दस पात्रों का। जैसे पात्र की वक्तव्यता कही गई, वैसे ही गोच्छग, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, यष्टि, संस्तारक की वक्तव्यता कथनीय है यावत् दस संस्तारकों का उपनिमंत्रण देना है यावत् उनका परिष्ठापन कर दे।

भाष्य

१. सूत्र २४८-२५०

प्रस्तुत आलापक तृतीय महाव्रत—अदत्तादान विरमण से संबद्ध है। प्रामाणिकता इस तृतीय महाव्रत का महत्त्वपूर्ण अंग है। स्थविरों के लिए पिण्ड लेना संयमीय चेतना का द्योतक है। स्थविरों के न मिलने पर उस पिण्ड का स्वयं उपभोग न करना प्रामाणिकता का निदर्शन है।

इस आलापक में प्रतिग्रह, गोच्छग, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, यष्टि, बिछौना—इन सात उपकरणों का उल्लेख हुआ है। उपकरणों की यह तालिका छेद सूत्र कालीन है।[1] संकलन काल में प्रस्तुत आगम में इनका समावेश किया गया है।

आलोयणाभिमुहस्स आराहय-पदं

२५१. निग्गंथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, विउट्टामि, विसोहेमि, अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, अहारियं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जामि,

आलोचनाभिमुखस्य आराधक-पदम्

निर्ग्रन्थेन च 'गाहावइ' कुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया प्रविष्टेन अन्यतरे अकृत्यस्थाने प्रतिसेविते, तस्य एवं भवति—इहैव तावत् अहम् एतत स्थानम् आलोचयामि, प्रतिक्रामामि, निन्दामि, गर्हे, विवर्ते, विशोधयामि, अकरणतया अभ्युत्तिष्ठामि, यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्ये, ततः पश्चात् स्थविराणाम् अन्तिके आलोच-

आलोचनाभिमुख का आराधक-पद

२५१. 'निर्ग्रंथ ने भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में प्रवेश कर किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्य स्थान की आलोचना करूं, प्रतिक्रमण करूं, निंदा करूं, गर्हा करूं, विवर्तन करूं, विशोधन करूं, पुनः न करने के लिए अभ्युत्थान करूं, यथायोग्य प्रायश्चित्त

१. (क) दसवे. ४/२३।
(ख) ववहारो ८/५।
(ग) निसीह. १/१४०, २/२५, ४/२३, ५/१९-२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ पच्छा थेराणं अंतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि।
१. से य संपट्ठिए असंपत्ते, थेरा य पुव्वामेव अमुहा सिया। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

यिष्यामि यावत् तपःकर्म प्रतिपत्स्यत।
१. सः च संप्रस्थितः असम्प्राप्तः, स्थविराः च पूर्वमेव अमुखाः स्युः। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

रूप तपःकर्म स्वीकार करूं, तत्पश्चात् स्थविरों के पास जाकर आलोचना करूंगा यावत् तपःकर्म स्वीकार करूंगा।
१. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरों के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्थविर अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
२. से य संपट्ठिए असंपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
२. सः च संप्रस्थितः असम्प्राप्तः, आत्मना च पूर्वमेव अमुखः स्यात्। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
२. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरों के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्वयं अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
३. से य संपट्ठिए असंपत्ते, थेरा य कालं करेज्जा। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
३. सः च संप्रस्थितः असम्प्राप्तः, स्थविराः च कालं कुर्युः। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
३. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरों के पास पहुंचा नहीं उससे पहले ही स्थविर काल कर गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा आराहए, नो विराहए।
४. से य संपट्ठिए असंपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव कालं करेज्जा। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
४. सः च संप्रस्थितः असम्प्राप्तः आत्मना च पूर्वमेव कालं कुर्यात्। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
४. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरों के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्वयं काल कर गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
५. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य अमुहा सिया। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
५. सः च संप्रस्थितः सम्प्राप्तः, स्थविराः च अमुखाः स्युः। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है विराधक नहीं।
५. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, उस समय स्थविर अमुख हो गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
६. से य संपट्ठिए संपत्ते अप्पणा य अमुहे सिया। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
६. सः च संप्रस्थितः सम्प्राप्तः, आत्मना च अमुखः स्यात्। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
६. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, उस समय स्वयं अमुख हो गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
७. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य कालं करेज्जा। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
७. सः च संप्रस्थितः सम्प्राप्तः, स्थविराः च कालं कुर्युः। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
७. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, उस समय स्थविर काल कर गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! आराहए, नो विराहए।
८. से य संपट्ठिए संपत्ते अप्पणा य कालं करेज्जा। से णं भंते! किं आराहए? विराहए?

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।
८. सः च संप्रस्थितः सम्प्राप्तः, आत्मना च कालं कुर्यात्। सः भदन्त! किम् आराधकः? विराधकः?

भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?
गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।
८. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, उस समय वह स्वयं काल कर गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गोयमा! आराहए, नो विराहए॥

गौतम! आराधकः, नो विराधकः।

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

२५२. निग्गंथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खंतेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए॥

निर्ग्रन्थेन च बहिः विचारभूमिं वा विहारभूमिं वा निष्क्रान्तेन अन्यतरत् अकृत्यस्थानं प्रतिसेवितम्, तस्य एवं भवति—इहैव तावत् अहम् एतद् स्थानं आलोचयामि—एवम् अत्रापि ते चैव अष्ट आलापकाः भणितव्याः यावत् नो विराधकः।

२५२. निर्ग्रन्थ ने बाह्य विचारभूमि (शौच भूमि) अथवा विहारभूमि के लिए निष्क्रमण कर किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं यहां भी पूर्ववत् आठ आलापक वक्तव्य है यावत् विराधक नहीं।

२५३. निग्गंथेण य गामाणुगामं दूइज्जमाणेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ— इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए॥

निर्ग्रन्थेन च ग्रामानुग्रामं द्रवता अन्यतरत् अकृत्यस्थानं प्रतिसेवितम्, तस्य एवं भवति—इहैव तावत् अहम् एतत् स्थानं आलोचयामि, एवम् अत्रापि ते चैव अष्ट आलापकाः भणितव्याः यावत् नो विराधकः।

२५३. निर्ग्रन्थ ने ग्रामानुग्राम विहार करते हुए किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ— मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं, यहां भी पूर्ववत् आठ आलापक वक्तव्य हैं यावत् विराधक नहीं।

२५४. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तीसे णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि जाव तवोकम्मं पडिवज्जामि; तओ पच्छा पवत्तिणीए अंतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि।
सा य संपट्ठिया असंपत्ता, पवत्तिणी य अमुहा सिया। सा णं भंते! किं आराहिया? विराहिया?

निर्ग्रन्थ्या च 'गाहावइ' कुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविष्टया अन्यतरत् अकृत्य-स्थानं प्रतिसेवितम्, तस्याः एवं भवति—इहैव तावत् अहम् एतत् स्थानं आलोचयामि यावत् तपःकर्म प्रतिपद्ये; ततः पश्चात् प्रवर्तिन्या अन्तिके आलोचयिष्यामि यावत् तपःकर्म प्रतिपत्स्ये।
सा च संप्रस्थिता, असम्प्राप्ता, प्रवर्तिनी च अमुखा स्यात्। सा भदन्त! किम् आराधिका? विराधिका?

२५४. निर्ग्रन्थिनी ने भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में प्रवेश कर किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं यावत् तपःकर्म स्वीकार करूं, तत्पश्चात् प्रवर्तिनी के पास जाकर आलोचना करूंगी यावत् तपःकर्म स्वीकार करूंगी।
उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया। अभी प्रवर्तिनी के पास पहुंची नहीं, उससे पहले ही प्रवर्तिनी अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गई। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधिका है अथवा विराधिका?

गोयमा! आराहिया, नो विराहिया।
सा य संपट्ठिया जहा निग्गंथस्स तिण्णि गमा भणिया एवं निग्गंथीए वि तिण्णि

गौतम! आराधिका, नो विराधिका।
सा च संप्रस्थिता यथा निर्ग्रन्थस्य त्रयः गमाः भणिताः एवं निर्ग्रन्थ्याः अपि त्रयः

गौतम! वह आराधिका है, विराधिका नहीं। उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, जैसे निर्ग्रन्थ के तीन गमक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलावगा भाणियव्वा जाव आराहिया, नो विराहिया॥

आलापकाः भणितव्याः यावत् आराधिका, नो विराधिका।

कहे गए हैं वैसे ही निर्ग्रन्थिनी के तीन आलापक वक्तव्य हैं यावत् आराधिका है, विराधिका नहीं।

२५५. से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ–आराहए? नो विराहए?

गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं उण्णालोमं वा, गयलोमं, वा, सणलोमं वा, कप्पासलोमं वा, तणसूयं वा दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणि-कायंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! छिज्जमाणे छिण्णे, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया?

हंता भगवं! छिज्जमाणे छिण्णे, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया।

से जहा वा केइ पुरिसे वत्थं अहतं वा, धोतं वा, तंतुग्गयं वा मंजिट्ठदोणीए पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया?

हंता भगवं! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–आराहए, नो विराहए॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–आराधकः? नो विराधकः?

गौतम! सः यथानामकः कश्चित् पुरुषः एकं महत् ऊर्णालोमं वा, गजलोमं वा, शणलोमं वा, कार्पासलोमं वा, तृणशूकं वा, द्विधा वा त्रिधा वा संख्येधा वा छित्वा अग्निकाये प्रक्षिपेत्, तत् नूनं गौतम! छिद्यमानं छिन्नं, प्रक्षिप्यमानं प्रक्षिप्तं, दह्यमानं दग्धम् इति वक्तव्यं स्यात्।

हन्त भगवन्! छिद्यमानं छिन्नं, प्रक्षिप्यमानं प्रक्षिप्तं, दह्यमानं दग्धम् इति वक्तव्यं स्यात्।

सः यथा वा कश्चित् पुरुषः वस्त्रं अहतं वा, धौतं वा, तन्त्रोद्गतं वा माञ्जिष्ठद्रोण्यां प्रक्षिपेत्। तत् नूनं गौतम! उत्क्षिप्यमानम् उत्क्षिप्तं, प्रक्षिप्यमानं प्रक्षिप्तं, रज्यमानं रक्तम इति वक्तव्यं स्यात्।

हन्त भगवन्! उत्क्षिप्यमानम् उत्क्षिप्तं, प्रक्षिप्यमानं प्रक्षिप्तं, रज्यमानं रक्तम् इति वक्तव्यं स्यात्तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–आराधकः, नो विराधकः।

२५५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–वह आराधक है, विराधक नहीं?

गौतम! जैसे कोई पुरुष भेड़ के लोम, हाथी के लोम, शणक के सूत्र, कपास के धागे, तृण के अग्रभाग को दो तीन अथवा संख्येय खण्डों में छिन्न कर अग्नि में डालता है।

गौतम! क्या छिद्यमान को छिन्न प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और दह्यमान को दग्ध कहा जा सकता है?

हां भगवन्! छिद्यमान को छिन्न, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और दह्यमान को दग्ध कहा जा सकता है।

जैसे कोई पुरुष अभिनव धौत और अभी अभी वस्त्र निर्माण तंत्र से निकले हुए कपड़े को मंजिष्ठा-द्रोणी (रंगने के पात्र) में डालता है। गौतम! क्या उत्क्षिप्यमान को उत्क्षिप्त, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और रज्यमान को रक्त कहा जा सकता है?

हां, भगवन्! उत्क्षिप्यमान को उत्क्षिप्त, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और रज्यमान को रक्त कहा जा सकता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जो आराधना के लिए कृतसंकल्प है, वह आराधक है, विराधक नहीं।

भाष्य

१. सूत्र २५१-२५५

प्रस्तुत आलापक में आलोचना के विधि-सूत्र निर्दिष्ट हैं। अकृत्य-स्थान की प्रतिसेवना–मूल अथवा उत्तरगुण में दोषाचरण करने वाला मुनि आलोचना के भाव में परिणत होकर प्रस्थान करता है और अनुकूल स्थिति के अभाव में आलोचना नहीं कर पाता, फिर भी वह आलोचनात्मक परिणाम और भावविशुद्धि के कारण आराधक माना गया है। भाष्यकार ने भी इस विषय का उल्लेख किया है।[1]

आलोयणापरिणओ, सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ अंतरा कालं करेज्ज आराहओ तहवि॥

अभयदेवसूरि द्वारा उद्धृत गाथा निशीथ भाष्य की गाथा से कुछ भिन्न है–

आलोयणापरिणओ, सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ मरइ अंतरेच्चिय, तहावि सुद्धोत्ति भावाओ॥[2]

आराधक और विराधक का प्रयोग अनेक संदर्भों में होता है–

१. ज्ञान का आराधक और विराधक।
२. दर्शन का आराधक और विराधक।
३. चारित्र का आराधक और विराधक।
४. इहलोक का आराधक और विराधक।
५. परलोक का आराधक और विराधक।
६. स्वीकृत व्रत की निरतिचार अनुपालना करने वाला आराधक और न करने वाला विराधक होता है।

आलोचना की अभिमुखता के आठ विकल्प बतलाए गए हैं।

---

१. नि. भा. चू. गा. ६३२१।
२. भ. वृ. ८/२५१-५३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन सब विकल्पों में अतिचार विशुद्धि मान्य की गई है।

अकृत्यस्थान की आलोचना न होने पर विशुद्धि कैसे हो सकती है? इसका समाधान "क्रियमाण-कृत" के सिद्धांत द्वारा किया गया है। क्रिया काल और निष्ठा काल में अभेद होता है, प्रतिक्षण कार्य की निष्पत्ति होती है। इस सिद्धांत के अनुसार छिद्यमान को छिन्न, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और दह्यमान के दग्ध कहा जाता है, वैसे ही आराधना में प्रवृत्त को आराधक कहा जा सकता है।[1]

द्रष्टव्य भगवई (खंड १, शतक १ सू. ११-१२ का भाष्य)।

शब्द-विमर्श

तृणशूक—तृण का अग्रभाग।

तंत्रोद्गत—तांत, करघा, कपड़ा बुनने के यंत्र से निकला हुआ।[2]

मञ्जिष्ठा राग—मजीठ का रंग।

जोति-जलण-पदं

२५६. पदीवस्स णं भंते! झियायमाणस्स किं पदीवे झियाइ? लट्ठी झियाइ? वत्ती झियाइ? तेल्ले झियाइ? दीवचंपए झियाइ? जोती झियाइ?

गोयमा! नो पदीवे झियाइ, नो लट्ठी झियाइ, नो वत्ती झियाइ, नो तेल्ले झियाइ, नो दीवचंपए झियाइ, जोती झियाइ॥

ज्योतिर्ज्वलन-पदम्

प्रदीपस्य भदन्त! ध्मायतः किं प्रदीपः ध्मायति? यष्टिः ध्मायति? वर्तिः ध्मायति? तैलं ध्मायति? दीपचम्पकं ध्मायति? ज्योतिः ध्मायति?

गौतम! नो प्रदीपः ध्मायति, नो यष्टिः ध्मायति, नो वर्तिः ध्मायति, नो तैलं ध्मायति, नो दीपचम्पकं ध्मायति, ज्योति र्ध्मायति।

ज्योति ज्वलन-पद

२५६. 'भन्ते! प्रदीप जलता है उस समय क्या प्रदीप जलता है? दीपयष्टि जलती है? बाती जलती है? तेल जलता है? ढक्कन जलता है? ज्योति जलती है?

गौतम! न प्रदीप जलता है, न दीपयष्टि जलती है, न बाती जलती है, न तेल जलता है, न ढक्कन जलता है, ज्योति जलती है।

२५७. अगारस्स णं भंते! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ? कुड्डा झियाइ? कडणा झियाइ? धारणा झियाइ? बलहरणे झियाइ? वंसा झियाइ? मल्ला झियाइ? वागा झियाइ? छित्तरा झियाइ? छाणे झियाइ? जोती झियाइ?

गोयमा! नो अगारे झियाइ, नो कुड्डा झियाइ, जाव नो छाणे झियाइ, जोती झियाइ॥

अगारस्य भदन्त! ध्मायतः किम् अगारः ध्मायति? कुड्यं ध्मायति? 'कंडना' ध्मायति? धारणा ध्मायति? बलहरणं ध्मायति? वंश ध्मायति? 'मल्ला' ध्मायति? बल्कं ध्मायति? छित्तरा ध्मायति? 'छाणे' ध्मायति? ज्योति र्ध्मायति?

गौतम! नो अगारः ध्मायति, नो कुड्यं ध्मायति यावत् नो 'छाणे' ध्मायति, ज्योति र्ध्मायति।

२५७. भन्ते! घर जलता है उस समय क्या घर जलता है? भींत जलती है? टाटी जलती है? खंभा जलता है? खंभे के ऊपर का काठ जलता है? बांस जलता है? भींत को टिकाने वाला खंभा जलता है? बलका जलती है? बांस की खपाचियां जलती हैं? दर्भपटल जलता है? ज्योति जलती है?

गौतम! न घर जलता है, न भींत जलती है यावत् न दर्भपटल जलता है, ज्योति जलती है।

भाष्य

१. सूत्र २५६-२५७

इस आलापक का प्रतिपाद्य है—क्रिया की सापेक्षता। जलना अग्निकायिक जीवों की क्रिया है। वह क्रिया दीप, तैल, बाती आदि सापेक्ष है। मिट्टी का दीप पृथ्वीकायिक जीव का मुक्त शरीर है। तैल और बाती वनस्पतिकायिक जीवों के मुक्त शरीर हैं। अग्नि की ज्वलन क्रिया पृथ्वीकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के मुक्त शरीरों की अपेक्षा रखती है। इस प्रकार क्रिया की सापेक्षता का संबोध दिया गया है।

जयाचार्य के अनुसार दीया जलता है, यह व्यवहार नय का वचन है और अग्नि जलती है, यह निश्चय नय का वचन है।[3]

इसी प्रकार गृह के प्रसंग में भी निश्चय नय की वक्तव्यता है—घर नहीं जलता, ज्योति जलती है। इस प्रकरण के आधार पर क्रिया के सिद्धांत को समझाया गया है।

शब्द विमर्श

दीवचंपय—दीये का ढक्कन।

कडना—टाटी।

धारण—खंभा।

बलहरण—खंभे के ऊपर का काठ।

---

१. भ. वृ. ८ २५५—क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदेन प्रतिक्षणं कार्यस्य निष्पत्तेः छिद्यमानं छिन्नमित्युच्यते एवमसत्यालोचनापरिणतौ सत्यामाराधनाप्रवृत्त आराधक एवेति।

२. भ. वृ. ८/ २५५—तन्त्रोद्गतं तूरिवेमादिसत्तीर्णमात्रम्।

३. भ. जो. २/ १४६/५-५

अथवा अग्नि बले अछै? तब भाखै जिनराय
दीवो न जले जाव नसु, बले ढाकणो नाय॥
तेऊ अग्नि बले अछै, ए निश्चय-नय वाय,
अग्नि तणां प्रस्ताव थी बले तेहिज कहिवाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्ल–भींत को टिकाने वाला खंभा।
बल्का–बांस को बांधने के लिए प्रयुक्त होने वाली वट आदि की छाल।
छिन्वर–बांस की खपाची।
छाण–दर्भ आदि का पटल।[1]

किरिया-पदं

२५८. जीवे णं भंते! ओरालिय-सरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए॥

क्रियापदम्

जीवः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः, स्यात् अक्रियः।

क्रिया पद

२५८. 'भन्ते! जीव औदारिकशरीर से कितनी क्रिया वाला है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला, स्यात् अक्रिय–क्रिया रहित है।

२५९. नेरइए णं भंते! ओरालिय-सरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए॥

नैरयिकः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः।

२५९. भन्ते! नैरयिक औदारिकशरीर से कितनी क्रिया वाला है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला।

२६०. असुरकुमारे णं भंते! ओरालिय-सरीराओ कतिकिरिए?
एवं चेव। एवं जाव वेमाणिए, नवरं–मणुस्से जहा जीवे॥

असुरकुमारः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियः?
एवं चैव। एवं यावत् वैमानिकः, नवरं–मनुष्यः यथा जीवः।

२६०. भन्ते! असुरकुमार औदारिकशरीर से कितनी क्रिया वाला है?
नैरयिक की भांति वक्तव्यता, इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है–मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

२६१. जीवे णं भंते! आरोलियसरीरेहिंतो कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए॥

जीवः भदन्त! औदारिकशरीरेभ्यः कतिक्रियः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियः यावत् स्यात् अक्रियः।

२६१. भन्ते! जीव औदारिकशरीरों से कितनी क्रिया वाला है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला यावत् स्यात् अक्रिय।

२६२. नेरइए णं भंते! आरोलिय-सरीरेहिंतो कतिकिरिए?
एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिए, नवरं–मणुस्से जहा जीवे॥

नैरयिकः भदन्त! औदारिकशरीरेभ्यः कतिक्रियः?
एवम् एषोऽपि यथा प्रथमः दंडकः तथा भणितव्यः यावत् वैमानिकः, नवरं–मनुष्यः यथा जीवः।

२६२. भन्ते! नैरयिक औदारिकशरीरों से कितनी क्रिया वाला है?
यह प्रथम दण्डक (नैरयिक सू. २५८) की भांति वक्तव्य है। यावत् वैमानिक, इतना विशेष है–मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

२६३. जीवा णं भंते! ओरालिय-सरीराओ कतिकिरिया?
गोयमा! सिय तिकिरिया जाव सिय अकिरिया॥

जीवाः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियाः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियाः यावत् स्यात् अक्रियाः।

२६३. भन्ते! जीव औदारिकशरीर से कितनी क्रिया वाले हैं?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाले यावत् अक्रिय हैं।

२६४. नेरइया णं भंते! ओरालिय-सरीराओ कतिकिरिया?

नैरयिकाः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियाः?

२६४. भन्ते! नैरयिक औदारिकशरीर से कितनी क्रिया वाले हैं?

---

१. भ. वृ. ८. २५८–अगारं–कुटीगृहं कुड्यानि भित्तयः कडणानि वटिकाः धारणानि बलहरणाधारभूतं स्थूणं, बलहरणेति धारणोपरिवर्तिनिर्यंगायतकाष्ठं 'मोम' इति प्रसिद्धं वंशादि वंशाश्छिन्वराधारभूताः मल्लानि मल्लाः–कुड्यावष्टम्भस्थाणवः बलहरणा धारणाश्रितानि वा छिन्वरधारभूतानि ऊर्ध्वायतानि काष्ठानि वागानि वल्का–वंशादि बंधनभूतावटादित्वचः छिन्वरणि छिन्वरणि–वंशादिमयानि छादनाधारभूतानि किलिञ्जानि छाणानि छादनं दर्भादिमयं पटलमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवरं–मणुस्सा जहा जीवा॥

एवं एषोऽपि यथा प्रथमः दंडकः तथा भणितव्यः यावत् वैमानिकाः, नवरं मनुष्याः यथा जीवाः।

यह भी प्रथम दण्डक की भांति वक्तव्य है यावत् वैमानिक, इतना विशेष है–मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

२६५. जीवा णं भंते! ओरालिय-सरीरेहिंतो कतिकिरिया?
गोयमा! तिकिरिया वि,चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि॥

जीवाः भदन्त! औदारिकशरीरेभ्यः कतिक्रियाः?
गौतम! त्रिक्रियाः अपि, चतुष्क्रियाः अपि, पञ्चक्रियाः अपि, अक्रियाः अपि।

२६५. भन्ते! जीव औदारिकशरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?
गौतम! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी, पांच क्रिया वाले भी और अक्रिय भी हैं।

२६६. नेरइया णं भंते! ओरालिय-सरीरेहिंतो कतिकिरिया?
गोयमा! तिकिरिया वि,चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि। एवं जाव वेमाणिया, नवरं–मणुस्सा जहा जीवा॥

नैरयिकाः भदन्त! औदारिकशरीरात् कतिक्रियाः?
गौतम! त्रिक्रियाः अपि, चतुष्क्रियाः अपि, पञ्चक्रियाः अपि। एवं यावत् वैमानिकाः, नवरं- मनुष्याः यथा जीवाः।

२६६. भन्ते! नैरयिक औदारिकशरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?
गौतम! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी हैं, यावत् वैमानिक, इतना विशेष है–मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य हैं।

२६७. जीवे णं भंते! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए॥

जीवः भदन्त! वैक्रियशरीरात् कतिक्रियः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् अक्रियः।

२६७. भन्ते! जीव वैक्रियशरीर से कितनी क्रिया वाला है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् अक्रिय।

२६८. नेरइए णं भंते! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए। एवं जाव वेमाणिए, नवरं–मणुस्से जहा जीवे। एवं जहा ओरालियसरीरेणं चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, नवरं– पंचमकिरिया न भण्णइ, सेसं तं चेव। एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारगं पि, तेयगं पि कम्मगं पि भाणियव्वं– एक्केक्के चत्तारि दंडगा भाणियव्वा जाव–

नैरयिकः भदन्त! वैक्रियशरीरात् कतिक्रियः?
गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः। एवं यावत् वैमानिकः, नवरं–मनुष्यः यथा जीवः। एवं यथा औदारिकशरीरेण चत्वारः दण्डकाः भणिताः तथा वैक्रियशरीरेण अपि चत्वारः दण्डकाः भणितव्याः, नवरं– पञ्चमक्रिया न भण्यते, शेषं तच्चैवम्। एवं यथा वैक्रियं तथा आहारकमपि, तैजसकमपि, कर्मकमपि भणितव्यम्– एकैकस्मिन् चत्वारः दण्डकाः भणितव्याः यावत्–

२६८. भन्ते! नैरयिक वैक्रियशरीर से कितनी क्रिया वाला है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला यावत् वैमानिक, इतना विशेष है–मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है। जैसे औदारिकशरीर से चार दण्डक कहे गए हैं वैसे वैक्रियशरीर से भी चार दण्डक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–पांचवीं क्रिया का निर्देश नहीं है, शेष सब पूर्ववत्। जैसे वैक्रियशरीर की वक्तव्यता है वैसे ही आहारकशरीर, तैजसशरीर और कर्मशरीर भी वक्तव्य हैं। प्रत्येक शरीर के चार-चार दण्डक वक्तव्य हैं यावत्–

२६९. वेमाणिया णं भंते! कम्मगसरीरेहिंतो कतिकिरिया?
गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि॥

वैमानिकाः भदन्त! कर्मकशरीरेभ्यः कतिक्रियाः?
गौतम! त्रिक्रियाः अपि, चतुष्क्रियाः अपि।

२६९. भन्ते! वैमानिक कर्मशरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?
गौतम! तीन क्रियावाले भी हैं, चार क्रिया वाले भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र २५८-२६९

प्रस्तुत आलापक में औदारिक आदि शरीर तथा औदारिक आदि शरीर युक्त जीव–इन दोनों की अपेक्षा से क्रिया का विचार किया गया है। तीन क्रियाएं शरीर के आधार पर भी हो सकती हैं किन्तु चार और पांच क्रियाएं जीव युक्त शरीर सापेक्ष होती हैं। प्रज्ञापना में जीव की अपेक्षा क्रिया और शरीर की अपेक्षा क्रिया–ये दोनों सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न-भिन्न हैं।[1] वृत्तिकार ने पर शरीर तथा नारक के प्रसंग में औदारिकशरीरवान् का भी उल्लेख किया है।[2]

यहां कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया--इन पांच क्रियाओं की विवक्षा है। इनमें क्रिया के तीन वर्ग बनते हैं।

१. कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी—ये तीनों क्रियाएं एक साथ नियमतः होती है।[3]

२. पारितापनिकी क्रिया होती है तब आद्यवर्ती तीन क्रियाएं अवश्य होती हैं।

३. प्राणातिपात क्रिया के साथ आद्यवर्ती चारों क्रियाएं नियमतः होती हैं।

इस नियम के आधार पर स्यात् त्रिक्रिय, स्यात् चतुष्क्रिय, स्यात् पंचक्रिय—ये तीन विकल्प बनते हैं।

अक्रिय केवल वीतराग होता है।[4]

जयाचार्य ने अप्रमत्त का भी अक्रिय के रूप में निर्देश किया है।[5] इसका आधार भगवती का पहला शतक है। उसमें अप्रमत्त संयत को अनारंभ बतलाया गया है। अनारंभ अक्रिय होता है।[6]

नैरयिक, देव और तिर्यंच—ये अक्रिय नहीं होते।[7] केवल मनुष्य ही वीतराग और अप्रमत्त हो सकता है इसलिए अक्रिय वही हो सकता है।

वैक्रिय शरीर का प्राण वियोजन नहीं किया जा सकता इसलिए वैक्रिय शरीर की अपेक्षा स्यात् पंचक्रिय का विकल्प नहीं बनता।[8] नैरयिक अधोलोक में रहते हैं और आहारक शरीर केवल संयमी मनुष्य के ही होता है। इस अवस्था में आहारक शरीर की अपेक्षा नैरयिक स्यात् त्रिक्रिय, स्यात् चतुष्क्रिय कैसे हो सकता है? वृत्तिकार ने इसका समाधान पूर्व शरीर की अपेक्षा से किया है। इसका तात्पर्य है कि एक नैरयिक पूर्व जन्म में मनुष्य है और मृत्यु के पश्चात् वह नरक में उत्पन्न होता है। उसने पूर्व जन्म में मनुष्य के शरीर का निर्माण किया था। मृत्यु के पश्चात् वह शरीर जब तक जीव निर्वर्तित परिणाम को नहीं त्याग देता तब तक वह निर्वर्तक जीव का ही शरीर कहलाता है। इस नय के अनुसार नैरयिक का पूर्वभववर्ती शरीर नैरयिक जीव का ही कहलाएगा उस शरीर के अस्थि आदि किसी एक देश से आहारक शरीर का स्पर्श या परिताप होता है, इस अपेक्षा से वह नैरयिक जीव स्यात् त्रिक्रिय, स्यात् चतुष्क्रिय होता है।[9]

पूर्ववर्ती शरीर से क्रिया का संबंध कैसे माना जाए? यह एक जटिल प्रश्न है। इस प्रश्न के समाधान के लिए भगवई (शतक ५/१३३-१३४) का भाष्य द्रष्टव्य है।

तैजस शरीर सूक्ष्म और कार्मण शरीर सूक्ष्मतर है। उनको परितापित नहीं किया जा सकता और वे सदा औदारिक अथवा वैक्रिय शरीर के आश्रित ही होते हैं। अतः उनकी अपेक्षा क्रिया कैसे संभव हो सकती है? इस प्रश्न का समाधान यह है—औदारिक अथवा वैक्रिय शरीर को परिताप पहुंचाने पर तैजस और कार्मण शरीर भी परितप्त हो जाते हैं।[10]

"थुणे कम्मसरीरगं" इस सूत्र से प्रस्तुत विषय की पुष्टि होती है।[11]

२७०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥ तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति। २७०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

---

१. पण्ण. २२/३७।

२. भ. वृ. ८/२५८—औदारिकशरीरात्—परकीयौदारिकशरीरमाश्रित्य कतिक्रियो जीवः?

३. पण्ण. २२/४८-५२।

४. भ. वृ. ८/२५८—सिय अकिरिएत्ति वीतरागावस्थामाश्रित्य तस्या हि वीतरागत्वादेव न सन्त्यधिकृतक्रिया इति।

५. भ. जो. ३/१४६, ३५-३८।

६. भ. १/३३,३४।

७. भ. वृ. ८/२५९—अक्रियस्त्वयं न भवति, अवीतरागत्वेन क्रियाणामवश्यं भावित्वादिति।

८. वही, ८/२६७-२६८—अत्रेह आहारकादिशरीरत्रयमाश्रित्य यदुक्तं चतुष्कत्वेन नैरयिकादिजीवानां क्रियित्वं चतुष्क्रियत्वं चोक्तं, पंचक्रियत्वं तु निवारितं मारयितुमशक्यत्वात्तस्येति।

९. वही, ८/२६७-२६८ अथ नारकस्याधोलोकवर्तित्वाद् आहारकशरीरस्य च मनुष्यलोकवर्तित्वेन तत्क्रियाणामविषयत्वात् कथमाहारकशरीरमाश्रित्य नारकः स्यात्क्रियः स्यात्चतुष्क्रिय इति? अत्रोच्यते, यावत् पूर्वशरीरमत्युत्सृष्टं जीवनिर्वर्तितपरिणामं न त्यजति तावत् पूर्वभावप्रज्ञापनानयमतेन निर्वर्तकजीवस्यैवेति व्यपदिश्यते घृतघटन्यायेन इत्यतो नारकपूर्वभवदेहो नारकस्यैव तद्देशेन च मनुष्यलोकवर्तिनाऽस्थ्यादिसंस्पर्शेन यदाहारकशरीरं स्पृश्यते परिताप्यते वा तदाहारकदेहा-नारकस्यैक्रियचतुष्क्रिया वा भवति कायिकी भावे इतरयोरवश्यं भावात् पारितापनिकी भावे चाद्यत्रयस्यावश्यं भावादिति।

१०. वही, ८/२६७-२६८—यच्च तैजसकार्मणशरीरापेक्षया जीवानां परितापकत्वं तदौदारिकादि आश्रित्यत्वेन तयोरवसेयं, स्वरूपेण तयोः परितापयितुमशक्यत्वात्।

११. आयारो २/१६३ और उसका भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल

अण्णउत्थियसंवाद-पदं

अदत्तं पडुच्च–

२७१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे–वण्णओ, गुणसिलए चेइए–वण्णओ जाव पुढविसिला-वट्टओ। तस्स णं गुणसिलस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्ण-उत्थिया परिवसंति। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया॥

२७२. तेणं कालेणं तेण समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना नाणसंपन्ना दंसण-संपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना लाघव-संपन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जिय-माया जियलोभा जियनिद्दा जिइंदिया जियपरीसहा जीवियासमरणभयविप्प-मुक्का समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्प-णं भावेमाणा विहरंति॥

२७३. तए णं ते अण्णउत्थिया जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवाग-च्छित्ता ते थेरे भगवंते एवं वयासी–तुब्भे णं अज्जो तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा,

संस्कृत छाया

अन्ययूथिकसंवाद-पदम्

अदत्तं प्रतीत्य

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्– वर्णकः, गुणशिलकं चैत्यम्–वर्णकः यावत् पृथ्वीशिलापट्टकः। तस्य गुणशिलकस्य चैत्यस्य अदूरसामन्ते बहवः अन्ययूथिकाः परिवसन्ति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् समवसृतः यावत् पर्षत् प्रतिगता।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य बहवः अन्तेवासिनः स्थविराः भगवन्तः जातिसम्पन्नाः कुल-सम्पन्नाः बलसम्पन्नाः रूपसम्पन्नाः विनयसम्पन्नाः ज्ञानसम्पन्नाः दर्शन-सम्पन्नाः चरित्र-सम्पन्नाः लज्जा-सम्पन्नाः लाघवसम्पन्नाः ओजस्विनः तेजस्विनः वर्चस्विनः यशस्विनः जित-क्रोधाः जितमानाः जितमायाः जितलोभाः जितनिद्राः जितेन्द्रियाः जितपरीषहाः जीविताशा-मरणभय-विप्रमुक्ताः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अदूरसामन्ते ऊर्ध्वजानवः अधःशिरसः ध्यान-कोष्ठोपगताः संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्तो विहरन्ति।

ततः ते अन्ययूथिकाः यत्रैव स्थविराः भगवन्तः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः– यूयम् आर्याः त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-विरत - प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्माणः,

हिन्दी व्याख्या

अन्ययूथिक संवाद-पद

अदत्त की अपेक्षा

२७१. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था–वर्णन, गुणशीलक नाम का चैत्य था–वर्णन, यावत् पृथ्वीशिलापट्टक। उस गुणशीलक चैत्य के न अति दूर और न अति निकट अनेक अन्ययूथिक रहते थे। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर आदिकर यावत् वहां समवसृत हुए। परिषद् आई, धर्मदेशना सुन वह लौट गई।

२७२. उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अनेक अन्तेवासी स्थविर भगवान् जातिसंपन्न, कुल-सम्पन्न, बलसंपन्न, रूपसंपन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञानसंपन्न, दर्शनसंपन्न, चारित्रसंपन्न, लज्जासंपन्न, लाघव-संपन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, निद्राजयी, जितेन्द्रिय, परीषहजयी, जीने की आशंसा और मृत्यु के भय से विप्रमुक्त थे। वे श्रमण भगवान महावीर के न अति दूर और न अति निकट उर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यानकोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार करते हैं।

२७३. वे अन्ययूथिक जहां स्थविर भगवान थे वहां आए, आकर इस प्रकार बोले–आर्यो! तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकिरिया, असंवुडा, एगंतदंडा एगंतबाला या वि भवह॥

सक्रियाः, असंवृताः, एकान्तदण्डाः एकान्तबालाश्चापि भवथ।

भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से युक्त, असंवृत, एकान्त दण्ड और एकान्त बाल भी हो।

२७४. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे तिविहं तिविहेणं असंजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खायपावकम्मा, सकिरिया, असंवुडा, एगंतदंडा, एगंतबाला या वि भवामो?

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः—केन कारणेन आर्य! वयं त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्माणः, सक्रियाः, असंवृताः, एकान्तदण्डाः, एकान्तबालाश्चापि भवामः?

२७४. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! किस कारण से हम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से युक्त, असंवृत, एकान्त दण्ड और एकान्त बाल भी हैं?

२७५. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह। तए णं ते तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मा जाव एगंत-बाला या वि भवह॥

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः-यूयं आर्य! अदत्तं गृह्णीथ, अदत्तं भुङ्क्ष्वे, अदत्तं स्वादयथ। ततः ते यूयं अदत्तं गृह्णन्तः, अदत्तं भुञ्जानाः, अदत्तं स्वादयन्तः त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्माणः यावत् एकान्त-बालाश्चापि भवथ।

२७५. अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम अदत्त ले रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो। अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२७६. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो, जए णं अम्हे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा अदिन्नं सातिज्जमाणा, तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवामो?

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्यूथिकान् एवमवादिषुः—केन कारणेन आर्य! वयम् अदत्तं गृह्णीमः, अदत्तं भुञ्जामहे, अदत्तं स्वादयामः, यतः वयम् अदत्तं गृह्णन्तः, अदत्तं भुञ्जानाः, अदत्तं स्वादयन्तः, त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्माणः यावत् एकान्तबालाश्चापि भवामः।

२७६. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा- आर्यो! कैसे हम अदत्त ले रहे हैं, अदत्त का उपभोग कर रहे हैं, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हैं? अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२७७. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भण्णं अज्जो! दिज्जमाणे अदिन्ने, पडिग्गाहेज्जमाणे अपडिग्गाहिए, निस्सिरिज्जमाणे अणिसिट्ठे। तुब्भण्णं अज्जो! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा गाहावइस्स णं तं, नो खलु तं तुब्भं, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह,

ततः ते अन्ययूथकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः—युष्मभ्यम् आर्य! दीयमानम् अदत्तं, प्रतिगृह्यमानं अप्रतिगृहीतं, निसृज्यमानम् अनिसृष्टम्। युष्मभ्यम् आर्य! दीयमानं प्रतिग्रहकम् असम्प्राप्तम् अत्र अन्तरा कोऽपि अपहरेत् 'गाहावइस्स' तत्, नो खलु तत् युष्माकं, ततः यूयं अदत्तं गृह्णीथ, अदत्तं भुङ्क्ष्वे, अदत्तं स्वादयथ।

२७७. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम्हें जो दिया जा रहा है वह अदत्त है, तुम्हारे द्वारा जो प्रतिगृह्यमाण है वह अप्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण (पात्र में डाला जा रहा) है वह अनिसृष्ट है। आर्यो! जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है, बीच में ही कोई पुरुष उस द्रव्य का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह। तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला या वि भवह॥

ततः यूयम् अदत्तं गृह्णन्तः यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

अपहरण कर लेता है वह द्रव्य गृहपति का है, तुम्हारा नहीं है। इस हेतु से हम कह रहे हैं—तुम अदत्त ले रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो, अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

२७८. तए णं थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—नो खलु अज्जो! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो। अम्हे णं अज्जो! दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो। तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा, दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मा, अकिरिया, संवुडा एगंतपंडिया या वि भवामो।

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः—नो खलु आर्य! वयम् अदत्तं गृह्णीमः, अदत्तं भुञ्जामहे, अदत्तं स्वादयामः। वयम् आर्य! दत्तं गृह्णीमः, दत्तं भुञ्जामहे, दत्तं स्वादयामः। ततः वयं दत्तं गृह्णन्तः, दत्तं भुञ्जानाः, दत्तं स्वादयन्तः त्रिविधं त्रिविधेन संयत-विरत-प्रतिहत - प्रत्याख्यात - पापकर्माणः, अक्रियाः, संवृताः, एकान्तपंडिताश्चापि भवामः।

२७८. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा-आर्यो! हम अदत्त नहीं ले रहे हैं, अदत्त का उपभोग नहीं कर रहे हैं, अदत्त का अनुमोदन नहीं कर रहे हैं। आर्यो! हम दत्त ले रहे हैं, दत्त का उपभोग कर रहे हैं, दत्त का अनुमोदन कर रहे हैं। दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण हम तीन योग और तीन करण से संयत, विरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन करनेवाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से मुक्त, संवृत और एकान्त पण्डित भी हैं।

२७९. तए णं अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! तुम्हे दिन्नं गेण्हह, दिन्नं भुंजह, दिन्नं सातिज्जह, जए णं तुब्भे दिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतपंडिया या वि भवह?

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः—केन कारणेन आर्य! यूयं दत्तं गृह्णीथ, दत्तं भुञ्जध्वे, दत्तं स्वादयथ, यतः यूयं दत्तं गृह्णन्तः यावत् एकान्त-पंडिताश्चापि भवथ।

२७९. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे तुम दत्त का ग्रहण कर रहे हो, दत्त का उपभोग कर रहे हो, दत्त का अनुमोदन कर रहे हो? दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम संयत यावत् एकान्त पण्डित हो?

२८०. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—अम्हण्णं अज्जो! दिज्जमाणे दिन्ने, पडिग्गाहिज्जमाणे पडिग्गाहिए, निस्सिरिज्जमाणे निसिट्ठे। अम्हण्णं अज्जो! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा, अम्हण्णं तं, नो खलु तं गाहावइस्स, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा, दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मा जाव एगंतपंडिया या वि भवामो। तुब्भे णं

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान्, एवमवादिषुः—अस्मभ्यम् आर्य! दीयमानं दत्तं, प्रतिगृह्यमाणं प्रतिगृहीतं, निसृज्यमानं निसृष्टम्। अस्मभ्यम् आर्य! दीयमानं प्रतिग्रहकम् असम्प्राप्तम् अत्र अन्तरा कोऽपि अपहरेत्, अस्माकं तत् नो खलु तत् 'गाहावइस्स', ततः वयं दत्तं गृह्णीमः, दत्तं भुञ्जामहे, दत्तं स्वादयामः, ततः वयं दत्तं गृह्णन्तः, दत्तं भुञ्जानाः, दत्तं स्वादयन्तः त्रिविधं त्रिविधेन संयत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पाप-कर्माणः यावत् एकान्तपंडिताश्चापि भवामः। यूयम् आर्य! आत्मना चैव त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपाप-

२८०. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! हमें जो दिया जा रहा है वह दत्त है, हमारे द्वारा जो प्रतिगृह्यमाण है, वह प्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण है, वह निसृष्ट है। आर्यो! हमें जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है, बीच में ही कोई पुरुष उस द्रव्य का अपहरण कर लेता है। वह द्रव्य हमारा है, गृहपति का नहीं। इस हेतु से हम कह रहे हैं—हम दत्त का ग्रहण करते हैं, दत्त का उपभोग करते हैं, दत्त का अनुमोदन करते हैं। दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण हम तीन योग और तीन करण से संयत,

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अज्जो! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं असंजय-विरयपडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह॥

कर्माणः यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

विरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान करने वाले यावत् एकान्त पण्डित भी हैं। आर्यो! तुम स्वयं तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८१. तए णं अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवामो?

ततः अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमावादिषुः—केन कारणेन आर्य! वयं त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्माणः यावत् एकान्तबाला-श्चापि भवामः।

२८१. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८२. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं साइज्जह, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला या वि भवह॥

ततः ते स्थविराः भगवतः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः—यूयम् आर्य! अदत्तं गृह्णीथ, अदत्तं भुङ्क्ष्वे, अदत्तं स्वादयथ, ततः यूयम् अदत्तं गृह्णन्तः यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

२८२. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम अदत्त का ग्रहण कर रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो। अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८३. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो जाव एगंतबाला या वि भवामो?

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमादिषुः—केन कारणेन आर्य! वयम् अदत्तं गृह्णीमः यावत् एकान्त-बालाश्चापि भवामः?

२८३. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे हम अदत्त का ग्रहण कर रहे हैं यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८४. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्ण-उत्थिए एवं वयासी—तुब्भण्णं अज्जो! दिज्जमाणे अदिन्ने पडिग्गाहेज्जमाणे अपडिग्गाहिए, निस्सिरिज्जमाणे अणिसिट्ठे। तुब्भण्णं अज्जो! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा, गाहावइस्स णं तं, नो खलु तं तुब्भं। तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह जाव एगंतबाला या वि भवह॥

ततः ते स्थविराः भगवतः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः—युष्मभ्यम् आर्य! दीयमानम् अदत्तं, प्रतिगृह्यमाणम् अप्रतिगृहीतं, निसृज्य-मानम् अनिष्सृष्टम्। युष्मभ्याम् आर्य! दीयमानं प्रतिग्रहकम् असम्प्राप्तम् अत्र अन्तरा कोऽपि अपहरेत्, 'गाहावइस्स'। तत्, नो खलु तत् युष्माकम्। ततः यूयम् अदत्तं गृह्णीथ यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

२८४. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम्हें जो द्रव्य दिया जा रहा है, वह अदत्त है, जो प्रतिगृह्यमाण है, वह अप्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण है, वह अनिसृष्ट है। आर्यो! तुम्हें जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है बीच में ही कोई पुरुष उस द्रव्य का अपहरण कर लेता है, वह द्रव्य गृहपति का है, तुम्हारा नहीं। इस हेतु से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो यावत् एकान्त बाल भी हो।

भाष्य

१. सूत्र २७१-२८४

प्रस्तुत आलापक में अन्ययूथिक साधुओं और स्थविरों का संवाद उल्लिखित है। प्रस्तुत आगम में अन्ययूथिकों का महावीर के शिष्यों के साथ होने वाले संवादों का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[1]

१. भ. ६ १०. १७१-१७३, ७ १०. २८२-२१६, ८ १०. ४४१-४५०। १८ ८ १६३-१६७, १७ २ १२५-३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत आलापक में निर्दिष्ट अन्ययूथिक किस परम्परा के थे, इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है। किन्तु असंजय, अविरय, अकिरिय, असंवुड-इन पदों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ये अन्ययूथिक श्रमण परंपरा के थे। इन पदों का प्रयोग बौद्ध, सांख्य, तापस अथवा आजीवक परंपरा के साहित्य में ही उपलब्ध हो सकता है। सातवें, सत्रहवें और अठारहवें शतक में उपलब्ध नाम सूची के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ये अन्ययूथिक सांख्य अथवा आजीवक परम्परा के थे। अधिक संभावना आजीवक संघ की है। राजगृह के बाहर जेतवन के पीछे आजीवकों का बड़ा संघ रहता था।[1]

अन्ययूथिकों ने स्थविरों के पास आकर एक चर्चा शुरू की—आप अदत्त का ग्रहण कर रहे हैं, अदत्त का उपभोग कर रहे हैं। गृहस्थ के द्वारा जो दीयमान है, वह दत्त नहीं होता। दीयमान वर्तमान काल है और दत्त अतीत काल। वर्तमान और अतीत अत्यंत भिन्न होते हैं। गृहस्थ दे रहा है और वह आहार पात्र में अभी गिरा नहीं है। उसे यदि दत्त मानो तो दत्त का ग्रहण माना जा सकता है।[2]

स्थविरों ने इसका प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा—क्रिया काल और निष्ठाकाल में अभेद होना है इस सिद्धांत के आधार पर दीयमान दत्त है। हम अदत्त का उपभोग नहीं करते। तुम दीयमान को अदत्त मानते हो, अतः तुम अदत्त का उपभोग कर रहे हो।[3]

अन्ययूथिकों ने वर्तमान और अतीत के कालभेद के आधार पर जो आक्षेप किया, स्थविरों ने क्रियाकाल और निष्ठाकाल के अभेद के आधार पर उसे समाहित कर दिया।

हिंसं पडुच्च—

२८५. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो! तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्च-क्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह॥

हिंसां प्रतीत्य—

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः—यूयम् आर्य! त्रिविधं त्रिविधेन असयंत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपाप-कर्माणः यावत् एकान्त-बालाश्चापि भवथ।

हिंसा की अपेक्षा

२८५. [1]उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो.

२८६. तए णं ते थेरा भगवंता ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला यावि भवामो?

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान् एवमावादिषु—केन कारणेन आर्य! वयं त्रिविधं त्रिविधेन यावत् एकान्त-बालाश्चापि भवामः?

२८६. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८७. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह अभि-हणह वत्तेह लेसेह संघाएह संघट्टेह परितावेह किलामेह उद्दवेह, तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा अभिहण-माणा वत्तेमाणा लेसेमाणा संघाए-माणा संघट्टेमाणा परितावेमाणा किला-मेमाणा उद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंत-बाला या वि भवह॥

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः—यूयं आर्य! तं रीयमाणाः पृथिवीम् आक्रमथ अभिहथ वर्त्तयथ श्लेषयथ संघातयथ संघट्टयथ परितापयथ क्लमयथ उद्द्रवयथ, ततः यूयं पृथिवीम् आक्रामन्तः अभिहन्तः वर्त्तमानाः श्लिष्यन्तः संघातयन्तः संघट्टयन्तः परिता-पयन्तः क्लाम्यन्तः उद्द्रवन्तः त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्या-ख्यात-पापकर्माणः यावत् एकान्त-बालाश्चापि भवथ।

२८७. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम गमन करते हुए पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत, क्षुण्ण, श्लिष्ट, संहत, स्पृष्ट, परितप्त, क्लान्त और उपद्रुत (प्राण रहित) करते हो। तुम पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत, क्षुण्ण, श्लिष्ट, संहत, स्पृष्ट, परितप्त, क्लान्त और उपद्रुत करने के कारण तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

---

१. बौद्ध धर्म और बिहार, श्री धवलवार त्रिपाठी 'सहृदय'—पृ. १९।

२. भ. वृ. ८/२७७—दीयमानमदत्तं, दीयमानस्य वर्तमानकालत्वाद् दत्तस्य चातीतकालवर्त्तित्वाद् वर्तमानातीतयोश्चात्यन्तभिन्नत्वाद्दीयमानं दत्तं न भवति दत्तमेव दत्तमिति व्यपदिश्यते एवं प्रतिगृह्यमाणादावपि, तत्र दीयमानं दायकापेक्षयाः प्रतिगृह्यमाणं ग्राहकापेक्षया।

३. वही, ८/२८०—दिज्जमाणे चित्तं इत्यादि यदुक्तं तत्र क्रियाकालनिष्ठा-कालयोरभेदाद्दीयमानत्वादे दत्तत्वादि समवसेयमिति। अथ दीयमानमदत्त-मित्यादेर्भवन्मत-त्वाद् यूयमेवाऽसंयतत्वादिगुणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८८. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–नो खलु अज्जो! अम्हे रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चामो अभिहणामो जाव उद्दवेमो। अम्हे णं अज्जो! रीयं रीयमाणा कायं वा, जोयं वा, रियं वा पडुच्च देसं देसेणं वयामो, पदेसं पदेसेणं वयामो, तेणं अम्हे देसं देसेणं वय-माणा, पदेसं पदेसेणं वयमाणा नो पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो जाव उद्देवेमो, तए णं अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा अणभि-हणमाणा जाव अणोद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहयपच्चक्खाय-पाव-कम्मा जाव एगंतपंडिया या वि भवामो। तुब्भे णं अज्जो! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंत-बाला या वि भवह॥

ते स्थविराः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः–नो खलु आर्य! वयं रीयमाणा पृथिवीम् आक्रामामः अभिहन्मः यावत् उद्द्रवयामः। वयं आर्य! रीतं रीयमाणाः कायं वा, योगं वा, ऋतं वा प्रतीत्य देशं देशेन व्रजामः, प्रदेशं प्रदेशेन व्रजामः, तेन वयं देशं देशेन व्रजन्तः, प्रदेशं प्रदेशेन व्रजन्तः नो पृथिवीम् आक्रामामः अभिहन्मः यावत् उद्द्रवयामः, ततः वयं पृथिवीम् आक्रामन्तः अनभिघ्नन्तः यावत् अनुद्द्रवयन्तः त्रिविधं त्रिविधेन संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्माणः यावत् एकान्तपंडिताश्चापि भवामः। यूयं आर्य! आत्मना चैव त्रिविधं त्रिविधेन असंयत-अविरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्माणः यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

२८८. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा–आर्यो! हम गमन करते हुए पृथ्वी को न आक्रांत, अभिहत, यावत् उपद्रुत करते हैं। आर्यो! हम शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति, सेवा आदि कार्य तथा संयम की दृष्टि से गमन करते हुए पृथ्वी के समुचित देश पर, समुचित प्रदेश पर गमन करते हैं। अतः समुचित देश और समुचित प्रदेश पर गमन करते हुए हम पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत यावत् उपद्रुत नहीं करते हैं। पृथ्वी को अनाक्रांत, अनभिहत यावत् अनुपद्रुत करते हुए हम तीन योग और तीन करण से संयत, विरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान करने वाले यावत् एकान्त पण्डित भी हैं। आर्यो! तुम स्वयं तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८९. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी–केण कारणेणं अज्जो! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवामो?

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः–केन कारणेन आर्य! वयं त्रिविधं त्रिविधेन यावत् एकान्तबालाश्चापि भवामः?

२८९. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा–आर्यो! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२९०. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्ण-उत्थिए एवं वयासी–तुब्भे णं अज्जो! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह जाव उद्द-वेह, तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा जाव उद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवह॥

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः–यूयम् आर्य! रीतं रीयमाणाः पृथिवीम् आक्रामथ यावत् उद्द्रवयथ ततः यूयं पृथिवीम् आक्रामन्तः यावत् उद्द्रवन्तः त्रिविधं त्रिविधेन यावत् एकान्तबालाश्चापि भवथ।

२९०. भगवान स्थविरों ने उन अन्य-यूथिकों से इस प्रकार कहा–आर्यो! तुम गमन करते हुए पृथ्वी को आक्रांत यावत् उपद्रुत करते हो। पृथ्वी को आक्रांत यावत् उपद्रुत करते हुए तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

गममाणगयं पडुच्च–

२९१. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी–तुब्भण्णं अज्जो! गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते॥

गम्यमानगतं प्रतीत्य–

ततः ते अन्ययूथिकाः तान् स्थविरान् भगवतः एवमवादिषुः–युष्माकम् आर्य! गम्यमानः अगतः, व्यतिक्रम्यमाणः अव्यतिक्रान्तः, राजगृहं नगरं सम्प्राप्तुकामः असम्प्राप्तः।

गम्यमान गत की अपेक्षा

२९१. उन अन्ययूथिकों ने भगवान स्थविरों से इस प्रकार कहा–आर्यो! तुम्हारे मत के अनुसार गम्यमान अगत (नहीं गया हुआ) व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९२. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–नो खलु अज्जो! अम्हं गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते। अम्हण्णं अज्जो! गम्ममाणे गए, वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपावि-उकामे संपत्ते। तुब्भण्णं अप्पणा चेव गम्ममाणे अगते, वीति-क्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते तए णं ते थेरा भगवंतो अण्णउत्थिए एवं पडिभणंति, पडिभणित्ता गइप्पवायं नाम अज्झयणं पण्णवइंसु॥

ततः ते स्थविराः भगवन्तः तान् अन्ययूथिकान् एवमवादिषुः–नो खलु आर्य! अस्माकं गम्यमानः अगतः, व्यतिक्रम्यमाणः अव्यतिक्रान्तः, राजगृहं नगरं सम्प्राप्तुकामः असम्प्राप्तः। अस्माकम् आर्य! गम्यमानः गतः, व्यतिक्रम्यमाणः व्यतिक्रान्तः, राजगृहं नगरं सम्प्राप्तुकामः सम्प्राप्तः। युष्माकम् आत्मना चैव गम्यमानः अगतः, व्यति-क्रम्यमाणः अव्यतिक्रान्तः, राजगृहं नगरं सम्प्राप्तुकामः असम्प्राप्तः। ततः ते स्थविराः भगवन्तः अन्ययूथिकान् एवं प्रतिभणन्ति, प्रतिभण्य गतिप्रवादं नाम अध्ययनम् ज्ञापयन्।

२९२. भगवान स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा–आर्यो! हमारे मत के अनुसार गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त नहीं होता। आर्यो! हमारे मत के अनुसार गम्यमान गत, व्यतिक्रम्यमान व्यति-क्रान्त, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला संप्राप्त होता है। तुम्हारे अपने मत के अनुसार गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त होता है। भगवान स्थविरों ने अन्ययूथिकों को इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया, प्रत्युत्तर देकर 'गतिप्रवाद' नाम के अध्ययन का प्रज्ञापन किया।

२९३. कतिविहे णं भंते! गइप्पवाए पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते, तं जहा–पयोगगई, ततगई, बंधण-छेयणगई, उववायगई, विहायगई। एत्तो आरब्भ पयोगपयं निरवसेसं भाणियव्वं जाव सेत्तं विहायगई।

कतिविधः भदन्त! गतिप्रवादः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पंचविधः गतिप्रवादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रयोगगतिः, ततगतिः, बंधन-च्छेदनगतिः, उपपातगतिः, विहायोगतिः। इतः आरभ्य प्रयोगपदं निरवशेषं भणितव्यं यावत् सा तत् विहायोगतिः।

२९३. भंते! गतिप्रवाद कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! गतिप्रवाद पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–प्रयोगगति, ततगति, बंधच्छेदन-गति, उपपातगति, विहायगति, इस गति सूत्र से प्रारंभ कर विहायगति के व्याख्या सूत्र तक प्रज्ञापना (सोलह) का प्रयोग पद निरवशेष रूप में वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र २८५-२९३

अन्ययूथिकों ने गति के आधार पर हिंसा का आक्षेप प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा–तुम चलते समय पृथ्वी का उपघात करते हो इसलिए तुम हिंसा से बच नहीं सकते। स्थविरों ने इसके प्रतिवाद में कहा–हम पृथ्वी के एक देश–जीव रहित भूखंड पर चलते हैं। हम पृथ्वी के एक प्रदेश–जीव रहित भूखंड पर चलते हैं इसलिए हम हिंसा से बच जाते हैं।[1]

तुम सजीव देश अथवा निर्जीव देश का विवेक नहीं करते इसलिए तुम्हीं पृथ्वी का उपघात करते हो। इस प्रसंग में गम्यमान गत के सिद्धांत का प्रतिपादन कर स्थविरों ने 'गतिप्रवाद' नामक अध्ययन का प्रज्ञापन किया।

गति-प्रवाद के पांच प्रकार हैं–

१. प्रयोग गति–मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति।

२. तत गति–एक गांव के लिए प्रस्थान किया, वहां पहुंचा नहीं, अंतराल पथ में वर्तमान व्यक्ति की गति।

३. बंध छेदन गति–जीव का शरीर से मुक्त होना अथवा शरीर का जीव से मुक्त होना।

४. उपपात गति–एक भव से मरकर दूसरे भव अथवा क्षेत्र में उपपात के लिए होने वाली गति।

५. विहाय गति–इसके स्पृशद्गति आदि सत्रह प्रकार हैं।[2]

विस्तार के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना पद १६/१७-५५।

भगवई शतक ७/१० का भाष्य।

शब्द विमर्श

पेच्चेह–आक्रमण कर रहे हो।

अभिहणह–पैरों से आहत कर रहे हो।

वत्तेह–पैरों से चूर्ण कर रहे हो।

---

१. भ. वृ. ८-२८८–इमं देसेणं वयामो त्ति प्रभूतायाः पृथिव्या ये विवक्षिताः देशास्तैर्व्रजामो नाविशेषेण ईर्यासमितिपरायणत्वेन सचेतनदेशपरिहार-तोऽचेतनदेशैर्व्रजामः इत्यर्थः एवं पएसं पएसेणं वयामो इत्यपि नवरं देशो भूमेर्महान्खण्डं प्रदेशस्तु लघुतरमिति।

२. वही, ८/२९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेग्गेह–भूमि पर श्लिष्ट कर रहे हो।
संघाएह–संघात कर रहे हो।
संघट्टेह–स्पर्श कर रहे हो।
किलामेह–क्लांत–मरणासन्न कर रहे हो।
उवद्दवेह–वध कर रहे हो।
देश–बृहत्-भूखण्ड।
प्रदेश–लघु-भूखंड।

२९४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥ तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति। २९४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पडिणीय-पदं	**प्रत्यनीक-पदम्**	**प्रत्यनीक-पद**
२९५. रायगिहे जाव एवं वयासी–गुरू णं भंते! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता?	राजगृहे यावत् एवमवादिषुः–गुरून् भदन्त! प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः?	२९५. राजगृह में समवसरण यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा–भंते! गुरु की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–आयरियपडिणीए, उवज्झाय-पडिणीए, थेरपडिणीए॥	गौतम! त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–आचार्यप्रत्यनीकः, उपाध्यायप्रत्यनीकः, स्थविरप्रत्यनीकः।	गौतम! गुरु की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, स्थविर का प्रत्यनीक।
२९६. गति णं भंते! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता? गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–इहलोगपडिणीए, परलोग-पडिणीए, दुहओलोगपडिणीए॥	गतिं भदन्त! प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–इहलोकप्रत्यनीकः, परलोकप्रत्यनीकः, द्वयलोकप्रत्यनीकः।	२९६. भंते! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं? गौतम! गति की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–इहलोक प्रत्यनीक, परलोक प्रत्यनीक, उभयलोक प्रत्यनीक।
२९७. समूहण्णं भंते! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता? गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–कुलपडिणीए, गणपडि-णीए, संघपडिणीए॥	समूहं भदन्त! प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–कुलप्रत्यनीकः, गणप्रत्यनीकः, संघ-प्रत्यनीकः।	२९७. भंते! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं? गौतम! समूह की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कुल प्रत्यनीक, गण प्रत्यनीक, संघ प्रत्यनीक।
२९८. अणुकंपं पडुच्च कति पडि-णीया पण्णत्ता? गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–तवस्सिपडिणीए, गिलाण-पडिणीए, सेहपडिणीए॥	अनुकम्पां प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! त्रय प्रत्यनीकाः, प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–तपस्वीप्रत्यनीकः, ग्लानप्रत्यनीकः, शैक्ष-प्रत्यनीकः।	२९८. भंते! अनुकंपा की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं? गौतम! अनुकंपा की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–तपस्वी प्रत्यनीक, ग्लान प्रत्यनीक, शैक्ष प्रत्यनीक।
२९९. सुयण्णं भंते! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता? गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–सुत्तपडिणीए, अत्थपडि-णीए, तदुभयपडिणीए॥	श्रुतं भदन्त! प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–सूत्रप्रत्यनीकः, अर्थप्रत्यनीकः, तदुभय प्रत्यनीकः।	२९९. भंते! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं? गौतम! श्रुत की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–सूत्र प्रत्यनीक, अर्थ प्रत्यनीक, तदुभय प्रत्यनीक।
३००. भावण्णं भंते! पडुच्च कति पडि-णीया पण्णत्ता?	भावं भदन्त! प्रतीत्य कति प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः?	३००. भंते! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—नाणपडिणीए, दंसणपडि-णीए, चरित्तपडिणीए॥

गौतम! त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—ज्ञानप्रत्यनीकः, दर्शनप्रत्यनीकः, चरित्रप्रत्यनीकः।

गौतम! भाव की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञान प्रत्यनीक, दर्शन प्रत्यनीक, चारित्र प्रत्यनीक।

भाष्य

१. सूत्र २९५-३००

प्रत्यनीक का अर्थ है प्रतिकूल। प्रस्तुत आलापक में प्रत्यनीक व्यक्तियों के विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण किए गए हैं।

प्रथम वर्गीकरण गुरु की अपेक्षा से है। आचार्य, उपाध्याय और स्थविर—ये तीन गुरु वर्ग के हैं। आचार्य अर्थ के व्याख्याता हैं। उपाध्याय सूत्रदाता हैं। स्थविर के तीन प्रकार हैं[1]—

१. जाति स्थविर—साठ वर्ष की अवस्था वाला।

२. श्रुत स्थविर—समवाय आदि अंगों को धारण करने वाला।

३. पर्याय स्थविर—बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला।

गुरु के प्रति किए जाने वाले प्रत्यनीक व्यवहार का निरूपण बृहत्कल्प भाष्य में मिलता है[2]—

१. गुरु की जाति-मातृपक्ष विशुद्ध नहीं है।

२. गुरु का कुल—पितृपक्ष विशुद्ध नहीं है।

३. व्यवहारकुशल नहीं है।

४. सेवा नहीं करता।

५. अहित करता है।

६. छिद्र देखता रहता है।

७. सबके सामने दोष बतलाता है।

८. प्रतिकूल व्यवहार करता है।

जो व्यक्ति अवर्णवाद आदि के रूप में गुरु के प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह गुरु की अपेक्षा प्रत्यनीक है।

दूसरा वर्गीकरण जीवन-पर्याय की अपेक्षा से है। जो इन्द्रियों को अज्ञानपूर्ण तप से पीड़ित करता है, वह इहलोक—मनुष्यत्व लक्षण पर्याय का प्रत्यनीक होता है। जो केवल इन्द्रिय-विषयों के भोग में तत्पर रहता है, वह परलोक—जन्मान्तर का प्रत्यनीक होता है।

जो चोरी आदि गलत उपायों का सहारा लेता है और इन्द्रिय विषयों के भोग में तत्पर रहता है, वह इहलोक और परलोक दोनों का प्रत्यनीक होता है।[3] उक्त निरूपण से स्पष्ट होता है कि जैन धर्म इंन्द्रिय-संताप और इन्द्रिय आसक्ति दोनों के पक्ष में नहीं है।

तीसरा वर्गीकरण समूह की अपेक्षा से है। कुल से गण और गण से संघ बृहत् होता है। एक आचार्य का शिष्य-समूह कुल, तीन कुलों का समूह गण और सब गणों का समूह संघ कहलाता है।[4] लौकिक पक्ष में भी कुल, गण और संघ की व्यवस्था घटित होती है। इनकी निंदा करना, इन्हें विघटित करने का प्रयत्न करना समूह के प्रतिकूल व्यवहार है।

चौथा वर्गीकरण अनुकंपनीय व्यक्तियों की अपेक्षा से है। तपस्वी, ग्लान—रोग, वार्धक्य आदि से असमर्थ और शैक्ष—नव दीक्षित—ये तीन अनुकंपनीय होते हैं। इनकी सेवा न करना और न करवाना प्रत्यनीक व्यवहार है।

पांचवां वर्गीकरण शास्त्र—ग्रंथों की अपेक्षा से है। संक्षिप्त और व्याख्येय ग्रंथ का नाम है—सूत्र। विस्तृत और व्याख्या ग्रंथ का नाम है—अर्थ। पाठ और अर्थ मिश्रित रचना का नाम है—तदुभय ग्रंथ। सूत्र पाठ का यथार्थ उच्चारण न करने वाला सूत्र के प्रतिकूल व्यवहार करता है। सूत्र की तोड़-मरोड़ कर व्याख्या करने वाला अर्थ के प्रतिकूल व्यवहार करता है। सूत्र और अर्थ दोनों के प्रति होने वाला प्रतिकूल व्यवहार तदुभय प्रत्यनीकता है।

अभयदेव सूरि ने सूत्र की प्रत्यनीकता को समझाने के लिए बृहत्कल्प भाष्य की एक गाथा उद्धृत की है।[5] उसका तात्पर्य है—कुछ दुर्विदग्ध व्यक्ति कहते हैं—बार-बार षट्काय का निरूपण, बार-बार व्रतों तथा प्रमाद और अप्रमाद का निरूपण शास्त्र की मूल्यवत्ता को कम करता है। उसका प्रतिपाद्य मोक्षाधिकार है फिर ज्योतिषशास्त्र और योनिप्राभृत जैसे ग्रंथों की क्या अपेक्षा है? इस प्रकार का चिन्तन श्रुत की प्रत्यनीकता है।

छठा वर्गीकरण भाव की अपेक्षा से है। ज्ञान को दुःख का मूल और अज्ञान को सुख का मूल मानना ज्ञान की प्रत्यनीकता है। दर्शन और चारित्र की व्यर्थता का प्रतिपादन करना क्रमशः दर्शन और चारित्र के प्रति दोषपूर्ण व्यवहार है।[6]

व्यवहार विज्ञान की दृष्टि से यह आलापक अतिशय उपयोगी है। इसका तात्पर्यार्थ है—विधायक भाव से जो विकास हो सकता है, वह निषेधात्मक भाव से कभी नहीं हो सकता। कर्तव्य की अनुपालना

---

१. (क) भ. वृ. ८/२९५।
(ख) ठाणं १०/१३६।

२. (क) बृ. क. भा. गा. १३०५—
जच्चाईहिं अवण्णं भासइ वहइ न यापि उववाए।
अहिनो छिद्दप्पेही, पगासवादी अणणुकूलो॥
(ख) भ. वृ. ८/२९५-२९६।

३. वही, ८/२९६—गतिं मानुष्यत्वादिकां प्रतीत्य तन्नेहलोकस्य प्रत्यक्षस्य मानुषत्वलक्षणपर्यायस्य प्रत्यनीकः, इन्द्रियार्थप्रतिकूलकारित्वात् पञ्चाग्नितपश्चिवद् इहलोक-प्रत्यनीकः परलोकं-जन्मान्तरं प्रत्यनीकः इन्द्रियार्थतन्त्रः, द्विधालोकप्रत्यनीकश्च चौर्यादिभिरिन्द्रियार्थसाधनपरः।

४. वही, ८/२९६।

५. बृ. क. भा. गा. १३०३—
काया वया य तेच्चिय, ते चेव पमाय अप्पमाया य।
मोक्खाहिगारिगाणं, जोइसजोणीहिं किं च पुणो॥
इह केचिद् दुर्विदग्धाः प्रवचनशाननापात्तकमगणयन्त इत्थं श्रुतस्यावर्णं ब्रुवते, यथा—षड्जीवनिकाययामपि षट्कायाः प्ररूप्यन्ते, शास्त्रपरिज्ञायामपि त एव, अन्येष्वप्यध्ययनेषु बहुशस्त एवोपवर्ण्यन्ते, एवं व्रतान्यपि पुनः पुनस्तान्येव प्रतिपाद्यन्ते; तथा त एव प्रमादाऽप्रमादाः पुनः पुनर्वर्ण्यन्ते, यथा—उत्तराध्ययनेषु आचाराङ्गे वा, एवं च पुनरुक्तदोषः किञ्च यदि केवलमस्यैव मोक्षस्य साधनार्थमयं प्रयासस्तर्हि मोक्षाधिकारिणां साधूनां सूर्यप्रज्ञप्त्यादिना ज्योतिषशास्त्रेण योनिप्राभृतेन वा किं पुनः कार्यम्? न किञ्चिदित्यर्थः।

६. भ. वृ. ८/३००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से जो विकास हो सकता है, वह कर्तव्य-विमुखता से कभी नहीं हो सकता। आदरणीय के प्रति आदर भाव से जो विकास हो सकता है, वह अनादर भाव से कभी नहीं हो सकता। प्रस्तुत आलापक में मूल्यांकन का जो दृष्टिकोण दिया है, वह जीवन की सफलता की महार्घ्य कुंजी है। द्रष्टव्य ठाणं ३/४८८-९३ का टिप्पण।

पंचववहार-पदं

३०१. कतिविहे णं भंते! ववहारे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा—आगमे, सुतं, आणा, धारणा, जीए।

जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, तं जहा—आगमेणं, सुएणं आणाए धारणाए, जीएणं।

जहा-जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा-तहा ववहारं पट्ठवेज्जा।

से किमाहु भंते! आगमबलिया समणा निग्गंथा?

इच्चेतं पंचविहं ववहारं जदा-जदा जहिं-जहिं तदा-तदा तहिं-तहिं अणिस्सिओवस्सितं सम्मं ववहरमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ॥

पंचववहार-पदम्

कतिविधः भदन्त! व्यवहारः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पञ्चविधः व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमः, श्रुतम्, आज्ञा, धारणा, जीतः।

यथा सः तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

नो च सः तत्र आगमः स्यात्, यथा सः तत्र श्रुतः स्यात्, श्रुतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

नो च सः तत्र श्रुतः स्यात् यथा सः तत्र आज्ञा स्यात् आज्ञया व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

नो च सः तत्र आज्ञा स्यात्, यथा सः तत्र धारणा स्यात्, धारणया व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

नो च सः तत्र धारणा स्यात् यथा सः तत्र जीतः स्यात्, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

इत्येतैः पञ्चभिः व्यवहारं प्रस्थापयेत् तद्यथा—आगमेन, श्रुतेन, आज्ञया, धारणया, जीतेन।

यथा-यथा सः आगमः श्रुतः आज्ञा धारणा जीतः तथा-तथा व्यवहारं प्रस्थापयेत्।

अथ किमाहु भदन्त! आगमबलिकाः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः?

इत्येतं पञ्चविधं व्यवहारं यदा-यदा यत्र-यत्र तदा-तदा तत्र-तत्र अनिश्रितोपश्रितं सम्यक् व्यवहारमाणः श्रमणः निर्ग्रन्थः आज्ञायाः आराधकः भवति।

पांच व्यवहार पद

३०१. भंते! व्यवहार कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! व्यवहार पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत।

जहां आगम हो वहां आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

जहां आगम न हो, श्रुत हो वहां श्रुत, व्यवहार की प्रस्थापना करें।

जहां श्रुत न हो, आज्ञा हो वहां आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

जहां आज्ञा न हो, धारणा हो, वहां धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

जहां धारणा न हो, जीत हो, वहां जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

इन पांचों से व्यवहार की प्रस्थापना करे—आगम से, श्रुत से, आज्ञा से, धारणा से और जीत से।

जिस समय आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत में से जो प्रधान हो, उसी से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

भंते! आगमबलिक श्रमण निर्ग्रंथों ने इस विषय में क्या कहा है?

इन पांचों व्यवहारों में जब-जब जिस-जिस विषय में जो व्यवहार हो, तब-तब वहां-वहां अनिश्रितोपश्रित मध्यस्थभाव से सम्यग् व्यवहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रंथ आज्ञा का आराधक होता है।

भाष्य

१. सूत्र ३०१

पंचविध व्यवहार का पाठ व्यवहार सूत्र, स्थानांग और भगवती—इन तीनों आगमों में मिलता है। व्यवहार छेद सूत्र है, इसलिए प्रस्तुत पाठ मूलतः उसी से संबद्ध है। स्थानांग में वह संकलित और भगवती में संकलन काल में निक्षिप्त हुआ प्रतीत होता है।

पांच व्यवहार

भगवान महावीर तथा उत्तरवर्ती आचार्यों ने संघ-व्यवस्था की दृष्टि से एक आचार-संहिता का निर्माण किया। उसमें मुनि के कर्तव्य और अकर्तव्य या प्रवृत्ति और निवृत्ति के निर्देश हैं। उसकी आगमिक संज्ञा 'व्यवहार' है। जिनसे यह व्यवहार संचालित होता है, वे व्यक्ति भी कार्य-कारण की अभेद दृष्टि से 'व्यवहार' कहलाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में व्यवहार संचालन में अधिकृत व्यक्तियों की ज्ञानात्मक क्षमता के आधार पर प्राथमिकता बतलाई गई है।

व्यवहार संचालन में पहला स्थान आगमपुरुष का है। उसकी अनुपस्थिति में व्यवहार का प्रवर्तन श्रुतपुरुष करता है। उसकी अनुपस्थिति में आज्ञापुरुष, उसकी अनुपस्थिति में धारणापुरुष और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी अनुपस्थिति में जीतपुरुष व्यवहार का प्रवर्तन करता है।

१. आगम व्यवहार—इसके दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।[1] प्रत्यक्ष के तीन प्रकार हैं[2]—

१. अवधि प्रत्यक्ष, २. मनःपर्यव प्रत्यक्ष, ३. केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

परोक्ष के तीन प्रकार हैं[3]—

१. चतुर्दशपूर्वधर, २. दशपूर्वधर, ३. नवपूर्वधर।

शिष्य ने यहां यह प्रश्न उपस्थित किया कि परोक्षज्ञानी साक्षात् रूप से श्रुत से व्यवहार करते हैं तो भला वे आगम-व्यवहारी कैसे कहे जा सकते हैं?[4]

आचार्य ने कहा—जैसे केवलज्ञानी अपने अप्रतिहत ज्ञानबल से पदार्थों को सर्वरूपेण जानता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी श्रुतबल से जान लेता है।[5] जिस प्रकार प्रत्यक्षज्ञानी भी समान अपराध में न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी आलोचक के राग-द्वेषात्मक अध्यवसायों को जानकर उनके अनुरूप न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है।[6]

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया—प्रत्यक्षज्ञानी आलोचना करने वाले व्यक्ति के भावों को साक्षात् जान लेते हैं किन्तु परोक्षज्ञानी ऐसा नहीं कर सकते अतः न्यूनाधिक प्रायश्चित्त देने का उनका आधार क्या है?

आचार्य ने कहा—'वत्स! नालिका से गिरने वाले पानी के द्वारा समय जाना जाता है। वहां का अधिकारी व्यक्ति समय को जानकर, दूसरों को उसकी अवगति देने के लिए, समय-समय पर शंख बजाता है। शंख के शब्द को सुनकर दूसरे लोग समय का ज्ञान कर लेते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी आलोचना तथा शुद्धि करने वाले व्यक्ति की भावनाओं को सुनकर यथार्थ स्थिति का ज्ञान कर लेते हैं। फिर उसके अनुसार उसे प्रायश्चित्त देते हैं।[7]

यदि वे यह जान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति ने सम्यक् रूप से आलोचना नहीं की है, तो वे उसे अन्यत्र जाकर शोधि करने की बात कहते हैं।

आगमव्यवहारी के लक्षण—

आचार्य के आठ प्रकार की संपदा होती है—आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति और संग्रहपरिज्ञा। इनके प्रत्येक के चार-चार प्रकार हैं।

इस प्रकार इसके ३२ प्रकार होते हैं। (देखें भगवई ८/१५ का टिप्पण)

चार विनय प्रतिपत्तियां हैं।[8]

१. आचारविनय—आचार विषयक विनय सिखाना।

२. श्रुतविनय—सूत्र और अर्थ की वाचना देना।

३. विक्षेपणाविनय—जो धर्म से दूर हैं, उन्हें धर्म में स्थापित करना, जो स्थित हैं उन्हें प्रव्रजित करना, जो च्युतधर्मा हैं, उन्हें पुनः धर्मनिष्ठ बनाना और उनके लिए हित संपादन करना।

४. दोषनिर्घातविनय—क्रोध-विनयन, दोष-विनयन तथा कांक्षा-विनयन के लिए प्रयत्न करना।[9]

जो इन ३६ गुणों में कुशल, आचार आदि आलोचनार्ह आठ गुणों से युक्त, अठारह वर्जनीय स्थानों का ज्ञाता, दस प्रकार के प्रायश्चित्तों को जानने वाला, आलोचना के दस दोषों का विज्ञाता, व्रतषट्क और कायषट्क को जानने वाला तथा जो जातिसम्पन्न आदि दस गुणों से युक्त है—वह आगमव्यवहारी होता है।[10]

शिष्य ने पूछा—भंते! वर्तमान काल में इस भरतक्षेत्र में आगमव्यवहारी का विच्छेद हो चुका है। अतः यथार्थ शुद्धिदायक न रहने के कारण तथा दोषों की यथार्थशुद्धि न होने के कारण वर्तमान में चारित्र की विशुद्धि नहीं है। न कोई आज मासिक या पाक्षिक प्रायश्चित्त ही देता है और न कोई उसे ग्रहण करता है, इसलिए वर्तमान में तीर्थ केवल ज्ञान-दर्शनमय है, चारित्रमय नहीं। केवली का व्यवच्छेद होने के बाद थोड़े समय में ही चौदह पूर्वधरों का भी व्यवच्छेद हो जाता है। अतः विशुद्धि कराने वालों के अभाव में चारित्र की विशुद्धि भी नहीं रहती। दूसरी बात है कि केवली, जिन आदि अपराध के अनुसार प्रायश्चित्त देते थे, न्यून या अधिक नहीं। उनके अभाव में छेदसूत्रधर मनचाहा प्रायश्चित्त देते हैं, कभी थोड़ा और कभी अधिक।

अतः वर्तमान में प्रायश्चित्त देने वाले के व्यवच्छेद के साथ-साथ प्रायश्चित्त का भी लोप हो गया है।[11]

---

१. व्य. भा. उ. १० गा. २०१-
आगमतो ववहारो मुणह जहा धीरपुरिसपन्नत्तो।
पच्चक्खो य परोक्खो सो वि य दुविहो मुणेयव्वो॥

२. वही, २०३—
ओहिमणपज्जवे य केवलनाणे य पच्चक्खे।

३. वही, गा. २०६—
परोक्खं ववहारं आगमतो गुरुधरा ववहरंति।
चोद्दसदसपुव्वधरा नवपुव्वियगंधहत्थी य॥

४. वही, २१० वृत्ति—कथं केन प्रकारेण साक्षात् श्रुतेन व्यवहरन्तः आगम-व्यवहारिणः?

५. वही, गा. २११-
जह केवली वि जाणइ दव्वं च खेत्तं च कालभावं च।
तह चउनक्खणमेवं सुयनाणी मेव जाणाति॥

६. वही, गा. २१३ वृत्ति

७. वही, गा. २१६ वृत्ति—जिनास्तीर्थकृतः परोक्षे आगमे उपसंहारं नालीधमकेन कुर्वन्ति, इयमत्र भावनाः नाडिकायां गलन्त्यामुदकगलनपरिमाणतो जानाति एतावत्पृथक्त्वे गलिते यामो दिवसस्य सार्धवा गत इति ततोऽन्यस्य परिज्ञानाय शंखं धमति। तत्र यथा सोऽन्यो जनः शंखस्य शब्देन श्रुतेन कालं वा यामलक्षणं जानाति यथापरोक्षागमगामिनोऽपि शोधिमालोचनां श्रुत्वा तस्य यथावस्थितं भावं जानाति। ज्ञात्वा च तदनुसारेण प्रायश्चित्तं ददाति।

८. वही, गा. ३०३-
आयारे सुय विणए विक्खेवणा चेव होई बोधव्वे।
दोसस्स निग्घाए विणए चउहेव पडिवत्ती॥

९. वही, गा. ३०५-३२०।

१०. वही, गा. ३२८-३३४।

११. वही, गा. ३३५-३३८—
एवं भणिते भणती ते वोच्छिन्ना उवरसंपय इहइं।
तेसु य वोच्छिन्नेसु नत्थि विसुद्धी चरित्तस्स॥
देतावि न दीसंती न वि करेन्ता उवसंपया केइ।
तित्थं च नाणदंसणनिज्जवगा चेव वोच्छिन्ना॥
चोद्दसपुव्वधराणं वोच्छेदो केवलीण वुच्छेए।
केसिं वी आदेसो पायच्छित्तं पि वोच्छिन्नं॥
जं जिणगण सुज्झइ पावे तस्स तहा देंति पच्छित्तं।
जिण, चोद्दसपुव्वधरा तव्विवरीयं जहिच्छाए॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य ने कहा—वत्स! तू यह नहीं जानता कि प्रायश्चित्तों का मूल विधान कहां हुआ है? वर्तमान में प्रायश्चित्त है या नहीं?[1]

प्रत्याख्यान प्रवाद नामक नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु में समस्त प्रायश्चित्तों का विधान है। उस आकरग्रंथ से प्रायश्चित्तों का निर्यूहण कर निशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार—इन तीनों सूत्रों में उनका समावेश किया गया है।[2] आज भी विविध प्रकार के प्रायश्चित्तों को वहन करने वाले हैं। वे अपने प्रायश्चित्तों को विशेष उपायों से वहन करते हैं, अतः उनका वहन करना हमें दृग्गोचर नहीं होता। आज भी तीर्थ चारित्र सहित है तथा उसके निर्यापक भी हैं।[3]

(विस्तृत वर्णन के लिए देखें—व्यवहार, उद्देशक १० भाष्य ३५१-६०२)।

२. श्रुत व्यवहार—जो बृहत्कल्प और व्यवहार को बहुत पढ़ चुका है और उनको सूत्र तथा अर्थ की दृष्टि से निपुणता से जानता है, वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[4]

यहां श्रुत के भाष्यकार ने केवल इन दो सूत्रों का निर्देश किया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कुल, गण, संघ आदि में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का व्यवहार उपस्थित होने पर द्वादशांगी से कल्प और व्यवहार—इन दो सूत्रों का निर्यूहण किया था। जो इन दोनों सूत्रों का अवगाहन कर चुका है और इनके निर्देशानुसार प्रायश्चित्तों का विधान करता है वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[5]

३. आज्ञा व्यवहार—कोई आचार्य भक्तप्रत्याख्यान अनशन में व्यापृत हैं। वे जीवन गत दोषों की शुद्धि के लिए अंतिम आलोचना के आकांक्षी हैं। वे सोचते हैं—आलोचना देने वाले आचार्य दूरस्थ हैं। मैं अशक्त हो गया हूं, अतः उनके पास जा नहीं सकता तथा वे आचार्य भी यहां आने में असमर्थ हैं, अतः मुझे आज्ञा व्यवहार का प्रयोग करना चाहिए। 'वे शिष्य को बुलाकर उन आचार्य के पास भेजते हैं और कहलाते हैं—आर्य! मैं आपके पास शोधि करना चाहता हूं।' शिष्य वहां जाता है और आचार्य को यथोक्त बात कहता है। आचार्य भी वहां जाने में अपनी असमर्थता को लक्षित कर अपने मेधावी शिष्य को वहां भेजने की बात सोचते हैं। तब वे अपने गण में जो शिष्य आज्ञा-परिणामकर, अवग्रहण और धारणा में क्षम, सूत्र और अर्थ में मूढ़ न होने वाला होता है, उसे वहां भेजते हुए कहते हैं—'वत्स! तुम वहां आलोचना आकांक्षी आचार्य के पास जाओ और उनकी आलोचना को सुनकर यहां लौट आओ।'[6]

आचार्य द्वारा प्रेषित मुनि के पास आलोचनाकांक्षी आचार्य सरल हृदय से सारी आलोचना करते हैं।[7] आगन्तुक मुनि आलोचक आचार्य की प्रतिसेवना और आलोचना की क्रमपरिपाटी का सम्यक् अवग्रहण और धारण कर लेता है। वे कितने आगमों के ज्ञाता हैं? उनकी प्रव्रज्या-पर्याय तपस्या से भावित है या अभावित? उनकी गृहस्थ तथा व्रत-पर्याय कितनी है? शारीरिक बल की स्थिति क्या है? वह क्षेत्र कैसा है? ये सारी बातें श्रमण उन आचार्य को पूछता है। उनके कथनानुसार तथा स्वयं के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका अवधारण कर वह अपने प्रदेश में लौट आता है।[8] वह अपने आचार्य के पास जाकर उसी क्रम से निवेदन करता है जिस क्रम से उसने सभी तथ्यों का अवधारण किया था।[9]

---

१. व्य. भा. उ. १० गा. ३४४—
एवं तु चोइयम्मी आयरितो भणइ न हु तुमे नायं।
पच्छित्तं कहियंतू किं धरती किं व वोच्छिन्नं॥

२. वही, ३४५—
सव्वं पि य पच्छित्तं पच्चक्खाणस्स ततिय वत्थूनि।
तत्तो वि य निच्छूढा पकप्पकप्पो य ववहारो॥

३. वही, ३४६, वृत्ति।

४. वही, ६०५, ६०७—
जो सुयमहिज्जइ बहुं सुतत्थं च निउणं विजाणाति।
कप्पे ववहारम्मि य सो उ पमाणं सुयहराणं॥
कप्पस्स य निज्जुत्तिं ववहारस्स व परमनिउणस्स।
जो अत्थतो विगाणइ ववहारी सो अणुण्णतो॥

५. वही, ६०८, वृत्ति—कुलादिकार्येषु व्यवहारे उपस्थिते यद्भगवता भद्रबाहुस्वामिना कल्पव्यवहारात्मकं सूत्रं निर्यूढं तदेवानुमज्जननिपुणतरार्थं परिभावनेन तन्मध्ये प्रविशन् व्यवहारविधिं यथोक्तं सूत्रमुच्चार्य तस्यार्थं निर्दिशन् यः प्रयुक्ते स श्रुतव्यवहारी धीरपुरुषैः प्रज्ञप्तः।

६. वही, ६१०-६१५, ६२७।
समणस्स उनमद्दे सल्लुद्धरणकरणे अभिमुहस्स।
दूरत्था जत्थ भवे छत्तीसगुणा उ आयरिया॥
अपरक्कमो सि जाओ गंतुं जे कारणं च उप्पन्नं।
अठारसमन्नयरं वसवगतो इच्छिमो आणं॥
अपरक्कमो नवस्सी गंतुं जो सोहिकारगसमीवं।
आगंतुं न वाएई सो सोहिकारोवि देसाउ॥
अह पट्ठवेइ सीसं देसंतरगमणनट्ठचेट्ठागो।
इच्छामज्जो काउं सोहिं तुब्भं सगासम्मि॥
सोवि अपरक्कमगती सीसं पेसेइ धारणाकुसलं।
एयस्स दाणि पुरओ करेइ सोहिं जहाक्खं॥
अपरक्कमो य सीसं आणापरिणामगं परिच्छेज्जा।
रुक्खे य बीयकाए सुने वा मोहणाधारिं॥
एवं परिच्छिऊणं नाऊण पेसवे तं तु।
वच्चाहि तस्सगासं सोहिं सोऊण आगच्छ॥

७. वही, गा. ६२८—
अह सो गतो उ तहियं सगासम्मि सो करे सोहिं।
दुगतिगचउविसुद्धं विविहं कालो विगडभावो॥

८. वही, गा. ६५९, वृत्ति—श्रुत्वा तस्यालोचनकस्य प्रतिसेवनामालोचनाक्रमविधिं च आलोचनाक्रमपरिपाटीं चावधार्य तथा तस्य यावनागमोस्ति तावन्तमागमं तथा पुरुषजातं तमष्टमादिभिर्भावितमभावितं वा पर्यायं गृहस्थपर्यायो यावनासीत् यावांश्च तस्य व्रतपर्यायः तावन्तमुभयं वा पर्यायं बलं शारीरिकं तस्य तथा यादृशं तत् क्षेत्रमेतत्सर्वमालोचकाचार्यकथनतः स्वतो दर्शनतश्चावधार्य स्वदेशं गच्छति।

९. वही, ६६०—
आहारेउ सत्तं सो गंतूणं पुणो गुरुसगासं।
तेसिं निवेदेइ तहा जहाणुपुव्विं गतं सव्वं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य अपने शिष्य के कथन को अवधानपूर्वक सुनते हैं और छेदसूत्रों (कल्प और व्यवहार) में निमग्न हो जाते हैं। वे पौर्वापर्य का अनुसंधान कर, सूत्रगत नियमों के तात्पर्य की सम्यक् अवगति करते हैं। उसी शिष्य को बुलाकर कहते हैं—'जाओ, उन आचार्य को यह प्रायश्चित्त निवेदित कर आओ।'[1] वह शिष्य वहां जाता है और अपने आचार्य द्वारा कथित प्रायश्चित्त उन्हें सुना देता है। यह आज्ञा व्यवहार है।[2]

वृत्तिकार के अनुसार आज्ञा व्यवहार का अर्थ इस प्रकार है—दो गीतार्थ आचार्य भिन्न-भिन्न देशों में हों, वे कारणवश मिलने में असमर्थ हों, ऐसी स्थिति में कहीं प्रायश्चित्त आदि के विषय में एक दूसरे का परामर्श अपेक्षित हो, तो वे अपने शिष्यों को गूढ़पदों में प्रष्टव्य विषय को निर्गूहित कर उनके पास भेज देते हैं। वे गीतार्थ आचार्य भी उसी शिष्य के साथ गूढ़पदों में ही उत्तर प्रेषित कर देते हैं। यह आज्ञा व्यवहार है।[3]

४. धारणा व्यवहार—किसी गीतार्थ आचार्य ने किसी समय किसी शिष्य के अपराध की शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसे याद रखकर, वैसी ही परिस्थिति में उसी प्रायश्चित्त-विधि का उपयोग करना धारणा व्यवहार कहलाता है। अथवा वैयावृत्य आदि विशेष प्रवृत्ति में संलग्न तथा अशेष छेदसूत्र के धारण करने में असमर्थ साधु को कुछ विशेष-विशेष पद उद्धृत कर धारणा करवाने को धारणा व्यवहार कहा जाता है।[4]

उद्धारणा, विधारणा, संधारणा और संप्रधारणा—ये धारणा के पर्यायवाची शब्द हैं।[5]

१. उद्धारणा—छेदसूत्रों से उद्धृत अर्थपदों को निपुणता से जानना।

२. विधारणा—विशिष्ट अर्थपदों को स्मृति में धारण करना।

३. संधारणा—धारण किए हुए अर्थपदों को आत्मसात् करना।

४. संप्रधारणा—पूर्व रूप से अर्थपदों को धारण कर प्रायश्चित्त का विधान करना।[6]

जो मुनि प्रवचनयशस्वी, अनुग्रहविशारद, तपस्वी, सुश्रुत, बहुश्रुत, विनय और औचित्य से युक्त वाणी वाला होता है, वह यदि प्रमादवश मूलगुणों या उत्तरगुणों में स्खलना कर देता है, तब पूर्वोक्त तीन व्यवहारों के अभाव में भी आचार्य छेदसूत्रों से अर्थपदों को धारण कर उसे यथायोग्य प्रायश्चित्त देते हैं। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से छेदसूत्र के अर्थ का सम्यक् पर्यालोचन कर धीर, दान्त और प्रलीन मुनियों द्वारा कथित तथ्यों के आधार पर प्रायश्चित्त का विधान करते हैं। यह धारणा व्यवहार कहलाता है।[7]

यह भी माना जाता है कि किसी ने किसी को आलोचनाशुद्धि करते हुए देखा। उसने यह अवधारण कर लिया कि इस प्रकार के अपराध के लिए यह शोधि होती है। परिस्थिति उत्पन्न होने पर वह उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देता है तो वह धारणा व्यवहार कहलाता है।[8]

कोई शिष्य आचार्य की वैयावृत्य में संलग्न है या गण में प्रधान शिष्य है या यात्रा के अवसर पर आचार्य के साथ रहता है, वह छेदसूत्रों के परिपूर्ण अर्थ को धारण करने में असमर्थ होता है। अब आचार्य उस पर अनुग्रह कर छेदसूत्रों के कई अर्थ पद उसे धारण करवाते हैं। वह छेदसूत्रों का अंशतः धारक होता है। वह भी धारणा व्यवहार का संचालन

---

१. व्य. भा. उ. १०, गा. ६६१—
सो ववहारविहण्णू अणुमज्जिता सुतोवएसेणं।
सीसस्स देइ आणं तस्स इमं देहि पच्छित्तं॥

२. वही १०, गा. ६७३—
एवं गंतूणं तहिं जहोवएसेण देहि पच्छित्तं।
आणाए एस भणितो ववहारो धीरपुरुसेहिं॥

३. स्था. वृ. प. ३०२—यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थ-निवेदनाऽतिचारालोचनमितरस्यापि तथैव शुद्धिदानं साज्ञा।

४. वही, प. ३०२—गीतार्थसंविग्नेन द्रव्यापेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धिः कृतस्तामवधार्य यदन्यस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते सा धारणा। वैयावृत्त्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणोऽशेषानुचितस्योचितप्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरणं धारणेति।

५. व्य. भा. उ. १० गा. ६७५—
उद्धारणा विधारणा संधारणा संपधारणा चेव।
नाऊण धीरपुरिसा धारणववहारं तं बिंति॥

६. वही, गा. ६७६-६७८—
पाबल्लेण उवेच्च व उद्धियपयधारणा उ उद्धारा।
विविहेहिं पगारेहिं धारेयव्वं वि धारेउ॥
सं एगी भावस्सी छियकरणा तेणि एक्कभावेण।
धारेयव्वपयाणि उ तम्हा संधारणा होइ॥
जम्हा संपहारेउं ववहारं पउंजति।
तम्हा कारणा तेण नायव्वा संपहारणा॥

७. वही १०, गा. ६८०-६८६—
पवयण जसंसि पुरिसे अणुग्गह विसारए तवस्सिंमि।
सुस्सुयबहुस्सुयंमि य विक्कंकपरियासद्धम्मि॥
एएसु धीरपुरिसग पुरिसजाएसु किंचि खलिएसु।
रहिएवि धारयंता जहारिहं देंति पच्छित्तं॥
रहिए नाम असन्ने आइल्लम्मि ववहारतियगंमि।
ताहेवि धारइत्ता बीमंसेऊण जं मणियं॥
पुरिसस्स अइयारं वियारइत्ताण जस्स जे जोग्गं।
तं देंति उ पच्छित्तं जेणं देंती उ तं सुणए॥
जो धारितो सुत्तत्थो अणुओगविहीए धीरपुरिसेहिं।
आलीणपलीणेहिं जयणाजुत्तेहिं दन्तेहिं॥
अल्लीणो णाणादिसु पदे-पदे लीआ उ होंति पलीणा।
कोहादी वा पलया जेसिं गया ते पलीणा उ॥
जयणाजुत्तो पयत्तवा दंतो जो उवरतो उ पावेहिं।
अहवा दंतो इंदियदमेण नोइंदिएणं च॥

८. वही, १०, गा. ६८७-६८९—
अहवा जेणण्णइया दिट्ठा सोही परस्स कीरंति।
तारिसयं चेव पुनो उप्पण्णं कारणं तस्स॥
सो तंमि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसो।
तारिसयं अकरेंतो न उ सो आराहनो होइ॥
सो तंपि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसे।
तारिसयं चिय भूया, कुव्वं आराहनो होई॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकता है।[1]

५. जीत व्यवहार—किसी समय किसी अपराध के लिए आचार्यों ने एक प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया। दूसरे समय में देश, काल, धृति, संहनन, बल आदि देखकर उसी अपराध के लिए जो दूसरे प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया जाता है, उसे जीत व्यवहार कहते हैं।

किसी आचार्य के गच्छ में किसी कारणवश कोई सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त प्रवर्तित हुआ और वह बहुतों द्वारा अनेक बार, अनुवर्तित हुआ। उस प्रायश्चित्त-विधि को 'जीत' कहा जाता है।[2] शिष्य ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि चौदहपूर्वी के उच्छेद के साथ-साथ आगम, श्रुत, आज्ञा और धारणा—ये चारों व्यवहार भी व्यवच्छिन्न हो जाते हैं। क्या यह सही है?[3]

आचार्य ने कहा—'नहीं, यह सही नहीं है। केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वी दशपूर्वी और नौपूर्वी—ये सब आगम-व्यवहारी होते हैं। कल्प और व्यवहार सूत्रधर, श्रुतव्यवहारी होते हैं, जो छेदसूत्र के अर्थधर होते हैं, वे आज्ञा और धारणा से व्यवहार करते हैं। आज भी छेदसूत्रों के सूत्र और अर्थ को धारण करने वाले हैं, अतः व्यवहारचतुष्क का व्यवच्छेद चौदहपूर्वी के साथ मानना युक्तिसंगत नहीं है।[4]

जीत व्यवहार दो प्रकार का होता है—सावद्य जीत व्यवहार और निरवद्य जीत व्यवहार। वस्तुतः निरवद्य से ही व्यवहरण हो सकता है, सावद्य से नहीं।[5] परन्तु कहीं-कहीं सावद्य जीत व्यवहार का आश्रय भी लिया जाता है। जैसे—कोई मुनि ऐसा अपराध कर डालता है कि जिससे समूचे श्रमण संघ की अवहेलना होती है और लोगों में तिरस्कार उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में शासन और लोगों में उस अपराध की विशुद्धि की अवगति कराने के लिए अपराधी मुनि को गधे पर चढ़ाकर सारे नगर में घुमाते हैं, पेट के बल रेंगते हुए नगर में जाने को कहते हैं, शरीर पर राख लगाकर लोगों के बीच जाने को प्रेरित करते हैं, कारागृह में प्रविष्ट करते हैं—ये सब सावद्य जीत व्यवहार के उदाहरण हैं।

दस प्रकार के प्रायश्चित्तों का व्यवहरण करना निरवद्य जीत व्यवहार है। अपवाद रूप में सावद्य जीत व्यवहार का भी आलम्बन लिया जाता है।[6]

जो श्रमण बार-बार दोष करता है, बहुदोषी है, सर्वथा निर्दय है तथा प्रवचन-निरपेक्ष है, ऐसे व्यक्ति के लिए सावद्य जीत व्यवहार उचित होता है।[7]

जो श्रमण वैराग्यवान्, प्रियधर्मा, अप्रमत्त और पापभीरु है उसके कहीं स्खलित हो जाने पर निरवद्य जीत व्यवहार उचित होता है।[8]

जो जीत व्यवहार पार्श्वस्थ, प्रमत्तसंयत मुनियों द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह अनेक व्यक्तियों द्वारा आचीर्ण क्यों न हो, वह शुद्धि करने वाला नहीं होता।[9]

जो जीत व्यवहार संवेगपरायण दांत मुनि द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह एक ही मुनि द्वारा आचीर्ण क्यों न हो, वह शुद्धि करने वाला होता है।[10]

व्यवहार साधु-संघ की व्यवस्था का आधार-बिन्दु रहा है। इसके माध्यम से संघ को निरंतर जागरूक और विशुद्ध रखने का प्रयत्न किया जा रहा है इसलिए चारित्र की आराधना में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

१. व्या. भा. उ. १० गा. ६९०,६९१—
वेयावच्चकरो वा सीसो वा देसहिंडगो वावि।
धुम्मेहना न तरइ आरोहेउ बहुं जो उ॥
तस्स उ उब्भरिऊणं अत्थपयाइं देंति आयरिओ।
जेहिं उ करेइ कज्जं भाहारेन्तो उ सो देसं॥

२. वही, ३०२—द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिषेवानानुवृत्त्या संहननधृत्यादिपरिहाणिमपेक्ष्य यत्प्रायश्चित्तदानं यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्तकारणतः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्तितस्तज्जीतमिति।

३. वही, १०, गा. ६९६—
ववहारे चउक्कंमि य चोद्दसपुव्वंमि वोच्छिन्ने।

४. वही १०, गा. ७०१-७०३—
केवलमणपज्जवनाणिणो य तत्तो य ओहिनाणजिणा।
चोद्दसदसनवपुव्वी आगमववहारिणो धीरा॥
सुत्तेण ववहरंते कप्पववहारं धारिणो धीरा।
अत्थधरववहरंते आणाए धारणाए य॥
ववहारं चउक्कस्स चोद्दसपुव्विम्मि छेदो जं।
भणियं तं तेऽभिच्छा जम्हा सुत्तं अत्थो य धरए य॥

५. वही, गा. ८१५—
जं जीतं सावज्जं न तेण जीएण होइ ववहारो।
जं जीयमसावज्जं तेण उ जीएण ववहारो॥

६. वही, गा. ७१६ वृत्ति—
छारहडिहडुयालापंडुरेण य रिंगणं तु सावज्जं।
दसविह पायच्छित्तं होइ असावज्जं जीयं तु॥
यत प्रवचने लोके चापराधविशुद्ध्ये समाचरितं क्षारावगुण्ठनं हडो गृद्धिग्रहप्रवेशनं खरमारोपणं पांडुरेण उदरेण रिंगणं तु शब्दत्वात् खरारूढं कृत्वा ग्रामे सर्वतः पर्यटनमित्येवमादि सावद्यं जीतं, यत्तु दशविधमालोचनादिकं प्रायश्चित्तं तदसावद्यं, जीतं अप्वादतः कदाचित्सावद्यमपि जीतं दधात्।

७. वही, १० गा. ७१७—
उस्सण्णबहुदोसे निद्धंधसे पवयणे य निरवेक्खो।
एयारिसंमि पुरिसे दिज्जइ सावज्जं जीयंपि॥

८. वही, गा. ७१८—
संविग्गे पियधम्मे अपमत्ते य वज्जभीरुम्मि।
कम्हिइयमाइ खलिए देयमसावज्जं जीयं तु॥

९. वही, ७२०—
जं जीयमसोहिकरं पासत्थपमत्तसंजयाईणं।
जइवि महाजणाइन्नं न तेण जीएण ववहारो॥

१०. वही, ७२१—
जं जीयं सोहिकरं संवेगपरायणेण दंतेण।
एक्केण वि आइन्नं तेणं तु जीएण ववहारो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध-पदं

३०२. कतिविहे णं भंते! बंधे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—इरियावहियबंधे य, संपराइय-बंधे य॥

बन्ध-पदम्

कतिविधः भदन्त! बन्धःप्रज्ञप्तः?

गौतम! द्विविधः बन्धः प्रज्ञप्तः, तद् यथा-ईर्यापथिकबन्धश्च, साम्परायिकबन्धश्च।

बंध पद

३०२. भंते! बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—ऐर्यापथिक बंध, सांपरायिक बंध।

इरियावहियबंध-पदं

३०३. इरियावहियं णं भंते! कम्मं किं नेरइओ बंधइ? तिरिक्ख-जोणिओ बंधइ? तिरिक्खजोणिणी बंधइ? मणुस्सो बंधइ? मणुस्सी बंधइ? देवो बंधइ? देवी बंधइ?

गोयमा! नो नेरइओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिओ बंधइ, नो तिरिक्ख-जोणिणी बंधइ, नो देवो बंधइ, नो देवी बंधइ। पुव्व पडिवन्नए पडुच्च मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति, पडिवज्ज-माणए पडुच्च १. मणुस्सो वा बंधइ २. मणुस्सी वा बंधइ ३. मणुस्सा वा बंधंति ४. मणुस्सीओ वा बंधंति ५. अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ ६. अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य बंधंति ७. अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य बंधंति ८. अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति॥

ईर्यापथिकबन्ध-पदम्—

ईर्यापथिकं भदन्त! कर्म किं नैरयिकः बध्नाति? तिर्यग्योनिकः बध्नाति? तिर्यग्योनिका बध्नाति? मनुष्यः बध्नाति? मानुषी बध्नाति? देवः बध्नाति? देवी बध्नाति?

गौतम! नो नैरयिकः बध्नाति, नो तिर्यग्योनिकः बध्नाति, नो तिर्यग्योनिका बध्नाति, नो देवः बध्नाति, नो देवी बध्नाति। पूर्वप्रतिपन्नकान् प्रतीत्य मनुष्याश्च मनुष्यश्च बध्नन्ति, प्रतिपद्य-मानकान् प्रतीत्य १. मानुष्यो वा बध्नाति २. मानुषी वा बध्नाति ३. मनुष्याः वा बध्नन्ति ४. मानुष्यः वा बध्नन्ति ५. अथवा मनुष्यश्च मानुषी च बध्नाति ६. अथवा मनुष्यश्च मानुष्यश्च बध्नन्ति ७. अथवा मनुष्याश्च मानुषी च बध्नन्ति ८. अथवा मनुष्याश्च मानुष्यश्च बध्नन्ति।

ऐर्यापथिक बंध-पद

३०३. भंते! ऐर्यापथिक कर्म का बंध क्या नैरयिक करता है? तिर्यक्योनिक करता है? तिर्यक्योनिक स्त्री करती है? मनुष्य करता है? स्त्री करती है? देव करता है? देवी करती है?

गौतम! नैरयिक बंध नहीं करता, तिर्यक्-योनिक बंध नहीं करता, तिर्यक्योनिक स्त्री बंध नहीं करती, देव बंध नहीं करता, देवी बंध नहीं करती। पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियां बंध करती हैं।

१. प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य बंध करता है २. अथवा मनुष्य स्त्री बंध करती है ३. मनुष्य बंध करते हैं ४. मनुष्य स्त्रियां बंध करती हैं ५. अथवा मनुष्य और मनुष्य स्त्री बंध करता है ६. अथवा मनुष्य और मनुष्य स्त्रियां बंध करती हैं ७. अथवा मनुष्य (अनेक) और मनुष्य स्त्री बंध करती है. ८. अथवा मनुष्य (अनेक) और मनुष्य स्त्रियां बंध करती हैं।

३०४. तं भंते! किं इत्थी बधंइ? पुरिसो बंधइ? नपुंसगो बंधइ? इत्थीओ बंधंति? पुरिसा बंधंति? नपुंसगा बंधंति? नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसगो बंधइ?

गोयमा! नो इत्थी बंधइ, नो पुरिसो बंधइ, नो नपुंसगो बंधइ, नो इत्थीओ बंधंति, नो पुरिसा बंधंति, नो नपुंसगा बंधंति, नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसगो बंधइ—पुव्व-पडिवन्नए पडुच्च अवगय-वेदा बंधंति, पडिवज्जमाणए पडुच्च अवगयवेदो वा बंधइ अवगयवेदा वा बंधंति॥

तत् भदन्त! किं स्त्री बध्नाति? पुरुषः बध्नाति? नपुंसकः बध्नाति? स्त्रियः बध्नन्ति? पुरुषाः बध्नन्ति? नपुंसकाः बध्नन्ति? नो स्त्री नो पुरुषः नो नपुंसकः बध्नाति?

गौतम! नो स्त्री बध्नाति, नो पुरुषः बध्नाति, नो नपुंसकः बध्नाति, नो स्त्रियः बध्नन्ति, नो पुरुषाः बध्नन्ति, नो नपुंसकाः बध्नन्ति, नो स्त्री नो पुरुषः नो नपुंसकः बध्नाति-पूर्व-प्रतिपन्नकान् प्रतीत्य अपगतवेदाः बध्नन्ति, प्रतिपद्य-मानकान् प्रतीत्य अपगतवेदः वा बध्नाति अपगतवेदाः वा बध्नन्ति।

३०४. भंते! क्या स्त्री बंध करती है? पुरुष बंध करता है? नपुंसक बंध करता है? क्या स्त्रियां बंध करती हैं? पुरुष बंध करते हैं? नपुंसक बंध करते हैं? क्या नो स्त्री, नो पुरुष और नो नपुंसक बंध करता है?

गौतम! स्त्री बंध नहीं करती, पुरुष बंध नहीं करता, नपुंसक बंध नहीं करता, स्त्रियां बंध नहीं करती, पुरुष बंध नहीं करते, नपुंसक बंध नहीं करते, नो स्त्री नो पुरुष और नो नपुंसक बंध करता है—पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा वेद रहित बंध करते हैं, प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेद रहित बंध करता है अथवा वेद रहित बंध करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०५. जइ भंते! अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति तं भंते! किं १. इत्थीपच्छाकडो बंधइ? २. पुरिस-पच्छाकडो बंधइ? ३. नपुंसग-पच्छाकडो बंधइ? ४. इत्थीपच्छाकडा बंधंति ५. पुरिस-पच्छाकडा बंधंति? ६. नपुंसग-पच्छाकडा बंधंति? उदाहु इत्थी-पच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ ४? उदाहु इत्थीपच्छाकडो य नपुंसग-पच्छाकडो य बंधइ४? उदाहु पुरिसपच्छाकडो य नपुंसग-पच्छाकडो य बंधइ ४? उदाहु इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छा-कडो य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ८ एवं एते छव्वीसं भंगा जाव उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छा-कडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति?

यदि भदन्त! अपगतवेदः वा बध्नाति, अपगतवेदाः वा बध्नन्ति तत् भदन्त! किं १. स्त्रीपश्चात्कृतः बध्नाति? २. पुरुष-पश्चात्-कृतः बध्नाति? ३. नपुंसक-पश्चात्कृतः बध्नाति? ४. स्त्रीपश्चात्-कृताः बध्नन्ति? ५. पुरुषपश्चात्कृताः बध्नन्ति? ६. नपुंसक- पश्चात्कृताः बध्नाति? उताहो स्त्रीपश्चात्कृतश्च पुरुष-पश्चात्कृतश्च बध्नाति४? उताहो स्त्री-पश्चात्कृतश्च, नपुंसकपश्चात्कृतश्च-बध्नाति४? उताहो पुरुषपश्चात्कृतश्च नपुंसकपश्चातकृतश्च बध्नाति४? उताहो स्त्रीपश्चात्कृतश्च पुरुष पश्चातकृतश्च नपुंसकपश्चात्कृतश्च बध्नाति८? एवम् एते षड्विंशतिः भंगाः यावत् उताहो स्त्री-पश्चात्कृताश्च पुरुषपश्चात्- कृताश्च नपुंसकपश्चात्कृताश्च बध्नन्ति?

३०५. भंते! यदि वेद रहित बंध करता है अथवा वेद रहित बंध करते हैं तो क्या भंते! १. स्त्री पश्चात्कृत बंध करती है २. पुरुष पश्चातकृत बंध करता है ३. नपुंसक पश्चात् कृत बंध करता है ४. स्त्री पश्चात्कृत बंध करती हैं ५. पुरुष पश्चात्कृत बंध करते हैं ६. नपुंसक पश्चात्कृत बंध करते हैं ७. अथवा स्त्री पश्चात्कृत और पुरुष पश्चातकृत बंध करता है (चार)? अथवा स्त्री पश्चात् कृत और नपुंसक पश्चातकृत बंध करता है (चार)? अथवा पुरुष पश्चातकृत और नपुंसक पश्चातकृत बंध करता है (चार)? अथवा स्त्री पश्चातकृत, पुरुष पश्चातकृत और नपुंसक पश्चातकृत बंध करता है (आठ)? इस प्रकार ये छब्बीस भंग होते हैं यावत् अथवा स्त्री पश्चात् कृत, पुरुष पश्चातकृत नपुंसक पश्चात्-कृत बंध करते हैं?

गोयमा! १. इत्थीपच्छाकडो वि बंधइ २. पुरिसपच्छाकडो वि बंधइ ३. नपुंसगपच्छाकडो वि बंधइ ४. इत्थी-पच्छाकडा वि बंधंति ५. पुरिस-पच्छाकडा वि बंधंति ६. नपुंसग-पच्छाकडा वि बंधंति ७. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ, एवं एए चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव २६. अहवा इत्थी-पच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छा-कडा य बंधंति॥

गौतम! १. स्त्रीपश्चात्कृतः अपि बध्नाति २. पुरुषपश्चात्कृतः अपि बध्नाति ३. नपुंसकपश्चात्कृतः अपि बध्नाति ४. स्त्री-पश्चात्कृताः अपि बध्नन्ति ५. पुरुष-पश्चात्कृताः अपि बध्नन्ति ६. नपुंसक-पश्चात्कृताः अपि बध्नन्ति ७. अथवा स्त्री-पश्चात्कृतश्च पुरुषपश्चात्कृतश्च बध्नाति, एवम् एते चैव षड्विंशतिः भंगाः भणितव्याः यावत् २६. अथवा स्त्रीपश्चात्-कृताश्च पुरुषपश्चात्कृताश्च नपुंसक-पश्चातकृताश्च बध्नन्ति।

गौतम! १. स्त्री पश्चातकृत भी बंध करती है २. पुरुष पश्चात्कृत भी बंध करता है ३. नपुंसक पश्चात्कृत भी बंध करता है ४. स्त्री पश्चात्कृत भी बंध करती हैं। ५. पुरुष पश्चात्कृत भी बंध करते हैं। ६. नपुंसक पश्चातकृत भी बंध करते हैं। ७. अथवा स्त्री पश्चातकृत और पुरुष पश्चात्कृत बंध करता है, इस प्रकार ये छब्बीस भंग वक्तव्य हैं यावत् २६. अथवा स्त्री पश्चात-कृत, पुरुष पश्चात्कृत और नपुंसक पश्चातकृत बंध करते हैं।

३०६. तं भंते! किं १. बंधी बंधइ बंधिस्सइ? २. बंधी बंधइ न बंधिस्सइ? ३. बंधी न बंधइ बंधिस्सइ? ४. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ? ५. न बंधी बंधइ बंधिस्सइ? ६. न बंधी बंधइ न बंधिस्सइ? ७. न बंधी न बंधइ बंधिस्सइ? ८. न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ?

तत् भदन्त! किं १. बंधी बध्नाति भन्त्स्यति? २. बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति? ३. बन्धी न बध्नाति भन्त्स्यति? ४. बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति? ५. न बन्धी बध्नाति भन्त्स्यति? ६. न बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति? ७. न बन्धी न बध्नाति भन्त्स्यति? ८. न बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति?

३०६. भंते! क्या जीव ने उस ऐर्यापथिक कर्म का बंध किया, करता है और करेगा? २. क्या बंध किया, करता है और नहीं करेगा? ३. क्या बंध किया, नहीं करता है और करेगा? ४. बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा? ५. बंध नहीं किया, करता है और करेगा? ६. बंध नहीं किया, करता है और नहीं करेगा? ७. बंध नहीं किया, नहीं करता है और करेगा? ८. बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा?

गोयमा! भवागरिसं पडुच्च अत्थे-गतिए

गौतम! भवाकर्षं प्रतीत्य अस्त्येककः बन्धी

गौतम! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी जीव ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधी बंधइ बंधिस्सइ, अत्थे-गतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ, एवं तं चेव सव्वं जाव अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ।

बध्नाति भन्त्स्यति, अस्त्येकक: बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति, एवं तच्चैव सर्वं यावत् अस्त्येकक: न बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति।

बंध किया, करता है और करेगा। किसी जीव ने बंध किया, करता है और नहीं करेगा, इस प्रकार सर्व वक्तव्य है यावत् किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

गहणागरिसं पडुच्च अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ, एवं जाव अत्थे-गतिए न बंधी बंधइ बंधिस्सइ, नो चेव णं न बंधी बंधइ न बंधिस्सइ, अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ बंधि-स्सइ, अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ॥

ग्रहणाकर्षं प्रतीत्य अस्त्येकक: बन्धी बध्नाति भन्त्स्यति, एवं यावत् अस्त्येकक: न बन्धी बध्नाति भन्त्स्यति, नो चैव न बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति, अस्त्येकक: न बन्धी न बध्नाति भन्त्स्यति, अस्त्येकक: न बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति।

ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा किसी जीव ने बंध किया, करता है और करेगा, इस प्रकार यावत् किसी जीव ने बंध नहीं किया, करता है और करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, करता है और नहीं करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

३०७. तं भंते! किं सादीयं सपज्ज-वसियं बंधइ? सादीयं अपज्जवसियं बंधइ? अणादीयं सपज्जवसियं बंधइ? अणादीयं अपज्जवसियं बंधइ?
गोयमा! सादीयं सपज्जवसियं बंधइ, नो सादीयं अपज्जवसियं बंधइ, नो अणादीयं सपज्जवसियं बंधइ, नो अणादीयं अपज्जवसियं बंधइ॥

तद् भदन्त! किं सादिकं सपर्यवसितं बध्नाति? सादिकम् अपर्यवसितं बध्नाति? अनादिकं सपर्यवसितं बध्नाति? अनादिकम् अपर्यवसितं बध्नाति?
गौतम! सादिकं सपर्यवसितं बध्नाति, नो सादिकम् अपर्यवसितं बध्नाति, नो अनादिकं सपर्यवसितं बध्नाति, नोअनादिकम् अपर्यवसितं बध्नाति।

३०७. भंते! क्या उस ऐर्यापथिक कर्म का बंध सादि-सपर्यवसित होता है? सादि अपर्यवसित होता है? अनादि सपर्यवसित होता है? अनादि अपर्यवसित होता है?
गौतम! वह सादि-सपर्यवसित होता है, सादि-अपर्यवसित नहीं होता। अनादि सपर्यवसित नहीं होता, अनादि अपर्यवसित नहीं होता।

३०८. तं भंते! किं देसेणं देसं बंधइ? देसेणं सव्वं बंधइ? सव्वेणं देसं बंधइ? सव्वेणं सव्वं बंधइ?

तद् भदन्त! किं देशेन देशं बध्नाति? देशेन सर्वं बध्नाति? सर्वेण देशं बध्नाति, सर्वेण सर्वं बध्नाति?

३०८. भंते! क्या देश के द्वारा देश का बंध होता है? देश के द्वारा सर्व का बंध होता है? सर्व के द्वारा देश का बंध होता है? सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है?

गोयमा! नो देसेणं देसं बंधइ, नो देसेणं सव्वं बंधइ, नो सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ॥

गौतम! नो देशेन देशं बध्नाति, नो देशेन सर्वं बध्नाति, नो सर्वेण देशं बध्नाति, सर्वेण सर्वं बध्नाति।

गौतम! देश के द्वारा देश का बंध नहीं होता, देश के द्वारा सर्व का बंध नहीं होता, सर्व के द्वारा देश का बंध नहीं होता, सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है।

संपराइयबंध-पदं

३०९. संपराइयं णं भंते! कम्मं किं नेरइओ बंधइ? तिरिक्खजोणिओ? बंधइ जाव देवी बंधइ?
गोयमा! नेरइओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिओ वि बंधइ, तिरिक्ख-जोणिणी वि बंधइ, मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, देवो वि बंधइ, देवी वि बंधइ॥

साम्परायिकबन्ध-पदम्

साम्परायिकं भदन्त! कर्म किं नैरयिक: बध्नाति? तिर्यग्योनिक: बध्नाति यावत् देवी बध्नाति?
गौतम! नैरयिक: अपि बध्नाति, तिर्यग्-योनिक: अपि बध्नाति, तिर्यग्योनिका अपि बध्नाति, मनुष्य: अपि बध्नाति, मानुषी अपि बध्नाति, देव: अपि बध्नाति, देवी अपि बध्नाति।

सांपरायिक बंध पद

३०९. भंते! सांपरायिक कर्म का बंध क्या, नैरयिक करता है? तिर्यक्योनिक करता है? यावत् देवी करती है?
गौतम्! नैरयिक भी बंध करता है, तिर्यक्- योनिक भी बंध करता है, तिर्यक्योनिक स्त्री भी बंध करती है, मनुष्य भी बंध करता है, मनुष्य-स्त्री भी बंध करती है, देवता भी बंध करता है, देवी भी बंध करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१०. तं भंते! किं इत्थी बंधइ? पुरिसो बंधइ? तहेव जाव नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसगो बंधइ?
गोयमा! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ जाव नपुंसगा वि बंधंति, अहवा एते य अवगयवेदो बंधइ, अहवा एते य अवगयवेदा य बंधंति॥

तद् भदन्त! किं स्त्री बध्नाति? पुरुषः बध्नाति? तथैव यावत् नो स्त्री नो पुरुषः नो नपुंसकः बध्नाति?
गौतम! स्त्री अपि बध्नाति, पुरुषः अपि बध्नाति यावत् नपुंसकाः अपि बध्नन्ति, अथवा एते च अपगतवेदश्च बध्नाति, अथवा एते च अपगतवेदाश्च बध्नन्ति।

३१०. भंते! क्या स्त्री बंध करती है? पुरुष बंध करता है उसी प्रकार यावत् नो-स्त्री, नो-पुरुष, नो-नपुंसक बंध करता है?
गौतम! स्त्री भी बंध करती है, पुरुष भी बंध करता है, यावत् नपुंसक भी बंध करते हैं, अथवा ये स्त्री आदि और वेद रहित (एक वचन) बंध करता है। अथवा ये स्त्री आदि और वेद रहित बंध करते हैं।

३११. जइ भंते! अवगयवेदो य बंधइ, अवगयवेदा य बंधंति तं भंते! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ? पुरिसपच्छाकडो बंधइ? एवं जहेव इरियावहियबंधगस्स तहेव निरवसेसं जाव अहवा इत्थी-पच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति॥

यदि भदन्त! अपगतवेदश्च बध्नाति, अपगतवेदाश्च बध्नन्ति तद् भदन्त! किं स्त्री-पश्चात्कृतः बध्नाति? पुरुषपश्चात्-कृतः बध्नाति? एवं यथैव ईर्यापथिकबन्ध-कस्य तथैव निरवशेषं यावत् अथवा स्त्रीपश्चात्कृताश्च पुरुषपश्चात्कृताश्च नपुंसकपश्चात्कृताश्च बध्नन्ति।

३११. भंते! यदि वेद रहित बंध करता है, वेद रहित बंध करते हैं तो क्या भंते! स्त्री पश्चात्कृत बंध करती है? पुरुष पश्चात्कृत बंध करता है? इस प्रकार जैसे ऐर्यापथिक बंध की वक्तव्यता है वैसे ही निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत् अथवा स्त्री पश्चात्कृत, पुरुष पश्चात्-कृत, नपुंसक पश्चात् कृत बंध करते हैं।

३१२. तं भंते! किं १. बंधी बंधइ बंधिस्सइ? २. बंधी बंधइ न बंधिस्सइ? ३. बंधी न बंधइ बंधिस्सइ? ४. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ?

तद् भदन्त! किम् ? १. बन्धी बध्नाति भन्त्स्यति? २. बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति? ३. बन्धी न बध्नाति भन्त्स्यति? ४. बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति?

३१२. भंते! १. क्या जीव ने उस सांपरायिक कर्म का बंध किया, करता है और करेगा? २. बंध किया, करता है और नहीं करेगा? ३. बंध किया, नहीं करता है और करेगा? ४. बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा?

गोयमा! १. अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ २. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ ३. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ४. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ॥

गौतम! १. अस्त्येककः बन्धी बध्नाति भन्त्स्यति २. अस्त्येककः बन्धी बध्नाति न भन्त्स्यति ३. अस्त्येककः बन्धी न बध्नाति भन्त्स्यति ४. अस्त्येककः बन्धी न बध्नाति न भन्त्स्यति।

गौतम! १. किसी जीव ने बंध किया, करता है और करेगा। २. किसी जीव ने बंध किया, करता है और नहीं करेगा ३. किसी जीव ने बंध किया, नहीं करता है और करेगा ४. किसी जीव ने बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

३१३. तं भंते! किं सादीयं सपज्ज-वसियं बंधइ? पुच्छा तहेव।

तद् भदन्त! किं सादिकं सपर्यवसितं बध्नाति? पृच्छा तथैव।

३१३. भंते! क्या सांपरायिक कर्म का बंध सादि सपर्यवसित होता है? पूर्ववत् पृच्छा।

गोयमा! सादीयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणादीयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणादीयं वा अपज्जवसियं बंधइ, नो चेव णं सादीयं अपज्जवसियं बंधइ॥

गौतम! सादिकं वा सपर्यवसितं बध्नाति, अनादिकं वा सपर्यवसितं बध्नाति, अनादिकं वा अपर्यवसितं बध्नाति, नो चैव सादिकम् अपर्यवसितं बध्नाति।

गौतम! वह सादि-सपर्यवसित होता है, अनादि सपर्यवसित होता है, अनादि-अपर्यवसित होता है, सादि-अपर्यवसित नहीं होता।

३१४. तं भंते! किं देसेणं देसं बंधइ?

तद् भदन्त! किं देशेन देशं बध्नाति?

३१४. भंते! क्या देश के द्वारा देश का बंध होता है?

एवं जहेव इरियावहियबंधगस्स जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ॥

एवं यथैव ईर्यापथिकबन्धकस्य यावत् सर्वेण सर्वं बध्नाति।

ऐर्यापथिक बंध की भांति वक्तव्यता यावत् सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सू. ३०२-३१४

प्रस्तुत आगम में ऐर्यापथिकी और सांपरायिकी क्रिया का उल्लेख अनेक प्रसंगों में हुआ है—भगवती १/४४४, ६/७१, ७/२०-२१, ७/१२६, १०/१४, १८/१५१।

ईर्यापथिक बंध का हेतु केवल योग—मन, वचन, काया की प्रवृत्ति है। उससे केवल वेदनीय कर्म का बंध होता है। सांपरायिक बंध का मुख्य हेतु है—कषाय। उससे सभी कर्मों का बंध होता है।[1]

ऐर्यापथिक बंध—नैरयिक, तिर्यक्योनिक और देव वीतराग नहीं होते इसलिए इनके ऐर्यापथिक बंध नहीं होता।

ऐर्यापथिक बंध का अधिकारी मनुष्य है। उसकी तीन श्रेणियां हैं—

१. उपशांत मोह मनुष्य
२. क्षीण मोह मनुष्य
३. सयोगी केवली मनुष्य

ऐर्यापथिक बंध अवेदक (वेदातीत) के होता है इसलिए स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद वालों के उनका बंध नहीं होता।

जो जीव स्त्री वेद को उपशांत या क्षीण कर अवेदक बनता है, वह स्त्री पश्चात्कृत है। जो जीव पुरुष वेद को उपशांत या क्षीण कर अवेदक बनता है, वह पुरुष पश्चात्कृत है। जो जीव कृत नपुंसक अवस्था से अवेदक बनता है, वह नपुंसक पश्चात्कृत है।[2]

ऐर्यापथिक कर्म बंध का विचार भवाकर्ष और ग्रहणाकर्ष—इन

ऐर्यापथिक कर्म का बंध

पूर्व प्रतिपन्नक की अपेक्षा	प्रतिपद्यमान की अपेक्षा		
	असंयोगी की अपेक्षा	द्विसंयोगी की अपेक्षा	त्रिसंयोगी की अपेक्षा
अनेक पुरुष और स्त्रियां बांधती हैं।	१. पुरुष बांधता है। २. स्त्री बांधती है। ३. पुरुष बांधते हैं। ४. स्त्रियां बांधती हैं।	५. एक पुरुष और एक स्त्री बांधती है। ६. एक पुरुष और बहुत स्त्रियां बांधती हैं। ७. अनेक पुरुष और एक स्त्री बांधती है। ८. अनेक पुरुष और अनेक स्त्रियां बांधती हैं।	— — — —
	१. स्त्री पश्चात्कृत जीव बांधता है। २. पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधता है। ३. नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। ४. स्त्री पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। ५. पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। ६. नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं।	७. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव और एक पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधता है। ८. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव और अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। ९. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव और एक पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधता है। १०. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव और अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। ११. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। १२. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। १३. अनेक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। १४. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। १५. एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। १६. एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। १७. अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। १८. अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं।	१९. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात् कृत जीव बांधता है। २०. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। २१. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। २२. एक स्त्री पश्चात्कृत जीव, अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। २३. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। २४. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं। २५. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव, अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधता है। २६. अनेक स्त्री पश्चात्कृत जीव, अनेक पुरुष पश्चात्कृत जीव और अनेक नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं।

१. (क) भ. वृ. ८/३०२।
(ख) द्रष्टव्य सूयगडो २/२/१६ का टिप्पण।
(ग) ठाणं, २/२-३६ का टिप्पण।

२. भ. वृ. ८/३०५—भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य स्त्रीत्वं पश्चात्कृतं-भूतनां नीतं येनावेदकेनासौ स्त्रीपश्चात्कृतः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो दृष्टियों से किया गया है।

ऐर्यापथिक कर्माणुओं का ग्रहण अनेक भवों में होता है, वह भवाकर्ष है।

ऐर्यापथिक कर्माणुओं का ग्रहण वर्तमान भव में होता है, वह ग्रहणाकर्ष है। इन दोनों के आठ-आठ भंग बतलाए गए हैं। प्रथम भंग बंधा, बंधई, बंधिस्सइ का है वृत्तिकार ने बंधिस्सइ का अर्थ अनागत काल में बांधेगा, ऐसा किया है।[1] जयाचार्य ने अनागत शब्द पर विस्तार से विमर्श किया है। उनके अनुसार अनागत का तात्पर्य भविष्य काल है, अग्रिम जन्म नहीं है। इसका हेतु यह है—उपशम श्रेणी दो जन्म में ही प्राप्त होती है। उत्कर्षतः एक जन्म में दो बार और दूसरे जन्म में दो बार। इसके समर्थन में भगवती (२५/५३२) का पाठ प्रस्तुत किया है—सूक्ष्म संपराय चारित्र उत्कर्षतः नौ बार प्राप्त होता है।[2] वह तीन भव में ही सम्पन्न होता है: दो भव में उपशम श्रेणी के आरोहण-अवरोहण के आधार पर आठ बार और तीसरे भव में क्षपक श्रेणी के आधार पर एक बार। इसका निष्कर्ष है कि उपशम श्रेणी तीन भव में प्राप्त नहीं होती।[3]

निर्ग्रंथ के आकर्ष से भी जयाचार्य द्वारा प्रतिपादित तथ्य की पुष्टि होती है।[4] अभयदेव सूरि ने भी प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में इस विषय का स्पष्ट निर्देश किया है।[5]

ग्रहणाकर्ष का छठा भंग शून्य होता है। अभयदेव सूरि ने शून्यता का हेतु स्पष्ट किया है।[6] जयाचार्य ने उस पर विस्तृत वार्तिक लिखा है।[7] आयुष्य के पूर्वभाग में उपशांत मोह अवस्था प्राप्त नहीं हुई, इस

---

१. वही, ८ ३०६—पूर्वभवे उपशांतमोहत्वे सत्यैर्यापथिकं कर्म बद्धवान् वर्तमानभवे चोपशांतमोहत्वे बध्नाति, अनागते चोपशांतमोहावस्थायां भन्त्स्यतीति।

२. भ. २५ । ५३२: सुहुमसंपरागस्स जहण्णेणं दोण्णि उक्कोसेणं नव।

३. भ. जो. २ । १५० का वार्तिक पृ. ४४६-४४७—इहां वृत्ति में कह्यो पूर्व भवे ग्यारमें गुणठाणे बांध्यो, वर्तमान भव में पिण ग्यारमें गुणठाणे बांधै, वलि अनागत पिण ग्यारमें गुणठाणे बांधसी। इहां अनागत शब्द में अनागत काल लेवे जद तो कोई अटकाव नहीं। जिम तिण भव में उपशमश्रेणी लेई वलि तिणहिज भव में अनागत काले उपशमश्रेणी लहीने इरियावहि बांधे। पर अनागत शब्दे अनागत भव लेवे तो बात मिले नहीं। कारण उपशमश्रेणी तीन भव में आवे नहीं। जिम भगवती शतक २५ उद्देशक ७ में इम कह्यो—सूक्ष्म सम्पराय चारित्र उत्कृष्ट नो बार आवे, ते पिण उत्कृष्टो तीन भव में आवे। बे भव में तो उपशमश्रेणी थी आठ बार अने तीजे भव में क्षपकश्रेणी थी एक बार। इण न्याय उपशमश्रेणी तीन भव में आवे नहीं।

४. भ. २५/५३२—निग्गंथस्स णं पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं दोण्णि उक्कोसेणं पंच।

५. भ. वृ. २५—निर्ग्रंथस्योत्कर्षतस्त्रीणि भवग्रहणान्युक्तानि, एकत्र च भवे द्वावाकर्षावित्येवमेकत्र द्वावन्यत्र च द्वावित्येवं चैकं क्षपकनिर्ग्रंथत्वाकर्षं कृत्वा सिद्ध्यतीति कृत्वोच्यते पञ्चेति।

६. वही, ८ । ३०६—षष्ठस्तु नास्त्येव सूत्रे न बद्धवान् बध्नातीत्यनयोरुपपन्न-मानत्वेऽपि न भन्त्स्यतीति इत्यस्यानुपपद्यमानत्वात् तथाहि आयुषः पूर्वभागे उपशांतमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् तल्लाभसमये च बध्नाति तत्तोऽन्तरालवर्तिषु च भन्त्स्यत्स्वेव न तु न भन्त्स्यन्ति, सप्तकमावश्य बंध-स्येवभावात्, यस्तु मोहोपशम-निर्ग्रन्थस्य समयानन्तरमरणेनैर्यापथिक-कर्मबंधः समयमात्रो भवति नासौ षष्ठविकल्पहेतुः तदनन्तरैर्यापथिक-कर्मबंधाभावस्य भवान्तरवर्तित्वाद् ग्रहणाकर्षस्य चेह प्रक्रांतत्वात्, यदि पुनः सयोगित्वप्राप्तसमये बध्नाति ततोऽनन्तरं न भन्त्स्यतीति विवक्ष्येत तदा भन्त्स्यतीति चरमसमये बध्नातीति बंधपूर्वकमेव स्यान्नाबंधपूर्वकं, तत्पूर्वसमये तस्य बंधकत्वात् एवं च द्वितीय एव भंगः स्यान्न पुनः षष्ठ इति।

७. भ. जो. २ । १५० १४१ से १५५ से पहले तक दोनों वार्तिक।
नहिं बांध्यो बांधे अछै, नहि बांधस्यै इक भव मही।
ए भंग छट्ठो शून्य छै इह रीत कोई ह्वै नहीं॥
नहिं बांध्यो बांधे अछै ए दोय उपजता छता।
नहिं बांधस्यै ए बोल तीजो, तिणज भव नहिं सर्वथा॥
तसु न्याय कहिये आउखा नैं, पूर्व भाग विषे रह्यो।
उपशांत-मोहादिक न लाधूं, ते भणी बांध्यो नहीं॥
ते वीतराग धुर समय में, बांधे अछै इरियावही।
तसु समय बीजे बांधस्यै इज वीतराग गुणे रही॥
पिण बांधस्यै नहिं इम न होवै, समय मात्र इरियावही।
तसु बंधनोत्त अभाव छै, ते भणी बंध हुस्यै नहीं॥

न बांध्यो, बांधे, न बांधसी ए छठो भांगो शून्य छै, ते किम? छठे भांगे कोई एक जीव नहीं। ते छठा भांगा ने विषे न बांध्यूं, बांधे छै ए दोई उपजता थका पिण 'न बांधस्यै' ए तीजे बोल न उपजै तो देखाइ छै—आउखा नां पूर्वभाग नैं विषे उपशम-मोहत्वादि न लाधूं, एतला मटै न बांध्यूं। ते जाभ समय ने विषे बांधस्यैज पिण इम नहीं जे न बांधस्यै समय मात्र सो बंध नो इहां अभाव छै ते माटै।

ग्यारमें गुणठाण में, इक समय रहि मरणो करी।
सुर भवे इरियावहि न बंधे, समय बंध इम उच्चरी॥
इम कहे तेहनैं एह उत्तर, बे भवे ए आखियो।
पिण ग्रहण आकर्ष भवे इक, भंग ए नहिं भाखियो॥
नहिं बांधियो बांधे अछै, नहिं बांधस्यै इरियावहि।
इक भवे बोलज बे हुवै, पिण तृतीय बोल हुवै नहीं॥
ते भणी भांगो एह छट्ठो, ग्रहण आकर्ष नहीं।
ते कारणे ए भंग नीं छै, शून्यता इक भव मही॥
नाहि बांधियो बांधे अछै ए बोल बे नर भव मही।
मरि सुर भवे नहि बांधस्यै, ए ग्रहण आकर्ष नहीं॥
ते भणी ग्रहणाकर्ष ने भव, एक आश्री जाणिये।
ए भंग छठा तणी शून्यता, प्रथर न्याय पिछाणिये॥
जो तेरमां नै चरम समय, बंध अछै इरियावही।
फुन समय बीजे बांधस्यै नहिं तास बांछा जो हुई॥
इम तदा जे गुण तेरमां नैं चरम समये बंध ही।
तेह कीजे पूर्व समये बांधियो इम संध ही॥
ते भणी ए भंग द्वितीय छै, पिण भंग छट्ठो छै नहीं।
इम भंग षष्ठम शून्यता ए, ग्रहण आकर्ष कही॥

बांध्यो अनै तेरमा गुण—

इम तदा जे गुण तेरमा चरम समये बंध हो।
तेह थी जे पूर्व बांधियो इम संध ही॥
ते भणी ए भंग द्वितीय छै, पिण भंग छट्ठो छै नहीं।
इम भंग षष्टम शून्यता ए, ग्रहण आकर्ष कही॥

कोई कहे—अतीतकाले इरियावहि सकषाइपणे न बांध्यो अनै तेरमा गुणठाणा रै छेहले समये बांधै छै अनै अजोगीपणै न बांधस्यै, इम छट्ठो भांगो किम न हुवै? तेहनो उत्तर—इम दूजो हुवै, पिण छट्ठो न हुवै ते किम? जिकोए संयोगी चरम समये बांधै, ते चरिम समय थकी पूर्व समये इरियावहि नों बंध कहीजै, पिण पूर्व समये अबंधक नहीं। इम दूजो भांगो बीज हुवै, पिण छट्ठो नहीं।

नहिं बांधियो फुन नथी बांधे, बांधस्यै इरियावही।
शिवगमन योग्यज भाव छै, ते आश्री समय सही॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा से 'न बंधी' यह विकल्प समीचीन है। उपशांत अवस्था होने पर ऐर्यापथिक कर्म बांधता है, यह विकल्प भी सही है किन्तु अनंतर समयों में नहीं बांधेगा, यह विकल्प सम्यक् नहीं है क्योंकि बंध एक समय का नहीं होता। जो निर्ग्रंथ उपशांत मोह अवस्था (ग्यारहवें गुणस्थान) में रहकर काल-धर्म को प्राप्त होता है, उसके ऐर्यापथिक कर्म का बंध मात्र एक समय का होता है, वह छठे भंग का हेतु नहीं बनता। सयोगी केवली चरम समय में ऐर्यापथिक कर्म का बंध करता है। उसके अनंतर ऐर्यापथिक कर्म का बंध नहीं करता। इस विवक्षा में 'न बंधी' यह विकल्प नहीं होता। वह पूर्व समय में बंध करता है इसलिए द्वितीय भंग समुचित है, छठा भंग शून्य है।

द्रष्टव्य–भवाकर्ष और ग्रहणाकर्ष का यंत्र

	अतीत	श्रेणी	वर्तमान	श्रेणी	अनागत	श्रेणी
भवाकर्ष की अपेक्षा	१. बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधता है	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम श्रेणी की अपेक्षा
	२. बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधता है	क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	उपशम श्रेणी की अपेक्षा
	३. बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	नहीं बांधता	क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा
	४. बांधा था	१४वें गुणस्थानवर्ती जीव की अपेक्षा	नहीं बांधता	१४ वें गुणस्थानवर्ती जीव की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	१४वें गुणस्थानवर्ती जीव की अपेक्षा
	५. नहीं बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधता है	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा
	६. नहीं बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	बांधता है	क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	" "
	७. नहीं बांधा था	उपशम श्रेणी की अपेक्षा	नहीं बांधता	क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा
	८. नहीं बांधा था	अभव्य जीव की अपेक्षा	नहीं बांधता	अभव्य की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	अभव्य की अपेक्षा
ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा	१. बांधा था	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	बांधता है	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा
	२. बांधा था	१३वें गुणस्थानवर्ती जीव की अपेक्षा	बांधता है	१३वें गुणस्थान में एक समय शेष रहता है उसकी अपेक्षा	नहीं बांधेगा	शैलेशी अवस्था की अपेक्षा
	३. बांधा था	उपशम श्रेणी से गिरने की अपेक्षा	नहीं बांधता	सास्वादन सम्यक्दृष्टि की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	उपशम श्रेणी की अपेक्षा
	४. बांधा था	१३वें गुणस्थान के अंतिम समय जीव की अपेक्षा	नहीं बांधता	१४ वें गुणस्थान की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	शैलेशी अवस्था की अपेक्षा
	५. नहीं बांधा था	(आयुष्य के पूर्वभाग की अपेक्षा) उपशम क्षपक श्रेणी न करने के कारण	बांधता है	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा	बांधेगा	उपशम या क्षपक श्रेणी की अपेक्षा
	६. नहीं बांधा था	(शून्य) किसी जीव में नहीं	नहीं बांधता	किसी जीव की अपेक्षा से नहीं	नहीं बांधेगा	किसी जीव की अपेक्षा से नहीं
	७. नहीं बांधा था	भव्य जीव की अपेक्षा	नहीं बांधता	भव्य जीव की अपेक्षा	बांधेगा	भव्य जीव की अपेक्षा
	८. नहीं बांधा था	अभव्य की अपेक्षा	नहीं बांधता	अभव्य की अपेक्षा	नहीं बांधेगा	अभव्य की अपेक्षा

प्रस्तुत आलापक में प्रयुक्त देसेण देसं सव्वेणं सव्वं–ये शब्द बंध सापेक्ष हैं। बंध के संदर्भ में–

१. देसेणं–जीव का एक भाग।
देसं–बद्धयमान कर्म का एक भाग।
२. देसेणं–जीव का एक भाग।
सव्वं–बद्धयमान सर्व कर्म-पुद्गल।
३. सव्वेणं–जीव के सब प्रदेश।
देसं–बद्धयमान कर्म का एक भाग।
४. सव्वेणं–जीव के सर्व प्रदेश।
सव्वं–बद्धयमान सर्व कर्म पुद्गल।

इनमें सव्वेणं सव्वं का भंग सम्मत है।

द्रष्टव्य भगवती १/३१८-३३३ का भाष्य।

मनुष्य और मानुषी को छोड़कर शेष सब सांपरायिक कर्म का बंध करते हैं। मनुष्य और मानुषी सकषाय अवस्था में सांपरायिक कर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का बंध करते हैं, अकषाय अवस्था में नहीं करते। अपगत वेद वाले व्यक्ति के सांपरायिक कर्म का बंध अल्पकालीन होता है। यथाख्यात चारित्र आने पर ऐर्यापथिक कर्म का बंध प्रारंभ हो जाता है।[1]

सांपरायिक कर्म का बंध अनादि है इसलिए 'बंधी' यह विकल्प सब जीवों में प्राप्त होगा। ऐर्यापथिकी क्रिया के विषय में जो प्राणी मत उपलब्ध है, उसे विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। उसके विषय में समीक्षात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत है। उनके तुलनात्मक अध्ययन के लिए निम्न निर्दिष्ट संदर्भों का अध्ययन आवश्यक है–भगवई १/२०-२१,१२५-१२६, १०/११-१४, १८/१५९-१६०, सूयगडो २/१६, आचारांगभाष्यम् ५/७२।

कम्मप्पगडीसु परीसह-समवतार-पदं

३१५. कइ णं भंते! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ,तं जहा–नाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं वेदणिज्जं मोह-णिज्जं आउगं नामं गोयं अंतराइयं॥

कर्मप्रकृतिषु परीषहसमवतार-पदम्

कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! अष्ट कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयं आयुष्कं नाम गोत्रम् आन्तरायिकम्।

कर्म प्रकृतियों में परीषह समवतार-पद

३१५. भंते! कर्म प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं, जैसे–ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय।

३१६. कइ णं भंते! परीसहा पण्णत्ता?

गोयमा! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा–दिगिंछापरीसहे, पिवासापरीसहे सीतपरीसहे उसिणपरीसहे दंसमसगपरीसहे अचेलपरीसहे अरइपरीसहे इत्थिपरीसहे चरियापरीसहे निसीहियापरीसहे सेज्जापरीसहे अक्कोसपरीसहे वहपरीसहे जायणापरीसहे अलाभपरीसहे रोगपरीसहे तणफासपरीसहे जल्लपरीसहे सक्कारपुरक्कारपरीसहे पण्णापरीसहे नाणपरीसहे दंसण-परीसहे॥

कति भदन्त! परीषहाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! द्वाविंशतिः परीषहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–दिगिंछापरीषहः, पिपासापरीषहः शीतपरीषहः, उष्णपरीषहः, दंशमशकपरीषहः, अचेलपरीषहः, अरतिपरीषहः, स्त्रीपरीषहः, चर्यापरीषहः, निषीधिकापरीषहः, शय्यापरीषहः, आक्रोशपरीषहः, वधपरीषहः, याचनापरीषहः, अलाभपरीषहः, रोगपरीषहः, तृणस्पर्शपरीषहः, जल्लपरीषहः, सत्कारपुरस्कारपरीषहः प्रज्ञापरीषहः, ज्ञानपरीषहः, दर्शनपरीषहः।

३१६. भंते! परीषह कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! परीषह बाईस प्रज्ञप्त हैं, जैसे–क्षुधापरीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह, दंशमशक परीषह, अचेल परीषह, अरति परीषह, स्त्री परीषह, चर्या परीषह, निषद्या परीषह, शय्या परीषह, आक्रोश परीषह, वध परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह, जल्ल (स्वेद जनित मैल) परीषह, सत्कारपुरस्कार परीषह, प्रज्ञा परीषह, ज्ञान परीषह, दर्शन परीषह।

३१७. एए णं भंते! बावीसं परीसहा कतिसु कम्मप्पगडीसु समोयरंति?

गोयमा! चउसु कम्मप्पगडीसु समोयरंति, तं जहा–नाणावर-णिज्जे, वेदणिज्जे, मोहणिज्जे, अंतराइए॥

एते भदन्त! द्वाविंशतिः परीषहाः कतिषु कर्मप्रकृतिषु समवतरन्ति?

गौतम! चतसृषु कर्मप्रकृतिषु समवतरन्ति, तद् यथा–ज्ञानावरणीये, वेदनीये, मोहनीये, आन्तरायिके।

३१७. भंते! इन बाईस परीषहों का कितनी कर्म प्रकृतियों में समवतार होता है?

गौतम! चार कर्म प्रकृतियों में समवतार होता है, जैसे–ज्ञानावर्णीय, वेदनीय, मोहनीय, अंतराय।

३१८. नाणावरणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति?

गोयमा! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा–पण्णापरीसहे नाणपरीसहे य॥

ज्ञानावरणीये भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति?

गौतम! द्वौ परीषहौ समवतरतः, तद् यथा–प्रज्ञापरीषहः, ज्ञानपरीषहश्च।

३१८. भंते! ज्ञानावरणीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म में दो परीषहों का समवतार होता है जैसे–प्रज्ञा परीषह, ज्ञान परीषह।

३१९. वेदणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति?

गोयमा! एक्कारस परीसहा समोयरंति, तं जहा–

वेदनीये भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति?

गौतम! एकादश परीषहाः समवतरन्ति, तद् यथा–

३१९. भंते! वेदनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! वेदनीय कर्म में ग्यारह परीषहों का समवतार होता है, जैसे–प्रारंभ से पांच

१. भ. वृ. ८/३१० अपगतवेदश्च सांपरायिकबंधको वेदक्षये उपशांते क्षीणे वा यावद्यथाख्यातं न प्राप्नोति तावल्लभ्यत इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेव आणुपुव्वी, चरिया सेज्जा वहे य रोगे य।
तणफास-जल्लमेव य,
एक्कारस वेदणिज्जम्मि ॥१॥

पञ्चैव आनुपूर्व्या,
चर्या शय्या वधश्च रोगश्च।
तृणस्पर्श-जल्लमेव च,
एकादश वेदनीये॥

यथाक्रम—(क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक), चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण स्पर्श, जल्ल—इन ग्यारह परीषहों का वेदनीय कर्म में समवतार होता है।

३२०. दंसणमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति?
गोयमा! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ॥

दर्शनमोहनीये भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति?
गौतम! एकः दर्शनपरीषहः समवतरति।

३२०. भंते! दर्शन मोहनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?
गौतम! दर्शन मोहनीय कर्म में एक दर्शन-परीषह का समवतार होता है।

३२१. चरित्तमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति?
गोयमा! सत्त परीसहा समोयरंति, तं जहा—
अरती अचेल इत्थी,
निसीहिया जायणा य अक्कोसे।
सक्कार - पुरक्कारे,
चरित्तमोहम्मि सत्तेते॥१॥

चरित्रमोहनीये भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति?
गौतम! सप्त परीषहाः समवतरन्ति, तद्यथा—
अरतिः अचेलः स्त्री,
निषीधिका याचना च आक्रोशः।
सत्कार - पुरस्कारः,
चरित्रमोहे सप्तैते॥

३२१. भंते! चारित्र मोहनीय में कितने परीषहों का समवतार होता है?
गौतम! चारित्र मोहनीय कर्म में सात परीषहों का समवतार होता है, जैसे—
अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार—चरित्र मोहनीय कर्म में इन सात परीषहों का समवतार होता है।

३२२. अंतराइए णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति?
गोयमा! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ॥

आन्तरायिके भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति?
गौतम! एकः अलाभपरीषहः समवतरति।

३२२. भंते! अंतराय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?
गौतम! अंतराय कर्म में एक अलाभ परीषह का समवतार होता है।

३२३. सत्तविहबंधगस्स णं भंते! कति परीसहा पण्णत्ता?

गोयमा! बावीसं परीसहा पण्णत्ता। वीसं पुण वेदेइ—जं समयं सीय-परीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिण-परीसहं वेदेइ, जं समयं उसिण-परीसहं वेदेइ नो तं समयं सीय-परीसहं वेदेइ, जं समयं चरिया-परीसहं वेदेइ नो तं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ, जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ॥

सप्तविधबन्धकस्य भदन्त! कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! द्वाविंशतिः परीषहाः प्रज्ञप्ताः। विंशतिः पुनः वेदयति—यं समयं शीतपरीषहं वेदयति नो तं समयम् उष्णपरीषहं वेदयति, यं समयं उष्णपरीषहं वेदयति नो तं समयं शीतपरीषहं वेदयति, यं समयं चर्यापरीषहं वेदयति, नो तं समयं निषीधिकापरीषहं वेदयति, यं समयं निषीधिका परीषहं वेदयति नो तं समयं चर्या-परीषहं वेदयति॥

३२३. भंते! सात प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! सात प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के बाईस परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन बीस परीषहों का करता है—जिस समय शीत परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण परीषह का वेदन नहीं करता है, जिस समय उष्ण परीषह का वेदन करता। उस समय शीत परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या परीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्या परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय निषद्या परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या परीषह का वेदन नहीं करता।

३२४. एवं अट्ठविहबंधगस्स वि॥

एवम् अष्टविधबन्धकस्यापि।

३२४. इसी प्रकार आठ प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के परीषह की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२५. छव्विहबंधगस्स णं भंते! सरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
गोयमा! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता। बारस पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीय-परीसहं वेदेइ, जं समयं चरियापरीसहं वेदइ नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ॥

षड्विधबन्धकस्य भदन्त! सरागछद्मस्थस्य कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! चतुर्दश परीषहाः प्रज्ञप्ताः। द्वादश पुनः वेदयति-यं समयं शीतपरीषहं वेदयति नो तं समयं उष्णपरीषहं वेदयति, यं समयं उष्णपरीषहं वेदयति नो तं समयं शीतपरीषहं वेदयति, यं समयं चर्यापरीषहं वेदयति, नो तं समयं शय्यापरीषहं वेदयति, यं समयं शय्यापरीषहं वेदयति, नो तं समयं चर्यापरीषहं वेदयति।

३२५. भंते! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ के चौदह परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन बारह परीषहों का करता है—जिस समय शीत परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय उष्ण परीषह का वेदन करता है, उस समय शीत परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या परीषह का वेदन करता है, उस समय शय्या परीषह का वेदन नहीं करता, जिस समय शय्या परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या परीषह का वेदन नहीं करता।

३२६. एक्कविहबंधगस्स णं भंते! वीयरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
गोयमा! एवं चेव—जहेव छव्विहबंधगस्स॥

एकविधबन्धकस्य भदन्त! वीतरागछद्मस्थस्य कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! एवं चैव—यथैव षड्विधबन्धकस्य।

३२६. भंते! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले वीतराग छद्मस्थ के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ की भांति व्यक्तव्यता।

३२७. एगविहबंधगस्स णं भंते! सजोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता। नव पुण वेदेइ। सेसं जहा छव्विहबंधगस्स॥

एकविधबन्धकस्य भदन्त! सयोगिभवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! एकादश परीषहाः प्रज्ञप्ताः। नव पुनः वेदयति। शेषं यथा षड्विधबन्धकस्य।

३२७. भंते! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सयोगी भवस्थ केवली के ग्यारह परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन नौ परीषहों का करता है। शेष छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ की भांति वक्तव्य है।

३२८. अबंधगस्स णं भंते! अयोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता। नव पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदइ, जं समयं चरिया-परीसहं वेदेइ नो तं समयं सेज्जा-परीसहं वेदइ, जं समयं सेज्जा-परीसहं वेदेइ नो तं समयं चरिया-परीसहं वेदेइ॥

अबन्धकस्य भदन्त! अयोगिभवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! एकादश परीषहाः प्रज्ञप्ताः। नव पुनः वेदयति— यं समयं शीतपरीषहं वेदयति नो तं समयम् उष्णपरीषहं वेदयति, यं समयम् उष्णपरीषहं वेदयति नो तं समयं शीतपरीषहं वेदयति, यं समयं चर्यापरीषहं वेदयति नो तं समयं शय्यापरीषहं वेदयति, यं समयं शय्या परीषहं वेदयति नो तं समयं चर्यापरीषहं वेदयति।

३२८. भंते! कर्म का बंध न करने वाले अयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! कर्म का बंध न करने वाले अयोगी भवस्थ केवली के ग्यारह परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन नौ परीषहों का करता है। जिस समय शीत परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय उष्ण परीषह का वेदन करता है, उस समय शीत परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या परीषह का वेदन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है, उस समय शय्या परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय शय्या परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या परीषह का वेदन नहीं करता।

भाष्य

१. सूत्र ३१५-३२८

प्रस्तुत आलापक में कर्म प्रकृति[1] और परीषह के संबंध का प्रतिपादन किया गया है।

भूख, प्यास आदि अनेक शारीरिक, मानसिक और परिस्थितिजनित समस्याएं हैं। उनकी संज्ञा परीषह है।[2] मुनि के लिए विधान है कि वह परीषह पर विजय पाए।

उमास्वाति ने परीषह विजय के दो उद्देश्य बतलाए हैं–

मार्गाच्यवन और निर्जरा।[3]

प्रज्ञा परीषह और ज्ञान परीषह–ये दोनों परीषह ज्ञान से संबद्ध है इसलिए इनका समवतार ज्ञानावरणीय कर्म में होता है। उत्तराध्ययन[4] में ज्ञान के स्थान पर अज्ञान परीषह का उल्लेख मिलता है। अभयदेव सूरि ने ज्ञान परीषह के दो अर्थ किए हैं–

१. ज्ञान होने पर मद का वर्जन।

२. ज्ञान न होने पर दीनता का परिवर्जन।[5]

सिद्धसेन गणि ने ज्ञान परीषह की व्याख्या की है। उनके अनुसार अपने विशिष्ट ज्ञान का गर्व न करना ज्ञान परीषह जय है। अज्ञान ज्ञान का प्रतिपक्ष है। वह भी परीषह बनता है। तप आदि के अनुष्ठान द्वारा अज्ञान पर विजय पाई जा सकती है।[6]

अकलंक ने अज्ञान परीषह जय का उल्लेख किया है।[7] भगवती के कुछ आदर्शों में अज्ञान–'अन्नाणं' पाठ भी मिलता है। अकलंक ने अकार को लुप्त मानकर अज्ञानपरक व्याख्या की है और सिद्धसेन गणि ने अकार को लुप्त नहीं माना इसलिए उन्होंने ज्ञानपरक व्याख्या की है। तात्पर्यार्थ में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान में अहंकार न हो और अज्ञान में दीनता का भाव न हो, यह प्रतिपक्ष परक अर्थ ज्ञान और अज्ञान–दोनों में विवक्षित है।

वेदन का संबंध वेदनीय कर्म से है इसलिए भूख, प्यास आदि ग्यारह परीषहों का समवतार वेदनीय कर्म में किया गया है। "पंचेव आणुपुव्वी"–इस पद के द्वारा एक क्रम में आने वाले भूख, प्यास, शीत, उष्ण और दंशमशक–इन पांच परीषहों का ग्रहण किया गया है।

अभयदेव सूरि ने इस प्रकरण में एक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी और दंशमशक का निमित्त पाकर जो वेदना अथवा पीड़ा होती है, वह वेदनीय कर्म से उत्पन्न है। मच्छर काटता है, सर्दी लगती है, गर्मी लगती है–वह वेदनीय कर्म से उत्पन्न नहीं है। भूख, प्यास आदि परीषहों को सहन करना चारित्र है। उसका संबंध चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से है।[8]

आत्मा, पुनर्जन्म आदि परोक्ष तत्त्वों के प्रति होने वाला संशय मन को विचलित कर देता है। इस स्थिति में दर्शन एक परीषह बन जाता है। इस संशय का कारण दर्शन मोहनीय कर्म है। इसलिए दर्शन परीषह का समवतार दर्शन मोहनीय कर्म में किया गया है। उमास्वाति ने दर्शन परीषह के स्थान पर अदर्शन परीषह का उल्लेख किया है।[9]

चारित्र धर्म में अरुचि पैदा हो जाती है, मन चारित्र में रमण नहीं करता, इसका हेतु अरति मोहनीय कर्म है। इसलिए अरति परीषह का समवतार अरति मोहनीय कर्म में किया गया है।

वस्त्र लज्जा निवारण के लिए होता है। अचेल रहना एक परीषह है। इसका समवतार जुगुप्सा मोहनीय कर्म में होता है। स्त्री परीषह का समवतार पुरुष वेद मोहनीय कर्म में होता है।

अभयदेव सूरि ने स्त्री परीषह के प्रतिपक्ष के रूप में पुरुष परीषह का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार पुरुष परीषह का समवतार स्त्री वेद-मोहनीय कर्म में होता है।[10]

निषद्या–एकांत भूमि में उपसर्ग के भय की संभावना रहती है इसलिए इसका समवतार भय मोहनीय कर्म में किया गया है। याचना के क्षण में अभिमान समस्या पैदा करता है इसलिए याचना परीषह का समवतार मान मोहनीय कर्म में किया गया है।

आक्रोश परीषह का क्रोध मोहनीय कर्म और सत्कार-पुरस्कार परीषह का मान मोहनीय कर्म में समवतार होता है।

सामान्यतः इन सबका समावेश चारित्र मोहनीय में होता है। इष्ट वस्तु की प्राप्ति में बाधक अंतराय कर्म है इसलिए अलाभ परीषह का समवतार अंतराय-कर्म में होता है।[11]

परीषह उत्पत्ति के कारण इस प्रकार बताए गए हैं–

---

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य ६. ३३-३४ का भाष्य।

२. द्रष्टव्य उत्तर., अध्ययन २ का आमुख और टिप्पण।

३. त. सू. ९. ८।

४. उत्तर. २ ४२-४३।

५. भ. वृ. ८ ३१६–ज्ञानं मत्यादि तत्परिषहणं च तस्य विशिष्टस्य सद्भावे मदवर्जनमभावे च दैन्यपरिवर्जनं ग्रंथांतरे त्वज्ञानपरीषह इति पठ्यते।

६. त. सू. भा. वृ. १./१–ज्ञानं तु श्रुतास्त्र्यं चतुर्दशपूर्वाण्येकादशांगानि, समस्तश्रुतधरोऽहमिति गर्वमुद्वहते तत्त्यागगर्वकरणात् ज्ञानपरीषहजयः। ज्ञानप्रतिक्षेपणाप्यज्ञानेनागमशून्यतया परीषहो भवति, ज्ञानावरणक्षयोपशमोदयविजृम्भितमेतदिति स्वकृतकर्मफलपरिभोगादपैति तपोनुष्ठानेन चेत्येवमालोचयतो ज्ञानपरीषहजयो भवति।

७. त. रा. वा. ९/९ की वृत्ति।

८. भ. वृ. ८/३१९–पंचेव आणुपुव्वीति क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकपरीषहा इत्यर्थः एतेषु च पीडैव वेदनीयोत्थाः तदधिसहनं तु चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादिसंभवं अधिसहनस्य चारित्ररूपत्वादिति।

९. त. सू. भा. वृ. ९./९ तथा उसका भाष्य।

१०. भ. वृ. ८/३२१–स्त्रीपरीषहपुरुषवेदमोहे स्त्र्यपेक्षा तु पुरुषपरीषहः स्त्रीवेदमोहे, तत्त्वतः स्त्र्याद्यभिलाषस्वरूपत्वात्तस्य।

११. वही ८/३२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीषह	उत्पत्ति का कारण कर्म
१. प्रज्ञा	ज्ञानावरणीय कर्म
२. अज्ञान	ज्ञानावरणीय कर्म
३. अलाभ	अन्तराय
४. अरति	चारित्र मोहनीय कर्म
५. अचेल	चारित्र मोहनीय कर्म
६. स्त्री	चारित्र मोहनीय कर्म
७. निषद्या	चारित्र मोहनीय कर्म
८. याचना	चारित्र मोहनीय कर्म
९. आक्रोश	चारित्र मोहनीय कर्म
१०. सत्कार-पुरस्कार	चारित्र मोहनीय कर्म
११. दर्शन	दर्शन मोहनीय कर्म
१२. क्षुधा	वेदनीय कर्म
१३. पिपासा	वेदनीय कर्म
१४. शीत	वेदनीय कर्म
१५. उष्ण	वेदनीय कर्म
१६. दंश मशक	वेदनीय कर्म
१७. चर्या	वेदनीय कर्म
१८. शय्या	वेदनीय कर्म
१९. वध	वेदनीय कर्म
२०. रोग	वेदनीय कर्म
२१. तृण स्पर्श	वेदनीय कर्म
२२. जल्ल[1]	वेदनीय कर्म

कर्मबंध की पांच भूमिकाएं हैं–

१. आयुष्य कर्म का बंध नहीं होता, उस क्षण में प्राणी सप्तविध कर्म का बंधक होता है।[1]

२. आयुष्य कर्म के बंधकाल में प्राणी अष्टविध कर्म का बंधक होता है।

३. सराग छद्मस्थ आयु और मोह कर्म की वर्जना कर षड्विध कर्म का बंधक होता है।

४. वीतराग छद्मस्थ एकविध कर्म का बंधक होता है।

५. सयोगी-भवस्थ केवली एकविध कर्म का बंधक होता है।

६. अयोगी-भवस्थ केवली कर्म का अबंधक होता है।

तत्त्वार्थ सूत्र में युगपत् उन्नीस परीषहों की भजना (विकल्प) बतलाई गई है।[2] भाष्य के अनुसार चर्या, शय्या और निषद्या-इनमें से किसी एक के होने पर शेष दो का अभाव होता है।[3] सप्तविध बंधक के प्रकरण में चर्या और निषद्या का विरोध बतलाया गया है। षड्विध बंधक के प्रकरण में चर्या और शय्या का विरोध बतलाया गया है। अभयदेव सूरि के अनुसार सप्तविध बंधक में औत्सुक्य होता है, इसलिए वह चर्या के मध्यावधि में अल्पकालिक शय्या का प्रयोग कर लेता है। इस अपेक्षा से चर्या और निषद्या का विरोध बतलाया गया है।[4]

द्रष्टव्य–सप्तविधादि बंधक के साथ परीषहों के साहचर्य का यंत्र–

कर्म बंधक	परीषह	वेदन
सप्तविध और अष्टविध बंधक जीवों के	बाईस (२२)	उत्कृष्ट एक साथ बीस (२०) परीषह।
षड्विध बंधक सराग छद्मस्थ के	चौदह (१४)	उत्कृष्ट एक साथ बारह (१२) परीषह।
एकविध बंधक वीतराग छद्मस्थ के	चौदह (१४)	उत्कृष्ट एक साथ बारह (१२) परीषह।
एकविध बंधक सयोगी भवस्थ केवली के	ग्यारह (११)	उत्कृष्ट एक साथ नौ (९) परीषह।
अबंधक अयोगी भवस्थ केवली के	ग्यारह (११)	उत्कृष्ट एक साथ नौ (९) परीषह।

सूरिय-पदं

३२९. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति? मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति? अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति?

हंता गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति, अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति॥

सूर्य-पदम्

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ उद्गमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते? मध्यान्तिकमुहूर्ते मूले च दूरे च दृश्येते? अस्तमनमुहूर्ते च दूरे च मूले च दृश्येते?

हन्त गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उद्गमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते, मध्यान्तिकमुहूर्ते मूले च दूरे च दृश्येते, अस्तमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते।

सूर्य-पद

३२९. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं? मध्याह्न के मुहूर्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं? अस्तगन के मुहूर्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते है?

हां, गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं। मध्याह्न के मुहूर्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं। अस्तमन के मुहूर्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।

---

१. उत्तरा. नि. गा. ८३-९८।

२. त. सू. ९/१६।

३. त. सू. भा. वृ. ८/१७–तथा चर्याशय्यानिषद्यापरीषहाणामेकस्य संभवे द्वयोरभावः।

४. भ. वृ. ८ ३२३–अथ नैषेधिकीवच्छय्यापिचर्यया सह विरुद्धेति न तयोरेकदा संभवस्तत्राश्चैकोनविंशतिरेव परीषहाणामुत्कर्षेणकदा वेदनं प्राप्नोतीति चेत्, यतोग्रामदिगमनप्रवृत्तौ यदा कश्चिदौत्सुक्यादनिवृत्ततत्परिणाम एव विश्राम भोजनाद्यर्थमित्वरशय्यायां वर्तते तदोभयमप्यविरुद्धमेव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३०. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि, मज्झंतियमुहु-त्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं?
हंता गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि, मज्झं-तियमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं॥

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ उद्गमनमुहूर्ते, मध्यान्तिकमुहूर्ते च, अस्तमनमुहूर्ते च सर्वत्र समौ उच्चत्वेन?

हन्त गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उद्गमन-मुहूर्ते, मध्यान्तिकमुहूर्ते च, अस्तमनमुहूर्ते च सर्वत्र समौ उच्चत्वेन।

३३०. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं?
हां, गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में, मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं।

३३१. जइ णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि, मज्झं-तियमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं, से केणं खाइ अट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति? जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति?
गोयमा! लेसापडिघाएणं उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, लेसाभितावेणं मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति, लेसापडिघा-एणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति॥

यदि भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उद्गमन-मुहूर्ते, मध्यान्तिकमुहूर्ते च, अस्तमनमुहूर्ते च सर्वत्र समौ उच्चत्वेन, तत्केन 'खाइ' अर्थेन भदन्त! एवमुच्यते–जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उद्गमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते? यावत् अस्तमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते?

गौतम! लेश्याप्रतिघातेन उद्गमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते, लेश्याभितापेन मध्या-न्तिकमुहूर्ते मूले च दूरे च दृश्येते, लेश्या-प्रतिघातेन अस्तमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते– जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उद्गमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते यावत् अस्तमनमुहूर्ते दूरे च मूले च दृश्येते।

३३१. भंते! यदि जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में, मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं तो यह कैसे कहा जाता है–जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते है?
गौतम! तेज का प्रतिघात होने के कारण उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं, तेज का अभिताप होने के कारण मध्याह्न के मुहूर्त्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं, तेज का प्रतिघात होने के कारण अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।
गौतम! इस कारण से यह कहा जाता है–जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य उदय के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं यावत् अस्तगन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।

३३२. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति? पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति? अणागयं खेत्तं गच्छंति?

गोयमा! नो तीयं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति, नो अणागयं खेत्तं गच्छंति॥

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ किम् अतीतं क्षेत्रं गच्छतः? प्रत्युत्पन्नं क्षेत्रं गच्छतः? अनागतं क्षेत्रं गच्छतः?

गौतम! नो अतीतं क्षेत्रं गच्छतः, प्रत्युत्पन्नं क्षेत्रं गच्छतः, नो अनागतं क्षेत्रं गच्छतः।

३३२. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में गमन करते हैं? वर्तमान क्षेत्र में गमन करते हैं? अनागत क्षेत्र में गमन करते हैं?
गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में गमन नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र में गमन करते हैं, अनागत क्षेत्र में गमन नहीं करते।

३३३. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं ओभासंति? पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति? अणागयं खेत्तं ओभासंति?

गोयमा! नो तीयं खेत्तं ओभासंति,

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ किम् अतीतं क्षेत्रम् अवभासयतः? प्रत्युत्पन्नं क्षेत्रम् अवभासयतः? अनागतं क्षेत्रम् अवभा-सयतः?

गौतम! नो अतीतं क्षेत्रम् अवभासयतः,

३३३. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र को अवभासित करते हैं? वर्तमान क्षेत्र को अवभासित करते हैं? अनागत क्षेत्र को अवभासित करते हैं?
गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति, नो अणागयं खेत्तं ओभासंति॥

प्रत्युत्पन्नं क्षेत्रम् अवभासयतः, नो अनागतं क्षेत्रम् अवभासयतः।

को अवभासित नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र को अवभासित करते हैं, अनागत क्षेत्र को अवभासित नहीं करते।

३३४. तं भंते! किं पुट्ठं ओभासंति? अपुट्ठं ओभासंति?

गोयमा! पुट्ठं ओभासंति, नो अपुट्ठं ओभासंति जाव नियमा छद्दिसिं॥

तत् भदन्त! किं स्पृष्टम् अवभासयन्ति अस्पृष्टम् अवभासयन्ति?

गौतम! स्पृष्टम् अवभासयन्ति, नो अस्पृष्टम् अवभासयन्ति यावत् नियमात् षड्दिशम्।

३३४. भंते! क्या सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं? अथवा अस्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं?
गौतम! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित नहीं करते यावत् नियमतः छहों दिशाओं को अवभासित करते हैं।

३३५. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं उज्जोवेंति?
एवं चेव जाव नियमा छद्दिसिं॥

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ किम् अतीतं क्षेत्रम् उद्योतयतः?
एवं चैव यावत् नियमात् षड्दिशम्।

३३५. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं?
गौतम! इसी प्रकार यावत् नियमतः छहों दिशाओं को उद्योतित करते हैं।

३३६. एवं तवेंति, एवं भासंति जाव नियमा छद्दिसिं॥

एवं तपयतः एवं भासयतः यावत् नियमात् षड्दिशम्।

३३६. इसी प्रकार तप्त और प्रभासित की वक्तव्यता यावत् नियमतः छहों दिशाओं को तप्त और प्रभासित करते हैं।

३३७. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरियाणं किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ? पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ? अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ?
गोयमा! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ, नो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ॥

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्याभ्यां किम् अतीते क्षेत्रे क्रिया क्रियते? प्रत्युत्पन्ने क्षेत्रे क्रिया क्रियते? अनागते क्षेत्रे क्रिया क्रियते?

गौतम! नो अतीते क्षेत्रे क्रिया क्रियते, प्रत्युत्पन्ने क्षेत्रे क्रिया क्रियते? नो अनागते क्षेत्रे क्रिया क्रियते।

३३७. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में क्रिया करते हैं? वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं? अनागत क्षेत्र में क्रिया करते हैं?
गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं, अनागत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते।

३३८. सा भंते! किं पुट्ठा कज्जइ? अपुट्ठा कज्जइ?
गोयमा! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव नियमा छद्दिसिं॥

सा भदन्त! किं स्पृष्टा क्रियते? अस्पृष्टा क्रियते?
गौतम! स्पृष्टा क्रियते, नो अस्पृष्टा क्रियते यावत् नियमात् षड्दिशम्।

३३८. भंते! क्या वह क्रिया स्पृष्ट होती है? अस्पृष्ट होती है?
गौतम! वह क्रिया स्पृष्ट होती है, अस्पृष्ट नहीं होती यावत् नियमतः छहों दिशाओं में स्पृष्ट होती है।

३३९. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया केवतियं खेत्तं उड्ढं तवंति? केवतियं खेत्तं अहे तवंति? केवतियं खेत्तं तिरियं तवंति?
गोयमा! एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति, अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति, सीयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीसं च सट्ठिभाए

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ कियन्तं क्षेत्रम् ऊर्ध्वं तपतः? कियन्तं क्षेत्रम् अधः तपतः? कियन्तं क्षेत्रं तिर्यग् तपतः?

गौतम! एकं योजनशतम् ऊर्ध्वं तपतः, अष्टादश योजनशतानि अधः तपतः, सप्तचत्वारिंशत् योजनशतानि द्वे च त्रैशष्टे योजनशते एकविंशति च षष्टिभागान्

३३९. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य कितने ऊर्ध्व क्षेत्र में तपते हैं? कितने अधो क्षेत्र में तपते हैं? कितने तिर्यक् क्षेत्र में तपते हैं?
गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य ऊर्ध्व क्षेत्र में एक सौ योजन में तपते है, अधो क्षेत्र में अठारह सौ योजन में तपते हैं, तिर्यक् क्षेत्र में सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोयणस्स तिरियं तवंति॥

योजनस्य तिर्यग् तपतः।

इक्कीस/साठ (४२१६३ २१/६०) योजन क्षेत्र में तपते हैं।

जोइसियाणं उववत्ति-पदं

३४०. अंतो णं भंते! माणुसुत्तर-पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिय-गह-गणणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववन्नगा?
जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेसं जाव–

ज्योतिष्काणाम् उपपत्ति-पदम्

अन्तः भदन्त! मानुषोत्तरपर्वतस्य ये चन्द्रमस्सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूपाः ते भदन्त! देवाः किम् उर्ध्वोपपन्नकाः?
यथा जीवाभिगमे तथैव निरवशेषं यावत्–

ज्योतिष्कों का उपपत्ति-पद

३४०. भंते! मानुषोत्तर पर्वत के अंतर्वर्ती जो चंद्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप हैं, भंते! वे देव क्या ऊर्ध्व उपपन्नक हैं?
जीवाभिगम की भांति निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत्–

३४१. इंदट्ठाणे णं भंते! केवतियं कालं विरहिए उववाएणं?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा॥

इन्द्रस्थानं भदन्त! कियन्तं कालं विरहितम् उपपातेन?
गौतम! जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण षण्मासान्।

३४१. भंते! इन्द्रस्थान उपपात से कितने काल तक विरहित रहता है?
गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास।

३४२. बहिया णं भंते! माणुसुत्तर-पव्वयस्स जे चंदिय-सूरिय-गह-गण-णक्खत्त-तारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववन्नगा?
जहा जीवाभिगमे जाव–

बहिः भदन्त! मानुषोत्तरपर्वतस्य ये चन्द्रमस्सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूपाः ते भदन्त! देवाः किम् उर्ध्वोपपन्नकाः?

यथा जीवाभिगमे यावत्–

३४२. भंते! मानुषोत्तर पर्वत के बाह्यवर्ती चंद्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप हैं। भंते! वे क्या ऊर्ध्व उपपन्नक हैं?

जीवाभिगम की भांति वक्तव्यता यावत्–

३४३. इंदट्ठाणे णं भंते! केवतियं कालं उववाएणं विरहिए पण्णत्ते?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा॥

इन्द्रस्थानं भदन्त! कियन्तं कालम् उपपातेन विरहितं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण षण्मासान्।

३४३. भंते! इन्द्रस्थान उपपात से कितने काल तक विरहित प्रज्ञप्त है?
गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास।

३४४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति!

३४४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देशक : नौवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
बंध-पदं	**बन्ध-पदम्**	**बंध-पद**
३४५. कतिविहे णं भंते! बंधे पण्णत्ते!	कतिविधः भदन्त! बन्धः प्रज्ञप्तः?	३४५. भंते! बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–पयोगबंधे य, वीससाबंधे य॥	गौतम! द्विविधः बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रयोगबन्धश्च, विस्रसाबन्धश्च।	गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–प्रयोग बंध, विस्रसा बंध।
वीससाबंध-पदं	**विस्रसाबंध-पदम्**	**विस्रसा बंध-पद**
३४६. वीससाबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?	विस्रसाबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?	३४६. भंते! विस्रसा बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–सादीयवीससाबंधे य, अणादीयवीससाबंधे य॥	गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–सादिक-विस्रसाबन्धश्च, अनादिकविस्रसाबन्धश्च।	गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे–सादिक विस्रसा बंध, अनादिक विस्रसा बंध।
३४७. अणादियवीससाबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?	अनादिकविस्रसाबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?	३४७. भंते! अनादिक विस्रसा बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीय-वीससाबंधे, अधम्मत्थिकायअण्ण-मण्णअणादीयवीससाबंधे, आगासत्थि-कायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे॥	गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसा-बन्धः, अधर्मास्तिकाय-अन्योन्यअनादिक-विस्रसा-बन्धः, आकाशास्तिकायअन्योन्य-विस्रसाबन्धः।	गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसा बंध, अधर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक विस्रसा बंध, आकाशास्तिकाय अन्योन्य-अनादिक विस्रसा बंध।
३४८. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणा-दीयवीससाबंधे णं भंते! किं देस-बंधे? सव्वबंधे?	धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसा-बन्धः भदन्त! किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?	३४८. भंते! धर्मास्तिकाय अन्योन्य अनादिक विस्रसा बंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गोयमा! देसबंधे, नो सव्वबंधे। एवं अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीय-वीससाबंधे वि, एवं आगासत्थि-कायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे वि॥	गौतम! देशबन्धः, नो सर्वबन्धः। एवम् धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसा-बन्धोऽपि, एवम् आकाशास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसाबन्धोऽपि।	गौतम! देश बंध है, सर्व बंध नहीं है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय अन्योन्य अनादिक विस्रसा बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय अन्योन्य अनादिक विस्रसा बंध की वक्तव्यता।
३४९. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणा-दीयवीससाबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?	धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिकविस्रसा-बन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?	३४९. भंते! धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक विस्रसा बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?
गोयमा! सव्वद्धं। एवं अधम्मत्थि-	गौतम! सर्वाद्धम्। एवम् अधर्मास्तिकाय-	गौतम! सर्व काल तक। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे वि, एवं आगासत्थिकायअण्ण-मण्णअणादीयवीससाबंधे वि॥

अन्योन्य-अनादिकविस्रसाबन्धोऽपि, एवम् आकशास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबन्धोऽपि।

अधर्मास्तिकाय अन्योन्य अनादिक विस्रसा बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय अन्योन्य अनादिक विस्रसा बंध की वक्तव्यता।

३५०. सादीयवीससाबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणपच्चइए, भायणपच्चइए, परिणामपच्चइए॥

सादिकविस्रसाबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—बन्धन प्रत्ययिकः, भाजनप्रत्ययिकः, परिणाम-प्रत्ययिकः।

३५०. भंते! सादिक विस्रसा बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—बंधन प्रत्ययिक, भाजन प्रत्ययिक, परिणाम प्रत्ययिक।

३५१. से किं तं बंधणपच्चइए?
बंधणपच्चइए—जण्णं परमाणु-पोग्गलदुप्पदेसियतिप्पदेसिय जाव दसपदेसियसंखेज्जपदेसियअसंखेज्ज-पदेसिय-अणंतपदेसियाणं खंधाणं वेमायनिद्धयाए, वेमायलुक्खयाए, वेमायनिद्धलुक्खयाए बंधणपच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। सेत्तं बंधणपच्चइए॥

अथ किं तत् बंधनप्रत्ययिकः?
बंधनप्रत्ययिकः—यत् परमाणुपुद्गल द्वि-प्रदेशिकः त्रिप्रदेशिकः यावत् दशप्रदेशिक-संख्येयप्रदेशिक-असंख्येयप्रदेशिकअनन्त-प्रदेशिकानां स्कन्धानां विमात्रस्निग्धतया, विमात्ररूक्षतया, विमात्रस्निग्धरूक्षतया बन्धनप्रत्ययेन बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। सः एषः बन्धनप्रत्ययिकः।

३५१. वह बंधन प्रत्ययिक क्या है?
बंधन प्रत्ययिक—परमाणु पुद्गल, द्वि-प्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् दश-प्रदेशिक, संख्येय प्रदेशिक, असंख्येय प्रदेशिक, अनंत प्रदेशिक स्कंधों की विमात्र (विषम मात्रा वाली) स्निग्धता, विमात्र रूक्षता, विमात्र स्निग्ध-रूक्षता से होने वाले बंधन-प्रत्यय के कारण जो बंध-उत्पन्न होता है, वह बंधन प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः असंख्येय काल है। यह है बंधन प्रत्ययिक।

३५२. से किं तं भायणपच्चइए?
भायणपच्चइए—जण्णं जुण्णसुरजुण्ण-गुल-जुण्णतंदुलाणं भायण-पच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्ज कालं। सेत्तं भायणपच्चइए॥

अथ किं तत् भाजनप्रत्ययिकः?
भाजनप्रत्ययिकः—यत् जीर्णसुरा-जीर्णगुड-जीर्णतन्दुलानां भाजनप्रत्ययेन बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्। सः एषः भाजनप्रत्ययिकः।

३५२. वह भाजन प्रत्ययिक क्या है?
भाजन प्रत्ययिक—जीर्ण सुरा, जीर्ण गुड, जीर्ण तंदुलों का भाजन-प्रत्यय के कारण जो बंध उत्पन्न होता है, वह भाजन प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः असंख्येय काल है। यह है भाजन प्रत्ययिक।

३५३. से किं तं परिणामपच्चइए?
परिणामपच्चइए—जण्णं अब्भाणं, अब्भरुक्खाणं, जहा ततियसए जाव अमोहाणं परिणामपच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा। सेत्तं परिणामपच्चइए। सेत्तं सादीय-वीससाबंधे। सेत्तं वीससाबंधे॥

अथ किं तत् परिणामप्रत्ययिकः? परिणाम-प्रत्ययिकः—यत् अभ्राणाम्, अभ्र-रूक्षाणां यथा तृतीयशते यावत् अमोघानां परिणाम-प्रत्ययेन बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण षण्मासान्। सः एषः परिणामप्रत्ययिकः।
सः एषः सादिकविस्रसाबन्धः। सः एषः विस्रसाबन्धः।

३५३. वह परिणाम प्रत्ययिक क्या है?
परिणाम प्रत्ययिक—अभ्र, अभ्रवृक्ष जैसे—तीसरे शतक में यावत् अमोघा का परिणाम प्रत्यय के कारण जो बंध उत्पन्न होता है, वह परिणाम प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास है। यह है परिणाम प्रत्ययिक। यह है सादिक विस्रसा बंध। यह है विस्रसा बंध।

भाष्य

१. सूत्र ३४५-३५३

बंध स्वाभाविक और प्रायोगिक—दोनों प्रकार का होता है। स्वाभाविक बंध के दो प्रकार हैं—अनादि कालीन और सादिकालीन। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय—इनका प्रदेशात्मक अस्तित्व है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय—प्रत्येक के असंख्य प्रदेश परमाणु जितना भाग अवयव है। आकाश के दो विभाग हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश के असंख्य और अलोकाकाश के अनंत प्रदेश हैं। प्रत्येक अस्तिकाय के प्रदेशों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का परस्पर स्वभाविक संबंध है। वह अनादिकालीन है। इसका हेतु यह है–ये तीनों अस्तिकाय व्यापक हैं। प्रत्येक अस्तिकाय के प्रदेश व्यवस्थित हैं। उनका संकोच विस्तार नहीं होता। वे अपने स्थान को कभी नहीं छोड़ते।

बंध दो प्रकार का होता है–देश बंध और सर्व बंध। सांकल की कड़ियों का देश बंध होता है। एक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी रहती है किन्तु अंतर्भूत नहीं होती। क्षीर और नीर का संबंध सर्व बंध है।

धर्मास्तिकाय के प्रदेशों में परस्पर संस्पर्शात्मक संबंध है। अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेशों का भी यही नियम है। यदि इनके प्रदेशों का सर्व बंध हो तो एक प्रदेश में दूसरे प्रदेशों का अंतर्भाव हो जाएगा। इस स्थिति में प्रदेशों की स्वतंत्र अवस्थिति नहीं रह सकती।[1] यह संबंध अनादि अनंत है।

सादि स्वाभाविक बंध के तीन प्रकार बतलाए गए हैं–

१. बंधन प्रत्ययिक

२. भाजन प्रत्ययिक

३. परिणाम प्रत्ययिक

बंधन प्रत्ययिक

यह स्कंध निर्माण का सिद्धांत है। दो परमाणु मिलकर द्विप्रदेशी स्कंध का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार तीन परमाणु मिलकर तीन प्रदेशी, चार परमाणु मिलकर चार प्रदेशी यावत् अनंत परमाणु मिलकर अनंत प्रदेशी स्कंध का निर्माण करते हैं। इस बंधन के तीन हेतु बतलाए गए हैं–

१. विमात्र स्निग्धता

२. विमात्र रूक्षता

३. विमात्र स्निग्ध रूक्षता

समगुण स्निग्ध का समगुण स्निग्ध परमाणु के साथ बंध नहीं होता। समगुण रूक्ष परमाणु का समगुण रूक्ष परमाणु के साथ बंध नहीं होता। स्निग्धता और रूक्षता की मात्रा विषम होती है, तब परमाणुओं का परस्पर बंध होता है।[2] प्रज्ञापना में विसदृश और सदृश दोनों प्रकार के बंधनों का निर्देश है।[3] प्रस्तुत आगम में विसदृश बंध का विवरण नहीं है।

सदृश बंध का नियम–प्रज्ञापना के अनुसार स्निग्ध परमाणुओं का स्निग्ध परमाणुओं के साथ, रूक्ष परमाणुओं का रूक्ष परमाणुओं के साथ संबंध दो अथवा उनसे अधिक गुणों का अंतर मिलने पर होता है। उनका समान गुण वाले अथवा एक गुण अधिक वाले परमाणु के साथ संबंध नहीं होता।

स्निग्ध के साथ स्निग्ध के बंध का नियम–स्निग्ध का दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ बंध होता है।

रूक्ष के साथ रूक्ष के बंध का नियम–रूक्ष का दो गुण अधिक रूक्ष के साथ बंध होता है।

उत्तराध्ययन चूर्णि में इसे उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया गया है–एक गुण स्निग्ध का तीन गुण स्निग्ध के साथ बंध होता है। तीन गुण स्निग्ध का पांच गुण स्निग्ध के साथ बंध होता है। पांच गुण स्निग्ध का सात गुण स्निग्ध के साथ बंध होता है। इस सदृश बंध में जघन्य वर्जन का नियम लागू नहीं है। रूक्ष के सदृश बंध का भी यही नियम है।[4]

विसदृश बंध के नियम–स्निग्ध के साथ रूक्ष के बंध का नियम–जघन्य गुण का बंध नहीं होता–एक गुण स्निग्ध का एक गुण रूक्ष के साथ बंध नहीं होता। द्विगुण स्निग्ध का द्विगुण रूक्ष के साथ संबंध हो सकता है। यह सम गुण का बंध है। द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण, चतुर्गुण रूक्ष आदि के साथ संबंध होता है। यह विषम गुण का बंध है।[5] विसदृश संबंध में सम का संबंध और विषम का संबंध–ये दोनों नियम मान्य है।

षट्खण्डागम में प्रयोग बंध और विस्रसा बंध का वर्णन व्यवस्थित रूप में मिलता है।[6]

प्रज्ञापना पद (१३), उत्तराध्ययन चूर्णि पृ. १७ और भगवती जोड़ खण्ड-२ ढाल १५४ के अनुसार स्वीकृत यंत्र–

क्रमांक	गुणांश	सदृश	विसदृश
१.	जघन्य+एकाधिक	नहीं	नहीं
२.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
३.	जघन्य+द्व्याधिक	है	नहीं
४.	जघन्य+त्र्यादिअधिक	है	नहीं
५.	जघन्येतर+समजघन्येतर	है	है
६.	जघन्येतर+एकाधिकतर	है	है
७.	जघन्येतर+द्व्यधिकतर	है	है
८.	जघन्येतर+त्र्यादि अधिकतर	है	है

१. भ. वृ. ८/३८४–देशबंधेति देशतो देशापेक्षया बंधो देशबंधो यथा संकलिकाकटिकानां सव्वबंधेति सर्वतः सर्वात्मना बंध सर्वबंधो यथा क्षीर-नीरयोः देशबंधे तो सव्वबंधेनि धर्मास्तिकायस्य प्रदेशानां परस्पर संस्पर्शेन व्यवस्थितत्वाद्देशबंध एव न पुनः सर्वबंधः तत्र हि एकस्य प्रदेशस्य प्रदेशान्तरैः सर्वथा बंध अन्योन्यान्तर्भविनैक प्रदेशत्वमेव स्यात् नाऽसंख्येयप्रदेशत्वमिति।

२. वही, ८/३५१।

३. पण्ण. १३/२१/२२।

४. उत्तरा. चू. पृ. १७–एक गुण णिद्धो निगुणणिद्धेणं बज्झति, निगुणणिद्धो पंच गुणनिद्धेन पंचगुणो समगुणणिद्धेण एवं दुगाहिएण बंधो भवति, तहा दुगुण णिद्धो चउगुणणिद्धेण चउगुणणिद्धो छगुणणिद्धेण, छगुणणिद्धो अट्ठगुण-णिद्धेण, एवं णेयं लुक्खेवि एवं चेव।

५. पण्ण. १३/२१-२२ तथा प्रज्ञा. वृ. प. २८८।

६. ष. खं. पु. १४, खं. ५, भा. ४-५-६, २६-३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध के संबंध में सभी परम्पराएं सदृश नहीं हैं। द्रष्टव्य-यंत्र–

तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी टीका ५/३५ के अनुसार

क्रमांक	गुणांश	सदृश	विसदृश
१.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२.	जघन्य+ऐकाधिक	नहीं	है
३.	जघन्य+द्व्याधिक	है	है
४.	जघन्य+त्र्यादिअधिक	है	है
५.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	नहीं
६.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	है
७.	जघन्येतर+द्व्यधिकजघन्येतर	है	है
८.	जघन्येतर+ अधिकजघन्येतर	है	है

दिगम्बर-ग्रंथ सर्वार्थसिद्धि के अनुसार

क्रमांक	गुणांश	सदृश	विसदृश
१.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२.	जघन्य+एकाधिक	नहीं	नहीं
३.	जघन्य+द्व्याधिक	नहीं	नहीं
४.	जघन्य+त्र्यादिअधिक	नहीं	नहीं
५.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	नहीं
६.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं
७.	जघन्येतर+द्व्यधिकजघन्येतर	है	है
८.	जघन्येतर+त्र्यादि अधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं

दिगम्बर-ग्रंथ षड्खण्डागम के अनुसार

क्रमांक	गुणांश	सदृश	विसदृश
१.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२.	जघन्य+ऐकाधिक	नहीं	नहीं
३.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	है
४.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	है
५.	जघन्येतर+द्व्यधिकजघन्येतर	है	है
६.	जघन्येतर+त्र्यादि अधिकजघन्येतर	नहीं	है

तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार

क्रमांक	गुणांश	सदृश	विसदृश
१.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२.	जघन्य+एकादिअधिक	नहीं	नहीं
३.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	नहीं
४.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं
५.	जघन्येतर+द्व्यधिकजघन्येतर	है	है
६.	जघन्येतर+त्र्यादि अधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं

भाजन प्रत्ययिक बंध

भाजन में रखी हुई वस्तु का स्वरूप दीर्घकाल में बदल जाता है, वह भाजन प्रत्ययिक बंध है। जैसे पुरानी मदिरा अपने तरल रूप को छोड़कर गाढ़ी बन जाती है, जीर्ण गुड़ और जीर्ण तंदुल पिण्डीभूत हो जाते हैं।[1]

परिणाम प्रत्ययिक

परमाणु स्कंधों का बादल आदि अनेक रूपों में परिणमन होता है, वह परिणाम प्रत्ययिक बंध है।

द्रष्टव्य ८/१ का भाष्य।

१. भ. वृ. ८/३५२–तत्र जीर्ण सुरायाः स्यान्नीभवनलक्षणो बंधः जीर्णगुडस्य, जीर्णानां च तण्डुलानां च पिण्डीभवनलक्षणः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोगबंध-पदं

३५४. से किं तं पयोगबंधे?

पयोगबंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–अणादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से अणादीए अपज्ज-वसिए से णं अट्ठण्हं जीवमज्झपए-साणं, तत्थ वि णं तिण्हं-तिण्हं अणादीए अपज्जवसिए, सेसाणं सादीए। तत्थ णं जे से सादीए अपज्जवसिए से णं सिद्धाणं। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से णं चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–आला-वणबंधे, अल्लियावणबंधे, सरीर-बंधे, सरीर-प्पयोगबंधे॥

प्रयोगबन्ध-पदम्

अथ किं तत् प्रयोगबन्धः?

प्रयोगबन्धः त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– अना-दिकः वा अपर्यवसितः, सादिकः वा अपर्यव-सितः, सादिकः वा सपर्यवसितः। तत्र यः सः अनादिकः अपर्यवसितः सः अष्टानां जीव-मध्यप्रदेशानाम्, तत्रापि त्रयाणां-त्रयाणाम् अनादिकः अपर्यवसितः, शेषानां सादिकः। तत्र यः सः सादिकः अपर्यवसितः सः सिद्धानाम्। तत्र यः सः सादिकः सपर्यवसितः सः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– आलापनबन्धः, अल्लियावण-बन्धः, शरीरबन्धः, शरीरप्रयोगबन्धः।

प्रयोग बंध-पद

३५४. [1]वह प्रयोग बंध क्या है?

प्रयोग बंध तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–अनादिक अपर्यवसित, सादिक अपर्यवसित, सादिक सपर्यवसित।

जीव के आठ मध्यप्रदेशों का बंध अनादिक अपर्यवसित है, जीव के उन आठ मध्य प्रदेशों में तीन तीन प्रदेशों का एक एक प्रदेश के साथ होने वाला बंध अनादिक अपर्यवसित है। शेष प्रदेशों का बंध सादिक है। सिद्धों के जीव प्रदेशों का बंध सादिक-अपर्यवसित है। सादिक सपर्यवसित बंध चार प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे–आलापन बंध, आलीनकरण बंध, शरीर बंध, शरीर प्रयोग बंध।

भाष्य

१. सूत्र ३५४

जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होता रहता है। शरीर बड़ा होता है, जीव के प्रदेश फैल जाते हैं। शरीर छोटा होता है, वे संकुचित हो जाते हैं। समुद्घात की अवस्था में जीव के प्रदेश फैलते हैं। समुद्घात की संपन्नता पर संकुचित हो जाते है।[2] इसलिए जीव के प्रदेश बंध का अनादि विस्रसा बंध से पृथक् निर्देश किया गया है।

जीव के प्रदेश फैलते हैं और संकुचित होते हैं, इस अपेक्षा से उनका बंध है। प्रस्तुत आगम के पच्चीसवें शतक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीव–इनमें से प्रत्येक के आठ मध्यप्रदेश बतलाए गए हैं।[3] जीव के आठ प्रदेशों का बंध अनादि अपर्यवसित है इसलिए इनका बंध अनादि विस्रसा बंध होना चाहिए फिर भी जीव के अन्य प्रदेशों के अनवस्थित संबंध के कारण इन्हें प्रयोग बंध के विभाग में रखा गया है। अभयदेवसूरि ने प्रयोग बंध जीव के व्यापार से होने वाला प्रदेशों का संबंध किया है। इसका वैकल्पिक अर्थ है–जीव प्रदेशों का और औदारिक आदि पुद्गलों का संबंध।[4]

जीव के आठ मध्य प्रदेशों की स्थापना गोस्तन के आकार की है–

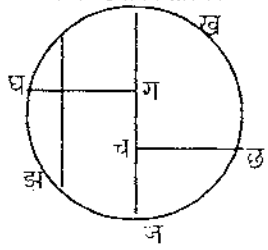

प्रस्तुत चित्र में आठ मध्य (रुचक) प्रदेश हैं। इनको क से झ तक संज्ञापित किया गया है। आठ मध्य प्रदेशों में तीन-तीन प्रदेशों का एक-एक प्रदेश के साथ अनादि अपर्यवसित बंध है। चार प्रदेशों का एक अधोवर्ती प्रतर तथा चार प्रदेशों का एक उपरिवर्ती प्रतर। उनमें से किसी एक विवक्षित प्रदेश का दो पार्श्ववर्ती प्रदेशों तथा एक अधोवर्ती प्रदेश से संबंध होता है। शेष चार व्यवहित हो जाते हैं इसलिए उनके साथ संबंध नहीं होता। जैसे क प्रदेश का संबंध क ख+क घ+क च से है। ख प्रदेश का संबंध ख क+ख ग+ख छ से है। घ प्रदेश का संबंध घ क +घ ग+घ झ से है। ग प्रदेश का संबंध ग ख+ग घ+ग ज से है। च प्रदेश का संबंध च छ+च झ+च क से है। छ प्रदेश का संबंध छ ज+छ च+छ ख से है। झ प्रदेश का संबंध झ ज+झ च+झ घ से है। ज प्रदेश का संबंध ज छ+ज ग+ज झ से है।

अभयदेव सूरि ने चूर्णि को अपनी व्याख्या का आधार बनाया है। टीकाकार की व्याख्या को दुर्बोध मानकर उसकी उपेक्षा की है।[5] वृत्तिकार ने चतुर्भंगी का निर्देश किया है–

१. जीव के आठ मध्य प्रदेशों का बंध अनादि अपर्यवसित और शेष प्रदेशों का बंध सादि।

२. अनादि अपर्यवसित–यह भंग शून्य है।

३. सादि अपर्यवसित–सिद्ध जीवों के प्रदेशों का संबंध सादि अपर्यवसित होता है। शैलेशी अवस्था चतुर्दश गुणस्थान में जीव प्रदेशों की जो रचना होती है, वह सिद्ध अवस्था में वैसी ही रहती है। उसका चलन नहीं होता।

४. सादि सपर्यवसित–इसके चार प्रकार हैं–आलापन बंध,

---

१. त. सू. भा. वृ. ५ १६–प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत्।

२. भग. २५ : २४०-२४४।

३. भ. वृ. ८ : ३५४–जीवव्यापारबंधः यः जीवप्रदेशानामौदारिकादि-पुद्गलानां वा।

४. वही, ८ : ३५४–तत्रापि तेष्वष्टासु जीवप्रदेशेषु मध्ये त्रयाणां त्रयाणामेकैकेन सहानादिरपर्यवसितो बंधः तथाहि–पूर्वोक्तप्रकारेणावस्थितानामष्टानाम्-परिणतप्रतरस्य यः कश्चिद् विवक्षितस्तस्य द्वौ पार्श्ववर्तिनावेकश्चाधोवर्तीत्येते त्रयः संबध्यन्ते शेषस्त्वेक उपरितनस्त्रयश्चाधस्तना न संबध्यन्ते व्यवहितत्वात् एवमधस्तनप्रतरापेक्षयाऽपीति चूर्णिकार व्याख्या, टीकाकारव्याख्या तु दुरवगमत्वात्परिहृतेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलीन-करण बंध, शरीर बंध, शरीर प्रयोग बंध।[1]

षट्खंडागम में जीव के आठ मध्य प्रदेशों के बंध को अनादि शरीरबंध कहा गया है।[2] सिद्धसेन गणि ने भाष्यानुसारिणी में आठ मध्य प्रदेशों की चर्चा की है।[3] तत्त्वार्थ वार्तिक में जीव के आठ मध्य प्रदेशों की अवस्थिति ऊपर और नीचे बनलाई गई। वे सदा परस्पर संबद्ध रहते हैं इसलिए उनका बंध अनादि होता है। जीव के अन्य प्रदेशों का कर्म के निमित्त से संहरण और विसर्पण होता रहता है इसलिए वे आदिमान हैं।[4]

आलावणं पडुच्च–

३५५. से किं तं आलावणबंधे?

आलावणबंधे–जण्णं तणभाराण वा, कट्ठभाराण वा, पत्तभाराण वा, पलालभाराण वा, वेत्तलता-वाग-वरत्त-रज्जु-वल्लि-कुस-दब्भमा-दीएहिं आलावणबंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं आलावण-बंधे॥

आलापनं प्रतीत्य

अथ किं तत् आलापनबन्धः?

आलापनबन्धः–यत् तृणभाराणां वा, काष्ठभाराणां वा, पत्रभाराणां वा, पलालभाराणां वा, वेत्रलता-वल्क-वरत्र-रज्जु-वल्ली-कुश–दर्भादिभिः आलापनबन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्। सः एषः आलापनबन्धः।

आलापन की अपेक्षा

३५५. वह आलापन बंध क्या है?

आलापन बंध तृण, काष्ठ, पत्र और पलाल के समूह, वेत्रलता, छाल, चर्म, रज्जु सन आदि की रज्जु ककड़ी आदि की बेल, कुश, डाभ और चीवर आदि से बांधना आलापन बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है– आलापन बंध।

भाष्य

१. सूत्र ३५५

आलापन बंध–रस्सी आदि से होने वाला बंध। सूत्र में बंध के साधनों का नामोल्लेख किया गया है–

वेत्रलता–जलीय बांस की खपाची।

वल्क–छाल।

रज्जु–सन आदि की रस्सी।

वरत्रा–चमड़े की रस्सी।

वल्ली–ककड़ी आदि की बेल।

कुश–कड़ी और नुकीली पत्तियों वाली घास।

दर्भ–डाभ।

वृत्तिकार के निर्मूल कुश को कुश और समूल कुश को दर्भ कहा है। आदि शब्द के द्वारा वस्त्र आदि का ग्रहण किया है।[5]

षट्खण्डागम[6] और तत्त्वार्थवार्तिक[7] में बंधन के साधनों की सूचि में लोह का भी उल्लेख है।

अल्लियावणं पडुच्च–

३५६. से किं तं अल्लियावणबंधे?

अल्लियावणबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–लेसणाबंधे, उच्चयबंधे, समुच्चयबंधे, साहणणाबंधे॥

अल्लियावणं प्रतीत्य

अथ किं तत् अल्लियावणबन्धः?

अल्लियावणबन्धः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा– श्लेषणाबन्धः, उच्चयबन्धः, समुच्चय-बन्धः, संहननबन्धः,

आलीनकरण बंध की अपेक्षा

३५६. वह आलीनकरण बंध क्या है?

आलीनकरण बंध चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–श्लेष बंध, उच्चय बंध, समुच्चय बंध, संहनन बंध।

३५७. से किं तं लेसणाबंधे?

लेसणाबंधे–जण्णं कुड्डाणं, कोट्टि-माणं, खंभाणं, पासायाणं, कट्ठाणं, चम्माणं, घडाणं, पडाणं, कडाणं छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस-लक्ख-महुसित्थ-माईएहिं लेसण-एहिं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं लेसणाबंधे।

अथ किं तत् श्लेषणाबन्धः?

श्लेषणाबन्धः–यत् कुड्यानां, कुट्टिमानां, स्तम्भानां, प्रासादानां काष्ठानां, चर्मणां, घटानां, पटानां, कटानां सुधा-'चिक्खल्ल'-श्लेष-लाक्षा-मधुसिक्थ दिभिः श्लेषणैः बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्। स एषः श्लेषणाबन्धः।

३५७. वह श्लेष बंध क्या है?

श्लेष बंध–भित्ति, मणि, प्रांगण, स्तंभ, प्रासाद, काठ, चर्म, घट, पट और कट का चूना, चिकनी मिट्टी, श्लेष, लाख, मोम आदि श्लेष द्रव्यों से जो बंध होता है, वह श्लेष बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है श्लेष बंध।

---

१. भ. वृ. ८/३५४–शेषाणां मध्यमाष्टाभ्योन्येषां सादिविपरिवर्तमानात्वात्, एतेन प्रथममंग उदाहृतः अनादिरपर्यवसित इत्ययं तु द्वितीयो भंग इह न संभवति, अनादिसंबद्धानामष्टानां जीवप्रदेशानामपरिवर्तमानत्वेन बंधस्य सपर्यव-सितत्वानुपपत्तेरिति। अथ तृतीयो भंग उदाहियते–'तत्थ णं जे से साइए' इत्यादि सिद्धानां सादिरपर्यवसितो जीवप्रदेशबंधः शैलेश्यवस्थायां संस्थापितप्रदेशानां सिद्धत्वेऽपि चलनाभावादिति। अथ चतुर्थभङ्गं भदन्त आह तत्थ णं जे से साइए इत्यादि।

२. ष. खं. पु. १४.५,६,६३–जो अणादिय सरीरिबंधो ण तथा अट्ठण्णं जीवमज्झपदेसाणं अण्णोण्णपदेसु बंधो भवदि सो सत्तण्हं भंगाणमादियसरीरि-बंधेण।

३. त. सू. भा. वृ. २/९ का भाष्य पृ. १५१,१५४।

४. त. रा. वा. ५/२४ की वृत्ति–अष्टानीवमध्यप्रदेशानामुपर्यधश्चतुर्णां, रुचकवदवस्थितानां सर्वकालमन्योन्यपरित्यागेन अनादिबंधः। इतरेषां प्रदेशानां कर्मनिमित्तं संहरण-विसर्पणस्वभावत्वादादिमान्।

५. भ. वृ. ८/३५५–वेत्रलता–जलवंशकम्बा, वागादि वल्कः वरत्रा चर्ममयी रज्जुः सनादिमयी वल्ली–त्रपुष्यादिका, कुशा–निर्मूलदर्भाः, दर्भास्तु समूलाः, आदि शब्दाच्चीवरादिग्रहः।

६. ष. खं. पु. १४.५,६,४१ पृ. ३८।

७. त. रा. वा. ५/२४ की वृत्ति पृ. ४८७-८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५८. से किं तं उच्चयबंधे? उच्चयबंधे–जण्णं तणरासीण वा, कट्ठरा-सीण वा, पत्तरासीण वा, तुसरा-सीण वा, भुसरासीण वा गोमय-रासीण वा, अव-गररासीण वा, उच्चत्तेणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं उच्चयबंधे॥

अथ किं तत् उच्चयबन्धः?
उच्चयबन्धः–यत् तृणराशीनां वा, काष्ठ-राशीनां वा, पत्रराशीनां वा, तुषराशीनां वा, बुशराशीनां वा, गोमयराशीनां वा, अवकर-राशीनां वा, उच्चत्वेन बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्। सः एषः उच्चयबन्धः।

३५८. वह उच्चय बंध क्या है?
उच्चयबंध–तृण, काठ, पत्र, तुष, भूषा, गोबर और कचरे की राशि (ढेर या पुंज) की जाती है, वह ऊंचाई के कारण उच्चय बंध कहलाता है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है उच्चय बंध।

३५९. से किं तं समुच्चयबंधे?
समुच्चयबंधे–जण्णं अगड-तडाग-नदी-दहवावी - पुक्खरिणी - दीहियाणं गुंजालियाणं, सराणं,सरपंति-याणं, सरसरपंति-याणं, बिलपंति-याणं देवकुल-सभ-प्पव-थूभ-खाइ-याणं, फरिहाणं, पागार-ट्टालग-चरिय - दार - गोपुर - तोरणाणं, पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाणं, सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर - चउम्मुह - महापह-पहमादीणं, छुहा-चिक्खल्ल-सिला-समुच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं समुच्चयबंधे॥

अथ किं तत् समुच्चयबन्धः?
समुच्चयबन्धः–यत् अगड-तडाग-नदी-द्रह-वापी-पुष्करिणी-दीर्घिकानां गुंजालि-कानां, सरसां, सरःपंक्तीनां, सरस्सरः-पंक्तीनां, बिलपंक्तीनां देवकुल-सभा-प्रपा-स्तूप-खातिकानां परिखानां, प्राकारा-ट्टालक - चरिका - द्वार - गोपुर - तोरणानां, प्रासाद - गृह - शरण - लयन - आपणानां, शृंगाटक - त्रिक - चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथादीनां, सुधा-चिक्खल्ल-शिलासमुच्चयेन बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्। सः एषः समुच्चयबन्धः।

३५९. वह समुच्चय बंध क्या है?
समुच्चय बंध–कूप, तालाब, नदी, द्रह बावड़ी, पुष्करणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सर, सरपंक्ति, सर सर की पंक्ति, बिल की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा, स्तूप, खाई, परिखा, प्राकार, अट्टालक (बुर्ज), चरिका, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद, घर, कुटीर, पर्वतगृह, दुकान, दुराहा, तिराहा, चौक, चौराहा, चारों ओर दरवाजे वाला देवल, महापथ और पथ आदि का चूना, चिकनी मिट्टी और शिला के समुच्चय से जो बंध किया जाता है, वह समुच्चय बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है समुच्चय बंध।

३६०. से किं तं साहणणाबंधे?
साहणणाबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–देससाहणणाबंधे य, सव्व-साहणणाबंधे य॥

अथ किं तत् संहननबन्धः?
संहननबन्धः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–देशसंहननबन्धश्च, सर्वसंहननबन्धश्च।

३६०. वह संहनन बंध क्या है?
संहनन बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–देश संहनन बंध, सर्व संहनन बंध।

३६१. से किं तं देससाहणणाबंधे?
देससाहणणाबंधे–जण्णं सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संद-माणी - लोही - लोह-कडाह-कडच्छुय - आसण-सयण-खंभ-भंडमत्तोवगरण-मादीणं देस-साहणणाबंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं देससाहणणाबंधे॥

अथ किं तत् देशसंहननबन्धः?
देशसंहननबंधः–यत् शकट-रथ-यान-युग्म-गिल्लि-थिल्लि-शिविका-स्यन्दमानिक-लौही-लोहकटाह-कडच्छुय-आसन-शयन-स्तम्भ-भाण्डमात्रोपकरणादीनां देशसंहनन-बन्धः समुत्पद्यते, जघन्येन अन्तमुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण संख्येयं कालम्।
सः एषः अल्लियावणबन्धः।

३६१. वह देश संहनन बंध क्या है?
देश संहनन बंध–शकट, रथ, यान, युग्य गिल्लि, थिल्लि, शिबिका, स्यंदमानिका, तवा, लोह-कटाह, करछी, आसन, शयन, स्तंभ, भांड, पात्र, उपकरण आदि का देश संहनन बंध होता है। इसका कालमान जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है देश संहनन बंध।

३६२. से किं तं सव्वसाहणणाबंधे?
सव्वसाहणणाबंधे–से णं खीरोदग-माईणं। सेत्तं सव्वसाहणणाबंधे। सेत्तं साहणणाबंधे। सेत्तं अल्लिया-वणबंधे॥

अथ किं तत् सर्वसंहननबन्धः?
सर्वसंहननबन्धः–सः क्षीरोदकादीनाम्। स एषः सर्वसंहननबन्धः। स एषः संहनन-बन्धः। सः एषः अल्लियावणबन्धः।

३६२. वह सर्व संहनन बंध क्या है?
सर्व संहनन बंध–क्षीर का उदक आदि से संबंध सर्व संहनन बंध है। यह है सर्व संहनन बंध। यह है संहनन बंध। यह है आलीनकरण बंध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ३५६-३६२

आलीनकरण बंध–एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के श्लेष से होने वाला बंध। उसके चार प्रकार बतलाए गए हैं–

१. श्लेष बंध–

श्लेष द्रव्य के द्वारा दो द्रव्यों का संबंध। जैसे–दीवार, स्तंभ आदि का संबंध।[1] इसके कुछ साधनों का उल्लेख किया गया है, जैसे–सुधा–चूना, चिक्खल–चिकनी मिट्टी, श्लेष, लाख, मोम आदि।

२. उच्चय बंध–

राशीकरण, ऊर्ध्वचय अथवा ढेर। जैसे–घास की राशि।

३. समुच्चय बंध–

समुच्चय बंध में भी ऊर्ध्वचयन होता है। उच्चय बंध में केवल राशीकरण होता है और समुच्चय बंध में ईंट अथवा पत्थर की चिनाई होती है। इसी प्रकार मार्ग के निर्माण में सड़कें बिछाई जाती हैं। इस उल्लेख से पता चलता है कि प्राचीन काल में चिकनी मिट्टी अथवा पत्थरों के पक्के मार्गों का निर्माण किया जाता था।

४. संहनन बंध–

संयोग से होने वाला आकृति निर्माण।

इसके दो प्रकार है–

१. देश संहनन बंध–अनेक अवयवों की संयोजना से होने वाला बंध। जैसे–शकट का निर्माण।

२. सर्व संहनन बंध–एकीभाव, जैसे–दूध और पानी का संबंध।

सरीरं पडुच्च–

३६३. से किं तं सरीरबंधे?

सरीरबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–पुव्वपयोगपच्चइए य, पडुप्पन्नपयोगपच्चइए य॥

शरीरं प्रतीत्य

अथ किं तत्शरीरबन्धः?

शरीरबन्धः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकश्च, प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकश्च।

शरीर की अपेक्षा

३६३. [1]वह शरीर बंध क्या है?

शरीर बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे–पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक, प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक।

३६४. से किं तं पुव्वपयोगपच्चइए?

पुव्वपयोगपच्चइए–जण्णं नेरइयाणं संसारत्थाणं सव्वजीवाणं तत्थ-तत्थ तेसु-तेसु कारणेसु समोहण्ण-माणाणं जीवप्पदेसाणं बंधे समुप्प-ज्जइ। सेत्तं पुव्वापयोगपच्चइए॥

अथ किं तत्पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकः?

पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकः यत् नैरयिकाणां संसारस्थानां सर्वजीवानां तत्र-तत्र तैः-तैः कारणैः समवहन्यमानानां जीवप्रदेशानां बन्धः समुत्पद्यते। सः एषः पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिकः।

३६४. वह पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक क्या है?

पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक–नैरयिक आदि संसारस्थ सब जीव विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कारणों से अपने प्रदेशों का समुद्घात (शरीर से बाहर प्रक्षेपण) करते हैं, उस समय जीव प्रदेशों का बंध (विशेष विन्यास) उत्पन्न होता है। यह पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक है।

३६५. से किं तं पडुप्पन्नपयोग-पच्चइए?

पडुप्पन्नपयोगपच्चइए–जण्णं केवलनाणस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स ताओ समुग्घायाओ पडिनियत्तमाणस्स अंतरा मंथे वट्टमाणस्स तेया-कम्माणं बंधे समुप्पज्जइ। किं कारणं? ताहे से पएसा एगत्तीगया भवंति। सेत्तं पडुप्पन्नपयोगपच्चइए। सेत्तं सरीरबंधे॥

अथ किं तत् प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकः?

प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकः–यत् केवलज्ञानिनः अनगारस्य केवलिसमुद्घातेन समवहतस्य तस्मात् समुद्घातात् प्रतिनिवर्त्तमानस्य अन्तरा मन्थे वर्तमानस्य तैजसकार्मणयोः बन्धः समुत्पद्यते। किं कारणम्? तदा तस्य प्रदेशाः एकत्वगताः भवन्ति। सः एषः प्रत्युत्पन्नप्रयोग-प्रत्ययिकः। सः एषः शरीरबन्धः।

३६५. वह प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक क्या है? प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक–केवलज्ञानी अनगार जब केवली समुद्घात से समवहत होकर जीव प्रदेशों का विस्तार कर, उस समुद्घात से प्रतिनिवर्तमान होता है–जीव प्रदेशों का संकोच करता है, उस समय अंतरालवर्ती मंथ की क्रिया के क्षण में तैजस और कार्मण शरीर का बंध उत्पन्न होता है। इसका कारण क्या है? समुद्घात से निवृत्ति के समय केवली के जीव प्रदेश एकत्व (संघात) दशा को प्राप्त होते हैं। यह है प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक। यह है शरीर बंध।

---

१. (क) भ. वृ. ८/३५६।

(ख) ष. खं. पु. १४, ५, ६, ४१, ४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ३६३-३६५

जीव असंख्य प्रदेशों का संघात है। वे प्रदेश सदा अविभक्त रहते हैं। कर्म शरीर के कारण उनकी रचना बदलती रहती है। उनका संकोच और विस्तार होता रहता है। जीव के प्रदेशों का संकोच होता है, उसके अनुरूप तैजस और कर्म शरीर के प्रदेशों का भी संकोच हो जाता है। इसी प्रकार जीव के प्रदेशों के विस्तार के अनुरूप ही तैजस और कर्म शरीर के प्रदेशों का विस्तार हो जाता है। इस संकोच और विस्तार की प्रक्रिया को शरीर बंध कहा गया है। इसका मुख्य हेतु है समुद्घात। समुद्घात की अवस्था में जीव के प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं और पुनः शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसे समझाने के लिए समुद्घात के दो रूप बतलाए गए हैं—

१. पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक २. प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक।

अभयदेव सूरि ने 'शरीर बंध' इस पक्ष का उल्लेख किया है शरीर बंध के पक्ष में तैजस और कर्म के प्रदेशों की विवक्षा मुख्य है। जीव के प्रदेश गौण हैं। शरीरी बंध के पक्ष में जीव के प्रदेशों की विवक्षा मुख्य है, तैजस और कर्म शरीर के प्रदेश गौण हैं।[1] षट्खण्डागम[2] और तत्त्वार्थ वार्तिक[3] में शरीरी बंध का शरीर बंध से पृथक् निरूपण मिलता है। शरीर बंध दो प्रकार का होता है—पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक और प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक।

१. पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक—शरीर बंध का अर्थ है—तैजस और कर्म शरीर के प्रदेशों की रचना। उस रचना का प्रत्यय (मूल कारण) है जीव का प्रयोग। वेदना, कषाय आदि समुद्घात जीव के प्रयत्न से निर्मित होते हैं। सब जीव विभिन्न कारणों से समुद्घात करते हैं। समुद्घात काल में जीव प्रदेशों का बंध होता है। इस बंध में जीव का प्रयोग अतीत कालीन है इसलिए इसे पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक कहा गया है।[4]

२. प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक—केवली समुद्घात का कालमान आठ समय है। प्रथम चार समयों में जीव के प्रदेशों का विस्तार और शेष चार समयों में उनका संकोच होता है। पांचवां समय संकोच का पहला समय है। उसकी संज्ञा 'मंथ' है। इस अवस्था में जीव के प्रदेशों का एकत्रीभाव—संघात होना प्रारंभ होता है। यह मंथ का समय ही वर्तमान प्रत्ययिक बंध है। जीव के प्रदेशों का अनुवर्तन करते हुए तैजस और कर्म शरीर के प्रदेशों का बंध अथवा संघात होता है। यह संघात छठे, सातवें और आठवें समय में भी होता है, किन्तु संघात का प्रारंभ पांचवें समय में होता है। यह अभूतपूर्व संघात है इसलिए वर्तमान प्रयोग प्रत्ययिक के लिए यही समय विवक्षित है। वृत्तिकार ने शरीरी बंध के पक्ष का भी उल्लेख किया है। इस पक्ष के अनुसार तैजस और कर्म शरीर वाले जीव के प्रदेशों का बंध अथवा संघात होता है।[5]

समुद्घात के लिए द्रष्टव्य २/७४ का भाष्य।

सरीरप्पयोगं पडुच्च—

३६६. से किं तं सरीरप्पयोगबंधे ?

सरीरप्पयोगबंधे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा— ओरालियसरीरप्पयोगबंधे, वेउव्विय-सरीरप्पयोगबंधे, आहारग-सरीरप्पयोगबंधे, तेयासरीरप्पयोगबंधे कम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

शरीरप्रयोगं प्रतीत्य—

३६६. अथ किं तत्शरीरप्रयोगबन्धः ?

शरीरप्रयोगबन्धः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः वैक्रिय-शरीरप्रयोगबन्धः, आहारकशरीरप्रयोग-बन्धः, तैजसशरीरप्रयोगबन्धः, कर्मशरीर-प्रयोग-बन्धः।

शरीर प्रयोग की अपेक्षा

३६६. वह शरीर प्रयोग बंध क्या है ?

शरीरप्रयोगबंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—औदारिकशरीरप्रयोगबंध वैक्रिय-शरीरप्रयोगबंध, आहारकशरीरप्रयोग-बंध, तैजस शरीरप्रयोगबंध, कर्मशरीर प्रयोगबंध।

भाष्य

१. सूत्र ३६६

शरीर के पांच प्रकार हैं।

१. औदारिक शरीर
२. वैक्रिय शरीर
३. आहारक शरीर
४. तैजस शरीर
५. कर्म शरीर

ये सब पृथक् वर्गणाओं से निर्मित होते हैं।

शरीर	वर्गणा
औदारिक शरीर	औदारिक वर्गणा
वैक्रिय शरीर	वैक्रिय वर्गणा
आहारक शरीर	आहारक वर्गणा
तैजस शरीर	तैजस वर्गणा
कर्म शरीर	कर्म वर्गणा

प्रथम तीन वर्गणाएं पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाली होती हैं इसलिए उनके द्वारा निर्मित शरीर स्थूल होते हैं। तैजस और कर्म वर्गणाओं में पांच वर्ण, दो गंध और पांच रस होते हैं किन्तु

१. भ. वृ. ८/३६४—जीवप्रदेशानामित्युक्तावपि शरीर बंधाधिकारात् तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इतिन्यायेन जीव प्रदेशाश्रिततैजस-कार्म्मणशरीरप्रदेशानामिति द्रष्टव्यं शरीरिबंध इत्यत्र तु पक्षे समुद्घातेन विक्षिप्य संकोचितानामुपरार्जनीकृततैजसकार्मणशरीरप्रदेशानां जीव प्रदेशा-नामेवेति।

२. ष. खं. पु. १४/५,६,४४-६२ पृ. ४१-४५।

३. त. रा. वा. ५/२४ की वृत्ति पृ. ४८८।

४. भ. वृ. ८/३६३—पूर्वः प्राक्कालासेवितप्रयोगे जीवव्यापारे वेदनाकषायादि समुद्घातरूपः प्रत्ययः—कारणं यद्द शरीरबंधे स तथा स एव पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिकः।

५. वही, ८/३६४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श चार (स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण) होते हैं।[1]

औदारिक शरीर स्थूल, वैक्रिय शरीर उससे सूक्ष्म, आहारक शरीर उससे सूक्ष्म तैजस, उससे सूक्ष्म, कार्मण शरीर (कर्म शरीर) उससे सूक्ष्म होता है।[2]

औदारिक शरीर के स्वामी मनुष्य और तिर्यंच होते हैं।[3] वैक्रिय शरीर के स्वामी एकेन्द्रिय–वायुकायिक जीव और पंचेन्द्रिय–तिर्यंच, मनुष्य, नारक और देव होते हैं।[4] आहारक शरीर के स्वामी केवल मुनि होते हैं।[5] तैजस और कार्मण शरीर के स्वामी सब संसारी जीव होते हैं।[6]

शरीर का स्वरूप और कार्य

औदारिक शरीर स्थूल पुद्गलों से निर्मित और रस आदि सप्त धातुमय होता है। यह प्रत्यक्ष और आधार भूत शरीर है। परिवर्तन और विकास इसी के द्वारा संभव है।

वैक्रिय शरीर में विविध रूप निर्माण की शक्ति होती है। यह लब्धि–योगजविभूतिजन्य भी होता है।

आहारक शरीर–यह शरीर केवल लब्धि–योगज विभूति जन्य मुनि के होता है। आहारक लब्धि से संपन्न मुनि अपनी संदेह निवृत्ति के लिए अपने आत्म-प्रदेशों से एक पुतले का निर्माण करते हैं और उसे सर्वज्ञ के पास भेजते हैं। वह उसके पास जाकर उनसे संदेह की निवृत्ति कर पुनः मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

तैजस शरीर–इस शरीर का निर्माण तैजस अथवा आग्नेय परमाणु स्कंधों से होता है। इसका कार्य पाचन और दीप्ति है। यह लब्धि–योगज विभूतिजन्य भी होता है। तेजोलब्धि वाला पुरुष शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ होता है।

कार्मण शरीर–कार्मण शरीर कर्म से निष्पन्न होता है। तत्त्वार्थ भाष्य में उसके तीन अन्वर्थक बतलाए गए हैं–

१. कर्म का विकार
२. कर्मात्मक
३. कर्ममय।[7]

कार्मण शरीर कर्म से भिन्न है। कार्मण शरीर कर्म से निष्पन्न होता है और वह संपूर्ण कर्म राशि का आधार बनता है। कर्म और कार्मण शरीर की भिन्नता का मुख्य हेतु यह है–कार्मण शरीर नाम कर्म की प्रकृति है।[8] इसलिए कर्म और कार्मण शरीर को एक नहीं माना जा सकता।[9]

कार्मण शरीर अपना तथा अन्य शेष शरीरों का कारण है। सूर्य स्वयं प्रकाशी है और वह दूसरे पदार्थ को भी प्रकाशित करता है। वैसे ही कार्मण शरीर स्वयं अपने शरीर की अवस्थिति बनाए रखता है और दूसरे का भी कारण है।[10]

प्रस्तुत प्रकरण के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है–कर्म शरीर अनादिकालीन है। कर्म प्रवाह रूप में आते हैं, उदय में आकर चले जाते हैं।

कर्म बंध का प्रवाह अविच्छिन्न चलता है। उससे कर्म शरीर को पोषण मिलता रहता है। वह जीर्ण नहीं होता। पोषण के बाह्य हेतु और आंतरिक हेतु दोनों का निर्देश सूत्रकार ने किया है।[11]

ओरालियसरीरप्पयोगं पडुच्च

३६७. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–एगिंदियओरालिय - सरीरप्पयोगबंधे, बेइंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे जाव पंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे॥

औदारिकशरीरप्रयोगं प्रतीत्य

औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–एकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोगबन्धः द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः।

औदारिक शरीर प्रयोग की अपेक्षा

३६७. [1]भंते! औदारिकशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! औदारिकशरीरप्रयोगबंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध, द्वीन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध यावत् पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध।

३६८. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

एकेन्द्रिय - औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–

३६८. भंते! एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग

---

१. कर्म प्रकृति ११-१२।
२. त. सू. भा. वृ. २-३८ परं परं सूक्ष्मम्।
३. भ. ८-३६१-३८१
४. वही, ८-३८६-४०४।
५. वही, ८-४०५-४०६।
६. वही, ८/४१२-४३३।
७. त. सू. भा. वृ. २-४९ का भाष्य–कर्मणो विकारः कर्मात्मकं कर्मण्यमिति कार्मणम्।
८. (क) वही, ८/२१ का भाष्य शरीरनाम पञ्चविधम्, तद्यथा–औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मण शरीरनामेति।
(ख) पण्ण. २३-३८,४३।
९. त. सू. भा. वृ. २/३७ भाष्यानुसारिणी टीका पृ. १९५–कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणम् अशेष कर्मशरीराधारभूतं कुण्डवद् बदरादीनामशेषकर्मप्रसवसमर्थं वा यथा बीजमंकुरादीनाम् एषा च किलौदारिकप्रकृतिः शरीरनामकर्मणः पृथगेव कर्मैष्टकान् समुदयभूतादित्यतः कर्मैव कार्मणम्।
१०. वही, २/४९ का भाष्य–कर्म हि कार्मणस्य कारणमन्येषां च शरीरापामादित्यप्रकाशवत्। यथादित्यः स्वात्मानं प्रकाशयति अन्यान्यानि च द्रव्याणि, न चास्यान्यः प्रकाशकः एव कार्मणमात्मनश्च कारणमन्येषां च शरीराणामिति।
११. भ. ८/४२०-४३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढविक्काइय - एगिंदियओरालिय-सरीरप्पयोगबंधे, एवं एएणं अभि-लावेणं भेदो जहा ओगाहणसंठाणे ओरालिय-सरीरस्स तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्ता-गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालिय-सरीरप्पयोगबंधे य, अप्पज्जत्तागब्भ-वक्कंतिय-मणुस्सपंचिंदियओरालिय-सरीरप्प-योगबंधे य॥

पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग-बन्धः, एवम् एतेन अभिलापेन भेदः यथा अवगाहनासंस्थाने औदारिकशरीरस्य तथा भणितव्यः यावत् पर्याप्तकगर्भाव-क्रान्तिक- मनुष्यपंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध-श्च, अपर्याप्तकगर्भावक्रन्तिक-मनुष्य-पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोग-बन्धश्च।

बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–पृथ्वी-कायिकएकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोग बंध–इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार एकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोगबंध के भेद प्रज्ञापना के अवगाहना संस्थान (नामक पद २१/३२०) में वर्णित औदारिकशरीर की भांति वक्तव्य है यावत् पर्याप्तक गर्भावक्रांतिकमनुष्यपंचेन्द्रियऔदारिक-शरीरप्रयोग बंध, अपर्याप्तक गर्भावक्रांतिक मनुष्यपंचेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोग बंध।

३६९. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च पडुच्च ओरालिय-सरीरप्पयोगनाम-कम्मस्स उदएणं ओरालियसरीर-प्पयोगबंधे॥

औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया प्रमाद-प्रत्ययात् कर्म च योगं च भवं च आयुष्कं च प्रतीत्य औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्मणः उदयेन औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः।

३६९. भंते! औदारिकशरीरप्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! औदारिकशरीरप्रयोग बंध के तीन हेतु हैं–
१. वीर्यसयोगसद्द्रव्यतावीर्ययोग तथा तथाविध पुद्गल सामग्री।
२. प्रमाद–प्रमादहेतुक।
३. कर्म–(एकेन्द्रिय जाति आदि का उदय-वर्ती कर्म), योग, (काय आदि योग) भव (तिर्यंच आदि का अनुभूयमान जन्म) और आयुष्य (उदयवर्ती आयुष्य) सापेक्ष औदारिक शरीरप्रयोग नाम कर्म का उदय।

३७०. एगिंदियओरालियसरीरप्प-योगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
एवं चेव। पुढविक्काइयएगिंदिय-ओरालियसरीरप्पयोगबंधे एवं चेव, एवं जाव वण-स्सइकाइया। एवं बेइंदिया, एवं तेइंदिया, एवं चउरिंदिया॥

एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भन्ते! कस्य कर्मणः उदयेन?
एवं चैव। पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरप्रयोगबन्धः एवं चैव, एवं यावत् वन-स्पतिकायिकाः। एवं द्वीन्द्रियाः, एवं त्रीन्द्रियाः, एवं चतुरिन्द्रियाः।

३७०. भंते! एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
औदारिकशरीरप्रयोगबंध की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोगबंध की वक्तव्यता यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोगबंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग-बंध की वक्तव्यता।

३७१. तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालिय-सरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
एवं चेव॥

तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
एवं चैव।

३७१. भंते! तिर्यंचयोनिकपंचेन्द्रियऔदारिक शरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है?
औदारिकशरीरप्रयोगबंध की भांति वक्तव्यता।

३७२. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीर-प्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस

मनुष्यपचेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

३७२. भंते! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदएणं?

गोयमा! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च पडुच्च मणुस्स-पंचिंदियओरालिय - सरीरप्पयोगनाम-कम्मस्स उदएणं मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीरप्पयोगबंधे॥

होता है?

गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया प्रमाद-प्रत्ययात् कर्म च योगं च भवं च आयुष्कं च प्रतीत्य मनुष्यपञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगनामकर्मणः उदयेन मनुष्यपञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः।

गौतम! मनुष्यपंचेन्द्रियऔदारिकशरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु हैं–वीर्य सयोग सद्द्रव्यता, प्रमाद तथा कर्म, योग, भव और आयुष्य सापेक्ष मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग नामकर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ३६७-३७२

जीव अपने शरीर का निर्माण करता है। सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर–तैजस और कार्मण शरीर सदा जीव के साथ रहते हैं। स्थूल शरीर का निर्माण नए जन्म के साथ होता है और जीवन की समाप्ति के साथ वह छूट जाता है। औदारिक-वैक्रिय और आहारक–ये तीन स्थूल शरीर हैं। औदारिकशरीर का निर्माण मनुष्य और तिर्यंच (पशु, पक्षी आदि) करते हैं। वैक्रिय शरीर का निर्माण नैरयिक और देव करते हैं। आहारक शरीर का निर्माण लब्धि या योगज विभूति से किया जाता है। द्रष्टव्य भगवती १/३४०-३४९ का भाष्य।

औदारिक शरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु बतलाए हैं–

१. वीर्य सयोग सद्द्रव्यता–

वीर्य–वीर्यान्तर क्षय जनित शक्ति। योग–मन, वचन, काया की प्रवृत्ति। सद्द्रव्य–औदारिक वर्गणा के पुद्गल। ये औदारिक शरीर प्रयोग बंध के निमित्त बनते हैं।

द्रष्टव्य भगवती ५/११० का भाष्य।

२. प्रमाद

३. कर्म, योग, भव और आयुष्य सापेक्ष शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय–उदयवर्ती कर्म, काय आदि की प्रवृत्ति, अनुभूयमान मनुष्य आदि का भव, उदयवर्ती मनुष्य आदि का आयुष्य–इन सबसे सापेक्ष होकर औदारिक शरीर प्रयोग नाम कर्म औदारिक शरीर के प्रयोग का संपादन करता है।

औदारिक शरीर की रचना का मुख्य हेतु नाम कर्म है। वीर्य, योग, पुद्गल आदि सब उसके सहकारी कारण है।[1] षट्खण्डागम में शरीर बंध की गणना नोकर्म की कोटि में की गई है।[2]

३७३. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि॥

औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्तः किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धोऽपि, सर्वबन्धोऽपि।

३७३. भंते! औदारिकशरीरप्रयोगबंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गौतम! देश बंध भी है, सर्व बंध भी है।

३७४. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
एवं चेव। एवं पुढविक्काइया एवं जाव–

एकेन्द्रिय - औदारिक - शरीर - प्रयोगबन्धः भदन्त! किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?
एवं चैव। एवं पृथिवीकायिकाः एवं यावत्।

३७४. भंते! एकेन्द्रियऔदारिकशरीरप्रयोग-बंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
औदारिकशरीरप्रयोगबंध की भांति वक्तव्यता इसी प्रकार पृथ्वीकायिक यावत्–

३७५. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीर-प्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि॥

मनुष्यपञ्चेन्द्रिय - औदारिक- शरीरप्रयोग-बन्धः भदन्त! किं, देशबन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धोऽपि, सर्वबन्धोऽपि।

३७५. भंते! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोगबंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गौतम! देश बंध भी है, सर्व बंध भी है।

भाष्य

१. सूत्र ३७३-३७५

औदारिक शरीर प्रयोग बंध की दो अवस्थाएं होती हैं–

१. देश बंध २. सर्वबंध

एक जीव पूर्व शरीर का परित्याग कर नए शरीर का निर्माण करता है। निर्माण के प्रथम समय में वह शरीर के योग्य पुद्गलों का केवल ग्रहण करता है इसलिए वह सर्व बंध है। इसका तात्पर्यार्थ है–जीवन यात्रा के लिए आवश्यक शक्तियों का निर्माण। वैक्रिय शरीर के निर्माण के पश्चात् पुनः औदारिक शरीर में लौटने का पहला समय भी सर्व बंध का समय होता है। द्रष्टव्य भगवती ८/३७६।

द्वितीय आदि समयों में ग्रहण के साथ विसर्जन की प्रक्रिया चालू हो जाती है। जीव पुद्गलों का ग्रहण करता है और उनका विसर्जन भी करता है। उस अवस्था में केवल बंध (ग्रहण) नहीं होता है इसलिए वह देश बंध है, इसका तात्पर्यार्थ है–प्रथम समय में निर्मित शक्तियों के लिए आवश्यक साधनों का ग्रहण और अनावश्यक का उत्सर्जन।

१. भ. वृ. ८-३६९।

२. ष. खं. पु. १४,५,६,४० पृ. ३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयदेव सूरि ने अपूप के दृष्टांत द्वारा इसे समझाया है। तैल या घी से भरी कढ़ाई में प्रक्षिप्त 'पूआ' पहले समय में घी अथवा तैल का ग्रहण करता है, शेष क्षणों में ग्रहण और विसर्जन दोनों करता है।[1]

३७६. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्केसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं॥

औदारिकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन एकं समयं, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि समयोनानि।

३७६. भंते! औदारिक शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?

गौतम! सर्व बंध का कालमान एक समय। देश बंध का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक समय न्यून तीन पल्योपम है।

३७७. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं॥

एकेन्द्रिय - औदारिकशरीर - प्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण द्वाविंशति वर्षसहस्राणि समयोनानि।

३७७. भंते! एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोग बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?

गौतम! सर्व बंध का कालमान एक समय। देश बंध का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक समय न्यून बाईस हजार वर्ष है।

३७८. पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा।

गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं। एवं सव्वेसिं सव्वबंधो एक्कं समयं, देसबंधो जेसिं नत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं जा सा ठिती सा समयूणा कायव्वा, जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबंधो जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयूणा कायव्वा जाव मणुस्साणं देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं।

पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय पृच्छा।

गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन 'खुड्डागं' भवग्रहणं त्रिसमयोनम् उत्कर्षेण द्वाविंशति वर्षसहस्राणि समयोनानि। एवं सर्वेषां सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः येषां नास्ति वैक्रियशरीरं तेषां जघन्येन 'खुड्डागं' भवग्रहणं त्रिसमयोनम्, उत्कर्षेण या सा स्थितिः सा समयोना कर्त्तव्या, येषां पुनः अस्ति वैक्रियशरीरं तेषां देशबन्धः जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण या यस्य स्थितिः सा समयोना कर्त्तव्या यावत् मनुष्याणां देशबन्धः जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि समयोनानि।

३७८. पृथ्वीकायएकेन्द्रियऔदारिकशरीर-प्रयोग बंध की पृच्छा।

गौतम! सर्व बंध का कालमान एक समय। देश बंध का कालमान जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः एक समय न्यून बाईस हजार वर्ष है। इसी प्रकार सबके सर्व बंध का कालमान एक समय। देश बंध का नियम यह है—जिनके वैक्रिय शरीर नहीं है, उनके जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण है, उत्कृष्टतः जो स्थिति निर्दिष्ट है, उसमें एक समय न्यून कर देना चाहिए।

जिनके वैक्रिय शरीर है, उनके देश बंध का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः जिसके जितनी स्थिति निर्दिष्ट है, उसमें एक समय न्यून कर देना चाहिए यावत् मनुष्यों के देश बंध का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक समय न्यून तीन पल्योपम है।

भाष्य

१. सूत्र ३७६-३७८

देश बंध की जघन्य स्थिति एक समय कैसे हो सकती है? इस प्रश्न का समाधान वृत्तिकार ने किया है। वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य वैक्रिय शरीर का निर्माण कर पुनः औदारिक शरीर में लौटते हैं तब एक समय की अवधि वाला सर्व बंध होता है। उसके अग्रिम समय में देश बंध करता है और एक समय के अनंतर उसकी मृत्यु हो जाती है। इस अपेक्षा से देश बंध की जघन्य स्थिति एक समय बतलाई गई है।[2]

१. भ. वृ. ८/३७३ तत्र यथा अपूपः स्नेहभृततप्तापिकायां प्रक्षिप्तः प्रथम समये गृह्णात्येवेत्ययं सर्वबंधः। ननु द्वितीयादिषु समयेषु तान् गृह्णाति विसृजति चेत्येवं देश बंधः।

२. भ. वृ. ८/३७३ तत्र यदा वायुर्मनुष्यादिर्वा वैक्रियं कृत्वा विहाय च पुनरौदारिकस्य समयमेकं सर्वबंधं कृत्वा पुनस्तस्य देशबंधं कुर्वन् नैकसमयानंतरं म्रियते तदा जघन्यः एकसमयो देशबंधोऽस्य भवतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय के देश बंध की उत्कृष्ट स्थिति एक समय न्यून बाईस हजार वर्ष बतलाई गई है। उत्पत्ति के पहले समय में सर्व बंध होता है। इस अपेक्षा से एक समय न्यून किया गया है।

औदारिक शरीर वाले जीवों का सबसे छोटा जीवन दो सौ छप्पन आवलिका का होता है। इसकी संज्ञा है क्षुल्लक भव ग्रहण। अंतर्मुहूर्त में पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस क्षुल्लक भव होते हैं। एक मुहूर्त में क्षुल्लक भव ग्रहण की राशि तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) होती है। उसमें उच्छ्वास राशि का भाग देने पर जो लब्ध होता है वह एक उच्छ्वास में क्षुल्लक भव का परिमाण बनता है। इस प्रकार एक श्वासोच्छ्वास में कुछ अधिक सतरह क्षुल्लक भव ग्रहण होता है।[1]

६५५३६÷३७७३=१७ १३९५/३७७३।

गोम्मटसार के अनुसार एक मुहूर्त में क्षुल्लक भव ग्रहण की संख्या छासठ हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) होती है फलतः एक श्वासोच्छ्वास क्षुल्लक भव ग्रहण की संख्या अठारह होती है।[2]

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला तीन समय की विग्रह गति से उत्पत्ति स्थान में आता है। प्रथम दो समयों में अनाहारक रहता है और तीसरे समय में वह आहार ग्रहण करता है। वह सर्व बंध का समय है। इस अपेक्षा से देश बंध की जघन्य स्थिति तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण बतलाई गई है।[3]

३७९. ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडिसमयाहियाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमया-हियाइं॥

औदारिकशरीरबन्धान्तरं भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं त्रिसमयोनम्, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि पूर्वकोटिसमयाधिकानि। देशबन्धान्तरं जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि त्रि-समयाधिकानि।

३७९. 'भंते! औदारिक शरीर के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! औदारिक शरीर के सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम एक समय अधिक पूर्व कोटि है। देश बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः तीन समय अधिक तैंतीस सागरोपम है।

३८०. एगिंदियओरालियपुच्छा।

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतो-मुहुत्तं॥

एकेन्द्रिय-औदारिकपृच्छा।

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं त्रिसमयोनम्, उत्कर्षेण द्वाविंशति वर्षसहस्राणि समयाधिकानि। देशबन्धान्तरं जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्।

३८०. एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है। देश बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त है।

भाष्य

१. सूत्र ३७९-३८०

सर्व बंध का अंतर—दो सर्व बंधों का मध्यकाल सर्व बंध का अंतर होता है। सर्व बंध का जघन्य कालमान तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण है। उदाहरण स्वरूप कोई जीव तीन समय विग्रह गति कर औदारिक शरीर के रूप में उत्पन्न होता है, उसमें विग्रह गति के प्रथम दो समय अनाहारक अवस्था में रहता है, तीसरे समय में वह सर्व बंधक होता है। क्षुल्लक भव के कालमान तक जीवित रहकर मरता है और पुनः औदारिक शरीर के रूप में उत्पन्न होता है। वहां प्रथम समय में सर्व बंधक होता है। इस प्रकार सर्व बंध से सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव प्रमाण है।[4]

अविग्रह गति से उत्पन्न होने वाला मनुष्य प्रथम समय में सर्वबंध करता है। करोड़ पूर्व तक आयुष्य भोगकर तैंतीस सागरोपम स्थिति वाला नारक अथवा सर्वार्थसिद्ध का देवता होता है। वह वहां से च्युत होकर तीन समय वाली विग्रह गति से पुनः औदारिक शरीरी बनता है। वह अनाहारक के दो समयों को छोड़कर तीसरे समय में सर्व बंध करता है। औदारिक शरीर के दो अनाहारक समयों में से एक समय पूर्व कोटि में सर्व बंध के समय के स्थान पर प्रक्षेप करने पर पूर्व कोटि पूर्ण हो जाती है। इस प्रकार सर्व बंध के अंतर का उत्कृष्ट कालमान संगत होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच के लिए भी यही नियम है। वह नरक में ही उत्पन्न होता है, सर्वार्थ सिद्ध में नहीं।[5]

१. (क) भ. वृ. ८/३७८।
(ख) भ. जो. २/१५८/३१ का वार्तिक।

२. गोम्मटसार, जीवकांड, गा. १२३-
तिण्णि सया छत्तीसा, छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि।
अंतो मुहुत्तकाले णावट्ठिदा चेव खुद्दभवा॥

३. भ. वृ. ८/३७८।
४. वही, ८/३८०।
५. भ. वृ. ८/३८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८१. पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा।

सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं। देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया। जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्का-इयवज्जाणं, नवरं—सव्व-बंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयाहिया कायव्वा। वाउक्काइ-याणं सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तिण्णि वास-सहस्साइं समयाहियाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

पृथिवीकायिक-एकेन्द्रियपृच्छा।

सर्वबन्धान्तरं यथैव एकेन्द्रियस्य तथैव भणितव्यम्। देशबन्धान्तरं जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण त्रीन् समयान्। यथा पृथिवीकायिकानां एवं यावत् चतुरिन्द्रियाणां वायुकायिकवर्जानाम्, नवरं—सर्व-बन्धान्तरम् उत्कर्षेण या यस्य स्थितिः सा समयाधिका कर्त्तव्या। वायुकायिकानां सर्वबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं त्रिसमयोनम्, उत्कर्षेण त्रीणि वर्षसहस्राणि समयाधिकानि।
देशबन्धान्तरं जघन्येन एकं समयं, उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्त्तम्।

३८१. [1]पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के बंध के अन्तर की पृच्छा।
सर्व बंध का अन्तर एकेन्द्रिय की भांति वक्तव्य है। देश बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः तीन समय है। जैसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय की वक्तव्यता है, वैसे वायुकाय वर्जित यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है—सर्व बंध का अंतर उत्कृष्टतः जिसकी जितनी स्थिति निर्दिष्ट है, उसमें एक समय अधिक कर देना चाहिए। वायुकायिक के सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः एक समय अधिक तीन हजार वर्ष है। देश बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त्त है।

भाष्य

१. सूत्र ३८१

देश बंध का जघन्य अंतर—पृथ्वीकायिक जीव ने देशबंधक होकर आयुष्य पूर्ण किया। पुनः अविग्रह गति से पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार देश बंध के अंतर का जघन्य कालमान एक समय हुआ।

देश बंध का उत्कृष्ट अंतर—पृथ्वीकायिक जीव ने देशबंधक की अवस्था में आयुष्य पूर्ण किया। वह तीन समय की विग्रह गति से पृथ्वीकायिक जीव के रूप में उत्पन्न हुआ। दो समय अनाहारक अवस्था में रहा। तीसरे समय में सर्व बंधक होकर पुनः देश बंधक बना। इस प्रकार देश बंध के अंतर का उत्कृष्ट कालमान तीन समय का होता है।[1]

वायुकायिक जीव के देश बंध का अंतर—वायुकायिक जीव औदारिक शरीर का देशबंधक है। वह वैक्रिय लब्धि से वैक्रिय शरीर का निर्माण कर अंतर्मुहूर्त्त तक उस स्थिति में रहता है, पुनः औदारिक शरीर के निर्माण के प्रथम समय में सर्व बंधक होता है। द्वितीय समय में औदारिक शरीर का देशबंधक होता है। इस प्रकार देशबंध के अंतर का उत्कृष्ट कालमान अंतर्मुहूर्त्त है।

३८२. पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालिय पुच्छा।

सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया। देसबंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं, एवं मणुस्साण वि निरवसेसं भाणियव्वं जाव उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक-औदारिकपृच्छा।

सर्वबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं त्रिसमयोनम्, उत्कर्षेण पूर्वकोटिः समया-धिका। देशबन्धान्तरं यथा एकेन्द्रियाणां तथा पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम्, एवं मनुष्याणामपि निरवशेषं भणितव्यं यावत् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्त्तम्।

३८२. पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक औदारिक शरीर के बंध के अन्तर की पृच्छा।
पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक औदारिक शरीर के सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून क्षुल्लक भवग्रहण उत्कृष्टतः एक समय अधिक पूर्वकोटि है। देश बंध का अंतर एकेन्द्रिय औदारिक शरीर की भांति पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक औदारिक शरीर का वक्तव्य है। इस प्रकार मनुष्यों का भी निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत् उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त्त है।

३८३. जीवस्स णं भंते! एगिंदियत्ते, नो एगिंदियत्ते, पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदिय-ओरालियसरीरप्पयोग-बंधंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

जीवस्य भदन्त! एकेन्द्रियत्वे, नो एकेन्द्रियत्वे, पुनरपि एकेन्द्रियत्वे एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्धान्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?

३८३. [2]भंते! एकेन्द्रिय जीव नोएकेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय आदि) में जन्म लेकर पुनः एकेन्द्रिय में जन्म लेता है, उस अवस्था में एकेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग के बंध

१. भ. वृ. ८. ३८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समया-हियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसह-स्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं॥

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन द्वे खुड्डाइं भवग्रहणे त्रिसमयोने, उत्कर्षेण द्विसागरोपमसहस्रे संख्येयवर्षाभ्यधिके। देशबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं समयाधिकम् उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे संख्येय- वर्षाभ्यधिके।

का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः संख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। देश बंध का अंतर जघन्यतः एक समय अधिक क्षुल्लक भवग्रहण, उत्कृष्टतः संख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

भाष्य

१. सूत्र ३८३

औदारिक शरीर के निर्माण के अंतरकाल का वैकल्पिक रूप इस प्रकार है। एक एकेन्द्रिय जीव तीन समय की विग्रह गति से उत्पन्न हुआ। वह दो समय अनाहारक रहा और तीसरे समय में उसने सर्व बंध किया। सर्व बंध के समय से न्यून क्षुल्लक भव का जीवन जीया। वहां से मरकर द्वीन्द्रिय आदि में पुनः क्षुल्लक भव का जीवन जीकर मरा और अविग्रह गति से पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होकर सर्वबंधक बना। इस प्रकार एकेन्द्रिय से पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होनेवाले जीव के सर्वबंध का जघन्य अंतरकाल दो क्षुल्लक भव ग्रहण होता है।[1]

कोई जीव अविग्रह गति से एकेन्द्रिय में उत्पन्न होकर प्रथम समय में सर्वबंधक बना। वहां बाईस हजार वर्ष का जीवन पूरा कर त्रसकाय में उत्पन्न हुआ। वहां संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम त्रसकाय की उत्कृष्ट काय स्थिति में रहा। पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होकर सर्वबंध किया। इस प्रकार सर्वबंध का उत्कृष्ट अंतरकाल सर्वबंध के एक समय से हीन एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट भव स्थिति (बाईस हजार वर्ष) का त्रसकाय की स्थिति में प्रक्षेपण करने पर संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम होता है। संख्यात स्थानों के संख्यात भेद होते हैं इसलिए संख्यात वर्ष कहना संगत है।[2]

कोई एकेन्द्रिय जीव देशबंधक होकर मरा, द्वीन्द्रिय आदि में क्षुल्लक भव पूरा कर अविग्रह गति से पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न हुआ। प्रथम समय में सर्वबंध कर दूसरे समय में देशबंधक बना। इस प्रकार देश बंध का जघन्य अंतर काल एक समय अधिक क्षुल्लक भव होता है। देशबंध का उत्कृष्ट अंतर काल सर्वबंध के अंतर काल की भांति वक्तव्य है।[3]

३८४. जीवस्स णं भंते! पुढविक्काइयत्ते, नोपुढविक्काइयत्ते, पुणरवि पुढविक्काइयत्ते पुढविक्काइय-एगिंदिय-ओरालिय-सरीरप्पयोग-बंधंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

जीवस्य भदन्त! पृथिवीकायिकत्वे, नो पृथिवीकायिकत्वे, पुनरपि पृथ्वीकायिकत्वे पृथिवीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्धान्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?

३८४. [1]भंते! पृथ्वीकायिक जीव नो पृथ्वीकायिक में जन्म लेकर पुनः पृथ्वीकायिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा– असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो। देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइ-भागो। जहा पुढविक्काइयाणं एवं वणस्सइकाइय-वज्जाणं जाव मणुस्साणं। वणस्सइ-काइयाण दोण्णि खुड्डाइं एवं चेव, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं–

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन द्वे खुड्डाइं भवग्रहणे त्रिसमयोने, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्–अनन्ताः अवसर्पिणीः उत्सर्पिणीः कालतः, क्षेत्रतः अनन्ताः लोकाः–असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ते पुद्गल-परिवर्ताः आवलिकायाः असंख्येयतमः भागः। देशबन्धान्तरं जघन्येन खुड्डागं भवग्रहणं समयाधिकम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं यावत् आवलिकायाः असंख्येयतमः भागः। यथा–पृथिवीकायिकानाम् एवं वनस्पतिकायिकवर्जानां यावत् मनुष्याणाम्। वनस्पतिकायिकानां द्वे खुड्डाइं एवं चैव, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्–असंख्येयाः अवसर्पिणीः उत्सर्पिणीः

गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भवग्रहण, उत्कृष्टतः अनंत काल–अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक–असंख्येय पुद्गल परिवर्त, वे पुद्गल परिवर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने हैं। देशबंध का अंतर जघन्यतः एक समय अधिक क्षुल्लक भव ग्रहण, उत्कृष्टतः अनंत काल यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने हैं। जैसे–पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय की वक्तव्यता है, वैसे वनस्पतिकायिक वर्जित यावत् मनुष्य की वक्तव्यता। वनस्पतिकायिक के सर्वबंध का अंतर

१. भ. वृ. ८/३८३।
२. वही, ८/३८३
३. वही, ८/३८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, एवं देसबंधंतरं पि उक्कोसेणं पुढविकालो॥

कालतः, क्षेत्रतः असंख्येयाः लोकाः एवं देशबन्धान्तरमपि उत्कर्षेण पृथिवीकालः।

जघन्यतः तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भवग्रहण पूर्ववत् है, उत्कृष्टतः असंख्येय काल–असंख्येय अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्येय लोक. इसी प्रकार देशबंध का अंतर जघन्यतः एक समय अधिक क्षुल्लक भवग्रहण, उत्कृष्टतः पृथ्वी काल असंख्येय अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा–असंख्येय लोक।

भाष्य

१. सूत्र ३८४

पृथ्वीकायिक जीव के सर्वबंध का उत्कृष्ट अंतर काल अनंत काल है। पृथ्वीकायिक जीव मर कर वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुआ। वनस्पतिकाय का स्थिति काल अनंत काल है। इस अपेक्षा से सर्वबंध का अंतर काल अनंत काल बतलाया गया है। सूत्रकार ने अनंत के तात्पर्य का प्रतिपादन किया है–अनंत काल के समयों की राशि का उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी की राशि से अपहार करे तो अनंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी हो जाती हैं।[1]

क्षेत्र की अपेक्षा अनंत का तात्पर्य है–अनंत लोक। अनंत काल की समय राशि का लोकाकाश की प्रदेश राशि से भाग देने पर अनंत लोक हो जाते हैं। उन अनंत लोकों के असंख्य पुद्गल परिवर्त हो जाते हैं।

दस क्रोड़ाक्रोड़ अर्ध पल्योपम का एक सागरोपम, दस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का एक अवसर्पिणी काल और अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का एक पुद्गल परिवर्त होता है। पुद्गल परिवर्त के लिए द्रष्टव्य अनुयोगद्वार ६१६ का भाष्य। पृथ्वीकाल के लिए द्रष्टव्य जीवाभिगम ५/८, पन्नवणा १८/२६।

३८५. एएसि णं भंते! जीवाणं ओरालियसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

एतेषां भदन्त! जीवानाम् औदारिकशरीरस्य देशबन्धकानाम्, सर्वबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

३८५. भंते! इन औदारिक शरीर के देश बंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा, अबंधगा विसेसाहिया, देसबंधगा असंखेज्जगुणा॥

गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः औदारिकशरीरस्य सर्वबन्धकाः, अबन्धकाः विशेषाधिकाः, देशबन्धकाः असंख्येयगुणाः।

गौतम! औदारिक शरीर के सर्वबंधक जीव सबसे अल्प हैं। अबंधक विशेषाधिक हैं। देशबंधक असंख्येय गुण हैं।

भाष्य

१. सू. ३८५

औदारिक शरीर के सर्वबंधक उत्पत्ति के समय में ही होते हैं इसलिए वे सबसे अल्प हैं। उसके अबंधक विग्रह गतिक और सिद्ध होते हैं इसलिए वे सर्वबंधक की अपेक्षा विशेषाधिक हैं। देशबंध का काल सर्वबंध की अपेक्षा असंख्यात गुना अधिक है इसलिए वह उससे असंख्यात गुना अधिक है।

वेउव्वियसरीरप्पयोगं पडुच्च–

वैक्रियशरीरप्रयोगं प्रतीत्य-

वैक्रिय शरीर प्रयोग की अपेक्षा

३८६. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य पंचेंदियवेउव्विय - सरीरप्पयोगबंधे य॥

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–एकेन्द्रिय - वैक्रियशरीर - प्रयोगबन्धश्च पञ्चेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीरप्रयोगबन्धश्च।

३८६. भंते! वैक्रियशरीरप्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वैक्रियशरीरप्रयोग बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है–जैसे–एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध, पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध।

३८७. जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदिय-

यदि एकेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः किं वायुकायिक-एकेन्द्रियशरीरप्रयोगबन्धः?

३८७. यदि एकेन्द्रियवैक्रियशरीर प्रयोग बंध है तो क्या वह वायुकायिकएकेन्द्रियशरीर

१. भ. वृ. ८ ३८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरीरप्पयोगबंधे? अवाउक्काइय-एगिंदियसरीरप्पयोगबंधे?

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरभेदो तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्तासव्वट्ठ-सिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पातीयवेमाणियदेव-पंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य, अपज्जत्तासव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीयवेमा - णियदेवपंचिंदिय-वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य॥

अवायुकायिक-एकेन्द्रियशरीरप्रयोगबन्धः?

एवम् एतेन अभिलापेन यथा अवगाहन संस्थाने वैक्रिय-शरीरभेदः तथा भणितव्यः यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोप-पातिककल्पातीत-वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धश्च. अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोप-पातिककल्पातीत-वैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियवैक्रिय-शरीरप्रयोग-बन्धश्च।

प्रयोग बंध है? अवायुकायिक एकेन्द्रिय शरीर प्रयोग बंध है?

इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार अवगाहन संस्थान नामक प्रज्ञापना के पद की भांति वैक्रिय शरीर का भेद वक्तव्य है यावत् पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध, अनुत्तरोप-पातिक और कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग बंध, अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत-वैमानिकदेव पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग बंध।

भाष्य

१. सूत्र ३८७

ओगाहण संठाणे—यह प्रज्ञापना का इक्कीसवां पद है। वैक्रिय शरीर की जानकारी के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना पद २१/४१-५५।

३८८. वेउव्विसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

गोयमा! वीरिय-सजोग-सहव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोगनामाए कम्म-स्स उदएणं वेउव्विय-सरीरप्पयोग-बंधे॥

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया प्रमाद-प्रत्ययात् कर्म च योगं च भवं च आयुष्कं च लब्धिं वा प्रतीत्य वैक्रियशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः।

३८८. भंते! वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! वैक्रियशरीरप्रयोग बंध के तीन हेतु हैं—१. वीर्यसयोग सद्द्रव्यता, २. प्रमाद, ३. कर्म योग, भव, आयुष्य और लब्धि सापेक्ष वैक्रिय शरीर प्रयोग नाम कर्म।

३८९. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीर-प्पयोगपुच्छा।

गोयमा! वीरिय-सजोग-सहव्वयाए एवं चेव जाव लद्धिं पडुच्च वाउ-क्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्प-योगबंधे॥

वायुकायिक-एकेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग-पृच्छा।

गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया एवं चैव यावत् लब्धिं प्रतीत्य वायुकायिक-एकेन्द्रिय- वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः।

३८९. वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग के बंध की पृच्छा।

गौतम! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु हैं—वीर्य सयोग सद्द्रव्यता यावत् लब्धि सापेक्ष वैक्रिय शरीर प्रयोग नाम कर्म।

३९०. रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदिय-वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

गोयमा! वीरिय-सजोग-सहव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभा-पुढविनेरइयपंचिंदिय - वेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे, एवं जाव अहेसत्तमाए॥

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकपञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीर-प्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया यावत् आयुष्कं वा प्रतीत्य रत्नप्रभापृथिवीनैरयिक-पञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः, एवं यावत् अधःसप्तम्याः।

३९०. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु हैं—वीर्य सयोग सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य सापेक्ष वैक्रिय शरीर प्रयोग नाम कर्म। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता।

३९१. तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्विय-सरीरपुच्छा।

गोयमा! वीरिय-सजोग-सहव्वयाए जहा वाउक्काइयाणं। मणुस्सपंचिंदिय-

तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीरपृच्छा।

गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया यथा—वायुकायिकानाम्। मनुष्यपञ्चेन्द्रि-वैक्रिय।

३९१. तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध की पृच्छा।

गौतम! तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध वीर्य सयोग सद्द्रव्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे एवं चेव। असुरकुमारभवणवासि - देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरप्पयोग-बंधे जहा रयणप्पभापुढविनेरइ-याणं। एवं जाव थणियकुमारा। एवं वाणमंतरा। एवं जोइसिया। एवं सोहम्मकप्पोवया वेमाणिया। एवं जाव अच्चुय-गेवेज्जकप्पातीया वेमाणिया। अणुत्तरोववाइयकप्पातीया वेमाणिया एवं चेव।

शरीरप्रयोगबन्धः एवं चैव। असुरकुमार-भवनवासिदेवपञ्चेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोग-बन्धः यथा रत्नप्रभा-पृथिवी-नैरयिकाणाम्। एवं यावत् स्तनित-कुमाराः। एवं वानमन्तराः। एवं ज्योतिष्काः। एवं सोधर्म-कल्पोपकाः वैमानिकाः। एवं यावत् अच्युतग्रैवेयक-कल्पातीताः वैमानिकाः। अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीताः वैमानिकाः एवं चैव।

वायुकायिक की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार मनुष्यपंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग बंध की वक्तव्यता। असुरकुमार भवन-वासी देव पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग बंध रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार यावत् स्तनित-कुमार, वानव्यंतर और ज्योतिष्क की वक्तव्यता। इसी प्रकार सौधर्म कल्पोपपन्न वैमानिक यावत् अच्युत ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक और अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक की वक्तव्यता।

३९२. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि।
वाउक्काइयएगिंदिय - वेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे वि एवं चेव। रयणप्पभा-पुढविनेरइया एवं चेव। एवं जाव अणुत्तरोववाइया॥

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धोऽपि, सर्वबन्धोऽपि। वायुकायिक-एकेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोग-बन्धोऽपि एवं चैव। रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः एवं चैव। एवं यावत् अनुत्तरोपपातिकाः।

३९२. भंते! वैक्रियशरीरप्रयोग बंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गौतम! देश बंध भी है, सर्व बंध भी है। इसी प्रकार वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीरप्रयोग बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक यावत् अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक की वक्तव्यता।

३९३. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! सव्वबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया। देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं॥

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! सर्वबन्धः जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण द्वौ समयौ। देशबन्धः जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि समयोनानि।

३९३. भंते! वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! सर्वबंध जघन्यतः एक समय उत्कृष्टतः दो समय है। देशबंध जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक समय न्यून तैंतीस सागरोपम है।

३९४. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय-पुच्छा।
गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

वायुकायिक-एकेन्द्रियवैक्रियपृच्छा।
गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्त्तम्।

३९४. वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के कालमान की पृच्छा।
गौतम! सर्वबंध एक समय, देशबंध जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त्त है।

३९५. रयणप्पभापुढविनेरइयपुच्छा।
गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं दसवाससहस्साइं तिस-मयूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं समयूणं। एवं जाव अहेसत्तमा, नवरं–देसबंधे जस्स जा जहण्णिया ठिती सा तिसमयूणा कायव्वा जाव उक्कोसिया सा समयूणा। पंचिं-दियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छा।
गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन दशवर्षसहस्राणि त्रिसमयोनानि, उत्कर्षेण सागरोपमं समयोनम्। एवं यावत् अधःसप्तमी, नवरं–देशबन्धः यस्य या जघन्यिका स्थितिः सा त्रिसमयोना कर्त्तव्या यावत् उत्कर्षिता सा समयोना। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकानां मनुष्यानां च यथा वायु-कायिकानाम्, असुरकुमार-नागकुमार

३९५. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के कालमान की पृच्छा।
गौतम! सर्वबंध एक समय, देशबंध जघन्यतः तीन समय न्यून दस हजार वर्ष, उत्कृष्टतः एक समय न्यून सागरोपम है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता, इतना विशेष है–देशबंध में जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें तीन समय न्यून कर देना चाहिए यावत् उत्कृष्टतः उसे एक समय न्यून कर देना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा वाउक्काइयाणं, असुरकुमार-नागकुमार जाव अणुत्तरोव-वाइयाणं जहा नेरइयाणं, नवरं–जस्स जा ठिती सा भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइयाणं सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं॥

यावत्अनुत्तरोपपातिकानां यथा नैरयिकाणाम्, नवरं–यस्य या स्थितिः सा भणितव्या यावत् अनुत्तरोपपातिकानां सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः जघन्येन एकत्रिंशत् सागरोपमानि त्रिसमयोनानि, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि समयोनानि।

चाहिए।
पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक और मनुष्यों की वायुकायिक की भांति वक्तव्यता।
असुरकुमार, नागकुमार यावत् अनुत्तरोपपातिक देवों की नैरयिक की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–जिसकी जो स्थिति है, वह वक्तव्य है यावत् अनुत्तरोपपातिक देवों के सर्वबंध एक समय, देशबंध जघन्यतः तीन समय न्यून इकतीस सागरोपम, उत्कृष्टतः एक समय न्यून तैंतीस सागरोपम है।

३९६. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा–असंखेज्जा पोग्गल-परियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो। एवं देसबंधंतरं पि॥

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धान्तरं भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्–अनन्ताः अवसर्पिणीः उत्सर्पिणीः कालतः, क्षेत्रतः–अनन्ताः लोकाः–असंख्येयाः पुद्गल-परिवर्ताः, ते पुद्गल-परिवर्ताः आवलिकायाः असंख्येयतमः भागः। एवं देशबन्धान्तरमपि।

३९६. भंते! वैक्रिय शरीर प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अनंतकाल–अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक–असंख्येय पुद्गल परिवर्त, वे पुद्गल परिवर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने हैं। इसी प्रकार देश बंध के अंतर की वक्तव्यता।

३९७. वाउक्काइयवेउव्वियसरीर–पुच्छा।

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवम-स्स असंखेज्जइभागं। एवं देस-बंधंतरं पि॥

वायुकायिकवैक्रियशरीरपृच्छा।

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण पल्योपमस्य असंख्येयतमः भागः। एवं देशबन्धान्तरमपि।

३९७. 'वायुकायिक वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की पृच्छा।
गौतम! सर्व बंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार देश बंध के अंतर की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ३९७

वायुकाय का मूल शरीर औदारिक होता है। उसमें वैक्रिय शरीर का निर्माण करने की शक्ति भी होती है। उसने वैक्रिय शरीर का निर्माण किया। वह प्रथम समय में सर्वबंध होकर मरा। पुनः वायुकायिक में उत्पन्न हुआ। अपर्याप्त अवस्था में वैक्रिय शक्ति प्रकट नहीं होती। वह अन्तर्मुहूर्त के बाद पर्याप्तक होकर वैक्रिय शरीर का निर्माण करता है। वैक्रिय शरीर निर्माण के प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का जघन्य अंतर काल अंतर्मुहूर्त है।

कोई वायुकायिक वैक्रिय शक्ति को प्राप्त कर प्रथम समय में सर्वबंधक हुआ। द्वितीय समय में देशबंधक होकर मरा। उससे आगे औदारिक शरीरी वायुकाय में पल्योपम के असंख्येय भाग को बिताकर अवश्य वैक्रिय करता है। उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का उत्कृष्ट अंतर काल पल्योपम असंख्येय भाग होता है।

३९८. तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरं–पुच्छा।
गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहत्तं।

तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबन्धान्तरम्–पृच्छा।
गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण पूर्वकोटि पृथक्त्वम्। एवं देश-

३९८. 'तिर्यक्योनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की पृच्छा।
गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व पूर्व कोटि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं देसबंधंतरं पि। एवं मणूसस्स वि॥

बन्धान्तरमपि। एवं मनुष्यस्यापि।

इसी प्रकार देशबंध के अंतर की वक्तव्यता। इसी प्रकार मनुष्य वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ३९८

सर्वबंध का जघन्य अंतर काल—कोई तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव वैक्रिय कर प्रथम समय में सर्वबंधक बना। अंतर्मुहूर्त तक देश बंधक रहकर पुनः औदारिक शरीर में सर्वबंधक बना अंतर्मुहूर्त तक देश बंधक रहा। फिर उसके मन में वैक्रिय करने की श्रद्धा उत्पन्न हुई। पुनः वैक्रिय शरीर का निर्माण करता हुआ वह प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंधक का जघन्य अंतर काल अंतर्मुहूर्त होता है।

सर्वबंध का उत्कृष्ट अंतर काल—पूर्व कोटि आयु वाला कोई तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव वैक्रिय कर प्रथम समय में सर्वबंधक बना। दूसरे समय में देशबंधक होकर कालान्तर में मरा। वह पूर्व कोटि आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न हुआ। वहां उसने पूर्व जन्म सहित पूर्व कोटि आयु वाले सात-आठ भव किए। सातवें या आठवें भव में वैक्रिय शरीर का निर्माण किया। वहां प्रथम समय में सर्वबंध करता है। इस प्रकार सर्वबंध का उत्कृष्ट अंतर काल प्रत्येक पूर्व कोटि होता है। देशबंध का अंतर काल सर्वबंध की भांति वक्तव्य है। मनुष्य पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध का अंतर काल तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर काल की भांति वक्तव्य है।[1]

३९९. जीवस्स णं भंते! वाउक्का-इयत्ते, नोवाउक्काइयत्ते, पुणरवि वाउक्काइयत्ते वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियपुच्छा।

जीवस्य भदन्त! वायुकायिकत्वे, नोवायुकायिकत्वे, पुनरपि वायुकायिकत्वे वायुकायिकएकेन्द्रियवैक्रियपृच्छा।

३९९. भंते! वायुकायिक जीव नो वायुकायिक में जन्म लेकर पुनः वायुकायिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की पृच्छा।

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो। एवं देस-बंधंतरं पि॥

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं—वनस्पतिकालः। एवं देशबंधान्तरमपि।

गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल—वनस्पति काल है। इसी प्रकार देशबंध के अंतर की वक्तव्यता।

४००. जीवस्स णं भंते! रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते, नोरयणप्पभापुढविनेरइयत्ते, पुणरवि रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते—पुच्छा।

जीवस्य भदन्त! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकत्वे, नोरत्नप्रभापृथिवीनैरयिकत्वे, पुनरपि रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकत्वे पृच्छा।

४००. भंते! जीव रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक से नोरत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक में जन्म लेकर पुनः रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की पृच्छा।

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। देसबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइ-कालो। एवं जाव अहेसत्तमाए, नवरं—जा जस्स ठिती जहण्णिया सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्त-मब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव। पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं। असुरकुमार-नागकुमार जाव सहस्सार-देवाणं—एएसिं जहा रयणप्पभा-पुढवि-नेरइयाणं, नवरं—सव्वबंधंतरं जस्स जा

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन दशवर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकानि, उत्कर्षेण वनस्पतिकालः। देशबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं—वनस्पतिकालः। एवं यावत् अधःसप्तम्याः, नवरं—या यस्य स्थितिः जघन्यिका सा सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिका कर्तव्या, शेषं तच्चैव। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकमनुष्याणां च यथा वायु-कायिकानाम्। असुरकुमार-नागकुमार यावत् सहस्रारदेवानाम्—एतेषां यथा रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणाम्, नवरं—सर्वबन्धान्तरं यस्य या स्थितिः जघन्यिका सा अन्त-

गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त अभ्यधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्टतः वनस्पति काल है। देश बंध का अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल—वनस्पति काल है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता, इतना विशेष है—जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें सर्वबंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त अभ्यधिक कर देना चाहिए, शेष उसी प्रकार वक्तव्य है। पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक और मनुष्य वायुकायिक की भांति वक्तव्य हैं। असुरकुमार, नागकुमार यावत् सहस्रार

१. भ. वृ. ८-३९८।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ठिती जहण्णिया सा अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव॥

मुहूर्ताभ्यधिका कर्त्तव्या, शेषं तच्चैव।

देव—ये रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—सर्व बंध के अंतर की जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें अंतर्मुहूर्त अभ्यधिक कर देना चाहिए शेष उसी प्रकार वक्तव्य है।

४०१. जीवस्स णं भंते! आणय-देवत्ते, नोआणयदेवत्ते, पुणरवि आणयदेवत्ते पुच्छा।

जीवस्य भदन्त! आनतदेवत्वे, नो आनतदेवत्वे, पुनरपि आनतदेवत्वे पृच्छा।

४०१. भंते! जीव आनतदेव से नो आनतदेव में जन्म लेकर पुनः आनतदेव में जन्म लेता है। उस अवस्था में आनतदेव वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध के अंतर की पृच्छा।

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं वासपुहत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो। एवं जाव अच्चुए, नवरं—जस्स जा ठिती सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्त-मब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव॥

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अष्टादश सागरोपमानि वर्षपृथक्त्वाभ्यधिकानि, उत्कर्षेण अनन्तं कालं—वनस्पतिकालः। एवं यावत् अच्युतः, नवरं—यस्य या स्थितिः सा सर्वबन्धान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वाभ्यधिका कर्त्तव्या, शेषं तच्चैव।

गौतम! सर्व बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष अभ्यधिक अठारह सागरोपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल-वनस्पति काल है। इसी प्रकार यावत् अच्युत की वक्तव्यता, इतना विशेष है—जिसकी जो स्थिति है, उसमें सर्वबंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष अभ्यधिक कर देना चाहिए, शेष उसी प्रकार वक्तव्य है।

४०२. गेवेज्जाकप्पातीतापुच्छा।
गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो। देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

ग्रैवेयककल्पातीतकपृच्छा।
गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन द्वाविंशतिः सागरोपमानि वर्षपृथक्त्वाभ्यधिकानि, उत्कर्षेण अनन्तं कालं—वनस्पतिकालः। देशबन्धान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण वनस्पतिकालः।

४०२. ग्रैवेयक कल्पातीत की पृच्छा।
गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष अभ्यधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल-वनस्पति काल है। देश बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष, उत्कृष्टतः वनस्पति काल है।

४०३. जीवस्स णं भंते! अणुत्तरोववाइयपुच्छा।
गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं॥

जीवस्य भदन्त! अनुत्तरोपपातिकपृच्छा।
गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन एकत्रिंशत्-सागरोपमानि वर्षपृथक्त्वाभ्यधिकानि, उत्कर्षेण संख्येयानि सागरोपमाणि। देशबन्धान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण संख्येयानि सागरोपमाणि।

४०३. भंते! अनुत्तरोपपातिक जीव की पृच्छा।
गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष अभ्यधिक इकतीस सागरोपम, उत्कृष्टतः संख्येय सागरोपम है। देशबंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व वर्ष, उत्कृष्टतः संख्येय सागरोपम है।

भाष्य

१. सूत्र ४०३

अनुत्तर विमान देव से च्युत जीव अनंत काल तक संसार में संसरण नहीं करता इसलिए सर्वबंध और देशबंध का अंतरकाल संख्यात सागरोपम होता है।[1]

४०४. एएसि णं भंते! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

एतेषां भदन्त! जीवानां वैक्रियशरीरस्य देशबन्धकानाम् सर्वबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा?

४०४. भंते! इन वैक्रिय शरीर के देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

---

१. भ. वृ. ८ । ४०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा वेउव्विय-सरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा असंखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा।

गौतम! विशेषाधिकाः वा? सर्वस्तोकाः जीवाः वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धकाः, देश-बन्धकाः असंख्येयगुणाः, अबन्धकाः अनन्तगुणाः।

गौतम! वैक्रिय शरीर के सर्वबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देशबंधक असंख्येय गुण हैं, अबंधक अनंत गुण हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४०४

काल की अल्पता के कारण वैक्रिय शरीर के सर्वबंधक अल्प हैं। सर्वबंध की अपेक्षा देशबंध का काल असंख्यात गुण है इसलिए देशबंधक सर्वबंधक की अपेक्षा असंख्येय गुण अधिक हैं। सिद्ध और वनस्पति आदि की अपेक्षा से अबंधक देशबंधक से अनंत गुण अधिक हैं।[1]

आहारगसरीरप्पयोगं पडुच्च–

४०५. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! एगागारे पण्णत्ते॥

आहारकशरीरप्रयोगं प्रतीत्य–

आहारकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! एकाकारः प्रज्ञप्तः।

आहारक शरीर प्रयोग की अपेक्षा

४०५. भंते! आहारक शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! आहारक शरीरप्रयोग बंध एक आकार का प्रज्ञप्त है।

४०६. जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे? अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे?
गोयमा! मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे, नो अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे। एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढि-पत्तपमत्त-संजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्ज-वासाउयकम्मभूमागब्भवक्कंतिय-मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे, नो अणिड्ढि पत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठि-पज्जत्त-संखेज्जवासाउयकम्म-भूमागब्भ-वक्कंतियमणुस्साहारग-सरीरप्पयोग-बंधे॥

यदि एकाकारः प्रज्ञप्तः किं मनुष्याहारक-शरीर-प्रयोगबन्धः? अमनुष्याहारकशरीर-प्रयोगबन्धः।
गोयमा! मनुष्याहारकशरीरप्रयोगबन्धः, नो अमनुष्याहारकशरीरप्रयोगबन्धः। एवम् एतेन अभिलापेन यथा अवगाहना-संस्थाने यावत् ऋद्धिप्राप्तप्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टि-पर्याप्तसंख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमकगर्भाव-क्रान्ति-कमनुष्याहारकशरीरप्रयोगबन्धः, नो अनृद्धिप्राप्तप्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमकगर्भाव-क्रान्तिकमनुष्याहारकशरीरप्रयोगबन्धः।

४०६. यदि एक आकार का प्रज्ञप्त है तो क्या मनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध है? अमनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध है?
गौतम! वह मनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध है, अमनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध नहीं है। इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार अवगाहन संस्थान नामक प्रज्ञापना पद यावत् ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत सम्यक् दृष्टि, पर्याप्तक, संख्येयवर्षायुष्क, कर्मभूमिकगर्भावक्रांतिक मनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध है, ऋद्धि रहित प्रमत्त संयत सम्यक्दृष्टि, पर्याप्तक, संख्येय-वर्षायुष्क कर्म भूमिक गर्भावक्रांतिक मनुष्य आहारक शरीर प्रयोग बंध नहीं है।

४०७. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च लद्धिं वा पडुच्च आहारगसरीरप्पायोगनामाए कम्मस्स उदएणं आहारगसरीरप्पयोगबंधे॥

आहारकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया प्रमाद-प्रत्ययात् कर्म च योगं च भवं च आयुष्कं च लब्धिं वा प्रतीत्य आहारकशरीरप्रयोग-नाम्नः कर्मणः उदयेन आहरकशरीरप्रयोग-बन्धः।

४०७. भंते! आहारक शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! आहारक शरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु हैं– १. वीर्य सयोग सद्द्रव्यता, २. प्रमाद ३. कर्म, योग, भव, आयुष्य और लब्धि सापेक्ष आहारक शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

४०८. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि॥

आहारकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धोऽपि, सर्वबन्धोऽपि।

४०८. भंते! आहारक शरीर प्रयोग बंध क्या देशबंध है? सर्वबंध है?
गौतम! देशबंध भी है सर्वबंध भी है।

४०९. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते!

आहारकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः

४०९. भंते! आहारक शरीर प्रयोग बंध

१. भ. वृ. ८-४०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं॥

कियच्चिरं भवति?
गौतम! सर्वबन्धः एकं समयं, देशबन्धः, जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेणापि अन्तर्मुहूर्त्तम्।

काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! सर्वबंध एक समय, देशबंध जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः भी अंतर्मुहूर्त्त है।

४१०. आहारगसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

आहारकशरीरप्रयोगबन्धान्तरं भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

४१०. भंते! आहारक शरीर प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गोयमा! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा—अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं देसबंधंतरं पि॥

गौतम! सर्वबन्धान्तरं जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्—अनन्ताः अवसर्पिणीः उत्सर्पिणीः कालतः, क्षेत्रतः अनन्ताः लोकाः—अपार्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनम्। एवं देशबन्धान्तरमपि।

गौतम! सर्वबंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनंत काल—अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक—देशोन अपार्ध पुद्गल परिवर्त। इसी प्रकार देशबंध के अंतर की वक्तव्यता।

४११. एएसि णं भंते! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा संखेज्जगुणा, अबंधगा अणंत-गुणा॥

एतेषां भदन्त! जीवानाम् आहारक-शरीरस्य देशबन्धकानां, सर्वबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः आहारक-शरीरस्य सर्वबन्धकाः, देशबन्धकाः संख्येयगुणाः, अबन्धकाः अनन्तगुणाः।

४११. भंते! इन आहारक शरीर के देश बंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! आहारक शरीर के सर्वबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देशबंधक संख्येय गुण हैं, अबंधक अनंतगुण हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४०८-४११

आहारक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवधि अंतर्मुहूर्त है। आहारक शरीर का निर्माण करने वाला जीव प्रथम समय में सर्वबंधक और उत्तरकाल में देश बंधक होता है। अंतर्मुहूर्त पश्चात् उसे अवश्य औदारिक शरीर में आना होता है, इसलिए देश बंध का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर काल अन्तर्मुहूर्त होता है।[1]

तेयासरीरप्पयोगं पडुच्च—
४१२. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे, बेइंदिय-तेयासरीरप्पयोगबंधे जाव पंचिंदिय-तेयासरीरप्पयोगबंधे॥

तैजसशरीरप्रयोगं प्रतीत्य—
तैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—एकेन्द्रियतैजसशरीरप्रयोगबन्धः, द्वीन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्धः यावत् पञ्चेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्धः।

तैजस शरीर प्रयोग की अपेक्षा—
४१२. भंते! तैजस शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! तैजस शरीर प्रयोग बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—एकेन्द्रिय तैजस शरीरप्रयोग बंध, द्वीन्द्रिय तैजस शरीर प्रयोग बंध यावत् पंचेन्द्रिय तैजस शरीर प्रयोग बंध।

४१३. एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
एवं एएणं अभिलावेणं भेदो जहा ओगाहण-संठाणे जाव पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय - कप्पातीतवेमाणिय-

एकेन्द्रियतैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
एवम् एतेन अभिलापेन भेदः यथा अवगाहनासंस्थाने यावत् पर्याप्तसर्वार्थ-सिद्धअनुत्तरौपपातिककल्पातीतवैमानिक-

४१३. भंते! एकेन्द्रिय तैजसशरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार एकेन्द्रिय तैजस शरीर प्रयोग बंध के भेद प्रज्ञापना के अवगाहन संस्थान पद की

१. भ. वृ. ८/४०८-४१०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवपंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे य, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध - अणुत्तरोववाइयकप्पातीत - वेमाणियदेव-पंचिंदियतेयासरीरप्प-योगबंधे य॥

देवपञ्चेन्द्रियतैजस - शरीरप्रयोगबन्धश्च, अपर्याप्तकसर्वार्थसिद्ध - अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतवैमानिकदेवपञ्चेन्द्रियतैजसशरीर-प्रयोगबन्धश्च।

भांति वक्तव्य है यावत् पर्याप्तक सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तरोपपातिक, कल्पातीत वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय तैजस शरीर प्रयोग बंध। अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक-देव पंचेन्द्रिय तैजस शरीर प्रयोग बंध।

४१४. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं वा पडुच्च तेयासरीरप्प-योगनामाए कम्मस्स उदएणं तेया-सरीरप्पयोगबंधे॥

तैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! वीर्य-सयोग-सद्द्रव्यतया प्रमाद-प्रत्ययात् कर्म च योगं च भवं च आयुष्कं वा प्रतीत्य तैजसशरीरप्रयोगबन्धः।

४१४. भंते! तैजस शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! तैजस शरीर प्रयोग बंध के तीन हेतु हैं—१. वीर्य सयोग सद्द्रव्यता २. प्रमाद ३. कर्म, योग, भव और आयुष्य सापेक्ष तैजस शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

४१५. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे, नो सव्वबंधे॥

तैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्तः! किं देश-बन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धः, नो सर्वबन्धः।

४१५. भंते! तैजस शरीर प्रयोग बंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गौतम! देशबंध है, सर्वबंध नहीं है?

भाष्य

१. सूत्र ४१५

शरीर रचना के प्रथम समय में जब सर्व पर्याप्तियों के लिए पुद्गलों का ग्रहण किया जाता है, उस समय सर्वबंध होता है। तैजस और कर्म शरीर अनादि हैं। नए जन्म के साथ इनकी रचना नहीं होती इसलिए इनका सर्वबंध नहीं होता, केवल देशबंध ही होता है।[1] द्रष्टव्य यंत्र—

औदारिक, वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध की स्थिति एवं अंतर-काल का यंत्र

बंध स्थिति					अंतरकाल		
		देश बंध स्थिति		सर्वबंध का अंतर			देशबंध का अंतर
शरीर प्रयोग बंध समुच्चय औदारिक शरीर-प्रयोग बंध	सर्वबंध स्थिति एक समय—द्रष्टव्य सूत्र ३७६-३७८ का भाष्य	जघन्य एक समय—द्रष्टव्य सूत्र ३६७-३६८ का भाष्य	उत्कृष्ट एक समय तीन पल्योपम—द्रष्टव्य सूत्र ३७६-३७८ का भाष्य।	जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव-द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य।	उत्कृष्ट एक समयाधिक सागर- पूर्वकोटि और ३३ सागर-द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य	जघन्य एक समय द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य भाष्य।	उत्कृष्ट तीन समया-धिक ३३सागर द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१
एकेन्द्रिय शरीर-प्रयोग बंध	,, ,,	,, ,,	एक समय कम द्रष्टव्य सूत्र ३७६-३७८ का भाष्य	,, ,, ,, ,,	एक समयाधिक द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य	,, ,,	अन्तर्मुहूर्त-३७९-३८१ का भाष्य।
पृथ्वी औदारिक शरीर-प्रयोग बंध	,, ,, ,, ,,	तीन समय कम क्षुल्लक भव-द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	तीन समय-द्रष्टव्य सूत्र ३७१ का भाष्य।
अप्, तैजस वनस्पति, द्वीन्द्रिय त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, औदारिक शरीर प्रयोग बंध	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	एक समय कम जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है—जैसे अप्काय की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष है।	,, ,, ,, ,, ,, ,,	एक समयाधिक जिसकी जितनी उत्कृष्ट है।	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,, ,,

१. भ. वृ. ८-४१५- तैजसशरीरस्यानादित्वात्र सर्वबंधोऽस्ति तस्य प्रथमतः पुद्गलोपादानरूपत्वादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वायु काय औदारिक शरीर-प्रयोग बंध	,, ,, ,, ,, ,, ,,	एक समय- द्रष्टव्य सूत्र ३७६ का भाष्य	एक समय कम तीन हजार वर्ष।	,, ,, ,, ,, ,, ,,	एक समयाधिक तीन हजार वर्ष।	,, ,, ,, ,,	अंतर्मुहूर्त- द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य।
तिर्यंच मनुष्य औदारिक शरीर प्रयोग बंध	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	एक समय कम तीन पल्योपम द्रष्टव्य ३७६-३७८ का भाष्य।	,, ,, ,, ,,	पूर्वकोटि एक समयाधिक। तिर्यंच पंचेन्द्रिय मरकर वापस अन्तर रहित तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जन्में इसलिए पूर्वकोटि एक समयाधिक।	,, ,, ,, ,,	अंतर्मुहूर्त- द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य
समुच्चय वैक्रिय-शरीर प्रयोग बंध	जघन्य-एक समय। उत्कृष्ट-२ समय। वैक्रिय शरीरी जीवों में उत्पन्न होता है। हुआ प्रथम समय में सर्व बंधक होता है। यदि औदारिक शरीर वाला वैक्रिय रूप बनते समय मरकर देव या नरक में उत्पन्न होता है तो वह प्रथम समय में सर्व बंध करता है इसलिए जघन्य एक समय उत्कृष्ट-२ समय।	एक समय- औदारिक शरीरी जीव वैक्रिय शरीर करते हुए प्रथम समय में सर्वबंध तथा दूसरे समय में देश बंधक होकर तुरन्त मर जाए तो देश बंध जघन्य एक समय का	एक समय कम ३३ सागर-नरक या देवों में उत्पद्यमान जीव प्रथम समय में सर्वबंधक होकर शेष समय में देश बंधक ही होता है।	एक समय-	अनन्त वनस्पति काल-वनस्पति काय की काय स्थिति अनंत काल की है। द्रष्टव्य अनुयोग-द्वार ६१६ का भाष्य।	एक समय	अनन्त वनस्पति काल द्रष्टव्य अनयोगद्वार सूत्र ६१६ का का भाष्य।
तिर्यंच पंचेन्द्रिय मनुष्य वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध	एक समय- तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय के प्रथम समय में सर्वबंध करके मृत्यु को प्राप्त होता है	एक समय- वैक्रिय का निर्माण करते समय दूसरे बंधक समय में देश होकर मृत्यु हो जाती है।	अंतर्मुहूर्त द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य।	अन्तर्मुहूर्त द्रष्टव्य सूत्र ३७९-३८१ का भाष्य।	प्रत्येक पूर्ण-कोटि द्रष्टव्य सूत्र ३६८ का भाष्य।	अन्तर्मुहूर्त द्रष्टव्य सूत्र ३६८ का भाष्य।	प्रत्येक पूर्वकोटि द्रष्टव्य सूत्र ३६८ का भाष्य।
वायु वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध	जघन्य-एक समय ऊपरवत	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	पल्योपम का असंख्यातवां भाग	,, ,, ,, ,,	पल्योपम का असंख्यातवां भाग
रत्नप्रभा वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध शेष छहनरक और १० भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	तीन समय कम १० हजार वर्ष तीन समय कम जिसकी जितनी स्थिति है उतनी	एक समय कम एक सागर एक समय कम जिसकी जितनी स्थिति है उतनी				

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१६. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा– अणादीए वा अपज्जवसिए, अणा-दीए वा सपज्जवसिए॥

तैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– अनादिकः वा अपर्यवसितः, अनादिकः वा सपर्यवसितः।

४१६. भंते! तैजस शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! तैजस शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे– अनादिक अपर्यवसित, अनादिक सपर्यवसित।

४१७. तेयासरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! अणादीयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणादी-यस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं॥

तैजसशरीरप्रयोगबन्धान्तरं भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?

गौतम! अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्ति अन्तरम्, अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्ति अन्तरम्।

४१७. भंते! तैजस शरीर प्रयोग बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! अनादिक अपर्यवसित में अंतर नहीं है, अनादिक सपर्यवसित में अंतर नहीं है।

४१८. एएसि णं भंते! जीवाणं तेया-सरीरस्स देसबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसा-हिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा तेया-सरीरस्स अबंधगा, देसबंधगा अणंतगुणा॥

एतेषां भदन्त! जीवानां तैजसशरीरस्य देशबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा, विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः तैजसशरीरस्य अबन्धकाः, देशबन्धकाः अनन्तगुणाः।

४१८. भंते! इन तैजस शरीर के देशबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! तैजस शरीर के अबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देशबंधक अनंतगुण हैं।

कम्मासरीरप्पयोगं पडुच्च–

४१९. कम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा– नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-बंधे जाव अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

कर्मकशरीरप्रयोगं पडुच्च–

कर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! अष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– ज्ञाना-वरणीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः यावत् आन्तरायिककर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

कर्म शरीर प्रयोग की अपेक्षा

४१९. भंते! कर्म शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! कर्म शरीर प्रयोग बंध आठ प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध यावत् आंतरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध।

४२०. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्प-योगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! नाणपडिणीययाए, नाण-णिण्हवणयाए, नाणंतराएणं, नाण-प्पदोसेणं, नाणच्चासातणयाए, नाण-विसंवादणाजोगेणं नाणावरणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नाणावरणिज्जकम्मासरीर-प्पयोगबंधे॥

ज्ञानावरणीयकर्मक - शरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

गौतम! ज्ञानप्रत्यनीकतया, ज्ञाननिह्नवनेन, ज्ञानान्तरायेण, ज्ञानप्रदोषेण, ज्ञानात्या-शातनया, ज्ञानविसंवादनायोगेन ज्ञाना-वरणीयकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन ज्ञानावरणीयकर्मकशरीरप्रयोग-बन्धः।

४२०. भंते! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध के सात हेतु हैं–ज्ञान का विरोध अथवा प्रतिकूल आचरण, ज्ञान का अपलाप, ज्ञान के ग्रहण में विघ्न उपस्थित करना, ज्ञान के प्रति अप्रीति रखना, ज्ञान की अवहेलना करना, ज्ञान में विसंवाद दिखलाना, ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४१९-४२०

कर्मबंध का हेतु है—आस्रव। उसके पांच प्रकार हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। प्रस्तुत आलापक में आश्रवजनित प्रवृत्तियों का बाह्य हेतु के रूप में और कर्म के उदय का अंतरंग हेतु के रूप में विधान किया गया है।

ज्ञानावरणीय कर्म शरीर निर्माण के दो हेतु हैं—बाह्य और अंतरंग। बाह्य हेतु ज्ञान प्रत्यनीकता आदि छह बतलाए गए हैं। उसका अंतरंग हेतु ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग नामक कर्म का उदय है। कर्म के परमाणु-स्कंधों से कर्म शरीर की रचना होती है। कर्म की अनेक प्रवृत्तियां हैं—कर्म शरीर में उन सब प्रकृतियों के प्रकोष्ठ बन जाते हैं। अतीत में निर्मित कर्म शरीर सक्रिय होता है तब नए कर्म परमाणु स्कंधों को ग्रहण कर उन्हें अपने साथ जोड़ता रहता है। बंध का मुख्य हेतु कर्म शरीर है। तत्त्वार्थ सूत्र और भाष्यानुसारिणी में इसका स्पष्ट संकेत उपलब्ध है।[1] इस दृष्टि से ज्ञानावरण कर्मशरीर के निर्माण का मुख्य कारण ज्ञानावरण कर्म शरीर प्रयोग नामक कर्म का उदय बनता है।[2]

शब्द विमर्श

ज्ञान प्रत्यनीकता—ज्ञान (श्रुत) और ज्ञानी (श्रुतवान्) के प्रतिकूल आचरण करना।

ज्ञान निह्नवन—श्रुत और श्रुत गुरु का अपलाप करना।

ज्ञानांतराय—श्रुत के ग्रहण में विघ्न उपस्थित करना।

सर्वार्थ सिद्धि के अनुसार ज्ञान का विच्छेद करना अंतराय है।[3]

ज्ञान प्रदोष—श्रुत एवं श्रुतवान् के प्रति अप्रीति। सर्वार्थ सिद्धि में पूज्यपाद ने ज्ञान प्रदोष का अर्थ विशिष्ट किया है। किसी के द्वारा तत्त्वज्ञान के महत्त्व का प्रतिपादन करने पर मौन रहना अंतः-पैशुन्य का परिणाम है, वह प्रदोष है।[4]

ज्ञान अत्याशातना—श्रुत अथवा श्रुतवान् की अवहेलना करना। सर्वार्थसिद्धि के अनुसार ज्ञानाशातना का अर्थ है—दूसरा कोई ज्ञान का प्रकाश कर रहा है, उस समय वचन और काया से उसका निषेध करना आशातना है।[5]

ज्ञान-विसंवादना—श्रुत और श्रुतवान् के प्रति विसंवाद दिखाने का प्रयत्न करना, उनकी निश्चायकता में प्रश्नचिह्न उपस्थित करना।

उमास्वाति ने ज्ञानावरण और दर्शनावरण के छह आस्रव बतलाए है।[6]

तत्त्वार्थ सूत्र और प्रस्तुत आगम में नाम भेद और क्रम भेद—दोनों मिलते हैं।

भगवती	तत्त्वार्थ सूत्र
ज्ञान प्रत्यनीकता	ज्ञान-प्रदोष
ज्ञान निह्नवन	ज्ञान-निह्नव
ज्ञानांतराय	ज्ञान-मात्सर्य
ज्ञान-प्रदोष	ज्ञानांतराय
ज्ञान-अत्याशातना	ज्ञान-आसादन
ज्ञान-विसंवादना	ज्ञान-उपघात

दर्शनावरण ज्ञानावरण की भांति वक्तव्य है।

४२१. दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

गोयमा! दंसणपडिणीययाए, दंसणणिण्हवणयाए, दंसणंतराएणं, दंसणप्पदोसेणं, दंसणच्चासातणयाए, दंसणविसंवादणाजोगेणं दंसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

दर्शनावरणीयकर्मकशरीर - प्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

गौतम! दर्शनप्रत्यनीकतया, दर्शननिह्नवेन, दर्शनान्तरायेण, दर्शनप्रदोषेण, दर्शनात्याशातनया, दर्शनविसंवादनायोगेन दर्शनावरणीयकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन दर्शनावरणीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४२१. भंते! दर्शनावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! दर्शनावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध के सात हेतु हैं—
दर्शन का विरोध अथवा प्रतिकूल आचरण, दर्शन का अपलाप, दर्शन के ग्रहण में विघ्न उपस्थित करना, दर्शन के प्रति अप्रीति रखना, दर्शन में विसंवाद दिखलाना, दर्शनावरणीय शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

४२२. सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

सातावेदनीयकर्मक - शरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?

४२२. भंते! सातवेदनीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?

---

१. त. सू. भा. वृ. ८/३ तथा भाष्य—स बंधः।.....स एष कर्मशरीर पुद्गलग्रहणकृतो बंधो भवति।.....कर्मशरीरमिति कार्मणशरीरमात्मैक्याद योग-कषायपरिणतियुक्तमपि च कर्मयोगपुद्गलग्रहणेआत्मसात्करणे एकत्वपरिणामापादने समर्थम्।

२. भ. वृ. ८/४१९-४२९—ज्ञानावरणिज्जमित्यादि ज्ञानावरणीयहेतुत्वेन ज्ञानावरणीयलक्षणं यत्कार्मणशरीरप्रयोगनाम तनथा तस्य कर्मणस्य उदयेनेति।

३. सर्वार्थसिद्धि, ६/१० की वृत्ति—ज्ञानव्यवच्छेदकरणमंतरायः।

४. वही, ६/१० की वृत्ति—तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्य चिदनभिव्याहरतः अंतःपैशुन्यपरिणामः प्रदोषः।

५. वही, ६/१० की वृत्ति—कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम्।

६. त.सू. ६/११- तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरियावणयाए सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

गौतम! प्राणानुकम्पया, भूतानुकम्पया, जीवानुकम्पया, सत्वानुकम्पया, बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानाम् अदुःखनेन अशोचनेन अखेदनेन 'अतिप्पणयाए', अपिट्टनेन, अपरितापनेन सातावेदनीयकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन सातावेदनीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

गौतम! सातावेदनीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के हेतु है—प्राणों की अनुकंपा, भूतों की अनुकंपा, जीवों की अनुकंपा, सत्त्वों की अनुकंपा अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखित न करना, उन्हें दीन न बनाना, शरीर का अपचय करने वाला शोक पैदा न करना, अश्रुपात कराने वाला शोक पैदा न करना, लाठी आदि का प्रहार न करना, शारीरिक परिताप न देना, साता-वेदनीय शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

४२३. असायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं? गोयमा! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरियावणयाए, बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जूरणयाए तिप्पणयाए पिट्टणयाए परियावणयाए असायावेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

असातावेदनीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! परदुःखनेन, परशोचनेन, परखेदनेन, 'परतिप्पणयाए', परपिट्टनेन, परपरितापनेन, बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानां दुःखनेन शोचनेन जूरणेन, तिप्पणयाए पिट्टनेन परितापनेन असातावेदनीयकर्मशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन असाता-वेदनीयकर्मशरीरप्रयोगबन्धः।

४२३. भंते! असातवेदनीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! असातवेदनीय कर्म शरीर प्रयोग बंध के हेतु हैं—प्राणों की अनुकंपा न करना, भूतों की अनुकंपा न करना, जीवों की अनुकंपा न करना, सत्त्वों की अनुकंपा न करना, अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखित करना, उन्हें दीन बनाना, शरीर का अपचय करने वाला शोक पैदा करना, अश्रुपात कराने वाला शोक पैदा करना, लाठी आदि का प्रहार करना, शारीरिक परिताप देना, असातवेदनीय शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ४२२-४२३

सातवेदनीय कर्म शरीर निर्माण के बाह्य हेतु प्राणानुकंपा आदि हैं। उसका अंतरंग हेतु सातवेदनीय कर्म शरीर प्रयोग नामक कर्म का उदय है।

असातवेदनीय कर्म शरीर निर्माण के बाह्य हेतु पर को दुःख देना आदि हैं। उसका अंतरंग हेतु असातवेदनीय कर्म-शरीर प्रयोग नामक कर्म का उदय है।

शब्द विमर्श के लिए द्रष्टव्य भगवती ७/११३-११६ का भाष्य।

उमास्वाति ने सात वेदनीय के भूत और असातवेदनीय के छह आश्रव बतलाए हैं। वे प्रस्तुत आगम में निर्दिष्ट हेतुओं से भिन्न है।[1]

भगवती सूत्र		तत्त्वार्थ सूत्र	
सात वेदनीय	असातवेदनीय	सातवेदनीय	असातवेदनीय
१. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति अनुकंपा करने से।	१. दूसरों को दुःख देने से।	१. भूतानुकंपा	१. दुःख
२. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख न देने से।	२. दूसरे जीवों को शोक उत्पन्न करने से।	२. व्रती-अनुकंपा	२. शोक
३. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को शोक उत्पन्न न करने से।	३. जीवों को विषाद या चिंता उत्पन्न करने से।	३. दान-अनुकंपा	३. ताप
४. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को चिंता उत्पन्न न कराने से।	दूसरों को रुलाने या विलापक कराने से।	४. सराग संयम	४. आक्रन्दन

१. (क) त. सू. ६/१२-दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य।
(ख) वही, ६/१३-भूतव्रत्यनुकंपा दानं सरागसंयमादि योगः क्षान्ति शौचमिति सद्वेद्यस्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सात वेदनीय	असातवेदनीय	सातवेदनीय	असातवेदनीय
५. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को विलाप या रुदन कराकर आंसू न बहाने से।	५. दूसरों को पीटने से।	५. संयमासंयम	५. वध
६. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को न पीटने से।	६. दूसरे जीवों को परिताप देने से	६. अकामनिर्जरा ७. बालतपोयोग ८. क्षांति।	६. परिवेदन—ये असाता-वेदनीय कर्म के आस्रव हैं।
७. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को परिताप न देने से।	७. बहुत से प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों को दुःख पहुंचाने से यावत् परिताप देने से।	९. शौच—ये सात वेदनीय कर्म के आस्रव हैं।	

४२४. मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! तिव्वकोहयाए, तिव्व-माणयाए, तिव्वमायाए तिव्व-लोभयाए, तिव्वदंसणमोहणिज्ज-याए, तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं मोहणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग-बंधे॥

मोहनीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः? भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन!
गौतम! तीव्रक्रोधेन, तीव्रमानेन, तीव्र-मायया, तीव्रलोभेन, तीव्रदर्शनमोहनीयेन, तीव्रचरित्र-मोहनीयेन, मोहनीयकर्मकशरीर-प्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन मोहनीयकर्मक-शरीरप्रयोग-बन्धः।

४२४. भंते! मोहनीय कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! मोहनीय कर्म शरीरप्रयोग बंध के सात हेतु हैं—तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, तीव्र दर्शन मोहनीय, तीव्र चारित्र मोहनीय, मोहनीय कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

भाष्य

१ सूत्र ४२४

मोहनीय कर्म के दो प्रकार हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चारित्र मोहनीय के भेद हैं। तीव्र चारित्र मोहनीय का पृथक् उल्लेख हास्य, रति, अरति आदि नो- कषाय के लिए किया गया है, यह वृत्तिकार का अभिमत है।[1] यह संभावना भी की जा सकती है कि तीव्र क्रोध आदि के उल्लेख के पश्चात् मोहनीय कर्म की दो मूल प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है।

तीव्र क्रोध—तीव्र क्रोध के उदय से होने वाला आत्म परिणाम।

तीव्र मान—तीव्र मान के उदय से होने वाला आत्मपरिणाम।

तीव्र माया—तीव्र माया के उदय से होने वाला आत्म परिणाम।

तीव्र लोभ—तीव्र लोभ के उदय से होने वाला आत्म परिणाम।

तीव्र दर्शन मोहनीय—तीव्र मिथ्यात्व के उदय से होने वाला आत्म परिणाम।

उमास्वाति ने दर्शन मोहनीय बंध के पांच हेतु बतलाए हैं।[2]

१. केवली का अवर्णवाद २. श्रुत का अवर्णवाद ३. संघ का अवर्णवाद ४. धर्म का अवर्णवाद ५. देव का अवर्णवाद।

स्थानांग में दुर्लभ बोधि के पांच हेतु बतलाए हैं।[3] वे तुलना के लिए द्रष्टव्य हैं।

तीव्र चारित्र मोहनीय—तीव्र चारित्र मोह के उदय से होने वाला आत्म परिणाम।

तत्त्वार्थ सूत्र में चारित्रमोह का आस्रव तीव्र कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्म परिणाम बतलाया गया है।[4] सिद्धसेनगणि ने मोहनीय कर्म के आस्रवों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है—

नो कषाय : बंध के हेतु

स्त्रीवेद—शब्द आदि इन्द्रिय विषयों में आसक्ति, ईर्ष्यालुता, अनृतवादिता, वक्रता, परस्त्री सेवन।

पुरुषवेद—ऋजु आचरण, क्रोध आदि की मंदता, स्वदार संतोष, अनीर्ष्यालुता।

नपुंसकवेद—तीव्र क्रोध आदि से पशुओं का वध करना, मुंडन आदि करना, अप्राकृतिक मैथुन, परस्त्री से बलात्कार, विषय की तीव्र गृद्धि।

हास्य—अट्टहास अथवा व्यंग्य, दीन मनुष्य का मखौल करना, कुत्सित रोग को बढ़ाने वाला हंसी मजाक करना, बहुत प्रलाप करना, हास्यशीलता आदि।

शोक—स्वयं शोकातुर होना, दूसरे के शोक को बढ़ाना, दूसरों का शोक देखकर राजी होना आदि।

रति—विचित्र प्रकार की क्रीड़ा करना, दूसरे के चित्त को आकृष्ट करना, उत्सुकता आदि।

अरति—दूसरे के रहस्य का प्रकाशन करना, रति में बाधा डालना, पापशीलता, अकुशल क्रिया को प्रोत्साहन देना, चोरी आदि।

भय—स्वयं भयभीत होना, दूसरों को भयभीत करना, निर्दयता, त्रास देना आदि।

१. भ. वृ. ८ ४१२-४२९।
२. त. सू. ६. १४ केवलीश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।
३. ठाणं. ५/१३३।
४. त. सू. ६. १५ कषायोदयात् तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुगुप्सा—सदाचार से घृणा करना, अपवाद में रुचि रखना आदि।

चारित्र मोहनीय के बंध के हेतु—साधुजनों की गर्हा करना। धर्माभिमुख लोगों के सामने विघ्न उपस्थित करना, देशव्रती व्यक्तियों की साधना में विघ्न डालना, मद्यमांस आदि का सेवन, चारित्र गुण को दूषित करना, दूसरे के क्रोध आदि कषाय और हास्य आदि नो कषाय की उदीरणा करना आदि।[1]

तुलना के लिए तत्त्वार्थ वार्तिक[2] और सर्वार्थसिद्धि[3] द्रष्टव्य है।

४२५. नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

नैरयिकायुष्क - कर्मकशरीर - प्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! महारम्भेण, महापरिग्रहेण, पञ्चेन्द्रियवधेन, कुणपाहारेन नैरयिकायुष्क-कर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन नैरयिकायुष्ककर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४२५. [1]भंते! नैरयिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! नैरयिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—महारंभ, महापरिग्रह पंचेन्द्रिय वध, मांसाहार, नैरयिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

४२६. तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! माइल्लयाए, नियडिल्ल-याए, अलियवयणेणं, कूडतुल-कूडमाणेणं तिरिक्खजोणियाउय - कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं तिरिक्खजोणियाउयकम्मा - सरीरप्पयोगबंधे॥

तिर्यग्योनिकायुष्ककर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! मायितया, निकृतया, अलीक-वचनेन, कूटतुला-कूटमानेन तिर्यग्योनि-कायुष्ककर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः-उदयेन तिर्यग्-योनिकायुष्ककर्मकशरीर-प्रयोगबन्धः।

४२६. भंते! तिर्यक्योनिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! तिर्यक्योनिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—माया, कूट माया, असत्य वचन, कूटतोल-कूटमाप, तिर्यक्योनिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

४२७. मणुस्साउयकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! पगइभद्दयाए, पगइविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरियाए मणुस्साउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मणुस्साउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

मनुष्यायुष्ककर्मक - शरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! प्रकृतिभद्रतया, प्रकृतिविनीततया, सानुक्रोशेन, अमत्सरितया मनुष्यायुष्क-कर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन मनुष्यायुष्ककर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४२७. भंते! मनुष्य आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय होता है?
गौतम! मनुष्य आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—प्रकृति भद्रता, प्रकृति विनीतता, सानुक्रोशता, अमत्सरता, मनुष्य आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

४२८. देवाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएण?
गोयमा! सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामनिज्जराए देवाउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं देवाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

देवायुष्ककर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! सरागसंयमेन, संयमासंयमेन, बालतपःकर्मणा, अकामनिर्जरया देवायुष्क-कर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन देवायुष्ककर्मशरीरप्रयोगबन्धः।

४२८. भंते! देव आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! देव आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—सराग संयम, संयमासंयम, बालतपःकर्म, अकाम निर्जरा, देवायुष्य कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ४२५-४२८

आयुष्य कर्म के चार प्रकार हैं—नरकायु, तिर्यंच आयु, मनुष्य आयु और देवायु। प्रत्येक आयुष्य बंध के चार-चार हेतु बतलाए गए हैं।

नरकायु—नरकायु के चार हेतु—

१. महारंभ—अभयदेवसूरि ने महा का अर्थ अपरिमित तथा आरंभ का अर्थ कृषि आदि का आरंभ किया है।[4] तत्त्वार्थ में महा के

१. त. सू. भा. वृ. ६ · १५ का भाष्य।
२. त. रा. वा. ६ · १४ की वृत्ति।
३. सर्वार्थसिद्धि, ६ · १४ की वृत्ति।
४. भ. वृ. ८ · ४१९-४२३—अपरिमितिकृष्यादि आरंभतया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर बहु शब्द का प्रयोग हुआ है।[1]

आरंभ शब्द के तीन अर्थ मिलते हैं–

१. प्राणी के प्राण का व्यपरोपण।[2]

२. हिंस्र कर्म।[3]

३. प्राणी पीड़ा का हेतुभूत व्यापार।[4]

इसका तात्पर्य है–असीम आरंभ का अनवरत प्रयोग नरकायु का हेतु बनता है।

२. महा परिग्रह–परिमाण अथवा सीमा रहित संग्रह।

परिग्रह के अनेक अर्थ हैं। तात्पर्यार्थ में वे भिन्न नहीं हैं–

● ममत्व, मूर्च्छा, गृद्धि। शरीर आदि में ममत्व आंतरिक परिग्रह है। वस्तु समूह के प्रति ममत्व बाहरी परिग्रह है।[5]

● यह मेरा है, इस प्रकार का संकल्प।[6]

३. पंचेन्द्रिय वध।

४. कुणिमाहार–मांसाहार।

मांसाहार और पंचेन्द्रिय वध–इन प्रवृत्तियों का आसेवन और इनमें रागात्मकभाव अथवा द्वेषात्मक भाव की तीव्रता नरकायु का हेतु बनती है।

उमास्वाति ने नरक आयु के बहु आरंभ और बहु परिग्रह इन दो हेतुओं का ही उल्लेख किया है।[7] प्रश्न उपस्थित होता है क्या चार हेतुओं का उल्लेख उमास्वाति से उत्तरवर्ती है।

सिद्धसेनगणि ने अन्य अनेक हेतुओं का भी उल्लेख किया है।[8]

हो सकता है–प्राचीन परम्परा दो हेतुओं की रही, उत्तरकाल में उसका विस्तार हुआ और चार हेतुओं की परम्परा मान्य हो गई।

तिर्यंच आयु–

तिर्यंच आयु के चार हेतु–माया, निकृति, अलीक वचन और कूटतौल-कूटमाप।

माया–प्रवंचना।

निकृति–प्रवंचना की चेष्टा। वृत्तिकार ने दो मतांतरों का उल्लेख किया है–

१. माया को ढांकने के लिए दूसरी माया करना।

२. अति आदर प्रदर्शित कर ठगना।[9]

उमास्वाति ने तिर्यंग आयु के केवल एक हेतु–माया का उल्लेख किया है।[10]

मनुष्य आयु के चार हेतु–

१. प्रकृति भद्रता–दूसरों को अनुतप्त न करने का स्वभाव।

२. प्रकृति विनीतता–विनम्र स्वभाव।

३. सानुकंपा–अनुकंपा।

४. अमत्सरिता–दूसरे के गुणों को सहन करने की मनोवृत्ति, प्रमोद भावना।[11]

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में मनुष्य आयु के चार हेतु भिन्न प्रकार से निर्दिष्ट है[12]–

१. अल्पारंभ

२. अल्पपरिग्रह

३. स्वभाव की मृदुता

४. स्वभाव की ऋजुता।

सर्वार्थ सिद्धि में आर्जव का उल्लेख नहीं है।[13]

उमास्वाति ने निःशीलव्रतत्व को सब आयुष्यों का आस्रव बतलाया है।[14] इसका तात्पर्य है–शील और व्रत रहित दशा में सब प्रकार के आयुष्य का बंध होता है। व्रत की अवस्था में केवल वैमानिक देव आयुष्य का ही बंध होता है।

देवायु के चार हेतु–

व्यक्ति भेद से संयम दो प्रकार का होता है–

१. सराग संयम–कषाययुक्त मुनि का संयम।

२. वीतराग संयम–उपशांत या क्षीण कषाय वाले मुनि का संयम।

वीतराग संयमी के आयुष्य का बंध नहीं होता इसलिए यहां सराग संयम (सकषाय चरित्र) को देवायु के बंध का कारण बतलाया गया है।

२. संयमासंयम–आंशिक रूप से व्रत स्वीकार करने वाले गृहस्थ के जीवन में संयम और असंयम दोनों होते हैं इसलिए उसका संयम संयमासंयम कहलाता है।

३. बालतपःकर्म–मिथ्यादृष्टि का आचरण।

४. अकाम निर्जरा–निर्जरा की अभिलाषा के बिना कर्म निर्जरण का हेतुभूत आचरण।

जयाचार्य ने आयुष्य चतुष्क के हेतुभूत तत्त्वों की समीक्षा की है। उनके अनुसार नरक आयु और तिर्यंच आयु के हेतु सावद्य हैं। मनुष्य आयु और देव आयु के हेतु निरवद्य हैं। प्रस्तुत प्रकरण में यौगलिक तिर्यंच और असंज्ञी मनुष्य विवक्षित नहीं है।[15]

---

१. त. सू. ६/१६–बह्वारंभपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः।

२. त. सू. भा. वृ. भा. १ भाष्यानुसारिणी पृ. २१–आरंभः–प्राणिप्राणव्यपरोपणम्।

३. त. सू. भा. वृ. ६/१५ की वृत्ति–आरंभो हिंस्रं कर्म।

४. सर्वार्थ सिद्धि, ६/१५ की वृत्ति–आरंभः प्राणिपीडाहेतुर्व्यापारः।

५. त. सू. भा. वृ. ६/१५ की वृत्ति।

६. (क) त. रा. वा. ६/१५ की वृत्ति।

(ख) सर्वार्थसिद्धि, ६/१५ की वृत्ति।

७. त. सू. भा. वृ. ६/१६–बह्वारंभपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः।

८. वही, भा. २–भाष्यानुसारिणी पृ. २१।

९. भ. वृ. ८/४१९-४२१–निकृतिः वंचनार्थं चेष्टमाया प्रच्छादनार्थं मायान्तरमित्येके, अन्यादरकरणेन परवंचनमित्यन्ये।

१०. त. सू. ६/१७–माया तैर्यग्योनस्य।

११. भ. वृ. ८/४१९-४२१।

१२. त. सू. भा. वृ. ६/१८–अल्पारंभपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्य।

१३. सर्वार्थसिद्धि, ६/१७-१८–अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य। स्वभावमार्दवं च।

१४. त. सू. भा. वृ. ६/१९–निःशीलव्रतत्वं सर्वेषाम्।

१५. भ. जो. २/१६३/५५-६३–

नरकायु नां धार, कारण चिहुं सावद्य कह्या।
चिहुं जिन आज्ञा बार, पाप प्रकृति है ते भणी॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२९. सुभनामकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! काउज्जुययाए,भावुज्जुययाए, भासुज्जुययाए, अविसंवादणाजोगेणं सुभनामकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं सुभनामकम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

शुभनामकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! कायर्जुकतया, भावर्जुकतया, भाषर्जुकतया, अविसंवादनायोगेन शुभनामकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन शुभनामकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४२९. 'भंते! शुभनाम कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! शुभनाम कर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—काया की ऋजुता, भाव की ऋजुता, भाषा की ऋजुता, अविसंवादन योग, शुभ नाम कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

४३०. असुभनामकम्मासरीरप्पयोग बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! कायअणुज्जुययाए, भावअणुज्जुययाए, 'भासअणुज्जुययाए विसंवादणाजोगेणं असुभनाम-कम्मासरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं असुभनामकम्मासरीरप्प-योगबंधे॥

अशुभनामकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! कायानृजुकतया, भावानृजुकतया भाषानृजुकतया, विसंवादनायोगेन अशुभनामकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन अशुभनामकर्मकशरीरप्रयोबन्धः।

४३०. भंते! अशुभ नाम कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! अशुभ नामकर्म शरीर प्रयोग बंध के पांच हेतु हैं—काया की अऋजुता, भाव की अऋजुता, भाषा की अऋजुता, विसंवादन योग, अशुभ नाम कर्म शरीर प्रयोग नामकर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ४२९-४३०

नाम कर्म के दो प्रकार हैं—शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म।

शुभ नाम कर्म के चार हेतु—

१. काया का ऋजु व्यवहार।

२. भाषा का ऋजु व्यवहार।

३. भाव का ऋजु व्यवहार।

४. अविसंवादन योग—अविरोधी, धोखा न देने वाली या प्रतिज्ञात अर्थ को निभाने वाली प्रवृत्ति।

विशेष जानकारी के लिए ठाणं (४/१०२) और उत्तराध्ययन (२९/४९-५१) द्रष्टव्य है।

अशुभ नाम कर्म के चार हेतु—

१. काया का माया पूर्ण व्यवहार।

२. भाषा का माया पूर्ण व्यवहार।

३. भाव का माया पूर्ण व्यवहार।

४. विसंवादन योग—अन्यथा स्वीकार और अन्यथा आचरण।[1]

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में अशुभ नाम कर्म के योग वक्रता और विसंवादन ये हेतु निर्दिष्ट हैं।[2] भाष्य में योग वक्रता का अर्थ मन, वचन और काया का वक्रतापूर्ण व्यवहार किया गया है.

४३१. उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! जातिअमदेणं, कुलअम-देणं, बलअमदेणं, रूवअमदेणं, तव-अमदेणं, सुयअमदेणं, लाभअमदेणं, इस्सरिय-अमदेणं उच्चागोयकम्मा-सरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं उच्चागोय-कम्मा-सरीरप्पयोगबंधे॥

उच्चगोत्रकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! जात्यमदेन, कुलामदेन, बलामदेन,रूपामदेन, तपः अमदेन, श्रुतामदेन, लाभामदेन, ऐश्वर्यामदेन उच्चगोत्रकर्मकशरीरप्रयोगनाम्नः कर्मणः उदयेन उच्चगोत्रकर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४३१. 'भंते! उच्च गोत्र कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! उच्च गोत्र कर्म शरीर प्रयोग बंध के नौ हेतु हैं—जाति का मद न करना, कुल का मद न करना, बल का मद न करना, रूप का मद न करना, तप का मद न करना, श्रुत का मद न करना, लाभ का मद न करना, ऐश्वर्य का मद न करना, उच्च गोत्र कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

निपि आयु नां धार, ते पिण ए कारण चिहुं।
सावद्य आज्ञा धार, ए पिण प्रकृति पाप नीं॥
तिर्यंच युगलिया जंत, तेह तणों ते आउखो।
पुन्य प्रकृति दीसंत, निश्चै जाणे केवली॥
मनुष्य आयु नां ताहि, बहुलपणे कारण चिहुं।
निरवद्य आज्ञा माहि, पुन्य प्रकृति ए तो भणी॥
असंज्ञी मनुष्य नों जोय, आयु पाप प्रकृति अछै।
तेह तणों अवलोय, कथन इहां कीधो नहीं॥
देव आयु नां देव, कारण चिहुं निरवद्य कह्या।
चिउं आज्ञा में पेख, पुन्य प्रकृति ए ते भणी॥

आयु कर्म अवलोय, पुण्य पाप कहिये बिहुं।
सावद्य निरवद्य जोय, प्रत्यक्ष करणी पेखनों॥
पुन्य आयु कर्म जेह, तनु नाम कर्म नैं उदय करि।
जोग भला प्रकटेह, मोह रहित कारज अछै॥
पाप आउखो पेख, तनु नाम उदय जोग प्रवर्त्ते।
मोह सहित सुविशेख, ते माटै अशुभ जोग छै॥ (ज. स.)

१. भ. वृ. ८/४११-४२९—विसंवादनं अन्यथा प्रतिपन्नस्य अन्यथा करणम्।

२. त. सू. भा. वृ. ६/२१—योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३२. नीयागोयकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! जातिमदेणं, कुलमदेणं, बल-मदेणं, रूवमदेणं, तवमदेणं, सुयमदेणं, लाभमदेणं, इस्सरिय-मदेणं नीयागोय-कम्मासरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं नीयागोय-कम्मासरीरप्पयोग-बंधे॥

नीचगोत्रकर्मशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! जातिमदेन, कुलमदेन, बलमदेन, रूपमदेन, तपःमदेन, श्रुतमदेन, लाभमदेन, ऐश्वर्यमदेन नीचगोत्रकर्मकशरीरप्रयोग-नाम्नः कर्मणः उदयेन नीचगोत्रकर्मकशरीर-प्रयोगबन्धः।

४३२. भंते! नीच गोत्र कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! नीच गोत्र कर्म शरीर प्रयोग बंध के नौ हेतु हैं—जाति का मद करना, कुल का मद करना, बल का मद करना, रूप का मद करना, तप का मद करना, श्रुत का मद करना, लाभ का मद करना, ऐश्वर्य का मद करना, नीच गोत्र कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ४३१-४३२

उच्च गोत्र और नीच गोत्र के बंध के हेतु स्पष्ट हैं। तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में उच्च गोत्र और नीच गोत्र के आश्रवों का निर्देश भिन्न है।[1]

नीच गोत्र	उच्च गोत्र
परनिंदा	पर प्रशंसा
आत्म प्रशंसा	आत्मनिंदा
सद्गुण का उच्छादन	सद्गुण का उद्भावन
असद्गुण का उद्भावन	असद्गुण का उच्छादन
	नम्र वृत्ति
	अनुत्सेक

४३३. अंतराइयकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! दाणंतराएणं, लाभंतरा-एणं, भोगंतराएणं, उवभोगंतराएणं, वीरियंत-राएणं, अंतराइयकम्मासरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं अंतराइय-कम्मासरीरप्पयोगबंधे॥

आन्तरायिककर्मक - शरीरप्रयोग - बन्धः भदन्त! कस्य कर्मणः उदयेन?
गौतम! दानान्तरायेन, लाभान्तरायेन भोगान्तरायेन, उपभोगान्तरायेन, वीर्या-न्तरायेन आन्तरायिककर्मकशरीरप्रयोग-नाम्नः कर्मणः उदयेन आन्तरायिक-कर्मकशरीरप्रयोगबन्धः।

४३३. [1]भंते! आंतरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है?
गौतम! आन्तरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध के छह हेतु हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, आंतरायिक कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय।

भाष्य

१. सूत्र ४३३

अंतराय कर्म के हेतु—

१. दानान्तराय—दान में विघ्न उपस्थित करना, जिससे दाता न दे सके।

२. लाभान्तराय—लाभ में विघ्न उपस्थित करना, जिससे आदाता न ले सके।

३. भोगान्तराय—शब्द आदि विषय के अनुभव में विघ्न उत्पन्न करना, जिससे भोक्ता भोग न कर सके।

४. उपभोगान्तराय—अन्न, पान, वस्त्र आदि के आसेवन में विघ्न उपस्थित करना, जिससे उपभोक्ता उपयोग न कर सके।

५. वीर्यान्तराय—विशिष्ट चेष्टा में विघ्न उपस्थित करना, जिससे उत्साह और पराक्रम मंद हो जाए।[2]

कर्मशरीर प्रयोग के बंध के आलापक (८/४१९-४३३) में बंध के अनेक हेतु बतलाए गए हैं। इस विषय में पूज्यपाद ने एक प्रश्न उपस्थित किया है—तत्प्रदोष, निह्नव आदि ज्ञानावरण और दर्शनावरण के प्रतिनियत आश्रव हैं अथवा सब कर्मों के सामान्य आश्रव[3]? यदि प्रतिनियत आश्रव माना जाए तो आगम-विरोध का प्रसंग आएगा। आगम का सिद्धांत यह है कि आयुष्य को वर्ज कर सात कर्म का बंध प्रतिक्षण होता है। यदि बंध हेतुओं को सब कर्मों के लिए सामान्य माना जाए तो प्रस्तुत प्रकरण में विशेष उल्लेख सार्थक नहीं होगा। इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया गया है—तत्प्रदोष निह्नव आदि आश्रव सब कर्मों के प्रदेश बंध में सामान्य हेतु बनते हैं। वे ज्ञानावरण दर्शनावरण के अनुभाग बंध के विशेष हेतु बनते हैं इसलिए इनका विशेष आश्रव के रूप में उल्लेख किया गया है।[4]

---

१. त. सू. भा. वृ. ६/२४-२५—परात्मनिंदाप्रशंसासदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।

२. (क) त. सू. भा. वृ. ६/२६—विघ्नकरणमंतरायस्य, दानादीनां विघ्नकरणमंतरायाश्रवो भवतीति।
(ख) वही, खंड-२ भाष्यानुसारिणी पृ. ३९-४०।

३. (क) भ. ६/१६२।
(ख) पण्ण. २६/१-१२।

४. (क) सर्वार्थसिद्धि, ६/२७ का भाष्य।
(ख) त. रा. वा. ६/२७ की वृत्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोगबंधस्स देसबंध-सव्वबंध-पदं

४३४. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
गोयमा! देसबंधे, नो सव्वबंधे। एवं जाव अंतराइयं॥

प्रयोगबन्धस्य देशबन्ध-सर्वबन्ध-पदम्

ज्ञानावरणीयकर्मक - शरीरप्रयोग - बन्धः भदन्त! किं देशबन्धः? सर्वबन्धः?
गौतम! देशबन्धः, नो सर्वबन्धः? एवं यावत् आन्तरायिकम्।

प्रयोगबंध का देशबंध सर्वबंध-पद

४३४. [1]भंते! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध क्या देश बंध है? सर्व बंध है?
गौतम! देश बंध है, सर्व बंध नहीं है। इसी प्रकार यावत् आन्तरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ४३४

द्रष्टव्य ८/४१५ का भाष्य।

४३५. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-बंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए, अणा-दीए वा सपज्जवसिए। एवं जाव अंतराइयस्स॥

ज्ञानावरणीयकर्मक - शरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अनादिकः वा अपर्यवसितः, अनादिकः वा सपर्यवसितः। एवं यावत् आन्तरायिकस्य।

४३५. भंते! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध काल की अपेक्षा दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अनादिक अपर्यवसित, अनादिक सपर्यवसित। इसी प्रकार यावत् आंतरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध की वक्तव्यता।

४३६. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-बंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! अणादीयस्स अपज्जव-सियस्स नत्थि अंतरं, अणादीयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं। एवं जाव अंतराइयस्स॥

ज्ञानावरणीयकर्मकशरीरप्रयोगबन्धान्तरं भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्ति अन्तरम्, अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्ति अन्तरम्। एवं यावत् आन्तरायि-कस्य।

४३६. भंते! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर प्रयोग बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?
गौतम! अनादिक अपर्यवसित में अंतर नहीं है, अनादिक सपर्यवसित में अंतर नहीं है। इसी प्रकार यावत् आंतरायिक कर्म शरीर प्रयोग बंध के अंतर की वक्तव्यता।

४३७. एएसि णं भंते! जीवाणं नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स देस-बंधगाणं, अबंध-गाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा नाणा-वरणिज्जस्स कम्मस्स अबंधगा देसबंधगा अणंतगुणा। एवं आउय-वज्जं जाव अंतराइयस्स॥

एतेषां भदन्त! जीवानां ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः देशबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा, विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः अबन्धकाः, देशबन्धकाः अनन्त-गुणाः। एवम् आयुष्कवर्जं यावत् आन्तरायि-कस्य।

४३७. [1]भंते! इन ज्ञानावरणीय कर्म शरीर के देश बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?
गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म शरीर के अबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देश बंधक अनन्त गुण हैं। इसी प्रकार आयुष्य वर्जित यावत् आंतरायिक कर्म शरीर की वक्तव्यता।

४३८. आउयस्स पुच्छा!
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबंधगा, अबंधगा संखेज्जगुणा॥

आयुष्कस्य पृच्छा!
गौतम! सर्वस्तोकाः जीवाः आयुष्कस्य कर्मणः देशबन्धकाः, अबन्धकाः संख्येय-गुणाः।

४३८. आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग देश बंधक और अबंधक जीवों की पृच्छा।
गौतम! आयुष्य कर्म शरीर के देश बंधक जीव सबसे अल्प हैं, अबंधक संख्येय गुण हैं।

१. भ. वृ. ८/४३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४३७-४३८

आयु बंध का समय अल्प है और उसके अबंध का समय अधिक है। प्रस्तुत सूत्र संख्यात-जीवी वनस्पतिकायिक जीवों की अपेक्षा से विरचित है और वे संख्यात जीवी होते है। इसलिए आयुष्य के देश बंध जीवों की अपेक्षा अबंधक संख्यात गुण होते हैं।[1]

४३९.जस्स णं भंते!ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते!वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए॥
आहारगसरीरस्स किं बंधए? अबंधए?

गोयमा! नो बंधए? अबंधए॥
तेयासरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! बंधए, नो अबंधए।
जइ बंधए किं देसबंधए? सव्व-बंधए?

गोयमा! देसबंधए, नो सव्वबंधए।
कम्मासरीरस्स किं बंधए?अबंधए?
गोयमा! बंधए, नो अबंधए।
जइ बंधए किं देसबंधए? सव्व-बंधए?

गोयमा! देसबंधए, नो सव्वबंधए॥

यस्य भदन्त! औदारिकशरीरस्य सर्वबन्धः स भदन्त! वैक्रियशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः अबन्धकः।
आहारकशरीरस्य किं बन्धकः?अबन्धकः?

गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः।
तैजसशरीरस्य किं बंधकः? अबन्धकः?
गौतम! बन्धकः, नो अबन्धकः।
यदि बन्धकः किं देशबन्धकः? सर्व-बन्धकः?
गौतम! देशबन्धकः, नो सर्वबन्धकः।
कर्मक-शरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! बन्धकः, नो अबन्धकः।
यदि बन्धकः किं देशबन्धकः? सर्व-बन्धकः?
गौतम! देशबन्धकः, नो सर्वबन्धकः।

४३९. 'भंते! जिसके औदारिक शरीर का सर्व बंध है भंते! क्या वह वैक्रिय शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है।
वह आहारक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बन्धक नहीं है, अबन्धक है।
वह तैजस शरीर का बंधक है?अबंधक है?
गौतम! बंधक है, अबन्धक नहीं है।
यदि बंधक है तो क्या देश बन्धक है? सर्व बंधक है?
गौतम! देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है;
वह कर्म शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक है अबंधक नहीं है।
यदि बंधक है तो क्या देश बंधक है? सर्व बंधक है?
गौतम! देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

४४०.जस्स णं भंते!ओरालियसरीर-स्स देसबंधे, से णं भंते! वेउव्विय-सरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। एवं जहेव सव्वबंधेणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स॥

यस्य भदन्त! औदारिकशरीरस्य देशबन्धः, स भदन्त! वैक्रियशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। एवं यथैव सर्वबन्धेन भणितं तथैव देशबन्धेनापि भणितव्यं यावत् कर्मकस्य।

४४०. भंते! जिसके औदारिक शरीर का देश बन्ध है, भंते! क्या वह वैक्रिय शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबन्धक है। इस प्रकार जैसे सर्व बंध की वक्तव्यता वैसे ही देश बंध की वक्तव्यता यावत् कर्म शरीर देश बंधक है, सर्व बन्धक नहीं है।

४४१. जस्स णं भंते! वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते! ओरालिय-सरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। आहारग-सरीरस्स एवं चेव। तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेवं भाणियव्वं जाव देसबंधए, नो सव्वबंधए॥

यस्य भदन्त! वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धः, स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। आहारक-शरीरस्य एवं चैव। तैजसकस्य कर्मकस्य च यथैव औदारिकेण समं भणितं तथैव भणितव्यं यावत् देशबन्धकः, नो सर्वबन्धकः।

४४१. भंते! जिसके वैक्रिय शरीर का सर्व बंध है भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इसी प्रकार आहारक शरीर की वक्तव्यता। तैजस और कर्म शरीर की औदारिक शरीर के साथ जो वक्तव्यता है, वही यहां वक्तव्य है यावत् कर्म शरीर देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

४४२.जस्स णं भंते! वेउव्वियसरीर-स्स देसबंधे, से णं भंते!ओरालिय-सरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। एवं जहेव

यस्य भदन्त! वैक्रियशरीरस्य देशबन्धः स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। एवं यथैव

४४२. भंते! जिसके वैक्रिय शरीर का देश बंध है, भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वबंधेणं भणियं तहेव देस-बंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्म-गस्स॥

सर्वबन्धेन भणितं तथैव देशबन्धेनापि भणितव्यं यावत् कर्मकस्य।

प्रकार जैसे सर्व बंध की वक्तव्यता है वही देश बंध के विषय में वक्तव्य है, यावत् कर्म शरीर देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

४४३. जस्स णं भंते! आहारगसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते! ओरालिय-सरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। एवं वेउव्वियस्स वि। तेयाकम्माणं जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं॥

यस्य भदन्त! आहरकशरीरस्य सर्वबन्धः, स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। एवं वैक्रियस्यापि। तैजस-कर्मणोः यथैव औदारिकेण समं भणितं तथैव भणितव्यम्।

४४३. भंते! जिसके आहारक शरीर का सर्व बंध है, भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इसी प्रकार वैक्रिय शरीर की वक्तव्यता। तैजस और कर्म शरीर की औदारिक शरीर के साथ जो वक्तव्यता है, वही यहां वक्तव्य है।

४४४. जस्स णं भंते! आहारगसरीरस्स देसबंधे, से णं भंते! ओरालियसरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। एवं जहा आहारगस्स सव्वबंधेणं भणियं तहा देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स॥

यस्य भदन्त! आहारकशरीरस्य देशबन्धः, स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। एवं यथा आहारकस्य सर्वबन्धेन भणितं तथा देश-बन्धेनापि भणितव्यं यावत कर्मकस्य।

४४४. भंते! जिसके आहारक शरीर का देश बंध है, भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इस प्रकार जैसे सर्व बंध की वक्तव्यता है, वही देश बंध के विषय में वक्तव्य है, यावत् कर्म शरीर देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र ४३९-४४४

जिस समय औदारिक शरीर की रचना होती है, उस समय वैक्रिय शरीर की रचना नहीं होती इसलिए औदारिक शरीर की रचना करने वाला जीव वैक्रिय शरीर का अबंधक होता है।[1] आहारक शरीर के लिए भी यही नियम है।

औदारिक शरीर की रचना के प्रथम समय (सर्व बंध के समय) में तैजस और कार्मण शरीर की पुनर्रचना होती है[2], इसलिए जीव को तैजस और कार्मण शरीर का बंधक कहा गया है। वह रचना देश बंध (आंशिक) होती है। उनका सर्वबंध नहीं होता। उनकी पुनर्रचना का उद्देश्य है भवधारणीय शरीर (औदारिक और वैक्रिय शरीर) के साथ सामंजस्य स्थापित करना। सिद्धसेनगणि ने उनके प्रमाण की चर्चा की है। उससे सामंजस्य का तत्त्व प्रतिफलित होता है। तैजस और कार्मण शरीर का जघन्य प्रमाण अंगुल का असंख्येय भाग, उत्कृष्ट प्रमाण औदारिक शरीर जितना, केवली समुद्घात के समय वे पूरे लोक में व्याप्त हो जाते हैं और मारणांतिक समुद्घात के समय वे लम्बाई में लोकांत से लोकांत तक फैल जाते हैं।[3]

४४५. जस्स णं भंते! तेयासरीरस्स देसबंधे, से णं भंते! ओरालियसरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! बंधए वा, अबंधए वा।
जइ बंधए किं देसबंधए? सव्वबंधए?
गोयमा! देसबंधए वा, सव्वबंधए वा।
वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए?

यस्य भदन्त! तैजसशरीरस्य देशबन्धः? स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! बन्धकः वा, अबन्धकः वा।
यदि बन्धकः किं देशबन्धकः? सर्व-बन्धकः?
गौतम! देशबन्धकः वा, सर्वबन्धकः वा।
वैक्रियशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?

४४५. भंते! जिसके तैजस शरीर का देश बंध है, भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक है अथवा अबंधक है।
यदि बंधक है तो क्या देश बंधक है? सर्व बंधक है?
गौतम! देश बंधक है अथवा सर्व बंधक है।
वैक्रिय शरीर का बंधक है? अबंधक है?

---

१. भ. वृ. ८/४३९—न हि द्वौकसमये औदारिकवैक्रिययोर्बंधो विद्यत इति कृत्वा नो बंधक इति।

२. वही, ८/४३९—तैजसस्य पुनः सर्ववाग्विरहित्वाद् बंधको देशबंधकेन सर्वबंधस्तु नास्त्येव तस्येति।

३. (क) त. सू. भा. वृ. २. ४१—एतयोश्च तैजसकार्मणयोरवस्तुतः प्रमाणं मंगुलासंख्येयभागः उत्कृष्टतश्चौदारिकशरीरप्रमाणं, केवलिनः समुद्घाते लोकप्रमाणं वा भवतः मारणान्तिकसमुद्घाते वा आयामतो लोकान्ताल्लोकान्तायते स्यातामिति।

(ख) त. रा. वा. २/४८ की वृत्ति—तैजसकार्मणं जघन्येन यथोपात्तौदारिक शरीरप्रमाणं, उत्कर्षेण केवलीसमुद्घाते सर्वलोकप्रमाणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबंधए?
एवं चेव। एवं आहारगस्स वि।
कम्मगसरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! बंधए, नो अबंधए।
जइ बंधए किं देसबंधए? सव्व-बंधए?

गोयमा! देसबंधए, नो सव्वबंधए॥

एवं चैव। एवम् आहारकस्यापि।
कर्मकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! बन्धकः, नो अबन्धकः।
यदि बन्धकः किं देशबन्धकः? सर्वबन्धकः।

गौतम! देशबन्धकः, नो सर्वबन्धकः।

इसी प्रकार वक्तव्य है। इसी प्रकार आहारक शरीर की वक्तव्यता।
कर्म शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बन्धक है, अबंधक नहीं है।
यदि बंधक है तो क्या देश बंधक है? सर्व बंधक है?

गौतम! देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

४४६. जस्स णं भंते! कम्मासरीरस्स देसबंधे, से णं भंते! ओरालिय-सरीरस्स किं बंधए? अबंधए?
गोयमा! नो बंधए, अबंधए। जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा जाव–
तेयासरीरस्स किं बंधए? अबंधए?

गोयमा! बंधए, नो अबंधए।
जइ बंधइ किं देसबंधए? सव्व-बंधए?

गोयमा! देसबंधए, नो सव्वबंधए॥

यस्य भदन्त! कर्मकशरीरस्य देशबन्धः, स भदन्त! औदारिकशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?
गौतम! नो बन्धकः, अबन्धकः। यथा तैजस-कस्य वक्तव्यता भणिता तथा कर्मकस्यापि भणितव्या यावत्–
तैजसशरीरस्य किं बन्धकः? अबन्धकः?

गौतम! बन्धकः, नो अबन्धकः।
यदि बध्नाति किं देशबन्धकः? सर्वबन्धकः।

गौतम! देशबन्धकः नो सर्वबन्धकः।

४४६. भंते! जिसके कर्म शरीर का देश बंध है, भंते! क्या वह औदारिक शरीर का बंधक है? अबंधक है?
गौतम! बंधक है अथवा अबंधक है, जैसे– तैजस शरीर की वक्तव्यता वैसे ही कर्म शरीर की वक्तव्यता, यावत्–
क्या तैजस शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है, अबंधक नहीं है।
यदि बंधक है तो क्या देश बंधक है? सर्व बंधक है?

गौतम! देश बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र ४४५-४४६

तैजस और कार्मण शरीर की पुनर्रचना (देशबंध) के समय जीव औदारिक शरीर का बंधक होता है अथवा अबंधक? इस प्रश्न का उत्तर वैकल्पिक है। विग्रह गति (अंतराल गति) में जीव औदारिक शरीर का अबंधक होता है। अविग्रह गति (एक समय की अंतराल गति, ऋजुगति) वाला जीव उत्पत्ति के प्रथम समय में औदारिक शरीर का सर्वबंधक और द्वितीय आदि समयों में देश बंधक होता है।[1]

४४७. एएसि णं भंते! जीवाणं ओरालियवेउव्विय-आहारगतेयाकम्मा-सरीरगाणं देसबंधगाणं, सव्वबंध-गाणं, अबंधगाण य कयरे कयरे-हिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! १. सव्वत्थोवा जीवा आहारग-सरीरस्स सव्वबंधगा २. तस्स चेव देसबंधगा संखेज्जगुणा ३. वेउव्विय-सरीरस्स सव्वबंधगा असंखेज्जगुणा ४. तस्स चेव देस-बंधगा असंखेज्जगुणा ५. तेया-कम्मगाणं अबंधगा अणंत-गुणा ६. ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा अणंत-गुणा ७. तस्स चेव अबंधगा विसेसाहिया ८. तस्स चेव देस-बंधगा असंखेज्जगुणा

एतेषां भदन्त! जीवानाम् औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजसकर्मकशरीरकाणां देशबन्धकानां, सर्वबन्धकानाम्, अबन्धकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! १. सर्वस्तोकाः जीवाः आहारक-शरीरस्य सर्वबन्धकाः? २. तस्य चैव देशबन्धकाः संख्येयगुणाः ३. वैक्रियशरीर-स्य सर्वबन्धकाः असंख्येयगुणाः ४. तस्य चैव देशबन्धकाः असंख्येयगुणाः ५. तैजस-कर्मकाणाम् अबन्धकाः अनन्तगुणाः ६. औदारिकशरीरस्य सर्वबन्धकाः अनन्त-गुणाः ७. तस्य चैव अबन्धकाः विशेषा-धिकाः ८. तस्य चैव देशबन्धकाः असंख्-

४४७. भंते! इन औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्म शरीर के देश बंधक, सर्व बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! १. आहारक शरीर के सर्व बंधक जीव सबसे अल्प हैं। २. उसके देश बंधक उससे संख्येयगुण हैं। ३. वैक्रिय शरीर के सर्व बंधक उससे असंख्येय गुण हैं। ४. उसके देश बंधक उससे असंख्येय गुण हैं। ५. तैजस और कर्म शरीर के अबंधक उससे अनंत गुण हैं। ६. औदारिक शरीर के सर्वबंधक उससे अनंत गुण हैं। ७. उसके अबंधक उससे विशेषाधिक हैं। ८.

१. भ. वृ. ८ : ४४५-तैजसदेशबंधकः औदारिकशरीरस्य बंधको वा स्याद-बंधको वा, तत्र विग्रहे वर्तमानोऽबंधकोऽविग्रहस्यः पुनर्बंधकः स चोत्पत्ति-क्षेत्रप्राप्तिप्रथमसमये सर्वबंधकः, द्वितीयादौ तु देशबंधक इति, एवं कार्मणशरीरदेश-बंधकदण्डकेऽपि वाच्यमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. तेया-कम्मगाणं देसबंधगा विसेसाहिया १०. वेउव्वियसरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया ११. आहारग-सरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया॥

येयगुणाः ९. तैजस-कर्मकाणां देशबन्धकाः विशेषाधिकाः १०. वैक्रियशरीरस्य अबन्धकाः विशेषाधिकाः ११. आहारक-शरीरस्य अबन्धकाः विशेषाधिकाः।

उसके देश बंधक उससे असंख्येय गुण हैं। ९. तैजस और कर्मशरीर के देश बंधक उससे विशेषाधिक हैं। १०. वैक्रियशरीर के अबंधक उससे विशेषाधिक हैं। ११. आहारक शरीर के अबंधक उससे विशेषाधिक हैं।

४४८. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

४४८. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है।

भाष्य

१. सूत्र ४४७

१. चतुर्दशपूर्वी विशिष्ट प्रयोजनवश आहारक शरीर का निर्माण करते हैं। उसका प्रथम समय सर्वबंध का होता है। इस अपेक्षा से आहारक शरीर के सर्वबंधक सबसे अल्प होते हैं। द्वितीय समय से देश बंध का प्रारंभ हो जाता है।

२. आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त है। इस अपेक्षा से आहारक शरीर के देशबंधक असंख्येयगुण हैं।

३. वैक्रिय शरीर देव और नारक के भवधारणीय होता है तथा मनुष्य और तिर्यंच के लब्धिजन्य होता है। इस प्रकार वह बहुत व्यापक है इसलिए आहारक की अपेक्षा वैक्रिय शरीर के सर्वबंधक असंख्यात गुण अधिक होते हैं।

४. सर्वबंधक की अपेक्षा देशबंधक का काल अधिक होता है, इस अपेक्षा से वैक्रिय शरीर के देशबंधक सर्वबंधक की अपेक्षा असंख्यात गुण अधिक होते हैं।

५. सिद्ध जीव वनस्पति के जीवों को छोड़कर शेष सब जीवों से अनंत गुण अधिक हैं। उनके तैजस और कार्मण शरीर नहीं होता। इस अपेक्षा से तैजस कार्मण के अबंधक वैक्रिय शरीर देशबंधकों से अनंतगुण अधिक होते हैं।

६. वनस्पति आदि जीवों की अपेक्षा से औदारिक शरीर के सर्वबंधक तैजस कार्मण के अबंधकों से अनन्तगुण अधिक हैं।

७. विग्रह गति वाले जीव सर्वबंधकों से बहुतर होते हैं। इस अपेक्षा से औदारिक शरीर के अबंधक विशेषाधिक बतलाए गए हैं। सिद्ध इसमें विवक्षित नहीं है।

८. विग्रह काल की अपेक्षा देशबंध का काल असंख्यात गुण अधिक होता है, इस अपेक्षा से औदारिक के देशबंधक उसके अबंधक की अपेक्षा असंख्यात गुण हैं।

९. सब संसारी जीव तैजस और कार्मण शरीर के देशबंधक होते हैं। विग्रह गति वाले, औदारिक शरीर के सर्व बंधक और वैक्रिय और आहारक शरीर के बंधक औदारिक के देशबंधकों से अतिरिक्त होते हैं। इस अपेक्षा से तैजस और कार्मण के देशबंधक विशेषाधिक बतलाए गए हैं।

१०. वैक्रिय शरीर के बंधक प्रायः देव और नारक ही हैं। शेष संसारी जीव और सिद्ध उसके अबंधक हैं। इस अपेक्षा से वैक्रिय शरीर के अबंधक तैजस कार्मण के देशबंधकों से विशेषाधिक बतलाए गए हैं।

११. आहारक शरीर के बंधक केवल मनुष्य ही होते हैं। वैक्रिय शरीर के बंधक दूसरे जीव भी होते हैं इसलिए आहारक के बंधक वैक्रिय के बंधकों से अल्प होते हैं। इस अपेक्षा से आहारक शरीर के अबंधक वैक्रिय शरीर के अबंधकों से विशेषाधिक हैं।

वृत्तिकार ने इस प्रसंग में छत्तीस गाथाएं उद्धृत की हैं।[1]

बंध की विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य यंत्र–

१. भ. वृ. ८-४४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

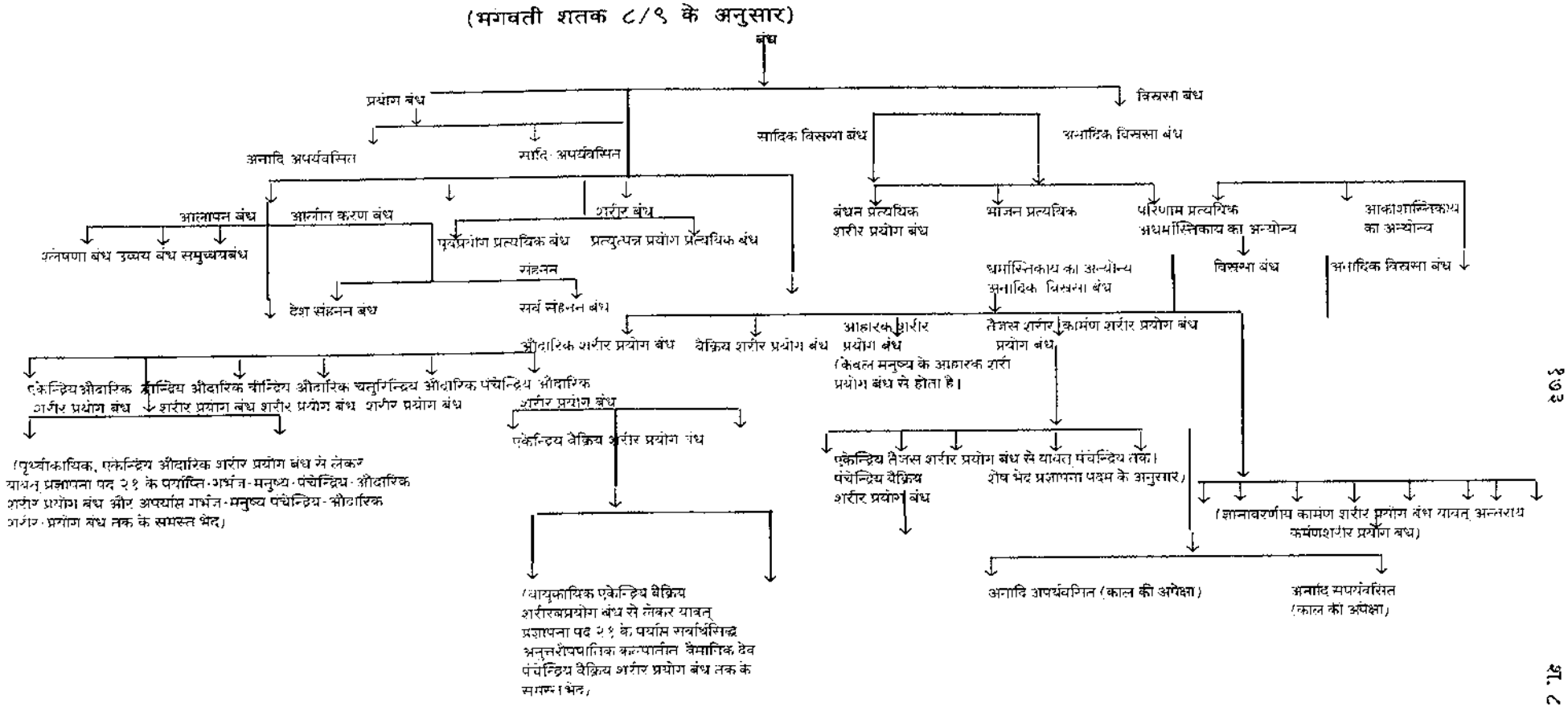

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

(षट्खंडागम बंधन अनुयोगद्वार सूत्र २-६,४ के अनुसार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सुय-सील-पदं	श्रुतशील-पदम्	श्रुतशील पद
४४९. रायगिहे नगरे जाव एवं वयासी–अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति– एवं खलु १. सीलं सेयं २. सुयं सेयं ३. सुयं सीलं सेयं॥	राजगृहे नगरे यावत् एवमवादिषुः– अन्ययूथिकाः भदन्त! एवमाख्यान्ति यावत् एवं प्ररूपयन्ति-एवं खलु १. शीलं श्रेयः २. श्रुतं श्रेयः ३. श्रुतं शीलं श्रेयः।	४४९. 'राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं– १. शील श्रेय है २. श्रुत श्रेय है ३. श्रुत और शील श्रेय है।
४५०. से कहमेयं भंते! एवं? गोयमा! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव जे ते एवमाहंसु, मिच्छा ते एवमाहंसु। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि–	अथ कथमेतद् भदन्त! एवम्? गौतम! यत् ते अन्ययूथिकाः एवमाख्यान्ति यावत् ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। अहं पुनः गौतम! एवमाख्यामि यावत् प्ररूपयामि–	४५०. भंते! यह कैसे है? गौतम! जो अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् इस प्रकार कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान करता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं–
एवं खलु मए चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–१. सीलसंपन्ने नामं एगे नो सुयसंपन्ने २. सुयसंपन्ने नामं एगे नो सीलसंपन्ने ३. एगे सीलसंपन्ने वि सुयसंपन्ने वि ४. एगे नो सीलसंपन्ने नो सुयसंपन्ने।	एवं खलु मया चत्वारः पुरुषजाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–१. शीलसम्पन्नः नाम एकः नो श्रुतसम्पन्नः २. श्रुतसम्पन्नः नाम एकः नो शीलसम्पन्नः३. एकः शीलसम्पन्नोऽपि श्रुतसम्पन्नोऽपि ४. एकः नो शीलसम्पन्नः नो श्रुतसम्पन्नः।	मैंने चार प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन किया जैसे–१. कोई पुरुष शील संपन्न होता है, श्रुत संपन्न नहीं होता २. कोई पुरुष श्रुत संपन्न होता है, शील संपन्न नहीं होता। ३. कोई पुरुष शील संपन्न भी होता है, श्रुत संपन्न भी होता है ४. कोई पुरुष न शील संपन्न होता है और न श्रुत संपन्न होता है।
तत्थ णं जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं असुयवं–उवरए, अविण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से दोच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं सुयवं–अणुवरए, विण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से तच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं सुयवं–उवरए,	तत्र यः सः प्रथमः पुरुषजातः सः पुरुषः शीलवान् अश्रुतवान्–उपरतः, अविज्ञातधर्मा। एष गौतम! मया पुरुषः देशाराधकः प्रज्ञप्तः। तत्र यः सः द्वितीयः पुरुषजातः सः पुरुष अशीलवान् श्रुतवान्–अनुपरतः, विज्ञातधर्मा। एष गौतम! मया पुरुषः देशविराधकः प्रज्ञप्तः। तत्र यः सः तृतीयः पुरुषजातः सः पुरुषः शीलवान् श्रुतवान्–उपरतः विज्ञातधर्मा।	जो प्रथम प्रकार का पुरुष है वह शीलवान है, श्रुतवान नहीं है–उपरत है, धर्म का विज्ञाता नहीं है। गौतम! उस पुरुष को मैंने देशाराधक कहा है। जो दूसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान नहीं है, श्रुतवान है–उपरत नहीं है, धर्म का विज्ञाता है। गौतम! उस पुरुष को मैंने देशविराधक कहा है। जो तीसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान है श्रुतवान भी है–उपरत है। धर्म का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते।
तत्थ णं जे से चउत्थे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं असुयवं–अणुवरए, अविण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते॥

एष गौतम! मया पुरुषः सर्वाराधकः प्रज्ञप्तः।
तत्र यः सः चतुर्थः पुरुषजातः सः पुरुषः अशीलवान्-अश्रुतवान्अनुपरतः, अविज्ञातधर्मा। एष गौतम! मया पुरुषः सर्वविराधकः प्रज्ञप्तः।

विज्ञाता भी है। गौतम! उस पुरुष को मैंने सर्वाराधक कहा है।
जो चतुर्थ प्रकार का पुरुष है वह शीलवान नहीं है, श्रुतवान भी नहीं है–उपरत नहीं है, धर्म का विज्ञाता भी नहीं है।
गौतम! उस पुरुष को मैंने सर्व विराधक कहा है।

भाष्य

१. सूत्र ४४९-४५०

भगवान महावीर के समय में अनेक मतवाद प्रचलित थे। प्रस्तुत प्रकरण में ज्ञानवाद, क्रियावाद और उभयवाद–इन तीन मतों का उल्लेख किया गया है।

शील श्रेय है–यह क्रियावाद की अवधारणा है। श्रुत (ज्ञान) श्रेय है–यह ज्ञानवाद की अवधारणा है। श्रुत भी श्रेय है और शील भी श्रेय है–कोई व्यक्ति श्रुत से पवित्र बनता है और कोई शील से पवित्र बनता है, यह उभयवाद की अवधारणा है।

क्रियावाद के बीज मीमांसक दर्शन में खोजे जा सकते है। ज्ञानवाद की अवधारणा वेदांत में उपलब्ध है।

भगवान महावीर ने अनेकांत दर्शन के आधार पर इन तीनों मतभेदों को अस्वीकार किया। उनका दर्शन है–श्रुत और शील समुदित रूप में ही श्रेय हैं। इस सिद्धांत का अनेकांतात्मक स्वरूप आराधक और विराधक–इन दोनों पदों के द्वारा समझाया गया।

एक पुरुष शीलवान है, श्रुतवान नहीं है–उसे मैं देशाराधक कहता हूं। मोक्ष का मार्ग है–सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र। वह पुरुष शीलवान है, उपरत (अकरणीय से निवृत्त) है किन्तु श्रुतवान नहीं है, विज्ञात धर्मा नहीं है इसलिए वह मोक्ष मार्ग का देशाराधक है। सम्यग् दर्शन और सम्यग् ज्ञान रहित है इसलिए वह मोक्ष मार्ग का पूर्ण आराधक नहीं है; शीलवान है, क्रिया करने वाला है इसलिए वह आंशिक आराधना करने वाला है।

दूसरा पुरुष श्रुतवान है, विज्ञात धर्मा है किन्तु शीलवान नहीं है, उपरत नहीं है, इसलिए वह देश विराधक है, त्रयात्मक मोक्ष मार्ग के केवल चारित्र अथवा शील का अनुपालन नहीं कर रहा है इसलिए वह आंशिक विराधना करने वाला है।

तीसरा पुरुष शील और श्रुत–दोनों से संपन्न है इसलिए वह समग्रता से मोक्षमार्ग की आराधना करने वाला है।

प्रथम पक्ष मिथ्यादृष्टि का है। दूसरा पक्ष व्रत रहित सम्यग्दृष्टि का है। तीसरा पक्ष सम्यग् दृष्टि सम्पन्न व्रती का है।[2]

प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादित अनेकांत दृष्टि को नियुक्तिकार ने विस्तार से समझाया है–कोरे श्रुतज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता यदि तप और संयम का योग न मिले। चरित्र नहीं है तो बहुत पढ़ा हुआ श्रुत भी प्रकाश नहीं करता। कोटि-कोटि दीप भी अंधपुरुष को प्रकाश नहीं दे पाते।

चरित्र है तो अल्प श्रुत भी प्रकाशित कर देता है। चक्षुष्मान पुरुष को एक दीप भी प्रकाश दे देता है। चंदन का भार ढोने वाला गधा चंदन का भागी नहीं, केवल चंदन का भार ढोता है। इसी प्रकार चरित्र शून्य ज्ञानी–मोक्ष का भागी नहीं है, केवल ज्ञान का भार ढोता है। क्रियाहीन ज्ञान पूर्णता की ओर नहीं ले जाता। ज्ञान शून्य क्रिया भी पूर्णता की ओर नहीं ले जाती। क्रिया शून्य ज्ञान पंगु है, ज्ञान शून्य क्रिया अंध है।

एक चक्के से रथ नहीं चलता। संयोग ही सफल होता है। ज्ञान प्रकाश करता है। तप कर्म का शोधन करता है। संयम कर्म का निरोध करता है। इनका समायोग ही मोक्ष का मार्ग है।[3]

प्रस्तुत सूत्र भगवान महावीर की सार्वभौम धर्म की दृष्टि का प्रतिनिधि सूत्र है। जिन जीवों में सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र की समुदित आराधना नहीं है, वे अपनी एकांगी आराधना पर भी मोक्ष मार्ग की ओर चरण बढ़ा सकते हैं। इस सूत्र के आधार पर आचार्य भिक्षु ने प्रथम गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव की क्रिया, आचरण को विशुद्ध बतलाया था।[3] जयाचार्य ने इस विषय में

१. भ. वृ. ८ ३४९-३५०–पुरिस जाय त्ति पुरुषप्रकारः सीलवं असुयमिति कोऽर्थः ? उवरए अविन्नाय धम्मेति 'उपरतः' निवृत्तः स्वबुद्ध्या पापात् अविज्ञातधर्मा भावतोऽनधिगतश्रुतज्ञानो ज्ञानतएवेत्यर्थः गीताश्चैनिश्चितनपश्चरणनिरतोऽगीतार्थ इत्यन्येऽसाराइए त्ति देश-स्तोकमंशं मोक्षमार्गस्याराधयतीत्यर्थः सम्यग्बोधरहितत्वात् क्रियापरत्वाच्चेति असीलवं सुयवं ति कोऽर्थः ? अणुवरएविन्नायधम्मेति पापात्निवृत्तो विज्ञातधर्मा चाविरतिसम्यग्दृष्टिरितिभावः देशविराहए त्ति देश-स्तोकमंशं ज्ञानादित्रयरूपस्य मोक्षमार्गस्य तृतीयभागरूपं चारित्रं विराधयतीत्यर्थः प्रायस्य तस्यापालनाद् प्राप्तोवा। सव्वाराहए त्ति सर्वत्रिप्रकारमपि मोक्षमार्गमाराधयतीत्यर्थः श्रुतशब्देन ज्ञानदर्शनयोः संगृहीतत्वात् नहि मिथ्यादृष्टि विज्ञातधर्मा तत्त्वतो भवतीति, एतेन समुदितयो शीलश्रुतयोः श्रेयस्त्वमुक्तमिति 'सव्वाराहए' त्युक्तम्॥

२. भ. नि. जो. ९८-१०३ पृ. १२२-१२४–

सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्स कोडीवि॥
अप्पंपि सुयमहीयं पयासयं होइ चरणजुत्तस्स।
इक्कोवि जह पईवो सचक्खुस्सा पयासेइ॥
जहा खरो चंदणं भारवाही, भारस्य भागी न हु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो नाणस्स भागी न हु सोग्गईए॥
हयं नाणं किया हीणं हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो धावमाणो य अंधओ॥
संजोगसिद्धीइ फलं वयंति न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अंधो य पंगु य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा॥
नाणं पयासगं सोहओ-तवो संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हंपि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥

३. मिथ्यात्वी की करणी री चौपई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले प्रश्न का सम्यक समाधान दिया। उनके सामने प्रश्न था—मिथ्यादृष्टि तपस्वी के संवर नहीं होता फिर वह मोक्ष मार्ग का देश आराधक कैसे हो सकता है?

जयाचार्य ने इसके समाधान में लिखा—संवर और निर्जरा—ये दोनों आराधना के अंग हैं।

मिथ्यादृष्टि को निर्जरा की अपेक्षा देश आराधक कहा गया है।[1] द्रष्टव्य भगवती ७/१५६-१५९।

आराहणा-पदं

४५१. कतिविहा णं भंते! आराहणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—नाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा॥

४५२. नाणाराहणा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया, मज्झिमा, जहण्णा॥

४५३. दंसणाराहणा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया, मज्झिमा, जहण्णा॥

४५४. चरित्ताराहणा णं भंते! कति-विहा पण्णत्ता!

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया, मज्झिमा, जहण्णा॥

४५५. जस्स णं भंते! उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा? जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया नाणाराहणा?

गोयमा! जस्स उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स दंसणाराहणा उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा। जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स नाणाराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा॥

४५६. जस्स णं भंते! उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा? जस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स उक्कोसिया नाणाराहणा?

आराधना-पदम्

कतिविधा भदन्त! आराधना प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना।

ज्ञानाराधना भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षिका, मध्यमा, जघन्या।

दर्शनाराधना भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?

गौतम? त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षिका, मध्यमा, जघन्या।

चरित्राराधना भदन्त! कतिविधा प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षिका, मध्यमा, जघन्या।

यस्य भदन्त! उत्कर्षिका ज्ञानाराधना तस्य उत्कर्षिका दर्शनाराधना? यस्य उत्कर्षिका दर्शनाराधना तस्य उत्कर्षिका ज्ञानाराधना?

गौतम! यस्य उत्कर्षिका ज्ञानाराधना तस्य दर्शनाराधना उत्कृष्टा वा अजघन्योत्कृष्टा वा, यस्य पुनः उत्कर्षिका दर्शनाराधना तस्य ज्ञानाराधना उत्कृष्टा वा, जघन्या वा, अजघन्यानुत्कृष्टा वा।

यस्य भदन्त उत्कर्षिका ज्ञानाराधना तस्य उत्कर्षिका चरित्राराधना? यस्य उत्कर्षिका चरित्राराधना तस्य उत्कर्षिका ज्ञानाराधना?

आराधना पद

४५१. भंते! आराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आराधना के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना।

४५२. भंते! ज्ञानाराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५३. भंते! दर्शनाराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५४. भंते! चरित्राराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५५. भंते! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है? जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है?

गौतम! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है, उसके दर्शनाराधना उत्कृष्ट अथवा अजघन्य-उत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है, उसके ज्ञानाराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है।

४५६. भंते! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है, क्या उसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है?

१. भगवतीवृत्तिपत्र मिथ्यात्वी क्रियाधिकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जस्स उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा। जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स नाणाराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा॥

गौतम! यस्य उत्कर्षिका ज्ञानाराधना तस्य चरित्राराधना उत्कृष्टा वा अजघन्योत्कृष्टा वा। यस्य पुनः उत्कर्षिका चरित्राराधना तस्य ज्ञानाराधना उत्कृष्टा वा जघन्या वा अजघन्यानुत्कृष्टा वा।

गौतम! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है उसके चरित्राराधना उत्कृष्ट अथवा अजघन्य उत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, उसके ज्ञानाराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है।

४५७. जस्स णं भंते! उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा? जस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा?

गोयमा! जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा। जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स दंसणाराहणा नियमा उक्कोसा॥

यस्य भदन्त! उत्कर्षिका दर्शनाराधना तस्य उत्कर्षिका चरित्राराधना? यस्य उत्कर्षिका चरित्राराधना तस्य उत्कर्षिका दर्शनाराधना?

गौतम! यस्य उत्कर्षिका दर्शनाराधना तस्य चरित्राराधना उत्कृष्टा वा, जघन्या वा, अजघन्यानुत्कृष्टा वा। यस्य पुनः उत्कर्षिका चरित्राराधना तस्य दर्शनाराधना नियमात् उत्कृष्टा।

४५७. भंते! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है? जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है?

गौतम! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है, उसके चरित्राराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है उसके दर्शनाराधना नियमतः उत्कृष्ट होती है।

४५८. उक्कोसियण्णं भंते! नाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भव-ग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, अत्थेगतिए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति॥

उत्कर्षिकां ज्ञानाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तेनैव भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, अस्त्येककः कल्पोपकेषु वा कल्पातीतेषु वा उपपद्यते।

४५८. भंते! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्प अथवा कल्पातीत स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

४५९. उक्कोसियण्णं भंते! दंसणा-राहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह-णेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भव-ग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, अत्थेगतिए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति॥

उत्कर्षिकां भदन्त! दर्शनाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तेनैव भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, अस्त्येककः कल्पोपकेषु वा कल्पातीतेषु वा उपपद्यते।

४५९. भंते! उत्कृष्ट दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्प अथवा कल्पातीत स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

४६०. उक्कोसियण्णं भंते! चरित्ता-राहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह-णेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भव-ग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, अत्थेगतिए कप्पातीएसु उववज्जति॥

उत्कर्षिकां भदन्त! चरित्राराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तेनैव भवग्रहणेण सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति अस्त्येककः कल्पातीतेषु उपपद्यते।

४६०. भंते! उत्कृष्ट चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्पातीत स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६१. मज्झिमियण्णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ॥

माध्यमिकीं भदन्त! ज्ञानाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः द्वितीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, तृतीयं पुनः भवग्रहणं नातिक्रामति।

४६१. भंते! मध्यम ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६२. मज्झिमियण्णं भंते! दंसणा-राहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह-णेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ॥

माध्यमिकीं भदन्त! दर्शनाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः द्वितीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, तृतीयं पुनः भवग्रहणं नातिक्रामति।

४६२. भंते! मध्यम दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६३. मज्झिमियण्णं भंते! चरित्ता-राहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह-णेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ॥

माध्यमिकीं भदन्त! चरित्राराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः द्वितीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति तृतीयं पुनः भवग्रहणं नातिक्रामति।

४६३. भंते! मध्यम चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६४. जहण्णियण्णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ॥

जघन्यिकां भदन्त! ज्ञानाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तृतीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, सप्ताष्टौ भवग्रहणानि पुनः नातिक्रामति।

४६४. भंते! जघन्य ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६५. जहण्णियण्णं भंते! दंसणा-राहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह-णेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ॥

जघन्यिकां भदन्त! दर्शनाराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्व-दुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तृतीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, सप्ताष्टौ भवग्रहणानि पुनः नातिक्रामति।

४६५. भंते! जघन्य दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६६. जहण्णियणं भंते! चरित्ताराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्ग-हणेहिं सिज्झति जाव सव्व- दुक्खाणं अंतं करेति?

गोयमा! अत्थेगतिए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ॥

जघन्यिकां भदन्त! चरित्राराधनाम् आराध्य कतिभिः भवग्रहणैः सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?

गौतम! अस्त्येककः तृतीयेन भवग्रहणेन सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति, सप्ताष्टौ भवग्रहणानि पुनः नातिक्रामति।

४६६. भंते! जघन्य चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

भाष्य

१. सूत्र ४५१-४६६

साध्यसिद्धि के लिए आवश्यक है-साध्य और साधना आराध्य और आराधना का निर्धारण। आध्यात्मिक विकास के तीन साधन है- ज्ञान, दर्शन और चारित्र। इस त्रयी के आधार पर आराधना के तीन प्रकार बतलाए गए हैं-

१. ज्ञानाराधना।

२. दर्शनाराधना।

३. चारित्राराधना।

ज्ञानाराधना—अध्ययन, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, उद्भावन और मौलिक का प्रकाशन, ज्ञान के काल, विनय आदि[1] आचार का अनुपालन, अतिचार का वर्जन, स्वाध्यायानुरूप तप का अनुष्ठान-ये ज्ञानाराधना के अंग हैं।

ज्ञानाराधना के तीन प्रकार हैं-

१. उत्कृष्ट-ज्ञानाराधना का उत्कृष्ट प्रयत्न।

२. मध्यम-ज्ञानाराधना का मध्यम प्रयत्न।

३. जघन्य-ज्ञानाराधना का अल्पतम प्रयत्न।

दर्शनाराधना—मोह की प्रबल ग्रंथि का भेद हो जाने पर दर्शन की चेतना जागृत होती है। उससे सम्यक दृष्टिकोण का निर्माण होता है, चेतन और अचेतन जगत के प्रति दृष्टिकोण सम्यक् बन जाता है। दर्शनाराधना के अंग हैं-आचार का अनुपालन और अतिचार का वर्जन। उसके व्यावहारिक आधार के आठ अंग बतलाए गए हैं[2]-निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपबृंहण (सम्यक् दर्शन की वृद्धि), स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना। द्रष्टव्य उत्तराध्ययन २८/३१ का टिप्पण।

१. उत्कृष्ट-दर्शनाराधना का प्रकृष्ट प्रयत्न।

२. मध्यम-दर्शनाराधना का मध्यम प्रयत्न।

३. जघन्य-दर्शनाराधना का अल्पतम प्रयत्न।

चारित्राराधना—सावद्य योग का परित्याग, सामायिक का निरतिचार अनुपालन चारित्राराधना है।

चारित्राराधना के तीन प्रकार-

१. उत्कृष्ट-चारित्राराधना का प्रकृष्ट प्रयत्न।

२. मध्यम-चारित्राराधना का मध्यम प्रयत्न।

३. जघन्य-चारित्राराधना का अल्पतम प्रयत्न।

आराधनात्रयी के साहचर्य और विकास की तरतमता की जानकारी के लिए देखें यंत्र-

	ज्ञान			दर्शन			चारित्र		
	उत्कृष्ट प्रयत्न	मध्यम प्रयत्न	जघन्य प्रयत्न	उत्कृष्ट प्रयत्न	मध्यम प्रयत्न	जघन्य प्रयत्न	उत्कृष्ट प्रयत्न	मध्यम प्रयत्न	जघन्य प्रयत्न
ज्ञान के उत्कृष्ट प्रयत्न में				है	है		है	है	
दर्शन के उत्कृष्ट प्रयत्न में	है	है	है				है	है	है
चरित्र के उत्कृष्ट प्रयत्न में	है	है	है	है					

जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसके दर्शनाराधना जघन्य नहीं होती। अभयदेव सूरि ने इसका हेतु स्वभाव बतलाया है।[3] जयाचार्य का अभिमत भी यही है।[4] स्वभाव की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है-ज्ञानाराधना दर्शनाराधना के विकास का प्रबल हेतु

१. (क) व्य. भा. ६३-
काले विणए बहुमाने, उवहाणे तहा अनिण्हवणे।
वंजण अत्थ तदुभए अट्ठविहो णाणमायारो॥
(ख) मूलाचार २/६१।

२. उत्त. २८/३१-
निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ॥

३. भ. वृ. ८/४५९-४६०-उत्कृष्टज्ञानाराधनावतो हि आद्ये द्वे दर्शनाराधने भवतो न पुनस्तृतीये; तथा स्वभावत्वात्तस्येति।

४. भ. जो. २/१६६/१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है अतः उसके प्रकर्ष में दर्शनाराधना का प्रयत्न अल्पतम नहीं हो सकता। उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के प्रसंग में चारित्र के प्रति अल्पतम प्रयत्न नहीं होता। अभयदेव सूरि ने इसे स्वीकार किया है।[1]

दर्शनाराधना और चारित्राराधना के प्रकर्ष में ज्ञानाराधना जघन्य हो सकती है। यथाख्यात चारित्र (वीतराग चारित्र) में जघन्य ज्ञान अष्ट प्रवचन माता का हो सकता है।[2] बकुश निर्ग्रंथ में जघन्य ज्ञान अष्ट प्रवचन माता का होता है।[3]

जैन साधना पद्धति में ज्ञानाराधना का बहुत महत्त्व है। स्वाध्याय के समान कोई तपस्या नहीं है—यह उसी का सूचक वाक्य है। प्रकृष्ट ज्ञानाराधना करने वाले व्यक्ति का दर्शनाराधना और चारित्राराधना में अल्पतम प्रयत्न नहीं होता। प्रकृष्ट दर्शनाराधना और प्रकृष्ट चारित्राराधना में ज्ञानाराधना अल्पतम हो सकती है। इससे यह फलित होता है कि प्रकृष्ट दर्शन और प्रकृष्ट चारित्र के लिए प्रकृष्ट ज्ञानाराधना की अनिवार्यता नहीं है। उनकी स्थिति अल्पतम ज्ञानाराधना में भी हो सकती है किन्तु प्रकृष्ट ज्ञानाराधना में प्रकृष्ट अथवा मध्यम आराधनाओं की अनिवार्यता है।

भगवती आराधना में आराधना के चार प्रकार बतलाए गए हैं उनमें त्रिविध आराधना के अतिरिक्त तप आराधना का उल्लेख है।[4]

द्वितीय भव ग्रहण—अधिकृत मनुष्य भव की अपेक्षा दूसरा मनुष्य का जन्म।

तृतीय भव ग्रहण—अधिकृत मनुष्य भव की अपेक्षा। तीसरा मनुष्य का जन्म। यहां चारित्राराधना युक्त ज्ञानाराधना और दर्शनाराधना का उल्लेख है। इसमें अंतरालवर्ती देव भव का ग्रहण नहीं है।

सप्त अष्ट भव ग्रहण—इसमें अधिकृत मनुष्य भव की अपेक्षा आठ भव चारित्रयुक्त हैं। सात भव देवता के विवक्षित हैं।[5]

बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील निर्ग्रंथ के उत्कृष्ट आठ भव बतलाए गए हैं।[6]

चारित्राराधना रहित ज्ञान और दर्शन की आराधना करने वालों के लिए अष्ट भव ग्रहण का नियम नहीं है, उनके असंख्येय जन्म हो जाते हैं।

पोग्गलपरिणाम-पदं

४६७. कतिविहे णं भंते! पोग्गल-परिणामे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णपरिणामे, गंधपरिणामे, रसपरिणामे, फास-परिणामे, संठाणपरिणामे॥

पुद्गल परिणाम-पदम्

कतिविधः भदन्त! पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पञ्चविधः पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वर्णपरिणामः, गन्धपरिणामः, रसपरिणामः, स्पर्शपरिणामः, संस्थान-परिणामः।

पुद्गल परिणाम-पद

४६७. भंते! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! पुद्गल परिणाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—वर्ण परिणाम, गंध परिणाम, रस परिणाम, स्पर्श परिणाम, संस्थान परिणाम।

४६८. वण्णपरिणामे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किल-वण्णपरिणामे। एवं एएणं अभि-लावेणं गंधपरिणामे दुविहे, रस-परिणामे पंचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे॥

वर्णपरिणामः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—कालवर्णपरिणामः यावत् शुक्लवर्णपरिणामः। एवम् एतेन अभिलापेन गन्धपरिणामः द्विविधः, रसपरिणामः पञ्चविधः, स्पर्शपरिणामः अष्टविधः।

४६८. भंते! वर्ण परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—कालवर्ण परिणाम यावत् शुक्लवर्ण परिणाम। इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार गंध परिणाम दो प्रकार का, रस परिणाम पांच प्रकार का और स्पर्श परिणाम आठ प्रकार का प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र ४६७-४६८

पुद्गल के चार गुण हैं—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श।[7] प्रस्तुत प्रकरण में उनके परिणाम बतलाए गए हैं। द्रव्य में परिणमन होता रहता है। वह अल्पकालिक भी होता है और दीर्घकालिक भी। एक परमाणु काले वर्ण का है। वह कुछ समय के बाद पीले वर्ण का हो जाता है। पुद्गल के परिणाम का अर्थ है—वर्ण आदि का परिवर्तन।

---

१. भ. वृ. ८/४५५-४५७—उत्कृष्टज्ञानाराधनावतां हि चारित्रे प्रति नात्यन्तमप्रयत्नता स्यात्, चरमत्वभावानयेति।

२. भ. ३५/४१८—सलक्खणाए संजए पुच्छा।

गोयमा! वण्णओ अहवयवयणमायाओ, उक्कोसेणं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जेज्जा सुयवतिरित्ते वा होज्जा॥

३. (क) भ. ३५/३१८-१०—बउसे पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठपवयणमायाओ उक्कोसेणं दसपुव्वाइं अहिज्जेज्जा एवं पडिसेवणा कुसीले वि।

(ख) भ. वृ. २५—अष्टप्रवचनमातृपालनस्यैत्वाद्याश्रित्य तदवतोऽष्टप्रवचन-मातृपरिज्ञानेनावश्यं भाव्यं ज्ञानपूर्वकत्वाच्चाश्रित्य, तदपरिज्ञानं च श्रुताद्यष्टप्रवचनमातृप्रतिपादनपरं श्रुतं बकुशस्य जघन्यतोऽपि भवतीति।

४. (क) मू. क. भा. ३०१ गा. ११६२-

सारसविहम्मि वि तवे सब्भितर बाहिरे कुसलदिट्ठे।
न वि अत्थि न वि य होही सज्झायसमं तवो कम्मं॥

(ख) मूलाचार ४०१।

५. भगवती आराधना २ देवेसणपाणचरित्ततवणमाराहणा भणिया।

६. भ. वृ. ८/४५५-४५७।

७. भ. २५/११४।

८. (क) त. सू. भा. वृ. ५/२३—वर्णगंधरसस्पर्शवन्तः पुद्गलाः।

(ख) उत्त. २८/१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह परिवर्तन गुणात्मक और रूपान्तर दोनों प्रकार का होता है। वर्ण का गुणात्मक परिवर्तन, जैसे–एक गुण काला परमाणु, दो, तीन, चार यावत् अनंत गुण काला हो जाता है। रूपान्तर परिवर्तन–जैसे काले रंग का परमाणु पीले रंग में बदल जाता है। यह परिणाम गंध, रस, स्पर्श, संस्थान आदि सब में होता रहता है।[1]

परमाणु से लेकर अनंत प्रदेशी स्कंध तक सभी पुद्गलरूपों की स्थिति जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः असंख्य काल बतलाई गई है। कोई वर्ण, गंध, रस और स्पर्श एक समय के बाद बदल जाता है। कोई दो समय बाद, अंततः असंख्य समय के बाद सभी में निश्चित ही परिवर्तन होता है।[2] परिणाम स्वाभाविक भी होता है और प्रायोगिक भी होता है। प्रायोगिक परिणाम के लिए द्रष्टव्य भगवती (८/३६) का भाष्य।

४६९. संठाणपरिणामे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–परिमंडल - संठाणपरिणामे जाव आयतसंठाणपरिणामे॥

संस्थानपरिणामः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–परिमंडलसंस्थानपरिणामः यावत् आयतसंस्थानपरिणामः।

४६९. भंते! संस्थान परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–परिमंडल संस्थान परिणाम यावत् आयत संस्थान परिणाम।

पोग्गलपएसस्स दव्वादीहिं भंग-पदं

४७०. एगे भंते! पोग्गलत्थिकाय-पदेसे किं १. दव्वं? २. दव्वदेसे? ३. दव्वाइं? ४. दव्वदेसा? ५. उदाहु दव्वं च दव्वदेसे य? ६. उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य? ७. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य? ८. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

गोयमा! १. सिय दव्वं २. सिय दव्वदेसे ३. नो दव्वाइं ४. नो दव्वदेसा ५. नो दव्वं च दव्वदेसे य ६. नो दव्वं च दव्वदेसा य ७. नो दव्वाइं च दव्वदेसे य ८. नो दव्वाइं च दव्वदेसा य॥

पुद्गलप्रदेशस्य द्रव्यादिभिः भंग-पदम्

एकः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशः किं १. द्रव्यम्? २. द्रव्यदेशः? ३. द्रव्याणि? ४. द्रव्यदेशाः? ५. उताहो द्रव्यं च द्रव्यदेशश्च? ६. उताहो द्रव्यं च द्रव्यदेशाश्च? ७. उताहो द्रव्याणि च द्रव्यदेशश्च? ८. उताहो द्रव्याणि च द्रव्यदेशाश्च।

गौतम! १. स्यात् द्रव्यम् २. स्यात् द्रव्यदेशः ३. नो द्रव्याणि ४. नो द्रव्यदेशाः ५. नो द्रव्यं च द्रव्यदेशश्च ६. नो द्रव्यं च द्रव्यदेशाश्च। ७. नो द्रव्याणि च द्रव्यदेशश्च ८. नो द्रव्याणि च द्रव्यदेशाश्च।

पुद्गलप्रदेश का द्रव्यादि भंग-पद

४७०. भंते! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश क्या १. द्रव्य है? २. द्रव्य देश है? ३. अनेक द्रव्य हैं? ४. अनेक द्रव्य देश हैं? ५. अथवा द्रव्य और द्रव्य देश है? ६. अथवा द्रव्य और अनेक द्रव्य देश हैं? ७. अथवा अनेक द्रव्य और द्रव्य देश हैं? ८. अथवा अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश हैं?
गौतम! १. वह स्यात् द्रव्य है। २. स्यात् द्रव्य देश है ३. अनेक द्रव्य नहीं हैं ४. अनेक द्रव्य देश नहीं हैं ५. द्रव्य और द्रव्य देश नहीं हैं। ६. द्रव्य और अनेक द्रव्य देश नहीं हैं। ७. अनेक द्रव्य और द्रव्य देश नहीं हैं। ८. अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश नहीं हैं।

४७१. दो भंते! पोग्गलत्थिकाय-पदेसा किं दव्वं? दव्वदेसे?–पुच्छा।
गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, सिय दव्वाइं, सिय दव्वदेसा, सिय दव्वं च दव्वदेसे य। सेसा पडि-सेहेयव्वा॥

द्वौ भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशौ किं द्रव्यम्? द्रव्यदेशः?–पृच्छा।
गौतम! स्यात् द्रव्यम्, स्यात् द्रव्यदेशः, स्यात् द्रव्याणि, स्यात् द्रव्यदेशाः, स्यात् द्रव्यं च द्रव्यदेशश्च। शेषाः प्रतिषेद्धव्याः।

४७१. भंते! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या द्रव्य है? द्रव्य देश है?–पृच्छा।
गौतम! स्यात् द्रव्य है, स्यात् द्रव्य देश है, स्यात् अनेक द्रव्य हैं, स्यात् अनेक द्रव्य देश हैं, स्यात् द्रव्य और द्रव्य देश हैं। शेष भंग नहीं बनते इसलिए उनका प्रतिषेध करणीय है।

४७२. तिण्णि भंते! पोग्गलत्थि-काय-पदेसा किं दव्वं? दव्वदेसे?–पुच्छा।

त्रयः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः किं द्रव्यम् द्रव्यदेशः?–पृच्छा।

४७२. भंते! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश क्या द्रव्य है? द्रव्य देश है?–पृच्छा।

---

१. भ. वृ. ८ - ४६१-वण्णपरिणामेति यत्पुद्गलो वर्णान्तरत्यागाद् वर्णान्तरं यात्यसौ वर्णपरिणाम इति एवमन्यत्रापि।

२. भ. ५ : १७२-१८०–तथा उसका भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, एवं सत्त भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य, नो दव्वाइं च दव्वदेसा य॥

गौतम! स्यात् द्रव्यम्, स्यात् द्रव्यदेशः, एवं सप्त भंगाः भणितव्याः यावत् स्यात् द्रव्याणि च द्रव्यदेशश्च, नो द्रव्याणि च द्रव्यदेशाश्च।

गौतम! वे स्यात् द्रव्य है, स्यात् द्रव्य देश है इसी प्रकार सात भंग वक्तव्य है यावत् स्यात् अनेक द्रव्य और द्रव्य देश हैं। अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश नहीं हैं।

४७३. चत्तारि भंते! पोग्गलत्थिकाय-पदेसा किं दव्वं?—पुच्छा।
गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, अट्ठ वि भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य। जहा चत्तारि भणिया एवं पंच, छ, सत्त जाव असंखेज्जा॥

चत्वारः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः किं द्रव्यम्?—पृच्छा।
गौतम! स्यात् द्रव्यम्, स्यात् द्रव्यदेशः, अष्टावपि भंगाः भणितव्याः। यावत् स्यात् द्रव्याणि च द्रव्यदेशाश्च। यथा चत्वारः भणिताः एवं पञ्च, षट्, सप्त यावत् असंख्येयाः।

४७३. भंते! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या द्रव्य है?—पृच्छा।
गौतम! वे स्यात् द्रव्य है, स्यात् द्रव्य देश हैं, आठों भंग वक्तव्य हैं यावत् स्यात् अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश हैं। जैसे पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेशों के भंग बतलाए गए हैं वैसे ही पांच, छह, सात यावत् असंख्येय प्रदेशों के भंग वक्तव्य हैं।

४७४. अणंता भंते! पोग्गलत्थिकाय-पदेसा किं दव्वं?
एवं चेव जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य॥

अनन्ताः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः किं द्रव्यम्?
एवं चैव यावत् स्यात् द्रव्याणि च द्रव्यदेशाश्च।

४७४. भंते! पुद्गलास्तिकाय के अनंत प्रदेश क्या द्रव्य है?
इसी प्रकार स्यात् द्रव्य है यावत् अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४७०-४७४

परमाणु और प्रदेश दोनों तुल्य होते हैं, स्कंध संयुक्त की संज्ञा प्रदेश और उससे वियुक्त अवस्था में उसकी संज्ञा परमाणु है।[1] पुद्गलास्तिकाय का प्रदेश—यह निरूपण नय की दृष्टि से किया गया है। परमाणु की अतीत और भावी अवस्थाओं के आधार पर उसे पुद्गलास्तिकाय का प्रदेश कहा गया है। जयाचार्य ने इस विषय का विस्तार से विवेचन किया है।[2] उसका निष्कर्ष है कि परमाणु को अनेक स्थानों पर प्रदेश कहा गया है।[3]

परमाणु के विषय में आठ प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं। चार एक वचन के और चार बहुवचन से संबद्ध हैं। उनमें दो विकल्प मान्य हैं। शेष प्रश्नों का परमाणु के साथ संबंध नहीं है।

द्रव्य गुण पर्याय से युक्त होता है। द्रव्य देश का अर्थ है द्रव्य का अवयव—

(१) परमाणु स्यात् द्रव्य है—वह किसी दूसरे द्रव्य से संयुक्त नहीं है स्वतंत्र है।

(२) परमाणु स्यात् द्रव्य का देश—स्कंध की अवस्था में वह द्रव्य का एक देश है।[4]

द्विप्रदेशी स्कंध में पांच विकल्प मान्य हैं—।

१. वह स्यात् द्रव्य—दो परमाणु, द्विप्रदेशी स्कंध रूप में परिणत हैं। इस अपेक्षा से वह द्रव्य है।

२. स्यात् द्रव्य देश—वह द्विप्रदेशी स्कंध रूप में परिणत रहता हुआ दूसरे द्रव्य से मिल जाता है। इस अपेक्षा से द्रव्य देश है।

३. स्यात् द्रव्य (बहुवचन)—द्विप्रदेशी स्कंध विभक्त होकर दो परमाणु के रूप में चला जाता है। उस अवस्था में दो द्रव्य बन जाते हैं।

४. स्यात् द्रव्य देश (बहुवचन)—दो परमाणु द्व्यणु स्कंध में परिणत न होकर बहुप्रदेशी स्कंध के साथ मिल जाते हैं। इस अपेक्षा से वे द्रव्य देश कहलाते हैं।

५. स्यात् द्रव्य और स्यात् द्रव्य देश—द्विप्रदेशी स्कंध के दो परमाणुओं में से एक परमाणु के रूप में अवस्थित है, दूसरा किसी द्रव्यांतर से संबद्ध है। इस अपेक्षा से द्रव्य और द्रव्य देश—यह विकल्प संगत है।

तीन प्रदेशी स्कंध में सात विकल्प मान्य हैं—

---

१. भ. वृ. ८ ४७० -पुद्गलास्तिकायस्य-एकाणुकादिपुद्गलराशेः प्रदेशो निरंशोंशः पुद्गलास्तिकायप्रदेशः-परमाणुः।

२. भ. जो. २ १६७-८-१३-ज्येष्ठी
एक अणुकादि प्रस्कंध, पुद्गलराशि तणो तिको।
प्रदेश निरंश अंश, प्रदेश परमाणु कह्यो।
पुद्गल राशि नों जाय, परमाणु स्कंध थी मिल्यो।
तस् प्रदेश कहिवाय, वृद्धा नहीं तिण कारणे॥
पुद्गल राशि नों जाण, स्कंध थकी जे अहि मिल्यो।
ते परमाणु पिछाण, ए प्रदेश तुल्य जाणवो॥
ते परमाणु होय, प्रदेश करिके तुल्य है।
ते माटे ए जोय, प्रदेश करि बोलाविया॥
भूत भविष्यत् काल, ते नय वचन करी कह्यं।
परमाणु पिण न्हाल, प्रदेश संज्ञा कर कह्यं॥
वर्तमान जे काल, तेह तणीण अपेक्षया।
परमाणु मैं न्हाल, अप्रदेश बहु ठामें कह्यं॥

३. भ. ५. १६०-१६५ का भाष्य।

४. भ. वृ. ८/४७१ -स्याद् द्रव्यं द्रव्यान्तरसंबंधे सति, स्यात् द्रव्यदेशो द्रव्यांतरसंबंधे सति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. स्यात् द्रव्य—तीन परमाणु त्रिप्रदेशी स्कंध के रूप में परिणत है—इसलिए वह द्रव्य है।

२. स्यात् द्रव्य देश—वह त्रिप्रदेशी स्कंध रूप में परिणत रहता हुआ दूसरे द्रव्य से मिल जाता है। इस अपेक्षा से द्रव्य देश है।

३. स्यात् द्रव्य (बहुवचन)—त्रिप्रदेशी स्कंध विभक्त होकर तीन परमाणु के रूप में चला जाता है। इस अवस्था में तीन द्रव्य बन जाते हैं अथवा त्रिप्रदेशी स्कंध विभक्त होकर एक द्विप्रदेशी स्कंध और एक परमाणु रूप में चला जाता है।

४. स्यात् द्रव्य देश (बहुवचन)—तीन परमाणु त्र्यणु स्कंध में परिणत न होकर बहुप्रदेशी स्कंध के साथ मिल जाते हैं अथवा दो परमाणु द्विप्रदेशी स्कंध के रूप में परिणत होकर और एक परमाणु, परमाणु रूप में न रहकर द्रव्यांतर से संबद्ध हो जाता है। इस अपेक्षा से वे द्रव्य देश हैं।

५. स्यात् द्रव्य और स्यात् द्रव्य देश—त्रिप्रदेशी स्कंध के तीन परमाणुओं में से दो परमाणु द्विप्रदेशी स्कंध रूप में परिणत हैं, एक परमाणु किसी द्रव्यांतर से संबद्ध है। इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध द्रव्य तथा परमाणु द्रव्य देश है। अथवा एक परमाणु रूप में स्थित है, दो परमाणु द्विप्रदेशी स्कंध रूप में परिणत होकर द्रव्यांतर से संबद्ध है, इस विकल्प में परमाणु द्रव्य है, द्विप्रदेशी स्कंध द्रव्य देश है।

६. स्यात् द्रव्य और स्यात् द्रव्य देश (बहुवचन)—त्रिप्रदेशी स्कंध का एक परमाणु परमाणु रूप में स्थित है, दो परमाणु द्रव्यांतर से संबद्ध है। इस अपेक्षा से वे द्रव्य और द्रव्य देश है।

७. स्यात् द्रव्य (बहुवचन) और द्रव्य देश—त्रिप्रदेशी स्कंध के दो परमाणु स्वतंत्र रूप में स्थित है और एक परमाणु द्रव्यांतर से संबद्ध है। इस अपेक्षा से वे द्रव्य और द्रव्य देश है।

त्रिप्रदेशी स्कंध में आठवां विकल्प संभव नहीं होता, दोनों रूपों में बहुवचन नहीं बन सकता। चतुष्प्रदेशी स्कंध में आठवां विकल्प है।[1]

परमाणु के दो विकल्प—स्थापना

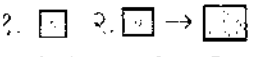

द्विप्रदेशी स्कन्ध के ५ विकल्प—

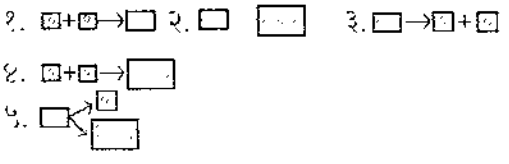

त्रिप्रदेशी स्कन्ध के ७ विकल्प—

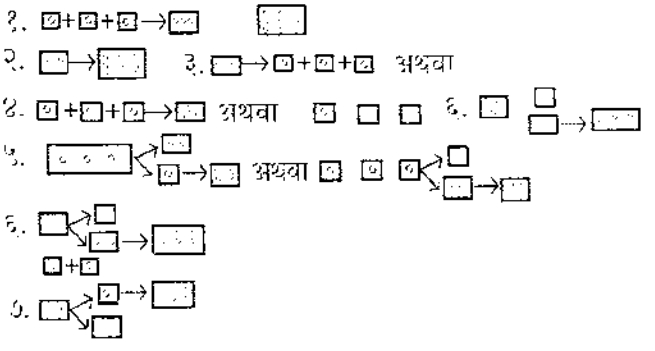

पएस-परिमाण-पदं

४७५. केवतिया णं भंते! लोया-गासपदेसा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखेज्जा लोयागास-पदेसा पण्णत्ता॥

प्रदेश-परिमाण-पदम्

कियन्तः भदन्त! लोकाकाशप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! असंख्येयाः लोकाकाशप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः।

प्रदेश परिमाण-पद

४७५. भंते! लोकाकाश के प्रदेश कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! लोकाकाश के असंख्येय प्रदेश प्रज्ञप्त हैं।

४७६. एगमेगस्स णं भंते! जीवस्स केवइया जीवपदेसा पण्णत्ता?

गोयमा! जावतिया लोयागास-पदेसा, एगमेगस्स णं जीवस्स एवतिया जीव-पदेसा पण्णत्ता॥

एकैकस्य भदन्त! जीवस्य कियन्तः जीवप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! यावन्तः लोकाकाशप्रदेशाः, एकैकस्य जीवस्य एतावन्तः जीवप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः।

४७६. भंते! एक एक जीव के जीव प्रदेश कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही प्रत्येक जीव के जीव-प्रदेश प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४७५-४७६

आकाश लोकाकाश और अलोकाकाश—इन दो भागों में विभक्त है; यह जैन दर्शन की मौलिक स्थापना है। लोकाकाश के प्रदेश अथवा परमाणु स्कंध असंख्येय हैं। स्थानांग में प्रदेश परिमाण की दृष्टि से चार तुल्य तुल्य बतलाए गए हैं—

१. धर्मास्तिकाय
२. अधर्मास्तिकाय
३. लोकाकाश
४. एक जीव।[2]

प्रस्तुत प्रकरण में एक जीव के प्रदेश लोकाकाश परिमाण—

१. भ. वृ. ८/४१२।

२. ठाणं, ४. ४९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंख्य बतलाए गए हैं। साधारणतया जीव शरीर परिमाण होता है। उसके प्रदेशों में संकोच और विस्तार की क्षमता है। इसलिए समुद्घात की स्थिति में उसके प्रदेश शरीर से बाहर फैलते हैं। केवली समुद्घात के समय वे पूरे लोकाकाश में व्याप्त हो जाते हैं।[1]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य भगवती २/१२४-१३५ का भाष्य।

कम्माणं अविभागपलिच्छेद-पदं

४७७. कति णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं॥

कर्मणाम् अविभागपरिच्छेद-पदम्-

कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! अष्टकर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्-यथा—ज्ञानावरणीयं यावत् आन्तरायिकम्।

कर्मों का अविभाग परिच्छेद-पद

४७७. 'भंते! कर्म प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं? जैसे— ज्ञानावरणीय यावत् आंतरायिक।

४७८. नेरइयाणं भंते! कति कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ। एवं सव्वजीवाणं अट्ठ कम्मपगडीओ ठावेयव्वाओ जाव वेमाणियाणं॥

नैरयिकाणां भदन्त! कति कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! अष्ट। एवं सर्वजीवानाम् अष्टकर्म-प्रकृतयः स्थापयितव्याः यावत् वैमानि-कानाम्।

४७८. भंते! नैरयिकों के कर्म प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! नैरयिकों के कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं। इस प्रकार वैमानिक पर्यंत सब जीवों के आठ कर्म प्रकृतियां स्थापनीय हैं।

४७९. नाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स केवतिया अविभाग-पलिच्छेदा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता अविभाग-पलिच्छेदा पण्णत्ता॥

ज्ञानावरणीयस्य भदन्त! कर्मणः कियन्तः अविभागपरिच्छेदाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! अनन्ताः अविभागपरिच्छेदाः प्रज्ञप्ताः।

४७९. भंते! ज्ञानावरणीय कर्म के अविभाग परिच्छेद कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनंत अविभाग परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८०. नेरइयाणं भंते! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता अविभाग-पलिच्छेदा पण्णत्ता॥

नैरयिकाणां भदन्त! ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः कियन्तः अविभागपरिच्छेदाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! अनन्ताः अविभागपरिच्छेदाः प्रज्ञप्ताः।

४८०. भंते! नैरयिकों के ज्ञानावरणीय कर्म के अविभाग परिच्छेद कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनंत अविभाग परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८१. एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाणं—पुच्छा।

गोयमा! अणंता अविभागपलि-च्छेदा पण्णत्ता। एवं जहा नाणा-वरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपग-डीणं भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं अंतराइयस्स॥

एवं सर्वजीवानां यावत् वैमानिकानाम्-पृच्छा।

गौतम! अनन्ताः अविभागपरिच्छेदाः प्रज्ञप्ताः। एवं यथा ज्ञानावरणीयस्य अविभागपरिच्छेदाः भणिताः तथा अष्टानामपि कर्मप्रकृतीनां भणितव्याः यावत् वैमानिकानाम् आन्तरायि-कस्य।

४८१. इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सब जीवों की पृच्छा।

गौतम! अनंत अविभाग परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं। जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के अनंत अविभाग परिच्छेद कहे गए हैं, उसी प्रकार आठों कर्म प्रकृतियों के वक्तव्य हैं यावत् वैमानिकों के आंतरायिक कर्म अनंत अविभाग परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८२. एगमेगस्स णं भंते! जीवस्स एगमेगे जीवपदेसे नाणावरणिज्ज-स्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभाग-पलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए?

एकैकस्य भदन्त! जीवस्य एकैकः जीवप्रदेशः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः कियद्भिः अविभागपरिच्छेदैः आवेष्टित-परिवेष्टितः?

४८२. भंते! एक एक जीव का एक एक जीव प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है?

---

१. (क) भ. वृ. ८/४७६—एकैकस्यजीवस्य यावन्तः प्रदेशाः यावन्तो लोकाकाशस्य कथं? यस्माज्जीवः केवलीसमुद्घातकाले सर्वं लोकाकाशं व्याप्यावतिष्ठते तस्याल्लोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्त इति।

(ख) भ. २/७४ का भाष्य।

(ग) ठाणं ८/१७४ का टिप्पण।

(घ) सम. १/२ का टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सिय आवेढिय-परिवेढिए, सिय नो आवेढिय-परिवेढिए। जइ आवेढिय-परिवेढिए नियमा अणंतेहिं॥

गौतम! स्यात् आवेष्टित-परिवेष्टितः स्यात् नो आवेष्टित-परिवेष्टितः। यदि आवेष्टित-परि-वेष्टितः नियमात् अनन्तैः।

गौतम! स्यात् आवेष्टित परिवेष्टित है, स्यात् आवेष्टित परिवेष्टित नहीं है। यदि आवेष्टित-परिवेष्टित है तो वह नियमतः अनंत अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित है।

४८३. एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स एगमेगे जीवपदेसे नाणावरणिज्ज-स्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभाग-पलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए?
गोयमा! नियमं अणंतेहिं। जहा नेरइयस्स एवं जाव वेमाणियस्स, नवरं—मणूसस्स जहा जीवस्स॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य एकैकः जीवप्रदेशः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः कियद्भिः अविभागपरिच्छेदैः आवेष्टित-परिवेष्टितः?
गौतम! नियमम् अनन्तैः। यथा नैरयिकस्य एवं यावत् वैमानिकस्य, नवरं—मनुष्यस्य यथा जीवस्य।

४८३. भंते! एक एक नैरयिक का एक एक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित है?
गौतम! नियमतः अनंत अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है। नैरयिक की भांति वैमानिक तक के दण्डकों की वक्तव्यता, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

४८४. एगमेगस्स णं भंते। जीवस्स एगमेगे जीवपदेसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए?
गोयमा! नियमं अणंतेहिं। जहा जीवस्स एवं जाव वेमाणियस्स, नवरं—मणूसस्स जहा जीवस्स। एवं जहेव नाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो जाव वेमाणिय-स्स। एवं जाव अंतराइयस्स भाणि-यव्वं, नवरं—वेयणिज्जस्स, आउय-स्स, नामस्स, गोयस्स—एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्वं। सेसं तं चेव॥

एकैकस्य भदन्त! जीवस्य एकैकः जीवप्रदेशः दर्शनावरणीयस्य कर्मणः कियद्भिः अविभागपरिच्छेदैः आवेष्टित-परिवेष्टितः?
गौतम! नियमम् अनन्तैः। यथा जीवस्य एवं यावत् वैमानिकस्य, नवरम्—मनुष्यस्य यथा जीवस्य। एवं यथैव ज्ञानावरणीयस्य तथैव दण्डकः भणितव्यः यावत् वैमानिकस्य। एवं यावत् आन्तरायिकस्य भणितव्यम्, नवरम्—वेदनीयस्य, आयुष्कस्य, नाम्नः, गोत्रस्य-एतेषां चतुर्णामपि कर्मणां मनुष्यस्य यथा नैरयिकस्य तथा भणितव्यम्? शेषं तत् चैव।

४८४. भंते! एक एक जीव का एक-एक जीव-प्रदेश दर्शनावरणीय कर्म के कितने अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है?
इस प्रकार जैसे ज्ञानावरणीय की वक्तव्यता वैसे ही दर्शनावरणीय के वैमानिक तक के दण्डकों की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् आंतरायिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र—इन चार कर्मों के विषय में मनुष्य की नैरयिक की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ४७७-४८४

कर्म प्रकृति की जानकारी के लिए द्रष्टव्य ६/३३-३५ का भाष्य। अभयदेवसूरि ने अविभाग प्रतिच्छेद का शाब्दिक अर्थ किया है। प्रतिच्छेद का अर्थ है अंश। जिसका कोई विभाग न हो, वह अंश अविभाग प्रतिच्छेद—निरंश अंश कहलाता है।[1]

कर्म ग्रंथ,[2] पंच संग्रह,[3] गोम्मटसार[4] और धवला[5] में इसका विशद वर्णन उपलब्ध है।

जघन्य गुण अनंत अविभागी प्रतिच्छेदों से निष्पन्न होता है।[6] धवला में इसकी प्रक्रिया का निर्देश है। सर्व मंद अनुभाग से युक्त परमाणु को ग्रहण करके वर्ण, गंध, रस को छोड़कर केवल स्पर्श (एक गुण) का ही बुद्धि से ग्रहण कर उसका विभाग रहित छेद होने तक प्रज्ञा के द्वारा छेद करना चाहिए। नहीं छेदने योग्य वह अंतिम खण्ड

---

१. भ. वृ. ८/४७९।
२. कर्मग्रंथ भाग ५ गाथा ९५।
३. पंचसंग्रह गाथा २९२-२८३।
४. गोम्मटसार अजीवकांड गा. २२३-२२६।
५. धवला १४,५,६,५३९/४५०।
६. धवला १४,५,६,५३९/४५०/६ सो च जहण्णगुणो अणंतेहि अविभाग-पडिच्छेदेहि णिप्पण्णो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविभाग प्रतिच्छेद द्रव्य,[1] गुण[2], अनुभाग[3], योग[4] वीर्य[5] आदि में होता है।

जीव का प्रत्येक प्रदेश कर्म के अनंत अविभाग प्रतिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है। यह वाक्य जीव के प्रदेश और कर्म स्कंध के संबंध का व्याख्या सूत्र है।

बंध काल में जीव के प्रदेश और कर्म पुद्गल स्कंध—दोनों का विशिष्ट प्रकार का परिणमन होता है। इस संबंध अथवा परिणमन को अनेक पदों और उपमाओं के द्वारा निरूपित किया गया है।

१. आवेष्टन-परिवेष्टन

२. दूध और पानी की भांति परस्पर अनुगत।

३. दूध और पानी की भांति परस्पराश्लेष।

४. आत्मा और कर्म का अन्योन्य अनुप्रवेश।

५. जीव और कर्म का एक क्षेत्र में अवगाह।

१. आवेष्टन-परिवेष्टन—इसके अनुसार जीव के एक प्रदेश को ज्ञानावरणीय आदि कर्म समूह के अनंत-अनंत अविभाग प्रतिच्छेद आवृत करते हैं, ढक्कन बन जाते हैं, लपेटते हैं, चारों ओर से घेर लेते हैं।

२. अन्योन्य अनुगमन—जैसे दूध और पानी में परस्पर अनुगमन होता है, वैसे जीव-प्रदेश और कर्म के पुद्गल स्कंधों में परस्पर अनुगमन होता है—यह सिद्धसेन दिवाकर का निरूपण है।[6]

३. परस्पर श्लेष—जैसे दूध और पानी में परस्पर आश्लेष होता है, वैसे जीव प्रदेश और कर्म पुद्गल स्कंधों में परस्पर आश्लेष होता है, यह सिद्धसेन गणि का निरूपण है।[7]

४. अन्योन्य अनुप्रवेश—आत्मा के प्रदेश और कर्म पुद्गल स्कंधों का परस्पर अनुप्रवेश हो जाता है, उसका नाम बंध है। यह पूज्यपाद की व्याख्या है।[8]

५. एक क्षेत्रावगाह—जीव के प्रदेश और कर्म पुद्गल स्कंधों के परस्पर परिणमन का निमित्त पाकर एक क्षेत्र में अवगाह होता है, वह तदुभय बंध है। यह आचार्य कुन्दकुन्द का अभिमत है।[9]

उक्त सब निरूपणों से दो सिद्धांत फलित होते हैं।

१. आवेष्टन आदि का फलित यह है कि जीव प्रदेश और कर्म पुद्गल के स्कंधों में परस्पर आश्लेष होता है।

२. एक क्षेत्रावगाह के सिद्धांत का फलित यह है कि जीव प्रदेश और कर्म पुद्गल के स्कंधों का एक क्षेत्र में अवगाह होता है, अग्नि और लोह पिण्ड की भांति अन्योन्य अनुप्रवेश नहीं होता।[10]

आचार्य कुन्दकुन्द के सिद्धांत में सांख्यदर्शन का वह प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जिससे आत्मा सदा मुक्त है, बंध और मोक्ष प्रकृति के होता है।[11]

इस अवगाह के सिद्धांत में एक प्रश्न अनुत्तरित रहता है कि आकाश के प्रदेशों में जीव का अवगाह है किन्तु न आकाश के प्रदेशों से जीव के प्रदेश प्रभावित होते हैं और न जीव के प्रदेशों से आकाश के प्रदेश प्रभावित होते हैं। केवल अवगाह मात्र से प्रभावित होने या विशिष्ट परिणमन होने का सिद्धांत विमर्शनीय है।[12]

कम्माणं परोप्परं नियमा-भयणा-पद

४८५. जस्स णं भंते! नाणावरणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं? जस्स दंसणावरणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं?

गोयमा! जस्स णं नाणावरणिज्जं तस्स दंसणावरणिज्जं नियमं अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्जं तस्स वि नाणावरणिज्जं नियमं अत्थि॥

कर्मणा परस्परं नियम-भजना पदम्

यस्य भदन्त! ज्ञानावरणीयं तस्य दर्शनावरणीयम्? यस्य दर्शनावरणीयं तस्य ज्ञानावरणीयम्?

गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयं तस्य दर्शनावरणीयं नियमम् अस्ति, यस्य दर्शनावरणीयं तस्यापि ज्ञानावरणीयं नियमम् अस्ति।

कर्मों का परस्पर नियम-भजना पद

४८५. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है, क्या उसके दर्शनावरणीय होता है? जिसके दर्शनावरणीय है, क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है, उसके दर्शनावरणीय नियमतः होता है। जिसके दर्शनावरणीय है, उसके ज्ञानावरणीय नियमतः होता है।

---

१. धवला १२,४,२,८,१०१/१२; १० सव्वमंदाणुभागपरमाणुद्धेएण वण्णगंधरसे मोत्तूण पासं चेव बुद्धीए घेत्तूण तस्स पण्णाच्छेदो कायव्वो जाव विभागवज्जिदछेदोत्ति। तस्स अंतिमस्स खण्डस्स उच्छेज्जस्स अविभाग पडिच्छेद इदि सण्णा।

२. गोम्मटसार जीवकाण्ड ५१, १५४/१८

३. (क) धवला १४,५,६,५३१/४५०।
(ख) प्रवचनसार गाथा १२, तथा उसकी वृत्ति।

४. धवला १२,४,२,७,१०१/१२/३।

५. धवला १०,४,२,४,१७८/४४०/५।

६. पंचसंग्रह गाथा ३९१।

७. सन्मति तर्क १/४१-४८ द्रष्टव्य भगवई १/३१२-१३ का भाष्य।

८. तत्वार्थ सूत्र ८/३—भाष्यानुसारिणी वृत्ति बंधनं बंधः परस्पराश्लेषः प्रदेश पुद्गलानां क्षीरोदकवत् प्रकृत्यादिभेदः।

९. सर्वार्थसिद्धि १/४ की वृत्ति—आत्मकर्मणोरन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बंधः।

१०. प्रवचनसार २/८५।
फासेहिं पुग्गलाणं बंधो, जीवस्स रागमादीहिं।
अण्णोण्णास्सवगाहो, पुग्गलजीवप्पगो भणिदो॥
रूः पुनः जीवकर्मपुद्गलयोः परस्परपरिणामनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतरः परस्परमवगाहः स तदुभयबंधः।

११. प्रवचनसार २/९३-९४-
गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण दि पोग्गलाणि कम्माणि।
जीवो पुग्गलमज्झे वट्टण्णपि सव्वकालेसु॥
स इदाणिं कत्ता संसरणपरिणामस्स दव्वजादस्स।
आदायदे कदाई विमुच्चदे कम्मधूलीहिं॥

१२. सांख्यकारिका ६२—
तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्,
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८६. जस्स णं भंते! नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं? जस्स वेयणिज्जं तस्स नाणा-वरणिज्जं?
गोयमा! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमं अत्थि जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स नाणावर-णिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि॥

यस्य भदन्त! ज्ञानावरणीयं तस्य वेदनीयम्? यस्य वेदनीयं तस्य ज्ञाना-वरणीयम्?
गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयं तस्य वेदनीयं नियमम् अस्ति, यस्य पुनः वेदनीयं तस्य ज्ञानावरणीयं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति।

४८६. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है, क्या उसके वेदनीय होता है जिसके वेदनीय है, क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?
गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है, उसके वेदनीय नियमतः होता है। जिसके वेदनीय है, उसके ज्ञानावरणीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता है।

४८७. जस्स णं भंते! नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं? जस्स मोह-णिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं?

गोयमा! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं नियमं अत्थि॥

यस्य भदन्त! ज्ञानावरणीयं तस्य मोहनीयम्? यस्य मोहनीयं तस्य ज्ञाना-वरणीयम्?

गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयं तस्य मोहनीयं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः मोहनीयं तस्य ज्ञानावरणीयं नियमम् अस्ति।

४८७. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है, क्या उसके मोहनीय होता है? जिसके मोह-नीय है, क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?
गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है, उसके मोहनीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके मोहनीय है, उसके ज्ञानावरणीय नियमतः होता है।

४८८. जस्स णं भंते! नाणावरणिज्जं तस्स आउयं? जस्स आउयं तस्स नाणावरणिज्जं?
गोयमा! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स आउयं नियमं अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स नाणावरणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि। एवं नामेण वि, एवं गोएण वि समं, अंतराइएण जहा दरिसणावर-णिज्जेण समं तहेव नियमं परोप्परं भाणियव्वाणि॥

यस्य भदन्त! ज्ञानावरणीयं तस्य आयुष्कम्? यस्य आयुष्कं तस्य ज्ञाना-वरणीयम्?
गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयं तस्य आयुष्कं नियमम् अस्ति, यस्य पुनः आयुष्कम् तस्य ज्ञानावरणीयं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति। एवं नाम्ना अपि, एवं गोत्रेणापि समम् आन्तरायिकेण यथा दर्शनावरणीयेन समं तथैव परस्परं भणितव्यानि।

४८८. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है, क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?
गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है उसके आयुष्य नियमतः होता है। जिसके आयुष्य है, उसके ज्ञानावरणीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के साथ ज्ञानावरणीय कर्म की वक्तव्यता। जैसे ज्ञानावरणीय के साथ दर्शनावरणीय की वक्तव्यता है, वैसे ज्ञानावरणीय और आंतरायिक परस्पर नियमतः वक्तव्य हैं।

४८९. जस्स णं भंते! दरिसणा-वरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं? जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं?
जहा नाणावरणिज्जं उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणियं तहा दरिसणावरणिज्जं पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं समं भाणियव्वं जाव अंतराइएणं॥

यस्य भदन्त! दर्शनावरणीयं तस्य वेदनीयम्? यस्य वेदनीयं तस्य दर्शना-वरणीयम्?
यथा ज्ञानावरणीयं उपरितनैः सप्तभिः कर्मभिः भणितं यथा दर्शनावरणीयमपि उपरितनैः षड्भिः कर्मभिः समं भणितव्यं यावत् आन्तरायिकेण।

४८९. भंते! जिसके दर्शनावरणीय है, क्या उसके वेदनीय होता है? जिसके वेदनीय है, क्या उसके दर्शनावरणीय होता है?
जैसे ज्ञानावरणीय की उत्तरवर्ती सात कर्मों के साथ वक्तव्यता है वैसे दर्शनावरणीय उत्तरवर्ती छह कर्मों के साथ वक्तव्य है यावत् दर्शनावरणीय और आंतरायिक परस्पर नियमतः वक्तव्य हैं।

४९०. जस्स णं भंते! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं? जस्स मोह-णिज्जं तस्स वेयणिज्जं?
गोयमा! जस्स वेयणिज्जं तस्स

यस्य भदन्त! वेदनीयं तस्य मोहनीयम्? यस्य मोहनीयं तस्य वेदनीयम्?
गौतम! यस्य वेदनीयं तस्य मोहनीयं स्यात्

४९०. भंते! जिसके वेदनीय है क्या उसके मोहनीय होता है? जिसके मोहनीय है क्या उसके वेदनीय होता है?
गौतम! जिसके वेदनीय है, उसके मोहनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमं अत्थि॥

अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः मोहनीयं तस्य वेदनीयं नियमम् अस्ति।

स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके मोहनीय है उसके वेदनीय नियमतः होता है।

४९१. जस्स णं भंते! वेयणिज्जं तस्स आउयं जस्स आउयं तस्स वेयणिज्जं?

एवं एयाणि परोप्परं नियमं। जहा आउएण समं एवं नामेण वि गोएण वि समं भाणियव्वं॥

यस्य भदन्त! वेदनीयं तस्य आयुष्कम्? यस्य आयुष्कं तस्य वेदनीयम्?

एवम्, एतानि परस्परं नियमम्। यथा आयुष्केन समं एवं नाम्ना अपि गोत्रेणापि समं भणितव्यम्।

४९१. भंते! जिसके वेदनीय है, क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है, क्या उसके वेदनीय होता है?
ये परस्पर नियमतः होते हैं, जैसे आयुष्य के साथ वेदनीय की वक्तव्यता उसी प्रकार नाम और गोत्र के साथ भी वेदनीय वक्तव्य है।

४९२. जस्स णं भंते! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं? जस्स अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं?
गोयमा! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेय-णिज्जं नियमं अत्थि॥

यस्य भदन्त! वेदनीयं तस्य आन्तरायिकम्? यस्य आन्तरायिकंतस्य वेदनीयम्?

गौतम! यस्य वेदनीयं तस्य आन्तरायिकं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः आन्तरायिकं तस्य वेदनीयं नियमम् अस्ति।

४९२. भंते! जिसके वेदनीय है, क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है, उसके वेदनीय होता है?
गौतम! जिसके वेदनीय है, उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है उसके वेदनीय नियमतः होता है।

४९३. जस्स णं भंते! मोहणिज्जं तस्स आउयं? जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं?
गोयमा! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमं अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि। एवं नामं गोयं अंतराइयं च भाणियव्वं॥

यस्य भदन्त! मोहनीयं तस्य आयुष्यकम्? यस्य आयुष्कं तस्य मोहनीयम्?

गौतम! यस्य मोहनीयं तस्य आयुष्कं नियमम् अस्ति, यस्य पुनः आयुष्कं तस्य मोहनीयं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति। एवं नाम गोत्रं आन्तरायिकं च भणितव्यम्।

४९३. भंते! जिसके मोहनीय है, क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है क्या उसके मोहनीय होता है?
गौतम! जिसके मोहनीय है, उसके आयुष्य नियमतः होता है। जिसके आयुष्य है, उसके मोहनीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। इसी प्रकार नाम, गोत्र और आंतरायिक की वक्तव्यता।

४९४. जस्स णं भंते! आउयं तस्स नामं? जस्स नामं तस्स आउयं?

गोयमा! दो वि परोप्परं नियमं। एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं॥

यस्य भदन्त! आयुष्कं तस्य नाम? यस्य नाम तस्य आयुष्कम्?

गौतम! द्वे अपि परस्परं नियमम्। एवं गोत्रेणापि समं भणितव्यम्।

४९४. भंते! जिसके आयुष्य है, क्या उसके नाम होता है? जिसके नाम है, क्या उसके आयुष्य होता है?
गौतम! ये दोनों परस्पर नियमतः होते हैं, इसी प्रकार गोत्र कर्म के साथ नाम कर्म की वक्तव्यता।

४९५. जस्स णं भंते! आउयं तस्स अंतरा-इयं? जस्स अंतराइयं तस्स आउयं?
गोयमा! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं नियमं अत्थि॥

४९५. यस्य भदन्त! आयुष्कं तस्य आन्तरायिकम्? यस्य आन्तरायिकं तस्य आयुष्कम्?
गौतम! यस्य आयुष्कं तस्य आन्तरायिकं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः आन्तरायिकं तस्य आयुष्कं नियमम् अस्ति।

४९५. भंते! जिसके आयुष्य है, क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है, क्या उसके आयुष्य होता है?
गौतम! जिसके आयुष्य है, उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है, उसके आयुष्य नियमतः होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९६. जस्स णं भंते! नामं तस्स गोयं जस्स गोयं तस्स नामं?

गोयमा! दो वि एए परोप्परं नियमा अत्थि॥

यस्य भदन्त! नाम तस्य गोत्रम्?, यस्य गोत्रं तस्य नाम?

गौतम! द्वे अपि एते परस्परं नियमम् स्तः।

४९६. भंते! जिसके नाम है, क्या उसके गोत्र होता है? जिसके गोत्र है, क्या उसके नाम होता है?

गौतम! ये दोनों परस्पर नियमतः होते हैं।

४९७. जस्स णं भंते! नामं तस्स अंतराइयं? जस्स अंतराइयं तस्स नामं?

गोयमा! जस्स नामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स नामं नियमं अत्थि॥

यस्य भदन्त! नाम तस्य आन्तरायिकम्? यस्य आन्तरायिकं तस्य नाम?

गौतम! यस्य नाम तस्य आन्तरायिकं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः आन्तरायिकं तस्य नाम नियमम् अस्ति।

४९७. भंते! जिसके नाम है, क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है, क्या उसके नाम होता है?

गौतम! जिसके नाम है, उसके आंतरायिक स्यात् होता है स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है, उसके नाम नियमतः होता है।

४९८. जस्स णं भंते! गोयं तस्स अंतराइयं? जस्स अंतराइयं तस्स गोयं?

गोयमा! जस्स गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं नियमं अत्थि॥

यस्य भदन्त! गोत्रं तस्य आन्तरायिकम्? यस्य आन्तरायिकं तस्य गोत्रम्?

गौतम! यस्य गोत्रं तस्य आन्तरायिकं स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, यस्य पुनः आन्तरायिकं तस्य गोत्रं नियमम् अस्ति।

४९८. भंते! जिसके गोत्र है क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है, क्या उसके गोत्र होता है?

गौतम! जिसके गोत्र है उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है, उसके गोत्र नियमतः होता है।

भाष्य

१. सूत्र ४८५-४९८

केवली वीतराग के वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—ये चार कर्म होते हैं इसलिए उनके साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय की व्याप्ति नहीं होती है।

छद्मस्थ वीतराग के मोहनीय कर्म नहीं होता, शेष सात कर्म होते हैं।

आठ कर्मों में परस्पर नियमा, भजना—

नियमा	भजना
१. ज्ञानावरणीय कर्म के साथ दर्शनावरणीय कर्म की नियमा।	चार अघाती कर्म वेदनीय आयुष्य, नाम, गोत्र के साथ चार घाति कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय कर्म) की भजना।
२. दर्शनावरणीय कर्म के साथ ज्ञानावरणीय कर्म की नियमा।	
३. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय कर्म के साथ वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र (चार अघाति कर्म) की नियमा।	

पोग्गलि-पोग्गल-पदं

४९९. जीवे णं भंते! किं पोग्गली? पोग्गले?

गोयमा! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि॥

पुद्गली-पुद्गल-पदम्

जीवः भदन्त! किं पुद्गली? पुद्गलः?

गौतम! जीवः पुद्गली अपि, पुद्गलोऽपि।

पुद्गली पुद्गल पद

४९९. भंते! जीव क्या पुद्गली है? पुद्गल है?

गौतम! जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

५००. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते पुद्गली अपि, पुद्गलोऽपि?

५००. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! से जहानामए छत्तेणं छत्ती, दंडेणं दंडी, घडेणं घडी, पडेणं पडी, करेणं करी, एवामेव गोयमा! जीवे वि सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जीवे पाग्गली वि, पोग्गले वि॥

गौतम! स यथानामकः छत्रेण छत्री, दण्डेन दण्डी, घटेन घटी, पटेन पटी, करेण करी, एवमेव गौतम! जीवोऽपि श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय - घ्राणेन्द्रिय - जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियाणि प्रतीत्य पुद्गली, जीवं प्रतीत्य पुद्गलः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–जीवः पुद्गली अपि, पुद्गलोऽपि।

गौतम! जैसे छत्र के कारण छत्री, दण्ड के कारण दण्डी, घट के कारण घटी, पट के कारण पटी, कर के कारण करी कहलाता है, गौतम! इसी प्रकार जीव भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा पुद्गली और अपने चैतन्यमय स्वरूप की अपेक्षा पुद्गल कहलाता है।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

५०१. नेरइए णं भंते! किं पोग्गली! पोग्गले?
एवं चेव। एवं जाव वेमाणिए, नवरं–जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ भाणियव्वाइं॥

नैरयिकः भदन्त! किं पुद्गली? पुद्गलः?
एवं चैव। एवं यावत् वैमानिकः, नवरं–यस्य यति इन्द्रियाणि तस्य तति भणितव्यानि।

५०१. भंते! क्या नैरयिक पुद्गली है? पुद्गल है?
नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डक जीव की भांति वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–जिसके जितनी इन्द्रियां हैं, उसके उतनी इन्द्रियां वक्तव्य हैं।

५०२. सिद्धे णं भंते! किं पोग्गली? पोग्गले?
गोयमा! नो पोग्गली, पोग्गले॥

सिद्धः भदन्त! किं पुद्गली? पुद्गलः?
गौतम! नो पुद्गली, पुद्गलः।

५०२. भंते! क्या सिद्ध पुद्गली है? पुद्गल है।
गौतम! पुद्गली नहीं है, पुद्गल है।

५०३. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले?
गोयमा! जीवं पडुच्च। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–सिद्धः नो पुद्गली, पुद्गलः?
गौतम! जीवं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–सिद्धः नो पुद्गली, पुद्गलः।

५०३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–सिद्ध पुद्गली नहीं है, पुद्गल है?
गौतम! जीव की अपेक्षा से। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–सिद्ध पुद्गली नहीं है, पुद्गल है।

भाष्य

१. सूत्र ४९९-५०३

पुद्गल शब्द के अनेक अर्थ है।[1] प्रस्तुत सूत्र में उसका प्रयोग मूर्त द्रव्य–परमाणु और परमाणु स्कंध तथा जीव के अर्थ में हुआ है[2] जीव के अर्थ में पुद्गल शब्द का प्रयोग वर्तमान में प्रचलित नहीं है। आगम साहित्य में केवल भगवती में ही इसका प्रयोग मिलता है। बौद्ध साहित्य में आत्मा के अर्थ में इसका प्रयोग मिलता है।[3]

जीव अपने स्वरूप में पुद्गल है। पौद्गलिक इंद्रियों की अपेक्षा वह पुद्गली है। सिद्ध शरीर मुक्त हैं इसलिए वे पुद्गली नहीं हैं, केवल पुद्गल हैं।

५०४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

५०४. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. आप्टे पुद्गल–Beautiful, Lovely, Handsome.
1. Atom पुद्गलः परमाणवः Sridhara.
2. The Body Matter.
3. The Soul.
4. The Egoor Individual.
5. The Man.
6. The Epithal of Siva.

२. कथावत्थु पालि १/१/९४–
खंधेसु भिज्जमानेसु सो चे भिज्जति पुग्गलो।
उच्छेदा भवति दिट्ठि सा बुद्धेन विवज्जिता॥
खंधेसु भिज्जमानेसु, नो चे भिज्जति पुग्गलो।
पुग्गलो सस्सतो होति, नित्वानेन समसमोति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमं सयं

नौवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत शतक में भूगोल, खगोल, तत्त्वचर्चा अहिंसा दर्शन और जीवन-वृत्त इन सबका समाहार हुआ है।

जम्बूद्वीप के वर्णन का संबंध जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति नामक उपांग से है।[1] चंद्र के वर्णन का संबंध जीवाभिगम उपांग से है।[2] एकोरुक आदि मनुष्यों का संबंध जीवाभिगम उपांग से है।[3] यह समूचा प्रकरण प्रस्तुत आगम में प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

सूत्रांक ९ से ५१ तक असोच्चा केवली का वर्णन है। असोच्चा केवली का सिद्धांत आत्मा की आंतरिक पवित्रता और तज्जनित विकास पर आधारित है। इसे धर्म का सार्वभौम रूप अथवा असांप्रदायिक रूप कहा जा सकता है। भगवान् महावीर ने धर्म के क्षेत्र में आत्मा को केन्द्र में रखा। संप्रदाय, वेश आदि को परिधि में। संप्रदाय, धर्म की उपलब्धि में उपयोगी है। वह धर्म का उपादान नहीं है। उसका उपादान है आत्मा की विशुद्धि। एक पाठक असोच्चा केवली के प्रकरण को पढ़ता है तब उसके सामने कोई संप्रदाय नहीं होता, केवल आत्मा होती है। सांप्रदायिक विद्वेष या उन्माद को मिटाने का यह अपूर्व आलेख है। समाज और राजनीति से जुड़े हुए धर्म के प्रवचनों से इसका संबंध नहीं है, इसका संबंध विशुद्ध आध्यात्मिक चेतना से है।

सूत्रांक ५२ से ७५ तक 'सोच्चा' का प्रकरण है। किसी गुरु से धर्म की उपलब्धि होने के बाद जो आध्यात्मिक विकास करता है, वह 'श्रुत्वा' अतीन्द्रिय ज्ञानी है। अश्रुत्वा और श्रुत्वा दोनों की स्वीकृति धर्म के समग्र स्वरूप का एक सुंदर निदर्शन है।

प्रस्तुत आगम में पार्श्वापत्यिक अणगारों का अनेक बार उल्लेख हुआ है। पार्श्वापत्यिक अणगार स्थविरों के पास आता है उनसे सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, संवर, विवेक, व्युत्सर्ग आदि विषयों पर चर्चा करता है और अंत में संबुद्ध होकर महावीर के शासन में प्रव्रजित हो जाता है।[4]

राजगृह में पार्श्वापत्यिक स्थविर भगवान महावीर के पास आते हैं, और रात-दिन के बारे में जिज्ञासा करते हैं अंत में महावीर के शासन में दीक्षित हो जाते है।[5]

प्रस्तुत शतक में पार्श्वापत्यिक गांगेय अणगार भगवान महावीर के पास आता है। उत्पत्ति, च्यवन और प्रवेशन के विषय में अनेक प्रश्न पूछता है। महावीर उनका उत्तर देते हैं। यह प्रश्नोत्तर 'गांगेय के भंग' इस दृष्टि से प्रसिद्ध है। गणित की दृष्टि से ये भंग बहुत महत्त्वपूर्ण है।[6]

गांगेय अणगार ने एक प्रश्न पूछा, वह मन को चमत्कृत करने वाला है। प्रश्न था—भंते! उत्पत्ति, च्यवन और उद्वर्तन के बारे में आप जो जानते हैं, वह अपने ज्ञान से जानते हैं या किसी दुसरे से सुनकर जानते हैं? यह प्रश्न पूरी परंपरा पर एक प्रश्नचिह्न उपस्थित करता है। यदि भगवान महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे तो क्या तेईस तीर्थंकर के शिष्य उनसे अनजान थे? यदि महावीर को वे तीर्थंकर की परंपरा में चौबीसवां तीर्थंकर मानते तो तीर्थंकर के विषय में ऐसा प्रश्न कैसे उपस्थित करते—भंते! उत्पत्ति, च्यवन और उद्वर्तन के बारे में आप जो जानते हैं, वह अपने ज्ञान से जानते हैं या किसी दूसरे से सुनकर जानते हैं?

यदि गांगेय अणगार को तीर्थंकर परंपरा की अवधारणा स्पष्ट होती तो ऐसा प्रश्न कभी नहीं होता। पार्श्व की परंपरा से महावीर के शासन में प्रव्रजित होने की घटना भी शासन-परंपरा की भिन्नता को सूचित करती है। भगवान पार्श्व की परंपरा के सभी श्रमण महावीर की परंपरा में दीक्षित नहीं हुए तुंगिया नगरी के श्रमणोपासकों के प्रश्नों का समाधान करने वाले पांच सौ अणगारों से परिवृत स्थविरों का भगवान महावीर के शासन में दीक्षित होने का कोई उल्लेख नहीं है।[7] भगवान महावीर और भगवान पार्श्व के शासन की एकसूत्रता के आधार-बिन्दु ये हो सकते हैं—

- भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्व के अनुयायी थे।
- भगवान महावीर के पार्श्व की परंपरा में प्रचलित ज्ञान-राशि (चौदहपूर्वों) को अपने शासन में स्थान दिया था।

यह अनुमान करना कठिन भी नहीं है और असंगत भी नहीं है कि भगवान पार्श्व का प्रभाव बहुत व्यापक था। उससे बुद्ध भी प्रभावित हुए। उनकी ज्ञान-राशि का भगवान बुद्ध ने उपयोग भी किया। भगवान महावीर ने जिस समग्रता से पार्श्व की परंपरा को स्थान दिया, उस समग्रता से भगवान बुद्ध ने नहीं दिया, भगवान महावीर के शासन से भगवान पार्श्व के शासन की एकात्मकता हुई। वह एकात्मकता भगवान बुद्ध के शासन से नहीं हो सकी। इसी एकात्मकता के आधार पर तीर्थंकरों की संख्या का संकलन किया गया प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शतक में उत्पत्ति, च्यवन और प्रवेशन का लंबा प्रकरण है। ये सब स्वतः अपने-अपने कर्म से संचालित हैं, किसी ईश्वरीय शक्ति के द्वारा संचालित नहीं हैं। कोई शक्ति इनकी नियामक नहीं है।[8]

---

१. भ. ९/१।
२. वही, ९/३-५।
३. वही, ९/७।
४. वही, १/४२३-४३३।
५. भ. ५/२५४-२५७।
६. वही, ९/७८-१२० का भाष्य।
७. वही, २/९५-११३।
८. वही, ९/१२५-१३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति चतुष्टय में उत्पन्न होने के अनेक कारण बतलाए गए हैं; इन कारणों का उल्लेख प्रस्तुत आगम में ही हुआ है। अन्यत्र दूसरे-दूसरे कारणों का उल्लेख है।[1]

तेतीसवें उद्देशक में ऋषभदत्त और देवानंदा का वर्णन है। इनका वर्णन आयार-चूला और पज्जोसवणा कप्प में भी उपलब्ध है। आयार-चूला का पाठ संक्षिप्त है फिर भी उसमें गर्भ-संहरण का उल्लेख है।[2] पज्जोसवणा कप्प में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।[3] प्रस्तुत प्रकरण में महावीर के गर्भ संहरण का कोई उल्लेख नहीं है। देवानंदा के स्तन में से दूध की धारा निकलने पर महावीर ने गौतम आदि श्रमणों से कहा—देवानंदा मेरी मां है, मैं इसका आत्मज हूं।[4]

देवानंदा का प्रकरण गर्भ संहरण से जुड़ा हुआ है। यह श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में एक विवाद का विषय है। डॉ. हर्मन जेकोबी आदि ने इस विषय की मीमांसा की है—

आयार-चूला[5] और पर्युषणा कल्प[6] में गर्भ संहरण का विषय चर्चित है। देवानंदा का महावीर के पास आने का कोई उल्लेख नहीं है। प्रस्तुत शतक में गर्भ संहरण के विषय में कोई वक्तव्यता नहीं है। भगवती सूत्र में देवानंदा का प्रकरण आयार-चूला और पर्युषणा कल्प के उत्तरकाल में प्रक्षिप्त हुआ है अथवा उनसे पहले? यह अन्वेषणीय विषय है। यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नहीं है कि रचनाकार को गर्भ संहरण की पुष्टि के लिए—देवानंदा मेरी मां है, मैं इसका आत्मज हूं—इस वाक्य की संवादिता आवश्यक प्रतीत हुई है।

जमालि का प्रकरण भी श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों परम्पराओं में विवाद का विषय है। दिगम्बर परम्परा महावीर के विवाह को अस्वीकार करती है इसलिए पुत्री और दामाद होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

स्थानांग सूत्र में सात प्रवचन-निह्नवों का उल्लेख है। पहला बहुरतवाद है। उसके धर्माचार्य जमालि है।[7] भगवती सूत्र की रचना शैली प्रश्नोत्तर शैली की है। वर्तमान स्वरूप में अनेक जीवन प्रसंग उपलब्ध हैं। इन सबके विषय में यह निर्णय करना सरल नहीं है कि इनमें कौन-सा मौलिक है और कौन-सा प्रक्षिप्त? सात निह्नवों में से पांच उत्तरवर्ती है। जमालि और तिष्यगुप्त महावीर के शासन काल में हुए हैं। इसलिए जमालि के अस्तित्व को अप्रामाणिक मानने का कोई कारण नहीं है। भगवती में उसका वर्णन प्राचीन है अथवा उत्तरवर्ती? यह विषय मीमांसनीय हो सकता है।

चौतीसवें उद्देशक में अहिंसा के विषय में गंभीर चर्चा हुई है। एक मनुष्य का वध करने वाला अनेक जीवों का वध करता है किन्तु एक ऋषि का वध करने वाला अनंत जीवों का वध करता है। ये अहिंसा के अत्यंत रहस्यपूर्ण सिद्धांत है।[8]

स्थावर जीवों के श्वास-प्रश्वास के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गई है।[9]

इस प्रकार प्रस्तुत शतक में चिंतन के नए-नए आयाम उद्घाटित हुए हैं। इनका गंभीर अध्ययन ज्ञान कोश को समृद्ध बना सकता है।

---

१. द्रष्टव्य— भ. १/१२५-१३२ का भाष्य।
२. आ.चू. १५/३-७।
३. पज्जो. २-१९।
४. भ. १/१४७-१४८।
५. कल्पसूत्र सू. २७।
६. आ. चू. १५/१,३,५,६।
७. ठाणं ७/१४०-१४२।
८. भ. १/२४६-२५०।
९. वही, १/२५३-२५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमं सतं : नौवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी छाया
संगहणी गाहा १. जंबुद्दीवे २. जोइस, ३०. अंतरदीवा ३१. असोच्च ३२. गंगेय। ३३. कुंडग्गामे ३४. पुरिसे, णवमम्मि सतम्मि चोत्तीसा ॥१॥	संग्रहणी गाथा १. जम्बूद्वीपः २. ज्योतिषः, ३-३०. अंतर्द्वीपाः ३१. अश्रुत्वा ३२. गांङ्गेयः ३३. कुण्डग्रामः ३४. पुरुषः नवमे शते चतुस्त्रिंशत्॥१॥	संग्रहणी गाथा नौवें शतक में चौंतीस उद्देशक हैं १. जम्बूद्वीप २. ज्योतिष्क ३-३० अन्तर-द्वीप ३१. अश्रुत्वाके वली ३२. गांगेय ३३. कुण्डग्राम ३४. पुरुष।
जंबुद्दीव-पदं १. तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला नामं नगरी होत्था—वण्णओ। माणिभद्दे चेतिए—वण्णओ। सामी समोसढे, परिसा निग्गता जाव भगवं गोयमे पज्जुवासमाणे एवं वदासी— कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे! किंसंठिए णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे? एवं जंबुद्दीवपण्णत्ती भाणियव्वा जाव एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिला-सयसहस्सा छप्पन्नं च सहस्सा भवंतीति मक्खाया॥	जम्बूद्वीप-पदम् तस्मिन् काले तस्मिन् समये मिथिला नाम नगरी आसीत्—वर्णकः। मणिभद्रः चैत्यः—वर्णकः। स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता यावत् भगवान् गौतमः पर्युपासीनः एवम् अवादीत्-कुत्र भदन्त! जम्बूद्वीप? द्वीपः? किं संस्थितः भदन्त! जम्बूद्वीपः द्वीपः। एवं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः भणितव्याः यावत् एवमेव संपूर्णापरेण जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुर्दश सलिला-शतसहस्राः षटपञ्चाशत् च सहस्राः भवन्तीति आख्याताः।	जम्बूद्वीप-पद १. उस काल और उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी—वर्णन। माणिभद्र चैत्य-वर्णन। स्वामी आए; परिषद् ने नगर से निगर्मन किया, यावत् भगवान् गौतम पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भंते! जम्बूद्वीप द्वीप कहां है? भंते! जम्बूद्वीप द्वीप किस संस्थान वाला है? इस प्रकार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (वक्षस्कार १-६) का विषय वक्तव्य है यावत पूर्व समुद्र की ओर तथा पश्चिम समुद्र की ओर जाने वाली चौदह लाख छप्पन हजार नदियां बतलाई गई हैं।
२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी छाया
जोइस-पदं	**ज्योतिष-पदम्**	**ज्योतिष-पद**
३.रायगिहे जाव एवं वयासी– जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा? पभासेंति वा? पभासिस्संति वा?	राजगृहे यावत् एवम् अवादीत्–जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे कियन्तः चन्द्राः प्राभासिषत वा? प्रभासन्ते वा? प्रभासिष्यन्ते वा?	३. 'भगवान् राजगृह नगर में आए यावत् गौतम इस प्रकार बोले–भंते! जम्बूद्वीप द्वीप में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?
एवं जहा जीवाभिगमे जाव–	एवं यथा जीवाभिगमे यावत्–	इस प्रकार जीवाभिगम (३/७०३) की
एगं च सयसहस्सं,	एकं च शतसहस्रं,	भांति वक्तव्यता यावत् जम्बूद्वीप द्वीप में
तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं।	त्रयस्त्रिंशत् खलु भवेत् सहस्राणि।	तारागण की संख्या एक लाख तैंतीस
नव य सया पन्नासा,	नव च शतानि पञ्चाशत्,	हजार नौ सौ पचास क्रोड़ाक्रोड़ है।'
तारागणकोडिकोडीणं ॥१॥	तारागणकोटिकोटीनाम् ॥१॥	
सोभिंसु, सोभिंति, सोभिस्संति॥	अशोभिषत, शोभन्ते, शोभिष्यन्ते।	
४. लवणे णं भंते! समुद्दे केवतिया चंदा पभासिंसु वा? पभासेंति वा? पभासिस्संति वा?	लवणे भदन्त! समुद्रे कियन्तः चन्द्राः प्राभासिषत वा? प्रभासन्ते वा? प्रभासिष्यन्ते वा?	४. भंते! लवण समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?
एवं जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ। धायइसंडे, कालोदे, पुक्खरवरे, अब्भंतरपुक्खरद्धे, मणुस्सखेत्ते–एएसु सव्वेसु जहा जीवाभिगमे जाव– एगससीपरिवारो, तारागणकोडि-कोडीणं॥	एवं यथा जीवाभिगमे तथा ताराः। धातकी-षण्डे, कालोदे, पुष्करवरे, आभ्यन्तर-पुष्करार्द्धे, मनुष्यक्षेत्रे–एतेषु सर्वेषु यथा जीवा-भिगमे यावत् एकशशिपरिवारः, तारागण-कोटिकोटीनाम्।	इस प्रकार जीवाभिगम (३/७२२) की भांति वक्तव्यता यावत् लवण समुद्र में तारागण की संख्या दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ है।[2] धातकीखंड, कालो-दधि, पुष्करवर द्वीप, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्यक्षेत्र–इन सबमें जीवाभिगम (३/८३८ गाथा ३१) की भांति वक्तव्य है, यावत् एक चन्द्रमा के परिवार में तारागण की संख्या छासठ हजार नौ सौ पचहत्तर है।
५. पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवतिया चंदा पभासिंसु वा? पभासेंति वा? पभासिस्संति वा?	पुष्करोदे भदन्त! समुद्रे कियन्तः चन्द्राः प्राभासिषत वा? प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा?	५. भंते! पुष्करोद समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?
एवं सव्वेसु दीव-समुद्देसु जोति-सियाणं भाणियव्वं जाव सयंभूरमणे जाव सोभिंसु वा, सोभिंति वा, सोभिस्संति वा॥	एवं सर्वेषु द्वीप-समुद्रेषु ज्योतिष्काणां भणितव्यं यावत् स्वयंभूरमणे यावत्– अशोभिषत वा, शोभन्ते वा, शोभिष्यन्ते वा।	इस प्रकार सब द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्क की वक्तव्यता यावत् स्वयंभूरमण में यावत् शोभित हुए थे, हो रहे हैं और होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ३-५

जम्बूद्वीप आदि में चन्द्रमा आदि की संख्या

	चंद्रमा	सूर्य	नक्षत्र	महाग्रह	तारागण
जम्बूद्वीप	२	२	५६	१७६	१३३९५० कोडाकोडी
लवणसमुद्र	४	४	११२	३५२	२६७९०० कोडाकोडी
धातकी खंड द्वीप	१२	१२	३३६	१०५६	८०३७०० कोडाकोडी
कालोदधि समुद्र	४२	४२	११७६	३६९६	२८१२९५० कोडाकोडी
पुष्करद्वीप	१४४	१४४	४०३२	१२६७२	९६४४४०० कोडाकोडी
अभ्यन्तर पुष्करार्ध	७२	७२	२०१६	६३३६	४८२२२०० कोडाकोडी
समय-क्षेत्र—मनुष्य क्षेत्र	१३२	१३२	३६९६	११६१६	८८४०७०० कोडाकोडी
पुष्करोद समुद्र	संख्यात	संख्यात	संख्यात	संख्यात	संख्यात
रुचकोद समुद्र से स्वंभूरमण समुद्र तक	असंख्यात	असंख्यात	असंख्यात	असंख्यात	असंख्यात

६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३-३० उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी छाया
अंतरदीव-पदं	अन्तर्द्वीप-पदम्	अन्तर्द्वीप पद
७. रायगिहे जाव एवं वयासी–कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं एगूरुयमणुस्साणं एगूरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं उत्तरपुरत्थिमेणं तिण्णि जोयण-सयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगूरुय-मणुस्साणं एगूरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते–तिण्णि जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, नव एगूणवत्ते जोयणसए किंचि-विसेसूणे परिक्खेवेणं। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। दोण्ह वि पमाणं वण्णओ य। एवं एएणं कमेणं एवं जहा जीवाभिगमे जाव सुद्धदंतदीवे जाव देवलोग-परिग्गहा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो!	राजगृहे यावत् एवम् अवादीत्–कुत्र भदन्त! दाक्षिणात्यानाम् एकोरुक मनुष्याणाम् एकोरुकद्वीपः नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः? गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवतः वर्षधरपर्वतस्य पौरस्त्यस्य चरमान्तात् लवणसमुद्रम् उत्तरपौरस्त्ये त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्र दाक्षिणात्यानाम् एकोरुकमनुष्याणाम् एकोरुकद्वीपः नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः–त्रीणि योजनशतानि आयाम-विष्कम्भेण नव एकोनपञ्चाशत् योजनशते किंचित् विशेषोने परिक्षेपेण सः एकया पद्मवर-वेदिकया एकेन च वनषंडेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तः। द्वयोः प्रमाणं वर्णकः च। एवम् एतेन क्रमेण एवं यथा जीवाभिगमे यावत् शुद्धदन्तद्वीपे यावत् देवलोकपरिग्रहाः ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन्!	७. [1]भगवान् राजगृह नगर में आए यावत् गौतम इस प्रकार बोले– भंते! दक्षिण दिशा में एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक द्वीप नामक द्वीप कहां प्रज्ञप्त है? गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण दिशा में क्षुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से लवणसमुद्र के उत्तरपूर्व में तीन सौ योजन का अवगाहन करने पर वहां दक्षिण दिशा वाले एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नाम का द्वीप है। वह तीन सौ योजन लम्बा चौड़ा है। उसकी परिधि नौ सौ उनपचास योजन से कुछ विशेष न्यून है। वह एकोरुक द्वीप एक पद्मवर-वेदिका और एक वनषण्ड से चारों तरफ घिरा हुआ है। दोनों का प्रमाण और वर्णन। इस क्रम से इस प्रकार जीवाभिगम (३/२१७) की भांति वक्तव्यता यावत् शुद्धदंत द्वीप है और उन द्वीपों के वासी मनुष्य मृत्यु के पश्चात् देवलोक में उत्पन्न होते हैं आयुष्मान् श्रमण!
एवं अट्ठावीसंपि अंतरदीवा सएणं-सएणं आयामविक्खंभेणं भाणियव्वा, नवरं–दीवे-दीवे उद्देसओ, एवं सव्वे वि अट्ठावीसं उद्देसगा॥	एवम् अष्टविंशतिः अपि अन्तरद्वीपाः स्वकेन-स्वकेन आयाम-विष्कम्भेण भणितव्याः, नवरं–द्वीपे-द्वीपे उद्देशकः, एवं सर्वेऽपि अष्टाविंशतिः उद्देशकाः।	इस प्रकार अट्ठाईस अंतर्द्वीप अपनी अपनी लम्बाई और चौड़ाई के साथ वक्तव्य हैं। इतना विशेष है कि प्रत्येक द्वीप का एक उद्देशक है। इस प्रकार अट्ठाईस उद्देशक हो जाते हैं।

भाष्य

१. सूत्र–७

छप्पन अन्तर्द्वीप हैं–अट्ठाईस दक्षिण दिशा में और अट्ठाईस उत्तर दिशा में। प्रस्तुत उद्देशक समूह में अट्ठाईस दक्षिण दिशा के द्वीपों का निर्देश है।[1] उत्तर दिशा के द्वीप समूह यहां विवक्षित नहीं हैं।[2]

८. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	८. भंते! वह ऐसा ही है! भंते! वह ऐसा ही है।

१. जीवा. ३/२१७।

२. जीवा ३/२१७-२२६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगतीसइमो उद्देसो : इकतीसवां उद्देशक

मूल

असोच्चा उवलब्धि-पदं

९. रायगिहे जाव एवं वयासी—असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा, केवलि-सावगस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवासगस्स वा, केवलि-उवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खिय-सावियाए वा, तप्पक्खियउवासगस्स वा, तप्प-क्खियउवासियाए वा केवलि-पण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए॥

१०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव नो लभेज्ज सवणयाए?

गोयमा! जस्स णं नाणावर-णिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्प-क्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओ-वसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव नो लभेज्ज सवणयाए॥

संस्कृत छाया

अश्रुत्वा उपलब्धि-पदम्

राजगृहे यावत् एवम् अवादीत्—अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा, केवलि-श्रावकस्य वा, केवलि-श्राविकायाः वा केवलि-उपासकस्य वा केवलि-उपासिकायाः वा, तत्पाक्षिकस्य वा, तत्पाक्षिक-श्रावकस्य वा, तत्पाक्षिक-श्राविकायाः वा, तत्पाक्षिक-उपासकस्य वा तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा, केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय?

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक उपासिकायाः वा, अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय, अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते—अश्रुत्वा यावत् नो लभेत श्रवणाय?

गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति स अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत। यस्य ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति स अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते अश्रुत्वा यावत् नो लभेत श्रवणाय।

हिन्दी छाया

अश्रुत्वा उपलब्धि-पद

९. 'भगवान राजगृह नगर में आए, यावत् गौतम इस प्रकार बोले—भंते! क्या कोई पुरुष केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, तत्पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), तत्पाक्षिक के श्रावक, तत्पाक्षिक की श्राविका, तत्पाक्षिक के उपासक, तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, कोई नहीं कर सकता।

१०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त कर सकता है। जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं बोधिं बुध्येत?

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलं बोधिं बुध्येत, अस्त्येककः केवलं बोधिं नो बुध्येत।

११. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

१२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा?

गोयमा! जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्प-क्खिउवासियाए वा केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं बोधिं नो बुध्येत।

गौतम! यस्य दर्शनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं बोधिं बुध्येत, यस्य दर्शनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं बोधिं नो बुध्येत। तत्तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं बोधिं नो बुध्येत।

१२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है। जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

१३. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थे-गतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत्?

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत्। अस्त्येककः केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां नो प्रव्रजेत्।

१३. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा?

गोयमा! जस्स णं धम्मंतराइयाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवति से णं

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां नो प्रव्रजेत्?

गौतम! यस्य धर्मान्तरायिकाणां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा

१४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

गौतम! जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, जस्स णं धम्मं-तराइयाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवति से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा॥

केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत्, यस्य धर्मान्तरायिकाणां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां नो प्रव्रजेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां नो प्रव्रजेत्।

तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है। जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित नहीं हो सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१५. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा?
गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं ब्रह्मचर्यवासम् आवसेत्?
गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलं ब्रह्मचर्यवासम् आवसति अस्त्येककः केवलं ब्रह्मचर्यवासं नो आवसेत्।

१५. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है?
गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता।

१६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा?

गोयमा! जस्स णं चरित्तावरणि-ज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओव-समे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ– असोच्चा णं जाव केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं ब्रह्मचर्यवासं नो आवसेत्?

गौतम! यस्य चरित्रावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं ब्रह्मचर्यवासम् आवसेत्, यस्य चरित्र-वरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक उपासिकायाः वा केवलं ब्रह्मचर्यवासं नो आवसेत् तत् तेनार्थेन गौतम! एवम उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं ब्रह्मचर्यवासं नो आवसेत्।

१६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता?
गौतम! जिसके चरित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है। जिसके चरित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में नहीं रह सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता।

१७. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा?

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलेन संयमेन संयच्छेत्?

१७. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा॥

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलेन संयमेन संयच्छेत्, अस्त्येककः केवलेन संययेमेन नो संयच्छेत्।

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा?

गोयमा! जस्स णं जयणावर-णिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, जस्स णं जयणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलेन संयमेन नो संयच्छेत्?

गौतम! यस्य यतनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलेन संयमेन संयच्छेत्, यस्य यतनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलेन संयमेन नो संयच्छेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलेन संयमेन नो संयच्छेत्।

१८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता?

गौतम! जिसके यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है। जिसके यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित नहीं हो सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१९. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा?
गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलेन संवरेण संवृणुयात्?
गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलेन संवरेण संवृणुयात्। अस्त्येककः केवलेन संवरेण नो संवृणुयात्।

१९. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है?
गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

२०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा?

गोयमा! जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा

अथ केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलेन संवरेण नो संवृणुयात्?

गौतम! यस्य अध्यवसानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलेन संवरेण संवृणुयात्, यस्य अध्यवसानावर-णीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति, सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-

२०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता?

गौतम! जिसके अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है। जिसके अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा। से तेणेट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा॥

उपासिकायाः वा केवलेन संवरेण नो संवृणुयात्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलेन संवरेण नो संवृणुयात्।

बिना केवल संवर से संवृत नहीं हो सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

२१. असोच्चा णं भंते केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा?
गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं आभिणिबोहिय-नाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानम् उत्पादयेत्?
गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानम् उत्पादयेत् अस्त्येककः केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानं नो उत्पादयेत्।

२१. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न कर सकता है?
गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं आभिणि-बोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा?

गोयमा! जस्स णं आभिणिबोहिय-नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं आभिणिबो-हियनाणं उप्पाडेज्जा, जस्स णं आभिणिबोहिय-नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं आभिणि-बोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानम् नो उत्पादयेत्?

गौतम! यस्य आभिनिबोधिकज्ञाना-वरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलम् आभिनिबोधिक-ज्ञानम् उत्पादयेत्, यस्य आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानं नो उत्पादयेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलम् आभिनिबोधिकज्ञानं नो उत्पादयेत्।

२२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?
गौतम! जिसके आभिनिबोधिक ज्ञाना-वरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनि-बोधिकज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२३. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं सुयनाणं उप्पाडेज्जा?
गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं सुयनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं श्रुतज्ञानम् उत्पादयेत्?
गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलं श्रुतज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः

२३. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है?
गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलं सुयनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

केवलं श्रुतज्ञानं नो उत्पादयेत्।

कोई नहीं कर सकता।

२४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं सुयनाणं नो उप्पाडेज्जा ?

तत् केनार्थेन! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं श्रुतज्ञानं नो उत्पादयेत्।

२४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गोयमा! जस्स णं सुयनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं सुयनाणं उप्पाडेज्जा, जस्स णं सुयनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं सुयनाणं नो उप्पाडेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं सुयनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

गौतम! यस्य श्रुतज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं श्रुतज्ञानम् उत्पादयेत्, यस्य श्रुतज्ञाना-वरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं श्रुतज्ञानं नो उत्पादयेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलं श्रुतज्ञानं नो उत्पादयेत्।

गौतम! जिसके श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२५. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं ओहिनाणं उप्पाडेज्जा?
गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं ओहिनाणं उप्पा-डेज्जा, अत्थेगतिए केवलं ओहिनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलम् अवधिज्ञानम् उत्पादयेत्?
गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलम् अवधिज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलम् अवधिज्ञानम् नो उत्पादयेत्।

२५. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधिज्ञान उप्पन्न कर सकता है?
गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलं ओहिनाणं नो उप्पाडेज्जा?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलम् अवधिज्ञानं नो उत्पादयेत्?

२६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवल अवधिज्ञान उपन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गोयमा! जस्स णं ओहिनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं ओहिनाणं उप्पाडेज्जा, जस्स णं ओहिनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं ओहिनाणं नो

गौतम! यस्य अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं अवधिज्ञानम् उत्पादयति, यस्य अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति स अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक उपासिकायाः वा केवलम् अवधिज्ञानं नो उत्पादयति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम्

गौतम! जिसके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पाडेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव केवलं ओहिनाणं नो उप्पाडेज्जा।

उच्यते-अश्रुत्वा यावत् केवलम् अवधिज्ञानं नो उत्पादयेत्।

है—कोई पुरुष सुने बिना केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२७. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलं मणपज्जवनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मनःपर्यवज्ञानम् उत्पादयेत्?

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलं मनःपर्यवज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलं मनःपर्यवज्ञानं नो उत्पादयेत्।

२७. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव केवलं मणपज्जवनाणं नो उप्पाडेज्जा?

गोयमा! जस्स णं मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा, जस्स णं मण-पज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मण-पज्जवनाणं नो उप्पाडेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव केवलं मणपज्जवनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते—अश्रुत्वा यावत् केवलं मनःपर्यवज्ञानं नो उत्पादयेत्?

गौतम! यस्य मनःपर्यवज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मनःपर्यवज्ञानम् उत्पादयेत्, यस्य मनः-पर्यवज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलं मनःपर्यवज्ञानं नो उत्पादयेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते—अश्रुत्वा यावत् केवलं मनःपर्यवज्ञानं नो उत्पादयति?

२८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल मनः-पर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२९. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलनाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थे-गतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलज्ञानम् उत्पादयेत्?

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वाः अस्त्येककः केवलज्ञानम् उत्पादयेत्। अस्त्येककः केवल-ज्ञानं नो उत्पादयेत्।

२९. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं जाव केवलनाणं नो

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते—अश्रुत्वा यावत् केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्?

३०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवलज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पाडेज्जा?

गोयमा! जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवल-नाणं उप्पाडेज्जा, जस्स णं केवल-नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं जाव केवलंनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

गौतम! यस्य केवलज्ञानावरणीयनां कर्मणां क्षयः कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवल-ज्ञानम् उत्पादयेत्। यस्य केवलज्ञाना-वरणीयानां कर्मणां क्षयः नो कृतः भवति सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा यावत् केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्।

उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३१. असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा–१. केवलि-पण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए २. केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ३. केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ४. केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा ५. केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा ६. केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा ७. केवलं आभिणि-बोहियनाणं उप्पा-डेज्जा ८. केवलं सुय-नाणं उप्पा-डेज्जा ९. केवलं ओहिनाणं उप्पा-डेज्जा १०. केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा ११. केवलनाणं उप्पाडेज्जा?

अश्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा १. केवलि-प्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय २. केवलबोधिं बुध्येत ३. केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत् ४. केवलं ब्रह्मचर्यवासम् आवसेत् ५. केवलेन संयमेन संयच्छेत् ६. केवलेन संवरेण संवृणुयात् ७. केवलं आभिनिबोधिक-ज्ञानम् उत्पादयेत् ८. केवलं श्रुतज्ञानम् उत्पादयेत् ९. केवलं अवधिज्ञानम् उत्पादयेत् १०. केवलं मनःपर्यवज्ञानम उत्पादयेत् ११. केवलज्ञानम् उत्पादयेत्?

३१. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १.केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है? २. केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है? ३. मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है? ४. केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है? ५. केवल संयम से संयमित हो सकता है? ६. केवल संवर से संवृत हो सकता है? ७. केवल आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न कर सकता है? ८. केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है ९. केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है? १०. केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है? ११. केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा–१. अत्थे-गतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए २. अत्थे-गतिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा ३. अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा ४. अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा ५.

गौतम! अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक - उपासिकायाः वा–१. अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय २. अस्त्येककः केवलं बोधिं बुध्येत अस्त्येककः केवलं बोधिं नो बुध्येत ३. अस्त्येककः केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत् अस्त्येककः केवलं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां नो प्रव्रजेत् ४. अस्त्येककः केवलं ब्रह्मचर्यवासम् आवसेत्, अस्त्येककः केवलं ब्रह्मचर्यवासं नो आवसेत् ५. अस्त्येककः केवलेन संयमेन संयच्छेत्, अस्त्येककः केवलेन संयमेन नो संयच्छेत्। ६.

गौतम! केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १. कोई पुरुष केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। २. कोई पुरुष केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ३. कोई पुरुष मुण्ड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता। ४. कोई पुरुष केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता। ५. कोई पुरुष केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता। ६. कोई पुरुष केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा ६. अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा ७. अत्थेगतिए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलं आभिणि-बोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा ८. अत्थेगतिए केवलं सुयनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलं सुयनाणं नो उप्पाडेज्जा ९. अत्थेगतिए केवलं ओहिनाणं उप्पाडेज्जा अत्थेगतिए केवलं ओहिनाणं नो उप्पाडेज्जा १०. अत्थेगतिए केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलं मणपज्जवनाणं नो उप्पाडेज्जा ११. अत्थेगतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

अस्त्येककः केवलेन संवरेण संवृणुयात्, अस्त्येककः केवलेन संवरेण नो संवृणुयात्। ७. अस्त्येककः केवलं आभिनिबोधिक-ज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलं आभिनिबोधिकज्ञानम् उत्पादयेत् ८. अस्त्येककः केवलं श्रुतज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलं श्रुतज्ञानं नो उत्पादयेत् ९. अस्त्येककः केवलम् अवधिज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलं अवधिज्ञानं, नो उत्पादयेत् १०. अस्त्येककः केवलं मनःपर्यवज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलं मनःपर्यवज्ञानं नो उत्पादयेत्। ११. अस्त्येककः केवलज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्।

सकता। ७. कोई पुरुष केवल आभिनि-बोधिकज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ८. कोई पुरुष केवल श्रुतज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ९. कोई पुरुष केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। १०. कोई पुरुष केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ११. कोई पुरुष केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असोच्चा णं तं चेव जाव अत्थे-गतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अश्रुत्वा तच्चैव यावत् अस्त्येककः केवलज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्?

३२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता यावत् कोई पुरुष केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गोयमा! १. जस्स णं नाणावरणि-ज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ २. जस्स णं दरिसणावर-णिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ३. जस्स णं धम्मं-तराइयाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ४. जस्स णं चरित्ता-वरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ५. जस्स णं जयणावरणिज्जाणं कम्माणं खओ-वसमे नो कडे भवइ ६. जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ७. जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ८. जस्स णं सुयनाणा-वरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ९. जस्स णं ओहिनाणावरणिज्जाणं

गौतम! १. यस्य ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति २. यस्य दर्शना-वरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ३. यस्य धर्मान्तरायिकानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ४. यस्य चरित्रावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ५. यस्य यतनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ६. यस्य अध्यवसानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ७. यस्य आभिनिबोधिक-ज्ञानावारणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतःभवति ८. यस्य श्रुतज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृत :भवति ९. यस्य अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति १०. यस्य मनःपर्यव-ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति ११. यस्य केवलज्ञाना-

गौतम! १. जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता २. जिसके दर्शना-वरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ३. जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ४. जिसके चरित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ५. जिसके यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ६. जिसके अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ७. जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ८. जिसके श्रुत-ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ९. जिसके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता १०. जिसके मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ११. जिसके केवलज्ञाना-वरणीय कर्म का क्षय नहीं होता, वह पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ १०. जस्स णं मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ११. जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलि-पण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए, केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा जाव केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

वरणीयानां कर्मणां क्षयः नो कृतः भवति, सः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय, केवलं बोधिं नो बुध्येत यावत् केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्।

केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता यावत् केवल ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, जस्स णं धम्मंतराइयाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, एवं जाव जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा॥

यस्य ज्ञानावारणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति, यस्य दर्शनावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति, यस्य धर्मान्तरायिकानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति एवं यावत् यस्य केवलज्ञानावरणीयानां कर्मणा क्षयः कृतः भवति, स अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलि-प्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय, केवलं बोधिं बुध्येत यावत् केवलज्ञानं उत्पादयेत्।

१. जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है २. जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है ३. जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है इस प्रकार यावत् जिसके केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १. केवली प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त कर सकता है २. केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है यावत् ११. केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है।

भाष्य

१. सूत्र–९-३२

जैन धर्म आध्यात्मिक धर्म है। उसमें आध्यात्मिक विकास की कसौटी आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि पर आधारित है। आध्यात्मिक चिंतन में जाति, वर्ण, वेश और सम्प्रदाय का कोई स्थान नहीं है। इस आध्यात्मिक चिंतन का स्वयंभू प्रमाण है असोच्चा और सोच्चा का सूक्त।

अध्यात्म के मूल तत्त्व हैं–

१. धर्म का ज्ञान	५. संयम
२. बोधि	६. संवर
३. गृह त्याग (अपरिग्रह)	७ ज्ञान
४. ब्रह्मचर्यवास	

इनकी उपलब्धि आंतरिक शुद्धि से होती है। आंतरिक शुद्धि के दो सूत्र बतलाए गए हैं–

१. क्षयोपशम (कर्म का विलय)

२. क्षय (कर्म का विनाश)

धर्म का ज्ञान और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम–धर्म का ज्ञान करने के लिए आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम अपेक्षित है। इसलिए इन दोनों का ही क्षयोपशम यहां प्रासंगिक है।

बोधि और दर्शनावरणीय कर्म–बोधि का अर्थ है–सम्यग्दर्शन, इसलिए यहां दर्शनावरणीय का अर्थ होगा दर्शन मोहनीय। बोधि का लाभ दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम से होता है।[1]

अनगारिता और धर्मान्तरायिक कर्म–आठवें शतक में आन्तरायिक कर्म के पांच प्रकार बतलाए गए हैं।[2] उनमें पांचवां है वीर्यान्तराय। स्थानांग में धर्म के दो प्रकार बतलाए गए हैं–श्रुतधर्म और चारित्र धर्म।[3] धर्मान्तरायिक कर्म का अर्थ है–चारित्र धर्म में विघ्न डालने वाला वीर्यान्तराय कर्म। स्थानांग में अंतराय कर्म के केवल दो प्रकारों का निर्देश है–

१. प्रत्युत्पन्न विनाशक–वर्तमान में प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला।

---

१. (क) भ. वृ. १. १३।
(ख) भ. जो. ३/१२०९/२६–३०।

२. भ. ८/४३३।

३. ठाणं. २/१०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. आगामी पथ का अवरोधक–भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला।[1]

प्रस्तुत प्रकरण में यह दूसरा प्रकार विवक्षित है। यह चारित्र धर्म के पथ में अवरोध उत्पन्न करता है।

आंतरायिक कर्म का संबंध ज्ञान, दर्शन और चारित्र सबकी उपलब्धि के साथ है। धर्मान्तरायिक कर्म का क्षायोपशमिक भाव चारित्र मोहनीय कर्म के क्षायोपशमिक भाव के अनुरूप नहीं होता, उस अवस्था में गृह त्याग की प्रव्रज्या प्राप्त नहीं होती। वृत्तिकार के मत से भी इस आशय का समर्थन होता है।[2]

ब्रह्मचर्यवास और चारित्रावरणीय कर्म–यहां ब्रह्मचर्यवास का अर्थ साधु जीवन का आचार प्रासंगिक है।[3] वृत्तिकार ने इसका अर्थ मैथुन विरति किया है। वेद (काम-वासना) ब्रह्मचर्यवास का आवारक है इसलिए चारित्रावरणीय का अर्थ वेद लक्षण चारित्रावरणीय किया है।[4]

मोहनीय कर्म की दो प्रकृतियां बतलाई गई हैं–दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।[5] चारित्र मोहनीय का व्यापक अर्थ है–सामायिक आदि की चेतना में विघ्न पैदा करने वाला कर्म। इस आधार पर ब्रह्मचर्यवास का अर्थ आचार किया जा सकता है।

संयम और यतनावरणीय कर्म–संयम, संवर, ब्रह्मचर्यवास और अष्ट प्रवचन माता–इन चारों का अपना स्वतंत्र अर्थ है।[6] संयम के दो अर्थ हैं–

१. इन्द्रिय और मन का निग्रह

२. सतरह प्रकार का संयम।[7]

यतना का अर्थ है संयम की साधना में किया जाने वाला प्रयत्न।

उत्तराध्ययन में ईर्या समिति के प्रसंग में यतना के चार प्रकार बतलाए गए हैं–

१. द्रव्यतः यतना

२. क्षेत्रतः यतना

३. कालतः यतना

४. भावतः यतना[8]

इन्द्रिय और मन का संयम करना तथा सतरह प्रकार के संयम में जागरूक रहना चारित्र साधना के विशेष प्रयोग हैं। उनकी सफलता वीर्यान्तराय के क्षयोपशम पर निर्भर है। अतः संयम के लिए यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम अनिवार्य बतलाया गया।

वीर्यान्तराय आन्तरायिक कर्म का एक प्रकार है। वीर्य का प्रयोग अनेक दिशाओं में होता है। वीर्यान्तराय सब प्रकार के वीर्यों में बाधक नहीं बनता। इस प्रकार जितने वीर्य प्रयोग के प्रकार हैं, उतने ही वीर्यान्तराय के प्रकार बन जाते हैं। ध्यान विचार में वीर्य योग के बहत्तर प्रकार बतलाए गए हैं–

वीर्ययोगालंबनानि–ज्ञानाचार ८, दर्शनाचार ८, चारित्राचार ८, तप आचार १२, वीर्याचार–३६=७२।[9]

संवर और अध्यवसानावरणीय कर्म–अध्यवसान का अर्थ है चेतना की सूक्ष्म परिणति। अभयदेव सूरि ने इसका तात्पर्य भाव किया है।[10] अध्यवसान, परिणाम और लेश्या–इन तीनों का एक गुच्छक है। लेश्या का अर्थ भाव है। वह सूक्ष्म क्रिया है। परिणाम चेतना की सूक्ष्मतर क्रिया है। अध्यवसान चेतना की सूक्ष्मतम क्रिया है। अध्यवसानावरणीय के उदयकाल में अध्यवसान का संवर नहीं होता, निरोध नहीं होता।

अभयदेव सूरि के अनुसार यहां संवर शब्द शुभाध्यवसाय की वृत्ति के अर्थ में विवक्षित है।[11] किंतु यह विमर्शनीय है। जयाचार्य ने इसकी समीक्षा की है। उनके अनुसार कर्म निरोध का अध्यवसाय संवर है। योग प्रवृत्ति है, चंचलता है। संवर का स्वभाव निरोधात्मक है इसलिए संवर शुभ योग नहीं है।[12]

अनगारिता, ब्रह्मचर्यवास, संयम और संवर–ये अध्यात्म विकास की उत्तरोत्तर भूमिकाएं हैं।

स्थानांग में 'सोच्चा असोच्चा' प्रकरण का सार-संक्षेप उपलब्ध है।[13]

ज्ञान पांच हैं–आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इसमें प्रथम चार ज्ञान ज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं। केवलज्ञान ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है।

---

१. ठाणं २/४३१।

२. भ. वृ. ९/१६–अन्तरायो विघ्नः सोऽस्ति येषु तान्यान्तरायिकाणि धर्मस्य चारित्रप्रतिपत्तिलक्षणस्यान्तरायिकाणि धर्मान्तरायिकाणि तेषां वीर्यान्तरायचारित्रमोहनीयभेदानामित्यर्थः।

३. द्रष्ट. भ. १/२००-२०१ का भाष्य।

४. भ. वृ. ९/१८–वेदलक्षणानि चारित्रावरणीयानि विशेषतो ग्राह्याणि, मैथुन विरतिलक्षणस्य ब्रह्मचर्यवासस्य विशेषतस्तेषामेवावारकत्वात्।

५. भ. ८, ३२०-३२१।

६. द्रष्टव्य भ. १/२००-२०१ का भाष्य।

७. उत्तर. २४/६-८।

८. भ. वृ. ९/१८ इह तु यतनावरणीयानि चारित्रविशेषविषयवीर्यान्तराय-लक्षणानि मंतव्यानि।

९. ध्यान विचार ८ पृ. २३८।

१०. भ. वृ. ९/२०।

११. वही, ९/२०–संवरशब्देन शुभाध्यवसायवृत्तेर्विवक्षितत्वात् तस्याश्च भावचारित्ररूपत्वेन तदावरणक्षयोपशमलभ्यत्वात् अध्यवसानावरणीय-शब्देनेह भावचारित्रावरणीयान्युक्तानीति।

१२. भ. जो. ३। १७१। ४४-४७–

आख्या शुभ अध्यवसाय, चारित्रमोहणी करो।
तसु आवरणी ताय, चारित्रावरणी वृत्ति में॥
कर्म रुंधण रा सार, अध्यवसाय संवर तिके।
त्रिहुं जोगा थी न्यार, बुद्धिवंत न्याय विचारज्यो॥
जोग व्यापार कहाय, चंचल स्वभाव जेहनों।
संवर गुण सुखदाय, स्थिर स्वभाव है तेहनों॥

१३. ठाणं २/४१-७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान—ये दो ज्ञान सर्व साधारण हैं। इनका क्षयोपशम प्रत्येक जीव में होता है। सम्यक् दृष्टि जीव के ये दोनों ज्ञान कहलाते हैं और मिथ्यादृष्टि जीव के इन दोनों के नाम भिन्न होते हैं—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। इस स्थिति में इस प्रतिपादन का अर्थ है—जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है। जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न नहीं करता? इसका उत्तर अज्ञान और ज्ञान के भेद में ही खोजा जा सकता है। अनुयोगद्वार में क्षायोपशमिक भाव के अनेक प्रकारों का निर्देश है। उनमें मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति अज्ञानावरण, श्रुतअज्ञानावरण और विभंगज्ञानावरण के क्षयोपशम भिन्न बतलाए गए हैं।[1] जिसके मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम नहीं होता और मतिअज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है उसके आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। श्रुतज्ञान के लिए भी यही नियम है।

विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य यंत्र—

अध्यात्म के सूत्र	आन्तरिक शुद्धि के सूत्र
१. धर्म का ज्ञान	ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
२. बोधि	दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम
३. गृहत्याग	धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम
४. ब्रह्मचर्यवास	चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम
५. संयम	यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम
६. संवर	अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
७. आभिनिबोधिक ज्ञान	आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
८. श्रुतज्ञान	श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
९. अवधिज्ञान	अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
१०. मनःपर्यवज्ञान	मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
११. केवलज्ञान	केवल ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय

३३. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभि-मुहस्स आयावण-भूमीए आया-वेमाणस्स पगइभद्दयाए, पगइ-उवसंतयाए, पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए, मिउमद्दव-संपन्न-याए, अल्लीणयाए, विणीय-याए, अण्णया कयावि सुभेणं अज्झ-वसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं - विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओव-समेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करे-माणस्स विब्भंगे नामं अण्णाणे समुप्पज्जइ। से णं तेणं विब्भंग-नाणेणं समुप्पन्नेणं जहण्णेणं अंगुल-स्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं-असंखेज्जाइं जोयण-सहस्साइं जाणइ-पासइ। से णं तेणं विब्भंग-नाणेणं समुप्पन्नेणं जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ, पासंडत्थे सारंभे सपरिग्गहे संकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झ-माणे वि जाणइ। से णं पुव्वामेव सम्मत्तं पडिवज्जइ, सम्मत्तं पडिवज्जित्ता समणधम्मं रोएति, समण-धम्मं रोएत्ता चरित्तं पडिवज्जइ, चरित्तं पडिवज्जित्ता लिंगं पडिवज्जइ। तस्स णं तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं-

तस्य षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखस्य आतापन-भूम्याम् आतापयतः प्रकृति-भद्रतया प्रकृति-उपशान्ततया, प्रकृति प्रतनु क्रोध-मान-माया-लोभतया, मृदुमार्दव-सम्पन्नतया, आलीनतया, विनीततया, अन्यदा कदापि शुभेन अध्यव-सानेन, शुभेन परिणामेन लेश्याभिः विशुद्ध्य-मानाभिः-विशुद्ध्यमानाभिः तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोहमार्गणा-गवेषणां कुर्वतः विभंग नाम अज्ञानं समुत्पद्यते। सः तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन जघन्येन अंगुल-स्य असंख्येयतमभागम्, उत्कर्षेण असंख्येयानि योजनसहस्राणि जानाति-पश्यति। सः तेन विभंगज्ञानेन समुत्पन्नेन जीवान् अपि जानाति, अजीवान् अपि जानाति, पाषण्ड-स्थान् सारम्भान् सपरिग्रहान् संक्लिश्य-मानान् अपि जानाति, विशुद्ध्यमानान् अपि जानाति। सः पूर्वमेव सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते, सम्यक्त्वं प्रतिपद्य श्रमणधर्मं रोचते, श्रमणधर्मं रोचित्वा चरित्रं प्रतिपद्यते, चरित्रं प्रतिपद्य लिङ्गं प्रतिपद्यते। तस्य तैः मिथ्यात्व-पर्यवैः परिहीयमानैः-परीहीयमानैः सम्यग्-दर्शन-पर्यवैः परिवर्धमानैः-परिवर्धमानैः तत् विभंग-अज्ञानं सम्यक्त्वपरीगृहीतं क्षिप्रमेव अवधौ परावर्तते।

३३. [1]जो निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) के तप की साधना करता है, जो दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन भूमि में आतापना लेता है, उसके प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव सम्पन्नता, आत्मलीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और लेश्या की उत्तरोत्तर होने वाली विशुद्धि से तदावरणीय (विभंग-ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षयोपशम होता है। उसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए विभंग नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। वह पुरुष समुत्पन्न विभंगज्ञान के द्वारा जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्टतः असंख्येय हजार योजन को जानता-देखता है। वह समुत्पन्न विभंगज्ञान के द्वारा जीव को भी जानता है, अजीव को भी जानता है। वे पासंडस्थ (अन्य सम्प्रदाय में स्थित व्रती) आरंभ सहित और परिग्रह सहित होने के कारण संक्लिश्यमान है, इसे जानता है तथा आरंभ और परिग्रह को छोड़कर वे विशुद्ध्यमान होते हैं, इसे भी जानता है। वह विभंगज्ञानी जीव-अजीव आदि के यथार्थ स्वरूप के प्रति समर्पित होकर

१. (क) नन्दी, सू. २८५।
(ख) नन्दी, वृ. पृ. ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहायमाणेहिं सम्मदंसणपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं-परिवड्ढमाणेहिं से विब्भंगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ॥

पहले सम्यक्त्व को प्रतिपन्न होता है। सम्यक्त्व को प्रतिपन्न होकर श्रमण धर्म में रुचि करता है। श्रमण धर्म में रुचि कर चारित्र को प्रतिपन्न होता है। चारित्र को प्रतिपन्न होकर लिंग को स्वीकार करता है। मिथ्यात्व पर्यवों के उत्तरोत्तर परिहानि तथा सम्यक् दर्शन के पर्यवों की उत्तरोत्तर परिवृद्धि होने के कारण उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्व प्राप्ति के क्षण में ही विभंगज्ञान अवधिज्ञान में बदल जाता है।

भाष्य

१. सूत्र ३३

प्रस्तुत सूत्र में अश्रुत्वा पुरुष के आध्यात्मिक विकास के साधन निर्दिष्ट हैं।

१. निरन्तर दो उपवास (बेला की तपस्या)
२. सूर्याभिमुखी आतापना[1]
३. प्रकृति की भद्रता
४. प्रकृति का उपशम
५. क्रोध, मान माया और लोभ की प्रतनुता
६. मृदु-मार्दव संपन्नता
७. आलीनता
८. विनीतता।[2]

इन साधनों का विकास होते होते एक समय आता है कि अध्यवसान, परिणाम और लेश्या की विशुद्धि के क्षणों में उसे विभंग नाम का अतीन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। उस अश्रुत्वा पुरुष की सूक्ष्म सत्यों को जानने की शक्ति बढ़ जाती है। वह जीव-अजीव, आरंभ, परिग्रह तथा अनारंभ और अपरिग्रह, संक्लेश और विशुद्धि को जान लेता है। वह बोध उसे सम्यक्त्व तक पहुंचा देता है। मिथ्यात्व के पर्यवों की हानि और सम्यक्दर्शन के पर्यवों की वृद्धि होने पर उसका विभंगज्ञान अवधिज्ञान में बदल जाता है।[3]

३४. से णं भंते! कतिसु लेस्सासु होज्जा?

स भदन्त! कतिषु लेश्यासु भवति?

समय उस अश्रुत्वा पुरुष में कितनी लेश्याएं होती हैं?

गोयमा! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, तं जहा–तेउलेस्साए, पम्हलेस्साए, सुक्कलेस्साए॥

गौतम! तिसृषु विशुद्धलेश्यासु भवति, तद् यथा–तेजोलेश्यायाम्, पद्मलेश्यायाम्, शुक्ललेश्यायाम्।

गौतम! तीन विशुद्ध लेश्याएं होती हैं, जैसे–तैजस लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या।

भाष्य

१. सूत्र ३४

पूर्व सूत्र में उल्लिखित सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति विशुद्ध लेश्या की अवस्थिति में ही होती है इसलिए उसमें तीन प्रशस्त लेश्या की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है।

३५. से णं भंते! कतिसु नाणेसु होज्जा?
गोयमा! तिसु–आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा॥

स भदन्त! कतिषु ज्ञानेषु भवति?
गौतम! त्रिषु–आभिनिबोधिकज्ञान-श्रुतज्ञान अवधिज्ञानेषु भवति।

३५. भंते! उसमें कितने ज्ञान होते हैं?
गौतम! तीन ज्ञान होते हैं–आभिनिबोधिक- ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान।

३६. से णं भंते! किं सजोगी होज्जा? अजोगी होज्जा?
गोयमा! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

स भदन्त! किं संयोगी भवति? अयोगी भवति?
गौतम! संयोगी भवति, नो अयोगी भवति।

३६. भंते! क्या वह योग सहित होता है? योग रहित होता है?
गौतम! योग सहित होता है, योग रहित नहीं होता।

---

१. भ. २/६२ का भाष्य।
२. वही ३/२१ का भाष्य।
३. द्रष्टव्य भ. जो. ३/१९२/१७–३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा? वइजोगी होज्जा? काय-जोगी होज्जा?

यदि सयोगी भवति, किं मनोयोगी भवति, वाग्योगी भवति, काययोगी भवति?

यदि वह योग सहित होता है, तो मनोयोगी होता है? वचनयोगी होती है? काययोगी होता है?

गोयमा! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा॥

गौतम! मनोयोगी वा भवति, वाग्योगी वा भवति, काययोगी वा भवति।

गौतम! मनोयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होता है, काययोगी भी होता है।

भाष्य

१. सूत्र ३६

एक समय में एक योग की प्रवृत्ति होती है इसलिए मन, वचन और काययोग को वैकल्पिक रूप में स्वीकार किया गया है। अभयदेवसूरि ने विकल्प की व्याख्या एक योग की प्रधानता की अपेक्षा से की है।[1]

जयाचार्य ने इसी मत की पुष्टि की है।[2] तात्पर्यार्थ यह है—स्थूल व्यवहार में तीनों योगों की प्रवृत्ति एक साथ दिखाई देती है। सूक्ष्म दृष्टि का निर्णय यह है—प्रत्येक योग का प्रवर्तक अध्यवसाय स्वतंत्र होता है। एक समय में दो क्रिया हो सकती है—यह व्यवहार नय का प्रतिपादन है। प्रवर्तक अध्यवसाय एक साथ दो नहीं हो सकते।[3] सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचन्द्र के अनुसार एक समय में एक ही योग हो सकता है, दो अथवा तीन नहीं हो सकते।[4]

३७. से णं भंते! किं सागारोवउत्ते होज्जा? अणागारोवउत्ते होज्जा?

स भदन्त! किं साकारोपयुक्तः भवति अनाकारोपयुक्तः भवति?

३७. [5]भंते! वह साकार-उपयोग से भी युक्त होता है? अनाकार-उपयोग से युक्त होता है?

गोयमा! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा॥

गौतम! साकारोपयुक्तः वा भवति, अनाकारोपयुक्तः वा भवति।

गौतम! वह साकार-उपयोग से युक्त होता है, अनाकार उपयोग से भी युक्त होता है।

भाष्य

१. सूत्र ३७

सब लब्धियां साकारोपयोग के क्षण में ही होती हैं—इस आगमिक नियम के आधार पर इस विधि का निर्देश किया गया है कि अवधिज्ञान की उपलब्धि मतिज्ञान अथवा श्रुतज्ञान के उपयोग के क्षण में ही होती है।[6] जिनभद्रगणि ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है—मुक्त होने की लब्धि भी साकार उपयोग के क्षण में होती है।[7] सब 'लब्धियां साकार उपयोग में ही होती हैं'— इस नियम का अपवाद सूत्र भी है। परिणाम परिवर्द्धमान होता है, उस अवस्था में सब उपलब्धियां साकार उपयोग में होती हैं। परिणाम अवस्थित होता है उस अवस्था में अनाकार उपयोग में सामायिक आदि कुछ लब्धियां हो सकती हैं।[8] अभयदेवसूरि ने भी इस आशय का उल्लेख किया है।[9]

३८. से णं भंते! कयरम्मि संघयणे होज्जा? गोयमा! वइरोसभनारायसंघयणे होज्जा।

स भदन्त! कतरे संहनने भवति? गौतम! वज्रऋषभनाराचसंहनने भवति।

३८. [10]भंते! वह किस संहनन वाला होता है? गौतम! वज्रऋषभनाराच संहनन वाला होता है।

भाष्य

१. सूत्र ३८

द्रष्टव्य भगवती १/९ का भाष्य।

३९. से णं भंते! कयरम्मि संठाणे होज्जा?

स भदन्त! कतरे संस्थाने भवति?

३९. [11]भंते! वह किस संस्थान वाला होता है?

गोयमा! छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे होज्जा॥

गौतम! षण्णां संस्थानानाम् अन्यतरे संस्थाने भवति।

गौतम! छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान वाला होता है।

---

१. भ. वृ. ९/३६—मनोयोगीत्यादि चैकतरयोगप्राधान्यापेक्षया अवगन्तव्यम्।

२. भ. जो. ३/१७२/५३/

३. वि. भा. गा. ३६३

४. गो. जी. गा. २४२—
जोगे वि एक्काले एक्केप्प य होदि णियमेण।

५. भ. वृ. ९/३७—तस्य हि विभंगज्ञानान्निवर्तमानस्योपयोगद्वयेपि वर्तमानस्य सम्यक्त्वावधिज्ञानप्रतिपत्तिरस्तीति।

६. वि. भा. गा. ३०८९—
सव्वाओ लद्धीओ जं सागारोवओगलाभाओ।
तेणेह सिद्धलद्धी उप्पज्जइ तदुवउत्तस्स॥

७. वि. भा. गा. २७३२—
सो किर नियमो परिवड्ढमाणपरिणामयं पइ।
जो उवट्ठियपरिणामा लभेज्ज स लभेज्ज बीए वि॥

८. भ. वृ. ९/३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ३९

द्रष्टव्य ठाणं ६/३१ का टिप्पण।

४०. से णं भंते! कयरम्मि उच्चत्ते होज्जा?
गोयमा! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसतिए होज्जा॥

स भदन्त! कतरे उच्चत्वे भवति?
गौतम! जघन्येन सप्तरत्नौ, उत्कर्षेण पञ्चधनुःशतके भवति।

४०. भंते! वह कितनी ऊंचाई वाला होता है?
गौतम! जघन्यतः सात रत्नी, उत्कृष्टतः पांच सौ धनुष्य की ऊंचाई वाला होता है।

भाष्य

१. सूत्र ४०

भगवान महावीर के समय में शरीर की ऊंचाई सात रत्नी की थी और भगवान ऋषभ के समय में शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष्य की थी। उसके आधार पर शरीर की जघन्य ऊंचाई सात रत्नी और उत्कृष्ट ऊंचाई पांच सौ धनुष्य बतलाई गई है। द्रष्टव्य समवायांग ७/३ का टिप्पण।

४१. से णं भंते! कयरम्मि आउए होज्जा?
गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउए होज्जा॥

स भदन्त! कतरे आयुष्के भवति?
गौतम! जघन्येन सातिरेकाष्टवर्षायुष्के, उत्कर्षेण पूर्वकोट्यायुष्के भवति।

४१. भंते! वह किस आयु वाला होता है?
गौतम! जघन्यतः कुछ अधिक आठ वर्ष, उत्कृष्टतः पूर्व कोटि आयु वाला होता है।

४२. से णं भंते! किं सवेदए होज्जा? अवेदए होज्जा?
गोयमा! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा।
जइ सवेदए होज्जा किं इत्थिवेदए होज्जा? पुरिसवेदए होज्जा? पुरिस-नपुंसगवेदए होज्जा? नपुंसगवेदए होज्जा?
गोयमा! नो इत्थिवेदए होज्जा, पुरिसवेदए, होज्जा, नो नपुंसग-वेदए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए वा होज्जा॥

स भदन्त! किं सवेदकः भवति? अवेदकः भवति?
गौतम! सवेदकः भवति, नो अवेदकः भवति। यदि सवेदकः भवति?
पुरुषनपुंसकवेदकः भवति? किं स्त्रीवेदकः भवति? पुरुषवेदकः भवति, नपुंसकवेदकः भवति?
गौतम! नो स्त्रीवेदकः भवति, पुरुषवेदकः भवति, नो नपुंसकवेदकः भवति, पुरुष-नपुंसकवेदकः वा भवति।

४२. [1]भंते! वह वेद सहित होता है? वेद रहित होता है?
गौतम! वेद सहित होता है, वेद रहित नहीं होता।
यदि वेद सहित होता है तो क्या स्त्री वेद वाला होता है? पुरुष वेद वाला होता है? पुरुषनपुंसक वेद वाला होता है? नपुंसक वेद वाला होता है?
गौतम! वह स्त्री वेद वाला नहीं होता, पुरुष वेद वाला होता है, नपुंसक वेद वाला नहीं होता, पुरुषनपुंसक वेद वाला होता है।

भाष्य

१. सूत्र ४२

अश्रुत्वा पुरुष के लिए स्त्रीवेद का निषेध किया गया है। अभयदेवसूरि ने इस निषेध का हेतु स्वभाव बतलाया है।[1] संभावना की जा सकती है—अश्रुत्वा पुरुष प्रबल आंतरिक पुरुषार्थ से अवधिज्ञान की स्थिति तक पहुंचता है, वह पुरुषार्थ स्त्री में संभव न हो।

पुरुषनपुंसक—यह जन्मना नपुंसक नहीं होता, कृत नपुंसक होता है।[2]

४३. से णं भंते! किं सकसाई होज्जा? अकसाई होज्जा?
गोयमा! सकसाई होज्जा, नो अकसाई होज्जा।
जइ सकसाई होज्जा से णं भंते! कतिसु कसाएसु होज्जा?
गोयमा! चउसु—संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा॥

स भदन्त! किं सकषायी भवति? अकषायी भवति?
गौतम! सकषायी भवति, नो अकषायी भवति।
यदि सकषायी भवति स भदन्त! कतिषु कषायेषु भवति?
गौतम! चतुर्षु—संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभेषु भवति।

४३. [1]भंते! वह कषाय सहित होता है? कषाय रहित होता है?
गौतम! कषाय सहित होता है, कषाय रहित नहीं होता।
यदि कषाय सहित होता है तो कितने कषायों वाला होता है?
गौतम! चार—क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होता है।

---

१. भ. ९, ४२—स्त्रियां एवंविधस्य व्यतिकरस्य स्वभावत एवाभावात्।
२. वही ९, -वर्द्धितकत्वादिना नपुंसकः पुरुष नपुंसकः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४३

कषाय के चार भेद हैं—अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन।

चारित्र अवस्था में केवल संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय होता है।[1]

४४. तस्स णं भंते! केवइया अज्झ-वसाणा पण्णत्ता?
गोयमा! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता॥

तस्य भदन्त! कियन्ति अध्यवसानानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! असंख्येयानि अध्यवसानानि प्रज्ञप्तानि।

४४. 'भंते! उसमें कितने अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! असंख्येय अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं।

४५. ते णं भंते! किं पसत्था? अप्प-सत्था?
गोयमा! पसत्था, नो अप्पसत्था॥

तानि भदन्त! किं प्रशस्तानि? अप्रशस्तानि?
गौतम! प्रशस्तानि, नो अप्रशस्तानि।

४५. भंते! वे अध्यवसान प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त?
गौतम! प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते।

भाष्य

१. सूत्र—४४-४५

द्रष्टव्य भगवती ९/९-३२ का भाष्य।

४६. से णं भंते! तेहिं पसत्थेहिं अज्झ-वसाणेहिं वट्टमाणेहिं अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं तिरिक्ख-जोणियभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं मणुस्स-भवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ। जाओ वि य से इमाओ नेरइय तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवगतिनामाओ चत्तारि उत्तरपगडीओ, तासिं च णं ओवग्गहिए अणंताणुबंधी कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण-माया लोभे खवेइ, खवेत्ता पच्च-क्खाणावरणे कोह-माण-माया-लोभे-खवेइ, खवेत्ता संजलणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता पंचविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं दरिसणावरणिज्जं, पंचविहं अंतराइयं, तालमत्थाकडं च णं मोहणिज्जं कट्टु कम्मरय-विकिरणकरं अपुव्वकरणं अणु-पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वा-घाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुपज्जति॥

स भदन्त! तैः प्रशस्तैः अध्यवसानैः वर्तमानैः अनन्तेभ्यः नैरयिकभवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः तिर्यग्योनिक-भवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः मनुष्य-भवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः देवभवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति। या अपि च तस्य इमाः नैरयिक-तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवगति-नाम्न्यः चतस्रः उत्तरप्रकृतयः, तासां च औपग्रहिकान् अनन्तानुबंधिनः क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा प्रत्याख्यानावरणान् क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा अप्रत्या-ख्यानावरणान् क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा पंचविधं ज्ञानावरणीयम्, नवविधं दर्शनावरणीयम्, पञ्चविधम् आन्तरायिकं, तालमस्तककृतं च मोहनीयं कृत्वा कर्मरजोविकिरणकरम् अपूर्वकरणम् अनुप्रविष्टस्य अनन्तम् अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवल- वरज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते।

४६. 'भंते! वह प्रशस्त अध्यवसानों के द्वारा वर्तमान अनन्त नैरयिक जन्मों (भव-ग्रहण) से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है। अनन्त तिर्यक्योनिक जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनंत मनुष्य जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनंत देव जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, जो नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति नाम की चार उत्तर प्रकृतियां हैं, उनके औपग्रहिक (आलंबनभूत) अनन्तानु-बंधी—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर अप्रत्याख्यानावरण—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर प्रत्याख्यानावरण—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर पंचविध ज्ञानावरणीय, नवविध दर्शनावरणीय, पंचविध आंतरायिक और मोहनीय को सिर से छिन्न किए हुए ताल वृक्ष की भांति क्षीण कर, कर्मरज के विकिरणकारक अपूर्वकरण में अनुप्रविष्ट

१. भ. वृ. १. ४३-तस्य च तत्काले चरणयुक्तत्वात् संज्वलना एव क्रोधादयो भवंतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। उसके अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञान-दर्शन समुत्पन्न होता है।

भाष्य

१. सूत्र–४६

प्रस्तुत सूत्र में क्षपकश्रेणी के आरोहण की प्रक्रिया बतलाई गई है। क्षपकश्रेणी में आरोहण करने वाला सर्वप्रथम अनंत काल से चले आ रहे भवग्रहण का विसंयोजन करता है–

१. नैरयिक भवग्रहण का विसंयोजन।

२. तिर्यक्योनिक भवग्रहण का विसंयोजन।

३. मनुष्य भवग्रहण का विसंयोजन।

४. देव भवग्रहण का विसंयोजन।

तत्पश्चात् नामकर्म की चार उत्तर प्रकृतियों का विसंयोजन करता है–

१. नैरयिक गति नामकर्म का विसंयोजन।

२. तिर्यक्योनिक गति नामकर्म का विसंयोजन।

३. मनुष्य गति नामकर्म का विसंयोजन।

४. देव गति नामकर्म का विसंयोजन।

तत्पश्चात् गति चतुष्टय के हेतुभूत अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। तत्पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। तत्पश्चात् प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। तत्पश्चात् संज्वलन कषाय चतुष्क–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। तत्पश्चात् पंचविध ज्ञानावरणीय, नवविध दर्शनावरणीय, पंचविध आंतरायिक और मोहनीय कर्म को क्षीण कर अपूर्वकरण में प्रविष्ट होता है, केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

इस प्रक्रिया के पश्चात् दुबारा मोहनीय कर्म का कथन विशेष उद्देश्य से किया गया है। सूत्रकार यह बतलाना चाहते हैं–मोहनीय कर्म का क्षय होने पर ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म का क्षय होता है। जैसे–ताल वृक्ष की मस्तक स्थित सूई के विनिष्ट होने पर तालवृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे ही मोहनीय कर्म के क्षीण होने पर ज्ञानावरणीय आदि तीन कर्म क्षीण हो जाते हैं।[1]

शब्द विमर्श

तालमत्थाकडं–इस वाक्य में तीन पद हैं–ताल, मस्तक और कृत। इसका तात्पर्य है मस्तक सूची के छिन्न होने पर तालवृक्ष नष्ट हो जाता है।[2]

अपूर्वकरण–असदृश अध्यवसाय, ऐसा अध्यवसाय, जो पहले कभी नहीं आया। सामान्यतः ऐसे दो स्थान प्रसिद्ध हैं–प्रथम अपूर्वकरण सम्यक्त्व प्राप्ति के समय होता है। दूसरा अपूर्वकरण श्रेणी आरोहण के समय होता है।

तीसरा अपूर्वकरण केवल ज्ञान के पूर्व क्षण में होता है। इस अध्यवसाय में अनुप्रविष्ट जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है।

४७. से णं भंते! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्ज वा? पण्णवेज्ज वा? परूवेज्ज वा? नो तिणट्ठे समट्ठे, नत्थ एगनाएण वा, एगवागरणेण वा॥

स भदन्त! केवलिप्रज्ञप्तं धर्ममाख्याति वा? प्रज्ञापयति वा? प्ररूपयति वा?
गौतम! नो अयमर्थः समर्थः, नान्यत्र एकज्ञाताद् वा, एकव्याकरणाद् वा।

४७. भंते! क्या वह अश्रुत्वा केवलज्ञानी केवली प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान, प्रज्ञापना अथवा प्ररूपण करता है?
गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। केवल इतना अपवाद है–एक ज्ञात (दृष्टान्त) अथवा एक व्याकरण (एक प्रश्न का उत्तर) करता है।

४८. से णं भंते! पव्वावेज्ज वा? मुंडावेज्ज वा?
णो तिणट्ठे समट्ठे, उवदेसं पुण करेज्जा॥

स भदन्तः प्रव्राजयति वा? मुण्डयति वा?

गौतम! नो अयमर्थः समर्थः, उपदेशं पुनः करोति।

४८. भंते! क्या वह प्रव्रज्या देता है, मुण्ड करता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह प्रव्रज्या और मुंडन के लिए उपदेश देता है।

---

१. भ. वृ. ९/४६ तालमस्तकमोहनीययोश्च क्रियासाधर्म्यमेव। यथा हि तालमस्निष्कम्पविनाशक्रियाऽवश्यंभाविनालविनाशः। एवं मोहनीयकर्मविनाशक्रियाप्यवश्यंभाविविशेषकर्म्मविनाशेति, आह च–

मस्तकसूचिविनाशे, तालस्य यथा ध्रुवो भवति नाशः।
तद्वत्कर्मविनाशोऽपि, मोहनीयक्षये नित्यम्॥

२. वही, ९/४६ मस्तके–मस्तकसूचीकृतं छिन्नं सत्तालो मस्तके कृतः तालश्चासौ मस्तककृतश्च तालमस्तककृतः तालश्चासौ छन्दसत्वाच्चैवं निर्देशः, तालमस्तककृत इव यत्ततालमस्तककृतम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. से णं भंते! सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?
हंता सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स भदन्त! सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?
हन्त सिध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

४९. भंते! क्या वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है?
हां, वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

५०. से णं भंते! किं उड्ढं होज्जा? अहे होज्जा? तिरियं होज्जा?

गोयमा! उड्ढं वा होज्जा, अहे वा होज्जा, तिरियं वा होज्जा। उड्ढं होमाणे सद्दावइ-वियडावइ-गंधा-वइमालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु होज्जा, साहरणं पडुच्च सोमणसवणे वा पंडगवणे वा होज्जा। अहे होमाणे गड्डाए वा दरीए वा होज्जा, साहरणं पडुच्च पायाले वा भवणे वा होज्जा। तिरियं होमाणे पण्णरससु कम्म-भूमीसु होज्जा, साहरणं पडुच्च अड्ढाइज्जदीव-समुद्द-तदेक्क-देसभाए होज्जा॥

स भदन्त किं ऊर्ध्वं भवति? अधः भवति? तिर्यग् भवति?

गौतम! ऊर्ध्वं वा भवति, अधः वा भवति तिर्यग् वा भवति। ऊर्ध्वं भवन् शब्दापाति-विकटापाति-गन्धापाति-माल्यवन्तपर्यायेषु वृत्तवैताढ्यपर्वतेषु भवति, संहरणं-प्रतीत्य सौमनसवने वा पण्डकवने वा भवति। अधः भवन् गर्ते वा, दर्यां वा भवति, संहरण-प्रतीत्य पाताले वा भवने वा भवति। तिर्यग् भवन् पञ्चदशसु कर्मभूमीषु भवति, संहरणं प्रतीत्य अर्धतृतीयद्वीप-समुद्र-तदेकदेशभागे भवति।

५०. भंते! क्या वह ऊर्ध्व देश में होता है? अधो देश में होता है? तिर्यक् देश में होता है?
गौतम! वह ऊर्ध्व देश में भी होता है, अधो देश में भी होता है, तिर्यक् देश में भी होता है। ऊर्ध्व देश में होता है—शब्दापाति, विकटापाति, गंधापाति, माल्यवंत पर्वतों में और वृत्त वैताढ्य पर्वतों में होता है। संहरण (अपहरण) की अपेक्षा सोमनस वन में भी होता है, पंडकवन में भी होता है।
अधोदेश में होता है—गड्ढे में भी होता है, कंदरा में भी होता है। संहरण की अपेक्षा पाताल में भी होता है, भवन में भी होता है।
तिर्यक् लोक में होता है—पंद्रह कर्मभूमि में होता है। संहरण की अपेक्षा अढ़ाई द्वीप समुद्र के एक देश भाग में होता है।

५१. ते णं भंते! एगसमए णं केवतिया होज्जा?
गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं दस। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थे-गतिए केवलि-पण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थे-गतिए असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए जाव अत्थेगतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

ते भदन्त! एक समये कियन्तः भवन्ति?

गौतम! जघन्येन एकः वा, द्वौ वा, त्रयः वा, उत्कर्षेण दश।
तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते—अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभते श्रवणाय, अस्त्येककः अश्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभते श्रवणाय यावत् अस्त्येककः केवलज्ञानम् उत्पादयति, अस्त्येककः केवलज्ञानं नो उत्पादयति।

५१. भंते! अश्रुत्वा केवलज्ञानी एक समय में कितने होते हैं?
गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः दस।
गौतम! यह इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना कोई पुरुष केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता यावत् केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना कोई पुरुष केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

भाष्य

१. सूत्र ५१

उत्तराध्ययन सूत्र में बतलाया गया है—अन्य लिंगी के वेश में एक समय में उत्कृष्टतः दस सिद्ध हो सकते हैं।[1]

सोच्चा उवलद्धि-पदं

५२. सोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा, केवलिसावगस्स वा, केवलिसावियाए

श्रुत्वा उपलब्धि-पदम्

श्रुत्वा भदन्त! केवलिनः वा, केवलि-श्रावकस्य वा, केवलिश्राविकायाः वा,

श्रुत्वा उपलब्धि-पद

५२. भंते! कोई पुरुष केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के

१. उत्तर. ३६ : ५१-५२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा, केवलि-उवासगस्स वा, केवलि-उवा-सियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा, तप्पक्खिय-उवासगस्स वा, तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए?

केवलि-उपासकस्य वा, केवलि-उपासिकायाः वा, तत्पाक्षिकस्य वा, तत्पाक्षिकश्रावकस्य वा, तत्पाक्षिक-श्राविकायाः वा, तत्पाक्षिक-उपासकस्य वा, तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय?

उपासक, केवली की उपासिका, तत्पाक्षिक, तत्पाक्षिक के श्रावक, तत्पाक्षिक की श्राविका, तत्पाक्षिक के उपासक, तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है?

गोयम! सोच्चा ण केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए॥

गौतम! श्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभते श्रवणाय, अस्त्येककः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय।

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

५३. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– सोच्चा णं जाव नो लभेज्ज सवणयाए?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते-श्रुत्वा यावत् नो लभेत श्रवणाय?

५३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

गोयमा! जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलि-पण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि-पण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सोच्चा णं जाव नो लभेज्ज सवणयाए॥

गौतम! यस्य ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति स श्रुत्वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय, यस्य ज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः नो कृतः भवति स श्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभेत श्रवणाय। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–श्रुत्वा यावत् नो लभेत श्रवणाय।

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुन कर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

५४. एवं जा चेव असोच्चाए वत्तव्वया सा चेव सोच्चाए वि भाणियव्वा, नवरं– अभिलावो सोच्चे त्ति, सेसं तं चेव निरवसेसं जाव जस्स णं मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि-पण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा॥

एवं या चैव अश्रुत्वायाः वक्तव्यता सा चैवं श्रुत्वायाः अपि भवितव्या, नवरम्– अभिलापः श्रुत्वेति, शेषं तच्चैव निरवशेषं यावत् यस्य मनःपर्यवज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमः कृतः भवति, यस्य केवलज्ञानावरणीयानां कर्मणां क्षयः कृतः भवति स श्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणाय, केवलं बोधिं बुध्येत यावत् केवलज्ञानम् उत्पादयेत्।

५४. इस प्रकार जो अश्रुत्वा पुरुष की वक्तव्यता है, वही श्रुत्वा पुरुष की वक्तव्यता है, इतना विशेष है–असोच्चा के स्थान पर सोच्चा का अभिलाप (पाठोच्चारण) है, शेष वही पूर्णरूप से वक्तव्य है यावत् जिसके मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, जिसके केवलज्ञानावरण का क्षय होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है यावत् केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. तस्स णं अट्ठमंअट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स पगइभद्दयाए, पगइउवसंतयाए, पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए, मिउ-मद्दव-संपन्नयाए, अल्लीणयाए, विणीययाए, अण्णया कयावि सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं-विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओव-समेणं ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स ओहिनाणे समुप्पज्जइ। से णं तेणं ओहिनाणेणं समुप्पन्नेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइं खंडाइं जाणइ-पासइ॥

तस्य अष्टमम्अष्टमेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा आत्मानं भावयतः प्रकृतिभद्रतया-प्रकृत्युपशांततया प्रकृतिप्रतनुक्रोध-मान-माया-लोभतया, मृदुमार्दवसम्पन्नतया, आलीनतया, विनीततया, अन्यदा कदापि शुभेन अध्यवसायेन, शुभेन परिणामेन, लेश्याभिः विशुद्ध्यमानाभिः-विशुद्ध्यमानाभिः तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोहमार्गणागवेषणां कुर्वतः अवधिज्ञानं समुत्पद्यते। स तेन अवधिज्ञानेन समुत्पन्नेन जघन्येन अंगुल्यस्य असंख्येयतमभागम्, उत्कर्षेण असंख्येयानि अलोके लोकप्रमाण-मात्राणि खंडानि जानाति-पश्यति।

५५. [1]जो निरन्तर तेले-तेले के तप (तीन-तीन दिन के उपवास) की साधना के द्वारा आत्मा को भावित करता है, उसके प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव सम्पन्नता, आत्म-लीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और लेश्या की उत्तरोत्तर होने वाली विशुद्धि से तदावरणीय (अवधिज्ञानावरणीय) कर्म का क्षयोपशम होता है, उसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। वह पुरुष समुत्पन्न अवधिज्ञान के द्वारा जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्टतः अलोक में असंख्येय लोक-प्रमाण खण्डों को जानता-देखता है।

भाष्य

१. सूत्र ५५

अश्रुत्वा पुरुष और श्रुत्वा पुरुष की स्थिति में कुछ समानता है, कुछ भिन्नता है। प्रस्तुत प्रकरण में केवल भिन्नता का दिग्दर्शन कराया जा रहा है। अश्रुत्वा पुरुष का अवधिज्ञान देशावधि की कोटि का होता है इसलिए वह असंख्येय हजार योजन तक जानता-देखता है। श्रुत्वा पुरुष का अवधिज्ञान परमावधि की कोटि का होता है इसलिए वह अलोक में लोक प्रमाण मात्र असंख्येय खण्डों को जानता-देखता है।[1]

५६. से णं भंते! कतिसु लेस्सासु होज्जा?

गोयमा! छसु लेस्सासु होज्जा, तं जहा–कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए॥

स भदन्त! कतिषु लेश्यासु भवति?

गौतम! षट्सु लेश्यासु भवति, तद् यथा-कृष्णलेश्यायां यावत्, शुक्ललेश्यायाम्।

५६. 'भंते! उस श्रुत्वा अवधिज्ञानी में कितनी लेश्याएं होती हैं?

गौतम! छह लेश्याएं होती हैं, जैसे–कृष्ण लेश्या यावत शुक्ल लेश्या।

भाष्य

१. सूत्र ५६

अश्रुत्वा पुरुष अवधिज्ञानी में तीन प्रशस्त लेश्याएं बतलाई गई हैं। श्रुत्वापुरुष अवधिज्ञानी में छहों लेश्याएं निर्दिष्ट हैं। अभयदेवसूरि का अभिमत है–अवधिज्ञान की प्राप्ति तीन प्रशस्त भाव लेश्याओं में ही होती हैं। शेष तीन लेश्याओं का प्रतिपादन द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से किया गया है। द्रव्य लेश्या[2] की अपेक्षा से छहों लेश्याओं में सम्यक्त्व और श्रुत का लाभ होता है, वैसे अवधिज्ञान की उपलब्धि भी हो सकती है। उसकी उपलब्धि के पश्चात् अप्रशस्त अध्यवसाय होने पर अप्रशस्त भाव लेश्याएं भी होती हैं।[3] जयाचार्य ने प्रस्तुत विषय की समीक्षा की है। उसमें वृत्तिकार के अभिमत का समर्थन किया है। उनका तर्क यह है–श्रुत्वा पुरुष अवधिज्ञानी हुआ है, वह केवलज्ञान सन्मुख है, श्रेणी का आरोहण कर रहा है इसलिए अश्रुत्वा पुरुष की

---

१. विशेषावश्यक भाष्य गाथा ६८५–
परमोहि असंखेज्जा लोगमित्ता समा असंखेज्जा।
रूवगयं लहइ सव्वं खेत्तोवमिया अगणिजीवा॥

२. (क) द्रव्य लेश्या की जानकारी के लिए द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि के ३४ वें अध्ययन का आमुख।
(ख) उत्तर. नि. गा. ५३४-४४।

३. भ. वृ. ९/५६–यद्यपि भावलेश्यासु प्रशस्तास्वेव तिसृष्वपि ज्ञानं लभते तथापि द्रव्यलेश्याः प्रतीत्य षट्स्वपि लेश्यासु लभते सम्यक्त्वश्रुतवत्। यदाह–'सम्मत्त सुयं सव्वासु लहइ त्ति तल्लाभे चासौ षट्स्वपि भवतीत्युच्यत इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भांति वह प्रशस्त लेश्या में ही अवधिज्ञानी हुआ है, उसमें प्रशस्त लेश्या का ही ग्रहण होना चाहिए। उसमें कृष्ण आदि तीन लेश्याएं द्रव्यलेश्या हो सकती हैं, भाव-लेश्या नहीं।[1] श्रुत्वा प्रकरण के लिए द्रष्टव्य ५/९,४-९,९ का भाष्य।

५७. से णं भंते! कतिसु नाणेसु होज्जा?
गोयमा! तिसु वा, चउसु वा होज्जा। तिसु होमाणे आभिणि-बोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा, चउसु होमाणे आभिणि-बोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा॥

स भदन्त! कतिषु ज्ञानेषु भवति?
गौतम! त्रिषु वा, चतुर्षु वा भवति। त्रिषु भवन् आभिनिबोधिकज्ञान - श्रुतज्ञान-अवधिज्ञानेषु, चतुर्षु भवन् आभिनिबोधिक-ज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञानेषु भवति।

५७. भंते! उसमें कितने ज्ञान होते हैं?
गौतम! तीन अथवा चार। तीन होने पर आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। चार होने पर आभिनि-बोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान।

भाष्य

१. सूत्र ५७

अश्रुत्वा पुरुष सम्यक्त्व और चारित्र की उपलब्धि के पश्चात् तत्काल अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है अतः उसे मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। श्रुत्वा पुरुष पहले से ही मुनि दीक्षा में दीक्षित होता है और वह मनःपर्यवज्ञान की उपलब्धि भी कर लेता है। अतः अवधिज्ञान की उत्पत्ति के समय वह चार ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है।[2]

५८. से णं भंते! किं सजोगी होज्जा? अजोगी होज्जा?
गोयमा! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।
जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा? वइजोगी होज्जा? काय-जोगी होज्जा?
गोयमा! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा॥

स भदन्त! किं सयोगी भवति? अयोगी भवति?
गौतम! सयोगी भवति, नो अयोगी भवति।
यदि सयोगी भवति, किं मनोयोगी भवति? वाग्योगी भवति? काययोगी भवति?
गौतम! मनोयोगी वा भवति, वाग्योगी वा भवति, काययोगी वा भवति।

५८. भंते! क्या वह योग सहित होता है? योग रहित होता है?
गौतम! योग सहित होता है, योग रहित नहीं होता।
यदि योग सहित होता है तो क्या मनोयोगी होता है? वचनयोगी होता है? काययोगी होता है?
गौतम! मनोयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होता है, काययोगी भी होता है।

५९. से णं भंते! किं सागारोवउत्ते होज्जा? अणागारोवउत्ते होज्जा?
गोयमा! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा॥

स भदन्त! साकारोपयुक्तः भवति? अनाकारोपयुक्तः भवति?
गौतम! साकारोपयुक्तः वा भवति, अनाकारोपयुक्तः वा भवति।

५९. भंते! क्या वह साकार उपयोग से युक्त होता है? अनाकार उपयोग से युक्त होता है?
गौतम! वह साकार उपयोग से भी युक्त होता है, अनाकार उपयोग से भी युक्त होता है।

६०. से णं भंते! कयरम्मि संघयणे होज्जा?

स भदन्त! कतरे संहनने भवति?

६०. भंते! वह किस संहनन वाला होता है?

---

१. भ. जो. ३ : पृ. ३१ की वार्तिक–इहां वृत्तिकार कह्यु-यद्यपि भावलेश्या विण प्रशस्त नें विषे हीज अवधिज्ञान लहै , तो पिण द्रव्यलेश्या आश्रयी छहुं लेश्या विषे पिण लाभै. सम्यक्त्व श्रुत नीं परै. यदाह- 'समनस्कं सव्वाम् लब्भइ' इति। वलि ते सम्यक्त्व अनें श्रुत ते ज्ञान ए पाम्यें छते छहुं लेश्या नें विषे हुवै इम कहिये इति वृत्तौ।
इहां ए भाव सम्यक्त्व अनें ज्ञान पामैं ते वेलां तीन भली लेश्याहीज हुवै अनें सम्यक्त्व ज्ञान पाय पछै छहुं लेश्या हुवै। तिम अवधिज्ञान उपजै ते वेला तीन भली लेश्या हीज हुवै। ते माटै इहां छ लेश्या कही ते द्रव्य लेश्या आश्रयी संभवै इति।
ते अवधिज्ञान पाया पछै अप्रशस्त वर्ते तेहमें ते अप्रशस्त लेश्या पिण हुवै जे पन्नवणा पद १७ में च्यार ज्ञानी में ६ लेश्या कही। तिहां वृत्तिकार मंद अध्यवसाय रूप कृष्णलेश्या मनपर्यायज्ञानी नें कही। ते भणी माठा अध्यवसाय हुवै ते वेला अशुभ भाव लेश्या कहिये। अनें ए तो केवल सन्मुख छै ते भणी ऊंचो चढै। अवधि पाया पछै तत्काल चढते परिणामे करि केवल पावै. ते भणी असोच्या नीं परै भला अध्यवसाय कह्या अनें माठा वर्ज्या। तेणं करी माठी भाव लेश्या पिण न हुवै, ते माटे द्रव्य छ लेश्या नें विषे अवधि उपजै छै।

२. भ. वृ. ९/५७–मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनोऽवधिजानोत्पन्नौ ज्ञानचतुष्टय-भावाच्चतुर्षु ज्ञानेष्वधिकृतावधिज्ञानी भवेदेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! वइरोसभनारायसंघयणे होज्जा॥

गौतम! वज्रऋषभनाराचसंहनने भवति।

गौतम! वज्रऋषभनाराच संहनन वाला होता है।

६१. से णं भंते! कयरम्मि संठाणे होज्जा?
गोयमा! छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे होज्जा॥

स भदन्त! कतरे संस्थाने भवति?
गौतम! षण्णां संस्थानानाम् अन्यतरे संस्थाने भवति।

६१. भंते! वह किस संस्थान वाला होता है?
गौतम! छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान वाला होता है।

६२. से णं भंते! कयरम्मि उच्चत्ते होज्जा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसतिए होज्जा॥

स भदन्त! कतरे उच्चत्वे भवति?

गौतम! जघन्येन सप्तरत्नौ, उत्कर्षेण पञ्चधनुःशतके भवति।

६२. भंते! वह कितनी ऊंचाई वाला होता है?

गौतम! जघन्यतः सात रत्नी, उत्कृष्टतः पांच सौ धनुष्य की ऊंचाई वाला होता है।

६३. से णं भंते! कयरम्मि आउए होज्जा?
गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगट्ठ-वासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडि-वाउए होज्जा॥

स भदन्त! कतरे आयुष्के भवति?
गौतम! जघन्येन सातिरेकाष्टवर्षायुष्के, उत्कर्षेण पूर्वकोट्यायुष्के भवति।

६३. भंते! वह किस आयु वाला होता है?
गौतम! जघन्यतः कुछ अधिक आठ वर्ष, उत्कृष्टतः पूर्व कोटि आयु वाला होता है।

६४. से णं भंते! किं सवेदए होज्जा? अवेदए होज्जा?
गोयमा! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा।
जइ अवेदए होज्जा किं उवसंतवेदए होज्जा? खीणवेदए होज्जा?
गोयमा! नो उवसंतवेदए होज्जा, खीणवेदए होज्जा।
जइ सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा? पुरिसवेदए होज्जा? पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा?
गोयमा! इत्थीवेदए वा होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए वा होज्जा॥

स भदन्त! किं सवेदकः भवति? अवेदकः भवति?
गौतम! सवेदकः वा भवति, अवेदकः वा भवति।
यदि अवेदकः भवति किम् उपशान्तवेदकः भवति? क्षीणवेदकः भवति?
गौतम! नो उपशान्तवेदकः भवति, क्षीणवेदकः भवति।
यदि सवेदकः भवति किं स्त्रीवेदकः भवति? पुरुषवेदकः भवति? पुरुष-नपुंसकवेदकः भवति?
गौतम! स्त्रीवेदकः वा भवति, पुरुषवेदकः वा भवति, पुरुष-नपुंसकवेदकः वा भवति।

६४. भंते! वह वेद सहित होता है? वेद रहित होता है?
गौतम! वेद सहित भी होता है, वेद रहित भी होता है।
यदि वेद रहित होता है तो उपशान्त वेद वाला होता है, क्षीण वेद वाला होता है?
गौतम! उपशांत वेद वाला नहीं होता, क्षीण वेद वाला होता है।
यदि वेद सहित होता है तो क्या वह स्त्री वेद वाला होता है? पुरुष वेद वाला होता है? पुरुषनपुंसक वेद वाला होता है?
गौतम! स्त्री वेद वाला भी होता है, पुरुष वेद वाला भी होता है, पुरुषनपुंसक वेद वाला भी होता है।

भाष्य

१. सूत्र ६४

अश्रुत्वा पुरुष अवेद अवस्था में अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं करता—यह पूर्व सूत्र (९/४२) में बताया जा चुका है। श्रुत्वा पुरुष वेद को क्षीण कर अवेदक हो जाता है, उस अवस्था में अवधिज्ञान को उपलब्ध कर सकता है।[1]

६५. से णं भंते! किं सकसाई होज्जा? अकसाई होज्जा?
गोयमा! सकसाई वा होज्जा, अकसाई वा होज्जा।
जइ अकसाई होज्जा किं उवसंत-कसाई होज्जा? खीणकसाई होज्जा?

स भदन्त! किं सकषायी भवति? अकषायी भवति?
गौतम! सकषायी वा भवति, अकषायी वा भवति।
यदि अकषायी भवति किम् उपशान्तकषायी भवति? क्षीणकषायी भवति?

६५. भंते! क्या वह कषाय सहित होता है? कषाय रहित होता है?
गौतम! वह कषाय सहित भी होता है, कषाय रहित भी होता है।
यदि कषाय रहित होता है तो क्या उपशांत कषाय वाला होता है, क्षीण कषाय वाला होता है?

---

१. भ. वृ. ९/६४—क्षीणवेदस्य चावधिज्ञानोत्पत्ताववेदकः सन्नयं स्यात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! नो उवसंतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा।
जइ सकसाई होज्जा से णं भंते! कतिसु कसाएसु होज्जा?
गोयमा! चउसु वा तिसु वा दोसु वा एक्क-म्मि वा होज्जा। चउसु होमाणे चउसु–संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा, तिसु होमाणे तिसु–संजलणमाण - माया - लोभेसु होज्जा, दोसु होमाणे दोसु–संजलण-माया-लोभेसु होज्जा, एगम्मि होमाणे एगम्मि–संजलण-लोभे होज्जा॥

गौतम! नो उपशान्तकषायी भवति, क्षीण-कषायी भवति।
यदि सकषायी भवति स भदन्त! कतिषु कषायेषु भवति?
गौतम! चतुर्षु वा त्रिषु वा द्वयोः वा एकस्मिन् वा भवति। चतुर्षु भवन् चतुर्षु–संज्वलन-क्रोध-मान-माया-लोभेषु भवति, त्रिषु भवन् त्रिषु–संज्वलनमान-माया-लोभेषु भवति, द्वयोः भवन् द्वयोः संज्वलनमाया-लोभयोः भवति, एकस्मिन् भवन् एकस्मिन्–संज्वलन-लोभे भवति।

गौतम! उपशांत कषाय वाला नहीं होता। क्षीण कषाय वाला होता है।
भंते! यदि कषाय सहित होता है तो कितने कषायों वाला होता है?
गौतम! चार, तीन, दो अथवा एक कषाय वाला होता है। चार कषाय वाला होने पर चार संज्वलन–क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होता है। तीन कषाय वाला होने पर तीन संज्वलन–मान, माया और लोभ वाला होता है। दो कषाय वाला होने पर दो संज्वलन–माया और लोभ वाला होता है। एक कषाय वाला होने पर एक संज्वलन– लोभ वाला होता है।

भाष्य

१. सूत्र ६५

संज्वलन क्रोध के क्षीण होने पर तीन कषाय, संज्वलन क्रोध और मान के क्षीण होने पर दो कषाय तथा संज्वलन क्रोध, मान और माया के क्षीण होने पर एक कषाय शेष रहता है। इन चारों विकल्पों में अवधिज्ञान की उत्पत्ति हो सकती है।

६६. तस्स णं भंते! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता?
गोयमा! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता॥

तस्य भदन्त! कियन्ति अध्यवसानानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! असंख्येयानि अध्यवसानानि प्रज्ञप्तानि?

६६. भंते! उसमें कितने अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! असंख्येय अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं।

६७. ते णं भंते! किं पसत्था? अप्पसत्था?
गोयमा! पसत्था, नो अप्पसत्था॥

तानि भदन्त! किं प्रशस्तानि? अप्रशस्तानि?
गौतम! प्रशस्तानि, नो अप्रशस्तानि।

६७. भंते! वे अध्यवसान प्रशस्त होते हैं अथवा अप्रशस्त?
गौतम! प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते

६८. से णं भंते! तेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं वट्टमाणेहिं अणंतेहिं नेरइय-भवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं तिरिक्खजोणियभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं मणुस्सभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ। जाओ वि य से इमाओ नेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवगतिनामाओ चत्तारि उत्तरपगडीओ, तासिं च णं ओवग्गहिए अणंताणुबंधी कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता पच्चक्खाणावरणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता संजलणे कोह-

स भदन्त! तैः प्रशस्तैः अध्यवसानैः वर्तमानैः अनन्तेभ्यः नैरयिकभवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः तिर्यग्योनिक-भवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः देवभवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति, अनन्तेभ्यः देवभवग्रहणेभ्यः आत्मानं विसंयोजयति। या अपि च तस्य इमाः नैरयिक-तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवगतिनाम्न्यः चतसः उत्तर-प्रकृतयः तासां च औपग्रहिके अनन्तानुबंधिनः क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा अप्रत्याख्यानकषायान् क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति क्षपयित्वा प्रत्याख्याना-वरणान् क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति, क्षपयित्वा संज्वलान् क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति,

६८. भंते! वह शुक्ल अवधिज्ञानी उन वर्तमान प्रशस्त अध्यवसानों के द्वारा अनन्त नैरयिक जन्मों (भवग्रहण) से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनन्त तिर्यंक जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनंत मनुष्य जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनंत देव जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है। जो ये नैरयिक, तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देव गति नाम की चार उत्तर प्रकृतियां हैं, उनके औपग्रहिक अनन्तानुबंधी–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर अप्रत्याख्यानावरण कषाय–क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर प्रत्याख्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माण-माया-लोभे खवेइ, खवेत्ता पंचविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं दरिसणावरणिज्जं, पंच-विहं अंतराइयं तालमत्थाकडं च णं मोहणिज्जं कट्टु कम्मरयवि-किरणकरं अपुव्वकरणं अणुप-विट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्व-घाए निरावरण कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाण-दंसणे समुप्पज्जइ॥

क्षपयित्वा पञ्चविधं ज्ञानावरणीम्, नवविधं दर्शनावरणीयम्, पञ्चविधम् आन्त-रायिकम्, तालमस्तककृतं च मोहनीयं कृत्वा कर्मरजोविकिरणम् अपूर्वकरणम् अनु-प्रविष्टस्य अनन्तम् अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञान-दर्शनं समुत्पद्यते।

नावरण--क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर संज्वलन--क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर पंचविध ज्ञाना-वरणीय, नवविध दर्शनावरणीय, पंचविध आंतरायिक और मोहनीय को सिर से छिन्न किए हुए तालवृक्ष की भांति क्षीणकर कर्मरज के विकिरणकारक अपूर्वकरण में अनुप्रविष्ट होता है। उसके अनंत, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान-दर्शन समुत्पन्न होता है।

६९. से णं भंते! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्ज वा? पण्णवेज्ज वा? परूवेज्ज वा?
हंता आघवेज्ज वा, पण्णवेज्ज वा, परूवेज्ज वा॥

स भदन्त! केवलिप्रज्ञप्तं धर्ममाख्याति वा? प्रज्ञापयति वा? प्ररूपयति वा?
हन्त आख्याति वा, प्रज्ञापयति वा, प्ररूपयति वा।

६९. भंते! क्या वह श्रुत्वा केवलज्ञानी केवली प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान, प्रज्ञापन अथवा प्ररूपण करता है?
हां, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान भी करता है, प्रज्ञापन भी करता है, प्ररूपण भी करता है।

७०. से णं भंते! पव्वावेज्ज वा? मुंडावेज्ज वा?
हंता पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा॥

स भदन्त! प्रव्राजयति वा? मुण्डयति वा?
हन्त प्रव्राजयति वा, मुण्डयति वा।

७०. भंते! वह प्रव्रज्या देता है? मुंड करता है?
हां, प्रव्रज्या भी देता है, मुंड भी करता है।

७१. से णं भंते! सिज्झति बुज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?
हंता सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स भदन्त! सिद्ध्यति 'बुज्झति' यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति?
हन्त सिद्ध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

७१. भंते! वह सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है?
हां, वह सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

७२. तस्स णं भंते! सिस्सा वि सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति?
हंता सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति॥

तस्य भदन्त! शिष्या अपि सिद्ध्यन्ति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति?
हन्त सिद्ध्यन्ति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति।

७२. भंते! क्या उसके शिष्य सिद्ध होते हैं? यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं?
हां, सिद्ध होते हैं, यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं।

७३. तस्स णं भंते! पसिस्सा वि सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति?
हंता सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति॥

तस्य भदन्त! प्रशिष्या अपि सिद्ध्यन्ति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति?
हन्त सिद्ध्यन्ति यावत् सर्व दुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति।

७३. भंते! क्या उसके प्रशिष्य सिद्ध होते हैं यावत सब दुःखों का अन्त करते हैं?
हां, सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

७४. से णं भंते! किं उड्ढं होज्जा? जहेव असोच्चाए जाव अड्ढाइज्ज-दीवसमुद्द-तदेक्कदेसभाए होज्जा॥

स भदन्त! किम् ऊर्ध्वं भवति? यथैव अश्रुत्वायाः यावत् अर्धतृतीयद्वीपसमुद्र-तदेकदेशभागे भवति।

७४. भंते! क्या वह ऊर्ध्व देश में होता है?
जैसे असोच्चा की वक्तव्यता यावत् संहरण की अपेक्षा अढ़ाई द्वीप समुद्र के एक देश भाग में होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. ते णं भंते! एगसमए णं केवतिया होज्जा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगतिए केवल-नाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

ते भदन्त! एकसमये कियन्तः भवन्ति?

गौतम! जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण अष्टशतम्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–श्रुत्वा केवलिनः वा यावत् तत्पाक्षिक-उपासिकायाः वा अस्त्येककः केवलज्ञानम् उत्पादयेत्, अस्त्येककः केवलज्ञानं नो उत्पादयेत्।

७५. 'भंते! श्रुत्वा केवलज्ञानी एक समय में कितने होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन उत्कृष्टतः एक सौ आठ।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

भाष्य

१. सूत्र ७५

द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि ३६/५१-५२–

दस चेव नपुंसेसु, वीसं इत्थियासु य।
पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई॥
चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य।
सलिंगेण य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई॥

७६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

७६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसइमो उद्देसो : बत्तीसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पासावच्चिज्जगंगेय-पसिण-पदं	**पार्श्वापत्यीयगाङ्गेय-प्रश्न-पदम्**	**पार्श्वापत्यीय गांगेय प्रश्न पद**
७७. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नयरे होत्था–वण्णओ। दूतिपलासए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाणिज्यग्रामः नाम नगरम् आसीत्–वर्णकः। दूतिपलाशकः चैत्यः। स्वामी समवसृतः। पर्षत् निर्गता। धर्मः कथितः। पर्षत् प्रतिगता।	७७. उस काल उस समय वणिकग्राम नामक नगर था–वर्णक। दूतिपलाशक चैत्य। भगवान महावीर आए। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई।
७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे गंगेए नामं अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वदासी–	तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वापत्यीयः गाङ्गेयः नाम अनगारः यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अदूरसामन्तः स्थित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं एवम् अवादीत्–	७८. उस काल उस समय पार्श्वापत्यीय गांगेय नामक अनगार, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, वहां आकर श्रमण भगवान महावीर के न अति दूर और न अति निकट स्थित होकर श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार बोले–

भाष्य

१. सूत्र–७८

पार्श्वापत्यीय गांगेय द्रष्टव्य भ. ५/२५४-२५६ का भाष्य।

संतर-निरंतर-उववज्जणादि -पदं	**सान्तर-निरन्तर-उपपदनादि पदम्**	**सांतर-निरन्तर उपपन्न आदि पद**
७९. संतरं भंते! नेरइया उववज्जंति? निरंतरं नेरइया उववज्जंति? गंगेया! संतरं पि नेरइया उववज्जंति, निरंतरं पि नेरइया उववज्जंति॥	सान्तरं भदन्त! नैरयिकाः उपपद्यन्ते? निरन्तरं नैरयिकाः उपपद्यन्ते? गाङ्गेय! सान्तरमपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते, निरन्तरमपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते।	७९. 'भंते! नैरयिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरन्तर उपपन्न होते हैं? गांगेय! नैरयिक अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं और निरन्तर भी उपपन्न होते हैं।
८०. संतरं भंते! असुरकुमारा उववज्जंति? निरंतरं असुरकुमारा उववज्जंति? गंगेया! संतरं पि असुरकुमारा उववज्जंति, निरंतरं पि असुर-कुमारा उववज्जंति। एवं जाव थणियकुमारा॥	सान्तरं भदन्त! असुरकुमाराः उपपद्यन्ते, निरन्तरम् असुरकुमाराः उपपद्यन्ते? गाङ्गेय! सान्तरमपि असुरकुमाराः उपपद्यन्ते, निरन्तरमपि असुरकुमाराः उपपद्यन्ते। एवं यावत् स्तनितकुमाराः।	८०. भंते! असुरकुमार अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं? गांगेय! असुरकुमार अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं और निरन्तर भी उपपन्न होते हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. संतरं भंते! पुढविक्काइया उववज्जंति? निरंतरं पुढविक्काइया उववज्जंति?
गंगेया! नो संतरं पुढविक्काइया उववज्जंति, निरंतरं पुढविक्काइया उववज्जंति। एवं जाव वणस्सइकाइया। बेइंदिया जाव वेमाणिया एते जहा नेरइया॥

सान्तरं भदन्त! पृथ्वीकायिकाः उपपद्यन्ते? निरन्तरं पृथ्वीकायिकाः उपपद्यन्ते?
गाङ्गेय! नो सान्तरं पृथ्वीकायिकाः उपपद्यन्ते, निरन्तरं पृथ्वीकायिकाः उपपद्यन्ते। एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः। द्वीन्द्रियाः यावत् वैमानिका एते यथा नैरयिकाः।

८१. भंते! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं?
गांगेय! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उपपन्न नहीं होते, निरंतर उपपन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।
द्वीन्द्रिय यावत् वैमानिक नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।

८२. संतरं भंते! नेरइया उव्वट्टंति? निरंतरं नेरइया उव्वट्टंति?
गंगेया! संतरं पि नेरइया उव्वट्टंति, निरंतरं पि नेरइया उव्वट्टंति। एवं जाव थणियकुमारा॥

सान्तरं भदन्त! नैरयिकाः उद्वर्तन्ते? निरन्तरं नैरयिका उद्वर्तन्ते?
गाङ्गेय! सान्तरमपि नैरयिकाः उद्वर्तन्ते, निरंतरमपि नैरयिकाः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् स्तनितकुमाराः।

८२. भंते! नैरयिक अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं?
गांगेय! नैरयिक अंतर-सहित भी उद्वर्तन करते हैं और निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

८३. संतरं भंते! पुढविक्काइया उव्वट्टंति?–पुच्छा।
गंगेया! नो संतरं पुढविक्काइया उव्वट्टंति, निरंतरं पुढविक्काइया उव्वट्टंति। एवं जाव वणस्सइकाइया–नो संतरं, निरंतरं उव्वट्टंति॥

सान्तरं भदन्त! पृथ्वीकायिकाः उद्वर्तन्ते?–पृच्छा।
गाङ्गेय! नो सान्तरं पृथ्वीकायिकाः उद्वर्तन्ते, निरन्तरं पृथ्वीकायिकाः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः–नो सान्तरं, निरन्तरं उद्वर्तन्ते।

८३. भंते! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं?–पृच्छा।
गांगेय! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरंतर उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरन्तर उद्वर्तन करते हैं।

८४. संतरं भंते! बेइंदिया उव्वट्टंति? निरंतरं बेइंदिया उव्वट्टंति?
गंगेया! संतरं पि बेइंदिया उव्वट्टंति, निरंतरं पि बेइंदिया उव्वट्टंति। एवं जाव वाणमंतरा॥

सान्तरं भदन्त! द्वीन्द्रियाः उद्वर्तन्ते? निरन्तरं द्वीन्द्रियाः उद्वर्तन्ते?
गाङ्गेय! सान्तरमपि द्वीन्द्रियाः उद्वर्तन्ते, निरन्तरमपि द्वीन्द्रियाः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् वानमन्तराः।

८४. भंते! द्वीन्द्रिय अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं?
गांगेय! द्वीन्द्रिय अंतर-सहित भी उद्वर्तन करते हैं, निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् वाणमंतर की वक्तव्यता।

८५. संतरं भंते! जोइसिया चयंति?–पुच्छा।
गंगेया! संतरं पि जोइसिया चयंति, निरंतरं पि जोइसिया चयंति। एवं वेमाणिया वि॥

सान्तरं भदन्त! ज्योतिष्काः च्यवन्ते?–पृच्छा।
गाङ्गेय! सान्तरमपि ज्योतिष्काः च्यवन्ते, निरन्तरमपि ज्योतिष्काः च्यवन्ते। एवं वैमानिकाः अपि।

८५. भंते! ज्योतिष्क अंतर-सहित च्युत होते हैं?–पृच्छा।
गांगेय! ज्योतिष्क अंतर-सहित भी च्युत होते हैं और निरंतर भी च्युत होते हैं। इसी प्रकार वैमानिक की वक्तव्यता।

पवेसण-पदं

८६. कतिविहे णं भंते! पवेसणए पण्णत्ते?

गंगेया! चउव्विहे पवेसणए पण्णत्ते, तं जहा–नेरइयपवेसणए, तिरिक्खजोणियपवेसणए, मणुस्सपवेसणए, देवपवेसणए॥

प्रवेशन-पदम्

कतिविधः भदन्त! प्रवेशनकः प्रज्ञप्तः?

गाङ्गेय! चतुर्विधः प्रवेशनकः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–नैरयिकप्रवेशनकः, तिर्यग्योनिक, प्रवेशनकः, मनुष्यप्रवेशनक, देवप्रवेशनकः।

प्रवेशन-पद

८६. भंते! प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! प्रवेशनक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–नैरयिकप्रवेशनक, तिर्यक्योनिक प्रवेशनक, मनुष्यप्रवेशनक और देवप्रवेशनक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ७९-८६

प्रस्तुत आलापक में जीव की उत्पत्ति, उद्वर्तना और गत्यंतर में प्रवेश–इन तीन प्रश्नों पर विचार किया गया है। किसी निर्दिष्ट स्थान पर जीव उत्पन्न होता है, वह उसकी उत्पत्ति है। उस स्थान से मृत्यु या च्युत होने का नाम उद्वर्तना है। मृत्यु के पश्चात् किसी अन्य गति में जाने का नाम प्रवेशन है।[1]

वर्षा का मौसम आता है, चारों तरफ हरियाली फैल जाती है। प्रश्न होता है–एक साथ इतने जीव कहां से आए? और भी अनेक स्थल हैं, जहां चुटकी बजाते ही असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। अनुकूल योग मिलता है और मनुष्य भी जन्म धारण कर लेता है। प्रश्न होता है–क्या आत्माएं घूमती रहती हैं? जहां भी अवसर मिलता है, वहां आकर अपना अधिकार जमा लेती हैं? इन सब प्रश्नों पर उत्तर प्रस्तुत प्रकरण से मिलता है। एकेन्द्रिय के पांच कायों में जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु का क्रम निरंतर चलता है। एक समय भी ऐसा नहीं होता, जिस समय में जीव उत्पन्न और उद्वृत्त न हों, इसीलिए एकेन्द्रिय के पांचों कायों में जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तना निरंतर–अन्तर रहित बतलाई गई है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तना निरंतर नहीं होती। उनके अंतर काल अथवा विरह काल की जानकारी के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना पद ६/१०-५९।

ज्योतिष्क और वैमानिक देव ऊर्ध्व क्षेत्र में रहते हैं इसलिए उनका उद्वर्तन नहीं, च्यवन होता है।

जीव का मृत्यु के उपरांत गत्यंतर में प्रवेश–एक गति से दूसरी गति में प्रवेश होता है। गतियां चार हैं–नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। इसीलिए प्रवेशन के चार प्रकार बतलाए गए हैं –

१. नैरयिक प्रवेशन
२. तिर्यक्योनिक प्रवेशन
३. मनुष्य प्रवेशन
४. देव प्रवेशन

उत्तरवर्ती सूत्रों में प्रवेशन के सहस्राधिक विकल्प किए गए हैं।

८७. नेरइयपवेसणए णं भंते! कति-विहे पण्णत्ते?
गंगेया! सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणए।।

नैरयिकप्रवेशनकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गाङ्गेय! सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–रत्नप्रभा पृथिवीनैरयिकप्रवेशनकः यावत् अधः सप्तमी पृथिवीनैरयिकप्रवेशनकः।

८७. भंते! नैरयिक प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गांगेय! सात प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकप्रवेशनक यावत् अधःसप्तमीपृथ्वीनैरयिकप्रवेशनक।

८८. एगे भंते! नेरइए नेरइयपवेसण-एणं पविसमाणे किं रयणप्पभाए होज्जा, सक्करप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।।

एकः भदन्त! नैरयिकः नैरयिक-प्रवेशनकेन प्रविशन् किं रत्नप्रभायां भवति, शर्कराप्रभायां भवति यावत् अधःसप्तम्यां भवति?
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवति।

८८. [1]भंते! एक नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करता हुआ क्या रत्नप्रभा में होता है? शर्कराप्रभा में होता है? यावत् अधःसप्तमी में होता है?
गांगेय! रत्नप्रभा में होता है यावत् अधःसप्तमी में होता है।

८९. दो भंते! नेरइया नेरइय-पवेसणएणं पविसमाणा किं रयण-प्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा जाव एगे रयणप्पभाए एगे अहेस-त्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे

द्वौ भदन्त! नैरयिकौ नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तौ किं रत्नप्रभायां भवतः यावत् अधःसप्तम्यां भवतः?
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवतः यावत् अधःसप्तम्यां वा भवतः।
अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां भवति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुका-प्रभायां भवति यावत् एकः रत्नप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति।
अथवा एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः

८९. भंते! दो नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं? यावत् अधःसप्तमी में होते हैं?
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है, अथवा एक रत्नप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में होता है यावत् एक रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक

---

१. भ. वृ. ९/७९-८२–संतरंति समयादिकालापेक्षया सविच्छेदं, तत्र चैकेन्द्रियाणामनुसमयमुत्पादात् निरन्तरत्वमन्येषां तूत्पादे विरहस्यापि भावात् सांतरत्वं निरंतरत्वं च वाच्यमिति। उत्पन्नानां च सतामुद्वर्तना भवति.....उद्वृत्तानां च केषाञ्चिद् गत्यन्तरे प्रवेशनं भवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। एवं एक्केका पुढवी छड्डेयव्वा जाव अहवा एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

वालुकाप्रभायां भवति यावत् अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुका-प्रभायां भवति। यावत् अथवा एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति। अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंकप्रभायां भवति. एवं यावत् अथवा एकः वालुका-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति। एवम् एकैका पृथिवी छर्दितव्या यावत् अथवा एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति।

शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है यावत अथवा एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है अथवा एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है, इस प्रकार यावत् अथवा एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। इस प्रकार एक-एक पृथ्वी को छोड़ देना चाहिए यावत अथवा एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता हैं।

९०. तिण्णि भंते! नेरइया नेरइय-पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?

गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्कर-प्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्कर-प्पभाए होज्जा जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे सक्करप्पभाए दो वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा दो सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा दो सक्कर-प्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, एवं जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया, तहा सव्वपुढवीणं भाणियव्वं जाव अहवा दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे

त्रयः भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां भवन्ति?

गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां भवतः यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवतः।

अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् भवति यावत् द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति।

अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् द्वौ वालुका-प्रभायां भवतः यावत् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवतः।

अथवा द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः वालुका-प्रभायां भवति यावत् अथवा द्वौ शर्करा-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति, एवं यथा शर्कराप्रभायां वक्तव्यता भणिता, तथा सर्वपृथिवीनां भणितव्यं यावत् अथवा द्वौ तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंकप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्न-प्रभायाम् एकः वालुका-प्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां एकः वालुका-

९०. भंते! तीन नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अधःसप्तमी में होते हैं?

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और दो शर्करा-प्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा दो रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा दो शर्कराप्रभा में और एक वालुका प्रभा में होता है, यावत् अथवा दो शर्करा प्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। इस प्रकार जैसे शर्कराप्रभा की वक्तव्यता है, वैसे ही सब पृथ्वियों की वक्तव्यता यावत् अथवा दो तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है, इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालुयप्पभाए एगे अहे-सत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्कप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुय-प्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहे-सत्तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे पंकप्प-भाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्त-माए होज्जा, अहवा एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहसत्तमाए होज्जा॥ अहवा एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्न-प्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति. अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधः-सप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंक-प्रभायां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति, यावत् अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पंक-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः तमायाम् एक अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति, अथवा एक वालुका-प्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः वालुका-प्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः अधः-सप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः वालुका-प्रभायाम् एकः धूम-प्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः वालुका-प्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्या भवन्ति, अथवा एकः पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति. अथवा एकः पंकप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधः-सप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति,

में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है: अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता हैं अथवा एक रत्नप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है, अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक धूमप्रभा में एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ८८-९०

तीन जीवों के एक सांयोगिक भंग-७

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	३						
२		३					
३			३				
४				३			
५					३		
६						३	
७							३

तीन जीवों के द्वि सांयोगिक

विकल्प २, भंग-४२

रत्नप्रभा के विकल्प २, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	२					
२	१		२				
३	१			२			
४	१				२		
५	१					२	
६	१						२

७	२	१					
८	२		१				
९	२			१			
१०	२				१		
११	२					१	
१२	२						१

शर्कराप्रभा के विकल्प २, भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	२				
२		१		२			
३		१			२		
४		१				२	
५		१					२

६		२	१				
७		२		१			
८		२			१		
९		२				१	
१०		२					१

वालुकाप्रभा के विकल्प २, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	२			
२			१		२		
३			१			२	
४			१				२

५			२	१			
६			२		१		
७			२			१	
८			२				१

पंकप्रभा के विकल्प २, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	२		
२				१		२	
३				१			२

४				२	१		
५				२		१	
६				२			१

धूमप्रभा के विकल्प २, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	२	
२					१		२

३					२	१	
४					२		१

तमप्रभा के विकल्प २, भंग २

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१						१	२

२						२	१

तीन जीवों के त्रि सांयोगिक भंग ३५

रत्नप्रभा के भंग १५

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१	१				
२	१	१		१			
३	१	१			१		
४	१	१				१	
५	१	१					१

६	१		१	१			
७	१		१		१		
८	१		१			१	
९	१		१				१

१०	१			१	१		
११	१			१		१	
१२	१			१			१

१३	१				१	१	
१४	१				१		१

१५	१					१	१

शर्कराप्रभा के भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	१			
२		१	१		१		
३		१	१			१	
४		१	१				१

५		१		१	१		
६		१		१		१	
७		१		१			१

८		१			१	१	
९		१			१		१

१०		१				१	१

वालुकाप्रभा के भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	१		
२			१	१		१	
३			१	१			१

४			१		१	१	
५			१		१		१

६			१			१	१

पंक-धूमप्रभा के भंग २

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	१	१	
२				१	१		१

पंक-तमप्रभा का भंग १

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१		१	१

धूम-तमप्रभा का भंग १

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	१	१

इस प्रकार तीन जीवों के एक सांयोगिक भंग ७, द्वि-सांयोगिक भंग ४२, त्रि-सांयोगिक भंग ३५, सर्व भंग–८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१. चत्तारि भंते! नेरइया नेरइयपवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्प-भाए होज्जा?—पुच्छा।
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्करप्पभाए तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जहेव रयणप्पभाए उवरिमाहिं समं चारियं तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाहिं समं चारेयव्वं, एवं एक्केक्काए समं चारेयव्वं जाव अहवा तिण्णि तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

चत्वारः भदन्त! नैरयिकाः नैरयिक-प्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।
अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः वालुकाप्रभायां भवन्ति. एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां भवतः, एवं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवतः। अथवा त्रयः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा त्रयः रत्नप्रभायां एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्कराप्रभायां त्रयः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यथैव रत्नप्रभायाम् उपरितनैः समं चारितं तथा शर्कराप्रभायाम् अपि उपरितनैः समं चारयितव्यम्, एवम् एकैकया समं चारयितव्यं यावत् अथवा त्रयः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

९१. भंते! चार नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं? पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की, वैसे ही शर्कराप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक पृथ्वी के साथ विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा तीन तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए दो वालुयप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए दो पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे अहेसतमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए दो पंकप्पभाए होज्जा जाव

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ वालुकाप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां द्वौ पङ्कप्रभायाम् भवन्ति यावत् अथवा एकः

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में होते हैं अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। यावत् अथवा एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। एवं एएणं गमएणं जहा तिण्हं तियासंजोगो तहा भाणियव्वो जाव अहवा दो धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवन्ति। एवम् एतेन गमकेन यथा त्रयाणां त्रिकसंयोगः तथा भणितव्यः यावत् अथवा द्वौ धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां एकः धूमप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति अथवा

रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार इस गमक से जैसे तीन नैरयिकों के त्रि-संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही चार नैरयिकों का त्रि-संयोगज भंग वक्तव्य है यावत् अथवा दो धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, और एक अधःसप्तमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा। एवं जहा रयणप्पभाए उवरिमाओ पुढवीओ चारियाओ तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाओ चारियव्वाओ जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

एकः रत्नप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एक अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति। एवं यथा रत्नप्रभायाम् उपरितनाः पृथिव्यः चारिताः तथा शर्कराप्रभया अपि उपरितनाः चारयितव्याः यावत् अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है, अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुका-प्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की है, वैसे ही शर्कराप्रभा के साथ ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों की विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है, अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होना है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

भाष्य

१. सूत्र ९१

चार जीवों के एक सांयोगिक भंग-७

	र	स	वा	पं	धू	त	अधः
१	४						
२		४					
३			४				
४				४			
५					४		
६						४	
७							४

चार जीवों के द्वि सांयोगिक विकल्प ३, भंग ६३
रत्नप्रभा के विकल्प ३, भंग १८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	३					
२	१		३				
३	१			३			
४	१				३		
५	१					३	
६	१						३

७	२	२					
८	२		२				
९	२			२			
१०	२				२		
११	२					२	
१२	२						२
१३	३	१					
१४	३		१				
१५	३			१			
१६	३				१		
१७	३					१	
१८	३						१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शर्कराप्रभा के विकल्प ३, भंग १५

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	२				
२		१		२			
३		१			२		
४		१				२	
५		१					२
६		२	१				
७		२		१			
८		२			१		
९		२				१	
१०		२					१
११		३	१				
१२		३		१			
१३		३			१		
१४		३				१	
१५		३					१

वालुकाप्रभा के विकल्प ३, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	२			
२			१		२		
३			१			२	
४			१				२
५			२	१			
६			२		१		
७			२			१	
८			२				१
९			३	१			
१०			३		१		
११			३			१	
१२			३				१

पंकप्रभा के विकल्प ३, भंग ९

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	२		
२				१		२	
३				१			२
४				२	१		
५				२		१	
६				२			१
७				३	१		
८				३		१	
९				३			१

धूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	२	
२					१		२
३					२	१	
४					२		१
५					३	१	
६					३		१

तमःप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१						१	२
२						२	१
३						३	१

चार जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प ३, भंग १०५

रत्न-शर्कराप्रभा के विकल्प ३, भंग १५

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१	२				
२	१	१		२			
३	१	१			२		
४	१	१				२	
५	१	१					२
६	१	२	१				
७	१	२		१			
८	१	२			१		
९	१	२				१	
१०	१	२					१
११	२	१	१				
१२	२	१		१			
१३	२	१			१		
१४	२	१				१	
१५	२	१					१

रत्न-वालुकाप्रभा के विकल्प ३, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१		१	२			
२	१		१		२		
३	१		१			२	
४	१		१				२
५	१		२	१			
६	१		२		१		
७	१		२			१	
८	१		२				१
९	२		१	१			
१०	२		१		१		
११	२		१			१	
१२	२		१				१

रत्न-पंकप्रभा के विकल्प ३, भंग ९

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१			१	२		
२	१			१		२	
३	१			१			२
४	१			२	१		
५	१			२		१	
६	१			२			१
७	२			१	१		
८	२			१		१	
९	२			१			१

रत्न-धूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१				१	२	
२	१				१		२
३	१				२	१	
४	१				२		१
५	२				१	१	
६	२				१		१

रत्न-तमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१					१	२
२	१					२	१
३	२					१	१

शर्करा-वालुकाप्रभा के विकल्प ३, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	२			
२		१	१		२		
३		१	१			२	
४		१	१				२
५		१	२	१			
६		१	२		१		
७		१	२			१	
८		१	२				१
९		२	१	१			
१०		२	१		१		
११		२	१			१	
१२		२	१				१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शर्करा-पंकप्रभा के विकल्प ३, भंग ९

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१		१	२		
२		१		१		२	
३		१		१			२

४		१		२	१		
५		१		२		१	
६		१		२			१

७		२		१	१		
८		२		१		१	
९		२		१			१

शर्करा-धूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१			१	२	
२		१			१		२

३		१			२	१	
४		१			२		१

५		२			१	१	
६		२			१		१

शर्करा-तमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१				१	२

२		१				२	१

३		२				१	१

वालुका-पंकप्रभा के विकल्प ३, भंग ९

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	२		
२			१	१		२	
३			१	१			२

४			१	२	१		
५			१	२		१	
६			१	२			१

७			२	१	१		
८			२	१		१	
९			२	१			१

वालुका-धूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१		१	२	
२			१		१		२

३			१		२	१	
४			१		२		१

५			२		१	१	
६			२		१		१

वालुका-तमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१			१	२

२			१			२	१

३			२			१	१

पंकधूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	१	२	
२				१	१		२

३				१	२	१	
४				१	२		१

५				२	१	१	
६				२	१		१

पंक-तमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

१				१		१	२

२				१		२	१

३				२		१	१

धूमप्रभा के विकल्प ३, भंग ३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	१	२

२					१	२	१

३					२	१	१

चार जीवों के चतुष्क-सांयोगिक भंग ३५,

रत्नप्रभा के भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१	१	१			
२	१	१	१		१		
३	१	१	१			१	
४	१	१	१				१

५	१	१		१	१		
६	१	१		१		१	
७	१	१		१			१

८	१	१			१	१	
९	१	१			१		१

१०	१	१				१	१

११	१		१	१	१		
१२	१		१	१		१	
१३	१		१	१			१

१४	१		१		१	१	
१५	१		१		१		१

१६	१		१			१	१

१७	१			१	१	१	
१८	१			१	१		१

१९	१			१		१	१

२०	१				१	१	१

शर्करा-प्रभा के भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	१	१		
२		१	१	१		१	
३		१	१	१			१

४		१	१		१	१	
५		१	१		१		१

६		१	१			१	१

७		१		१	१	१	
८		१		१	१		१

९		१		१		१	१

१०		१			१	१	१

वालुकाप्रभा के भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	१	१	
२			१	१	१		१

३	१		१	१		१	१

४			१		१	१	१

पंक प्रभा के भंग १

१				१	१	१	१

चार जीवों के चतुष्कसांयोगिक भंग–रत्नप्रभा २०, शर्कराप्रभा १०, वालुकाप्रभा ४, पंकप्रभा १, सर्वभंग–३५

चार जीवों का एक सांयोगिक–७, द्विसांयोगिक–६३, त्रिसांयोगिक–१०५, चतुष्कसांयोगिक–३५, सर्वभंग–२१०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. पंच भंते! नेरइया नेरइय-प्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयप्पभाए होज्जा?—पुच्छा।

गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए चत्तारि अहेसत्त-माए होज्जा। अहवा दो रयणप्प-भाए तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए दोण्णि सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा चत्तारि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा चत्तारि रयणप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे सक्करप्पभाए चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा। एवं जहा रयणप्पभाए समं उवरिम-पुढवीओ चारियाओ तहा सक्कर-प्पभाए वि समं चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। एवं एक्के-क्काए समं चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए दो वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्कर-प्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्कर-प्पभाए दो वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि सक्करप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि सक्कर-प्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए दो सक्कर-प्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहेसत्तमाए। अहवा

पञ्च भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।

गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायां चत्वारः शर्करा-प्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्न-प्रभायां चत्वारः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायां त्रयः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा त्रयः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा चत्वारः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् भवन्ति, एवं यावत् अथवा चत्वारः रत्नप्रभायां एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्करा-प्रभायां चत्वारः वालुकाप्रभायां भवन्ति। एवं यथा रत्नप्रभया समं उपरितनपृथिव्यः चारिताः तथा शर्कराप्रभया अपि समं चारयितव्या यावत् अथवा चत्वारः शर्करा-प्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। एवम् एकैकया समं चारयितव्याः यावत् अथवा चत्वारः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां त्रयः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां त्रयः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां द्वौ वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां द्वौ अधः सप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् भवन्ति, एवं यावत् अधःसप्तम्याम्। अथवा त्रयः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा

९२. [1]भंते! क्या पांच नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए रत्नप्रभा में होते हैं? पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते है। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा चार रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा चार रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की गई है, वैसे ही शर्कराप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। इस प्रकार प्रत्येक ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ यह विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा चार तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में होते है। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए तिण्णि पंकप्प-भाए होज्जा। एवं एएणं कमेणं जहा चउण्हं तियासंजोगो भणितो तहा पंचण्ह वि तियासंजोगो भणियव्वो, नवरं—तत्थ एगो संचारिज्जइ, इह दोण्णि, सेसं तं चेव जाव अहवा तिण्णि धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्कर-प्पभाए एगे वालुयप्पभाए दो पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए दो अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए दो वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहेसत्तमाए। अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्कर-प्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए होज्जा जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए दो धूमप्पभाए होज्जा, एवं जहा चउण्हं चउक्कसंजोगो भणिओ तहा पंचण्ह वि चउक्कसंजोगो भाणियव्वो नवरं—अब्भहियं एगो संचारेयव्वो, एवं जाव अहवा दो पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे

त्रयः रत्नप्रभायां एकः शर्कराप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां त्रयः पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवम् एतेन क्रमेण यथा चतुर्णां त्रिकसंयोगः भणितः तथा पञ्चानाम् अपि त्रिकसंयोगः भणितव्यः, नवरम्—तत्र एकः संचार्यते इह द्वौ, शेषं तच्चैव यावत् अथवा त्रयः धूमप्रभायाम् एकः तमायां एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् द्वौ पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां द्वौ वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अधःसप्तम्याम्। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्न-प्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः अधः सप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां द्वौ धूमप्रभायां भवन्ति, एवं यथा यावत् चतुर्णां चतुष्कसंयोगः भणितः तथा पञ्चानाम् अपि चतुष्कसंयोगः भणितव्यः नवरम्—अभ्यधिकम् एकः संचारयितव्यः, एवं यावत् अथवा द्वौ पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधः-सप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायां यावत् एकः पंकप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः

अधःसप्तमी में होता है। अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है—इस प्रकार यावत् अधःसप्तमी में होता है। अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और तीन पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे चार नैरयिकों के त्रि-संयोगज भंग किए हैं, वैसे ही पांच नैरयिकों के त्रि-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—जैसे चतुःसंयोगज भंग एक से संचारित होता है वैसे यहां पंच संयोगज भंग दो से संचारित होगा, शेष पूर्ववत् यावत् अथवा तीन धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसतमी में होता है। अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है, यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और दो धूमप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे चार नैरयिकों के चतुष्क संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही पांच नैरयिकों के चतुष्क-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक अधिक संचारणीय है। इस प्रकार यावत् अथवा दो पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणप्पभाए जाव एगे पंकप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्प-भाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहे-सत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण-प्पभाए एगे पंकप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए जाव एगे पंकप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए जाव एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए एगे तमाए

रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति. अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एक शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पंकप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति. अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति. अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां यावत् एकः

में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में यावत् एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक तमा में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

भाष्य

१. सूत्र ९२

पांच जीवों के एक सांयोगिक भंग-७

	र	स	वा	पं	धू	त	अधः
१	५						
२		५					
३			५				
४				५			
५					५		
६						५	
७							५

पांच जीवों के द्वि सांयोगिक विकल्प-४, भंग-८४

रत्नप्रभा के विकल्प ४, भंग २४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	४					
२	१		४				
३	१			४			
४	१				४		
५	१					४	
६	१						४

७	२	३					
८	२		३				
९	२			३			
१०	२				३		
११	२					३	
१२	२						३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१३	३	२					
१४	३		२				
१५	३			२			
१६	३				२		
१७	३					२	
१८	३						२

१९	४	१					
२०	४		१				
२१	४			१			
२२	४				१		
२३	४					१	
२४	४						१

शर्कराप्रभा के विकल्प ४, भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	४				
२		१		४			
३		१			४		
४		१				४	
५		१					४

६		२	३				
७		२		३			
८		२			३		
९		२				३	
१०		२					३

११		३	२				
१२		३		२			
१३		३			२		
१४		३				२	
१५		३					२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१६		४	१				
१७		४		१			
१८		४			१		
१९		४				१	
२०		४					१

वालुकाप्रभा के विकल्प ४, भंग १६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	४			
२			१		४		
३			१			४	
४			१				४

५			२	३			
६			२		३		
७			२			३	
८			२				३

९			३	२			
१०			३		२		
११			३			२	
१२			३				२

१३			४	१			
१४			४		१		
१५			४			१	
१६			४				१

पंकप्रभा के विकल्प ४, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	४		
२				१		४	
३				१			४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
४				२	३		
५				२		३	
६				२			३
७				३	२		
८				३		२	
९				३			२
१०				४	१		
११				४		१	
१२				४			१

धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१					१	४	
२					१		४
३					२	३	
४					२		३
५					३	२	
६					३		२
७					४	१	
८					४		१

तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१						१	४
२						२	३
३						३	२
४						४	१

इस प्रकार पांच जीवों के द्वि-सांयोगिक भंग–रत्नप्रभा-२४, शर्कराप्रभा-२०, वालुकाप्रभा-१६, पंकप्रभा-१२, धूमप्रभा-८, तमप्रभा-४, सर्व भंग–८४।

पांचों जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प-६, भंग-२१०

रत्न-शर्कराप्रभा के विकल्प-६, भंग-३०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१	१	३				
२	१	१		३			
३	१	१			३		
४	१	१				३	
५	१	१					३

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
६	१	२	२				
७	१	२		२			
८	१	२			२		
९	१	२				२	
१०	१	२					२
११	२	१	२				
१२	२	१		२			
१३	२	१			२		
१४	२	१				२	
१५	२	१					२
१६	१	३	१				
१७	१	३		१			
१८	१	३			१		
१९	१	३				१	
२०	१	३					१
२१	२	२	१				
२२	२	२		१			
२३	२	२			१		
२४	२	२				१	
२५	२	२					१
२६	३	१	१				
२७	३	१		१			
२८	३	१			१		
२९	३	१				१	
३०	३	१					१

रत्न-वालुकाप्रभा के विकल्प ६, भंग २४

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१		१	३			
२	१		१		३		
३	१		१			३	
४	१		१				३
५	१		२	२			
६	१		२		२		
७	१		२			२	
८	१		२				२
९	२		१	२			
१०	२		१		२		
११	२		१			२	
१२	२		१				२
१३	१		३	१			
१४	१		३		१		
१५	१		३			१	
१६	१		३				१

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१७	२		२	१			
१८	२		२		१		
१९	२		२			१	
२०	२		२				१
२१	३		१	१			
२२	३		१		१		
२३	३		१			१	
२४	३		१				१

रत्न-पंकप्रभा के विकल्प ६, भंग १८

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१			१	२		
२	१			१		२	
३	१			१			२
४	१			२	१		
५	१			२		१	
६	१			२			१
७	१			१	२		
८	१			१		२	
९	१			१			२
१०	१			३	१		
११	१			३		१	
१२	१			३			१
१३	२			२	१		
१४	२			२		१	
१५	२			२			१
१६	३			१	१		
१७	३			१		१	
१८	३			१			१

रत्न-धूमप्रभा के विकल्प ६, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१				१	३	
२	१				१		३
३	१				२	२	
४	१				२		२
५	२				१	२	
६	२				१		२
७	१				३	१	
८	१				३		१
९	२				२	१	
१०	२				२		१
११	३				१	१	
१२	३				१		१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नप्रभा के विकल्प ६, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१					१	३
२	१					२	२
३	२					१	२
४	१					३	१
५	२					२	१
६	३					१	१

शर्कराप्रभा के विकल्प ६, भंग ६०

शर्करा-वालुकाप्रभा के विकल्प ६, भंग २४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	२			
२		१	१		२		
३		१	१			३	
४		१	१				३
५		१	२	२			
६		१	२		२		
७		१	२			२	
८		१	२				२
९		२	१	२			
१०		२	१		२		
११		२	१			२	
१२		२	१				२
१३		१	३	१			
१४		१	३		१		
१५		१	३			१	
१६		१	३				१
१७		२	२	१			
१८		२	२		१		
१९		२	२			१	
२०		२	२				१
२१		३	१	१			
२२		३	१		१		
२३		३	१			१	
२४		३	१				१

शर्करा-पंकप्रभा के विकल्प ६, भंग १८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१		१	२		
२		१		१		२	
३		१		१			२
४		२		१	२		
५		२		१		२	
६		२		१			२
७		२		२	१		
८		२		२		१	
९		२		२			१
१०		३		१	१		
११		३		१		१	
१२		३		१			१
१३		१	१	१			
१४		१	१		१		
१५		१	१			१	
१६		१	२	१			
१७		१	२		१		
१८		१	२			१	

शर्करा-धूमप्रभा के विकल्प ६, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१			१	३	
२		१			१		३
३		१			२	२	
४		१			२		२
५		२			१	२	
६		२			१		२
७		१			३	१	
८		१			३		१
९		२			२	१	
१०		२			२		१
११		३			१	१	
१२		३			१		१

शर्करा-तमप्रभा के विकल्प ६, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१				१	३
२		१				२	२
३		२				१	२
४		१				३	१
५		२				२	१
६		३				१	१

वालका-पंकप्रभा के विकल्प ६, भंग १८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	३		
२			१	१		३	
३			१	१			३
४			१	२	२		
५			१	२		२	
६			१	२			२
७			२	१	२		
८			२	१		२	
९			२	१			२
१०			१	३	१		
११			१	३		१	
१२			१	३			१
१३			२	२	१		
१४			२	२		१	
१५			२	२			१
१६			३	१	१		
१७			३	१		१	
१८			३	१			१

वालुका-धूमप्रभा के विकल्प ६, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१		१	३	
२			१		१		३
३			१		२	२	
४			१		२		२
५			२		१	२	
६			२		१		२
७			१		३	१	
८			१		३		१
९			२		२	१	
१०			२		२		१
११			३		१	१	
१२			३		१		१

शर्करा-तमप्रभा के विकल्प ६, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१			१	३
२			१			२	२
३			२			१	२
४			१			३	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
५			२			२	१
६			३			१	१

पंक-धूमप्रभा के विकल्प ६, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	१	३	
२				१	१		३
३				१	२	२	
४				१	२		२
५				२	१	२	
६				२	१		२
७				१	३	१	
८				१	३		१
९				२	२	१	
१०				२	२		१
११				३	१	१	
१२				३	१		१

पंक-तमप्रभा के विकल्प ६, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१		१	३
२				१		२	२
३				२		१	२
४				१		३	१
५				२		२	१
६				३		१	१

धूमप्रभा के विकल्प ६, भंग ६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	१	३
२					१	२	२
३					२	१	२
४					१	३	१
५					२	२	१
६					३	१	१

इस प्रकार पांच जीवों त्रि-सांयोगिक भंग–रत्नप्रभा ९०, शर्कराप्रभा ६०, वालुकाप्रभा ३६, पंकप्रभा १८, धूमप्रभा-६, सर्वभंग–२१०

पांच जीवों के चतुष्क-सांयोगिक विकल्प-४, भंग-१४०

रत्न-शर्करा-वालुकाप्रभा के विकल्प ४, भंग १६

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१	१	२			
२	१	१	१		२		
३	१	१	१			२	
४	१	१	१				२
५	१	१	२	१			
६	१	१	२		१		
७	१	१	२			१	
८	१	१	२				१
९	१	२	१	१			
१०	१	२	१		१		
११	१	२	१			१	
१२	१	२	१				१
१३	२	१	१	१			
१४	२	१	१		१		
१५	२	१	१			१	
१६	२	१	१				१

रत्न-शर्करा-पंकप्रभा के विकल्प ४, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१		१	२		
२	१	१		१		२	
३	१	१		१			२
४	१	१		२	१		
५	१	१		२		१	
६	१	१		२			१
७	१	२		१	१		
८	१	२		१		१	
९	१	२		१			१
१०	२	१		१	१		
११	२	१		१		१	
१२	२	१		१			१

रत्न शर्करा-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१			१	२	
२	१	१			१		२
३	१	१			२	१	
४	१	१			२		१
५	१	२			१	१	
६	१	२			१		१
७	२	१			१	१	
८	२	१			१		१

रत्न-शर्करा-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१				१	२
२	१	१				२	१
३	१	२				१	१
४	२	१				१	१

रत्न-वालुका-पंकप्रभा के विकल्प ४, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१		१	१	२		
२	१		१	१		२	
३	१		१	१			२
४	१		१	२	१		
५	१		१	२		१	
६	१		१	२			१
७	१		२	१	१		
८	१		२	१		१	
९	१		२	१			१
१०	२		१	१	१		
११	२		१	१		१	
१२	२		१	१			१

रत्न-वालुका-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१		१		१	२	
२	१		१		१		२
३	१		१		२	१	
४	१		१		२		१
५	१		२		१	१	
६	१		२		१		१
७	२		१		१	१	
८	२		१		१		१

रत्न-वालुका-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१		१			१	२
२	१		१			२	१
३	१		२			१	१
४	२		१			१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्न-पंक-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१			१	१	२	
२	१			१	१		२
३	१			१	२	१	
४	१			१	२		१
५	१			२	१	१	
६	१			२	१		१
७	२			१	१	१	
८	२			१	१		१

रत्न-पंक-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१			१		१	२
२	१			१		२	१
३	१			२		१	१
४	२			१		१	१

रत्न-धूम-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१				१	१	२
२	१				१	२	१
३	१				२	१	१
४	२				१	१	१

शर्कराः-वालुका-पंकप्रभा के विकल्प ४, भंग १२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	१	२		
२		१	१	१		२	
३		१	१	१			२
४		१	१	२	१		
५		१	१	२		१	
६		१	१	२			१
७		१	२	१	१		
८		१	२	१		१	
९		१	२	१			१
१०		२	१	१	१		
११		२	१	१		१	
१२		२	१	१			१

शर्कराः-वालुका-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१		१	२	
२		१	१		१		२
३		१	१		२	१	
४		१	१		२		१
५		१	२		१	१	
६		१	२		१		१
७		२	१		१	१	
८		२	१		१		१

शर्कराः-वालुका-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१			१	२
२		१	१			२	१
३		१	२			१	१
४		२	१			१	१

शर्कराः-पंक-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१		१	१	२	
२		१		१	१		२
३		१		१	२	१	
४		१		१	२		१
५		१		२	१	१	
६		१		२	१		१
७		२		१	१	१	
८		२		१	१		१

शर्कराः-पंक-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१		१		१	२
२		१		१		२	१
३		१		२		१	१
४		२		१		१	१

शर्कराः-धूम-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१			१	१	२
२		१			१	२	१
३		१			२	१	१
४		२			१	१	१

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
३		१			२	१	१
४		२			१	१	१

वालुका-पंक-धूमप्रभा के विकल्प ४, भंग ८

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	१	२	
२			१	१	१		२
३			१	१	२	१	
४			१	१	२		१
५			१	२	१	१	
६			१	२	१		१
७			२	१	१	१	
८			२	१	१		१

वालुका-पंक-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१		१	२
२			१	१		२	१
३			१	२		१	१
४			२	१		१	१

वालुका-धूम-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१		१	१	२
२			१		१	२	१
३			१		२	१	१
४			२		१	१	१

पंक-धूम-तमप्रभा के विकल्प ४, भंग ४

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	१	१	२
२				१	१	२	१
३				१	२	१	१
४				२	१	१	१

इस प्रकार पांच जीवों के चतुष्क-सांयोगिक भंग—रत्नप्रभा-८०, शर्कराप्रभा-४०, वालुकाप्रभा-१६, पंकप्रभा-४—कुल भंग १४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. छब्भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा।

गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए पंच सक्करप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए पंच वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयण-प्पभाए पंच अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा जाव अहवा दो रयणप्पभाए चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए तिण्णि सक्करप्पभाए। एवं एएणं कमेणं जहा पचण्हं दुयासंजोगो तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवरं—एक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव अहवा पंच तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए चत्तारि वालुय-प्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयण-प्पभाए एगे सक्करप्पभाए चत्तारि पंकप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्कर-प्पपभाए चत्तारि अहेसत्तामाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा। एवं एएणं कमेणं जहा पंचण्हं तियासंजोगो भणिओ तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवरं—एक्को अहिओ उच्चारेयव्वो, सेसं तं चेव। चउक्कसंजोगो वि तहेव, पंचग-संजोगो वि तहेव, नवरं—एक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव पच्छिमो भंगो, अहवा दो वालुय-प्पभाए एगे पंकप्पभाए एगे धूम-प्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए जाव एगे तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए जाव एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्त-माए होज्जा, अहवा एगे रयण-प्पभाए जाव एगे पंकप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः वालुकाप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

षड् भदन्त नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति? —पृच्छा।

गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायां पञ्च शर्कराप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायां पञ्च वालुकाप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां पञ्च अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायां चत्वारः शर्कराप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायां चत्वारः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा त्रयः रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायाम् एवम् एतेन क्रमेण यथा पञ्चानाम् द्विकसंयोगः तथा षण्णाम् अपि भणितव्यः, नवरम्—एकः अभ्यधिकः संचारयितव्यः यावत् अथवा पञ्च तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां चत्वारः वालुकाप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां चत्वारः पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां चत्वारः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्करा-प्रभायां त्रयः वालुकाप्रभायां भवन्ति। एवम् एतेन क्रमेण यथा पञ्चानाम् त्रिकसंयोगः भणितः तथा षण्णाम् अपि भणितव्यः नवरम्-एकः अधिकः उच्चारयितव्यः, शेषं तत् चैव। चतुष्कसंयोगः अपि तथैव, पञ्चकसंयोगः अपि तथैव, नवरम्-एकः अभ्यधिकः संचारयितव्यः यावत् पश्चिमः भंगः, अथवा द्वौ वालुकाप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः धूमप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः तमायां भवन्ति अथवा एकः रत्नप्रभायां यावत् एकः धूमप्रभायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायां यावत् एकः पङ्कप्रभायाम् एकः तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः

९३. [1]भंते! छह नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच शर्कराप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् एक रत्नप्रभा में और पांच अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में होते हैं यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमी में होते है। अथवा तीन रत्नप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे पांच नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही छह नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक अभ्यधिक संचारणीय है यावत् अथवा पांच तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्करप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे पांच नैरयिकों के त्रि-संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही छह नैरयिकों के त्रि-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत। चतुष्क संयोगज और पंच संयोगज भंग भी उसी प्रकार वक्तव्य है, इतना विशेष है—एक अभ्यधिक संचारणीय है यावत् पश्चिम (अंतिम) भंग तक। अथवा दो वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए जाव एगे अहेसत्त-माए होज्जा, अहवा एगे रयण-प्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे पंकप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् एकः धूमप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः पङ्कप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है, अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

भाष्य

१. सूत्र ९३

छह जीवों के एक सांयोगिक भंग—७

	र	स	वा	पं	धू	त	अध:
१	६						
२		६					
३			६				
४				६			
५					६		
६						६	
७							६

छह जीवों के द्वि सांयोगिक विकल्प—५, भंग—१०५

रत्नप्रभा के विकल्प ५, भंग ३०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१	५					
२	१		५				
३	१			५			
४	१				५		
५	१					५	
६	१						५
७	२	४					
८	२		४				
९	२			४			
१०	२				४		
११	२					४	
१२	२						४
७	३	३					
८	३		३				
९	३			३			
१०	३				३		
११	३					३	
१२	३						३

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१९	४	२					
२०	४		२				
२१	४			२			
२२	४				२		
२३	४					२	
२४	४						२
२५	५	१					
२६	५		१				
२७	५			१			
२८	५				१		
२९	५					१	
३०	५						१

शर्कराप्रभा के विकल्प ५, भंग २५

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१		१	५				
२		१		५			
३		१			५		
४		१				५	
५		१					५
६		२	४				
७		२		४			
८		२			४		
९		२				४	
१०		२					४
११		३	३				
१२		३		३			
१३		३			३		
१४		३				३	
१५		३					३

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१६		४	२				
१७		४		२			
१८		४			२		
१९		४				२	
२०		४					२
२१		५	१				
२२		५		१			
२३		५			१		
२४		५				१	
२५		५					१

वालुकाप्रभा के विकल्प ५, भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१			१	५			
२			१		५		
३			१			५	
४			१				५
५			२	५			
६			२		५		
७			२			५	
८			२				५
९			३	३			
१०			३		३		
११			३			३	
१२			३				३
१३			४	२			
१४			४		२		
१५			४			२	
१६			४				२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१७			५	१			
१८			५		१		
१९			५			१	
२०			५				१

पंकप्रभा के विकल्प ५, भंग १५

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१				१	५		
२				१		५	
३				१			५
४				२	४		
५				२		४	
६				२			४
७				३	३		
८				३		३	
९				३			३
१०				४	२		
११				४		२	
१२				४			२
१३				५	१		
१४				५		१	
१५				५			१

धूमप्रभा के विकल्प ५, भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१					१	५	
२					१		५
३					२	४	
४					२		४
५					३	३	
६					३		३
७					४	२	
८					४		२
९					५	१	
१०					५		१

तमप्रभा के विकल्प ५, भंग ५

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१						१	५
२						२	४
३						३	३
४						४	२

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
५						५	१

इस प्रकार छह जीवों के द्वि-संयोगिक भंग—रत्नप्रभा-३०, शर्कराप्रभा-२५, वालुकाप्रभा-२०, पंकप्रभा-१५, धूमप्रभा-१०, तमप्रभा-५, कुल भंग—१०५।

छह जीवों के त्रिसंयोगिक

विकल्प-१०, भंग-३५०

रत्न-शर्कराप्रभा के विकल्प-१०,

भंग-५०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१	१	४				
२	१	१		४			
३	१	१			४		
४	१	१				४	
५	१	१					४
६	१	२	३				
७	१	२		३			
८	१	२			३		
९	१	२				३	
१०	१	२					३
११	२	१	३				
१२	२	१		३			
१३	२	१			३		
१४	२	१				३	
१५	२	१					३
१६	१	३	२				
१७	१	३		२			
१८	१	३			२		
१९	१	३				२	
२०	१	३					२
२१	२	२	२				
२२	२	२		२			
२३	२	२			२		
२४	२	२				२	
२५	२	२					२
२६	३	१	२				
२७	३	१		२			
२८	३	१			२		
२९	३	१				२	
३०	३	१					२

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
३१	१	४	१				
३२	१	४		१			
३३	१	४			१		
३४	१	४				१	
३५	१	४					१
३६	२	३	१				
३७	२	३		१			
३८	२	३			१		
३९	२	३				१	
४०	२	३					१
४१	३	२	१				
४२	३	२		१			
४३	३	२			१		
४४	३	२				१	
४५	३	२					१
४६	४	१	१				
४७	४	१		१			
४८	४	१			१		
४९	४	१				१	
५०	४	१					१

रत्न-वालुकाप्रभा के विकल्प १०,

भंग ४०

	र	श	वा	पं	धू	त	अध:
१	१		१	४			
२	१		१		४		
३	१		१			४	
४	१		१				४
५	१		२	३			
६	१		२		३		
७	१		२			३	
८	१		२				३
९	२		१	३			
१०	२		१		३		
११	२		१			३	
१२	२		१				३
१३	१		३	२			
१४	१		३		२		
१५	१		३			२	
१६	१		३				२
१७	२		२	२			
१८	२		२		२		
१९	२		२			२	
२०	२		२				२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
२१	३		१	२			
२२	३		१		२		
२३	३		१			२	
२४	३		१				२
२५	१		४	१			
२६	१		४		१		
२७	१		४			१	
२८	१		४				१
२९	२		३	१			
३०	२		३		१		
३१	२		३			१	
३२	२		३				१
३३	३		२	१			
३४	३		२		१		
३५	३		२			१	
३६	३		२				१
३७	४		१	१			
३८	४		१		१		
३९	४		१			१	
४०	४		१				१

रत्न-पंकप्रभा के विकल्प १०,

भंग ३०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१			१	४		
२	१			१		४	
३	१			१			४
४	१			२	३		
५	१			२		३	
६	१			२			३
७	२			१	३		
८	२			१		३	
९	२			१			३
१०	१			३	२		
११	१			३		२	
१२	१			३			२
१३	२			२	२		
१४	२			२		२	
१५	२			२			२
१६	३			१	२		
१७	३			१		२	
१८	३			१			२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१९	१			४	१		
२०	१			४		१	
२१	१			४			१
२२	२			३	१		
२३	२			३		१	
२४	२			३			१
२५	३			२	१		
२६	३			२		१	
२७	३			२			१
२८	४			१	१		
२९	४			१		१	
३०	४			१			१

रत्न-धूमप्रभा के विकल्प १०,

भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१				१	४	
२	१				१		४
३	१				२	३	
४	१				२		३
५	२				१	३	
६	२				१		३
७	१				३	२	
८	१				३		२
९	२				२	२	
१०	२				२		२
११	३				१	२	
१२	३				१		२
१३	१				४	१	
१४	१				४		१
१५	२				३	१	
१६	२				३		१
१७	३				२	१	
१८	३				२		१
१९	४				१	१	
२०	४				१		१

रत्न-तमप्रभा के विकल्प १०,

भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१					१	४
२	१					२	३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
३		२				१	३
४		१				३	२
५		२				२	२
६		३				१	२
७		१				४	१
१०		२				३	१
९		३				२	१
१०		४				१	१

शर्करा-वालुकाप्रभा के विकल्प १०,

भंग ४०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१	१	४			
२		१	१		४		
३		१	१			४	
४		१	१				४
५		१	२	३			
६		१	२		३		
७		१	२			३	
८		१	२				३
९		२	१	३			
१०		२	१		३		
११		२	१			३	
१२		२	१				३
१३		१	३	२			
१४		१	३		२		
१५		१	३			२	
१६		१	३				२
१७		२	२	२			
१८		२	२		२		
१९		२	२			२	
२०		२	२				२
२१		३	१	२			
२२		३	१		२		
२३		३	१			२	
२४		३	१				२
२५		१	४	१			
२६		१	४		१		
२७		१	४			१	
२८		१	४				१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
२९		२	३	१			
३०		२	३		१		
३१		२	३			१	
३२		२	३				१
३३		३	२	१			
३४		३	२		१		
३५		३	२			१	
३६		३	२				१
३७		४	१	१			
३८		४	१		१		
३९		४	१			१	
४०		४	१				१

शर्करा-पंकप्रभा के विकल्प १०,
भंग ३०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१		१	४		
२		१		१		४	
३		१		१			४
४		१		२	३		
५		१		२		३	
६		१		२			३
७		२		१	३		
८		२		१		३	
९		२		१			३
१०		१		३	२		
११		१		३		२	
१२		१		३			२
१३		२		२	२		
१४		२		२		२	
१५		२		२			२
१६		३		१	२		
१७		३		१		२	
१८		३		१			२
१९		१		४	१		
२०		१		४		१	
२१		१		४			१
२२		२		३	१		
२३		२		३		१	
२४		२		३			१
२५		३		२	१		
२६		३		२		१	
२७		३		२			१

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
२८		४		१	१		
२९		४		१		१	
३०		४		१			१

शर्करा-धूमप्रभा के विकल्प १०,
भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१			१	४	
२		१			१		४
३		१			२	३	
४		१			२		३
५		२			१	३	
६		२			१		३
७		१			३	२	
८		१			३		२
९		२			२	२	
१०		२			२		२
११		३			१	२	
१२		३			१		२
१३		१			४	१	
१४		१			४		१
१५		२			३	१	
१६		२			३		१
१७		३			२	१	
१८		३			२		१
१९		४			१	१	
२०		४			१		१

शर्करा-तमप्रभा के विकल्प १०,
भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१		१				१	४
२		१				२	३
३		२				१	३
४		१				३	२
५		२				२	२
६		३				१	२
७		१				४	१
८		२				३	१
९		३				२	१

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१०		४				१	१

वालुका-पंकप्रभा के विकल्प १०,
भंग ३०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१	१	४		
२			१	१		४	
३			१	१			४
४			१	२	३		
५			१	२		३	
६			१	२			३
७			२	१	३		
८			२	१		३	
९			२	१			३
१०			१	३	२		
११			१	३		२	
१२			१	३			२
१३			२	२	२		
१४			२	२		२	
१५			२	२			२
१६			३	१	२		
१७			३	१		२	
१८			३	१			२
१९			१	४	१		
२०			१	४		१	
२१			१	४			१
२२			२	३	१		
२३			२	३		१	
२४			२	३			१
२५			३	२	१		
२६			३	२		१	
२७			३	२			१
२८			४	१	१		
२९			४	१		१	
३०			४	१			१

वालुका-धूमप्रभा के विकल्प १०,
भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१		१	४	
२			१		१		४
३			१		२	३	
४			१		२		३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
५			२		१	३	
६			२		१		३
७			१		२	२	
८			१		३		२
९			२		२	२	
१०			२		२		२
११			३		१	२	
१२			३		१		२
१३			१		४	१	
१४			१		४		१
१५			२		३	१	
१६			२		३		१
१७			३		२	१	
१८			३		२		१
१९			४		१	१	
२०			४		१		१

वालुका-तमप्रभा के विकल्प १०, भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१			१			१	४
२			१			२	३
४			२			१	३
४			१			३	२
५			२			२	२
६			३			१	२
७			१			४	१
८			२			३	१
९			३			२	१
१०			४			१	१

पंक-धूमप्रभा के विकल्प १०, भंग २०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१	१	४	
२				१	१		४
३				१	२	३	
४				१	२		३
५				२	१	३	
६				२	१		३

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
७				१	३	२	
८				१	३		२
९				२	२	२	
१०				२	२		२
११				३	१	२	
१२				३	१		२
१३				१	४	१	
१४				१	४		१
१५				२	३	१	
१६				२	३		१
१७				३	२	१	
१८				३	२		१
१९				४	१	१	
२०				४	१		१

पंक-तमप्रभा के विकल्प १०, भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१				१		१	४
२				१		२	३
३				२		१	३
४				१		३	२
५				२		२	२
६				३		१	२
७				१		४	१
८				२		३	१
९				३		२	१
१०				४		१	१

धूम-तमप्रभा के विकल्प १०, भंग १०

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१					१	१	४
२					१	२	३
४					२	१	३
४					१	३	२
५					२	२	२
६					३	१	२

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
७					१	४	१
८					२	३	१
९					३	२	१
१०					४	१	१

इस प्रकार छह जीवों के त्रिसांयोगिक भंग—रत्नप्रभा-१५०, शर्कराप्रभा-१००, वालुकाप्रभा-६०, पंकप्रभा-३०, धूमप्रभा-१०, कुल भंग=३५०

छह जीवों के चतुष्कसांयोगिक विकल्प १० भंग ३५०

पांच जीवों के चतुष्कसांयोगिक भंग की भांति छह जीवों के चतुष्कसांयोगिक भंग ज्ञातव्य हैं किन्तु इसमें एक नैरयिक जीव का अधिक संचार करना चाहिए।

छह जीवों पंचसांयोगिक विकल्प ५, भंग १०५

पांच जीवों के पंचसांयोगिक भंग की भांति छह जीवों के पंचसांयोगिक भंग ज्ञातव्य हैं किन्तु इसमें एक नैरयिक जीव का अधिक संचार करना चाहिए।

छह जीवों के षट् सांयोगिक विकल्प-१, भंग ७

	र	श	वा	पं	धू	त	अधः
१	१	१	१	१	१	१	
२	१	१	१	१	१		१
३	१	१	१	१		१	१
४	१	१	१		१	१	१
५	१	१		१	१	१	१
६	१		१	१	१	१	१
७		१	१	१	१	१	१

इस प्रकार छह नैरयिक जीवों के एक सांयोगिक भंग ७, द्वि-सांयोगिक भंग १०५, त्रि-सांयोगिक भंग ३५०, चतुष्क-सांयोगिक भंग ३५०, पंच-सांयोगिक भंग १०५, षट्सांयोगिक भंग १, सर्व भंग-९२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४. सत्त भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए छ सक्करप्पभाए होज्जा एवं एएणं कमेणं जहा छण्हं दुयासंजोगो तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वं, नवरं—एगो अब्भहिओ संचारिज्जइ, सेसं तं चेव। तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो, पंचसंजोगो, छक्कसंजोगो य छण्हं जहा तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वं, नवरं—एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव छक्कगसंजोगो अहवा दो सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

सप्त भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।
अथवा एकः रत्नप्रभायां षट् शर्कराप्रभायां भवन्ति। एवम् एतेन क्रमेण यथा षण्णां द्विकसंयोगः तथा सप्तानाम् अपि भणितव्यम् नवरम्-एकः अभ्यधिकः सञ्चार्यते, शेषं तत् चैव। त्रिकसंयोगः, चतुष्कसंयोगः, पञ्चसंयोगः, षट्संयोगः च षण्णां यथा तथा सप्तानाम् अपि भणितव्यम्, नवरम्-एकैकः अभ्यधिकः सञ्चारयितव्यः यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

९४. भंते! सात नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और छह शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे छह नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही सात नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत्। जैसे छह नैरयिकों के त्रि-संयोगज, चतुष्क-संयोगज, पंच-संयोगज, षट्क-संयोगज भंग किए गए हैं वैसे ही सात नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—इन भंगों में एक एक अभ्यधिक संचारणीय है यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

भाष्य

१. सूत्र—९४

● (सात जीवों के एक असांयोगिक भंग ७) द्रष्टव्य ९/९१-९३ का यंत्र

● सात जीवों के द्वि-सांयोगिक विकल्प ६, भंग १२६

स्थापना

१-६, २-५, ३-४, ४-३, ५-२, ६-१, ये छह विकल्प हैं। इनसे रत्नप्रभादि के संयोग से होने वाले २१ भंगों को गुणन करने पर २१×६=१२६ भंग

● सात जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प १५, भंग ५२५

स्थापना

१-१-५, १-२-४, २-१-४, १-३-३, २-२-३, ३-१-३, १-४-२, २-३-२, ३-२-२, ४-१-२, १-५-१, २-४-१, ३-३-१, ४-२-१ और ५-१-१।

● सात जीवों के चतुष्क-सांयोगिक विकल्प २०, भंग ७००

स्थापना

१-१-१-४, १-१-४-१, १-४-१-१, ४-१-१-१, १-१-२-३, १-१-३-२, १-३-१-२, ३-१-१-२, १-२-१-३, २-१-१-३, ३-२-१-१, २-२-२-१, २-१-२-२, १-२-२-२, २-२-१-२, १-२-३-१, १-३-२-१, २-१-३-१ और ३-१-२-१।

● सात जीवों के पंच-सांयोगिक विकल्प १५, भंग ३१५

स्थापना

१-१-१-१-३, १-१-१-३-१, १-१-१-२-२, १-१-२-१-२, १-१-२-१-२, २-१-१-१-२, १-२-२-२-१, १-२-१-२-१, २-१-१-२-१, १-१-३-१-१, १-२-२-१-१, २-१-२-१-१, १-३-१-१-१, २-२-१-१-१, ३-१-१-१-१।

● सात जीवों के षट्-सांयोगिक विकल्प ६, भंग ४२।

स्थापना

१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-२-१, १-१-१-२-१-१, १-१-२-१-१-१, १-२-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१

● सात जीवों के सप्त-सांयोगिक विकल्प १, भंग १

स्थापना

१-१-१-१-१-१-१,

विस्तार के लिए द्रष्टव्य ९/९१-९३ का यंत्र

९५. अट्ठ भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा।
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए सत्त सक्कर-

अष्ट भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।
अथवा एकः रत्नप्रभायां सप्त शर्कराप्रभायां

९५. भंते! आठ नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और सात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्पभाए होज्जा। एवं दुया-संजोगो जाव छक्कसंजोगो य जहा सत्तण्हं भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो, नवरं—एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो, सेसं तं चेव जाव छक्कगसंजोगस्स अहवा तिण्णि सक्करप्पभाए एगे वालुय-प्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए जाव एगे तमाए दो अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए जाव दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा। एवं संचारेयव्वं जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

भवन्ति। एवं द्विकसंयोगः यथा षट्क-संयोगः च यथा सप्तानां भणितः तथा अष्टानाम् अपि भणितव्यः नवरम्—एकैकः अभ्यधिकः सञ्चारयितव्यः शेषं तत् चैव यावत् षट्कसंयोगस्य अथवा त्रयः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकःरत्नप्रभायां यावत् एकः तमायां द्वौ अधःसप्तम्यां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायां यावत् द्वौ तमायाम् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति, एवं सञ्चारयितव्यं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे छह नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् षट्क-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही आठ नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् यावत् षट्क-संयोग तक। अथवा तीन शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभः में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक तमा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् दो तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक तमा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार संचारणीय है यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

९६. नव भंते! नेरइया नेरइयप्प-वेसणएणं पविसमाणा किं रयण-प्पभाए होज्जा?—पुच्छा।
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए अट्ठ सक्करप्पभाए होज्जा। एवं दुयासंजोगो जाव सत्तगसंजोगो य जहा अट्ठण्हं भणियं तहा नवण्हं पि भाणियव्वं, नवरं—एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो, सेसं तं चेव पच्छिमो आलावगो—अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा॥

नव भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।
अथवा एकः रत्नप्रभायाम् अष्ट शर्करा-प्रभायां भवन्ति। एवं द्विकसंयोगः यावत् सप्तकसंयोगः च यथा अष्टानां भणितं तथा नवानाम् अपि भणितव्यं, नवरम्—एकैकः अभ्यधिकः सञ्चारयितव्यः, शेषं तत् चैव पश्चिमः आलापकः—अथवा त्रयः रत्न-प्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायाम् एकः वालुकाप्रभायाम् यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

९६. भंते! नौ नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और आठ शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे आठ नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं वैसे ही नौ नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् पश्चिम आलापक—अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

९७. दस भंते! नेरइया नेरइयप्प-वेसणएणं पविसमाणा किं रयण-प्पभाए होज्जा?—पुच्छा
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए नव सक्कर-प्पभाए होज्जा। एवं दुयासंजोगो जाव सत्तसंजागो य जहा नवण्हं, नवरं—एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो, सेसं

दश भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।
अथवा एकः रत्नप्रभायां नव शर्कराप्रभायां भवन्ति। एवं द्विकसंयोगः यावत् सप्तक-संयोगः च यथा नवानाम्, नवरम्—एकैकः अभ्यधिकः सञ्चारयितव्यः शेषं तत् चैव

९७. भंते! दस नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा!
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और नौ अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार जैसे नौ नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही दस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं चेव पच्छिमो आलावगो—अहवा चत्तारि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

पश्चिमः आलापकः—अथवा चत्वारः रत्नप्रभायाम् एकः शर्कराप्रभायां यावत् एकः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् पश्चिम आलापक—अथवा चार रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

भाष्य

१. सूत्र ९५-९७

- आठ जीवों के एक सांयोगिक भंग १
- आठ जीवों के द्वि-सांयोगिक विकल्प ७, भंग १४७
- आठ जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प २१, भंग ७३५
- आठ जीवों के चतुष्क-सांयोगिक विकल्प ३५, भंग १२२५
- आठ जीवों के पंच-सांयोगिक विकल्प ३५, भंग ७३५
- आठ जीवों के षट्-सांयोगिक विकल्प २१, भंग १४७
- आठ जीवों के सप्त-सांयोगिक विकल्प ७, भंग १
  इन सात विकल्पों का प्रत्येक नरक के साथ संयोग करने पर सर्व भंग ३००३ होते हैं।
- ९ जीवों के एक सांयोगिक भंग-७
- ९ जीवों के द्वि-सांयोगिक विकल्प ८, भंग १६८
- ९ जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प २८, भंग ९८०
- ९ जीवों के चतुष्क-सांयोगिक विकल्प ५६, भंग १९६०
- ९ जीवों के पंच-सांयोगिक विकल्प ७०, भंग १४७०
- ९ जीवों षट्क-सांयोगिक विकल्प ५६, भंग ३९२
- ९ जीवों के सप्त-सांयोगिक विकल्प २८, भंग २८
  इन सात विकल्पों का प्रत्येक नरक के साथ संयोग करने पर सर्व भंग ५००५ होते हैं।
- १० जीवों के एक सांयोगिक भंग ७
- १० जीवों के द्वि-सांयोगिक विकल्प ९, भंग १८९
- १० जीवों के त्रि-सांयोगिक विकल्प ३६, भंग १२६०
- १० जीवों के चतुष्क-सांयोगिक विकल्प ३५, भंग २९४०
- १० जीवों के पञ्च-सांयोगिक विकल्प १२६, भंग २६४६
- १० जीवों के षट्क-सांयोगिक विकल्प १२६, भंग ८८२
- १० जीवों के सप्त-सांयोगिक विकल्प ८४, भंग ८४
  इन सात विकल्पों का प्रत्येक नरक के साथ संयोग करने पर सर्व भंग—८००८ होते हैं।
  विस्तार के लिए द्रष्टव्य ९/-९,१-९३ का यंत्र।

९८. संखेज्जा भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा।

गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए संखेज्जा सक्कर-प्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा। एवं एएणं कमेणं एक्कोक्को संचारेयव्वो जाव अहवा दस रयणप्पभाए संखेज्जा सक्कर-प्पभाए होज्जा। एवं जाव अहवा दस रयणप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे

संख्येयाः भदन्त! नैरयिकाः नैरयिक-प्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।

गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति, एवं यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति। एवं यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा त्रयः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति। एवम् एतेन क्रमेण एकैकः सञ्चारयितव्यः यावत् अथवा दश रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति। एवं यावत् अथवा दश रत्नप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा संख्येयाः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा संख्येयाः रत्नप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां

९८. भंते! संख्येय नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से एक एक संचारणीय है, यावत् अथवा दस रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दस रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं, अथवा संख्येय रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक्करप्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जहा रयण-प्पभा उवरिमपुढवीहिं समं चारिया एवं सक्करप्पभा वि उवरिम-पुढवीहिं समं चारेयव्वा, एवं एक्केक्का पुढवी उवरिमपुढवीहिं समं चारेयव्वा जाव अहवा संखेज्जा तमाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्कर-प्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्कर-प्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयणप्पभाए दो सक्करप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए तिण्णि सक्करप्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, एवं एएणं कमेणं एक्केक्को संचारेयव्वो सक्करप्पभाए जाव अहवा एगे रयणप्पभाए संखेज्जा सक्कर-प्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा एगे रयण-प्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा दो रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा दो रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए संखेज्जा सक्क-रप्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, एवं एएणं कमेणं एक्केक्को रयणप्पभाए संचारेयव्वो जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्प-भाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए संखेज्जा पंकप्पभाए भवन्ति, एवं यथा रत्नप्रभा उपरितन पृथिवीभिः समं चारिता एवं शर्कराप्रभा अपि उपरितनपृथिवीभिः समं चारयितव्या, एवम् एकैका पृथिवी उपरितनपृथिवीभिः समं चारयितव्या यावत् अथवा संख्येयाः तमायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां भवन्ति, अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां संख्येयाः पङ्कप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् एकः शर्करा-प्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ शर्कराप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां त्रयः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवम् एतेन क्रमेण एकैकः सञ्चारयितव्यः शर्करा-प्रभायां यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुका-प्रभायां भवन्ति यावत् अथवा एकः रत्न-प्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा द्वौ रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुका-प्रभायां भवन्ति यावत् अथवा द्वौ रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा त्रयः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां भवन्ति, एवम् एतेन क्रमेण एकैकः रत्नप्रभया सञ्चारयितव्यः यावत् अथवा संख्येयाः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः वालुकाप्रभायां भवन्ति यावत् अथवा संख्येयाः रत्नप्रभायाम् संख्येयाः शर्कराप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां एकः वालुकाप्रभायां संख्येयाः पङ्कप्रभायां भवन्ति। यावत् अथवा एकः रत्नप्रभायाम् होते हैं, अथवा एक शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की गई है वैसे ही शर्कराप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा संख्येय तमा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से एक एक शर्कराप्रभा में संचारणीय है यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्येय वालुकाप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्येय शर्करा-प्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में, संख्येय शर्करा-प्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से प्रत्येक रत्नप्रभा में संचारणीय है, यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं यावत अथवा एक रत्नप्रभा में, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होज्जा। जाव अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। अहवा एगे रयणप्पभाए दो वालुयप्पभाए संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा, एवं एएणं कमेणं तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो जाव सत्तगसंजोगो य जहा दसण्हं तहेव भाणियव्वो। पच्छिमो आलावगो सत्तसंजोगस्स—अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए जाव संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा॥

एकः वालुकाप्रभायां संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायां द्वौ वालुकाप्रभायां संख्येयाः पङ्कप्रभायां भवन्ति, एवम् एतेन क्रमेण त्रिकसंयोगः, चतुष्कसंयोगः यावत् सप्तसंयोगः च यथा दशानाम् तथैव भणितव्यः।
पश्चिमः आलापकः सप्तसंयोगस्य—अथवा संख्येयाः रत्नप्रभायां संख्येयाः शर्कराप्रभायां यावत् संख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

वालुकाप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे दस नैरयिकों के त्रि-संयोगज, चतुष्क-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं वैसे ही यहां वक्तव्य हैं। सप्त संयोगज का पश्चिम आलापक—अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में यावत् संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

९९. असंखेज्जा भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा
गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।
अहवा एगे रयणप्पभाए असंखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं दुयासंजोगो जाव सत्तगसंजोगो य जहा संखेज्जाणं भणिओ तहा असंखेज्जाण वि भाणियव्वो, नवरं—असंखेज्जो अब्भहिओ भाणियव्वो, सेसं तं चेव जाव सत्तगसंजोगस्स पच्छिमो आलावगो अहवा असंखेज्जा रयण-प्पभाए असंखेज्जा सक्करप्पभाए जाव असंखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

असंख्येयाः भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! रत्नप्रभायां वा भवन्ति यावत् अधःसप्तम्यां वा भवन्ति। अथवा एकः रत्नप्रभायाम् असंख्येयाः शर्कराप्रभायां भवन्ति, एवं द्विकसंयोगः यावत् सप्तकसंयोगः च यथा संख्येयानां भणितः तथा असंख्येयानाम् अपि भणितव्यः, नवरम्—असंख्येयः अभ्यधिकः भणितव्यः, शेषं तत् चैव यावत् सप्तकसंयोगस्य पश्चिमः आलापकः अथवा असंख्येया रत्नप्रभायाम् असंख्येयाः शर्कराप्रभायां यावत् असंख्येयाः अधःसप्तम्यां भवन्ति।

९९. भंते! असंख्येय नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।
अथवा एक रत्नप्रभा में और असंख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे संख्येय नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही असंख्येय नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—असंख्येय अभ्यधिक वक्तव्य है, शेष पूर्ववत्, यावत् सप्त संयोग का पश्चिम आलापक—अथवा असंख्येय रत्नप्रभा में, असंख्येय शर्कराप्रभा में यावत् असंख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

१००. उक्कोसेणं भंते! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा?—पुच्छा।
गंगेया! सव्वे वि ताव रयणप्पभाए होज्जा, अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा जाव अहवा रयणप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा, एवं जाव अहवा रयणप्पभाए य सक्कर-प्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए

उत्कर्षेण भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकप्रवेशनकेन प्रविशन्तः किं रत्नप्रभायां भवन्ति?—पृच्छा।
गाङ्गेय! सर्वे अपि तावत् रत्नप्रभायां भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां च शर्कराप्रभायां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां च वालुकाप्रभायां च भवन्ति यावत् अथवा रत्नप्रभायां च अधः सप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां च शर्कराप्रभायां च वालुकाप्रभायां च भवन्ति, एवं यावत् अथवा रत्नप्रभायां च शर्कराप्रभायां च अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां वालुकाप्रभायां पङ्कप्रभायां च भवन्ति, यावत् अथवा

१००. भंते! उत्कृष्ट नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! सब रत्नप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में और शर्कराप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में और वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में और वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में और पंकप्रभा में होते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालुयप्पभाए पंकप्पभाए य होज्जा जाव अहवा रयणप्पभाए वालुयप्पभाए अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए पंकप्पभाए धूमाए होज्जा, एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा तिण्हं तियासंजोगो भणिओ तहा भाणि-यव्वं जाव अहवा रयणप्पभाए तमाए य अहेसत्तमाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए य सक्कर-प्पभाए वालुयप्पभाए पंकप्पभाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए धूमप्पभाए य होज्जा जाव अहवा रयणप्पभए सक्करप्पभाए वालुय-प्पभाए अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभए पंकप्पभाए धूमप्पभाए य होज्जा एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा चउण्हं चउक्कगसंजोगो भणितो तहा भाणियव्वं जाव अहवा रयणप्पभाए धूमप्पभाए तमाए अहेसत्तमाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए पंक-प्पभाए धूमप्पभाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए जाव पंकप्पभाए तमाए य होज्जा, अहवा रयण-प्पभाए जाव पंकप्पभाए अहेसत्त-माए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयपभाए धूम-प्पभाए तमाए य होज्जा, एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा पंचण्हं पंचगसंजोगो तहा भाणियव्वं जाव अहवा रयणप्पभाए पंकप्पभाए जाव अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभाए जाव धूमप्पभाए तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए जाव धूमप्पभाए अहेसत्तमाए य होज्जा अहवा रयणप्पभाए सक्करप्पभाए जाव पंकप्पभाए तमाए य अहेसत्तमाए य होज्जा,अहवा रयणप्पभाए सक्कर-प्पभाए वालुयप्पभाए धूमप्पभाए तमाए अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा

रत्नप्रभायां वालुकाप्रभायाम् अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां पङ्कप्रभायां धूमायां भवन्ति, एवं रत्नप्रभाम् अमुञ्चत्सु यथा त्रयाणां त्रिकसंयोगः भणितः तथा भणितव्यं यावत् अथवा रत्नप्रभायां तमायां च अधःसप्तम्यां च भवन्ति। अथवा रत्न-प्रभायां च शर्कराप्रभायां वालुकाप्रभायां पङ्कप्रभायां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां वालुकाप्रभायां धूमप्रभायां च भवन्ति यावत् अथवा रत्नप्रभायां शर्करा-प्रभायां वालुकाप्रभायाम् अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां पङ्कप्रभायां धूमप्रभायां च भवन्ति एवं रत्नप्रभाम् अमुञ्चत्सु यथा चतुर्णां चतुष्कसंयोगः भणितः तथा भणितव्यं यावत् अथवा रत्नप्रभायां धूमप्रभायां तमायाम् अधःसप्तम्यां च भवन्ति। अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां वालुकाप्रभायां पङ्कप्रभायां धूमप्रभायां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां यावत् पङ्कप्रभायां तमायां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां यावत् पङ्क-प्रभायां अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायाम् शर्कराप्रभायां वालुकाप्रभायां धूमप्रभायां तमायां च भवन्ति, एवं रत्न-प्रभाम् अमुञ्चत्सु यथा पञ्चानाम् पञ्चकसंयोगः तथा भणितव्यं यावत् अथवा रत्नप्रभायां पङ्कप्रभायां यावत् अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां यावत् धूमप्रभायां तमायां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां यावत् धूमप्रभायाम् अधः सप्तम्यां च भवन्ति,

अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां यावत् पङ्क-प्रभायां तमायां च अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां यावत् पङ्कप्रभायां तमायां च अधःसप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां वालुकाप्रभायां धूमप्रभायां तमायाम् अधः-सप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां शर्कराप्रभायां पङ्कप्रभायां यावत् अधः-सप्तम्यां च भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां वालुकाप्रभायां यावत् अधःसप्तम्यां च

यावत् अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए तीन पृथ्वियों के त्रिसंयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही वक्तव्य हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और पंकप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और धूमप्रभा में होते है यावत् अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए चार पृथ्वियों के चतुष्क- संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही वक्तव्य हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में, धूमप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा यावत् पंकप्रभा में और तमा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में यावत् पंकप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, धूमप्रभा में और तमा में होते हैं। इस प्रकार रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए पांच पृथ्वियों के पंच-संयोगज भंग वैसे ही वक्तव्य हैं, यावत् अथवा रत्नप्रभा में, पंकप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् धूमप्रभा में और तमा में होते हैं, अथवा रत्नप्रभा में यावत् धूमप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् पंकप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, धूमप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणप्पभाए सक्करप्पभाए पंकप्पभाए जाव अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए वालुयप्पभाए जाव अहेसत्तमाए य होज्जा, अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य जाव अहेसत्तमाए य होज्जा॥

भवन्ति, अथवा रत्नप्रभायां च शर्कराप्रभायां च यावत् अधःसप्तम्यां च भवन्ति।

में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, पंकप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं।

१०१. एयस्स णं भंते! रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणगस्स सक्करप्पभापुढविनेरइयपवेसणगस्स जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणगस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गंगेया! सव्वत्थोवे अहेसत्तमा-पुढविनेरइयपवेसणए, तमापुढविनेरइय-पवेसणए असंखेज्जगुणे, एवं पडिलोमगं जाव रयणप्पभापुढवि-नेरइयपवेसणए असंखेज्जगुणे॥

एतस्य भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी नैरयिक-प्रवेशनकस्य शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिक-प्रवेशनकस्य यावत् अधःसप्तमीपृथिवी-नैरयिकप्रवेशनकस्य कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गाङ्गेय! सर्वस्तोकाः अधःसप्तमीपृथिवी-नैरयिकप्रवेशनके, तमापृथिवीनैरयिक-प्रवेशनके असंख्येयगुणाः, एवं प्रतिलोमकं यावत् रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकप्रवेशनके असंख्येयगुणाः।

१०१. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी में प्रवेश करने वाले, शर्कराप्रभा पृथ्वी में प्रवेश करने वाले यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! अधःसप्तमी पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक सबसे अल्प हैं। तमा पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक उनसे असंख्येय गुण हैं। इस प्रकार प्रतिलोमक (उल्टा चलने पर) यावत् रत्नप्रभा पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक असंख्येय गुण हैं।

१०२. तिरिक्खजोणियपवेसणए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गंगेया! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-पवेसणए॥

तिर्यग्योनिकप्रवेशनकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गाङ्गेय! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रवेशनकः यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रवेशनकः।

१०२. भंते! तिर्यक्योनिकप्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–एकेन्द्रियतिर्यक्योनिक-प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक-प्रवेशनक।

१०३. एगे भंते! तिरिक्खजोणिए तिरिक्खजोणियपवेसणएणं पविसमाणे किं एगिंदिएसु होज्जा जाव पंचिंदिएसु होज्जा?

गंगेया! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा॥

एकः भदन्त! तिर्यग्योनिकः तिर्यग्-योनिकप्रवेशकेन प्रविशन् किम् एकेन्द्रियेषु भवति यावत् पञ्चेन्द्रियेषु भवति?

गाङ्गेय! एकेन्द्रियेषु वा भवति यावत् पञ्चेन्द्रियेषु वा भवति।

१०३. भंते! एक तिर्यक्योनिक तिर्यक्-योनिकप्रवेशनक में प्रवेश करता हुआ क्या एकेन्द्रिय में होता है यावत् पंचेन्द्रिय में होता है?

गांगेय! एकेन्द्रिय में होता है यावत् अथवा पंचेन्द्रिय में होता है।

१०४. दो भंते! तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणियपवेसणएणं–पुच्छा।

गंगेया! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा। अहवा एगे एगिंदिएसु होज्जा एगे बेइंदिएसु होज्जा,

द्वौ भदन्त! तिर्यग्योनिकौ तिर्यग्-योनिकप्रवेशनकेन–पृच्छा।

गाङ्गेय! एकेन्द्रियेषु वा भवतः यावत् पञ्चेन्द्रियेषु वा भवतः। अथवा एकः एकेन्द्रियेषु भवति एकः द्वीन्द्रियेषु भवति,

१०४. भंते! दो तिर्यक्योनिक तिर्यक्-योनिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रिय में होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय में होते हैं?

गांगेय! एकेन्द्रिय में होते हैं यावत् अथवा पंचेन्द्रिय में होते हैं। अथवा एक एकेन्द्रिय में और एक द्वीन्द्रिय में होता है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जहा नेरइयपवेसणए तहा तिरिक्ख-जोणियपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखेज्जा॥

एवं यथा नैरयिकप्रवेशनकः तथा तिर्यग्-योनिकप्रवेशनकोऽपि भणितव्यः यावत् असंख्येयाः।

प्रकार जैसे नैरयिकप्रवेशनक वैसे तिर्यक्योनिक-प्रवेशनक वक्तव्य है यावत् असंख्येय।

१०५. उक्कोसा भंते! तिरिक्ख-जोणिया तिरिक्खजोणियपवेसण-एणं–पुच्छा।

गंगेया! सव्वे वि ताव एगिंदिएसु होज्जा, अहवा एगिंदिएसु वा बेइंदिएसु वा होज्जा। एवं जहा नेरइया चारिया तहा तिरिक्ख-जोणिया वि चारेयव्वा। एगिंदिया-अमुयंतेसु दुयासंजोगो, तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो, पंच-संजोगो उवजुंजिऊण भाणियव्वो जाव अहवा एगिंदिएसु वा, बेइंदिएसु वा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा॥

उत्कर्षाः भदन्त! तिर्यग्योनिकाः तिर्यग्-योनिकप्रवेशकेन–पृच्छा।

गाङ्गेय! सर्वे अपि तावत् एकेन्द्रियेषु भवन्ति, अथवा एकेन्द्रियेषु वा द्वीन्द्रियेषु वा भवन्ति। एवं यथा नैरयिकाः चारिताः तथा तिर्यग्-योनिकाः अपि चारयितव्याः। एकेन्द्रियान् अमुञ्चत्सु द्विकसंयोगः, त्रिकसंयोग, चतुष्कसंयोगः, पञ्चसंयोगः उपयुज्य भणितव्यः यावत् अथवा एकेन्द्रियेषु वा द्वीन्द्रियेषु वा यावत् पञ्चेन्द्रियेषु वा, भवन्ति।

१०५. भंते! उत्कृष्ट तिर्यक्योनिक तिर्यक्-योनिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए एकेन्द्रिय में होते हैं?–पृच्छा।
गांगेय! सब एकेन्द्रिय में होते हैं, अथवा एकेन्द्रिय में और द्वीन्द्रिय में होते हैं। इस प्रकार जैसे नैरयिकों की चारणा की, वैसे ही तिर्यक्योनिकों की भी चारणा करनी चाहिए। एकेन्द्रियों को न छोड़ते हुए द्विसंयोग, त्रि-संयोग, चतुष्क-संयोग, पंच-संयोग उपयुक्त योजना कर वक्तव्य है यावत् अथवा एकेन्द्रिय में, द्वीन्द्रिय में यावत् पंचेन्द्रिय में होते हैं।

१०६. एयस्स णं भंते! एगिंदियतिरिक्ख-जोणियपवेसणगस्स जाव पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गंगेया! सव्वत्थोवे पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियपवेसणए, चउरिंदियतिरिक्ख-जोणियपवेसणए विसेसाहिए, तेइंदिय-तिरिक्खजोणियपवेसणए विसेसाहिए, बेइंदियतिरिक्ख - जोणियपवेसणए विसेसाहिए, एगिंदियतिरिक्खजोणिय-पवेसणए विसेसाहिए॥

एतस्य भदन्त! एकेन्द्रियतिर्यग्योनिक-प्रवेशनकस्य यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकप्रवेशनकस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा।
गाङ्गेय! सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकप्रवेशनके, चतुरिन्द्रियतिर्यग्-योनिकप्रवेशनके विशेषाधिकाः, त्रीन्द्रिय-तिर्यग्योनिकप्रवेशनके विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रवेशनके विशेषा-धिकाः, एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रवेशनके विशेषाधिकाः।

१०६. भंते! इन एकेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले यावत् पंचेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! पंचेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिक सबसे अल्प हैं, चतुरिन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, त्रीन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, द्वीन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, एकेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यक्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं।

१०७. मणुस्सपवेसणए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गंगेया! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–संमुच्छिममणुस्सपवेसणए, गब्भ-वक्कंतियमणुस्सपवेसणए य॥

मनुष्यप्रवेशनकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गाङ्गेय! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सम्मूर्च्छिममनुष्यप्रवेशनकः गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्यप्रवेशनकः च।

१०७. भंते! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गांगेय! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–सम्मूर्च्छिममनुष्यप्रवेशनक, गर्भावक्रांतिक मनुष्यप्रवेशनक।

१०८. एगे भंते! मणुस्से मणुस्स-पवेस-णएणं पविसमाणे किं संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा? गब्भवक्कंतिय-

एकः भदन्त! मनुष्यः मनुष्यप्रवेशनकेन प्रविशन् किं सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवति? गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवति?

१०८. भंते! एक मनुष्य मनुष्यप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होता है? गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्सेसु होज्जा?
गंगेया! संमुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा॥

गाङ्गेय! सम्मूर्च्छिममनुष्येषु वा भवति, गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु वा भवति।

होता है?
गांगेय! समूर्च्छिम मनुष्यों में होता है अथवा गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होता है।

१०९. दो भंते! मणुस्सा-पुच्छा।
गंगेया! संमुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा एगे गब्भव-क्कंतियमणुस्सेसु होज्जा, एवं एएणं कमेणं जहा नेरइयपवेसणए तहा मणुस्सपवेसणए वि भाणियव्वे जाव दस॥

द्वौ भदन्त! मनुष्यौ-पृच्छा।
गाङ्गेय! सम्मूर्च्छिममनुष्येषु वा भवतः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु वा भवतः अथवा एकः सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवति एकः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवति, एवम् एतेन क्रमेण यथा नैरयिकप्रवेशनके तथा मनुष्य-प्रवेशनके अपि भणितव्यौ यावत् दश।

१०९. भंते! दो मनुष्य-पृच्छा।
गांगेय! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं अथवा गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और एक गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होता है। इस प्रकार इस क्रम से जैसे नैरयिकप्रवेशनक वैसे ही मनुष्यप्रवेशनक वक्तव्य है यावत् दश।

११०. संखेज्जा भंते! मणुस्सा-पुच्छा।
गंगेया! संमुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा संखेज्जा गब्भ-वक्कंतिमणुस्सेसु होज्जा, अहवा दो संमुच्छिममणुस्सेसु होज्जा संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा, एवं एक्केक्कं उस्सारितेसु जाव अहवा संखेज्जा संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा संखेज्जा गब्भ-वक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा॥

संख्येयाः भदन्त! मनुष्याः-पृच्छा।
गाङ्गेय! सम्मूर्च्छिममनुष्येषु वा भवन्ति, गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु वा भवन्ति। अथवा एकः सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवति संख्येयाः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु वा भवन्ति, अथवा द्वौ सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवतः संख्येयाः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवन्ति, एवम् एकैकम् उत्सारितेषु यावत् अथवा संख्येयाः सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवन्ति संख्येयाः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवन्ति।

११०. भंते! संख्येय मनुष्य पृच्छा।
गांगेय! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं अथवा गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं, अथवा दो सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार एक एक की वृद्धि करने पर यावत् अथवा संख्येय सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रान्तिक मनुष्यों में होते हैं।

१११. असंखेज्जा भंते! मणुस्सा-पुच्छा।
गंगेया! सव्वे वि ताव संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा। अहवा असंखेज्जा संमुच्छिममणुस्सेसु एगे गब्भ-वक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा, अहवा असंखेज्जा संमुच्छिममणुस्सेसु दो गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेसु होज्जा, एवं जाव असंखेज्जा संमुच्छिममणुस्सेसु होज्जा संखेज्जा गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेसु होज्जा॥

असंख्येयाः भदन्त! मनुष्याः-पृच्छा।
गाङ्गेय! सर्वे अपि तावत् सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवन्ति। अथवा असंख्येयाः सम्मूर्च्छिम-मनुष्येषु एकः गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवति. अथवा असंख्येयाः सम्मूर्च्छिम-मनुष्येषु द्वौ: गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु भवतः एवम् यावत् असंख्येयाः सम्मूर्च्छिम-मनुष्येषु भवन्ति संख्येयाः गर्भावक्रान्ति-कमनुष्येषु भवन्ति।

१११. भंते! असंख्येय मनुष्य-पृच्छा।
गांगेय! सब सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं। अथवा असंख्येय सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और एक गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होता है। अथवा असंख्येय सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और दो गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार यावत् असंख्येय सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं।

११२. उक्कोसा भंते! मणुस्सा-पुच्छा।
गंगेया! सव्वे वि ताव संमुच्छिम-मणुस्सेसु होज्जा। अहवा संमुच्छिम-

उत्कर्षाः भदन्त! मनुष्याः-पृच्छा।
गाङ्गेय! सर्वे अपि तावत् सम्मूर्च्छिममनुष्येषु भवन्ति। अथवा सम्मूर्च्छिममनुष्येषु च

११२. भंते! उत्कृष्ट मनुष्य-पृच्छा।
गांगेय! सब सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं। अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्सेसु य गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु य होज्जा॥

गर्भावक्रान्तिकमनुष्येषु च भवन्ति।

गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं।

११३. एयस्स णं भंते! संमुच्छिममणुस्सपवेसणगस्स गब्भवक्कंतियमणुस्सपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गंगेया! सव्वत्थोवे गब्भवक्कंतियमणुस्सपवेसणए संमुच्छिममणुस्सपवेसणए असंखेज्जगुणे॥

एतस्य भदन्त! सम्मूर्च्छिममनुष्यप्रवेशनकस्य गर्भावक्रान्तिक- मनुष्यप्रवेशन-कस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गाङ्गेय! सर्वस्तोकाः गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यप्रवेशनके सम्मूर्च्छिममनुष्यप्रवेशनके असंख्येयगुणाः।

११३. भंते! इन सम्मूर्च्छिम में प्रवेश करने वाले और गर्भावक्रांतिक में प्रवेश करने वाले मनुष्यों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! गर्भावक्रांतिक में प्रवेश करने वाले मनुष्य सबसे अल्प हैं। सम्मूर्च्छिम में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय गुण हैं।

११४. देवपवेसणए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

गंगेया! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–भवणवासिदेवपवेसणए जाव वेमाणियदेवपवेसणए॥

देवप्रवेशनकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गाङ्गेय! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–भवनवासिदेवप्रवेशनकः यावत् वैमानिकदेवप्रवेशनकः।

११४. भंते! देवप्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–भवनवासी देवप्रवेशनक यावत् वैमानिक देवप्रवेशनक।

११५. एगे भंते! देवे देवपवेसणएणं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा? वाणमंतरजोइसियवेमाणिएसु होज्जा?

गंगेया! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

११५. एकः भदन्त! देवः देवप्रवेशनकेन प्रविशन् किं भवनवासिषु भवति? वानमंतर-ज्योतिष्क-वैमानिकेषु भवति?

गाङ्गेय! भवनवासिषु वा भवति, वानमंतर ज्योतिष्क-वैमानिकेषु वा भवन्ति।

११५. भंते! एक देव देवप्रवेशनक में प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी में होता है? वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक में होता है?

गांगेय! भवनवासी में होता है, वाणमंतर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक में होता है।

११६. दो भंते देवा देवपवेसणएणं–पुच्छा।

गोयमा! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा। अहवा एगे भवणवासीसु एगे वाणमंतरेसु होज्जा, एवं जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखेज्ज त्ति॥

द्वौ भदन्त! देवौ देवप्रवेशनकेन–पृच्छा।

गाङ्गेय! भवनवासिषु वा भवतः, वानमंतर-ज्योतिष्क-वैमानिकेषु वा भवतः। अथवा एकः भवनवासिषु एकः वानमन्तरेषु भवति, एवं यथा तिर्यग्योनिकप्रवेशनकः तथा देवप्रवेशनकोऽपि भणितव्यः यावत् असंख्येयः इति।

११६. भंते! दो देव देवप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए भवनवासी में होते हैं? पृच्छा।

गांगेय! भवनवासी में होते हैं, वाणमंतर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक में होते हैं। अथवा एक भवनवासी में और एक वाणमंतर में होता है। इस प्रकार जैसे तिर्यक्योनिकप्रवेशनक वैसे देवप्रवेशनक वक्तव्य है यावत् असंख्येय।

११७. उक्कोसा भंते!–पुच्छा।

गंगेया! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा, अहवा जोइसिय-भवणवासीसु य होज्जा, अहवा जोइसिय-वाणमंतरेसु य होज्जा, अहवा जोइसियवेमाणिएसु य

उत्कर्षाः भदन्त!–पृच्छा।

गाङ्गेय! सर्वे अपि तावत् ज्योतिष्केषु भवन्ति, अथवा ज्योतिष्क-भवनवासिषु च भवन्ति, अथवा ज्योतिष्क-वानमन्तरेषु भवन्ति, अथवा ज्योतिष्क-वैमानिकेषु च

११७. भंते! उत्कृष्ट देव–पृच्छा।

गांगेय! सब ज्योतिष्क में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और वाणमंतर में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होज्जा,अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमंतरेसु य होज्जा, अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वेमाणिएसु य होज्जा, अहवा जोइसिएसु य वाणमंतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा, अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमंतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा॥

भवन्ति, अथवा ज्योतिष्केषु च भवनवासिषु च वानमन्तरेषु च भवन्ति, अथवा ज्योतिष्केषु च भवनवासिषु च वैमानिकेषु च भवन्ति, अथवा ज्योतिष्केषु च वानमन्तरेषु च वैमानिकेषु च भवन्ति, अथवा ज्योतिष्केषु च भवनवासिषु च वानमन्तरेषु च वैमानिकेषु च भवन्ति।

होते है। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणमंतर में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, वाणमंतर और वैमानिक मे होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाण-मंतर और वैमानिक में होते हैं।

११८. एयस्स णं भंते! भवणवासिदेवपवेसणगस्स, वाणमंतरदेवपवेसणगस्स, जोइसियदेवपवेसणगस्स, वेमाणियदेव-पवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गंगेया! सव्वत्थोवे वेमाणियदेव-पवेसणए, भवणवासिदेवपवेसणए असंखेज्जगुणे, वाणमंतरदेवपवे-सणए असंखेज्जगुणे, जोइसियदेव-पवेसणए संखेज्जगुणे॥

एतस्य भदन्त! भवनवासिदेवप्रवेशनकस्य, वानमन्तरदेवप्रवेशनकस्य, ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनकस्य, वैमानिकदेवप्रवेशनकस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गाङ्गेय! सर्वस्तोकाः वैमानिकदेवप्रवेशनके, भवनवासिदेवप्रवेशनके असंख्येयगुणाः, वानमन्तरदेवप्रवशनके असंख्येयगुणाः, ज्योतिष्कदेवप्रवेशनके संख्येयगुणाः।

११८. भंते! इन भवनवासी में प्रवेश करने वाले, वाणमंतर मे प्रवेश करने वाले, ज्योतिष्क में प्रवेश करने वाले और वैमानिक में प्रवेश करने वाले देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! वैमानिक में प्रवेश करने वाले देव सबसे अल्प हैं, भवनवासी में प्रवेश करने वाले देव उनसे असंख्येय गुण हैं, वाणमंतर में प्रवेश करने वाले देव उनसे असंख्येय गुण हैं, ज्योतिष्क में प्रवेश करने वाले देव उनसे संख्येय गुण हैं।

११९. एयस्स णं भंते! नेरइयपवेसणगस्स तिरिक्खजोणियपवेसणगस्स मणुस्सपवेसणगस्स देवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गंगेया! सव्वत्थोवे मणुस्सपवे-सणए, नेरइयपवेसणए असंखेज्ज-गुणे, देवपवेसणए असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणियपवेसणए असंखे-ज्जगुणे॥

एतस्य भदन्त! नैरयिकप्रवेशनकस्य तिर्यग्योनिकप्रवेशनकस्य मनुष्यप्रवेशन-कस्य देवप्रवेशनकस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गाङ्गेय! सर्वस्तोकाः मनुष्यप्रवेशनके, नैरयिकप्रवेशनके असंख्येयगुणाः देव-प्रवेशनके असंख्येयगुणाः तिर्यग्योनिक-प्रवेशनके असंख्येयगुणाः।

११९. भंते! इन नैरयिक में प्रवेश करने वालों, तिर्यक्योनिक में प्रवेश करने वालों, मनुष्य में प्रवेश करने वालों और देव में प्रवेश करने वालों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गांगेय! मनुष्य में प्रवेश करने वाले सबसे अल्प हैं, नैरयिक में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय गुण हैं, देव में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय गुण हैं, तिर्यक्-योनिक में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय गुण हैं।

संतर-निरंतर उववज्जणादि-पदं

१२०. संतरं भंते! नेरइया उवव-ज्जंति निरंतरं नेरइया उववज्जंति संतरं असुरकुमारा उववज्जंति निरंतरं असुरकुमारा उववज्जंति जाव संतरं वेमाणिया उववज्जंति निरंतरं वेमाणिया उववज्जंति?

सान्तर-निरन्तर-उपपदनादि-पदम्

सान्तरं भदन्त! नैरयिकाः उपपद्यन्ते निरन्तरं नैरयिकाः उपपद्यन्ते सान्तरम् असुरकुमाराः उपपद्यन्ते निरन्तरम् असुरकुमाराः उपपद्यन्ते यावत् सान्तरं वैमानिकाः उपपद्यन्ते निरन्तरं वैमानिकाः उपपद्यन्ते?

सांतर-निरंतर उपपन्न आदि पद

१२०. भंते! नैरयिक अंतर सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं? असुरकुमार अंतर सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं? यावत् वैमानिक अंतर सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतरं नेरइया उव्वट्टंति निरंतरं नेरइया उव्वट्टंति जाव संतरं वाण-मंतरा उव्वट्टंति निरंतरं वाणमंतरा उव्वट्टंति? संतरं जोइसिया चयंति निरंतरं जोइसिया चयंति संतरं वेमाणिया चयंति निरंतरं वेमाणिया चयंति?

गंगेया! संतरं पि नेरइया उवव-ज्जंति निरंतरं पि नेरइया उवव-ज्जंति जाव संतरं पि थणियकुमारा उववज्जंति निरंतरं पि थणिय-कुमारा उववज्जंति, नो संतरं पुढविक्काइया उववज्जंति निरंतरं पुढविक्काइया उववज्जंति, एवं जाव वणस्सइकाइया। सेसा जहा नेरइया जाव संतरं पि वेमाणिया उववज्जंति निरंतरं पि वेमाणिया उववज्जंति।

संतरं पि नेरइया उव्वट्टंति निरंतरं पि नेरइया उव्वट्टंति, एवं जाव थणियकुमारा। नो संतरं पुढवि-क्काइया उव्वट्टंति निरंतरं पुढवि-क्काइया उव्वट्टंति, एवं जाव वणस्सइकाइया। सेसा जहा नेरर-इया, नवरं—जोइसिय वेमाणिया चयंति अभिलावो जाव संतरं पि वेमाणिया चयंति निरंतरं पि वेमा-णिया चयंति॥

सान्तरं नैरयिकाः उद्वर्तन्ते निरन्तरं नैरयिकाः उद्वर्तन्ते यावत् सान्तरं वान-मन्तराः उद्वर्तन्ते निरन्तरं वानमन्तराः उद्वर्तन्ते? सान्तरं ज्योतिष्काः च्यवन्ते निरन्तरं ज्योतिष्काः च्यवन्ते? सान्तरं वैमानिकाः च्यवन्ते निरन्तरं वैमानिकाः च्यवन्ते?

गाङ्गेय! सान्तरम् अपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते निरन्तरम् अपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते यावत् सान्तरम् अपि स्तनितकुमाराः उपपद्यन्ते, निरंतरम् अपि स्तनितकुमाराः उपपद्यन्ते, नो सान्तरं पृथिवीकायिकाः उपपद्यन्ते निरन्तरं पृथिवीकायिकाः उपपद्यन्ते, एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः। शेषाः यथा नैरयिकाः यावत् सान्तरम् अपि वैमानिकाः उपपद्यन्ते निरन्तरम् अपि वैमानिकाः उपपद्यन्ते। सान्तरम् अपि नैरयिकाः उद्वर्तन्ते निरन्तरम् अपि नैरयिकाः उद्वर्तन्ते, एवं यावत् स्तनितकुमाराः। नो सान्तरं पृथिवी-कायिकाः उद्वर्तन्ते, निरन्तरं पृथिवी-कायिकाः उद्वर्तन्ते, एवं यावत् वनस्पति-कायिकाः। शेषाः यथा नैरयिकाः, नवरम्— ज्योतिष्क-वैमानिकाः च्यवन्ते अभिलापः यावत् सान्तरम् अपि वैमानिकाः च्यवन्ते निरन्तरम् अपि वैमानिकाः च्यवन्ते।

नैरयिक अंतर सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं? यावत् वाणमंतर अंतर सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं? ज्योतिष्क अंतर सहित च्युत होते हैं? निरन्तर च्युत होते हैं? वैमानिक अंतर सहित च्युत होते हैं? निरंतर च्युत होते हैं?

गांगेय! नैरयिक अंतर सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार अंतर सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं। पृथ्वीकायिक अंतर सहित उपपन्न नहीं होते, निरंतर उपपन्न होते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक। शेष जैसे नैरयिक यावत् वैमानिक अंतर सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं।

नैरयिक अंतर सहित भी उद्वर्तन करते हैं, निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार। पृथ्वीकायिक अंतर सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरंतर उद्वर्तन करते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक। शेष जैसे—नैरयिक, इतना विशेष है—ज्योतिष्क, वैमानिक च्युत होते हैं आलापक यावत् वैमानिक अंतर सहित भी च्युत होते हैं, निरंतर भी च्युत होते हैं।

सतो असतो उववज्जणादि-पदं

१२१. सतो भंते! नेरइया उववज्जंति, असतो नेरइया उववज्जंति, सतो असुर-कुमारा उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया उववज्जंति, असतो वेमाणिया उवव-ज्जंति? सतो नेरइया उव्वट्टंति, असतो नेरइया उव्वट्टंति, सतो असुरकुमारा उव्व-ट्टंति जाव सतो वेमाणिया चयंति, असतो वेमाणिया चयंति?

गंगेया! सतो नेरइया उववज्जंति, नो असतो नेरइया उववज्जंति, सतो असुरकुमारा उववज्जंति, नो असतो असुरकुमारा उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया उववज्जंति, नो असतो

सतः असतःउपपन्नादि-पदम्

सतः भदन्त! नैरयिकाः उपपद्यन्ते, असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, असतः असुरकुमाराः उपपद्यन्ते यावत् सतः वैमानिकाः उपपद्यन्ते, असतः वैमानिकाः उपपद्यन्ते? सतः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते, असतः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते सतः असुरकुमाराः उद्वर्तन्ते यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, असतः वैमानिकाः च्यवन्ते?

गाङ्गेय! सतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, नो असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, सतः असुर-कुमाराः उपपद्यन्ते नो, असतः असुर-कुमाराः उपपद्यन्ते यावत् सतः वैमानिकाः उपपद्यन्ते, सतः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते, नो

सत् असत् उपपन्न आदि-पद

१२१. 'भंते! सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं? असत् उपपन्न होते हैं? सत् असुरकुमार उपपन्न होते हैं, यावत् सत् वैमानिक उपपन्न होते हैं? असत् वैमानिक उपपन्न होते हैं? सत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? असत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? सत् असुर-कुमार उद्वर्तन करते हैं? यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं? असत् च्युत होते हैं?

गांगेय! सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते। सत् असुरकुमार उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते। सत् नैरयिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेमाणिया उववज्जंति, सतो नेरइया उव्वट्टंति, नो असतो नेरइया उव्वट्टंति जाव सतो वेमाणिया चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति।।

असतः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते।

उद्वर्तन करते हैं, असत् उद्वर्तन नहीं करते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

भाष्य

१. सूत्र–१२१

पार्श्वापत्यीय गांगेय ने उत्पत्ति, उद्वर्तना, और प्रवेशन के पश्चात् सत् और असत् का प्रश्न उपस्थित किया–नैरयिक आदि सभी जीव उत्पन्न होते हैं। वे उत्पत्ति से पूर्व सत् हैं अथवा असत्। उत्तर में महावीर ने कहा–गांगेय! सत् ही उत्पन्न होता है, असत् उत्पन्न नहीं होता। जो उत्पन्न होता है, वह द्रव्यार्थ नय की दृष्टि से सत् होता है। जो सर्वथा असत् है, वह कभी भी उत्पन्न नहीं होता।

सभी जीव जीवद्रव्य की अपेक्षा से सत् हैं। मनुष्य आदि पर्याय की दृष्टि से असत् हैं। द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से सत् ही उत्पन्न होता है और पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से असत् ही उत्पन्न होता है। भगवान का उत्तर द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से है। इसीलिए भगवान ने कहा–गांगेय! सत् उत्पन्न होता है, असत् उत्पन्न नहीं होता।

गांगेय के प्रतिप्रश्न के उत्तर में भगवान ने अर्हत् पार्श्व के सिद्धांत को उद्धृत किया। गांगेय उससे बहुत प्रभावित हुआ। भगवान् द्वारा पार्श्व के सिद्धांत का उल्लेख भगवती ५/२५४-२५६ में भी है।

द्रष्टव्य भगवती ५/२५४-२५६ का भाष्य।

१२२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सतो नेरइया उववज्जंति, नो असतो नेरइया उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति?

से नूणं भे गंगेया! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए बुइए अणादीए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकार-संठिए। तंसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि परित्तंसि परिवुडंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे संखि-त्तंसि, उप्पिं विसालंसि, अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइर-विग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगा-कार-संठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता निली-यंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता निलीयंति।

से भूए उप्पण्णे विगए परिणए, अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ, जे लोक्कइ से लोए। से तेणट्ठेणं गंगेया! एवं वुच्चइ–जाव सतो वेमाणिया चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति।।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते– सतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते नो असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते।

स नूनं भोः! गाङ्गेय! पार्श्वेन अर्हता पुरुषा-दानीयेन शाश्वतः लोकः बूतः अनादिकः अनवदग्रः परीतः परिवृतः अधः विच्छिन्नः, मध्ये संक्षिप्तः, उपरिविशालः, अधः पर्यङ्क-संस्थितः, मध्ये वरवज्रवैग्रहिकः, उपरि उर्ध्वमृदङ्गाकारसंस्थितः। तस्मिन् च शाश्वते लोके अनादिके अनवदग्रे परीते परिवृते अधः विच्छिन्ने, मध्ये संक्षिप्ते, उपरिविशाले अधः पर्यङ्कसंस्थिते, मध्ये वरवज्रवैग्रहिके, उपरि उर्ध्वमृदङ्गाकार-संस्थिते अनन्ताः जीवघनाः उत्पद्य-उत्पद्य निलीयन्ति, परीताः जीवघनाः उत्पद्य-उत्पद्य निलीयन्ति।

सः भूतः उत्पन्नः विगतः परिणतः, अजीवैः लोक्यते प्रलोक्यते, यः लोक्यते सः लोकः। तत् तेनार्थेन गाङ्गेय! एवम् उच्यते यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते।

१२२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

हे गांगेय! आपके पूर्ववर्ती पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व ने लोक को शाश्वत कहा है, वह अनादि अनंत, परीत, अलोक से परिवृत, निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्न-भाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है। उस शाश्वत अनादि अनंत, परीत, अलोक से परिवृत, निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त ऊपर में विशाल, निम्नभाग में पर्यंक, मध्य में श्रेष्ठ वज्र और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में अनंत जीव-घन उत्पन्न होकर, उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं, परीत जीव-घन उत्पन्न होकर, उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं।

वह लोक सद्भूत, उत्पन्न, विगत और परिणत है। अजीव-पुद्गल आदि के विविध परिणमनों के द्वारा जिसका लोकन किया जाता है, प्रलोकन किया जाता है, वह लोक है।

गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतो परतो वा जाणणा-पदं

१२३. सयं भंते! एतेवं जाणह, उदाहु असयं, असोच्चा एतेवं जाणह, उदाहु सोच्चा–सतो नेरइया उववज्जंति, नो असतो नेरइया उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया, चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति?

गंगेया! सयं एतेवं जाणामि, नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा–सतो नेरइया उववज्जंति, नो असतो नेरइया उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति॥

स्वयं परतः वा ज्ञान-पदम्

स्वयं भदन्त! एतद् एवं जानीत, उताहो अस्वयम्, अश्रुत्वा एतद् एवं जानीत, उताहो श्रुत्वा–सतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते नो असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते?

गाङ्गेय! स्वयम् एतद् एवं जानामि, नो अस्वयम्, अश्रुत्वा एतद् एवं जानामि, नो श्रुत्वा–सतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, नो असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते।

स्वतः अथवा परतः ज्ञान पद

१२३. [1]भंते! आप स्वयं इस प्रकार जानते हैं अथवा किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर जानते हैं? आप किसी से सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानते हैं अथवा सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर जानते हैं– सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

गांगेय! मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूं, किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता। मैं सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूं, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता–सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते, सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

१२४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– सयं एतेवं जाणामि, नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा–सतो नेरइया उववज्जंति, नो असतो नेरइया उववज्जंति जाव सतो वेमाणिया चयंति, नो असतो वेमाणिया चयंति?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते-स्वयम् एतद् एवं जानामि, नो अस्वयम्, अश्रुत्वा एतद् एवं जानामि, नो श्रुत्वा–सतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, नो असतः नैरयिकाः उपपद्यन्ते यावत् सतः वैमानिकाः च्यवन्ते, नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते?

१२४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूं किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता? मैं सुने बिना, किसी आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूं, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता–सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

गंगेया! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ। दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं, उड्ढं अहे मियं पि जाणइ, अमियंपि जाणइ।

गाङ्गेय! केवली पौरस्त्ये मितम् अपि जानाति, अमितम् अपि जानाति। दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे, ऊर्ध्वं अधः मितम् अपि जानाति अमितम् अपि जानाति।

गांगेय! केवली पूर्व में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः दिशाओं में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है।

सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली।

सर्वं जानाति केवली, सर्वं पश्यति केवली।

केवली सबको जानता है, केवली सबको देखता है।

सव्वओ जाणइ केवली, सव्वओ पासइ केवली।

सर्वतः जानाति केवली, सर्वतः पश्यति केवली।

केवली सब ओर से जानता है, केवली सब ओर से देखता है।

सव्वकालं जाणइ केवली, सव्वकालं पासइ केवली।

सर्वकालं जानाति केवली, सर्वकालं पश्यति केवली।

केवली सब काल में जानता है, केवली सब काल में देखता है।

सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली।

सर्वभावान् जानाति केवली, सर्वभावान् पश्यति केवली।

केवली का ज्ञान अनन्त है, केवली का दर्शन अनन्त है।

अणंते नाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स।

अनन्तं ज्ञानं केवलिनः, अनंतं दर्शनं केवलिनः।

केवली का ज्ञान निरावरण है, केवली का दर्शन निरावरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निव्वुडे नाणे केवलिस्स, निव्वुडे दंसणे केवलिस्स।
से तेणट्ठेणं गंगेया! एवं वुच्चइ–सयं एतेवं जाणामि, नो असयं असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा–तं चेव जाव नो असतो वेमाणिया चयंति॥

निर्वृतं ज्ञानं केवलिनः, निर्वृतं दर्शनं केवलिनः।
तत् तेनार्थेन गाङ्गेय! एवम् उच्यते-स्वयं एतद् एवं जानामि, नो अस्वयम् अश्रुत्वा एतद् एवं जानामि, नो श्रुत्वा-तच्चैव यावत् नो असतः वैमानिकाः च्यवन्ते।

गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूं, किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता। मैं सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूं, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता। इसी प्रकार यावत् असत् वैमानिक च्युत नहीं होते।

भाष्य

१. सूत्र–१२३-१२४

गांगेय ने पूछा–भंते! सत् उत्पन्न होता है, असत् उत्पन्न नहीं होता। यह आपका स्वयं का ज्ञान है या किसी दूसरे से प्राप्त ज्ञान है? यह आप आगम का अध्ययन किए बिना जानते हैं अथवा आगम का अध्ययन कर जानते हैं?

उत्तरवर्ती दर्शन के ग्रंथों में स्वतः और परतः प्रामाण्य की चर्चा हुई है। उसका बीज इस प्रश्न में मिलता है।

स्वतः ज्ञान हेतु-निरपेक्ष होता है। परतः ज्ञान हेतु-सापेक्ष होता है।

सयं असयं उववज्जणा-पदं

१२५. सयं भंते! नेरइया नेरइएसु उववज्जंति? असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति?

गंगेया! सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति॥

स्वयम् अस्वयम् उपपदना-पदम्

स्वयं भदन्त! नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते? अस्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते?

गाङ्गेय! स्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते।

स्वतः परतः उपपन्न पद

१२५. भंते! नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न होते हैं–किसी दूसरी शक्ति के द्वारा उपपन्न किए जाते हैं?

गांगेय! नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उवव-ज्जंति?

गंगेया! कम्मोदएणं, कम्मगुरुयत्ताए, कम्मभारियत्ताए, कम्मगुरु-संभारियत्ताए; असुभाणं कम्माणं उदएणं, असुभाणं कम्माणं विवा-गेणं, असुभाणं कम्माणं फलविवा-गेणं सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं गंगेया! एवं वुच्चइ–सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते-स्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते।

गाङ्गेया! कर्मोदयेन, कर्मगुरुकत्वेन कर्मभारिकत्वेन कर्मसम्भारिकत्वेन अशुभानां कर्मणाम् उदयेन, अशुभानां कर्मणां विपाकेन, अशुभानां कर्मणां फलविपाकेन स्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते। तत् तेनार्थेन गाङ्गेयाः! एवम् उच्यते–स्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं नैरयिकाः नैरयिकेषु उपपद्यन्ते।

१२६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं? नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते–किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा उपपन्न नहीं किए जाते?

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म की गुरुता, कर्म की भारिकता, कर्म की गुरुसंभारिकता, अशुभ कर्म के उदय, अशुभ कर्म के विपाक और अशुभ कर्म के फल-विपाक से नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते। गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२७. सयं भंते! असुरकुमारा–पुच्छा।

स्वयं भदन्त! असुरकुमाराः–पृच्छा।

१२७. भंते! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं? पृच्छा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगेया! सयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति॥

गाङ्गेया:! स्वयम् असुरकुमाराः असुरकुमारेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयम् असुरकुमाराः असुरकुमारेषु उपपद्यन्ते।

गांगेय! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमारों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२८. से केणट्ठेणं तं चेव जाव उववज्जंति?

तत् केनार्थेन तच्चैव यावत् उपपद्यन्ते?

१२८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमारों में परतः उपपन्न नहीं होते?

गंगेया! कम्मोदएणं, कम्मविगतीए, कम्मविसोहीए, कम्मविसुद्धीए सुभाणं कम्माणं उदएणं, सुभाणं कम्माणं विवागेणं सुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असरकुमारत्ताए उववज्जंति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति। एवं जाव थणियकुमारा॥

गाङ्गेया:! कर्मोदयेन, कर्मविगत्या कर्मविशोध्या कर्मविशुद्ध्या शुभानां कर्मणाम् उदयेन, शुभानां कर्मणां विपाकेन शुभानां कर्मणां फलविपाकेन स्वयम् असुरकुमाराः असुरकुमारत्वेन उपपद्यन्ते, नो अस्वयम् असुरकुमाराः असुरकुमारत्वेन उपपद्यन्ते। तत् तेनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते एवं यावत् स्तनितकुमाराः।

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म के विगमन, कर्म-विशोधि, कर्म-विशुद्धि, शुभ कर्म के उदय, शुभ कर्म के विपाक और शुभ कर्म के फल-विपाक से असुरकुमार असुरकुमार के रूप में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमार के रूप में परतः उपपन्न नहीं होते। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–असुरकुमार असुरकुमार के रूप में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमार के रूप में परतः उपपन्न नहीं होते, इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार।

१२९. सयं भंते! पुढविक्काइया–पुच्छा।

स्वयं भदन्त! पृथिवीकायिकाः –पृच्छा।

१२९. भंते! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं?–पृच्छा

गंगेया! सयं पुढविक्काइया पुढविक्काइएसु उववज्जंति नो असयं पुढविक्काइया पुढविक्काइएसु उववज्जंति॥

गाङ्गेय! स्वयं पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यन्ते नो अस्वयं पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यन्ते।

गांगेय! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परत उत्पन्न नहीं होते।

१३०. से केणट्ठेणं जाव उववज्जंति?

तत् केनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते?

१३०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते?

गंगेया! कम्मोदएणं, कम्मगुरुय-त्ताए, कम्मभारियत्ताए, कम्मगुरु-संभारियत्ताए; सुभासुभाणं कम्माणं उदएणं, सुभासुभाणं कम्माणं विवागेणं, सुभासुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं पुढविक्काइया पुढविक्काइएसु उववज्जंति, नो असयं पुढविक्काइया पुढविक्काइएसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति॥

गाङ्गेया! कर्मोदयेन, कर्मगुरुकत्वेन, कर्मभारिकत्वेन, कर्मगुरुसंभारिकत्वेन शुभाशुभानां कर्मणाम् उदयेन, शुभाशुभानां कर्मणां विपाकेन, शुभाशुभानां कर्मणां फलविपाकेन स्वयं पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यन्ते। तत् तेनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते।

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म की गुरुता, कर्म की भारिकता, कर्म की गुरु-संभारिकता, शुभाशुभ कर्म के उदय, शुभाशुभ कर्म के विपाक और शुभाशुभ कर्म के फल विपाक से पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–पृथ्वीकायिक पृथ्वी-कायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वी-कायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३१. एवं जाव मणुस्सा॥

एवं यावत् मनुष्याः।

१३१. इस प्रकार यावत् मनुष्य।

१३२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। से तेणट्ठेणं गंगेया! एवं वुच्चइ–सयं वेमाणिया वेमाणिएसु उववज्जंति, नो असयं वेमाणिया वेमाणिएसु उववज्जंति॥

वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा असुरकुमाराः। तत् तेनार्थेन गाङ्गेय! एवम् उच्यते–स्वयं वैमानिकाः वैमानिकेषु उपपद्यन्ते, नो अस्वयं वैमानिकाः वैमानिकेषु उपपद्यन्ते।

१३२. वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक असुरकुमार की भांति वक्तव्य हैं। गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–वैमानिक वैमानिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, वैमानिक वैमानिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

भाष्य

१. सूत्र–१२५–१३२

प्रस्तुत प्रकरण में 'पुनर्जन्म' की व्यवस्था स्वतः चालित है, इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। कर्म अपना किया हुआ होता है, यह कर्मवाद का प्रथम सिद्धांत है।[1] स्वकृत कर्म के फल विपाक के अनुसार ही जीव नरक आदि नाना स्थानों में उत्पन्न होता है। वह अपनी उत्पत्ति में ईश्वर आदि किसी शक्ति के परतंत्र नहीं है। यदि कोई दूसरी शक्ति पुनर्जन्म की नियंता हो तो नरक और स्वर्ग में जन्म लेने की व्यवस्था निष्पक्ष नहीं रह सकती। दूसरी शक्ति कर्म के आधार पर ही पुनर्जन्म की व्यवस्था करती है–इस अभिमत में प्रक्रिया गौरव का तार्किक दोष है। पुनर्जन्म की व्यवस्था का मुख्य हेतु कर्म ही है। कर्म की अपना फल विपाक देने की प्रक्रिया स्वतः चालित है फिर उसमें दूसरे का हस्तक्षेप अहेतुक है।

नैरयिक स्वतः अपने ही कर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं। उसके सात हेतु बतलाए गए हैं–

१. कर्म का उदय २. कर्म की गुरुता ३. कर्म का भारत्व ४. कर्म की गुरु संभारिता ५. अशुभ कर्मों का उदय ६. अशुभ कर्मों का विपाक ७. अशुभ कर्मों का फल विपाक।

कर्म की गुरुता, कर्म का भारत्व और कर्म की गुरु संभारिता–इन तीन हेतुओं का उल्लेख प्रस्तुत आगम में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है।[2]

● **कर्मोदय**–नरकोचित कर्म का उदय। कर्म का उदय सब संसारी जीवों के होता है। केवल कर्म के उदय मात्र से जीव नरक में नहीं जाता। वहां जाने के लिए कुछ शर्तें हैं। उन शर्तों की सूचना देने के लिए छह विशेषण बतलाए गए।

● कर्म गुरु हो।
● कर्म का भार हो।
● कर्म की गुरुता और भार दोनों हो–कर्म का अति प्रकर्ष हो।
● अशुभ कर्म का उदय हो।
● अशुभ कर्म का विपाक–रसानुभूति हो।
● अशुभ कर्म का फल विपाक–रस का प्रकर्ष हो।

ये सब शर्तें पूरी होती हैं तब जीव नरक में उत्पन्न होता है।[3]

देवगति में उत्पत्ति के सात हेतु–

१. कर्मोदय–देवोचित कर्म का उदय
२. कर्म विगति–अशुभ कर्म की विगति-स्थिति की अपेक्षा
३. कर्म विशोधि–कर्म का विशोधन–रस विपाक की अपेक्षा।
४. कर्म विशुद्धि–कर्म की विशुद्धि–कर्म-प्रदेश राशि की अपेक्षा[4]
५. शुभ कर्म का उदय
६. शुभ कर्म का विपाक
७. शुभ कर्म का फल विपाक

तिर्यंच एवं मनुष्य गति में उत्पत्ति के सात हेतु–

१. कर्म का उदय–तिर्यक् एवं मनुष्योचित कर्म का उदय;
२. कर्म की गुरुता
३. कर्म का भारत्व
४. कर्म का गुरु भारत्व
५. शुभाशुभ कर्म का उदय
६. शुभाशुभ कर्म का विपाक
७. शुभाशुभ कर्म का फल विपाक

नरक गति में जीव केवल अशुभ कर्म के उदय से उत्पन्न होता है। देव गति में शुभ कर्म के उदय से जीव की उत्पत्ति होती है।[5] तिर्यंच और मनुष्य इन दोनों गतियों में शुभाशुभ कर्म के उदय से जीव पैदा होता है।

गति चतुष्टय में जाने के हेतुओं का वर्गीकरण अनेक आगमों में मिलता है। स्थानांग[6] और औपपातिक[7] में चार-चार हेतुओं का निर्देश है। वे चरित्रमूलक हैं। चरित्र गति-भ्रमण का परोक्ष हेतु है। चरित्र के

---

१. भ. १/६०-६२।
२. भ. ५/१३५, ७/१२।
३. भ. वृ. ९/१२६–कम्मोदएणं ति कम्मणोभूदितत्तेन, न च कर्मोदयमात्रेण नारकेषूत्पद्यन्ते, केवलिनामपि तदुदय भावात्, अत आह–'कम्मगुरुयत्ताए' त्ति कम्मणो गुरुकता कर्मगुरुकता तया 'कम्मभारियत्ताए' त्ति भारोऽस्ति येषां तानि भारिकाणि तद्भावो भारिकता कर्मणां भारिकता तया चेत्यर्थः, तथा महदपि किञ्चिदल्पभारं दृष्टं तथाविधभारमपि च किञ्चिदनल्पमित्यत आह–कम्म 'कम्मगुरुसंभारियत्ताए' त्ति गुरोः संभारिकस्य च भावो गुरुसम्भारिकता चेत्यर्थः, कर्मणां गुरुसंभारिकता कर्मगुरुसंभारिकता तया, अतिप्रकर्षावस्था चेत्यर्थः एतच्च यद् शुभकर्मापेक्षयापि स्यादत आह–असुभाणमित्यादि उदयः प्रदेशतोऽपि स्यादत आह–'विवागेणं' ति विपाको यथा बद्धरसानुभूतिः, स च मन्दोऽपि स्यादत आह–फलविवागेणं ति फलस्यैवानाबाधकालोदयविपाकोऽविपाक्यवस्थानता रसप्रकर्षावस्था फलविपाकस्तेन।
४. भ. वृ. ९/१२८–कम्मविगईए त्ति कर्मणामशुभानां विगत्या विगमेन स्थितिमाश्रित्य 'कम्मविसोहीए' त्ति रसमाश्रित्य, 'कम्मविसुद्धीए' त्ति प्रदेशापेक्षया एकार्थाः वैते शब्दा इति।
५. ठाणं ४/६२८-६३१।
६. ठाणं, सू. ७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ जो कर्म का बंध होता है उससे जीव किसी गति में जन्म लेता है इसलिए वह गति में उत्पत्ति का प्रत्यक्ष हेतु है। स्थानांग और औपपातिक में गति-हेतुओं का निर्देश है, वह परोक्ष हेतुओं का वर्गीकरण है। प्रस्तुत आगम के आठवें शतक में गति-उत्पत्ति के हेतुओं का निर्देश है, वह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के हेतुओं का वर्गीकरण है।[1] प्रस्तुत शतक में गति–उत्पत्ति के हेतुओं का निर्देश है, वह प्रत्यक्ष हेतुओं का वर्गीकरण है।

द्रष्टव्य यंत्र–

गति	प्रत्यक्ष हेतु						
नरक	कर्मों का उदय	कर्म की गुरुता	कर्म का भारत्व	कर्म का गुरु भारत्व	अशुभ कर्म का उदय	अशुभ कर्म का उदय	अशुभ कर्म का फल विपाक
तिर्यंच	कर्मों का उदय	कर्म की गुरुता	कर्म का भारत्व	कर्म का गुरु भारत्व	शुभाशुभ कर्म का उदय	शुभाशुभ कर्म का उदय	शुभाशुभ कर्म का फल विपाक
मनुष्य	कर्मों का उदय	कर्म की गुरुता	कर्म का भारत्व	कर्म का गुरु भारत्व	शुभाशुभ कर्म का उदय	शुभाशुभ कर्म का उदय	शुभाशुभ कर्म का फल विपाक
देव	कर्मों का उदय	कर्म की विगति	कर्म का विशोधन	कर्म की गुरु विशुद्धि	शुभ कर्म का उदय	शुभ कर्म का विपाक	शुभ कर्म का फल विपाक

गति	परोक्ष हेतु				गति	प्रत्यक्ष परोक्ष हेतु					
नरक	महारंभ	महापरिग्रह	पंचेन्द्रिय वध	मांसाहार	अशुभ कर्म का उदय	नरक	महारंभ	महापरिग्रह	पंचेन्द्रिय वध	मांसाहार	नैरयिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय
तिर्यंच	माया	कूट माया	असत्य वचन	कूट तोल कूप माप	शुभाशुभ कर्म का उदय	तिर्यंच	माया	कूट माया	असत्य वचन	कूट तोल कूप माप	तिर्यंच योनिक आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय
मनुष्य	प्रकृति भद्रता	प्रकृति विनीतता	सानु-क्रोशता	अमत्सरता	शुभाशुभ कर्म का उदय	मनुष्य	प्रकृति भद्रता	प्रकृति विनीतता	सानु-क्रोशता	अमत्सरता	मनुष्य आयुष्य कर्म शरीर प्रयोग नाम कर्म का उदय
देव	सराग संयम	संयमासंयम	बाल तपःकर्म	अकाम निर्जरा	शुभ कर्म का उदय	देव	सराग संगम	संयमा-संयम	बाल तपःकर्म	अकाम निर्जरा	देवायुष्य कर्म शरीर प्रयोग कर्म का उदय

गंगेयस्स संबोधि-पदं

१३३. तप्पभितिं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वण्णुं सव्वदरिसिं। तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आया-हिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं॥

गाङ्गेयस्य संबोधि-पदम्

तत्प्रभृतिं च सः गाङ्गेयः अनगारः श्रमणं भगवन्तं महावीरं प्रत्यभिजानाति सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम्। ततः सः गाङ्गेयः अनगारः श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम् अवादीत्-इच्छामि भदन्त! युष्माकम् अन्तिकं चातुर्यामात् धर्मात् पञ्चमहाव्रतिकं सप्रतिक्रमणं धर्मं उपसम्पद्य विहर्तुम्।

यथासुखं देवानुप्रिया! मा प्रतिबन्धम्।

गांगेय का संबोधि-पद

१३३. उसके पश्चात् गांगेय अनगार को यह प्रत्यभिज्ञा होती है–श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। अब वह गांगेय अनगार श्रमण भगवान् महावीर को दाईं ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वंदन नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार कर उसने इस प्रकार कहा–भंते! मैं आपके पास चतुर्याम धर्म से (मुक्त होकर) सप्रतिक्रमण पंच महाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

१३४. तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडि-क्कमणं धम्मं

ततः सः गाङ्गेयः अनगारः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा चातुर्यामात् धर्मात् पञ्चमहाव्रतिकं सप्रतिक्रमणं धर्मं उपसंपद्य विहरति।

१३४. वह गांगेय अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार करता है। वंदन नमस्कार कर चतुर्याम धर्म से मुक्त होकर सप्रतिक्रमण पंच महा-

१. भ. ८/४२५-४२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसंपज्जित्ता णं विहरति॥

व्रतात्मक धर्म को स्वीकार कर विहार करता है।

१३५. तए णं से गंगेये अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे अण्हाणयं अदंतवणयं अच्छत्तयं अणोवाहणयं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोओ बंभचेरवासो परघर-प्पवेसो लद्धावलद्धी उच्चावया गामकंटगा बावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहेइ, आराहेत्ता चरमेहिं उस्सासनीसासेहिं सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्व-दुक्खप्पहीणे॥

ततः सः गाङ्गेयः अनगारः बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य यस्यार्थं क्रियते नग्नभावः मुण्डभावः अस्नानकं अदन्तवनकम् अछत्रकम् अनुपानत्कं भूमिशय्या फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोचः ब्रह्मचर्यवासः परगृहप्रवेशः लब्धापलब्धिः उच्चावचाः ग्रामकण्टकाः द्वाविंशतिः परीषहोपसर्गाः अधिसह्यन्ते, तमर्थम् आराध्यति, आराध्य चरमैः उच्छ्वास-निश्वासैः सिद्धः बुद्धः मुक्तः परिनिवृतः सर्वदुःखप्रहीनः।

१३५. वह गांगेय अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन करता है, पालन कर जिस प्रयोजन से नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्र धारण न करना, पादुका न पहनना, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षा के लिए गृहस्थों के घर में प्रवेश करना, लाभ-अलाभ, उच्चावच-ग्रामकंटक, बाईस परीषहों और उपसर्गों को सहन किया जाता है, उस प्रयोजन की आराधना करता है। उसकी आराधना कर चरम उच्छ्वास निःश्वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

भाष्य

१. सूत्र–१३३-१३५

अर्हत् पार्श्व और श्रमण भगवान महावीर की परम्परा में शासन भेद था। पहला भेद चतुर्याम धर्म और पंच महाव्रत धर्म का था। गौतम और केशी स्वामी के मिलन पर यह प्रश्न उठा था–पार्श्व ने चतुर्याम धर्म की देशना दी थी और महावीर पांच महाव्रत रूप धर्म की देशना दे रहे हैं।[1] स्थानांग में बतलाया गया है कि मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकर चतुर्याम धर्म का प्रज्ञापन करते हैं।[2]

दस कल्प की व्यवस्था में प्रतिक्रमण आठवां कल्प है। अर्हत् पार्श्व की शासन व्यवस्था में वह अनिवार्य नहीं है। श्रमण भगवान महावीर की परंपरा में वह अनिवार्य है।[3]

महापद्म के प्रकरण में भगवान महावीर स्वयं कहते हैं–मैंने जैसे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नग्न भाव, मुण्डभाव आदि की व्यवस्था की, अर्हत् महापद्म भी वैसी व्यवस्था करेंगे।[4] इससे ज्ञात होता है कि नग्नभाव, मुण्डभाव आदि की व्यवस्था महावीर द्वारा कृत विशेष व्यवस्था थी। अनगार गांगेय ने उसी व्यवस्था की आराधना की।

१३६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१३६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१. उत्तर. २३/१२।
२. ठाणं. ४/१३६।
३. द्रष्टव्य ठाणं ६/१०३ का टिप्पण पृ. १०८।
४. ठाणं ९/६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेत्तीसइमो उद्देसो : तेतीसवां उद्देशक

मूल

उसभदत्त-देवाणंदा-पदं

१३७. तेणं कालेणं तेणं समएणं माहण-कुंडग्गामे नयरे होत्था–वण्णओ। बहुसालए चेइए–वण्णओ। तत्थ णं माहण-कुंडग्गामे नयरे उसभदत्ते नामं माहणे परि-वसइ–अड्ढे दित्ते वित्ते जाव बहुजणस्स अपरिभूए रिव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद - अथव्वणवेद - इतिहास-पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं–चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं सारए धारए पारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए, संखाणे सिक्खा-कपे वागरणे छंदे निरुत्ते जोति-सामयणे, अण्णेसु य बहूसु बंभण्ण-एसु नयेसु सुपरिनिट्ठिए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे उवलद्ध-पुण्णपावे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावे-माणे विहरइ। तस्स णं उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदा नामं माहणी होत्था–सुकुमालपाणिपाया जाव पियदंसणा सुरूवा समणोवासिया अभिगय-जीवाजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ॥

संस्कृत छाया

ऋषभदत्त-देवानन्दा-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये माहनकुण्डग्रामं नगरम् आसीत्–वर्णकः बहुशालकं चैत्यम्–वर्णकः। तत्र माहन-कुण्डग्रामे नगरे ऋषभ-दत्तः नाम माहनः परिवसति–आढ्यः दीप्तः वित्तः यावत् बहुजनस्य अपरिभूतः ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद–इतिहासपंच-मानां निघण्टुषष्ठानां–चतुर्णां वेदानां साङ्गो-पाङ्गानां सरहस्यानां सारकः धारकः पारगः षडङ्गविद् षष्ठितन्त्रविशारदः, संख्याने शिक्षाकल्पे व्याकरणे छन्दे निरुक्ते ज्यौति-षायणे, अन्येषु च बहुषु ब्राह्मण्यकेषु नयेषु सुपरिनिष्ठितः श्रमणोपासकः अभिगत-जीवाजीवः उपलब्धपुण्यपापः यावत् यथा-परिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति। तस्य ऋषभदत्तस्य माहनस्य देवा-नन्दा नाम माहनी आसीत्–सुकुमारपाणि-पादाः यावत् प्रियदर्शना सुरूपा श्रमणो-पासिका अभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्य-पापा यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयती विहरति।

हिन्दी अनुवाद

ऋषभदत्त देवानंदा-पद

१३७. उस काल उस समय ब्राह्मणकुंड-ग्राम नामक नगर था–वर्णक। बहुशालक चैत्य–वर्णक। उस ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण रहता है–वह संपन्न, दीप्तिमान और विश्रुत है यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद–ये चार वेद, पांचवां इतिहास, छठा निघण्टु इनका सांगोपांग रहस्य सहित सारक (प्रवर्तक) धारक और पारगामी है। वह छह अंगों का वेत्ता, षष्टितंत्र का विशारद, संख्यान, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष-शास्त्र, अन्य अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात है। वह श्रमणोपासक जीव-अजीव को जानने वाला, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाला, यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहा है। उस ऋषभदत्त ब्राह्मण के देवानंदा नाम की ब्राह्मणी थी–सुकुमाल हाथ-पैर वाली यावत् प्रियदर्शिनी, सुरूप श्रमणोपासिका, जीव अजीव को जानने वाली, पुण्य पाप का मर्म समझने वाली यावत् यथा परीगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रही है।

भाष्य

१. सूत्र–१३७

इस सूत्र में दो बिन्दु विमर्शनीय हैं। क्या ऋषभदत्त ब्राह्मण पहले ब्राह्मण नय का पारगामी विद्वान था फिर बाद में श्रमणोपासक, श्रमण-नय का अनुयायी बना? प्रथम वर्णन ब्राह्मण-नय का है। **अभिगयजीवाजीवे**–यह वर्णन श्रमण-नय का है। जैसे गौतम आदि ग्यारह गणधर पहले ब्राह्मण-नय के पारंगत थे, फिर महावीर के शिष्य बने।

दूसरा विमर्शनीय बिन्दु यह है कि आगम रचना में एक शैलीगत वर्णन होता है। जहां भी ब्राह्मण परंपरा में निष्ठा रखने वाले व्यक्ति का वर्णन है, वहां ऋग्वेद से लेकर **'जोतिसामयणे'** तक का पाठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लिखित किया जाता है।[1]

प्रस्तुत प्रकरण में संभावना की जा सकती है कि ऋषभदत्त पहले ब्राह्मण परंपरा का अनुयायी था फिर वह श्रमण परंपरा का अनुगामी बना।

द्रष्टव्य भगवती २/२४ का भाष्य।

१३८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा पज्जु-वासइ॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः परिषद् पर्युपास्ते।

१३८. उस काल उस समय स्वामी आए। परिषद् ने पर्युपासना की।

१३९. तए णं से उसभदत्ते माहणे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिए णंदिए पीइमणे परमसो-मणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे बहुसालए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसणपडिपुच्छण - पज्जु-वासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवय-णस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिए! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासमो। एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ॥

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः अस्यां कथायां लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवश-विसर्पद्मानहृदयः यत्रैव देवानन्दा माहनी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य देवानन्दां माहनीं एवम् अवादीत्—एवं खलु देवानुप्रिये! श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी आकाशगतेन चक्रेण यावत् सुखं-सुखेन विहरन् बहुशालके चैत्ये यथा प्रतिरूपं अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति। तत् महत्फलं खलु देवानुप्रिये! तथारूपाणां अर्हतां भगवतां नामगोत्रस्यापि श्रवणं, किमङ्ग पुनः अभिगमन-वन्दन-नमस्यन-प्रतिप्रच्छन-पर्युपासनम्?

एकस्यापि आर्यस्य धार्मिकस्य सुवचनस्य श्रवणं, किमङ्ग पुनः विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणम्?

तत् गच्छामः देवानुप्रिये! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामहे नमस्यामः सत्कारयामः सम्मानयामः कल्याणं मंगलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्महे। एतन् नः प्रेत्यभेव इहभेव च हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भविष्यति।

१३९. [1]वह ऋषभदत्त ब्राह्मण इस कथा की जानकारी प्राप्त कर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। जहां देवानंदा ब्राह्मणी है वहां आता है, आकर देवानंदा ब्राह्मणी से इस प्रकार कहता है—देवानुप्रिये! श्रमण भगवान महावीर आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आकाशगत धर्मचक्र से शोभित यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए बहुशालक चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रिये! ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रति-पृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान् फलदायक है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या?

इसलिए देवानुप्रिये! हम चलें, श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें, भगवान कल्याण-कारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले हैं। हम उनकी पर्युपासना करें। यह हमारे इहभव और परभव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

भाष्य

१. सूत्र—१३९

आगासगएणं चक्केणं—यह पाठ-समूह औपपातिक से लिया गया है।[2] इस पाठ-समूह में छत्र, चामर, सिंहासन और धर्मध्वज का वर्णन है। यह मूल भगवती का प्रतीत नहीं होता।

१४०. तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा

ततः सा देवानन्दा माहनी ऋषभदत्तेन माहनेन एवम् उक्ता सती हृष्टतुष्टचित्ता आनन्दिता नन्दिता प्रीतिमना परमसौम-

१४०. देवानंदा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण के यह कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाली

१. (क) भ. २/२४।
(ख) वही, ११/१८६।
(ग) वही १५/१५।
२. ओवा. सू. १९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाण हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्ठं विणएणं पडि-सुणेइ॥

नस्यिता हर्षवशविसर्पद्मानहृदया करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा ऋषभदत्तस्य माहनस्य एतमर्थं विनयेन प्रतिशृणोति।

परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गई। वह दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार करती है।

१४१. तए णं से उसभदत्ते माहणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! लहुकरणजुत्त-जोइय-सम-खुरवालिहाण-समलिहियसिंगेहिं, जंबूणयामय-कलावजुत्तपतिविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुयपवर - कंचणनत्थपग्ग-होग्गहियएहिं, नीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिरयण-घंटियाजालपरिगयं, सुजायजुग-जोत्त - रज्जुयजुग - पसत्थसुविर - चिय-निमियं, पवरलक्खणोववेयं-धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एत-माणत्तियं पच्चप्पिणह॥

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! लघुकरणयुक्त–यौगिक–समखुरबालधान-समलिखितशृङ्गैः जाम्बूनदमय-कलापयुक्त-प्रतिविशिष्टैः रजतमयघण्टा-सूत्ररज्जुक प्रवरकाञ्चन 'नत्था' प्रग्रहगृहीतैः नीलोत्पलकृत 'आमेलएहिं' प्रवरगोयुवभिः नानामणिरत्न-घण्टिकाजाल- परिगतं सुजातयुग-योक्त्र-रज्जुकयुग-प्रशस्तसुविरचितनिर्मितं प्रवरलक्षणोपेतं धार्मिक यानप्रवरं युक्तमेव उपस्थपयत, उपस्थाप्य माम् एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत।

१४१. ऋषभदत्त ब्राह्मण ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! शीघ्र गति-क्रिया की दक्षता से युक्त, समान खुर और पूंछ वाले, समान रूप से उल्लिखित सींग वाले, स्वर्णमय कलाप से युक्त, प्रतिविशिष्ट–प्रधान रजतमय घण्टा वाले, धागे की डोरी तथा प्रवर कंचनमय नथिनी की डोरी से बंधे हुए, नील उत्पल के सेहरे वाले, प्रवर तरुण बैल जिसमें जोते गए हैं, जिस पर नाना मणि, रत्न और घंटिका जाल वाली झूल डाली हुई है, श्रेष्ठ काठ की जुआ और जोत (जूए को बैल की गर्दन से जोतने वाली रस्सी) रज्जुयुग्म प्रशस्त, सुविरचित और निर्मित है, प्रवर लक्षण से उपेत है वैसे धार्मिक यानप्रवर को तैयार कर शीघ्र उपस्थित करो। उपस्थित कर मेरी इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

भाष्य

१. सूत्र–१४१

शब्द-विमर्श

बहुकरण जुत्त जोइय–यह पाठ भगवती और ज्ञातधर्मकथा[1] में सदृश है। अभयदेवसूरि ने भगवती वृत्ति में लहुकरण जुत्त का अर्थ शीघ्र क्रिया करने में दक्षता से युक्त तथा जोइय का अर्थ यौगिक–प्रशस्त योग वाला किया है।[2] ज्ञातधर्मकथा की वृत्ति में उन्होंने इसका अर्थ भिन्न प्रकार से किया है–**लघुकरण युक्त**–शीघ्र क्रिया करने में दक्षता से युक्त पुरुष के द्वारा योजित यानप्रवर–यंत्र यूप आदि से व्यवस्थित।[3] यह **प्रवरगोणजुवाणय** का विशेषण है इसलिए प्रसंग के आधार पर इसका अर्थ–शीघ्र गति क्रिया की दक्षता से युक्त होने के कारण वे रथ में जोते गए हैं–होना चाहिए।

- **खुर**–खुर
- **बलियाण**–पूंछ।
- **सम लिहियसिंग**–शस्त्र के द्वारा बाहर की चमड़ी का अपनयन किया गया है।
- **जंबूनदमय कलाप**–स्वर्णमय कलाप, कण्ठाभरण।
- **पइविसिट्ठ**–प्रधान।
- **रयणमय घंटा**–चांदी का घंटा।
- **सुत्त रज्जुय**–रूई से बनी हुई डोरी।
- **नत्थ**–नासिका रज्जु
- **पग्गह**–लगाम
- **ओग्गहिय**–बद्ध
- **आसेलय**–सेहरा
- **घंटिया जाल**–घंटिका युक्त जाल
- **जुग**–जूआ

१. नाया.१/३/१०; १८/५२।

२. भ. वृ. ९/१४१–लघुकरणं–शीघ्रक्रियादक्षत्वं तेन युक्तौ योगिकौ च प्रशस्तयोगवन्तौ प्रशस्तसदृशरूपत्वाद्यौ तौ तथा।

३. ज्ञाता वृ. प. ९९–लघुकरणं गमनादिकः शीघ्रक्रियार्थः दक्षत्वमित्यर्थः तेन युक्ताः ये पुरुषास्तैर्यौ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

ततः कौटुम्बिकपुरुषाः ऋषभदत्तेन माहनेन एवम् उक्ता सन्तः हृष्टतुष्टचित्ताः आनन्दिताः नन्दिताः प्रीतिमानसः परमसौमनस्यिताः हर्षवशविसर्पद्मान-हृदयाः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं स्वामिन्! तथेति आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य, क्षिप्रमेव लघुकरणयुक्तं यावत् धार्मिकं यानप्रवरं युक्तमेव उपस्थाप्य तम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

१४२. वे कौटुम्बिक पुरुष ऋषभदत्त ब्राह्मण के यह कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले हो गए। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'स्वामी! आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा', यह कहकर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर शीघ्र गतिक्रिया की दक्षता से युक्त यावत् धार्मिक यानप्रवर को शीघ्र उपस्थित कर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित करते हैं।

१४३. तए णं से उसभदत्ते माहणे ण्हाए जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढे॥

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः स्नातः यावत् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरः स्वस्मात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव धार्मिकः यानप्रवरः तत्रैव उपागच्छति उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरम् आरूढः।

१४३. ऋषभदत्त ब्राह्मण ने स्नान यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। (इस प्रकार सज्जित होकर) अपने घर से निकले. घर से निकलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला है, जहां धार्मिक यानप्रवर है वहां आए। वहां आकर धार्मिक यानप्रवर पर आरूढ़ हो गए।

१४४. तए णं सा देवाणंदा माहणी ण्हाया जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं, चिलातियाहिं जाव चेडियाचक्कवाल - वरिसधर - थेर - कंचुइज्ज - महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा॥

ततः सा देवानन्दा माहनी स्नाता यावत् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरा बहुभिः कुब्जाभिः किरातिकाभिः यावत् चेटिकाचक्रवाल-वर्षधर-स्थविरकञ्चुकीय-महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता। अन्तःपुरात् निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव धार्मिकः यानप्रवरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरम् आरूढा।

१४४. देवानंदा ब्राह्मणी ने स्नान यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। बहुत कुब्जा, किरात देशवासिनी यावत् चेटिका समूह, वर्षधर (कृतनपुंसकपुरुष) स्थविर, कंचुकी जनों, प्रतिहार गण और महत्तरक गण के वृन्द से घिरी हुई अन्तःपुर से निकली। निकलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला है, जहां धार्मिक यानप्रवर है, वहां आई। वहां आकर धार्मिक यानप्रवर पर आरूढ़ हो गई।

भाष्य

१. सूत्र–१४४

शब्द-विमर्श

वषहर–अन्तःपुर का रक्षक।

घेरकंचुइ–अंतःपुर के प्रयोजन का निवेदन करने वाला, प्रतिहारी।

महत्तरग–अन्तःपुर के कार्य का चिंतन करने वाला।

१४५. तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढे समाणे नियग-परियालसंपरिवुडे

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः देवानन्दया माहन्या सार्धं धार्मिकं यानप्रवरं आरूढः सन् निजकपरिवारसंपरिवृतः माहनकुण्डग्रामं

१४५. ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानंदा ब्राह्मणी के साथ अपने परिवार से परिवृत होकर ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के बीचोबीच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहणकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थकरातिसए पासइ, पासित्ता धम्मियं जाण-प्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरु-हित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभि-गच्छति, (तं जहा–१. सच्चित्ता णं दव्वाणं विओसरणयाए २. अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरण-याए ३. एगसाडिएणं उत्तरासंग-करणेणं ४. चक्खुप्फासे अंजलि-प्पगहेणं ५. मणसो एगत्ती-करणेणं) जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जु-वासणाए पज्जुवासइ॥

नगरं मध्यंमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव बहुशालके चैत्ये तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य छत्रादीन् तीर्थंकरातिशयान् पश्यति, दृष्ट्वा धार्मिकं यानप्रवरं स्थापयति, स्थापयित्वा धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं पञ्चविधेन अभिगमेन अभिगच्छति (तद् यथा–१. सचित्तानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन २. अचित्तानां द्रव्याणां अव्युत्सर्जनेन ३. एकशाटिकेन उत्तरासंग-करणेण ४. चक्षुस्स्पर्शे अञ्जलिप्रग्रहेण ५. मनसः एकत्वीकरणेण) यत्रैव श्रमणं भगवन्तं महावीरं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य त्रिः आदक्षिण- प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपास्ते।

निर्गमन करते हैं। निर्गमन कर जहां बहुशालक चैत्य है वहां आते हैं, वहां आकर तीर्थंकर के छत्र आदि अतिशयों को देखते हैं। देखकर धार्मिक यानप्रवर को स्थापित करते हैं, स्थापित कर धार्मिक यानप्रवर से उतरते हैं। उतरकर पांच प्रकार के अभिगमों से श्रमण भगवान महावीर के पास जाते हैं, (जैसे–१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना ३. एक शाटक वाला उत्तरासंग करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धांजलि होना ५. मन को एकाग्र करना) जहां श्रमण भगवान महावीर है, वहां आते हैं। यहां आकर दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन-नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करते हैं।

भाष्य

१. सूत्र–१४५

अभिगम के लिए द्रष्टव्य भगवती २/९७ का भाष्य।

१४६. तए णं सा देवाणंदा माहणी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चो-रुहति पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-थेरकंचुइज्ज - महत्तरगवंदपरि-क्खित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, (तं जहा–१. सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए २. अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए ३. विण-योणयाए गायलट्ठीए ४. चक्खु-प्फासे अंजलिपग्गहेणं ५. मणस्स एगत्तीभावकरणेणं) जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उसभदत्तं माहणं पुरओ कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सू-समाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ॥

ततः सा देवानंदा माहनी धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य बहुभिः कुब्जाभिः यावत् चेटिकाचक्रवाल-वर्षधर-स्थविरकंचुकीय-महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता श्रमणं भगवन्तं महावीरं पञ्चविधेन अभि-गमेन अभिगच्छति (तद्यथा–१. सचित्तानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन २. अचित्तानां द्रव्याणाम् अव्युत्सर्जनेन ३. विनयावनतया गात्रयष्ट्या ४. चक्षुःस्पर्शे अञ्जलिप्रग्रहेण ५. मनसः एकत्वीभावकरणेण) यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपाग-च्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा ऋषभदत्तं माहनं पुरतः कृत्वा स्थिता चैव सपरिवारा शुश्रूषमाना नमस्यती अभिमुखा विनयेन प्राञ्जलिकृता पर्युपासते।

१४६. देवानंदा ब्राह्मणी धार्मिक यानप्रवर से उतरती है। उतरकर बहुत कुब्जा, यावत् चेटिकासमूह, वर्षधर, स्थविर, कंचुकी-जनों, महत्तरक गण के वृन्द से घिरी हुई पांच प्रकार के अभिगमों से श्रमण भगवान् महावीर के पास जाती है। (जैसे–१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना ३. शरीरयष्टि को विनयावनत करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धांजलि होना ५. मन को एकाग्र करना) जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आती है। आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करती है। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार कर ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे कर, स्थित हो परिवार सहित शुश्रूषा और नमस्कार करती हुई सम्मुख रहकर विनयपूर्वक बद्धांजलि पर्युपासना कर रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४७. तए णं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरिय-वलयबाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धारा-हयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ॥

ततः सा देवानन्दा माहनी आगतप्रस्नया प्रप्लुतलोचना संवृतवलयबाहा कञ्चुक-परिक्षिप्तका धाराहतकदम्बकम् इव समुच्छ्रितरोमकूपा श्रमणं भगवन्तं अनिमि-षया दृष्ट्या पश्यन्ती-पश्यन्ती तिष्ठति।

१४७. उस समय देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली और नेत्र जल से भींग गए। हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंध अवरोध बन गए, कंचुकी विस्तृत हो गई, मेघ की धारा से आहत कदम्बपुष्प की भांति रोमकूप समुच्छ्वसित हो गए। वह श्रमण भगवान महावीर को अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

१४८. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–किं णं भंते! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संव-रियवलयबाहा कंचुयपरिक्खि-त्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसविय-रोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ?

भदन्त! अयि! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम् अवादीत्–किं भदन्त! एषा देवानन्दा माहनी आगतप्रस्नया प्रप्लुत-लोचना संवृतवलयबाहा कञ्चुक-परिक्षिप्तिका धाराहतकदम्बकम् इव समुच्छ्रितरोमकूपा देवानुप्रियं अनिमिषया दृष्ट्या पश्यन्ती पश्यन्ती तिष्ठति?

१४८. भंते! यह कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले–भंते! क्या देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली? नेत्र जल से भींग गए? हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंध अवरोध बन गए? कंचुकी विस्तृत हो गई? मेघ की धारा से आहत कदम्बपुष्प की भांति रोमकूप उच्छ्वसित हो गए? वह देवानुप्रिय को अनिमेष दृष्टि से देख रही है?

गोयमादि! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–एवं खलु गोयमा! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माह-णीए अत्तए। तण्णं एसा देवाणंदा माहणी तेणं पुव्वपुत्त-सिणेहरागेणं आगयपण्हया पप्पुय-लोयणा, संवरियवलयबाहा कंचुय-परिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसविय-रोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ॥

अयि गौतमः! श्रमणः भगवान् महावीरः श्रमणं भगवन्तं एवं अवादीत्-एवं खलु गौतम! देवानन्दा माहनी मम अम्बा, अहं देवानन्दायाः माहन्याः आत्मजः। 'तत् एषा' देवानंदा माहनी तेन पूर्वपुत्रस्नेहरागेन आगतप्रस्नया प्रप्लुतलोचना संवृत बलयबाहा कञ्चुकपरिक्षिप्तिका धाराहत-कदम्बकम् इव समुच्छ्रितरोमकूपा मम अनिमिषया दृष्ट्या पश्यन्ती पश्यन्ती तिष्ठति।

हे गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा–गौतम! देवानंदा ब्राह्मणी मेरी माता है, मैं देवानंदा ब्राह्मणी का आत्मज हूं। इसलिए उस पूर्व पुत्र-स्नेह राग के कारण[1] देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली। नेत्र जल से भींग गए। हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंध अवरोध बन गए, कंचुकी विस्तृत हो गई। मेघ की धारा से आहत कदम्ब पुष्प की भांति रोमकूप उच्छ्वसित हो गए। वह मुझे अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

भाष्य

१. सू. १४८

१. आत्मज हूं.....पूर्वपुत्र स्नेह राग के कारण

अत्तयं.... पुव्वपुत्तसिणेहरागेणं

भगवान महावीर बता रहे हैं–मैं देवानंदा का आत्मज हूं। पूर्व पुत्र-स्नेह राग के कारण–यह पाठ इस घटना का सूचक है–मेरा प्रथम गर्भाधान देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में हुआ था। गर्भ-संहरण के पश्चात् त्रिशला मेरी माता बनी।[1]

---

१. भ. वृ. ९/१४८–अत्तएत्ति आत्मजः पुत्रः पुव्वपुत्तसिणेहाणुरागेणं त्ति पूर्वः–प्रथमगर्भाधानकालसंभवो यः पुत्रस्नेहलक्षणोऽनुरागः स पूर्वपुत्रस्नेहानुरागस्तेन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४९. तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए माहणीए तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइप-रिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसय-वंदाए अणेगसयवंदपरियालाए ओहबले अइबले महब्बले अपरिमियबलवीरिय-तेय - माहप्प - कंति - जुत्ते सारय-नवत्थणिय - महुरगंभीर - कोंचणि-ग्घोस-दुंदुभिस्सरे उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ–धम्मं परि-कहेइ जाव परिसा पडिगया॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः ऋषभदत्तस्य माहनस्य देवानंदायाः माहन्याः तस्यां च महामहत्यां ऋषिपरिषदि यतिपरिषदि अनेकशतायाम् अनेकशतवृन्दायाम् अनेक-शतवृन्दपरिवारे ओघबलः अतिबलः महाबलः अपरिमितबल-वीर्य-तेजस-माहात्म्य-कान्तियुक्तः शारद-नवस्तनित-मधुरगम्भीर-क्रौञ्चनिर्घोष-दुन्दुभिस्वरः उरसिविस्तृतया कण्ठे वर्तितया शिरसि समाकीर्णया अगरलया अमन्मनया सुव्यक्ताक्षरया-सन्निपातिकया पूर्णरक्तया सर्वभाषानुगामिन्या सरस्वत्या योजन निर्हारिणा स्वरेण मागध्यां भाषायां भाषते-धर्मं परिकथयति यावत् परिषद् प्रतिगता।

१४९. [1]श्रमण भगवान महावीर ने ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानंदा ब्राह्मणी को उस विशाल परिषद् में धर्म का प्रतिबोध दिया, जिस परिषद् में ऋषि-परिषद्, मुनि-परिषद्, यति-परिषद् और देव-परिषद् का समावेश है। उन परिषदों में सैकड़ों-सैकड़ों मनुष्यों के समूह बैठे हुए थे। भगवान महावीर का बल ओघबल, अतिबल और महाबल–इन तीन रूपों में प्रकट हो रहा था। वे अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य और कांति से युक्त थे। उनका स्वर शरद ऋतु के मेघ के नव गर्जन, क्रौंच के निर्घोष तथा दुंदुभि की ध्वनि के समान मधुर और गंभीर था। धर्म कथन के समय भगवान की वाणी वक्ष में विस्तृत, कंठ में वर्तुल और सिर में संकीर्ण होती थी। वह गुनगुनाहट और अस्पष्टता से रहित थी। उसमें अक्षर का सन्निपात स्पष्ट था। वह स्वर-कला से पूर्ण और ज्ञेय राग से अनुरक्त थी। वह सर्व भाषानुगामिनी–स्वतः ही सब भाषाओं में अनुदित हो जाती थी। भगवान एक योजन तक सुनाई देने वाले स्वर में अर्द्धमागधी भाषा में बोले। प्रवचन के पश्चात् परिषद् लौट गई।

भाष्य

१. सूत्र–१४९

प्रस्तुत सूत्र में भगवान महावीर की परिषद् का वर्णन किया गया है। उस परिषद् के चार विभागों का उल्लेख है–

१. महर्षि परिषद् २. मुनि परिषद् ३. यति परिषद् ४. देव परिषद्। प्रत्येक परिषद् में अनेक सैकड़ों, अनेक सैकड़ों के वृन्द तथा अनेक सैकड़ों के वृन्द रूपी परिवार विद्यमान थे।[1]

सूत्रकृतांग में मुनि के लिए श्रमण, माहण, भिक्षु और निर्ग्रंथ–इन चार शब्दों का प्रयोग किया गया है।[2] उनमें ऋषि, मुनि और यति का प्रयोग नहीं है।

अभयदेव सूरि ने ऋषि का अर्थ द्रष्टा किया है।[3] यास्क-निरुक्त में भी ऋषि का अर्थ द्रष्टा किया गया है।[4] सूत्रकृतांग में भगवान महावीर को ऋषियों में श्रेष्ठ कहा गया है।[5] उत्तराध्ययन में भी ऋषि शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[6]

मुनि शब्द बहुत बार प्रयुक्त है। इसका अर्थ है ज्ञानी– नाणेण य मुणी होइ।[7] अभयदेवसूरि ने मुनि का अर्थ वाचंयम किया है।[8] अभयदेव सूरि ने यति का अर्थ धर्म क्रिया में प्रयतमान किया है।[9] यति शब्द यम धातु से निष्पन्न है इसलिए इसका अर्थ संयमी होना चाहिए।

ओघ बल आदि पद-समूह भगवान् महावीर के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।

ओघबल–ओघ का एक अर्थ है अविच्छेद। जिसका बल प्रवाह रूप में अविच्छिन्न रहता है, वह व्यक्ति ओघबल कहलाता है। अभयदेवसूरि ने ओघबल का अर्थ अव्यवच्छिन्न बल किया है।[10]

१. औप. वृ. प. १४७–अणेगसयवंदाए त्ति अनेकानि शत प्रमाणानि वृन्दानि यस्यां सा तथा तस्याः अणेगसयवंदपरियालाए अनेन शतमानानि यानि वृन्दानि तानि परिवारो यस्याः सा तथा तस्याः।
२. सूय० १ १६ १
३. (क) भ. वृ. ९. १४९।
(ख) औप. वृ. प. १४६,१४७।
४.
५. सूय. १/६/२१।
६. उत्तर. १२/४४,४७।
७. उत्तर. २५/३०।
८. (क) भ. वृ. ९/१४९–मुनयो वाचंयमाः।
(ख) औप. वृ. प. १४७ मौनवत्साधूनां वाचंयमसाधूनामित्यर्थः।
९. (क) भ. वृ. ९/१४९–यतयस्तु धर्मक्रियासु प्रयतमानाः।
(ख) औप वृ. प. १४७ यतन्ते चारित्रं प्रति प्रयत्ना भवन्तीति यतयः।
१०. वही, प. १४७–ओहबले त्ति अव्यवच्छिन्न बलः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय बल–अतिशय बल वाला।[1]

महाबल–प्रशस्त बल वाला।[2]

अपरिमित बल–असीम बल वाला।[3]

अभयदेव सूरि ने बल का अर्थ शारीरिक प्राण और वीर्य का अर्थ जीव से उत्पन्न शक्ति किया है।[4] प्रथम शतक में बतलाया गया है–वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है।[5] इन दोनों भिन्न वक्तव्यों का नय दृष्टि से समाधान किया जा सकता है। वीर्य के दो प्रकार हैं–लब्धिवीर्य और करणवीर्य। लब्धिवीर्य अन्तराय कर्म का क्षायोपशमिक भाव है, वह जीव से उत्पन्न शक्ति है। करणवीर्य शरीर नामकर्म का औदयिक भाव है, वह शरीर से उत्पन्न शक्ति है।[6]

तेज–दीप्ति।

माहात्म्य–महानता।

कांति–कमनीयता।

शारदनयस्तनित–प्रस्तुत आलापक में भगवान महावीर की धर्म देशना का निरूपण है। उसमें स्वर, सरस्वती, भाषा–इन तीन तत्त्वों का प्रतिपादन है। भगवान का स्वर शरद ऋतु के मेघ, क्रौंच के निर्घोष और दुन्दुभि के स्वर के समान मधुर और गंभीर था।

उनकी वाणी (सरस्वती) वक्ष में विस्तृत, कंठ में वर्तुल और मूर्धा–मुख के भीतर का तालु और कंठ के बीच का वह भाग जो मस्तक या शीर्षस्थान के ठीक नीचे पड़ता है और जहां से मूर्धन्य वर्णों का उच्चारण होता है–में संकीर्ण थी।

संस्कृत व्याकरण में वर्णों के स्थान और आस्य–प्रयत्न बतलाए गए हैं।[7]

इस प्रसंग में ध्वनि की उत्पत्ति बतलाई गई है। नाभिप्रदेश से प्रयत्न-प्रेरित प्राण नाम का वायु ऊपर की ओर जाता है। वह उर आदि स्थानों में से किसी स्थान पर चोट करता है, उससे ध्वनि उत्पन्न होती है।[8]

संगीतसमयसार में स्वर आदि की उत्पत्ति के संक्षेप में तीन ही स्थान बतलाए गए हैं–हृदय, कंठ और सिर।[9]

प्रतीत होता है–सूत्रकार ने संगीत विधि का उपयोग कर इन तीन स्थानों का निर्देश किया है।

वृत्तिकार ने वक्ष को विस्तीर्ण, कंठ विवर को वर्तुल और मूर्धा को संकीर्ण बतलाया है।[10]

अगरल–सुविभक्त अक्षरवाली।

अमम्मण–स्पष्ट उच्चारण वाली।

सुव्वत्तक्खरसण्णिवाइया–सुव्यक्त अक्षर सन्निपात (वर्ण संयोग) वाली।

पुण्णा–पूर्णा, स्वर कला से पूर्ण

रत्ता–ज्ञेय राग से अनुरक्त।

सर्वभाषानुगामिनी–औपपातिक में बतलाया गया है कि तीर्थंकर की वाणी अनेक भाषाओं में परिणत हो जाती है।[11]

आवश्यक निर्युक्ति और चूर्णि के अनुसार तीर्थंकर की वाणी को सुनने वाले सब लोग अपनी-अपनी भाषा में सुनते-समझते हैं।[12] इस आशय का एक संस्कृत श्लोक प्रसिद्ध है–

देवा देवीं नरा नारीं शबराश्चापि शाबरीम्।
तिर्यंचोऽपि हि तैरिश्चिं भेदिरे भगवद्गिरम्॥

जोयण नीहारिणा–तीर्थंकर की वाणी एक योजन तक सुनाई देती है। यह ज्योतिष अतिशयों में से एक अतिशय है।[13]

१५०. तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी–एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते!

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–एवमेतद् भदन्त! तथैतद् भदन्त! अवितथमेद् भदन्त! असंदिग्धमेतद्

१५०. ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट होकर उठने की मुद्रा में उठता है, उठकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला–भंते! यह ऐसा ही

---

१. वही, प. १४७–अतिशयं बलं यस्य सोऽतिशयबलः।

२. वही, प. १४७–महद्बलमिति प्रशस्तबलः।

३. वही, प. १४७–अपरिमितानि अनवधीनि यानि बलवीर्याणि।

४. औप. वृ. प. १४७–बलं–शरीरः प्राणः वीर्यं जीवप्रभवं।

५. भ. १ १४४।

६. भ. १ ३७६-३८२ का भाष्य।

७. हेम प्रकाश महाव्याकरण, पूर्वार्ध, सूत्र २१,२५–

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वा मूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।
आस्य प्रयत्नाः स्पृष्टाद्याः विवाराद्यास्तु बाह्यकाः॥

८. हेम प्रकाश व्याकरण, पूर्वार्ध, सूत्र २३ की वृत्ति नाभि-प्रदेशात्-प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन् उरःप्रभृतीनां स्थानानामन्यतमस्मिन स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते स विधार्यमाणः स्थानमभिहन्ति, तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यते आकाशे, सा वर्णयुनि, स वर्णोत्पादलाभः।

९. संगीतसार १.९.१०

स्वरादीनां उत्पत्तिहेतुत्वात् स्थानम्।
त्रीणि स्थानानि हृत्कंठशिरांसीति समासतः॥

१०. औप. वृ. प. १४७–उरे वित्थडाए–उरसि विस्तृतया उरसो विस्तीर्णत्वात्, सरस्वत्येति योगः 'कंठेऽवट्टियाए' गलविवरस्य वर्तुलत्वात्, सिरे समाइण्णाए' मूर्ध्नि संकीर्णया आयामस्य मूर्ध्नः स्थगितत्वात्।

११. ओव. सू. ९१–सावियणं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।

१२. श्री भिक्षु आगम विषय कोश पृ. ३०४

१३. अभिधान चिन्तामणि १/५८-५९–

क्षेत्रे स्थितिर्योजनमात्रकेऽपि, नृदेवतिर्यग्जनकोटिकोटेः।
वाणी नृतिर्यक्सुरलोकभाषा, संवादिनी योजनगामिनी च॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छियमेयं भंते! पडि-च्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडि-च्छियमेयं भंते!—से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमति, अवक्क-मित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आया-हिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य।

से जहानामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्क-मइ। एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

एवामेव देवाणुप्पिया! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसया, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभियसन्निवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वाविय सयमेव मुंडाविय, सयमेव सेहाविय, सयमेव सिक्खाविय, सयमेव आयारगोयरं विणय-वेणइय-चरण-करण - जायामाया - वत्तियं धम्म-माइक्खियं॥

भदन्त! इष्टमेतद् भदन्त! प्रतीष्टमेतद् भदन्त! इष्टप्रतीष्ट-मेतद् भदन्त! तद् यथेदं यूयं वदथ इति कृत्वा उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागम् अपक्रामति, अपक्राम्य स्वयमेव आभरणमाल्यालंकारम् अवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीद्-आदीप्तः भदन्त! लोकः, प्रदीप्तः भदन्त! लोकः, आदीप्त-प्रदीप्तः भदन्त! लोकः जरसा मरणेन च। अथ यथानामकः कश्चिद् 'गाहावई' अगारे ध्मायमाने यः सः तत्र भाण्डः भवति अल्पभारः मूल्यगुरुकः तं गृहीत्वा आत्मना एकान्तमन्तम् अपक्रामति। एष मम निस्तारितः सन् पश्चात् पुरा च हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति।

एवमेव देवानुप्रिय! ममापि आत्मा एकः भाण्डः इष्टः कान्तः प्रियः मनोज्ञः मणामे स्थैर्यवान् वैश्वासिकः सम्मतः बहुमतः अनुमतः भाण्डकरण्डकसमानः, मा शीतं, मा उष्णं, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा चौराः, मा व्यालाः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिकाः विविधाः रोगातंकाः परीषहोपसर्गाः स्पृशन्तु इति कृत्वा एषः मम निस्तारितः सन् परलोकस्य हिताय, सुखाय, क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति तद् इच्छामि देवानुप्रिय! स्वयमेव प्रव्राजितं स्वयमेव मुण्डितं, स्वयमेव शैक्षापितं, स्वयमेव शिक्षापितं स्वयमेव आचार-गोचरं विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रामात्रा-प्रत्ययं धर्माख्यातम्।

है, भंते! यह तथा (संवादितापूर्ण) है, भंते! यह अवितथ है, भंते! यह असंदिग्ध है, भंते! यह इष्ट है, भंते! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है और भंते! यह इष्टप्रतीप्सित है—

जैसा आप कह रहे हैं—ऐसा भाव प्रदर्शित कर वह उत्तर पूर्व दिशा भाग (ईशान कोण) की ओर जाता है, जाकर स्वयं ही आभरण अलंकार उतारता है, उतार कर स्वयं ही पंचमुष्टि लोच करता है, लोच कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो रहा है (जल रहा है) भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त-प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे किसी गृहपति के घर में आग लग जाने पर वह वहां जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है, उसे लेकर स्वयं एकान्त स्थान में चला जाता है। (और सोचता है)—अग्नि से निकाला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

देवानुप्रिय! इसी प्रकार मेरा शरीर भी एक उपकरण है। वह इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। इसे सर्दी-गर्मी न लगे, भूख-प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस्र पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपात-जनित विविध प्रकार के रोग और आतंक, परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे, इस अभिसंधि से मैंने इसे पाला है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह परलोक में मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा, इसलिए देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा ही प्रव्रजित होना चाहता हूं, मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूं तथा आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूं।

भाष्य

१. सूत्र–१५०

द्रष्टव्य २/५२ का भाष्य।

१५१. तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तं माहणं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मुंडावेइ, सयमेव सेहावेइ, सयमेव सिक्खावेइ, सयमेव आयार-गोयरं विणय-वेणइय-चरण-करण जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खइ–एवं–देवाणुप्पिया गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीइयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं एवं उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं।

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः ऋषभदत्तं माहनं स्वयमेव प्रव्राजयति, स्वयमेव मुण्डयति, स्वयमेव शैक्षयति स्वयमेव शिक्षयति, स्वयमेव आचार-गोचरं विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रामात्रा-प्रत्ययं धर्ममाख्याति–एवं देवानुप्रिय! गन्तव्यम्, एवं स्थातव्यम्, एवं निषत्तव्यम्, एवं त्वक्वर्तितव्यम्, एवं भोक्तव्यम्, एवं भाषितव्यम् एवं उत्थाय-उत्थाय प्राणेषु भूतेषु जीवेषु सत्वेषु संयमेन संयतितव्यम्, अस्मिन् च अर्थे न किञ्चिदपि प्रमादितव्यम्।

१५१. [1]श्रमण भगवान महावीर ऋषभदत्त ब्राह्मण को स्वयं ही प्रव्रजित करते हैं, स्वयं ही मुंडित करते हैं, स्वयं ही शैक्ष बनाते हैं, स्वयं ही शिक्षित करते हैं और स्वयं ही आचार-गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान करते हैं–देवानुप्रिय! इस प्रकार चलना चाहिए, इस प्रकार ठहरना चाहिए, इस प्रकार बैठना चाहिए, इस प्रकार करवट लेनी चाहिए, इस प्रकार भोजन करना चाहिए, इस प्रकार बोलना चाहिए, इस प्रकार पूर्ण जागरूकता से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयम से रहना चाहिए। इस अर्थ में किंचित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवाल-सेहिं, मासद्ध-मासखमणेहिं विचि-त्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरति नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ, आराहेत्ता चरमेहिं उस्सासनीसासेहिं सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे॥

ततः सः ऋषभदत्तः माहनः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य इमम् एतद्रूपं धार्मिकम् उपदेशं सम्यक् सम्प्रतिपद्यते यावत् सामायिकादिकानि एकादश अंगानि अधीते, अधीत्य बहुभिः चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम-दशम- द्वादशैः मासार्द्धमासक्षपणैः विचित्रैः तपः- कर्मभिः आत्मानं भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयति, जोषित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्वा यस्यार्थं क्रियते नग्नभावः यावत् तमर्थम् आराधयति आराध्य चरमेषु उच्छ्वास-निश्वासेषु सिद्धः बुद्धः मुक्तः परिनिवृतः सर्वदुःखप्रहीनः।

वह ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है यावत् सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है। अध्ययन कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, अर्धमास और मासक्षपण–इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन करता है। पालन कर एक मास की संलेखना से अपने शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठभक्त (भोजन के समय) का छेदन करता है, छेदन कर जिस प्रयोजन से नग्नभाव यावत् उस प्रयोजन की आराधना करता है। उसकी आराधना कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र–१५१

द्रष्टव्य भगवई २/५३ का भाष्य

१५२. तए णं सा देवाणंदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! एवं जहा उसभदत्तो तहेव जाव धम्ममाइ-क्खियं॥

ततः सा देवानन्दा माहनी श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिक धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते-नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीद्-एवमेतद् भदन्त! तथैतद् भदन्त! एवं यथा ऋषभदत्तः तथैव यावत् धर्मः आचक्षितः।

१५२. देवानंदा ब्राह्मणी श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट-तुष्ट होकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोली–भंते! यह ऐसा ही है, भंते! यह तथा (संवादिता पूर्ण)– इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त ने कहा वैसे ही यावत् धर्म का आख्यान चाहती हूं।

१५३. तए णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेइ, पव्वावेत्ता सयमेव अज्जचंदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः देवानन्दां माहनीं स्वयमेव प्रव्राजयति, प्रव्राज्य स्वयमेव आर्यचन्दनायाः शिष्यात्वाय ददाति।

१५३. श्रमण भगवान महावीर देवानंदा ब्राह्मणी को स्वयं ही प्रव्रजित करते हैं, प्रव्रजित कर स्वयं ही आर्या चंदना की आर्या शिष्या के रूप में सौंप देते हैं।

१५४. तए णं सा अज्जचंदणा अज्जा देवाणंदं माहणिं सयमेव मुंडावेति, सयमेव सेहावेति। एवं जहेव उसभदत्तो तहेव अज्ज चंदणाए अज्जाए इमं एयारूवं धम्मियं उवदेसं सम्मं संपडि-वज्जइ, तमाणाए तह गच्छइ जाव संजमेणं संजमति॥

ततः सा आर्यचन्दना आर्या देवानन्दां माहनीं स्वयमेव मुण्डयति स्वयमेव शैक्षयति। एवं यथैव ऋषभदत्तः तथैव आर्यचन्दनायाः आर्यायाः इमम् एतद्रूपं धार्मिकम् उपदेशं सम्यक् सम्प्रतिपद्यते, तदाज्ञया तथा गच्छति यावत् संयमेन संयच्छति।

१५४. आर्या चंदना आर्या देवानंदा ब्राह्मणी को स्वयं ही मुंडित करती हैं, स्वयं ही शैक्ष बनाती हैं। इस प्रकार ऋषभदत्त की भांति देवानंदा ब्राह्मणी आर्या चंदना के इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है, उसे भली भांति जानकर वैसे ही संयमपूर्वक चलती है यावत् संयम से संयत रहती है।

१५५. तए णं सा देवाणंदा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतियं सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमास-खमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा॥

ततः सा देवानंदा आर्या आर्यचन्दनायाः आर्यायाः अन्तिकं सामायिकादिकानि एकादश अङ्गानि अधीते, अधीत्य बहुभिः चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम-दशम-द्वादशैः, मासा-र्द्धमासक्षपणैः, विचित्रैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयती बहूनि वर्षाणि श्रामण्य पर्यायं प्रापनोति, प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषति, जोषित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छिनत्ति-छित्वा चरमेषु उच्छ्वास–निश्वासेषु 'बुद्धा' मुक्ता परिनिर्वृता सर्वदुःखप्रहीना।

१५५. आर्या देवानंदा आर्या चंदना के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करती है। अध्ययन कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम भक्त दशम-भक्त, अर्धमास और मासक्षपण–इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन करती है। पालन कर एक मास की संलेखना से अपने शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठ भक्त का छेदन करती है। छेदन कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाली हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र–१५३-१५५

आर्या चन्दना भगवान महावीर की प्रथम शिष्या थी।[1] पर्युषणा कल्प में आर्या चन्दना को महावीर की छत्तीस हजार साध्वी-शिष्याओं में प्रमुख बतलाया गया है।[2] आगम के व्याख्या साहित्य में आर्या चंदना का विस्तृत वर्णन मिलता है। आर्या चन्दना ने देवानंदा ब्राह्मणी को दीक्षित किया–आगम साहित्य में इस प्रकार का यह प्रथम उल्लेख है।

जमालि-पदं

१५६. तस्स णं माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स पच्चत्थिमे णं एत्थ णं खत्तियकुंडग्गामे नामं नयरे होत्था– वण्णओ। तत्थ णं खत्तियकुंडग्गामे नयरे जमाली नामं खत्तियकुमारे परिवसइ–अड्ढे दित्ते जाव बहुजणस्स अपरिभूते, उप्पिं पासाय-वरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसतिबद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवनच्चिज्जमाणे-उवनच्चिज्जमाणे, उवगिज्जमाणे-उवगिज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे-उवलालिज्जमाणे, पाउस-वासारत्त-सरद-हेमंत-वसंतगिम्ह-पज्जंते छप्पि उऊ जहाविभवेणं माणेमाणे, कालं गालेमाणे, इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भव-माणे विहरइ॥

जमालि-पदम्

तस्य माहनकुंडग्रामस्य पाश्चात्ये अत्र क्षत्रियकुण्डग्रामः नाम नगरमासीत्–वर्णकः। तत्र क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे जमालिः नाम क्षत्रियकुमारः परिवसति–आढ्यः दीप्तः यावत् बहुजनस्य अपरिभूतः, उपरि प्रासादवरगतः स्फुटद्भिः मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्बद्धैः नाटकैः वरतरुणीसम्प्रयुक्तैः उपनृत्यमानः-उपनृत्यमानः, उपगीयमानः-उपगीयमानः, उपलाल्यमानः-उपलाल्यमानः प्रावृट्-वर्षारात्र-शरद-हेमन्त-वसन्त-ग्रीष्मपर्यन्तान् षडपि ऋतून् यथाविभवेन मानयन्, कालं गालयन्, इष्टान् शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति।

जमालि-पद

१५६. ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के पश्चिम भाग में क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था–वर्णक। उस क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में जमालि नामक क्षत्रियकुमार रहता है–वह सम्पन्न, दीप्तिमान यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय है। वह अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में स्थित है। उसके सामने मृदंग-मस्तकों[1] की प्रबल होती हुई ध्वनि के साथ वर तरुणियों द्वारा संप्रयुक्त बत्तीस प्रकार के नाटक किए जा रहे हैं। उसके लिए नृत्य किया जा रहा है, इसलिए वह उपनृत्यमान है। उसके गुणगान किए जा रहे हैं, उपलालन किया जा रहा है। प्रावृट्, वर्षा-रात्र, शीत, हेमन्त, बसन्त और ग्रीष्म पर्यंत छहों ऋतुओं के विविध अनुभाव का अनुभव करता हुआ, उनका अति यंचरण करता हुआ, इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध–इस पंचविध मनुष्य संबंधी काम-भोग को भोगता हुआ विहार कर रहा है।

भाष्य

१. सूत्र–१५६

१. मृदंग मस्तक–ढोल का ऊपरी भाग, पुट। बत्तीस प्रकार के नाटक : द्रष्टव्य रायपसेणइयं ७४-१२०

१५७. तए णं खत्तियकुण्डग्गामे नयरे सिंघाडग-तिक-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जण-सद्दे इ वा जणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणुम्मी इ वा जणुक्कलिया इ वा जणसण्णि-वाए इ वा बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ, एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं

ततः क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु महान् जनशब्दः इति वा जनव्यूहः इति वा जनबोलः इति वा जनकलकलः इति वा जनोर्मिः इति वा जनोत्कलिका इति वा जनसन्निपातः इति वा बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भाषते, एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति, एवं खलु देवानुप्रियाः! श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी माहनकुण्डग्रामस्य नगरस्य बहिः बहुशालके चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्

१५७. 'क्षत्रियकुंडग्राम नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान् जन-शब्द, जनव्यूह, जनबोल, जन-कलकल, जन-उर्मि, जन-उत्कलिका, जनसन्निपात, बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर धर्मतीर्थ के आदिकर्ता यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशालक चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और

१. समः प. २३३ ३।

२. पज्जो. सू. १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए जहा ओववाइए जाव एगाभिमुहे खत्तिय-कुण्डग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए, तेणेव उवागच्छंति एवं जहा ओववाइए जाव तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासंति॥

विहरति। तत् महत्फलं खलु देवानुप्रियाः! तथारूपाणाम् अर्हतां भगवतां नामगोत्रस्यापि श्रवणं यथा औपपातिके यावत् एकाभिमुखाः क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं मध्यंमध्येन निर्गच्छन्ति, निर्गत्य यत्रैव माहनकुण्डग्रामः नगरं यत्रैव बहुशालकं चैत्यं, तत्रैव उपागच्छन्ति, एवं यथा औपपातिके यावत् त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपासते।

तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रियो! ऐसे अर्हत भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है, औपपातिक की भांति वक्तव्य है, यावत् एक दिशा के अभिमुख क्षत्रियकुंडग्राम नगर के ठीक मध्य से निकलते हैं, निकलकर जहां ब्राह्मणकुंडग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आते हैं। इस प्रकार औपपातिक की भांति वक्तव्य है यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना कर रहे हैं।

भाष्य

१. सूत्र–१५७

द्रष्टव्य भगवती २/३० का भाष्य।

१५८. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तं महया जणसद्दं वा जाव जणसन्निवायं वा सुणमा-णस्स वा पासमाणस्स वा अयमे-यारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था– किण्णं अज्ज खत्तिय-कुंडग्गामे नयरे इंदमहे इ वा, खंदमहे इ वा, मुगुंदमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, कूवमहे इ वा, तडागमहे इ वा, नईमहे इ वा, दहमहे इ वा, पव्वयमहे इ वा, रुक्खमहे इ वा, चेइयमहे इ वा, थूभमहे इ वा, जण्णं एते बहवे उग्गा, भोगा, राइण्णा, इक्खागा, णाया, कोरव्वा, खत्तिया, खत्तियपुत्ता, भडा, भडपुत्ता, जोहा पसत्थारो मल्लई लेच्छई लेच्छईपुत्ता अण्णे य बहवे राईसर–तलवर-माडंबिय-कोडु-बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थ-वाहप्पभितयो ण्हाया कयबलिकम्मा जहा ओववाइए जाव खत्तियकुंड-ग्गामे नयरे मज्झं-मज्झेणं निग्ग-च्छंति?–एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कंचुइ-पुरिसं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वदासी–किण्णं देवाणुप्पिया! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नयरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति?

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य तं महज्जनशब्दं वा यावत् जनसन्निपातं वा शृण्वतः वा पश्यतः वा अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत-किमद्य क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे इन्द्रमहः इति वा, स्कंदमहः इति वा, मुकुन्दमहः इति वा, नागमहः इति वा, यक्षमहः इति वा, भूतमहः इति वा, कूपमहः इति वा, तडागमहः इति वा, नदीमहः इति वा, द्रहमहः इति वा, पर्वतमहः इति वा, वृक्षमहः इति वा, चैत्यमहः इति वा, स्तूपमहः इति वा, यत् एते बहवः उग्राः भोजाः राजन्याः, इक्ष्वाकाः, नागाः कौरव्याः, क्षत्रियाः, क्षत्रियपुत्राः, भटाः, भटपुत्राः, योधाः, प्रशास्तारः मल्लवयः लिच्छवयः लिच्छविपुत्राः अन्ये च बहवः राजेश्वर-'तलवर'-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्यः-श्रेष्ठि-सेनापति सार्थवाहप्रभृतयः स्नाताः कृतबलिकर्माणः यथा औपपातिके यावत् क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे मध्यंमध्येन निर्गच्छन्ति?–एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य कञ्चुकि-पुरुषं शब्दयति, शब्दयित्वा एवम् अवादीत्-किं देवानुप्रियाः! अद्य क्षत्रिय-कुण्डग्रामे नगरे इन्द्रमहः इति वा यावत् निर्गच्छन्ति?

१५८. 'क्षत्रिय कुमार जमालि उस महान् जनशब्द यावत् जनसन्निपात को सुन रहा है, देख रहा है। उसके इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–क्या आज क्षत्रियकुंडग्राम नगर में इन्द्र महोत्सव है? स्कंद महोत्सव है? मुकुन्द महोत्सव है? नाग महोत्सव है? यक्ष महोत्सव है? भूत महोत्सव है? कूप महोत्सव है? तालाब महोत्सव है? नदी महोत्सव है? द्रह महोत्सव है? पर्वत महोत्सव है? वृक्ष महोत्सव है? चैत्य महोत्सव है? स्तूप महोत्सव है? जिससे कि ये बहुत उग्र, भोज, राजन्य, इक्ष्वाकु, नाग, कौरव, क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट, भटपुत्र, योद्धा, प्रशासक, मल्लवी, लिच्छवी, लिच्छविपुत्र तथा अन्य अनेक राजे, युवराज, कोटवाल, मडंबपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि स्नान होकर, बलिकर्म कर औपपातिक की भांति वक्तव्य है, यावत् क्षत्रियकुंडग्राम नगर के ठीक मध्य से निकल रहे हैं? उसने इस प्रकार देखा, देखकर कंचुकीपुरुष को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार बोला–देवानुप्रियो! क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में इन्द्र महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र–१५८

प्राचीन काल में महोत्सव मनाने की परंपरा थी। कुछ महोत्सव दिव्य शक्तियों को लक्ष्य कर मनाए जाते थे और कुछ प्राकृतिक पदार्थों को लक्ष्य कर मनाए जाते थे। इससे ज्ञात होता है कि उस समय देव पूजा और प्रकृति पूजा–दोनों का जनमानस पर प्रभाव था। इन्द्र, स्कंद (कार्तिकेय) मुकुन्द (वासुदेव) नाग, यक्ष और भूत– ये दिव्य शक्तियां हैं। इनकी पूजा प्रचलित थी। कूप, तालाब, नदी, द्रह, पर्वत, वृक्ष, चैत्य और स्तूप–इनकी पूजा का भी प्रचलन था। इनकी पूजा के अवसर पर महोत्सव मनाया जाता था।

उग्र, भोज आदि के लिए द्रष्टव्य २. ३० का भाष्य।

कंचुकी–द्वारपाल, अन्तःपुर का अध्यक्ष।

१५९. तए णं से कंचुइ-पुरिसे जमा-लिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणस्स भगवओ महावीरस्स आग मणगहियविणिच्छए करयलपरि-ग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जमालिं खत्तियकुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी–नो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नयरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति। एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्ज समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्व-दरिसी माहणकुंडग्गामस्स नयरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते बहवे उग्गा, भेगा जाव निग्गच्छंति॥

ततः सः कञ्चुकिपुरुषः जमालिना क्षत्रियकुमारेण एवम् उक्ते सति हृष्टतुष्टः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य आगमन-गृहीतविनिश्चयः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तम् मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जमालिं क्षत्रियकुमारं जयेन विजयेन वर्धापयति, वर्धापयित्वा एवम् अवादीत्–नो खलु देवानुप्रिय! अद्य क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे इन्द्रमहः इति वा यावत् निर्गच्छन्ति। एवं खलु देवानुप्रिय! अद्य श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी माहनकुण्डग्रामस्य नगरस्य बहिः बहुशालके चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति, ततः एते बहवः उग्राः भोजाः यावत् निर्गच्छन्ति।

१५९. क्षत्रिय कुमार जमालि के यह कहने पर वह कंचुकीपुरुष हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने श्रमण भगवान महावीर के आगमन का निश्चय होने पर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंगुली को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिका कर क्षत्रियकुमार जमालि को जय-विजय के द्वारा वर्धापित किया, वर्धापित कर इस प्रकार बोला–देवानुप्रिय! आज क्षत्रियकुंडग्राम नगर में न इन्द्र महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं। देवानुप्रिय! आज श्रमण भगवान महावीर आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के बाहर बहुशालक चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं। इसलिए ये बहुत उग्र, भोज यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं।

१६०. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे कंचुइ-पुरिसस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः कञ्चुकि-पुरुषस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवम् अवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! चतुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापय उपस्थाप्य माम् एताम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयथ।

१६०. क्षत्रियकुमार जमालि कंचुकी- पुरुष के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो, उपस्थित कर मेरी आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

१६१. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ता समाणा चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेंति, उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः जमालिना क्षत्रिय-कुमारेण एवम् उक्ताः सन्तः चतुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयन्ति, उपस्थाप्य ताम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

१६१. कौटुम्बिक पुरुषों ने क्षत्रियकुमार जमालि के यह कहने पर चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को जोतकर उपस्थित किया। उपस्थित कर उस आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६२. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जाव चंदणुक्खित्तगायसरीरे सव्वालंकारविभूसिए मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता सकोरेंटमल्लदाम-मेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, महया-भडचडकर-पहकरवंदपरिक्खित्ते खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झं-मज्झेणं निगच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे, जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हेइ, निगिण्हेत्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता पुप्फतंबोलाउहमादियं पाहणाओ य विसज्जेति, विसज्जेत्ता एग-साडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता आयं ते चोक्खे परमसुइब्भूए अंजलिमउलियहत्थे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य स्नातः कृतबलिकर्मा यावत् चन्दनोत्क्षिप्तगात्रशरीरः सर्वालङ्कारविभूषितः मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला, यत्रैव चतुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य-चतुर्घण्टम् अश्वरथम् आरोहति, आरुह्य सकोरेण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण धार्यमाणेन महत् भट-'चडकर' 'पहकर' वृन्दपरिक्षिप्तः क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव माहनकुण्डग्रामः नगरं यत्रैव बहुशालकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तुरगान् निगृह्णाति, निगृह्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा रथात् प्रत्यारोहति, प्रत्यारुह्य पुष्पताम्बूलायुधादिकम् उपानहः च विसृजति, विसृज्य एकशाटिकम् उत्तरासङ्गं करोति, कृत्वा आचान्तः चोक्षः परमशुचीभूतः अञ्जलिमुकुलितहस्तः यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा-नमस्यित्वा त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपास्ते।

१६२. क्षत्रियकुमार जमालि जहां मर्दन-घर है, वहां आता है। वहां आकर स्नान तथा बलिकर्म कर यावत शरीर के अवयवों पर चंदन का लेप कर, सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मर्दन घर से निकलता है, निकलकर जहां बाहर उपस्थानशाला है जहां चार घण्टाओं वाला अश्वरथ है, वहां आता है, आकर चार घण्टाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होता है। आरूढ़ होकर कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण करता है, महान् सुभटों के सुविस्तृत संघातवृन्द से परिक्षिप्त होकर क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के ठीक मध्य से निर्गमन करता है, निर्गमन कर जहां ब्राह्मणकुंडग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आता है, आकर घोड़ों की लगाम को खींचता है, खींचकर रथ को ठहराता है, ठहराकर रथ से उतरता है, उतरकर पुष्प, तंबोल, आयुध आदि तथा उपानत को विसर्जित करता है, विसर्जित कर एक शाटक वाला उत्तरासंग करता है। उत्तरासंग कर आचमन करता है, अशुचि द्रव्य का अपनयन करता है, परम शुचीभूत होकर अंजलियों को मुकुलित कर सिर पर रखता है, जहां श्रमण भगवान महावीर है वहां आता है, आकर श्रमण भगवान को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना करता है।

१६३. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स, तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगसयवंदपरियालाए ओहबले अइबले महब्बले अपरिमियबल-वीरिय - तेय-माहप्पकंति-जुत्ते सारय - नवत्थणिय - महुरगंभीर-कोंचणिग्घोस-दुंदुभिस्सरे उरे वित्थ-डाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्त-

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः जमालेः क्षत्रियकुमारस्य तस्यां च महामहत्यां ऋषिपरिषदि मुनिपरिषदि यतिपरिषदि देवपरिषदि अनेकशतायाम् अनेकशतवृन्दायाम् अनेकशतवृन्दपरिवारे ओघबलः अतिबलः महाबलः अपरिमित-बल-वीर्य-तेजस्-माहात्म्य-कान्तियुक्तः शारद-नवस्तनित - मधुरगम्भीर - क्रौञ्च-निर्घोष-दुन्दुभिस्वरः उरसि विस्तृतया कण्ठे वर्तितया शिरसि समाकीर्णया अगरलया अमन्मनया सुव्यक्ताक्षर-सन्निपातिकया पूर्णरक्तया

१६३. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रिय-कुमार जमालि को उस विशाल-परिषद् में धर्म का प्रतिबोध दिया, जिस परिषद् में ऋषिपरिषद्, मुनिपरिषद्, यतिपरिषद् और देवपरिषद् का समावेश है। उन परिषदों में सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्ति और सैकड़ों-सैकड़ों मनुष्यों के समूह बैठे हुए थे। भगवान महावीर का बल ओघबल, अतिबल और महाबल—इन तीन रूपों में प्रकट हो रहा था। वे अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य और कांति से युक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्व-भासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयण-णीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ–धम्मं परिकहेइ जाव परिसा पडिगया॥

सर्वभाषानुगामिन्या सरस्वत्या योजन-निर्हारिणा स्वरेण अर्द्धमागध्यां भाषायां भाषते–धर्मं परिकथयति यावत् परिषद् प्रगता।

थे। उनका स्वर शरद ऋतु के मेघ के नवगर्जन, क्रौञ्च के निर्घोष तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान मधुर और गंभीर था। धर्म कथन के समय महावीर की वाणी वक्ष में विस्तृत, कंठ में वर्तुल और सिर में संकीर्ण होती थी। वह गुनगुनाहट और अस्पष्टता से रहित थी। उसमें अक्षर का सन्निपात स्पष्ट था। वह स्वरकला से पूर्ण और गेय रोग से अनुरक्त थी। वह सर्वभाषानुगामिनी–स्वतः ही सब भाषाओं में अनूदित हो जाती थी। भगवान एक योजन तक सुनाई देने वाले स्वर में अर्द्धमागधी भाषा में बोले। प्रवचन के पश्चात् परिषद् लौट गई।

१६४. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोम-णस्सिए हरिस-वसविसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छि-यपडिच्छियमेयं भंते!–से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं–देवाणु-प्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः श्रमणस्य महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशवि-सर्पद्हृदयः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–श्रद्दधामि, भदन्त! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, प्रत्येमि भदन्त! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, रोचे भदन्त! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, अभ्युत्तिष्ठामि भदन्त! नैर्ग्रन्थे प्रवचने, एवमेतद् भदन्त! तथैतद् भदन्त! अवितथमेतद् भदन्त! असंदिग्धमेतद् भदन्त! इष्टमेतद् भदन्त! प्रतीष्टमेतद् भदन्त! इष्टप्रतीष्टमेतद् भदन्त!–तत् यथेदं यूयं वदथ, यत् नवरं-देवानुप्रियाः! अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततः अहं देवानुप्रियाणाम् अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगाराद् अनगारतां प्रव्रजामि। यथासुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबन्धम्।

१६४. वह क्षत्रियकुमार जमालि श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट चित्तवाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मनवाला, परम सौमनस्ययुक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठता है। उठकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला–भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हूं। भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रतीति करता हूं, भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में रुचि करता हूं, भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में अभ्युत्थान करता हूं। भंते! यह ऐसा ही है! भंते! यह तथा (संवादिता-पूर्ण) है। भंते! यह अवितथ है। भंते! यह असंदिग्ध है। भंते! यह इष्ट है। भंते! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। भंते! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसे आप कह रहे हैं, इतना विशेष है–देवानुप्रिय! मैं माता-पिता से पूछ लेता हूं, तत्पश्चात् मैं देवानुप्रिय के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊंगा।

देवानुप्रिय! जैसे सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

१६५. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः श्रमणेन

१६५. क्षत्रियकुमार जमालि श्रमण भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महयाभडचडगर-पहकरवंद-परिक्खित्ते, जेणेव खत्तिय-कुंड-ग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खत्तिय-कुंडग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गेहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अब्भिंतरिया उवट्ठाणसाला, जेणव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापियरो जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी– एवं खलु अम्मताओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए अभिरुइए॥

भगवता महावीरेण एवम् उक्ते सति हृष्टतुष्टः श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तम् एव चतुर्घण्टम् अश्वरथम् आरोहति, आरुह्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकाद् बहुशालकाद् चैत्याद् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य सकोरेण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण धार्यमाणेन महाभट–'चडकर' 'पहकर' वृन्दपरिक्षिप्तः, यत्रैव क्षत्रियकुण्डग्रामः नगरं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य क्षत्रिय-कुण्डग्रामं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तुरगान् निगृह्णाति, निगृह्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा रथात् प्रत्यारोहति, प्रत्यारुह्य यत्रैव आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य अम्बापितरौ जयेन विजयेन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा एवम् अवादीत्–एवं खलु अम्बतातः! मया श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मः निशान्तः सः अपि च मया धर्मः इष्टः, प्रतीष्टः, अभिरुचितः।

महावीर के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गया। वह श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह उसी चार घण्टाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होता है। आरूढ़ होकर श्रमण भगवान महावीर के पास से बहुशालक चैत्य से निर्गमन करता है। निर्गमन कर कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण करता है। महान् सुभटों के सुविस्तृत संघात वृन्द से परिक्षिप्त होकर जहां क्षत्रियकुण्डग्राम नगर है, वहां आता है। वहां आकर क्षत्रिय-कुण्डग्राम नगर के बीचो-बीच जहां अपना घर है, जहां बाहर उपस्थानशाला है, वहां आता है, वहां आकर घोड़ों की लगाम को खींचता है, खींचकर रथ को ठहराता है, ठहराकर रथ से उतरता है, उतरकर जहां आभ्यंतर उपस्थानशाला है, जहां माता-पिता हैं, वहां आता है, वहां आकर जय हो-विजय हो, इस प्रकार (माता पिता का) वर्धापन करता है, वर्धापन कर इस प्रकार बोला–माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

भाष्य

१. सूत्र–१६५

द्रष्टव्य २/५२ का भाष्य।

१६६. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी– धन्ने सि णं तुमं जाया! कयत्थे सि णं तुमं जाया! कयपुण्णे सि णं तुमं जाया! कयलक्खणे सि णं तुम जाया! जण्णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए॥

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारं अम्बापितरौ एवम् अवादीत्–धन्योऽसि त्वं जात! कृतार्थोसि त्वं जात! कृतपुण्योऽसि त्वं जात! कृतलक्षणोऽसि त्वं जात! यत् त्वया श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मः निशान्तः, सः अपि च त्वया धर्मः, इष्टः, प्रतीष्टः, अभिरुचितः।

१६६. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि को इस प्रकार कहा–पुत्र! तुम धन्य हो, पुत्र! तुम कृतार्थ हो, पुत्र! तुम कृतपुण्य (भाग्यशाली) हो, पुत्र! तुम कृतलक्षण (लक्षण-सम्पन्न) हो। जो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म को सुना है, वह धर्म तुम्हें इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

भाष्य

१. सूत्र–१६६

कृतार्थ–वह व्यक्ति जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध किया है।

कृतलक्षण–वह व्यक्ति जिसने शरीर के लक्षण–देह चिह्न सार्थक किए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी–एवं खलु मए अम्मताओ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभि-रुइए। तए णं अहं अम्मताओ! संसारभउव्विग्गे, भीते जम्मण-मरणेणं, तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बापितरौ द्वितीयम् अपि एवम् अवादीत्–एवं खलु अम्बतातः! श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके धर्मः निशान्तः, सः अपि च मया धर्मः इष्टः, प्रतीष्टः अभिरुचितः। ततः अहं अम्बतात! संसारभयोद्विग्नः, भीतः जन्म-मरणेन, तत् इच्छामि अम्बतात! युवाभ्यां अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्।

१६७. वह क्षत्रियकुमार जमालि माता-पिता से दूसरी बार इस प्रकार बोला–माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है, वह धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है। माता-पिता! मैं संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भीत हूं। माता-पिता! मैं चाहता हूं–आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊं।

१६८. तए णं सा जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स माता तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं अस्सुय-पुव्वं गिरं सोच्चा निसम्म सेया-गयरोमकूवपगलंतचिलिणगत्ता, सोग-भरपवेवियंगमंगी नित्तेया दीणविमण-वयणा, करयलमलियव कमलमाला, तक्खणओलुग्ग-दुब्बलसरीरलायण्ण-सुन्ननिच्छाया, गयसिरीया पसिढिल-भूसण-पडंत-खुण्णियसंचुण्णियधवल-वलय-पब्भट्ठ-उत्तरिज्जा, मुच्छा-वसणट्ठ-चेतगरुई, सुकुमालवि-किण्ण-केस-हत्था, परसुणियत्त व्व चंपगलया, निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी, विमुक्क-संधिबंधणा कोट्टिमत-लंसि धसत्ति सव्वंगेहिं सनिवडिया॥

ततः सा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य माता ताम् अनिष्टाम् अकान्तां अप्रियाम् अमनोज्ञाम् 'अमणामं' अश्रुतपूर्वां गिरं निशम्य स्वेदागतरोमकूपप्रगलत् 'चिलिण' गात्रा, शोकभरप्रवेपितङ्गाङ्गी निस्तेजा दीनविमन-वदना, करतलमलिता इव कमलमाला, तत्क्षणावरुग्णदुर्बलशरीर-लावण्यशून्य-निश्छाया, गतश्रीका प्रशिथिलभूषणपतत्-'खुण्णिय' संचूर्णित-धवलवलय-प्रभ्रष्टोत्त-रीया, मूर्च्छावशनष्टचेतःगुर्वी, सुकुमार-विकीर्ण-केश-हस्ता, परशुनिकृता इव चम्पकलता, निवृतमह इव इन्द्रयष्टिः, विमुक्तसन्धि-बन्धना कुट्टिमतले धस इति सर्वाङ्गैः निपतिता।

१६८. [1]क्षत्रियकुमार जमालि की उस अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ, अमनोहर और अश्रुतपूर्व वाणी को सुनकर, अवधारण कर माता के रोमकूपों में स्वेद आ गया, उसके स्रवण से शरीर गीला हो गया। शोक के आघात से उसके अंग कांपने लगे। वह निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विमनस्क हो गया। वह हाथ से मली हुई कमलमाला की भांति हो गई। उसका शरीर उसी क्षण म्लान, दुर्बल, लावण्यशून्य, आभाशून्य और श्री विहीन हो गया। गहने शिथिल हो गए। धवल-कंगन धरती पर गिरकर मोच खाकर खण्ड-खण्ड हो गए। उत्तरीय खिसक गया। मूर्च्छावश चेतना के नष्ट होने पर शरीर भारी हो गया। सुकोमल केशराशि बिखर गई। परशु से छिन्न चंपकलता की भांति और उत्सव से निवृत्त होने पर इन्द्र यष्टि की भांति उसके संधि-बंधन शिथिल हो गए, वह अपने सम्पूर्ण शरीर के साथ रत्नजटित आंगन में धम से गिर पड़ी।

भाष्य

१. सूत्र–१६८

शब्द विमर्श–

चिलिण–क्लिन्न, भीगा हुआ।

वृत्ति में चिलीन पाठ का अर्थ क्लिन्न किया गया है–चिलीनानि च क्लिन्नानि गात्राणि यस्याः।[1]

दीणविमण वयण–दीन और विमनस्क मुख वाला।

वृत्ति में इसका अर्थ दीन और विमनस्क जैसे मुख वाला किया गया है[2]–दीनस्य इव विमनस इव वदनं यस्याः सा तथा।

आलुग–अवरुग्ण, म्लान।

निच्छाय–निष्प्रभ।

खुण्णिय–धरती पर गिरने के कारण मोच खाया हुआ।[3]

केसहत्थ–केश-समूह।

इंदयट्ठी–इन्द्र महोत्सव के अवसर पर एक काष्ठमय स्तूप बनाया जाता था।द्रष्टव्य भगवई ९/१५८

विमुक्कसंधिबंधण–संधि-बंधन शिथिल हो गया–श्लथीकृत-संधिबंधनाः।[4]

---

१. भ. वृ. ९. १६८।
२. भ. वही, ९/१६८।
३. भ. वही. ९/१६८–भूमिपतनात् प्रदेशान्तरेषु नमितानि।
४. भ. वही. ९/१६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६९. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गयसीयलजलविमलधारपरिसिच्चमाणनिव्वावियगायलट्ठी, उक्खेवय-तालियंटवीयणगजणियवाएणं, सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी रोयमाणी कंदमाणी सोयमाणी विलवमाणी जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी–तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविए हियय-नंदिजणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग! पुण पासणयाए? तं नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पयोगं, तं अच्छाहि ताव जाया! जाव ताव अम्हे जीवामो तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरव-यक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि॥

ततः सा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य माता ससम्भ्रमापवर्त्तितया त्वरितं काञ्चनभृङ्गारमुखविनिर्गत - शीतलजलविमलधारापरिषिच्यमान - निर्वापितगात्रयष्टिः उत्क्षेपक - तालवृन्त- वीजनकजनितवातेन, स्पृशता अन्तःपुरपरिजनेन आश्वासिता सती रुदती क्रन्दती शोकमानी विलपति जमालिं क्षत्रियकुमारम् एवम् अवादीत्–त्वम् असि जातः अस्माकम् एकः पुत्रः इष्टः कान्तः प्रियः मनोज्ञः 'मणामे' स्थैर्यः वैश्वासिकः सम्मतः बहुमतः अनुमतः भाण्डकरण्डक-समानः रत्नः रत्नभूतः जीवितोत्सविकः हृदयानन्दिजनकः उदुम्बरपुष्पम् इव दुर्लभः श्रवणे, 'किमङ्ग' पुनः दर्शने? तत् नो जात! आवाम् इच्छावः तव क्षणमपि विप्रयोगम् तत् आस्व तावत् जात! यावत् आवां जीवावः ततः पश्चात् आवयोः कालगतयोः सतोः परिणतवयाः वर्धित-कुलवंशतन्तुकार्ये निरवकाङ्क्ष-श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यसि।

१६९. [1]संभ्रम और त्वरा के साथ चेटिका द्वारा डाली गई सोने की झारी के मुंह से निकली शीतल जल की निर्मल धारा के परिसिंचन से क्षत्रियकुमार जमालि की माता की गात्र-यष्टि में शीतलता व्याप गई। उत्क्षेपक और तालवृंत के पंखों से उठने वाली जलमिश्रित हवा के संस्पर्श से तथा अंतःपुर के परिजनों द्वारा वह आश्वस्त हुई। वह रोती, कलपती, आंसू बहाती, शोक करती और विलपती हुई क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार बोली–जात! तुम हमारे एकमात्र पुत्र इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण करण्डक के समान हो। तुम रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि रत्न के समान) जीवन-उत्सव और हृदय को आनंदित करने वाले हो। तुम उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ हो फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या?

जात! हम क्षणभर भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते इसलिए जात! तुम तब तक रहो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात् जब हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम संतान रूपी तंतु को बढ़ाने के कार्य में निरपेक्ष हो जाओ, तब श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

भाष्य

१. सूत्र–१६९

शब्द-विमर्श

ओवत्तिया–वृत्तिकार ने इसके दो संस्कृत रूप किए हैं–१. अपवर्तिका २. अपवर्तिना।[1]

उक्खेवगं–बांस से बना हुआ पंखा, जिस दण्डे का मध्य भाग मुट्ठी से पकड़ा जाता है।

तालियंट–ताड़ के पत्रों से बना हुआ पंखा। वृत्तिकार ने इसका दूसरा अर्थ किया है–ताड़पत्र के आकार वाला चर्ममय पंखा।

वीयणग–बांस से बना हुआ पंखा। इसका दण्ड भीतर से पकड़ा जाता है।[2]

इट्ठ.....समाणे–द्रष्टव्य भगवती २/५२ का भाष्य।

सफुसिय–उदक बिन्दु सहित।[3]

जीविऊसविए–वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं–१. जीवन में उत्सव २. जीवन में उत्सव के समान।[4]

उंबरपुप्फं–पासणाए–वृत्तिकार के अनुसार उदुम्बर का पुष्प अलभ्य होता है इसलिए उसकी उपमा दी गई है।[5]

कुलवंश–संतान। तंतु दीर्घत्व के साधर्म्य से कुलवंश को तंतु कहा गया है।[6]

---

१. भ. वृ. ९/१६९–अपवर्त्तयति–क्षिपति या सा तथा तया ससंभ्रमापवर्तिकया चेट्यति गम्यते.....अथवा ससंभ्रमापवर्तिनया–ससंभ्रमक्षिप्तया।

२. वही ९/१६९–उत्क्षेपको–वंशदलादिमयो मुष्टिग्राह्यदण्डमध्यभागः तालवृन्तं–तालाभिधानवृक्षपत्रवृन्तं तत्पत्रच्छोट इत्यर्थः तदाकारं वा चर्ममयबीजनकं तु वंशादिमयमेवान्तर्ग्राह्यदण्डं एतैर्नीतो यो वातः स तथा तेन।

३. भ. वृ. ९/१६९– सफुसिएणं सोदकबिन्दुना।

४. वही, ९/१६९–जीवितमुत्सूते प्रसूत इति जीवितोत्सवः स एव जीवितोत्सविकः जीवितविषये वा उत्सवो–महः स इव यः स जीवितोत्सविकः।

५. वही, ९/१६९–उदुम्बरपुष्पं ह्यलभ्यं भवत्यतस्तेनोपमानम्।

६. वही, ९/१६९–कुलवंशः–संतानः स एव तन्तुर्दीर्घत्वसाधर्म्यात् कुलवंशतंतुः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७०. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अम्मपियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ! जण्णं तुब्भे मम एवं वदह—तुमंसि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते तं चेव जाव पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ! माणुस्सए भवे अणेग-जाइ - जरा - मरण - रोग - सारीर-माणसपकाम - दुक्खवेयण - वसणस्सतोवद्दवाभिभूए अधुवे अणितिए असासए संझब्भरागसरिसे जल-बुब्बुदसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सुविणदंसणोवमे विज्जुलयाचंचले अणिच्चे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे, पुव्वि वा पच्छा वा अवस्स-विप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्मताओ! के पुव्वि गमणयाए, के पच्छा गमणयाए? तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बापितरौ एवम् अवादीत्—तथाऽपि तत् अम्बतातः! यत् युवां माम् एवं वदथः—त्वम् असि जात! अस्माकम् एकः पुत्रः इष्टः कान्तः तत चैव यावत् प्रव्रजिष्यसि, एवं खलु अम्बतातः! मानुष्यकः भवः अनेक-जाति- जरा - मरण - रोग - शरीर - मानस-प्रकामदुःखवेदनव्यसनशतोपद्र - वाभिभूतः अध्रुवः अनित्यः अशाश्वतः संध्याभ्राग-सदृशः जलबुदबुदसमानः कुशाग्रजलबिन्दु-सन्निभः स्वप्नदर्शनोपमः विद्युत्लता-चञ्चलः अनित्यः शटन - पतन - विध्वंसन-धर्मा, पूर्वं वा पश्चात् वा अवश्यविप्रहातव्यः भविष्यति, सः कः एषः जानाति अम्बतातः! कः पूर्वं गमने, कः पश्चात् गमने? तत् इच्छामि अम्बतात! युवाभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्।

१७०. क्षत्रियकुमार जमालि माता पिता से इस प्रकार बोला—माता-पिता! यह वैसा ही है जो तुम मुझे यह कह रहे हो—जात! तुम हमारे एक पुत्र, इष्ट, कांत यावत् प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह मनुष्य का भव अनेक जन्म, जरा, मरण, रोग, शारीरिक और मानसिक प्रकाम दुःखों के वेदन, सैकड़ों कष्टों और उपद्रवों से अभिभूत, अध्रुव, अनियत, अशाश्वत, संध्या के अभ्रराग के समान, जल बुद्बुद के समान, कुश की नोक पर टिकी हुई जलबिंदु के समान, स्वप्न-दर्शन के समान और विद्युत्लता की भांति चंचल और अनित्य है, सड़न, पतन और विध्वंसधर्मा है। पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन जानता है—कौन पहले जाएगा? कौन पश्चात् जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूं—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७१. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमं च ते जाया! सरीरगं पविसिट्ठरूवं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं उत्तमबल-वीरिय-सत्तजुत्तं विण्णाणवियक्खणं ससोहग्ग-गुणसमुस्सियं अभिजायमहक्खमं विविह-वाहि-रोगरहियं, निरुवहय-उदत्त-लट्ठ-पंचिंदियपडुं पढमजोव्वणत्थं अणेग-उत्तमगुणेहिं संजुत्तं, तं अणुहोहि ताव जाया! नियगसरीररूव-सोहग्ग-जोव्वणगुणे, तओ पच्छा अणुभूय नियगसरीररूव - सोहग्ग-जोव्वणगुणे अन्नेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुल-वंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि॥

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ एवम् अवादीत्—इदं च ते जात! शरीरकं प्रविशिष्टरूपं लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपपेतम् उत्तमबल-वीर्यसत्वयुक्तं विज्ञातविचक्षणं ससौभाग्यगुणसमुच्छ्रितम् अभिजात-महत्क्षमं विविधव्याधिरोगरहितं, निरुपहत-उदात्त-लष्ट-पंचेन्द्रिय-पटुं प्रथमयौवनस्थं अनेकोत्तमगुणैः संयुक्तं, तत् अनुभव तावत् जात! निजकशरीररूप-सौभाग्य-यौवन-गुणान्, ततः पश्चात् अनुभूय निजक-शरीररूप-सौभाग्य-यौवन-गुणान् अस्मत्सु कालगतेषु सत्सु परिणतवयाः वर्द्धित-कुलवंशतन्तुकार्ये निरवकाङ्क्षः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यसि॥

१७१. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—जात! तुम्हारा यह शरीर प्रविशिष्ट रूप, लक्षण, व्यंजन और गुण से उपेत, उत्तम बल, वीर्य और सत्व से युक्त, विज्ञान से विचक्षण, सौभाग्य सहित गुण से उन्नत, अभिजात और महान् क्षमता वाला, विविध व्याधि और रोग से रहित, उपघात रहित, उदात्त, मनोहर और पटु पांच इन्द्रियों से युक्त, प्रथम यौवन में स्थित और अनेक गुणों से संयुक्त है इसलिए हे जात! तुम अपने शरीर के रूप, सौभाग्य और यौवन गुणों का अनुभव करो। उसके पश्चात्— अपने शरीर के रूप, सौभाग्य और यौवन गुणों का अनुभव करने के पश्चात् हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जाए, कुलवंश के तंतु से निरपेक्ष हो जाओ तब तुम श्रमण भगवान महावीर के पास मुंड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी– तहा वि णं तं अम्मताओ! जण्णं तुब्भे ममं एवं वदह–इमं च णं ते जाया! सरीरगं तं चेव जाव पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ! माणुस्सगं सरीरं दुक्खायययणं, विविहवाहिसयसंनिकेतं, अट्ठिय-कट्ठट्ठियं, छिराण्हारुजाल-ओणद्ध-संपिणद्धं, मट्टियभंडं व दुब्बलं, असुइसंकिलिट्ठं, अणिट्ठविय-सव्वकालसंठप्पयं, जराकुणिम-जज्जरघरं व सडण-पडण-विद्धंसणधम्मं, पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वं भविस्सइ। से केस णं जाणइ अम्मताओ! के पुव्विं गमणयाए, के पच्छा गमणयाए? तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बापितरौ एवम् अवादीत्-तथा अपि तत् अम्बतात! यत् युवां माम् एवं वदथः–इदं च ते जात! शरीरकं तच्चैव यावत् प्रव्रजिष्यसि, एवं खलु अम्बतात! मानुष्यकं शरीरं दुक्खायतनं विविधव्याधिशत-संनिकेतम्, अस्थिककाष्ठोत्थितं, शिराण्हा-रुजाल-उपनद्धसंपिनद्धं, मृतिकाभाण्डम् इव दुर्बलम्, अशुचिसंक्लिष्टम्, अनिष्ठापित सर्वकालसंस्थाप्यतां, जरा-कुणप-जर्जर-गृहम् इव शटन-पतन-विध्वंसनधर्माणं, पूर्वं वा पश्चात् वा अवश्यविप्रहातव्यं भविष्यति। सः कः एषः जानाति अम्बतातः! कः पूर्वं गमने कः पश्चात् गमने? तत् इच्छामि युवाभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्।

१७२. [1]क्षत्रियकुमार जमालि माता-पिता से इस प्रकार बोला–माता-पिता! यह वैसा ही है, जो तुम मुझे कह रहे हो–जात! तुम्हारा यह शरीर प्रविशिष्ट रूप वाला है यावत् अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह मनुष्य का शरीर दुःख का आयतन है, विविध प्रकार की सैकड़ों व्याधियों का संनिकेत (घर) है। अस्थिरूपी काठ के ढांचे पर खड़ा हुआ है, शिरा और स्नायुओं के जाल से अतिवेष्टित है, मिट्टी के पात्र के समान दुर्बल है, अशुचि से संक्लिष्ट है, जिसका कृत्यकार्य सर्वकाल चलता है, कभी पूरा नहीं होता, बुढ़ापे से निष्प्राण बना हुआ जर्जर घर सड़न, पतन और विध्वंसधर्मा है, पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन पहले जाएगा? कौन पश्चात् जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूं–तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

भाष्य

१. सूत्र–१७२

शब्द विमर्श

अट्ठियकट्ठट्ठिय–कठिनता के साधर्म्य से अस्थि की तुलना काठ से की गई है।[1]

मनुष्य का शरीर अस्थियों के ढांचे पर टिका हुआ है। आयुर्वेद में अस्थि संस्थान को शरीर का सार और आधार कहा गया है।

आधारश्च तथा सारः कायेस्थीनि बुधा जगुः
आभ्यन्तरगतः सार, आधारो भूरुहां यथा।[2]

शिरा–रक्तवहा नाड़ी, जो शरीर की कोशिकाओं से रक्त को वापस हृदय तक ले जाती है।

स्नायु–स्नाटुओं को शरीर की मांसपेशियें, अस्थियों, मेदस् और संधियों का बन्धन कहा जाता है। ये स्नायु या बंधन शिराओं की अपेक्षा अधिक मजबूत होते हैं–

स्नायवो बंधनं प्रोक्ता, देहे मांसास्थिमेदसाम्।
संधीनामपि यत्तास्तु, शिराभ्यः सुदृढ़ाः मताः।[3]

अणिट्ठविय–अनिष्ठापित, जो समाप्त नहीं होता।

संठप्पया–संस्थाप्यता, शरीर के लिए स्थापित, निर्धारित कार्य।[4]

जराकुणिमजज्जरघर–बुढ़ापे के कारण शव जैसे शरीर के लिए 'जरा कुणप' का प्रयोग किया गया है।[5]

१७३. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–इमाओ य ते जाया! विपुलकुल-बालियाओ कलाकु-सलसव्व-काल-लालिय-सुहोचियाओ, मद्दव-गुणजुत्त-निउणविणओवयार-पंडियवियक्खणाओ, मंजुलमिय-महुर-भणिय - विहसिय - विप्पेक्खिय-गति-

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ एवम् अवादीत्–इमाः च ते जात! विपुल-कुलबालिकाः कलाकुशल सर्वकाल ललित-सुखोचिताः मार्दव-गुणयुक्त-निपुण-विनयोपचारपण्डित-विचक्षणाः, मञ्जुल-मितमधुरभणित-विहसित-विप्रेक्षित-गति-विलासचेष्टित-विशारदाः, अविकलकुल-

१७३. [1]क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने इस प्रकार कहा–जात! ये तुम्हारी आठ गुणवल्लभ पत्नियां, जो विशाल कुल की बालिकाएं, कलाकुशल, सर्वकाल-लालित, सुख भोगने योग्य, मार्दव गुण से युक्त, निपुण, विनय के उपचार में पण्डित और विचक्षण, मनोरम,

१. भ. वृ. ९. १७२–अट्ठियकट्ठट्ठिय त्ति अस्थिकान्येव काष्ठानि काठिन्य साधर्म्यतस्तेभ्यो यदुत्थितं तत्तथा।
२. शार्ङ्गधर संहिता पृ. ८९।
३. वही, पृ. ८७।
४. भ वृ. ९. १७२–अनिष्ठापिता–असमापिता सर्वकालं–यदा संस्थाप्यता तत्कृत्यकरणं यस्य स तथा।
५. वही, ९. १७२–जरा कुणपश्च–जीर्णताप्रधानशवो जर्जरगृहं च जीर्णगेहं समाहारद्वन्द्वाज्जराकुणपजर्जरगृहं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलास-चिट्ठियविसारदाओ, अविकल-कुल-सीलसालिणीओ, विसुद्धकुलवंस-संताणतंतुवद्धणप्पगब्भुब्भवपभाविणीओ, मणाणु-कूलहियइच्छियाओ, अट्ठ तुज्झ गुणवल्लहाओ उत्तमाओ, निच्चं भावाणुरत्तसव्वंगसुंदरीओ। तं भुंजाहि ताव जाया! एताहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी विसयविगय-वोच्छिण्ण-कोउहल्ले अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुल-वंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि॥

शीलशालिन्यः विशुद्धकुलवंशसन्तानतन्तु-वर्द्धन-प्रगल्भोद्भवप्रभाविन्यः मनोनुकूल-हृदयेष्टाः, अष्ट तव गुण वल्लभाः उत्तमाः, नित्यं भावानुरक्तसर्वाङ्गसुन्दर्यः। ततः भुङ्क्ष्व तावत् जात! एताभिः सार्धं विपुलान् मानुष्यकान् कामभोगान्, ततः पश्चात् भुक्तभोगी विषय-विगतव्यवच्छिन्नकुतू-हलः आवयोः कालगतयोः सतोः परिणतवयाः वर्द्धितकुल-वंशतंतुकार्ये निर-वकाङ्क्षः-श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डःभूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यसि।

मित और मधुर बोलने वाली, विहसन, विप्रेक्षण (कटाक्ष), गति, विलास और चेष्टा में विशारद, समृद्ध कुल वाली और शीलशालिनी, विशुद्ध, कुलवंश की संतान रूपी तंतु की वृद्धि के लिए गर्भ के उद्भव में समर्थ, मनोनुकूल और हृदय से इष्ट, उत्तम और नित्य भाव से अनुरक्त सर्वांग सुंदरियां हैं इसलिए जात! तुम इनके साथ विपुल मनुष्य संबंधी काम-भोगों का भोग करो। उसके पश्चात् भुक्तभोगी तथा विषयों के प्रति तुम्हारा कौतुहल विगत और व्युच्छिन्न हो जाए, हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जाए, तुम कुलवंश के तंतु कार्य से निरपेक्ष हो जाओ तब तुम श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रवजित हो जाना।

भाष्य

१. सूत्र–१७३

शब्द-विमर्श

विलास–नेत्र विकार।

अविकल कुल–ऋद्धि परिपूर्ण कुल।

पगब्भुब्भवपभाविणीओ–प्रकृष्ट गर्भ को उत्पन्न करने की सामर्थ्य वाली।[1]

१७४. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी– तहा वि णं तं अम्मताओ! जण्णं तुब्भे मम एयं वदह– इमाओ ते जाया! विपुलकुलबालियाओ जाव पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ! माणुस्सगा कामभोगा उच्चार-पासवण-खेल - सिंघाणग - वंत-पित्त-पूय - सुक्क - सोणिय - समुब्भवा, अमणुण्णदुरुय - मुत्त-पूइय-पुरीस-पुण्णा, मयगंधुस्सास - असुभनि-स्सासउव्वेयणगा, बीभच्छा, अप्प-कालिया, लहुसगा, कलम-लाहिवास-दुक्खा बहुजणसाहारणा, परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा, अबुहजणणिसेविया, सदा साहुगरहणिज्जा, अणंतसंसार-वद्धणा, कडुगफलविवागा चुडल्लिव अमुच्चमाण, दुक्खाणुबंधिणो सिद्धि-गमणविग्घा। से केस णं जाणइ अम्मताओ! के पुव्वि गमणयाए? के पच्छा गमणयाए? तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बा-पितरौ एवम् अवादीत्–तथापि तत् अम्बतात! यत् युवां माम् एवं वदथः–इमाः ते जात! विपुलकुलबालिकाः यावत् प्रव्रजि-ष्यसि, एवं खलु अम्बतात! मानुष्यकाः कामभोगाः उच्चार–प्रस्रवण-क्ष्वेल-शिंघा-णक - वान्त - पित्त - पूय - शुक्र शोणित–समुद्भवाः, अमनोज्ञ 'दुरुय'-मूत्र-पूतिक-पुरीषपूर्णाः–मृतगन्धोच्छ्वास-अशुभनिः श्वासोद्वेजनकाः, बीभत्साः, अल्प-कालिकाः, लघुस्वकाः, 'कलमल'अधि-वासदुःखाः बहुजनसाधारणाः, परिक्लेश-कृच्छ्रदुःखसाध्याः अबुधजननिषेवितः, सदा साधुगर्हणीयाः, अनन्तसंसारवर्द्धनाः, कटुकफलविपाकाः, 'चुडल्लि' इव अमुच्य-मानाः, दुःखानुबन्धिनः सिद्धिगमन-विघ्नाः। सः कः एषः जानाति अम्बतात! कः पूर्वं गमने कः पश्चात् गमने? तम् इच्छामि अम्बतात! युवाभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां

174. [1]क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा–माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं–जात! ये तुम्हारी आठ पत्नियां विशाल कुल की बालिकाएं हैं यावत् तुम अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! ये मनुष्य संबंधी कामभोग, मल, मूत्र, कफ, नाक के मैल, वमन, पित्त, मवाद, शुक्र और शोणित से समुत्पन्न होते हैं। अमनोज्ञ, विकृत और कुत्सित मल मूत्र से परिपूर्ण हैं। मृतक की गंध जैसे उच्छ्वास और अशुभ निःश्वास से उद्वेग पैदा करने वाले, बीभत्स, अल्पकालिक, स्वल्पसार सहित (तुच्छ), जठर में होने वाले मल की अवस्थिति से दुःखद, बहुजनसाधारण–सर्वसुलभ, महान् मानसिक और शारीरिक कष्ट साध्य, अबुधजनों के द्वारा आसेवित, साधु-जनों के द्वारा सदैव गर्हणीय, अनन्त संसार को बढ़ाने वाले, कटु फल-विपाक वाले, इन्हें न छोड़ने पर ये प्रदीप्त तृण पूलिका के

१. भ. वृ. ९ : १७३–प्रगल्भाः–प्रकृष्टगर्भास्तेषां यः उद्भवः संभूतिस्तत्र यः प्रभावः–सामर्थ्यं स यासामस्ति ताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

प्रव्रजितुम्।

समान दुःखानुबंधी और सिद्धि गमन के विघ्न हैं। माता-पिता! यह कौन जानता है—कौन पहले जाएगा? कौन पीछे जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूं—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

भाष्य

१. सूत्र—१७४

शब्द-विमर्श

दुरूय—विकृत। वृत्तिकार ने इसका अर्थ दुरूप, विरूप किया है।[1] यह देशी शब्द है। इसका अर्थ है दुर्गंध युक्त, मलमूत्र युक्त कर्दम।

मयगंधुस्सास.....उव्वेयणगा—मृतशरीर की गंध के तुल्य उच्छ्वास और निःश्वास से उद्वेग पैदा करने वाले। वृत्तिकार ने 'मृत गंधि' उच्छ्वास का विशेषण किया है।[2]

लहुस्गा—लघु-स्वभाव वाले।

कलमल—शरीर में होने वाला अशुभ द्रव्य।

परिक्लेश—मानसिक आयास।

किच्छदुक्ख—कष्टप्रद शारीरिक आयास।[3]

चुडल्लिव—प्रदीप्त तृण पूलिका के समान।

१७५. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी— इमे य ते जाया! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहू हिरण्णे य, सुवण्णे य, कंसे य, दूसे य, विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख - सिलप्पवालर-त्तरयण-संतसार - सावएज्जे, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल-वंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, परिभाएउं, तं अणुहोहि ताव जाया! विउले माणुस्सए इड्ढि सक्कार-समुदए, तओ पच्छा अणुहूय-कल्लाणे, वड्ढियकुलवंसतंतुकज्ज-म्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि॥

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ एवम् अवादीत्-इदं च ते जात! आर्यक-प्रार्यक-पितृप्रार्यकागतं सुबहु हिरण्यं च, सुवर्णं च, कांस्यं च, दूष्यं च, विपुलधन-कनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शङ्ख-शिला-प्रवालरक्तरत्न-सतसार-स्वापतेयम्, अलं यावत् आसप्तमात् कुलवंशात् प्रकामं दातुं, प्रकामं भोक्तुं, परिभाजयितुं तत् अनुभव तावत् जात! विपुलान् मानुष्यकान् ऋद्धि-सत्कार-समुदयान्, ततः पश्चात् अनुभूत-कल्याणः, वर्द्धिकुलवंशतन्तुकार्ये निर-वकाङ्क्षः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यसि।

१७५. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—जात! तुम्हारे पितामह (दादा) प्रपितामह (परदादा) और प्र-प्रपितामह[4] (परदादा के पिता) से प्राप्त यह बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (बहुमूल्य वस्त्र) विपुल वैभव—कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मेनसिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों से, जो सातवीं पीढ़ी तक प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ हैं इसलिए जात! तुम मनुष्य संबंधी विपुल ऋद्धि, सत्कार और समुदय का अनुभव करो। कुलवंश के तंतु कार्य से निरपेक्ष हो जाओ, उसके पश्चात् कल्याण का अनुभव कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

भाष्य

१. सूत्र—१७५

अज्जय-पज्जय-पिउपज्जय—पितामह, प्रपितामह, प्रप्रपितामह। ये देशी शब्द हैं।[5]

१७६. तए णं से जमाली खत्तिय कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ! जण्णं तुब्भे ममं एवं

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बा-पितरौ एवम् अवादीत्—तथापि तत् अम्बतात! यत् युवां माम् एवं वदथः-इदं च

१७६. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं—जात! पितामह,

१. भ. वृ. ९/१७४—इह च दूरूपं—विरूपं।

२. वही, ९/१७४—मृतस्येव गंधो यस्य स मृतगन्धिः स चासावुच्छ्वासश्च मृतगन्ध्युच्छ्वासस्तेन नाशुभनिःश्वासेन चोद्वेगजनका—उद्वेगकारिणो जनस्य ये ते तथा।

३. वही, ९/१७४—परिक्लेशेन—महामानसायासेन कृच्छ्रदुःखेन च—गाढ शरीरायासेन ये साध्यन्ते—वशीक्रियन्ते ये ते तथा।

४. देखें—देशी शब्दकोश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वदह–इमं च ते जाया! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए जाव पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ! हिरण्णे य, सुवण्णे य जाव सावएज्जे अग्गिसाहिए, चोरसाहिए, रायसाहिए, मच्चुसाहिए, दाइयसाहिए, अग्गिसामण्णे, चोरसामण्णे, रायसामण्णे, मच्चुसामण्णे, दाइ-यसामण्णे, अधुवे, अणितिए, असासए, पुव्वि वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्मताओ! के पुव्वि गमणयाए, के पच्छा गमण-याए? तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

ते जात! आर्यक-प्रार्यक-पितृप्रार्यकगतं यावत् प्रव्रजिष्यसि एवं खलु अम्बतात! हिरण्यं च सुवर्णं च यावत् स्वापतेयम? अग्नि-स्वामिकं, चोरस्वामिकं, राजस्वामिकं, मृत्युस्वामिकं, दायिकस्वामिकं, अग्निसामान्यं, चोरसामान्यं, राजसमान्यं, मृत्युसामान्यं, दायिकसामान्यं, अध्रुवम् अनित्यम्, अशाश्वतं, पूर्वं वा पश्चात् वा अवश्यविप्रहातव्यं भविष्यति, सः क एषः जानाति अम्बतात! कः पूर्वं गमने, कः पश्चात् गमने? तत् इच्छामि अम्बतात! युवाभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्।

प्रपितामह, प्रप्रपितामह से प्राप्त हिरण्य यावत् अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् वैभवशाली द्रव्य अग्नि साधित हैं–अग्नि जला सकती है, चोर साधित हैं–चोर चुरा सकते हैं, राज साधित हैं–राजा अधिकृत कर सकता है, मृत्यु साधित हैं, मृत्यु उससे वंचित कर सकती है। दायाद साधित हैं–भागीदार विभाजित कर सकते हैं। अग्नि सामान्य–अग्नि का स्वामित्व है, चोर सामान्य–चोर का स्वामित्व है, राज-सामान्य–राज का स्वामित्व है, मृत्यु सामान्य–मृत्यु का स्वामित्व है और दायाद सामान्य–भागीदार का स्वामित्व है। अध्रुव, अनियत और अशाश्वत हैं। पहले या पीछे, अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन जानता है–पहले कौन जाएगा? पीछे कौन जाएगा? इसलिए माता-पिता! मैं चाहता हूं–तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७७. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मताओ जाहे नो संचाएंति विसयाणुलोमाहिं बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य, आघवेत्तए वा पण्णवेत्तए वा सण्णवेत्तए वा विण्णवेत्तए वा, ताहे विसयपडिकूलाहिं संजम-भयुव्वेयणकरीहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी–एवं खलु जाया! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाण-मग्गे अवितहे अविसंधि सव्व-दुक्खप्पहीणमग्गे, एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्व-दुक्खाणं अंतं करेंति। अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंत-धाराए, लोहमया जवा चावे-यव्वा, वालुयाकवले इव निस्साए, गंगा वा महानदी पडिसोयगमणयाए, महासमुद्दो

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बाततः यदा नो शक्नोति विषयानुलोमाभिः बहुभिः आख्यापनाभिश्च प्रज्ञापनाभिश्च संज्ञापनाभिश्च विज्ञापनाभिश्च आख्यातुं वा प्रज्ञापयितुं वा संज्ञापयितुं वा विज्ञापयितुं वा, तदा विषयप्रतिकूलाभिः संयम-भयोद्वेजनकरीभिः प्रज्ञापनाभिः प्रज्ञापयन् एवम् अवादीत्–एवं खलु जात! निर्ग्रन्थं प्रावचनं सत्यम् अनुत्तरं केवलं प्रतिपूर्णं नैर्यातृकं संशुद्धं शल्यकर्त्तनं सिद्धिमार्गं मुक्तिमार्गं निर्याणमार्गम् अवितथम् अविसंधि सर्वदुःखप्रहीणमार्गम्, अत्र स्थिताः जीवाः सिध्यन्ति 'बुज्झंति' मुच्यन्ति परिनिर्वान्ति सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति।
अहेरिव एकान्तदृष्टिकः, क्षुरस्य इव एकान्तधारा, लोहमया यवाः चर्वितव्या, वालुकाकवलस्य इव निःस्वादा, गंगा वा महानदी प्रतिस्रोतोगमनं, महासमुद्रः वा भुजाभ्यां दुस्तरः, तीक्ष्णं क्रमितव्यं, गुरुकं लम्बितव्यम्, असिधारकं व्रतं चरितव्यम्।

१७७. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को विषय के प्रति अनुरक्त बनाने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापन के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त, संज्ञप्त और विज्ञप्त करने में समर्थ नहीं हुए तब विषय से विरक्त किन्तु संयम के विषय में भय दिखाकर उद्वेग पैदा करने वाले प्रज्ञापन के द्वारा प्रज्ञापना करते हुए इस प्रकार बोले–जात! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, नैर्यात्रिक, मोक्ष तक पहुंचाने वाला, संशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, मोक्ष का मार्ग, शांति का मार्ग, अवितथ, अविच्छिन्न और समस्त दुःखों के क्षय का मार्ग है। इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थित जीव सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करते हैं। संयम सांप की भांति एकान्त (एकाग्र) दृष्टि द्वारा साध्य है। क्षुर की भांति एकान्त धार द्वारा साध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुयं लंबेयव्वं, असिधारगं वयं चरियव्वं।

नो खलु कप्पइ जाया! समणाणं निग्गंथाणं अहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मिस्सजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइए इ वा, कीते इ वा, पामिच्चे इ वा, अच्छेज्जे इ वा, अणिसट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, कंतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलियाभत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, सेज्जायरपिंडे इ वा, रायपिंडे इ वा, मूलभोयणे इ वा, कंदभोयणे इ वा, फलभोयणे इ वा, बीयभोयणे इ वा, हरियभोयणे इ वा, भोत्तए वा पायए वा।

तुमं सि च णं जाया! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं, नालं उण्हं, नालं खुहा, नालं पिवासा, नालं चोरा, नालं वाला, नालं दंसा, नालं मसगा, नालं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, परिस्सहोवसग्गे उदिण्णे अहियासेत्तए। तं नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पयोगं, तं अच्छाहि ताव जाया! जाव ताव अम्हे जीवामो तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए, वड्ढियकुल-वंसतंतुकज्जम्मि निरव-यक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि॥

नो खलु कल्पते जात! श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः आधाकर्मिक इति वा, औद्देशिक इति वा, मिश्रजात इति वा, अध्यवतरक इति वा, पूतिक इति वा, क्रीत इति वा, प्रामित्य इति वा, आच्छेद्य इति वा, अनिसृष्ट इति वा, अभिहृत इति वा, कान्तारभक्त इति वा, दुर्भिक्षभक्त इति वा, ग्लानभक्त इति वा, वार्दलिकाभक्त इति वा, प्राघुणकभक्त इति वा, शय्यातरपिण्ड इति वा, राजपिण्ड इति वा, मूलभोजनम् इति वा, कन्दभोजनम् इति वा फलभोजनम् इति वा, हरितभोजनम् इति वा, भोक्तुं वा पातुं वा। त्वम् असि च जातः सुखसमुचितः नो चैव दुःखसमुचितः, नालं शीतं, नालम् उष्णं, नालं क्षुधा, नालं पिपासा, नालं चौरान्, नालं व्यालान्, नालं दंशान्, नालं मशकान्, नालं वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिकान् विविधान् रोगातङ्कान्, परीषहोपसर्गान् उदीर्णान् अध्यासितुम्। तत् नो जात! आवाम् इच्छावः तव क्षणमपि विप्रयोगम्, तत् आस्व यावत् तावत् आवां जीवावः ततः पश्चात् आवयोः कालगतयोः सतोः परिणतवयाः वर्द्धितकुलवंशतन्तुकार्ये निरवकाक्षः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यसि।

है। इसमें लोहे के यव चबाने होते हैं। यह बालू के कौर की तरह निःस्वाद है, यह महानदी गंगा में प्रतिस्रोत गमन जैसा है, यह महासमुद्र को भुजाओं से तैरने जैसा दुस्तर है। यह तीक्ष्ण कांटों पर चंक्रमण करने, भारी-भरकम वस्तु को उठाने और तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने जैसा है। जात! श्रमण निर्ग्रन्थ आधाकर्मी, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूति, क्रीत, प्रामित्य–उधार लिया गया, आछेद्य–छीना गया, भागीदार द्वारा अननुमत, सामने लाया गया, कान्तार-भक्त, दुर्भिक्ष-भक्त, ग्लान-भक्त, वार्दलिका-भक्त, प्राभृतिक-भक्त, शय्यातर-पिण्ड, राजपिंड, मूल-भोजन, कन्द-भोजन, फल-भोजन, बीज-भोजन और हरित-भोजन खा पी नहीं सकता।

जात! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुःख भोगने योग्य नहीं हो। तुम सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास तथा कीट, हिंस्र पशु, दंश-मशक, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक, विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा उदीर्ण परीषह और उपसर्ग को सहन करने में समर्थ नहीं हो। जात! हम क्षण भर के लिए भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते इसलिए तुम तब तक रहो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम कुल-वंश के तंतु कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

भाष्य

१. सूत्र–१७७

शब्द-विमर्श

निर्ग्रन्थ प्रवचन–प्रवचन का अर्थ है शासन। भगवान महावीर के समय में जैनधर्म निर्ग्रन्थ प्रवचन के नाम से प्रख्यात था।

सत्य–आप्तपुरुषों के लिए हितकर है इसलिए वह सत्य है–यह अर्थ अभयदेव सूरि का है।[2] आवश्यक चूर्णि में इसका दूसरा अर्थ भी मिलता है–यह सद्भूत–यथार्थ होने के कारण सत्य है।[3]

केवलं–अद्वितीय।[4] ऐसा हितकर दूसरा प्रवचन नहीं है इसलिए यह अद्वितीय है–यह चूर्णि की व्याख्या है।[5]

---

१. भ. वृ. १, १७७।– सत्येति सद्भ्यो हितत्वात्।

२. आव. चू. पृ. २४२– जथा सच्चं सद्भ्यो हितं सच्चं, सद्भूतं वा सच्चं।

३. भ. वृ. १, १७७।– केवलं अद्वितीयम्।

४. आव. चू. पृ. २४२–केवलं अद्वितीयं एतेव्वेके हितं नान्यत् द्वितीयं प्रवचनमस्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिपुण्णं—निर्ग्रन्थ प्रवचन में ज्ञान दर्शन और चारित्र—तीनों का समन्वय है इसलिए यह प्रतिपूर्ण है।

नेयाउए—नैर्यातृक, मोक्ष की ओर ले जाने वाला। आवश्यक चूर्णि में इसका अर्थ न्याय से अबाधित किया है।[1] वृत्तिकार ने उसका शब्दार्थ नायक—मोक्ष गमक किया है।[2]

संसुद्ध—हेतु आदि की कसौटी पर खरा उतरने वाला।[3]

सल्लगत्तणं—माया, निदान और मिथ्यादर्शन शल्य का कर्तन करने वाला।

मुक्ति का मार्ग—आवश्यक चूर्णि में मुक्ति का अर्थ निस्संगता किया है।

निर्याण मार्ग—सिद्धि क्षेत्र में जाने का उपाय।

निर्वाण—आत्म-स्वास्थ्य का मार्ग,[4] सकल कर्म निरपेक्ष सुख का मार्ग।[5]

अवितथ—तथ्य।[6] प्रत्येक युग में अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने वाला।[7]

अविसंधि—अव्यवच्छिन्न।

सिज्झंति.....अंतं करेंति—इन पदों का अर्थ प्रस्तुत आगम के १ । ४१ के भाष्य में किया जा चुका है। आवश्यक चूर्णि में इन पदों का अर्थ तीन नयों से किया गया है। उनमें चूर्णिकार का अपना मत है और दो अन्य मतों को उद्धृत किया गया है।

सिज्झंति—सिद्ध होते हैं, सब प्रयोजन परिनिष्ठित हो जाते हैं।

बुज्झंति—बुद्ध होते हैं, केवली हो जाते हैं।

मुच्चंति—सब कर्मों के संग से मुक्त हो जाते हैं।

परिनिव्वायंति—परिनिर्वृत—परम सुखी हो जाते हैं।

सव्वदुक्खाणमंतं करेंति—सब शारीरिक और मानसिक दुःखों का अंत कर देते हैं। अन्य मत के अनुसार—

सिज्झंति—मोहनीय कर्म क्षय होने के कारण उनके सब प्रयोजन निष्ठित हो जाते हैं।

कुछ आचार्यों के मतानुसार—**सिज्झंति**—अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों से संपन्न हो जाते हैं।

बुज्झंति—अतिशय बोध से युक्त, विज्ञान युक्त हो जाते हैं।

मुच्चंति—सब संगों से मुक्त हो जाते हैं।

परिनिव्वायंति—उपशांत-प्रशांत हो जाते हैं।

सव्वदुक्खाणमंतं करेंति—सब दुःखों से रहित हो जाते हैं।[8]

अहीव एगंतदिट्ठीए—सर्प की आंखों में पलकें नहीं होतीं, दोनों पलकें मिलकर एक पारदर्शी झिल्ली बन जाती है। वह झिल्ली आंखों के ऊपर मढ़ी रहती है। यही कारण है कि उसकी आंखें सदा खुली रहती हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर संयम के प्रति होने वाली एकाग्र दृष्टि की सर्प की एकाग्र दृष्टि से तुलना की गई है।

तुलना के लिए द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि १९, ३८।

अहाकम्मिए.....पायए वा—द्रष्टव्य ठाणं ९, ६२ तथा दसवेआलियं ३ । २ का टिप्पण।

१७८. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी— तहा वि णं तं अम्मताओ! जण्णं तुब्भे ममं एवं वदह—एवं खलु जाया! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले तं चेव जाव पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगपरंमुहाणं विसयतिसियाणं दुरणुचरे पागयजणस्स, धीरस्स निच्छियस्स ववसियस्स नो खलु एत्थं किंचि वि दुक्करं करणयाए, तं इच्छामि णं अम्मताओ! तुब्भेहिं

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बापितरौ एवमवादीत्—तथापि तत अम्बतात! यत् युवां मां एवं वदथः—एवं खलु जात! नैर्ग्रन्थं प्रवचनं सत्यम् अनुत्तरं केवलं तच्चैव यावत् प्रव्रजिष्यसि, एवं खलु अम्बतात! नैर्ग्रन्थं प्रवचनं क्लीबानां कातराणां कापुरुषाणां इहलोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखानां विषयतृषितानां दुरनुचरं प्राकृतजनस्य, धीरस्य निश्चितस्य व्यवसितस्य नो खलु अत्र किंचित् अपि दुष्करं कर्तुम्, तत इच्छामि अम्बतात! युवाभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके मुण्डः भूत्वा अगारात्

१७८. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं—जात! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय यावत् अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होना।

माता-पिता! क्लीब, कायर, कापुरुष, इहलोक से प्रतिबद्ध, परलोक से पराङ्मुख, विषय की तृष्णा रखने वाले और प्राकृतजन—साधारण मनुष्य के लिए निर्ग्रंथ प्रवचन आचरण करना दुष्कर है। धीर, कृतनिश्चय और व्यवसाय सम्पन्न (उपाय-प्रवृत्त) के लिए उसका आचरण

---

१. वही, पृ. २४२ न्यायेन चरति नैयायिकं, न्यायाबाधितमित्यर्थः।

२. भ. वृ. १ । १७१—नायकं मोक्षगमकमित्यर्थः।

३. आव. चू. पृ. २४२—समस्तं सुट्ठु संसुद्धं हेतुविधिचालणादीहिं पेयालंतकडं।

४. वही, पृ. २४२—निव्वाणं-निव्वती आत्मस्वास्थ्यमित्यर्थः।

५. भ. वृ. १ । १७१—सकलकर्मनिरपेक्षसुखोपायः।

६. आव. चू. पृ. २४३—अवितथं—तथ्यं।

७. भ. वृ. १ । १७१—अवितथं—कालान्तरेऽपगतान्यथाविधाभिनिवेशप्रकारत्वेन।

८. आ. चू. पृ. २४३-२४३—सिज्झंति सिद्धा भवंति, परिनिट्ठितार्था भवन्तीत्यर्थः, ते च बुज्झंति अत्र आह—बुज्झंति—बुद्धा भवंति, केवली भवंतीत्यर्थः, एवं मुच्चंति मुच्चंतिः नाम सव्वकम्मादिएहिं मुक्ता भवंति, परिनिव्वायंति परिनिव्वुता भवंति, परमसुहिणो भवंतीत्यर्थः केवली भवंतीत्यर्थः, सव्वदुक्खाणं सेसं करेंति सर्व्वेसिं सारीरमाणसाणं दुक्खाणं अंतकरा भवंति, वोच्छिण्णसव्वदुक्खा भवंतीत्यर्थः। अण्णे भणंति सिज्झंति संपूर्णाव्वयवत्तणेण निट्ठितत्था भवंति। बुज्झंति केवली भवंति। मुच्चंति सव्वकम्मुणा, परिनिव्वायंति निव्वाणं गच्छंति एवं च सव्वदुक्खाणमंतं करेंतित्ति। अण्णे पुण भणंति—सिज्झंति—अणिमादिसिद्धिसंपण्णा भवंति, बुज्झंति अतिसयबोधजुत्ता भवंति विण्णाणवंत इत्यर्थः, मुच्चंति मुक्ता भवंति सव्वसंगेहिं, परिनिव्वायंति उवसंतपसंता भवंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति सव्वदुक्खरहिता भवंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

अनगारितां प्रव्रजितुम्।

किंचित भी दुष्कर नहीं है। इसलिए माता-पिता! मैं चाहता हूं-तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७९. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति विसयाणुलोमाहि य, विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघ-वणाहि य पण्णवणाहि य सण्ण-वणाहि य विण्णवणाहि य आघवेत्तए वा पण्णवेत्तए वा सण्णवेत्तए वा विण्णवेत्तए वा, ताहे अकामाइं चेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स निक्खमणं अणुमण्णित्था॥

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ यदा नो शक्नुतः विषयानुलोमाभिश्च विषयप्रतिकूलाभिश्च बहुभिः आख्यापनाभिश्च प्रज्ञापनाभिश्च संज्ञापनाभिश्च विज्ञापनाभिश्च आख्यातुं वा प्रज्ञापयितुं वा संज्ञापयितुं वा विज्ञापयितुं वा तदा अकामं चैव जमालेः क्षत्रियकुमारस्य निष्क्रमणम् अन्वमन्यताम्।

१७९. क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता विषय के प्रति अनुरक्त बनाने वाले और विषय से विरक्त किन्तु संयम के विषय में भय दिखाकर उद्वेग पैदा करने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापन के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त संज्ञप्त और विज्ञप्त करने में समर्थ नहीं हुए तब क्षत्रियकुमार जमालि को अनिच्छा-पूर्वक निष्क्रमण की अनुज्ञा दे दी।

१८०. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! खत्तियकुंडग्गामं नयरं सब्भिंतर-बाहिरियं आसिय-सम्मज्जि-ओवलित्तं जहा ओववाइए जाव सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रिकुमारस्य पिता कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवम् अवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं साभ्यन्तरबाह्यकम आसिक्त-सम्मर्जितोपलिप्तं यथा औपपातिके यावत् सुगन्धवरगन्धगन्धिकं-गन्धवर्तिभूतं कुरुथ च कारयथ च, कृत्वा च कारयित्वा च एनाम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयथ। तेऽपि तथैव प्रत्यर्पयन्ति।

१८०. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! क्षत्रिय-कुंडग्राम नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़, बुहार जमीन की सफाई करो, गोबर की लिपाई करो, जैसे औपपातिक की वक्तव्यता यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंधवर्ती तुल्य करो, कराओ। ऐसा कर और कराकर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने वैसा कर आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१८१. तए णं से जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया दोच्चं पि कोडुं-बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव उवट्ठवेंति॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता द्वितीयमपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! जमालेः क्षत्रियकुमारस्य महार्थं महार्घ्यं महार्हं विपुलं निष्क्रमणाभिषेकम् उपस्थापयत। ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव यावत् उपस्थापयन्ति।

१८१. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने पुनः कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! क्षत्रियकुमार जमालि का महान् अर्थ वाला, महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला और विपुल निष्क्रमण-अभिषेक उपस्थित करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही निष्क्रमण-अभिषेक उपस्थित किया।

१८२. तए णं तं जमालिं खत्तिय-कुमारं अम्मापियरो सीहासणवरंसि पुरत्था-भिमुहं निसीयावेंति, निसीया-वेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ सिंहासनवरे पुरस्तादभिमुखं निषादयतः, निषाद्य अष्टशतेन सौवर्णिकानां कलशानाम् अष्टशतेन रूप्यमयानां कलशानाम्,

१८२. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को पूर्वाभिमुख कर प्रवर सिंहासन पर बिठाते हैं, बिठाकर एक सौ आठ स्वर्ण-कलश, एक सौ आठ रजत-कलश, एक सौ आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठसएणं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्णरुप्पामयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठ-सएणं रुप्पमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए सव्वजुतीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वा-दरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्व तुडिय-सद्द-सण्णि-णाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय जमगस-मगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खर-मुहि - हुडुक्क - मुरय-मुइंग - दुंदुहि - णिग्घोसणाइयरवेणं महया-महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचंति, अभिसिंचित्ता करयल परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी–भण जाया! किं देमो? किं पयच्छामो? किणा व ते अट्ठो?

अष्टशतेन मणिमयानां कलशानाम्, अष्टशतेन सुवर्णरूप्यकमयानां कलशानाम्, अष्टशतेन सुवर्णमणिमयानां कलशानाम् अष्टशतेन रूप्यमणिमयानां कलशानाम्, अष्टशतेन सुवर्णरूप्यमणिमयानां कलशा-नाम्, अष्टशतेन भौमेयानां कलशानां सर्वर्द्धया सर्वद्युत्या सर्वबलेन सर्वसमुदयेन सर्वादरेण सर्वविभूत्या सर्वविभूषया सर्व-सम्भ्रमेण सर्वपुष्पगन्धमाल्यालंकारेण सर्व 'तुडिय' शब्द–सन्निनादेन महत्या श्रद्धया महत्या द्युत्या महता बलेन महता समुदयेन महता वर 'तुडिय'–'जमगसमग' प्रवादितेन शङ्ख-पणव-पटह-भेरी-झल्लरी-खरमुखी-हुडुक्क-मुरज-मृदङ्ग-दुन्दुभि-निर्घोषनादि-करवेण महता-महता निष्क्रमणाभिषेकेण अभिसिञ्चति, अभिषिञ्च्य करतल-परिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयतः, वर्धयित्वा एवम् अवादिष्टाम्-भण जात! किं ददवः, किं प्रयच्छावः? कथं च ते अर्थः?

मणिमय कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-रजतमय कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-मणिमय कलश, एक सौ आठ रजत-मणिमय कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिमय कलश और एक सौ आठ भौमेय (मिट्टी के) कलश के द्वारा उसका निष्क्रमण-अभिषेक करते हैं। संपूर्ण ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूति, विभूषा, ऐश्वर्य, पुष्प, गंध, माल्यांकार और सब वाद्यों के शब्द निनाद के द्वारा तथा महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् बल, महान् समुदय, महान् वर वाद्यों का एक साथ प्रवादन, शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुही–काहला, हुडुक्क–डमरु के आकार का वाद्य, मुरज–ढोलक, मृदंग और दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के द्वारा महान् निष्क्रमण-अभिषेक से अभिषिक्त करते हैं। अभिषिक्त कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित करते हैं। वर्धापित कर इस प्रकार बोले–जात! बताओ हम क्या दें? क्या वितरण करें? तुम्हें किस वस्तु का प्रयोजन है?

१८३. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी–इच्छामि णं अम्मताओ! कुत्तिया-वणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणियं, कासवगं च सद्दावियं॥

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः अम्बा-पितरौ एवमवादीत्–इच्छामि अम्बतात! कुत्रिकापणात्, रजोहरणं च प्रतिग्रहं च आनीतं, काश्यपकं च शब्दायितम्।

१८३. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा–माता-पिता! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र को लाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूं।

१८४. तए णं से जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेह, सयसहस्सेणं कासवगं सद्दावेह॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! श्री-गृहात् त्रीणि शतसहस्राणि गृहीत्वा द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कुत्रिकापणात् रजोहरणं च प्रतिग्रहं च आनयत, शतसहस्रेण काश्यपकं शब्दयत।

१८४. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! शीघ्र ही श्रीगृह से तीन लाख मुद्रा लेकर दो लाख मुद्रा के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाओ। एक लाख मुद्रा से नापित को बुलाओ।

भाष्य

१. सूत्र–१८४

श्रीगृह–कोश, कुत्रिकापण–द्रष्टव्य भगवती २/९५-९६ का भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८५. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसा-वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडि-सुणेंति, पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गिण्हंति, गिण्हित्ता दोहिं सय-सहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेंति, सय-सहस्सेणं कासवगं सद्दावेंति॥

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः जमालेः क्षत्रिय-कुमारस्य पित्रा एवमुक्ताः सन्तः हृष्टतुष्टाः करतलगृहीतं दशनखं शिर-सावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं स्वामिन्! तथेति आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति. प्रतिश्रुत्य क्षिप्रमेव श्रीगृहात त्रीणि शतसहस्राणि गृह्णन्ति. गृहीत्वा द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कुत्रिकापणात रजोहरणं च प्रतिग्रहं च आनयन्ति. शतसहस्रेण काश्यपकं शब्दयन्ति।

१८५. कौटुम्बिक पुरुष क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर--'स्वामी! आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा', यह कहकर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर शीघ्र ही श्रीगृह से तीन लाख मुद्राएं ग्रहण करते हैं। ग्रहण कर दो लाख मुद्राओं के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाते हैं. एक लाख मुद्रा के द्वारा नापित को बुलाते हैं।

१८६. तए णं से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरे, जेणेव जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं?

ततः सः काश्यपकः जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पित्रा कौटुम्बिकपुरुषैः शब्दायितः सन् हृष्टतुष्टः स्नातः कृतबलिकर्मा कृत-कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मंगलानि वस्त्राणि प्रवरं परिहितः अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरः यत्रैव जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पितरं जयेन विजयेन वर्धयति वर्धयित्वा एवमवादीत्-संदिशन्तु देवानुप्रियाः! यत् मया करणीयम्।

१८६. वह नापित क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के निर्देशानुसार कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाए जाने पर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने बलि-कर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित किया, शुद्धप्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित), मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना, अल्पभार और बहुमूल्य वाले वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किया। जहां क्षत्रियकुमार जमालि के पिता हैं, वहां आया, वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता को 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोला—देवानुप्रिय! मुझे जो करणीय है, उसका संदेश दें।

१८७. तए णं से जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी—तुमं देवाणुप्पिया! जमालि-स्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउ-रंगुलवज्जे निक्खमणपाओग्गे अग्ग-केसे कप्पेहि॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता तं काश्यपकम् एवमवादीत्—त्वं देवानुप्रिय! जमालेः क्षत्रियकुमारस्य परेण यत्नेन चतुरङ्गुलवर्ज्यान् निष्क्रमणप्रायोग्यान् अग्रकेशान् कल्पस्व।

१८७. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता नापित को इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! तुम परम यत्न से क्षत्रियकुमार जमालि के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण-प्रायोग्य अग्र केशों को काटो।

१८८. तए णं से कासवगे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तहत्ताणाए विणएणं वयणं

ततः सः काश्यपकः जमालेः क्षत्रिय-कुमारस्य पित्रा एवमुक्ते सति हृष्टतुष्टः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अंजलिं कृत्वा एवं स्वामिन्! तथेति आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृणोति.

१८८. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर नापित हृष्ट-तुष्ट हो गया। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'स्वामी! आपकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपादे पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, बंधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ॥

प्रतिश्रुत्य सुरभिणा गन्धोदकेन हस्तपादौ प्रक्षालयति, प्रक्षाल्य शुद्धया अष्टपटलया 'पोत्तीए' मुखं बध्नाति, बद्ध्वा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य परेण यत्नेन चतुरङ्गुलवर्ज्यान् निष्क्रमणप्रायोग्यान् अग्रकेशान् कल्पते।

आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा।' यह कहकर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार किया। स्वीकार कर सुरभित गंधोदक से हाथ पैर का प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर आठ पट वाले शुद्ध वस्त्र से मुख को बांधा, बांधकर परम यत्न से क्षत्रियकुमार जमालि के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण-प्रायोग्य अग्रकेशों को काटा।

भाष्य

१. सूत्र १८८

अग्रकेशों को काटने की परंपरा दक्षिण भारत के पुजारियों में आज भी प्रचलित है। अभिनिष्क्रमण के समय केश-कर्तन की दो परंपराएं मिलती हैं –

१. पंच मुष्टिक लोच की परंपरा।[1]

२. चतुरंगुल-वर्ज अग्रकेश काटने की परंपरा।[2]

१८९. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहिं अच्चेति, अच्चेत्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवति, पक्खिवित्ता हारवारिधार-सिंदुवार - छिण्णमुत्ता - वलिप्पगासाइं सुयवियोगदूसहाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणीविणिम्मुयमाणी एवं वयासी– एस णं अम्हं जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स बहूसु तिहीसु य पव्व-णीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सतीति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेति॥

ततः सा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य माता हंसलक्षणेन पटशाटकेन अग्रकेशान् प्रतीच्छति, प्रतीष्य सुरभिणा गन्धोदकेन प्रक्षालयति, प्रक्षाल्य अग्रैः वरैः गन्धैः माल्यैः अर्चति, अर्चित्वा 'शुद्धे वस्त्रे' बध्नाति, बद्ध्वा रत्नकरण्डके प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य हार-वारिधारा-सिन्दुवार-छिन्नमुक्तावलि–प्रकाशानि सुतवियोग-दुस्सहानि अश्रूणि विनिर्मुञ्चती-विनिर्मुञ्चती एवमवादीत्–एतद् अस्माकं जमालेः क्षत्रियकुमारस्य बहुषु तिथिषु च पर्वणीषु च उत्सवेषु च यज्ञेषु च क्षणेषु च अपश्चिमं दर्शनं भविष्यतीति कृत्वा उच्छीर्षकमले स्थापयति।

१८९. क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने हंसलक्षण पटशाटक में अग्रकेशों को ग्रहण किया। ग्रहण कर सुरभित गंधोदक से प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर प्रधान और प्रवर गंध माल्य से अर्चा की, अर्चन कर शुद्ध वस्त्र में बांधा। बांधकर रत्न-करंडक में रखा। रख कर हार, जल-धारा, सिंदुवार (निर्गुण्डी) के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान दुःस्सह पुत्र वियोग के कारण बार-बार आंसू बहाती हुई इस प्रकार बोली–बहुत तिथि, पर्वणी (पूर्णिमा आदि) उत्सव, नाग-पूजा, यज्ञ, इन्द्रोत्सव आदि के अवसर पर क्षत्रियकुमार जमालि का यह अंतिम दर्शन होगा। यह चिन्तन कर उस रत्नकरंडक को अपने सिरहाने के नीचे रखा।

भाष्य

१. सूत्र–१८९

शब्द-विमर्श

हंस लक्षण–वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं–

१. सफेद २. हंस से चिह्नित।[3]

हार.....प्पगासाई–आंसू की श्वेतिमा बतलाने के लिए चार उपमाओं का प्रयोग किया गया है –

१. हार २. वारिधारा ३. सिंदुवार ४. छिन्नमुक्तावलि।

तिथि–मदन त्रयोदशी आदि।[4]

पर्वणि–कार्तिक पूर्णिमा आदि।[5]

उत्सव–प्रिय-संगम आदि।[6]

यज्ञ–नागपूजा आदि।[7]

क्षण–इन्द्रोत्सव आदि।[8]

---

१. पज्जो. सू. ७५।

२. (क) नाया० १ : १ : १२५।

(ख) भ. ९/१८७।

३. भ. वृ. ९ : १८९– हंसलक्खणेणं शुक्लेन हंसचिह्नेन वा।

४. वही, ९ : १८९– तिहीसु य त्ति मदनत्रयोदश्यादि तिथिषु।

५. वही, ९/१८९– पर्व्वणीषु च कार्तिक्यादिषु।

६. वही, ९/१८९– उस्सवेसु त्ति य प्रियसंगमादिमहेषु।

७. वही, ९/१८९– जन्नेसु य त्ति नागादि पूजासु।

८. वही, ९/१८९– छणेसु य त्ति इन्द्रोत्सवादि लक्षणेषु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९०. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, रयावेत्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावेत्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति, अणुलिंपित्ता नासानिस्सासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखचियंतकम्मं महरिहं हंसलक्खणपडसाडगं परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता एगावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता मुत्तावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता रयणावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता एवं—अंगयाइं केयूराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणंतगं विकच्छसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं चित्तं रयणसंकडुक्कडं मउडं पिणद्धेंति, किं बहुणा? गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघातिमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य अम्बापितरौ द्वितीयमपि उत्तराप्रकमणं सिंहासनं रचयतः, रचयित्वा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य श्वेत-पीतकैः कलशैः स्नपयतः स्नपयित्वा पक्ष्मलसुकुमालया सुरभिणा गन्धकाषायिणा गात्राणि रूक्षयतः, रूक्षयित्वा सरसेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राणि अनुलिम्पतः, अनुलिप्य नासानिःश्वासवातोह्यं चक्षुःहरं वर्ण-स्पर्शयुक्तं हयलालापेलवातिरेकं धवलं कनकखचितांत-कर्म महार्हं हंसल-क्षण-पटशाटकं परिधत्तः, परिधाय हारं पिनह्यतः, पिनह्य अर्द्धहारं पिनह्यतः, पिनह्य एकावलिं पिनह्यतः पिनह्य मुक्तावलिं पिनह्ययतः, पिनह्य रत्नावलिं पिनह्यतः, पिनह्य एवम्-अङ्गदानि केयूराणि कटकानि 'तुडियाइ' कटिसूत्रकं दशमुद्रा-नन्तकं वैकक्षसूत्रकं 'मुरविं' कंठ 'मुरविं' प्रालम्ब-कुण्डलानि चूडामणिं चित्रं रत्न-सङ्कटोत्कटं मुकुटं पिनह्यतः, किं बहुना? ग्रथित-वेष्टिम-पूरिम-संघातिमेन चतुर्विधेन माल्येन कल्प-रुक्षकं इव अलंकृत-विभूषितं-कुर्वतः।

१९०. [1]क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने दूसरी बार उत्तराभिमुख सिंहासन की रचना कराई। कराकर क्षत्रियकुमार जमालि को श्वेत-पीत कलशों से स्नान कराया। स्नान कराकर रोएंदार, सुकुमाल सुरभित गंध-वस्त्र से गात्र को पौंछा। पौंछकर सरस गोशीर्षचंदन का गात्र पर अनुलेप किया। अनुलेप कर नासिका की निःश्वास वायु से उड़ने वाला, चक्षुहर वर्ण और स्पर्श से युक्त, अश्व की लार से भी अधिक प्रतनु, धवल किनार पर सोने के तार से जड़ा हुआ बहुमूल्य अथवा महापुरुष योग्य हंस लक्षण वाला पटशाटक पहनाया। पहनाकर हार पहनाया। हार पहनाकर अर्द्धहार पहनाया। अर्द्धहार पहनाकर एकावली पहनाई। एकावली पहनाकर मुक्तावली पहनायी। मुक्तावली पहनाकर रत्नावली पहनायी। रत्नावली पहनाकर इसी प्रकार—अंगद, केयूर, कड़े, बाजूबंध, करधनी, दसों अंगुलियों में मुद्रिकाएं, विकक्षसूत्र (उत्तरासंग पर पहना जाने वाला आभरण) सूरज के आकार का आभरण, कण्ठ-मुरवि, मुक्ताभाला, कुण्डल, चूड़ामणि, रत्नों की प्रचुरता से उत्कृष्ट बना हुआ विचित्र मुकुट पहनाया। और अधिक क्या? गूंथी हुई, वेष्टित, पूरित और संहत की हुई—इन चार प्रकार की मालाओं से क्षत्रियकुमार जमालि को कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत, विभूषित कर दिया।

भाष्य

१. सूत्र—१९०

शब्द-विमर्श

उत्तरावक्रमण—उत्तराभिमुख-उत्तरापक्रमण।[1]

सेयापीए—चांदी और सोने से बना हुआ।[2]

पम्हसुउमाल—रोएंदार सुकुमाल।

गंधकासाईए—सुगंध युक्त वस्त्र।

एकावलि—मोतियों की एक हाथ लम्बी माला। वृत्ति के अनुसार इसका अर्थ है विचित्र मणियों की माला।[3]

मुक्तावलि—मुक्ताहार।

रत्नावलि—रत्नहार।

अंगद—वह आभरण, जो कोहनी के ऊपर भुजा में पहना जाता है।

केयूर—भुजा का आभरण। वृत्तिकार ने अंगद और केयूर में आकार-भेद माना है।[4]

कडग—कड़ा, चूड़ी के आकार का आभूषण, जो हाथ और पांव में पहना जाता है।

तुडिया—बाजूबंध, भुजा पर पहनने का आभूषण।

कटिसूत्र—करधनी, सोने चांदी की पट्टी या लड़ियों का गहना, जो कमर में पहना जाता है।

विकच्छसुत्तग—विकक्ष-सूत्र, यज्ञोपवीत की तरह पहना हुआ हार, उत्तरासंग पर पहना जाने वाला आभरण।[5]

मुरवी—मुरज के आकार का आभरण।

कंठ मुरवि—कंठ में पहना जाने वाला मुरज के आकार का आभरण।[6]

प्रालंब—सीने तक लटकने वाली माला।

कुंडल—कान में पहनने वाला आभूषण।

चूड़ामणि—शीश-फूल।

१-६. भ. वृ. ९/१९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९१. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्पसेणइज्जे विमाणवण्णओ जाव मणिरयणघंटिया जालपरिक्खित्तं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टां, लीलास्थितशालभञ्जिकां यथा राजप्रश्नीये विमानवर्णकः यावत् मणिरत्नघण्टिका जालपरिक्षिप्तां पुरुषसहस्रावाहिनीं शिबिकाम् उपस्थापयत, उपस्थाप्य माम् एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत। ततः कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति।

१९१. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! शीघ्र ही अनेक सैकड़ों खंभों से युक्त, नृत्य करती हुई पुतलियों से उत्कीर्ण, जैसे रायप्सेणीय के विमान-वर्णक में वक्तव्य है यावत् मणिरत्न जटित घंटिका जाल से घिरी हुई हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका उपस्थित करो। उपस्थित कर मेरी इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। तब कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा कर यावत् आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

भाष्य

१. सूत्र–१९१

सालभंजिया–पुतली।[1]

सीयं–शिविका।

१९२. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे केसालंकारेणं, वत्थालंकारेणं, मल्लालंकारेणं, आभरणालंकारेणं–चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः केशालंकारेण, वस्त्रालंकारेण, माल्यालंकारेण, आभरणालंकारेण–चतुर्विधेनालंकारेण अलंकारितः सन् प्रतिपूर्णालंकारः सिंहासनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय शिबिकाम् अनुप्रदक्षिणीकुर्वन् शिबिकाम् आरोहति, आरुह्य सिंहासनवरे पुरस्तादभिमुखः संनिषण्णः।

१९२. क्षत्रियकुमार जमालि को केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार, आभरणालंकार–इस चतुर्विध अलंकार से अलंकृत किया गया। वह प्रतिपूर्ण अलंकृत होकर सिंहासन से उठा। उठकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा कर शिविका पर आरूढ़ हो गया। आरूढ़ होकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख आसीन हुआ।

१९३. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माता ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा॥

ततः सः जमालेः क्षत्रियकुमारस्यः माता स्नाता कृतबलिकर्मणी यावत् अल्पमहार्घ्या-भिरणालंकृतशरीरा हंसलक्षणं पट्टशाटकं गृहीत्वा शिबिकाम् अनुप्रदक्षिणी कुर्वती शिबिकाम् आरोहति, आरुह्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य दक्षिणे पार्श्वे भद्रासनवरे संनिषण्णः।

१९३. क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने स्नान किया, बलिकर्म किया, अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। वह हंसलक्षण वाला पटशाटक ग्रहण कर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर आरूढ़ हो गई। आरूढ़ होकर वह क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिण पार्श्व में प्रवर भद्रासन पर आसीन हुई।

१९४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मधाती ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा रयहरणं पडिग्गहं च गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता जमालिस्स

ततः सः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्यः अम्बधात्री स्नाता कृतबलिकर्मणी यावत् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरा रजोहरणं प्रतिग्रहं च गृहीत्वा शिबिकाम् अनुप्रदक्षिणी कुर्वती शिबिकाम् आरोहति, आरुह्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य वामे पार्श्वे

१९४. क्षत्रियकुमार जमालि की धायमाता ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। वह रजोहरण और पात्र को लेकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर

१. भ. वृ. ९/१९१– शालभञ्जिकाः पुत्रिका विशेषा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खत्तियकुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा॥

भद्रासनवरे संनिषण्णा।

आरूढ़ होकर क्षत्रियकुमार जमालि के वाम पार्श्व में प्रवर भद्रासन पर आसीन हुई।

१९५. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय - चेट्ठिय - विलास-सल-लिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयारकुसला सुंदरथण - जघण - वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास-कलिया सरदब्भ-हिम - रयय - कुमुद-कुंदे-दुप्पगासं सकोरेंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओधरे-माणी-ओधरेमाणी चिट्ठति॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पृष्ठतः एका वरतरुणी शृङ्गाराकारचारुवेषा सङ्गत-गत - हसित - भणित - चेष्टित-विलास-सललित - संलाप-निपुण-युक्तो-पचारकुशलः सुन्दरस्तन-जघन-वचनकर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन-विलास-कलिता शरदभ्र-हिम-रजत-कुमुद कुन्देन्दु-प्रकाशं सकोरेंटमाल्यदाम् धवलम् आतपत्रं गृहीत्वा सलीलाम् अवधारयती-अवधार-यती तिष्ठति।

१९५. क्षत्रियकुमार जमालि के पीछे एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण तथा विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, शारद मेघ, हिम, रजत, कुमुद, कुन्द और चन्द्रमा के समान कटसरैया की माला और दाम तथा धवल छत्र को लेकर लीला सहित धारण करती हुई, धारण करती हुई खड़ी हो गई।

भाष्य

१. सूत्र–१९५

शब्द-विमर्श

सिंगारागारचारुवेसा–वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं–

१. शृंगार-रस के गृह तुल्य और चारुवेश वाली।

२. शृंगार प्रधान आकार और चारुवेश वाली।[1]

संगय–उचित।

चेट्ठिय–चेष्टा करने में निपुण।

विलास–नेत्र विकार। वृत्ति में एक श्लोक उद्धृत है–

हावो मुखविकारः स्याद्, भावश्चित्तसमुद्भवः।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो, विभ्रमो भूसमुद्भवः॥[2]

संलाप–परस्पर संभाषण। वृत्ति में एक श्लोक उद्धृत है–

अनुलापो मुहुर्भाषा, प्रलापोऽनर्थकं वचः।
क क्वा वर्णनमुल्लापः, संलापो भाषणं मिथः॥[3]

जुत्तोवयारकुसल–उचित उपचार में कुशल।

रूप–आकृति

विलास–यहां विलास का अर्थ स्थान, गमन आदि में एक विशेष स्थिति का प्रयोग है।[4]

सरदब्भ–शरद ऋतु का मेघ।

१९६. तए णं तस्स जमालिस्स (खत्तिय-कुमारस्स?) उभओ पासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागार चारुवेसाओ संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तो वयारकुसलाओ सुंदरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास कलियाओ नाणा-मणि-कणग - रयण - विमलमहरिहत-वणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ, चिल्लि-याओ, संखंक-कुंद - दगरय - अमय - महिय - फेणपुंजसण्णि - कासाओ

ततः तस्य जमालेः (क्षत्रिय-कुमारस्य?) उभयतः पार्श्वे द्वे वरतरुण्यौ शृङ्गाराकार-चारुवेषे सङ्गत - गत - हसित - भणित-चेष्टित-विलास-सललित-संलाप- निपुण-युक्तोपचारकुशले सुन्दरस्तन-जघन-वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन-विलासकलिते नाना-मणि-कनकरत्न विमलमहार्हतपनीयोज्ज्वलविचित्रदण्डे, 'चिल्लिये' शङ्खाङ्क-कुन्द-दकरजो-ऽमृत-महित-फेनपुञ्जसन्निकाशे धवले चामरे गृहीत्वा सलीलां वीजयत्यौ-वीजयत्यौ तिष्ठतः।

१९६. क्षत्रियकुमार जमालि के दोनों ओर दो प्रवर तरुणियां मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने, और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन-लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, नाना मणिरत्न (कनक) विमल और महामूल्य तपनीय (रक्तस्वर्ण) से निर्मित, उज्ज्वल और विचित्र दण्ड वाले दीप्तिमान शंख, अंकरत्न, कुन्द, जलकण, अमृत और

१. भ. वृ. ९/१९५–शृंगारस्य–रसविशेषस्यागारमिव यश्चारुश्च वेषो–नेपथ्यं सा तथा, अथवा शृंगारप्रधान आकारश्चारुश्च वेषो यस्याः सा तथा।

२. वही, ९/१९५।

३. वही, ९/१९५।

४. वही, ९/१९५– इह विलासशब्देन स्थानासनगमनादीनां सुश्लिष्टो यो विशेषोऽभिधीयते, यदाह–
स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणां चैव।
उत्पद्यते विशेषो यः, श्लिष्टोऽसौ विलासः स्यात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धवलाओ चामराओ गहाय सलीलं वीयमाणीओ-वीयमाणीओ चिट्ठंति॥

मथित फेनपुञ्ज जैसे चामरों को लेकर लीला के साथ वीजन करती हुई, वीजन करती हुई खड़ी हो गई।

१९७. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स उत्तरपुरत्थिमे णं एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयार-कुसला सुंदरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास कलिया सेतं रययामयं विमल-सलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकिति-समाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य उत्तरपौरस्त्ये एका वरतरुणी शृङ्गाराकार-चारुवेषा सङ्गत-गत-हसित-भणित-चेष्टित-विलास-सललित-संलाप निपुण-युक्तोपचारकुशला सुन्दरस्तन-जघन वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन-विलासकलिता श्वेतं रजतमयं विमल-सलिलपूर्णं मत्तगजमहामुखाकृति-समानं भृङ्गारं गृहीत्वा तिष्ठति।

१९७. क्षत्रियकुमार जमालि के उत्तर-पश्चिम में एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, श्वेत, रजतमय विमल सलिल से परिपूर्ण, मत्त हाथी के विशाल मुख की आकृति के समान झारी लेकर खड़ी हो गई।

१९८. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणपुरत्थिमे णं एगा वरतरुणी सिंगारागार-चारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसला सुंदरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास कलिया चित्त-कणगदंडं तालवेंटं गहाय चिट्ठइ॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य दक्षिणपौरस्त्ये एका वरतरुणी शृङ्गाराकार-चारुवेषा सङ्गत-गत-हसित-भणित-चेष्टित-विलास-सललित-संलाप-निपुणयुक्तोपचारकुशला सुन्दरस्तन-जघन-वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन-विलासकलिता चित्रकनकदण्डं तालवृन्तं गृहीत्वा तिष्ठति।

१९८. क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिण पश्चिम में एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, विचित्र स्वर्णदण्ड वाले तालवृंत (वीजन) लेकर खड़ी हो गई।

१९९. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! सरिसयं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं, एगाभरणवसण-गहिय-निज्जोयं कोडुंबियवरतरुण-सहस्सं सद्दावेह॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! सदृशकं सदृक्त्वग् सदृग्वयः सदृश-लावण्य-रूप-यौवन-गुणोपपेतम्, एकाभरण-वसन-गृहीतनिर्योगं कौटुम्बिक-वरतरुणसहस्रं शब्दयत।

१९९. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, सदृश लावण्य रूप और यौवन गुणों से उपेत, एक जैसे आभरण, वेश और कमर-बंध धारण किए हुए एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

२००. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं एगाभरण-वसणगहिय-निज्जोयं कोडुंबियवर-तरुणसहस्सं

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रतिश्रुत्य क्षिप्रमेव सदृशकं सदृक्त्वग् सदृग्वयः सदृशलावण्य-रूप-यौवन-गुणोपपेतम् एकाभरणवसन-गृहीतनिर्योगं कौटुम्बिक-वरतरुणसहस्रं शब्दयन्ति।

२००. कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् विनय-पूर्वक वचन को स्वीकार कर शीघ्र ही सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, समान लावण्य, रूप और यौवन गुणों से उपेत, एक जैसे आभरण, वेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्दावेंति॥

और कमरबंध धारण किए हुए एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया।

२०१. तए णं ते कोडुंबियवरत-रुणपुरिसा जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिउणा कोडुंबिय-पुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठा ण्हाया कयबलिकम्मा कयको-उय-मंगल-पायच्छित्ता एगाभरण-वसणगहियनिज्जोया जेणेव जमा-लिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिर-सावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं अम्हेहिं करणिज्जं॥

ततः ते कौटुम्बिकवरतरुणपुरुषाः जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पित्रा कौटुम्बिकपुरुषैः शब्दायिताः सन्तः हृष्टतुष्टाः स्नाताः कृतबलिकर्माणः कृतकौतुक-मंगल-प्राय-श्चित्ताः एकाभरणवसनगृहीतनिर्योगाः यत्रैव जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धापयन्ति, वर्धापयित्वा एवमवादीत्-संदिशन्तु देवानुप्रियाः! यत् अस्माभिः करणीयम्।

२०१. वे प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुष क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के निर्देशानुसार कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए। उन्होंने स्नान और बलिकर्म किया. कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर जहां क्षत्रियकुमार जमालि के पिता हैं, वहां आए, आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! हमें जो करणीय है, उसका संदेश दें।

२०२. तए णं से जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया तं कोडुंबिय-वरतरुण-सहस्सं एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया कयबलि-कम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता एगा-भरण - वसण - गहिय - निज्जोया जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स सीयं परिवहेह॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता तं कौटुम्बिकवरतरुणसहस्रं एवमवादीत्—यूयं देवानुप्रियाः! स्नाताः कृतबलिकर्माणः कृत-कौतुकमंगल-प्रायश्चित्ताः, एकाभरण-वसन-गृहीतनिर्योगाः जमालेः क्षत्रिय-कुमारस्य शिबिकां परिवहत।

२०२. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उन एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम स्नान और बलिकर्म कर, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त कर, एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका को वहन करो।

२०३. तए णं ते कोडुंबियवरतरुणपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा जाव पडिसुणेत्ता ण्हाया जाव एगाभरणवसणगहिय-निज्जोगा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहंति॥

ततः ते कौटम्बिकवरतरुणपुरुषाः जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पित्रा एवम् उक्ताः सन्तः यावत् प्रतिश्रुत्य स्नाताः यावत् एकाभरण-वसनगृहीतनिर्योगाः जमालेः क्षत्रिय-कुमारस्य शिबिकां परिवहन्ति।

२०३. एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों ने क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर यावत् विनयपूर्वक वचन को स्वीकार कर स्नान किया यावत् एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका को वहन किया।

२०४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पुरिससहस्स-वाहिणिं सीयं दुरुढस्स समाणस्स तप्पढमायाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ आहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-णंदिया - वत्त - वद्धमाणग - भद्दासण-कलस-मच्छदप्पणा। तदाणंतरं च णं

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पुरुषसहस्रवाहिनीं शिबिकाम् आरूढस्य सतः तत्प्रथमतया इमे अष्टाष्टमंगलकाः पुरतः यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः तद्यथा—स्वस्तिक-श्रीवत्स-नन्द्यावर्त-वर्द्धमानक-कलश-मत्स्य-दर्पणाः। तदनन्तरं च पूर्णकलशभृङ्गारं, दिव्या च छत्रपताका

२०४. हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ क्षत्रियकुमार जमालि के आगे-आगे सबसे पहले ये आठ-आठ मंगल प्रस्थान कर रहे थे, जैसे—स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण। उसके बाद पूर्ण कलश, झारी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्णकलसभिंगारं, दिव्वा य छत्त-पडागा सचामरा दंसण-रइय-आलोय-दरिस-णिज्जा, वाउद्धय-विजयवेजयंती य ऊसिया गगण-तलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तदाणंतरं च णं वेरुलिय-भिसंत-विमलदंडं पलंबकोरंटमल्लदामोव-सोभियं चंदमंडलणिभं समूसियं विमलं आयवत्तं, पवरं सीहासणं वरमणिरयणपादपीढं सपाउया - जोयसमाउत्तं बहुकिंकर-कम्मकर - पुरिस - पायत्त-परिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

तदाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा चावग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलग-ग्गाहा पीढग्गाहा वीणग्गाहा कूवग्गाहा हडप्पग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तदाणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो जडिणो पिंछिणो हासकरा डमरकरा-दवकरा चाडु-करा कंदप्पिया कोक्कुइया किडु-करा य वायंता य गायंता य णच्चंता य हसंता य भासंता य सासंता य सावेंता य रक्खंता य आलोयं च करेमाणा जय-जय सद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तदाणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा खत्तिया इक्खागा नाया कोरव्वा जहा ओववाइए, जाव महापुरिसवग्गुरा-परिक्खित्ता जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पुरओ य मग्गतो य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया॥

सचामरा दर्शनरचित-आलोक-दर्शनीया, वातोद्धूता-विजय वैजयन्ती च उच्छ्रिता गगनतलमनुलिखन्ती पुरतः आनुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः। तदनन्तरं च वैडूर्य-भास्वमान-विमलदंडं प्रलम्ब कोरण्ट-माल्यदामनुपशोभितं चन्द्रमण्डलनिभं समुच्छ्रितं विमलम् आतपत्रं, प्रवरं सिंहासनं वरमणिरत्नपादपीठं सपादुका'जोय' समायुक्तं, बहुकिङ्कर-कर्मकर-'पुरुष-पादात-परिक्षिप्तं पुरतः यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितम्। तदनन्तरं च बहवः यष्टि-ग्राहाः कुन्तग्राहाः चामरग्राहाः पाशग्राहाः चापग्राहाः पुस्तकग्राहाः फलकग्राहाः पीठग्राहाः वीणाग्राहाः 'कूव' ग्राहाः 'हडप्प' ग्राहाः पुरतः यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः।

तदनन्तरं च बहवः दण्डिनः मुण्डिनः शिखण्डिनः जटिनः पिच्छिनः हास्याकराः डमरकराः दवकराः चाटुकराः कन्दर्पिकाः कौकुच्यकाः क्रीडाकराः च वादयन्तः च गायन्तः च नृत्यन्तः च हसन्तः च भाषमानाः च शासन्तः च श्रावयन्तः च रक्षन्तः च आलोकं च कुर्वाणाः जय-जय शब्दं प्रयुञ्जानाः पुरतः यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः। तदनन्तरं च बहवः उग्राः भोगाः क्षत्रियाः इक्ष्वाकाः नागाः कौरव्याः यथा औपपातिके यावत् महापुरुषवागुरा-परिक्षिप्ताः जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पुरतः च मार्गतः च पार्श्वतः च यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः।

दिव्य छत्र, पताका, चामर तथा जमालि के दृष्टिपथ में आए, उस प्रकार आलोक में दर्शनीय, वायु से प्रकंपित विजय-वैजयंती ऊंची और तल का स्पर्श करती हुई आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रही थी।

उसके पश्चात् वैडूर्य से दीप्यमान विमल दंड वाला, लटकती हुई कटसरैया की माला और दाम से शोभित, चन्द्रमंडल की आभा वाला ऊंचा विमल छत्र तथा प्रवर मणिरत्न जटित पादपीठ और अपनी दोनों पादुकाओं से समायुक्त प्रवर सिंहासन, बहुत किंकर, कर्मकर, पुरुष पदाति से परिक्षिप्त होकर आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

उसके पश्चात् बहुत यष्टि, माला, चामर (बंधन-रज्जु अथवा चाबुक), धनुष्य, पुस्तक, फलक, पीठ, वीणा, स्नेह-पात्र और सिक्कों का पात्र लिए हुए आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

उसके बाद बहुत दंडी, मुंडी, शिखंडी, जटी, पिच्छी, हास्यकर, शोर करने वाले, परिहास करने वाले, चाटुकर, काम प्रधान क्रीड़ा करने वाले, भांड, खेल तमाशा करने वाले—ये वाद्य बजाते हुए, गाते, हंसते, नाचते, बोलते, सिखाते और भविष्य में होने वाली घटना को सुनाते हुए, रक्षा करते हुए, पृष्ठगामी राजा की ओर निहारते हुए, 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करते हुए यथानुपूर्वी आगे-आगे प्रस्थान कर रहे थे।

उसके पश्चात् बहुत उग्र, भोज, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, नाग, कौरव, औपपातिक की भांति वक्तव्य है यावत् महान् पुरुष वर्ग से परिक्षिप्त क्षत्रियकुमार जमालि के आगे, पीछे और पार्श्व में यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

भाष्य

१. सूत्र—२०४

शब्द-विमर्श

कूवग्गाहा—तैल आदि स्नेह-पात्र लिए हुए।

हडप्प—सिक्कों का पात्र, सुपारी आदि रखने की पेटी।[1] अभयदेव सूरि ने ज्ञाता की वृत्ति में इसका अर्थ आभूषण का करण्डक किया है।[2]

शिखंडी—शिखा धारण करने वाले।

जटी—जटा धारण करने वाले।

पिच्छी—मयूर आदि की पिच्छी धारण करने वाले।

---

१. भ. वृ. ९/२०४—हडप्पो द्रम्मादि भाजनं तांबूलार्थं पूगफलादि भाजनं वा।

२. ज्ञाता वृ. ६३—हडप्पेति आभरणकरण्डकं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डमरकर–शोर करने वाले।[1] ज्ञाता की वृत्ति में इसका अर्थ 'परस्पर कलाह करने वाले' किया है।[2]

दवकर–परिहास करने वाले।

चाटुकर–प्रिय बोलने वाले।

कंदप्पिया–कामप्रधान क्रीडा करने वाले।

कोक्कुइया–भांड

किडुकरा–खेल-तमाशा करने वाले

सासंता–सिखाते हुए।[3]

सावेंता–भविष्य में होने वाली घटना सुनाते हुए।[4] ज्ञाता की वृत्ति में इसका अर्थ 'आशीर्वचन सुनाते हुए' किया है।[5]

अष्ट मंगल

विचारों के आदान-प्रदान का एक माध्यम है–भाषा। दूसरा माध्यम है–प्रतीक। भाषा की विभिन्नता और सीमा को ध्यान में रखकर कला के विशेषज्ञों ने प्रतीकों का विकास किया। वे प्रतीक नाना प्रकार के भावों, भावजन्य मुद्राओं और मांगलिक अवसरों को अभिव्यक्त करते हैं।

आगम साहित्य में अष्ट मंगल का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[6] मांगलिक द्रव्यों की सूची वैदिक और बौद्ध साहित्य में भी मिलती है किन्तु अष्ट मंगल की व्यवस्थित सूची केवल जैन आगमों में ही मिलती है। सुश्रुत में शुभ अशुभ शकुनों की एक तालिका दी गई है। उसमें स्वस्तिक, मत्स्य आदि को शुभ शकुन माना गया है।[7] संभावना की जा सकती है कि शकुन शास्त्र में शुभ मानी जाने वाली वस्तुओं में से अष्ट मंगल का चयन किया गया है।

२०५. तए णं से जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलि-कम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वा लंकारविभूसिए हत्थि-क्खंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्व-माणीहिं हय-गय-रह-पवरजो ह-क लियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड चडगर-विंदपरिक्खित्ते जमालिं खत्तिय-कुमारं पिट्ठओ अणुगच्छइ॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पिता स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमंगल-प्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः हस्ति-स्कन्धवरगतः सकोरेण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेण श्वेतवरचामरैः उद्धूयमानैः-उद्धूयमानैः हय-गज-रथ-प्रवरयोधकलि-तया चतुरंगिण्या सेनया सार्धं सम्परिवृतः महद्भटचटकरवृन्दपरिक्षिप्तः जमालिं क्षत्रियकुमारं पृष्ठतः अनुगच्छति।

२०५. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। सर्व अलंकारों से विभूषित होकर हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। कटसरैया की माला, दाम तथा छत्र को धारण करते हुए, प्रवर श्वेत चामरों का वीजन लेते हुए, हय, गज, रथ और पदातिक–प्रवर योद्धा से कलित चातुरंगिणी सेना संपरिवृत, महान् सुभटों के विस्तृत वृंद से परिक्षिप्त होकर क्षत्रियकुमार जमालि के पृष्ठभाग में रहकर अनुगमन कर रहे थे।

२०६. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासिं नागा नागवरा, पिट्ठओ रहा, रह-संगेल्ली॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य पुरतः महाश्वाः अश्ववराः उभतः पार्श्वं नागाः नागवराः पृष्ठतः रथाः, रथ- 'संगेल्ली'।

२०६. उस क्षत्रिय कुमार जमालि के आगे महान् घोड़े और घुड़सवार, दोनों पार्श्व में हाथी और महावत, पीछे रथ और रथ समूह चल रहे थे।

२०७. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे अब्भुग्गतभिंगारे, परिग्ग-हियतालियंटे, ऊसवियसेतछत्ते, पवी-इयसेतचामर-बालवीयणीए, सव्वि-ड्ढीए जाव दुंदुहि-णिग्घोसणादि-तरवेणं खत्तियकुंडग्गामं नयरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव माहण-कुंडग्गामे नयरे, जेणेव बहुसालए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पाहारेत्थ गमणाए॥

ततः सः जमाली क्षत्रियकुमारः अभ्युद्गतभृङ्गारः परिगृहीततालवृन्तः उच्छ्रितश्वेत-छत्रः प्रवीजितशेषचामर-बालवीजनिकः, सर्वर्द्धया यावत् दुन्दुभिनिर्घोष-नादितरवेण क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव माहनकुण्डग्रामं नगरं यत्रैव बहुशालकं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव प्रधारयेत् गमनाय।

२०७. क्षत्रियकुमार जमालि के आगे जल से भरी झारी लिए हुए, तालवृंत लिए हुए, श्वेत छत्र तानते हुए, श्वेत चामर और बाल वीजनी को डुलाते हुए, सर्व ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द करते हुए क्षत्रियकुंडग्राम नगर के बीचों-बीच जहां ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां जाने के लिए उद्यत हुए।

---

१. भ. वृ. १, २०४ -डमरकरा–विडंबकाग्रिणः।

२. ज्ञाता वृ. ६३. डमरकराः परस्परेण कलहं विधायकाः।

३. भ. वृ. १, २०४।– सांज्ञिता य शिक्षयंतः।

४. वही, १/२०४।- सावेंता य इदं चेदं भविष्यन्तीत्येवं भूतवचांसि श्रावयंतः।

५. ज्ञाता वृ. प. ६३–सावेंता य श्रावयंत आशीर्वचनानि।

६. (क) ओवा. सू. ६४।
(ख) राय. सू. २१, २०१।

७. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम् अध्याय २०, श्लोक २७-४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०८. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स खत्तियकुंडग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छ-माणस्स सिंघा-डग - तिय - चउक्क - चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहवे अत्थ-त्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किव्विसिया कारो-डिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खंडियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभि-रामाहिं हियय्गमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिनंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी–जय-जय नंदा! धम्मेणं, जय-जय नंदा! तवेणं, जय-जय नंदा! भद्दं ते अभग्गेहिं नाण-दंसण-चरित्तेहिमुत्तमेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, निहणाहि य रागदोस-मल्ले तवेणं धितिधणियबद्धकच्छे, मद्दाहिय अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहण-पडागं च धीर! तेलोक्क-रंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च नाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोव-दिट्ठेणं सिद्धि-मग्गेणं अकुडिलेणं हंता परीसहचमूं अभिभविय गामकंट-कोवसग्गा णं, धम्मे ते अविग्घमत्थु त्ति कट्टु अभिनंदंति य अभित्थुणंति य॥

ततः तस्य जमालेः क्षत्रियकुमारस्य क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छतः शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहवः अर्थार्थिकाः कामार्थिकाः भोगार्थिकाः लाभार्थिकाः किल्विषिकाः कारोटिकाः कारवाहिकाः शाङ्खिकाः चक्रिकाः लाङ्गलिकाः मुखमाङ्गलिकाः वर्धमानाः पुष्यमानवाः खण्डितगणाः ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः मनोज्ञाभिः 'मणामाहिं' मनोभिरामाभिः हृदयगमनीयाभिः वग्गूहिं जय-विजय-मङ्गलशतैः अनवरतम् अभिनन्दन्तः च अभिष्टुवन्तः च एवमवादिषुः-जय-जय नंदा! धर्मेण, जय-जय नंदा! तपसा, जय-जय नंदा! भद्रं तव अभग्नैः ज्ञान-दर्शन-चारित्रैः उत्तमैः, अजितानि जय इन्द्रियाणि, जितं पालय श्रमणधर्मं, जितविघ्नोऽपि च वस त्वं देव! सिद्धिमध्ये, निजहि च रागद्वेषमल्लान् तपसा धृतिधणिय-बद्धकच्छः मृदनीहि च अष्टकर्मशत्रून् ध्यानेन उत्तमेन शुक्लेन, अप्रमत्तः हर आराधनपताकां च धीर! त्रैलोक्यरंगमध्ये, प्राप्नुहि वितिमिरम् अनुत्तरं केवलं च ज्ञानम्, गच्छ च मोक्षं परं पदं जिनवरोपदिष्टेन सिद्धिमार्गेण अकुटिलेन हत्वा परीषहचमूम् अभिभूय ग्रामकण्टकोपसर्गान् धर्मे तव अविघ्नः अस्तु इति कृत्वा अभिनन्दन्ति च अभिष्टुवन्ति च।

२०८.'क्षत्रियकुमार जमालि का क्षत्रिय-कुण्डग्राम नगर के बीचोबीच निष्क्रमण करते हुए शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुत धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्विषिक(विदूषक) कापालिक, कर-पीड़ित अथवा सेवा में व्यापृत, शंख बजाने वाले, चक्रधारी, कृषक, मंगल-पाठक, विशिष्ट प्रकार का नृत्य करने वाले, घोषणा करने वाले, छात्रगण, उन इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, मनोभिराम, हृदय का स्पर्श करने वाली वाणी और जय-विजय-सूचक मंगल शब्दों के द्वारा अनवरत अभिनंदन और अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले–

हे नंद–समृद्ध पुरुष! तुम्हारी जय हो, विजय हो धर्म के द्वारा।

हे नंद पुरुष! तुम्हारी जय हो विजय हो तप के द्वारा।

हे नंद पुरुष! तुम्हारी जय हो विजय हो, भद्र हो अभग्न उत्तम ज्ञान दर्शन चारित्र के द्वारा।

इन्द्रियां अजित हैं, उन्हें जीतो। श्रमण धर्म जित है, उसकी पालना करो। हे देव! विघ्नों को जीतकर सिद्धि मध्य में निवास करो। धृति का सुदृढ़ कच्छा बांधकर तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लों को निहत करो। उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो। हे धीर! इस त्रिलोकी के रंग मध्य में अप्रमत्त होकर आराधना पताका को हाथ में थामो। तम रहित अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो।

जिनवर उपदिष्ट ऋजु सिद्धिमार्ग के द्वारा, परीषह-सेना को हत-प्रहत कर, इन्द्रिय समूह के कंटक बने हुए उपसर्गों को अभिभूत कर परम मोक्ष पद को प्राप्त करो। तुम्हारी धर्म की आराधना विघ्न रहित हो। इस प्रकार जन-समूह क्षत्रियकुमार जमालि का अभिनंदन और अभिस्तवन कर रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र–२०८

शब्द-विमर्श

किब्विसिया–भाण्ड आदि।[1] ज्ञाता की वृत्ति में इसका अर्थ पाप का फल भोगने वाले गरीब, अंधा, पंगु आदि किया है।

कारोडिया–कापालिक।[2] तांत्रिक साधना करने वाला।

कारवाहिया–सेवा में व्यापृत। इसका वैकल्पिक अर्थ है करपीड़ित।[3]

संखिया–शंख बजाने वाला, चंदन गर्भित शंख को हाथ में लेकर चलने वाला।[4]

चक्किया–चक्र-अस्त्र को हाथ में रखने वाले।

नंगलिया–गले में सुवर्णमय हल की प्रतिकृति धारण करने वाला किसान अथवा भाट।

मुहमंगलिया–चाटुकार।[5]

वद्धमाण–संस्कृत शब्दकोश में वर्द्धमान और वर्द्धमानक–ये दो शब्द हैं।

वर्द्धमान–नृत्य में विशेष प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाला।

वर्द्धमानक–नर्तक की एक श्रेणी, जिसके सदस्य शिर अथवा हाथ में लैंप लेकर नृत्य करते हैं।[6] अभयदेव सूरि ने वर्द्धमान का अर्थ स्कंधारोपित पुरुष किया है।[7]

पुष्यमाण–घोषणा करने वाला। अभयदेव सूरि ने इसका अर्थ मागध किया है।[8]

खंडियगण–छात्रगण।

२०९. **तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे नयणमालासहस्सेहिं पेच्छि-ज्जमाणे-पेच्छिज्जमाणे हियय-मालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे-अभिणंदिज्जमाणे मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे-विच्छिप्पमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे-अभिथुव्वमाणे कंति-सोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे-पत्थि-ज्जमाणे बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमाला-सहस्साइं पडिच्छमाणे-पडिच्छ-माणे मंजुमंजुणा घोसेणं आपडिपुच्छमाणे-आपडिपुच्छ-माणे भवण-पंतिसहस्साइं समइच्छ-माणे-समइच्छमाणे खत्तियकुंडग्गामे नयरे मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंड-ग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ॥**

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः नयन-मालासहस्रैः प्रेक्ष्यमाणः प्रेक्ष्यमाणः हृदय-मालासहस्रैः अभिनन्द्यमानः अभिनन्द्य-मानः मनोरथमालासहस्रैः विस्पृश्यमानः-विस्पृश्यमानः वचनमालासहस्रैः अभिष्टू-यमानः-अभिष्टूयमानः कान्तिसौभाग्य-गुणैः प्रार्थ्यमानः–प्रार्थ्यमानः बहूनां नर-नारीसहस्राणां दक्षिणहस्तेन अञ्जलि-मालासहस्राणि प्रतीच्छन्-प्रतीच्छन् मञ्जु-मञ्जुना घोषेण आप्रतिपृच्छन्-आप्रति-पृच्छन् भवनपंक्तिसहस्राणि समतिक्रामन्-समतिक्रामन् क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव माहनकुण्डग्रामः नगरं यत्रैव बहुशालकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य छत्रादीन् तीर्थंकरातिशयान् पश्यति, दृष्ट्वा पुरुषसहस्रवाहिनीं शिबिकां स्थापयति, पुरुषसहस्रवाहिन्याः शिबिकायाः प्रत्या-रोहति।

२०९. क्षत्रियकुमार जमालि हजारों नयन-मालाओं से देखा जाता हुआ, देखा जाता हुआ, हजारों हृदय-मालाओं से अभिनंदित होता हुआ, अभिनंदित होता हुआ, हजारों मनोरथ-मालाओं से स्पृष्ट होता हुआ, स्पृष्ट होता हुआ, हजारों वचन-मालाओं से अभिस्तवन लेता हुआ, अभिस्तवन लेता हुआ, बहुत हजारों नर नारियों की हजारों अंजलि-मालाओं को दाएं हाथ से स्वीकार करता हुआ, स्वीकार करता हुआ, मंजु-मंजु घोष से नमस्कार करने वाले जनों की स्थिति को पूछते हुए, पूछते हुए, हजारों गृहपंक्तियों को अतिक्रांत करता हुआ, अतिक्रांत करता हुआ, क्षत्रियकुंडग्राम नगर के बीचोंबीच निर्गमन कर रहा था। निर्गमन कर जहां ब्राह्मण-कुण्डग्राम नामक नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आया। वहां आकर छत्र आदि तीर्थंकर के अतिशयों को देखा। देखकर हजारों पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिबिका को ठहराया। हजार पुरुष द्वारा वहन की जाने वाली शिबिका से उतरा।

२१०. **तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं**

ततः तं जमालिं क्षत्रियकुमारम् अम्बापितरौ

२१०. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को

---

१. भ. वृ. ९/२०८–किल्विषिका भाण्डादयः इत्यर्थः।

२. ज्ञाता वृ. प. ६५–किल्विषिकाः पातकफलभवंतो निःस्वान्धपंग्वादयः

३. वही, ९/२०८– करोडिया कापालिकाः।

४. वही, वृ. ९/२०८–कारं–राजदेयं द्रव्यं वहन्तीत्येवंशीलाः कारवाहिनस्त एव कारवाहिकाः, कर्षाधिता वा।

५. वही, वृ.९/२०८–संखिया–चंदनगर्भशंखहस्ताः मांगल्यकारिणः शंखवादका वा।

६. वही, वृ. ९/२०८–चक्किया–चक्रप्रहरणाः कुंभकारदर्शा वा।

७. वही, ९/२०८–नंगलिया–गलावलंबित सुवर्णादिमयलांगलप्रतिकृ धारिणो भट्टविशेषाः कर्षका वा।

८. वही, ९/२०८–मुहमंगलिया–मुखे मंगलं येषामस्ति ते मुखमंगलिकाः चाटुकारिणः।

९. आप्टे पृ. १३१६, ९७।

१०. (क) भ. वृ. ९/२०८– वद्धमाणाः–स्कंधारोपितपुरुषाः।
(ख) औप. वृ. १३८।

११. भ. वृ. ९/२०८–पुष्यमाणवाः मागधाः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु भंते! जमाली खत्तियकुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविए हियय-नंदिजणणे उंबर-पुप्फंपिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग! पुण पासणयाए? से जहानामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्स-पत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे नोवलिप्पति पंकरएणं, नोवलिप्पति जलरएणं, एवामेव जमाली वि खत्तियकुमारे कामेहिं जाए भोगेहिं संवुड्ढे नोवलिप्पति कामरएणं, नोवलि-प्पति भोगरएणं, नोवलिप्पति मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभयुव्विग्गे भीए जम्मण-मरणेणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सीसभिक्खं॥

पुरतः कृत्वा यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छतः, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां कुरुतः, कृत्वा वन्देते, नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम् अवादिष्टाम्–एवं खलु भदन्त! जमालिः क्षत्रियकुमारः आवयोः एकः पुत्रः इष्टः कान्तः प्रियः मनोज्ञः 'मणामे' स्थैर्यः वैश्वासिकः सम्मतः बहुमतः अनुमतः भाण्डकरण्डकसमानः रत्नः रत्नभूतः जीवितोत्सविकः हृदया-नन्दिजनकः उदुम्बर-पुष्पम इव दुर्लभः श्रवणे, 'किमङ्ग' पुनः दर्शने? सः यथानामकः उत्पल इति वा, पद्म इति वा, यावत् सहस्रपत्रम् इति वा, पङ्के जातः जले संवृतः नोपलिप्यते पङ्करजसा, नोपलिप्यते जलरजसा, एवमेव जमालिः क्षत्रियकुमारः कामेषु जातः, भोगेषु संवृद्धः नोपलिप्यते कामरजसा, नोपलिप्यते भोगरजसा, नोपलिप्यते मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-संबंधिपरिजनेन। एषः देवानुप्रियाः! संसारभयोद्विग्नः भीतः जन्ममरणेण, इच्छति देवानुप्रियाणाम् अन्तिके मुण्डः भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितुम्। तत् एनं देवानुप्रियेभ्यः! आवां शिष्यभिक्षां दद्वः, प्रतीच्छन्तु देवानुप्रियाः! शिष्यभिक्षाम्।

आगे कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–भंते! क्षत्रियकुमार जमालि हमारा एक पुत्र है, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक समान है। रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि रत्न के समान), जीवन-उत्सव और हृदय को आनंदित करने वाला है। वह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ है फिर दर्शन का तो कहना ही क्या? जैसे उत्पल, पद्म यावत् सहस्रपत्र-कमल पंक में उत्पन्न और जल में संवर्द्धित होता है किन्तु वह पंक-रज और जल-रज से उपलिप्त नहीं होता वैसे ही क्षत्रियकुमार जमालि कामों में उत्पन्न हुआ है, भोगों में संवर्द्धित हुआ है किन्तु वह काम-रज और भोग-रज से उपलिप्त नहीं है। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन-संबंधी और परिजन से उपलिप्त नहीं है। देवानुप्रिय! यह संसार भय से उद्विग्न है, जन्म-मरण से भीत है, देवानुप्रिय के पास मुण्ड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होना चाहता है इसलिए हम इसे देवानुप्रिय को शिष्य की भिक्षा के रूप में देना चाहते हैं। देवानुप्रिय! शिष्य की भिक्षा को स्वीकार करें।

२११. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी–अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः जमालिं क्षत्रियकुमारं एवमवादीत्–यथासुखं देवानुप्रियाः! मा प्रतिबंधम्।

२११. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! जैसा सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

२१२. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तर-पुरित्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः श्रमणेण भगवता महावीरेण एवम् उक्ते सति हृष्टतुष्टः श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा उत्तर-पौरस्त्यं दिग्भागम् अपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेव आभरण - माल्यालंकारम्

२१२. श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार कहने पर क्षत्रियकुमार जमालि हृष्ट-तुष्ट हो गया। श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लालंकारं ओमुयइ॥

अवमुञ्चति।

जाकर स्वयं आभरण, माल्य और अलंकार उतारे।

२१३. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हंसलक्खण-पेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार - छिन्नमुत्तावलिप्पग्गासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी - विणिम्मुयमाणी जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी—जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परक्कमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं ति कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मा-पियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

ततः सा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य माता हंसलक्षणेन पटशाटकेन आभरणमाल्यालंकारं प्रतीच्छति, प्रतीष्य हार-वारि-धार-सिन्दुवार - छिन्नमुक्तावलि - प्रकाशानि अश्रूणि विनिर्मुञ्चती—विनिर्मुञ्चती जमालिं क्षत्रियकुमारम् एवमवादीत्—यतितव्यं जात! घटितव्यं जात! पराक्रमितव्यं जात! अस्मिन् च अर्थे नो प्रमत्तव्यम् इति कृत्वा जमालेः क्षत्रियकुमारस्य अम्बा-पितरौ श्रमणं भगवंतं महावीरं वन्देते नमस्यतः वन्दित्वा नमस्थित्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतौ तामेव दिशं प्रतिगतौ।

२१३. [1]क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने हंसलक्षण युक्त पटशाटक में आभरण, माल्य और अलंकार स्वीकार किए। स्वीकार कर हार, जल-धारा, सिन्दुवार (निगुण्डी) के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान बार-बार आंसू बहाती हुई इस प्रकार बोली—

जात! संयम में प्रयत्न करना।

जात! संयम में चेष्टा करना।

जात! संयम में पराक्रम करना।

जात! इस अर्थ में प्रमाद मत करना—यह कहकर क्षत्रियकुमार जमालि के माता पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में लौट गए।

भाष्य

१. सूत्र २१३

१. समय में.....प्रमाद मत करना (जइयव्वं.....णो पमाएतव्वं।)

माता ने क्षत्रियकुमार जमालि को शिक्षा दी। उसके चार सूत्र हैं—यतना, घटना, पराक्रम और अप्रमाद। मां ने कहा—पुत्र! प्राप्त संयम योग में प्रयत्न करते रहना। अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिए घटना—चेष्टा करते रहना, पराक्रम करते रहना। लक्ष्य की सिद्धि के लिए अप्रमत्त रहना।[1]

२१४. तए णं से जमाली खत्तिय-कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य।

से जहानामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्क-मइ। एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

ततः सः जमालिः क्षत्रियकुमारः स्वमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिःआदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्—आदीप्तः भदन्त! लोकः, प्रदीप्तः भदन्त! लोकः, आदीप्त-प्रदीप्तः भदन्त! लोकः जरया मरणेण च।

अथ यथानामकः कोऽपि 'गाहावई' अगारे ध्मायमाने यः सः तत्र भाण्डः भवति अल्पभारः मूल्यगुरुकः, तं गृहीत्वा आत्मना एकांतमंतम् अपक्रामति। एष मम निस्तारितः सन् पश्चात् पुरा च हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति। एवमेव देवानुप्रिय! ममापि आत्मा एकः भाण्डः इष्टः कांतः प्रियः

२१४. [2]क्षत्रियकुमार जमालि ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो रहा है (जल रहा है)। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है (प्रज्वलित हो रहा है)। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त-प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे किसी गृहपति के घर में आग लग जाने पर वहां जो अल्प भार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है, उसे लेकर स्वयं एकांत स्थान में चला जाता है। (और

१. भ. वृ. ९/२१३।— जइयव्वं ति प्राप्तेषु संयमयोगेषु प्रयत्नः कार्यः, 'जाया!' हे पुत्र! घडियव्वं ति अप्राप्तानां संयमयोगानां प्राप्तये घटना कार्या, परिक्कमियव्वं ति पराक्रमः कार्यः पुरुषत्वाभिमानः सिद्धफलः कर्तव्य इति भावः, किमुक्तं भवति?-अस्मिं चेत्यादि, अस्मिंश्चार्थे—प्रव्रज्यानुपालन-लक्षणे न प्रमादयितव्यमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवामेव देवाणुप्पिया! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसया, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइय विविहा रोगा-यंका परीसहोवसग्गाफुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

मनोज्ञः 'मणामे' स्थेयान् वैश्वासिकः सम्मतः बहुमतः अनुमतः भाण्डकरण्डक-समानः, मा शीतं, मा उष्णं, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा चौराः, मा व्यालाः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिकाः विविधाः रोगातंकाः परीषहोपसर्गाः स्पृशन्तु इति कृत्वा एष मम निस्तारितः सन् परलोकस्य हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति।

सोचता है—) अग्नि से निकाला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

देवानुप्रिय! इसी प्रकार मेरा शरीर भी एक उपकरण है। वह इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। इसे सर्दी-गर्मी न लगे, भूख-प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस्र पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपात जनित विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे, इस अभिसंधि से मैंने इसे पाला है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह परलोक में मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। इसलिए देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा प्रव्रजित होना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूं तथा आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय-वैनयिक, चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूं।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सय-मेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणय-वेणइय-चरण-करण - जायामाया - वत्तियं धम्म-माइक्खियं॥

तद् इच्छामि देवानुप्रिय! स्वयमेव प्रव्रजितं, स्वयमेव मुण्डितं, स्वयमेव शिक्षापितं, स्वयमेव आचार-गोचरं, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्राप्रत्ययं धर्म-माख्यातम्।

भाष्य

२. सूत्र—२१४

नापित द्वारा अग्रकेशों का कर्तन[1], जमालि द्वारा स्वयं पंचमुष्टिक लोच[2] और महावीर द्वारा मुंडन[3]—लोच के विषय में ये तीन प्रकल्प मिलते हैं। उनमें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। नापित ने अग्रकेशों का कर्तन किया। जो केश शेष बचे, उनका (पंचमुष्टिक) लोच स्वयं जमालि ने किया। जमालि आदि पांच सौ शिष्य महावीर के पास मुण्डित हुए। उनके मुंडन को महावीर की सन्निधि में किया गया मुंडन कहा जा सकता है। पांच सौ का एक साथ महावीर के द्वारा मुंडन करना संभव नहीं लगता।

पंचमुष्टिक लोच एक शैलीगत वर्णन है। अग्रकेशों का कर्तन पहले हो चुका था इसलिए पंचमुष्टि लोच की संभावना कैसे हो सकती है?

२१५. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिं खत्तियकुमारं पंचहिं पुरिस-सएहिं सद्धिं सयमेव पव्वावेइ जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः जमालिं क्षत्रियकुमारं पञ्चभिः पुरुषशतैः सार्धं स्वयमेव प्रव्राजयति, यावत् सामायिकादि-कानि, एकादश अंगानि अधीते, अधीत्य बहुभिः चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम-दशम-द्वादशैः मासार्द्धमासक्षपणैः विचित्रैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति।

२१५. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रियकुमार जमालि को पांच सौ पुरुषों के साथ स्वयं ही प्रव्रजित किया यावत् क्षत्रियकुमार जमालि ने सामायिक, आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन कर अनेक चतुर्थ भक्त, षष्ठभक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त, अर्धमास और मास-खमण—इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहरण किया।

१. भ. वृ. ९/१८८।
२. वही, ९/२१७।
३. वही, ९।२१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१६. तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए॥

ततः सः जमालिः अनगारः अन्यदा कदापि यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवंतं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–इच्छामि भदन्त! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं बहिः जनपदविहारं विहर्तुम्।

२१६. जमालि अनगार किसी समय जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! तुम्हारी अनुज्ञा से मैं पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद विहार करना चाहता हूं।

२१७. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः जमालेः अनगारस्य एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।

२१७. श्रमण भगवान महावीर ने जमालि अनगार के इस अर्थ को आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मौन रहे।

२१८. तए णं से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए॥

ततः सः जमालिः अनगारः श्रमणं भगवन्तं महावीरं द्विः अपि त्रिः अपि एवमवादीत्–इच्छामि भदन्त! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं बहिः जनपदविहारं विहर्तुम्।

२१८. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा–भंते! मैं तुम्हारी अनुज्ञा से पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद विहार करना चाहता हूं।

२१९. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स अणगारस्स दोच्चं पि, तच्चं पि एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः जमालेः अनगारस्य द्विः अपि, त्रिः अपि एतदर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।

२१९. श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार के इस कथन को दूसरी और तीसरी बार भी आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मौन रहे।

२२०. तए णं से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनि-क्खमित्ता पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ॥

ततः सः जमालिः अनगारः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकाद् बहुशालकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं बहिः जनपदविहारं विहरति।

२२०. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर श्रमण भगवान महावीर के पास से बहुशालक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद विहार करने लगा।

२२१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नयरी होत्था– वण्णओ, कोट्ठए चेइए–वण्णओ जाव वणसंडस्स। तेणं कालेणं तेण समएणं चंपा नामं नयरी होत्था– वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए–वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रावस्ती नाम नगरी आसीत्–वर्णकः, कोष्ठकं चैत्यम्–वर्णकः यावत् वनषण्डस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये चंपा नाम नगरी-वर्णकः। पूर्णभद्रं चैत्यम्–वर्णकः यावत् पृथ्वी-शिलापट्टकः।

२२१. उस काल और उस समय श्रावस्ती नाम की नगरी थी–वर्णक। कोष्ठक चैत्य–वर्णक यावत् वनखण्ड तक। उस काल और उस समय चंपा नामक नगरी थी–वर्णक। पूर्णभद्र चैत्य–वर्णक यावत् पृथ्वीशिला पट्टक

२२२. तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ पंचहिं अणगार-सएहिं

ततः सः जमालिः अनगारः अन्यदा कदापि पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं संपरिवृतः

२२२. जमालि अनगार किसी समय पांच सौ अनगारों के साथ संपरिवृत होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य यथाप्रतिरूपं अवग्रहं अवगृह्णाति, अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन करते हुए जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां कोष्ठक चैत्य था, वहां आया। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहा था।

२२३. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहा-पडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव चंपानगरी यत्रैव पूर्णभद्रं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य यथाप्रतिरूपं अवग्रहं अवगृह्णाति, अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

२२३. श्रमण भगवान महावीर किसी समय क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां चंपानगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, वहां आए। आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

२२४. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहिं अरसेहि य, विरसेहि य अंतेहि य, पंतेहि य, लूहेहि य, तुच्छेहि य, काला-इक्कंतेहि य, पमाणाइक्कंतेहि य पाणभोयणेहिं अण्णया कयाइ सरीरगंसि विउले रोगातंके पाउब्भूए-उज्जले विउले पगाढे कक्कसे कडुए चंडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे दुरहियासे। पित्तज्जर-परिगतसरीरे, दाहवक्कंतिए या वि विहरइ॥

ततः तस्य जमालेः अनगारस्य तैः अरसैः च विरसैः च, अन्तैः च, प्रान्तैः च, रूक्षैः च, तुच्छैः च, कालातिक्रान्तैः च, प्रमाणातिक्रान्तैः च, प्राणभोजनैः अन्यदा कदाचित् शरीरे विपुलः रोगांतङ्कः प्रादुर्भूतः-'उज्ज्वलं' विपुलः प्रगाढः कर्कशः कटुकः चण्डः दुःखः 'दुर्गं' तीव्रः दुरध्यासः। पित्तज्वरपरिगतशरीरः, दाहा-वक्रान्तिकः चापि विहरति।

२२४. उस जमालि अनगार के अरस, विरस, अंत, प्रांत, रूक्ष, तुच्छ, कालातिक्रांत, प्रमाणातिक्रांत,[1] पान-भोजन से किसी समय शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ-उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, दुःखद, कष्टसाध्य, तीव्र और दुःसह। उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और उसमें जलन पैदा हो गयी।

भाष्य

१. सूत्र-२२४

१. कालातिक्रांत, प्रमाणातिक्रांत-(कालाइक्कंतेहि य पमाग-इक्कंतेहि य)

भगवती ७/२४ में कालातिक्रांत और प्रमाणातिक्रांत का प्रयोग भिन्न अर्थ में हुआ है। प्रस्तुत प्रकरण में कालातिक्रांत का अर्थ है-प्यास और भूख के काल का अतिक्रमण हो जाने पर काम में लिया जाने वाला पानी और आहार।

प्रमाणातिक्रांत का अर्थ है-प्रमाण से अतिरिक्त जल और आहार का प्रयोग।[1]

२२५. तए णं से जमाली अणगारे वेयणाए अभिभूए समाणे समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सेज्जा-संथारगं संथरह॥

ततः सः जमालिः अनगारः वेदनया अभिभूतः सन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-यूयं देवानुप्रियाय! मम शय्या-संस्तारकं स्तृणीत।

२२५. जमालि अनगार ने वेदना से अभिभूत होकर श्रमण-निर्ग्रंथों को संबोधित किया। संबोधित कर इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! तुम मेरे शय्या-संस्तारक बिछा दो।

---

१. भ. वृ. ९/२२४-कालाइक्कंतेहिं य ति तृष्णाबुभुक्षाकालाप्राप्तैः, पमाणाइक्कंतेहिं य ति बुभुक्षापिपासामात्रानुचितैः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२६. तए णं ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एतमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जमालिस्स अणगारस्स सेज्जा-संथारगं संथरंति॥

ततः ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः जमालेः अनगारस्य एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य जमालेः अनगारस्य शय्या-संस्तारकं स्तृणन्ति।

२२६. [1]श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर जमालि अनगार का शय्या-संस्तारक बिछाने लगे।

२२७. तए णं से जमाली अणगारे बलियतरं वेदणाए अभिभूए समाणे दोच्चं पि समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–ममं णं देवाणुप्पिया! सेज्जा संथारए किं कडे? कज्जइ?

तते णं ते समणा निग्गंथा जमालिं अणगारं एवं वयासी–नो खलु देवाणुप्पियाणं सेज्जा-संथारए कडे, कज्जइ॥

ततः सः जमालिः अनगारः बलिकतरं वेदनया अभिभूतः सन् द्विः अपि श्रमणान् निर्ग्रन्थान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–मम देवानुप्रियाः! शय्या-संस्तारकः किं कृतः? क्रियते?

ततः ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः जमालिं अनगारम् एवमवादीत्–नो खलु देवानुप्रियाणां शय्या-संस्तारकः कृतः, क्रियते।

२२७. प्रबलतर वेदना से अभिभूत जमालि अनगार ने दूसरी बार भी श्रमण-निर्ग्रंथों को संबोधित कर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियः! क्या मेरा शय्या संस्तारक बिछा दिया? अथवा बिछा रहे हैं?

वे श्रमण निर्ग्रंथ जमालि अनगार से इस प्रकार बोले–देवानुप्रिय! शय्या-संस्तारक अभी बिछाया नहीं, बिछा रहे हैं।

२२८. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स अयमेयारूवे अज्झ-त्थिए चिंतिए पत्थिए मणागए संकप्पे समुप्पज्जित्था–जण्णं समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–एवं खलु चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेदिज्जमाणे वेदिए, पहिज्जमाणे पहीणे, छिज्जमाणे छिण्णे, भिज्जमाणे भिण्णे, दज्झमाणे दड्ढे, मिज्जमाणे मए, निज्जरिज्ज-माणे निज्जिणे, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए। जम्हा णं सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए। तम्हा चलमाणे वि अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे वि अनिज्जिण्णे–एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–जण्णं देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ– एवं खलु चलमाणे चलिए जाव निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए। जम्हा णं सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे,

ततः तस्य जमालेः अनगारस्य अयमेतद्-रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–एवं खलु चलत् चलितम्, उदीर्यमाणम् उदीरितम्, वेद्यमानं वेदितम्, प्रहीयमानं प्रहीनम्, छिद्यमानं छिन्नम्, भिद्यमानं भिन्नम्, दह्यमानं दग्धं म्रियमाणं मृतम्, निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम् तत् मिथ्या। इदं च प्रत्यक्षमेव दृश्यते शय्या-संस्तारकः क्रियमाणः अकृतः, संस्तीर्यमाणः असंस्तृतः। तस्मात् चलत् अपि अचलितम् यावत् निर्जीर्यमाणम् अपि अनिर्जीर्णम् एवं संप्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य श्रमणान् निर्ग्रन्थान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–यत् देवानुप्रियाः! श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–एवं खलु चलत् चलितम् यावत् निर्जीर्यमाणम् निर्जीर्णम्, तत् मिथ्या। इदं च प्रत्यक्षमेव दृश्यते शय्या-संस्तारकः क्रियमाणः अकृतः, संस्तीर्यमाणः असंस्तृतः। यस्मात् शय्या-संस्तारकः क्रियमाणः अकृतः, संस्तीर्यमाणः असंस्तृतः। तस्मात् चलत् अपि अचलितम् यावत् निर्जीर्यमाणम् अपि अनिर्जीर्णम्।

२२८. जमालि अनगार के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–जो श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं–चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीणमान प्रहीण, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण होता है–वह मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है–शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है। जिस हेतु से शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है, उसी हेतु से चलमान भी अचलित यावत् निर्जीर्यमाण भी अनिर्जीर्ण है–इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर श्रमण-निर्ग्रंथों को संबोधित किया, संबोधित कर इस प्रकार कहा– देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर जो इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं–चलमान चलित यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है, वह मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है–शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है। जिस हेतु से शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है, उसी हेतु से चलमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संथरिज्जमाणे असंथरिए। तम्हा चलमाणे वि अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे वि अनिज्जिण्णे॥

भी अचलित है यावत् निर्जीर्यमाण भी अनिर्जीर्ण है।

२२९. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स अत्थेगतिया समणा निग्गंथा एयमट्ठं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति, अत्थेगतिया समणा निग्गंथा एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति। तत्थ णं जे ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं सद्दहंति पत्ति-यंति रोयंति, ते णं जमालिं चेव अणगारं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति। तत्थ णं जे ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, ते णं जमालिस्स अणगारस्स अंतियाओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनि-क्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुग्गामं दूइज्जमाणा जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता समणं भगवं महावीरं उवसंप-ज्जित्ता णं विहरंति॥

ततः तस्य जमालेः अनगारस्य एवमा-चक्षाणस्य यावत् प्ररूपयतः अस्त्येके श्रमणाः निर्ग्रन्थाः एनमर्थं श्रद्दधति प्रतीयन्ति रोचन्ते, अस्त्येके श्रमणाः निर्ग्रन्थाः एनमर्थं नो श्रद्दधति नो प्रतीयन्ति नो रोचन्ते। तत्र ये ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः जमालेः अनगारस्य एनमर्थं श्रद्दधति, प्रतीयन्ति रोचन्ते, ते जमालिं अनगारम् उपसंपद्य विहरन्ति। तत्र ये ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः जमालेः अनगारस्य एनमर्थं नो श्रद्दधति नो प्रतीयन्ति नो रोचन्ते, ते जमालेः अनगारस्य अन्तिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य पूर्वानुपूर्वी चरन्तः ग्रामानुग्रामं द्रवन्तः यत्रैव चम्पानगरी, यत्रैव पूर्णभद्रं चैत्यम् यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिःआदक्षिण-प्रदक्षिणां कुर्वन्ति, कृत्वा वन्दते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उपसंपद्य विहरन्ति।

२२९. जमालि अनगार के इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने पर कुछ श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, कुछ श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार के इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, वे जमालि अनगार को ही उपसंपन्न कर विहार करने लगे। जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार के इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की, उन्होंने जमालि अनगार के पास से कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर क्रमानुसार विचरण और ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए जहां चंपा नगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर श्रमण भगवान् महावीर को उपसंपन्न कर विहार करने लगे।

भाष्य

१. सूत्र–२२६–२२९

इस आलापक में बहुरतवाद की स्थापना से संबद्ध घटना का उल्लेख है। स्थानांग में भगवान महावीर के शासन में होने वाले सात निह्नवों का निर्देश है। इनमें प्रथम निह्नव का नाम बहुरतवाद और उसके धर्माचार्य का नाम जमालि बतलाया गया है।[1]

भगवान महावीर को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, उसके चौदह वर्ष बीत जाने पर बहुरतवादी दृष्टि का उद्भव हुआ।[2] उद्भव का प्रसंग सूत्रांक ९/२२३ से २२९ में वर्णित है।

आवश्यक निर्युक्तिकार ने इस सिद्धांत की समीक्षात्मक चर्चा की है। चर्चा के प्रारंभ में बहुरतवाद के प्रवर्तक जमालि का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। उनके अनुसार भगवान महावीर की ज्येष्ठ भगिनी का नाम सुदर्शना। उसके पुत्र का नाम जमालि। महावीर की पुत्री के दो नाम अनवद्या और प्रियदर्शना। उसका विवाह जमालि के साथ हुआ था।[3]

मल्लधारी हेमचन्द्र ने उक्त गाथा की व्याख्या में लिखा है—जमालि कुण्डपुर का राजकुमार और महावीर का भानजा था। इसमें

१. ठाणं ७/१४०-१४२

२. आवश्यक निर्युक्ति गा. १२५

चोद्दसवासाणि तदा जिणेण, उप्पाडियस्स नाणस्स।
तो बहुरयाण दिट्ठी, सावत्थी ए समुप्पन्ना॥

३. वही, गा. १२६–

जिट्ठा सुदंसणा जमालिणोज्ज, सावत्थि वेंदुग्जाणे।
पंचसया य सहस्सं, ढंकेण जमालि मोत्तूणं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की बहिन का नामोल्लेख नहीं है। महावीर की पुत्री सुदर्शना का जमालि के साथ विवाह हुआ था। उसके तीन नाम बतलाए गए हैं—ज्येष्ठा, सुदर्शना और अनवद्यांगी। जमालि पांच सौ पुरुषों के साथ महावीर के पास दीक्षित हुआ और सुदर्शना हजार स्त्रियों के साथ प्रव्रजित हुई।[1]

मल्लधारी हेमचन्द्र की यह व्याख्या निर्युक्ति की गाथा से संवादी नहीं है. इस गाथा की संवादी व्याख्या निर्युक्ति की दीपिका में मिलती है। उसके अनुसार महावीर की बड़ी बहिन का नाम था—सुदर्शना. उसका पुत्र था जमालि। महावीर की पुत्री उसकी भार्या थी। उसके दो नाम थे अनवद्यांगी और प्रियदर्शना।[2]

आयारचूला और पर्युषणा कल्प से दीपिकाकार के मत को समर्थन मिलता है। श्रमण भगवान महावीर की ज्येष्ठ भगिनी का नाम सुदर्शना और उनकी पुत्री का नाम अनवद्या और प्रियदर्शना था।[3]

प्रस्तुत शतक में उल्लेख है—जमालि के आठ पत्नियां थीं। उनका नामोल्लेख नहीं है।[4]

अनगार जमालि ने भगवान महावीर के पास स्वतंत्र विहार की अनुमति मांगी। भगवान मौन रहे और जमालि ने स्वतंत्र विहार के लिए प्रस्थान कर दिया। इस घटना के साथ अनेक प्रश्न जुड़े हुए हैं—

भगवान् मौन क्यों रहे? जमालि को स्वतंत्र विहार करने से क्यों नहीं रोका? क्या जमालि का स्वतंत्र विहार अनुशासन का अतिक्रमण नहीं है?

इन प्रश्नों के उत्तर में वृत्तिकार द्वारा प्रस्तुत हेतु यह है—भगवान महावीर ने भावी दोष को ध्यान में रखकर जमालि की प्रार्थना की उपेक्षा की।[5]

वीतराग के अनुशासन के तीन तत्त्व होते हैं—

- हितानुकूल निर्देश।
- हितानुकूल निषेध।
- अहितानुगामी आग्रह की उपेक्षा।

जमालि पित्तज्वर की व्याधि से ग्रस्त हो गए। वेदना से अभिभूत होकर उन्होंने श्रमण-निर्ग्रन्थों को बिछौना करने को कहा। श्रमण-निर्ग्रन्थों ने उनके आदेश को शिरोधार्य कर बिछौना करना शुरू कर दिया।

जमालि ने उनसे पूछा—क्या बिछौना कृत है या किया जा रहा है?

श्रमण-निर्ग्रन्थ—बिछौना कृत नहीं है, किया जा रहा है।

इस उत्तर को सुनकर जमालि के मन में ऊहापोह उत्पन्न हुआ। महावीर कहते हैं—चलमाणे चलिए—यह सिद्धांत मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है—बिछौना क्रियमाण है, कृत नहीं है।

जमालि के ऊहापोह को जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण ने तार्किक शैली में प्रस्तुत किया है। यदि क्रियमाण कृत है तो सत् को करने की स्थिति उत्पन्न होगी। असत् को किया जाता है। सत् को कभी नहीं किया जाता। इसलिए कृत क्रियमाण नहीं हो सकता। यह पक्ष है। इसका हेतु है—कृत विद्यमान होता है इसलिए इसका पुनः करण नहीं होना। कृत को किया जाता है, यह अभ्युपगम हो तो करने की क्रिया अनवरत चलेगी। क्रिया की परिसमाप्ति कभी नहीं होगी।[6]

दूसरा तर्क है—क्रिया के आरंभ क्षण में कार्य निष्पन्न नहीं होता। क्रिया के अंतिम क्षण में निष्पन्न होता है इसलिए क्रियमाण कृत नहीं हो सकता।[7]

अभयदेव सूरि के अनुसार बहुरतवाद का पक्ष यह है—कृत अतीत काल का निर्देश है। क्रियमाण वर्तमान काल का निर्देश है।

बिछौना करने वाले साधुओं ने कहा—बिछौना किया जा रहा है, बिछौना किया नहीं गया है। इस पर विमर्श कर जमालि ने कहा—क्रियमाण कृत है, यह अभ्युपगम संगत नहीं है।[8] जमालि के पक्ष का निरसन करने में अभयदेव सूरि ने विशेषावश्यक भाष्य का अनुसरण किया है। भाष्यकार के अनुसार अकृत अविद्यमान है, उसे किया नहीं जाता।[9] विद्यमान वस्तु में पर्याय विशेष का आधान होना है इसलिए किसी दृष्टि से उसमें क्रिया संगत है। अविद्यमान वस्तु में यह सर्वथा असंभव है। यदि करणावस्था में कार्य को असत् माना जाए तो

---

१. वि. भा. गा. २३०६ की वृत्ति- इहैव भरतक्षेत्रे कुंडपुरं नाम नगरम्। तत्र च भगवतः महावीरस्य भागिनेयो जमालिर्नाम राजपुत्र आसीत्। तस्या च भार्या श्रीमन्महावीरस्य दुहिता। तस्याश्च ज्येष्ठेति वा सुदर्शनेति वा अनवद्यांगीति वा नामेति। तत्र पंचशतपुरुषपरिवारो जमालिर्भगवान् महावीरस्यान्तिके प्रव्रज्यां जग्राह। सुदर्शनाऽपि सहस्रस्त्रीपरिवारा तदनुप्रव्रजिता॥

२. आवश्यक नि. दीपिका, प. १४२, गाथा १२६-श्रीवीरस्य ज्येष्ठस्वसुः सुदर्शनायाः सुतो जमालि पंचशतयुक् तद भार्या च श्री वीरपुत्री अनवद्यांगी प्रियदर्शनाऽभिधाना सहस्रयुक् प्राव्राजीत्।

३. (क) आ. चूला १५, २१, २३१ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवी गोत्तेणं। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स धूया कासवी गोत्तेणं। तीसे णं दो नामधेज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा- १. अणोज्जा ति वा २. पियदंसणा ति वा।

(ख) पज्जो० सू. ९०-९१।

४. भ. ९/१०३।

५. भ. वृ. ९/२१०- भाविदोषत्वेनोपक्षेपणीयत्वान्नोक्तमिति।

६. वि. भा. गा. २३१०-

कयमिह न कज्जमाणं, सब्भावाओ चिरंतनघडोव्व।
अहवा कयंपि कीरइ, कीरउ किच्चं न य सम्मयं॥

७. वि. भा. गा. २३१२-

नारंभेच्चिय दीसइ, न सिवाऽऽणए दीसइ तयंते।
तो नहि किरियाकाले, जुत्तं कज्जं तदंतम्मि॥

८. भ. वृ. ९/२२८-किं कडे कज्जइ त्ति किं निष्पन्न उत निष्पाद्यते? अनेनातीत-काल निर्देशन वर्तमानकालनिर्देशन च कृतक्रियमाणयोर्भेद उक्तः। उत्तरउच्येवमेव, तदेवं संस्तारक-कर्तृसाधूभिरपि क्रियमाणस्याकृतत्वोक्ता, ततश्चासौ स्वकीयवचनसंस्तारककर्तृसाधुवचनयोर्विभ्यति प्रज्ञापितवान्- क्रियमाणं कृतं यदभ्युपगम्यते तत्र सङ्गच्छते।

९. वि. भा. गा. २३१३-

हेऊण मयं नाकरणभावो कीरए खपुप्फं व।
अह व अकरं पि कीरइ कीरउ तो खरविसाणं पि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृत्पिण्ड से घट की भांति खर विषाण क्यों नहीं बंधा होगा?

जमालि ने श्रमण निर्ग्रंथों के द्वारा दिए गए इस उत्तर को अपने मत का आधार बनाया--बिछौना किया नहीं गया है, किया जा रहा है। (भगवती ९, २२७-२८) इस विषय में भाष्यकार की वक्तव्यता यह है--जिस आकाश देश में जिस समय बिछौना बिछाया गया, वह आस्तीर्ण है। जिस आकाश देश में जिस समय बिछौना बिछाया जा रहा है, वह आस्तीर्यमाण है। इस नय से आस्तीर्यमाण को आस्तीर्ण कहा गया है।[1]

भगवान महावीर के सिद्धांत को व्यवहार नय और निश्चय नय--दो दृष्टियों से देखना आवश्यक है। व्यवहार नय के अनुसार क्रियमाण अकृत है, यह माना जा सकता है। निश्चय नय के अनुसार कार्य-काल और निष्ठा-काल एक होता है इसलिए मिट्टी के खनन का काल और उसका निष्ठा-काल एक है। जो कार्य जिस समय प्रारंभ किया जाता है, वह उस समय निष्पन्न हो जाता है। इस अपेक्षा से क्रियमाण कृत होता है।[2]

जमालि ने 'क्रियमाण कृत' के सिद्धांत के प्रति अनास्था व्यक्त की। उस समय कुछ श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमालि के विचार से सहमति प्रकट की और वे उनके साथ रह गए। कुछ श्रमण निर्ग्रन्थों ने उनके विचार से असहमति प्रकट की और वहां से प्रस्थान कर भगवान महावीर के पास आ गए।

जिनभद्रगणी ने प्रियदर्शना के प्रतिबुद्ध होने की घटना का उल्लेख किया है। प्रस्तुत आगम में उसकी कोई चर्चा नहीं है। साध्वी प्रियदर्शना जमालि के अनुराग से उनके ही पास रही। एक बार वह कुंभकार ढंक के घर में ठहरी। ढंक के भगवान महावीर का श्रावक था और तत्त्व का जानकार था। उसने साध्वी प्रियदर्शना को प्रतिबोध देने के लिए योजना बनाई। आवा से एक अंगारा लिया और साध्वी प्रियदर्शना की संघाटी(साड़ी, उत्तरीय वस्त्र) पर डाल दिया। संघाटी का अंचल जलने लगा।

प्रियदर्शना बोली--श्रावक! यह क्या किया? मेरी संघाटी जल गई।

ढंक--संघाटी जल रही है। जल गई है, यह कैसे कहा? आपके मतानुसार वह दह्यमान है, अभी दग्ध नहीं है--जल रही है, अभी जली नहीं है।

इस प्रज्ञापना के साथ ही वह प्रतिबुद्ध हो गई।[3] वह जमालि के पास गई और उसे समझाने का प्रयत्न किया। जमालि अपने आग्रह को छोड़ नहीं सका। उसके पास जो श्रमण-निर्ग्रन्थ थे, वे प्रतिबुद्ध हो गए। प्रियदर्शना और सब श्रमण-निर्ग्रन्थ जमालि को छोड़कर भगवान महावीर की शरण में चले गए।[4]

२३०. तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के हट्ठे जाए, अरोए बलिय-सरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्ख-मित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामा-णुग्गामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी--जहा णं देवाणुप्पियाणं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंता,

ततः सः जमालिः अनगारः अन्यदा कदाचित् तस्मात् रोगातङ्कात् विप्रमुक्तः हृष्टः जातः, अरोगः बलितशरीरः श्रावस्त्याः नगर्याः कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य पूर्वानुपूर्वी चरन्, ग्रामानुग्रामं दवन् यत्रैव चम्पानगरी, यत्रैव पूर्णभद्रं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अदूरसामन्ते स्थित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं एवम-वादीत्--यथा देवानुप्रियाणां बहवः अन्ते-वासिनः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः छद्मस्थापक्रम-णेन अपक्रान्ताः, नो खलु अहं तथा छद्मस्थापक्रमणेन अपक्रान्तः, अहं उत्पन्न-

२३०. 'जमालि अनगार किसी समय उस रोग आतंक से विप्रमुक्त होकर हृष्ट हो गया। नीरोग और शरीर से बलवान होकर श्रावस्ती नगरी से कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर क्रमानुसार विचरण और ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए जहां चंपा नगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर के न अति दूर न अति निकट स्थित होकर श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जैसे बहुत अंतेवासी श्रमण-निर्ग्रंथ छद्मस्थ-अपक्रमण से अपक्रांत--

---

१. वि. भा. गा. २३१४ की वृत्ति।

२. वि. भा. गा. २३२१

जं जत्थ नभोदेसे अत्थुव्वइ जत्थ जत्थ समयम्मि।
तं तत्थ तत्थमत्थयमन्थुव्वंतं पि तं चेव॥

आस्तीर्यमाणसंस्तारकस्य यदाकाशमात्रं नभोदेशे यत्र यत्र समये 'अत्थुव्वइ' आस्तीर्यते तत् तावन्मात्रं तस्मिन्नभोदेशे तत्र तत्र समय आस्तीर्णमेव भवति, आस्तीर्यमाणमपि च तदुच्यते।

३. वि. भा. गा. २३२१ की वृत्ति--सर्वनयात्मकं हि भगवद्वचनम्। ततश्च 'क्रियमाणमकृतम्' इत्यपि भगवान् महावीरः कथञ्चिद् व्यवहारनयमतेन मन्यते एव यत् 'चलमाणे चलिए' 'उदीर्यमाणे उदीरिए' इत्यादि सूत्राणि निश्चयनयमतेनेव प्रवृत्तानि। तन्मतेन च 'क्रियमाणं कृतं' 'संस्तीर्यमाणं संस्तृतम्' इत्यादि सर्वमुपपद्यत एव। निश्चयो हि मन्यते--प्रथमसमयादेव घटः कर्तुं आरब्धः किंतु मृदानयनमर्दनादीनि प्रतिसमयं परापर-कार्याण्यारभ्यन्ते, तेषां च मध्ये यद् यत्र समये प्रारभ्यते तत्तत्रैव निष्पद्यते, कार्यकालानिष्ठाकालयोरैक्यात् अन्यथा पूर्वोक्तदोषप्रसंगात्। ततः क्रियमाणं कृतमेव भवति।

४. वि. भा. गा. २३२५-२३३१।

५. वही, गा. २३३२--

इच्छामो संबोहणमज्जो! पियदंसणादओ ढंके।
वोत्तुं जमालिमेक्कं मोत्तूण गया जिणसगासं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नो खलु अहं तहा छउमत्था-वक्कमणेणं अवक्कंते, अहं णं उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलि-अवक्कम-णेणं अवक्कंते॥

ज्ञान-दर्शनधरः अर्हत् जिनः केवली भूत्वा केवलि-अपक्रमणेन अपक्रान्तः।

पृथक् हुए हैं, वैसे मैं छद्मस्थ-अपक्रमण से अपक्रांत नहीं हुआ हूं, मैं उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अर्हत्, जिन, केवली होकर केवली-अपक्रमण से अपक्रांत हुआ हूं।

२३१. तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं एवं वयासी—नो खलु जमाली! केवलिस्स नाणे वा दंसणे वा सेलंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवरिज्जइ वा निवारिज्जइ वा, जदि णं तुमं जमाली! उप्पन्न-ना-दंसणधरे अरहा जिणे केवलि भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कंते, तो णं इमाइं दो वागरणाइं वागरेहि—सासए लोए जमाली! असासए लोए जमाली? सासए जीवे जमाली! असासए जीवे जमाली?

ततः भगवान् गौतमः जमालिम् अनगारम् एवमवादीत्—नो खलु जमाले! केवलिनः ज्ञानं वा दर्शनं वा शैलेन वा स्तम्भेन वा, स्तूपेन वा, आद्रियते वा निवार्यते वा, यदि त्वं जमाले! उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरः अर्हत् जिनः केवली भूत्वा केवलि अपक्रमणेन अपक्रान्तः, तदा इमे द्वे व्याकरणे व्याकुरु—शाश्वतः लोकः जमाले! अशाश्वतः लोकः जमाले! शाश्वतः जीवः जमाले! अशाश्वतः जीवः जमाले?

२३१. भगवान गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—जमालि! केवली का ज्ञान और दर्शन पर्वत, स्तम्भ अथवा स्तूप से आवृत नहीं होता, निवारित नहीं होता। जमालि! यदि तुम उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अर्हत्, जिन, केवली होकर केवली-अपक्रमण से अपक्रांत हुए हो तो इन दो प्रश्नों का व्याकरण करो—जमालि! लोक शाश्वत है? जमालि! लोक अशाश्वत है? जमालि! जीव शाश्वत है? जमालि! जीव अशाश्वत है?

२३२. तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावण्णे कलुस-समावण्णे जाए या वि होत्था, नो संचाएति भगवओ गोयमस्स किंचि वि पमोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीए संचिट्ठइ॥

ततः सः जमालिः अनगारः भगवता गौतमेन एवम् उक्तः सन् शङ्कितः कांक्षितः विचिकित्सकः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः जातः चापि अभवत्, नो शक्नोति भगवतः गौतमस्य किंचिदपि प्रमोक्षमाख्यातुं, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।

२३२. जमालि अनगार भगवान गौतम के इस प्रकार कहने पर शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न हो गया। उसने भगवान गौतम को कुछ भी उत्तर देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाया। वह मौन हो गया।

२३३. जमालीति! समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी—अत्थि णं जमाली! ममं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था, जे णं पभू एयं वागरणं वागरित्तए, जहा णं अहं, नो चेव णं एतप्पगारं भासं भासित्तए, जहा णं तुमं।

सासए लोए जमाली! जं न कयाइ नासि, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य—धुवे, नितिए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

असासए लोए जमाली! जं ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ।

सासए जीवे जमाली! जं न कयाइ नासि,

जमाले इति! श्रमणः भगवान् महावीरः जमालिम् अनगारम् एवमवादीत्—अस्ति जमाले! मम बहवः अन्तेवासिनः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः छद्मस्थाः, ये प्रभवः एनं व्याकरणं व्याकर्तुम्, यथा अहं, नो चैव एतद्प्रकारां भाषां भाषितुम्, यथा त्वम्।

शाश्वतः लोकः जमाले! यत् न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति—अभूत् च, भवति च, भविष्यति च,—ध्रुवः, नियतः, शाश्वतः, अक्षयः, अव्ययः अवस्थितः, नित्यः।

अशाश्वतः लोकः जमाले! यत् अवसर्पिणी भूत्वा उत्सर्पिणी भवति, उत्सर्पिणी भूत्वा अवसर्पिणी भवति।

शाश्वतः जीवः जमाले! यत् न कदापि

२३३. जमालि! श्रमण भगवान महावीर ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—जमालि! मेरे बहुत अंतेवासी श्रमण-निर्ग्रन्थ छद्मस्थ हैं, वे इन प्रश्नों का व्याकरण करने में समर्थ हैं, जैसे मैं। वे इस प्रकार की भाषा नहीं बोलते, जैसे तुम।

जमालि! लोक शाश्वत है। वह कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है;

जमालि! लोक अशाश्वत है। वह अवसर्पिणी होकर उत्सर्पिणी होता है, उत्सर्पिणी होकर अवसर्पिणी होता है।

जमालि! जीव शाश्वत है। वह कभी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ–भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य–धुवे,नितिए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

असासए जीवे जमाली! जण्णं नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ, तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ, मणुस्से भवित्ता देवे भवइ॥

नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति–अभूत् च, भवति च, भविष्यति च–ध्रुवः, नियतः, शाश्वतः, अक्षयः, अव्ययः, अवस्थितः, नित्यः।

अशाश्वतः जीवः जमाले! यत् नैरयिकः भूत्वा तिर्यग्योनिकः भवति, तिर्यग्योनिकः भूत्वा मनुष्यः भवति मनुष्यः भूत्वा देवः भवति।

था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है–वह था, है और होगा–वह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जमालि! जीव अशाश्वत है। वह नैरयिक होकर तिर्यक्योनिक होता है, तिर्यक्योनिक होकर मनुष्य होता है, मनुष्य होकर देव होता है।

२३४. तए णं से जमाली अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एवं परूवेमाणस्स एतमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एतमट्ठं असद्दह-माणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्चं पि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भा-वुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोव-मठितीएसु देवकिव्विसिएसु देवेसु देवकिव्वि-सियत्ताए उववन्ने॥

ततः सः जमालिः अनगारः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य एवमाचक्षाणस्य यावत् एवं प्ररूपयतः एनमर्थं नो श्रद्दधाति नो प्रत्येति नो रोचते, एनमर्थम् अश्रद्दधत् अप्रतियन अरोचमानः द्विः अपि श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकाद् आत्मना अपक्रामति, अपक्रम्य बहुभिः असद्भावोद्-भावनाभिः मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं च परं च तदुभयं च व्युद्ग्राह्यत् व्युत्पादयत् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य अर्द्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषति, जोषित्वा त्रिंशत् भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचित-प्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा लन्तके कल्पे त्रयोदशसागरोपमस्थितिकेषु देव-किल्विषिकेषु देवेषु देवकिल्विषिकतया उपपन्नः।

२३४. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार आख्यान यावत प्ररूपणा करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए दूसरी बार भी श्रमण भगवान महावीर के पास से स्वयं अपक्रमण किया। अपक्रमण कर बहुत असद्भाव की उद्भावना की और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर और दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्या धारणा में व्युत्पन्न करता हुआ बहुत वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। पालन कर अर्द्धमासिकी संलेखना के द्वारा शरीर को कृश बना लिया। शरीर को कृश बना अनशन के द्वारा तीस भक्त (भोजन के समय) का छेदन किया। उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर लांतककल्प में तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ।

भाष्य

१. सूत्र–२३०–२३४

इस आलापक में अनेकांत के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। जमालि ने अपने आपको केवली बतलाया तब गौतम ने दो प्रश्न पूछे–

१. लोक शाश्वत है अथवा अशाश्वत?

२. जीव शाश्वत है अथवा अशाश्वत?

उस युग में शाश्वत और अशाश्वत का प्रश्न बहुचर्चित था। दर्शन की दो धाराएं बनी हुई थीं–कुछ दार्शनिक शाश्वतवादी थे और कुछ अशाश्वतवादी।

जमालि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था।[1] शाश्वत और अशाश्वत की पारदर्शी व्याख्या नय के द्वारा की जा सकती है। उस व्याख्या का अधिकारी दृष्टिवाद (बारहवां अंग) का अध्येता हो सकता है। जमालि ने दृष्टिवाद का अध्ययन नहीं किया था इसलिए वह इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं दे सका। उसका मन शंका से भर उठा।

भगवान महावीर ने जमालि की शंकाकुल मनोदशा को देखकर कहा–'मेरे बहुत सारे अंतेवासी छद्मस्थ होते हुए भी इन प्रश्नों का व्याकरण कर सकते हैं, जैसा कि मैं करता हूं पर वे अहंकार की भाषा में नहीं बोलते। छद्मस्थ होते हुए अपने आपको केवली नहीं बतलाते,

१. भ. २।२१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा कि तुम बतला रहे हो।' इस प्रज्ञापना के पश्चात् भगवान महावीर ने लोक और जीव के शाश्वत और अशाश्वत होने की नय-दृष्टि से व्याख्या की। अनेकांत की भाषा में उसका निष्कर्ष यह है—अस्तित्व की दृष्टि से लोक और जीव—दोनों शाश्वत हैं। पर्याय—परिणमन की दृष्टि से वे दोनों अशाश्वत हैं।

जमालि का दृष्टिकोण एकांगी हो चुका था इसलिए उसने इस अनेकांत के सिद्धांत को मान्य नहीं किया और वह वहां से चला गया।

शब्द-विमर्श—

ध्रुव आदि के लिए द्रष्टव्य २/४५ का भाष्य।

असब्भावुब्भावणा—वितथ अर्थ का प्रकटीकरण।

मिच्छत्ताभिनिवेस—मिथ्यात्व का अभिनिवेश।

वुग्गाहेमाण—विरुद्ध बात समझाता हुआ।

वुप्पाएमाण—दूसरों के पंडितमानी बनाता हुआ।

२३५. तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से जमाली नामं अणगारे से णं भंते! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने?

गोयमादी! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! ममं अंतेवासी कुसिस्से जमाली नामं अणगारे, से णं तदा ममं एवमाइक्खमाणस्स एवं भास-माणस्स एवं पण्णवेमाणस्स एवं परूवेमाणस्स एतमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एतमट्ठं असद्दह-माणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे, दोच्चं पि ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेह-णाए अत्ताणं झूसेत्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरस-सागरोवमठितीएसु देवकिब्विसि-एसु देवेसु देवकिब्विसियत्ताए उववन्ने॥

ततः भगवान् गौतमः जमालिम् अनगारं कालगतं ज्ञात्वा यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तेवासी कुशिष्यः जमालिः नाम अनगारः सः भदन्त! जमालिः अनगारः कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गतः? कुत्र उपपन्नः।

अयि गौतम! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् एवमवादीत्-एवं खलु गौतम! मम अन्तेवासी कुशिष्यः जमालिः नाम अनगारः, सः तदा मम एवमाचक्षाणस्य एवं भाषमाणस्य एवं प्रज्ञापयतः एवं प्ररूपयतः एनमर्थं नो श्रद्दधाति नो प्रत्येति नो रोचते, एनमर्थं अश्रद्दधत् अप्रतियन् अरोचमानः, द्विः अपि मम अन्तिकात् आत्मना अपक्रामति, अपक्रम्य बहुभिः असद्भावोद्भावनाभिः मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं च परं च तदुभयं च व्युद्ग्राह्यत् व्युत्पादयत् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य, अर्द्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, त्रिंशत्भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचित-प्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा लन्तके कल्पे त्रयोदशसागरोपमस्थितिकेषु देवकिल्विषिकेषु देवकिल्विषिकतया उपपन्नः।

२३५. भगवान गौतम जमालि अनगार को दिवंगत जानकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आए। आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय का अंतेवासी कुशिष्य जमालि नामक अनगार था। भंते! वह जमालि अनगार कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर कहा गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

अयि गौतम! इस संबोधन से संबोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! मेरा अंतेवासी कुशिष्य जमालि नामक अनगार था। उसने तब मेरे इस प्रकार के आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करने पर, इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए उसने दूसरी बार भी मेरे पास से स्वयं अपक्रमण किया। अपक्रमण कर बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्या-धारणा से व्युत्पन्न करता हुआ बहुत वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा तीसभक्त का छेदन कर, उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना ही कालमास में काल को प्राप्त कर, लांतक कल्प में तेरह सागर की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ है।

२३६. कतिविहा णं भंते! देवकिब्बि-सिया पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा देवकिब्बिसिया

कतिविधाः भदन्त! देवकिल्विषिकाः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! त्रिविधाः देवकिल्विषिकाः प्रज्ञप्ताः,

२३६. भंते! किल्विषिक देव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! किल्विषिक देव तीन प्रकार के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता, तं जहा–तिपलिओवम-ट्ठिइया तिसागरोवमट्ठिइया तेरस-सागरोवमट्ठिइया॥

तद्यथा–त्रिपल्योपमस्थितिकाः, त्रिसागरोपमस्थितिकाः, त्रयोदशसागरोपमस्थितिकाः।

प्रज्ञप्त हैं, जैसे–तीन पल्योपम स्थिति वाले, तीन सागरोपम स्थिति वाले, तेरह सागरोपम स्थिति वाले।

२३७. कहिं णं भंते! तिपलिओव-मट्ठिइया देवकिब्विसिया परिवसंति?
गोयमा! उप्पिं जोइसियाणं हिट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिपलिओवमट्ठिइया देवकिब्वि-सिया परिवसंति॥

कुत्र भदन्त! त्रिपल्योपमस्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति?
गौतम! उपरि ज्योतिष्काणां, अधः सौधर्मेशानानां कल्पानाम्, अत्र त्रिपल्योपम-स्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति।

२३७. भंते! तीन पल्योपम स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं?
गौतम! ज्योतिष्क देवों के ऊपर सौधर्म ईशानकल्प देवों के नीचे–इनमें तीन पल्योपम स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

२३८. कहिं णं भंते! तिसागरोव-मट्ठिइया देवकिब्विसिया परिवसंति॥
गोयमा! उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं, हिट्ठिं सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिसागरोव-मट्ठिइया देवकिब्विसिया परिवसंति॥

कुत्र भदन्त! त्रिसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति!
गौतम! उपरि सौधर्मेशानानां कल्पानाम्, अधः सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पानाम्, अत्र त्रिसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति।

२३८. भंते! तीन सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं?
गौतम! सौधर्म ईशान कल्प के ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प से नीचे–इनमें तीन सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

२३९. कहिं णं भंते! तेरससागरो-मट्ठिइया देवकिब्विसिया परिवसंति?
गोयमा! उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स, हिट्ठिं लंतए कप्पे, एत्थ णं तेरस-सोगरोवमट्ठिइया देवकिब्वि-सिया देवा परिवसंति॥

कुत्र भदन्त! त्रयोदशसागरोपम- स्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति?
गौतम! उपरि ब्रह्मलोकस्य कल्पस्य, अधः लन्तकस्य कल्पस्य, अत्र त्रयोदशसागरो-पमस्थितिकाः देवकिल्विषिकाः देवाः परिवसन्ति!

२३९. भंते! तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं?
गौतम! ब्रह्मलोक कल्प से ऊपर, लांतक कल्प से नीचे–इनमें तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

२४०. देवकिब्विसिया णं भंते! केसु कम्मादाणेसु देवकिब्विसियत्ताए उवव-त्तारो भवंति?
गोयमा! जे इमे जीवा आयरि-पडिणीया, उवज्झायपडिणीया, कुल-पडिणीया, गणपडिणीया, संघपडि-णीया, आयरिय-उवज्झा-यांणं अयस-कारा अवण्णकारा अकित्तिकारा बहूहिं असब्भा-वुब्भावणाहिं, मिच्छत्ताभि-निवेसेहि य अप्पाणं परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणा-लोइय-पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवकिब्विसिएसु देव-किब्विसियत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा–तिपलि-ओवमट्ठितिएसु वा, तिसागरोव-मट्ठितिएसु वा, तेरससागरोवमट्ठितिएसु वा॥

देवकिल्विषिकाः भदन्त! कैः कर्मादानैः देवकिल्विषिकतया उपपत्तारः भवन्ति?

गौतम! ये इमे जीवाः आचार्यप्रत्यनीकाः, उपाध्यायप्रत्यनीकाः, कुलप्रत्यनीकाः, गणप्रत्यनीकाः, संघप्रत्यनीकाः, आचार्य-उपाध्यायानाम् अयशस्कराः अवर्णकाराः अकीर्तिकाराः बहुभिः असद्भावोद्-भावनाभिः मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं परं च तदुभयं च व्युद्ग्राह्यन्तः व्युत्पादयन्तः बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नुवन्ति, प्राप्य तस्य स्थानस्य अनालोचित-प्रतिक्रान्ताः कालमासे कालं कृत्वा, अन्यतरेषु देवकिल्विषिकेषु देवकिल्विषिक-तया उपपत्तारः भवन्ति, तद् यथा–त्रिपल्यो-पमस्थितिकेषु वा, त्रिसागरोप-मस्थितिकेषु वा त्रयोदशसागरोपम-स्थितिकेषु वा।

२४०. भंते! किल्विषिक देव किन कर्मादान–कर्मबंध के हेतुओं के कारण किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न होते हैं?
गौतम! जो ये जीव आचार्य-प्रत्यनीक, उपाध्याय-प्रत्यनीक, कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक, संघ-प्रत्यनीक, आचार्य उपाध्याय का अयश, अवर्ण और अकीर्ति करने वाले, बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करते हुए, मिथ्या धारणा से व्युत्पन्न करते हुए बहुत वर्ष तक श्रामण्यपर्याय का पालन करते हैं। पालन कर उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना ही कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न होते हैं, जैसे–तीन पल्योपम की स्थिति वालों में, तीन सागरोपम की स्थिति वालों में अथवा तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४१. देवकिव्विसिया णं भंते! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्ख-एणं, ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?
गोयमा! जाव चत्तारि पंच नेरइय-तिरिक्खजोणिय - मणुस्स - देवभव-ग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता तओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्व-दुक्खाणं अंतं करेंति, अत्थेगतिया अणादीयं अणव-दग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरि-ट्टंति॥

देवकिल्विषिकाः भदन्त! तस्मात् देवलोकात् आयुक्षयेण, 'भवक्षयेण, स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं च्युत्वा कुत्र गमिष्यन्ति? कुत्र उपपत्स्यन्ते?
गौतम! यावत् चत्वारि पञ्च नैरयिक-तिर्यग्योनिक - मनुष्य - देवभवग्रहणानि संसारम् अनुपर्यट्य ततः पश्चात् सिध्यन्ति 'बुज्झंति' मुच्यन्ति परिनिर्वान्ति सर्वदुक्खानाम् अन्तं कुर्वन्ति, अस्त्येकं अनादिकं च 'अणवदग्गं' दीर्घमध्वानं चतुरन्तं संसारकन्तारम् अनुपर्यटन्ति।

२४१. भंते! किल्विषिक देव आयु-क्षय भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उन देवलोकों से च्यवन कर कहां जाते हैं? कहां उपपन्न होते हैं?
गौतम! यावत चार-पांच नैरयिक, तिर्यक् -योनिक, मनुष्य और देव भव ग्रहण कर संसार में अनुपर्यटन कर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होते हैं, सब दुःखों का अंत करते हैं। कुछ देव आदि-अंतहीन, दीर्घ पथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कांतार में अनुपर्यटन करते हैं।

२४२. जमाली णं भंते! अणगारे अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लूहाहारे तुच्छाहारे अरसजीवी विरस-जीवी अंतजीवी पंतजीवी लूहजीवी तुच्छजीवी उवसंतजीवी पसंतजीवी विवित्तजीवी?
हंता गोयमा! जमाली णं अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी॥

जमालिः भदन्त! अनगारः अर-साहारः विरसाहारः अन्त्याहारः प्रान्त्याहारः रूक्षाहारः तुच्छाहारः अरसजीवी विरस-जीवी प्रान्त्यजीवी रूक्षजीवी तुच्छ-जीवी उपशान्तजीवी प्रशान्तजीवी विविक्त-जीवी?
हन्त गौतम! जमालिः अनगारः अरसाहारः विरसाहारः यावत् विविक्तजीवी।

२४२. भंते! जमालि अनगार ने अरस-आहार, विरस-आहार, प्रांत-आहार, रूक्ष आहार और तुच्छ-आहार किया। वह अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, प्रंत-जीवी, रूक्षजीवी, तुच्छजीवी, उपशांत-जीवी, प्रशांतजीवी और विविक्तजीवी था।
हां, गौतम! जमालि अनगार ने अरस-आहार, विरस-आहार किया यावत् वह विविक्तजीवी था।

२४३. जति णं भंते! जमाली अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी कम्हा णं भंते! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमट्ठितिएसु देवकिव्वि-सिएसु देवेसु देवकिव्विसियत्ताए उववन्ने?
गोयमा! जमाली णं अणगारे आयरिय-पडिणीए, उवज्झायपडिणीए, आय-रिय-उवज्झायाणं अयसकारए अवण्ण-कारए अकित्ति-कारए बहूहिं असब्भा-बुब्भा-वणाहिं, मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाणं परं च तदुभयं च वुग्गाहे-माणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणित्ता, अद्ध-मासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरस-सागरोवमट्ठितिएसु देवकिव्विसि-एसु देवेसु देवकिव्विसियत्ताए उववन्ने॥

यदि भदन्त! जमालिः अनगारः अरसाहारः विरसाहारः यावत् विविक्तजीवी कस्मात् भदन्त! जमालिः अनगारः कालमासे कालं कृत्वा लन्तके कल्पे त्रयोदश-सागरोपम-स्थितिकेषु देवकिल्विषिकेषु देवेषु देवकिल्विषिकतया उपपन्नः?

गौतम! जमालिः अनगारः आचार्य-प्रत्यनीकः, उपाध्यायप्रत्यनीकः, आचार्य-उपाध्यायानाम् अयशस्कारकः अवर्ण-कारकः अकीर्तिकारकः बहुभिः असद्-भावोद्भाव-नाभिः, मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं परं च तदुभयम् च व्युद्ग्राह्यन् व्युत्पादयन् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य, अर्द्धमासिक्या संलेखनया त्रिंशत भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचित-प्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा लन्तके कल्पे त्रयोदश-सागरोपम-स्थितिकेषु देवकिल्वि-षिकेषु देवेषु देवकि-ल्विषिकतया उपपन्नः।

२४३. भंते! यदि जमालि अनगार ने अरस-आहार, विरस-आहार किया यावत् वह विविक्तजीवी था तो भंते! जमालि अनगार कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर लांतककल्प में तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्विषिक देवलोक में किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ?
गौतम! जमालि अनगार आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्याय का अयश, अवर्ण और अकीर्ति करने वाला था। वह बहुत असद्-भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व अभि-निवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्याधारणा में व्युत्पन्न करता हुआ, वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिकी संलेखना में अनशन के द्वारा तीस-भक्त का छेदन कर, उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल को प्राप्त कर लांतक कल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवों में किल्विषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ है।

२४४. जमाली णं भंते! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भव-क्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! चत्तारि पंच तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता तओ पच्छा सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

जमालिः भदन्त! देवः तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यन्ते?
गौतम! चत्वारि पञ्च तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवभवग्रहणानि संसारम् अनुपर्यट्य ततः पश्चात् सेत्स्यति, 'बुज्झिहिति' मोक्ष्यति परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

२४४. भंते! जमालि अनगार आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?
गौतम! चार-पांच तिर्यक्योनिक, मनुष्य, देव भव ग्रहण कर, संसार का अनुपर्यटन कर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अंत करेगा।

भाष्य

१. सूत्र-२४२-२४४

जमालि का जीवन विरोधाभास का निदर्शन था। एक ओर वह तपस्वी था, दूसरी ओर वह मिथ्यात्व के अभिनिवेश से ग्रस्त था। जीवन का प्रत्येक पक्ष अपना अपना कार्य करता है। तपस्वी था इसलिए पुण्य का संचय कर वह मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में उपपन्न हुआ और मिथ्यात्व का अभिनिवेश था इसलिए वह अनेक गतियों में पर्यटन करेगा।

२४५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२४५. भंते! वह ऐसा ही है; भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोत्तीसइमो उद्देसो : चौंतीसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी व्याख्या
एगस्स वधे अणेगवध-पदं	एकस्य वधे अनेकवध-पदम्	एक के वध में अनेक-वध पद
२४६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासी–पुरिसे णं भंते! पुरिसं हणमाणे किं पुरिसं हणइ? नोपुरिसे हणइ?	तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहः यावत् एवम् अवादीत्–पुरुषः भदन्त! पुरुषं घ्नन् किं पुरुषं हन्ति? नोपुरुषान् हन्ति?	२४६. उस काल और उस समय राजगृह नगर यावत् गौतम इस प्रकार बोले–भंते! पुरुष पुरुष का हनन करता हुआ क्या पुरुष का हनन करता है? नो-पुरुष का हनन करता है?
गोयमा! पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ॥	गौतम! पुरुषम् अपि हन्ति, नोपुरुषान् अपि हन्ति।	गौतम! पुरुष का भी हनन करता है, नो-पुरुष का भी हनन करता है।
२४७. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ?	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–पुरुषम् अपि हन्ति, नोपुरुषान् अपि हन्ति?	२४७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–पुरुष का भी हनन करता है? नो-पुरुष का भी हनन करता है?
गोयमा! तस्स णं एवं भवइ–एवं खलु अहं एगं पुरिसं हणामि, से णं एगं पुरिसं हणमाणे अणगे जीवे हणइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ॥	गौतम! तस्य एवं भवति–एवं खलु अहम् एकं पुरुषं हन्मि, सः एकं पुरुषं घ्नन् 'अनेकान् जीवान्' हन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–पुरुषम् अपि हन्ति, नोपुरुषान् अपि हन्ति।	गौतम! वह इस प्रकार सोचता है–मैं एक पुरुष का हनन करता हूं किन्तु वह एक पुरुष का हनन करता हुआ अनेक जीवों का हनन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–वह पुरुष का भी हनन करता है, नो-पुरुष का भी हनन करता है।
२४८. पुरिसे णं भंते! आसं हणमाणे किं आसं हणइ? नोआसे हणइ? गोयमा! आसं पि हणइ, नोआसे वि हणइ॥ से केणट्ठेणं? अट्ठो तहेव। एवं हत्थिं, सीहं, वग्घं जाव चिल्ललगं॥	पुरुषम्: भदन्त! अश्वं घ्नन् किम् अश्वं हन्ति? नो अश्वान् हन्ति? गौतम! अश्वम् अपि हन्ति, नो अश्वान् अपि हन्ति। तत् केनार्थेन? अर्थः तथैव। एवं हस्तिनं, सिंहं, व्याघ्रं यावत् 'चिल्ललगं'।	२४८. भंते! पुरुष अश्व का हनन करता हुआ क्या अश्व का हनन करता है, नो-अश्व का हनन करता है? गौतम! वह अश्व का भी हनन करता है, नो-अश्व का भी हनन करता है। भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?–इसका अर्थ उक्त अर्थ की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र यावत् चिल्ललग की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र–२४६-२४८

प्रस्तुत आलापक में हिंसा के एक सूक्ष्म पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। एक पुरुष की हत्या वास्तव में अनेक जीवों की हत्या है। जिसकी हत्या की जाती है उसके शरीर में अनेक जीव होते हैं, कृमि-कीटाणु होते हैं। उसका रुधिर भी दूसरे जीवों के वध का हेतु बन जाता है इसलिए पुरुष का हनन करने वाला नो-पुरुष का भी हनन करता है। अश्व और नो अश्व की व्याख्या भी इसी नय से की जा सकती है।[1]

१. भ. वृ. १-२४६-४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसिरूस वधे अणंतबध-पदं

२४९. पुरिसे णं भंते! इसिं हणमाणे किं इसिं हणइ? नोइसिं हणइ?

गोयमा! इसिंपि हणइ, नोइसिं पि हणइ॥

२५०. से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ–इसिं पि हणइ, नोइसिं पि हणइ?
गोयमा! तस्स णं एवं भवइ–एवं खलु अहं एगं इसिं हणामि, से णं एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–इसिं पि हणइ, नोइसिं पि हणइ॥

ऋषेःवधे अनंतवध-पदम्

पुरुषः भदन्त! ऋषिं घ्नन् किम् ऋषिं हन्ति? नोऋषिं हन्ति?

गौतम! ऋषिम् अपि हन्ति, नोऋषिम् अपि हन्ति।

२५०. तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–ऋषिम् अपि हन्ति, नो ऋषिम् अपि हन्ति?
गौतम! तस्य एवं भवति–एवं खलु अहम् एकम् ऋषिं हन्मि, सः एकम् ऋषिं घ्नन् 'अनन्तान् जीवान्' हन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–ऋषिम् अपि हन्ति, नोऋषिम् अपि हन्ति।

ऋषि के वध में अनंत-वध पद

२४९. भंते! पुरुष ऋषि का हनन करता हुआ क्या ऋषि का हनन करता है? नो-ऋषि का हनन करता है?
गौतम! वह ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है।

२५०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है?
गौतम! वह इस प्रकार सोचता है–मैं एक ऋषि का हनन करता हूं किन्तु वह एक ऋषि का हनन करता हुआ अनंत जीवों का हनन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है।

भाष्य

१. सूत्र–२४९-२५०

पूर्व आलापक में बतलाया गया है कि एक पुरुष का हनन करने वाला अनेक जीवों का हनन करता है। प्रस्तुत आलापक का वक्तव्य है–एक ऋषि का हनन करने वाला अनंत जीवों का हनन करता है। अनेक जीवों का हनन करता है, यह बात बुद्धिगम्य है। एक जीव के आश्रित अनेक जीव होते हैं इसलिए एक जीव का हनन करने वाला अनेक जीवों का हनन करता है। अनंत जीव एक जीव के आश्रित नहीं होते इसलिए यह सिद्धांत बुद्धि से अगम्य प्रतीत हो रहा है, अभयदेव सूरि ने इसे बुद्धिगम्य बनाने के लिए दो हेतु दिए हैं–

१. ऋषि अनंत जीवों के वध से विरत होता है। मृत्यु के पश्चात् वह अविरत हो जाता है, अनंत जीवों के हनन के प्रति उसकी विरति नहीं होती इसलिए ऋषि का हंता अनंत जीवों का हंता है।

२. ऋषि अपने जीवन काल में बहुत जीवों को प्रतिबोध देता है। वे प्रतिबुद्ध प्राणी अनंत जीवों के अचानक बन जाते हैं। ऋषि का वध होने पर यह प्रतिबोध का कार्य रुक जाता है। इस अपेक्षा से ऋषि का हनन करनेवाला अनंत जीवों का हनन करता है।[1]

इनमें प्रथम हेतु स्पष्ट है। दूसरा हेतु बहुत दूर की कल्पना जैसा प्रतीत होता है।

वेर-बंध-पदं

२५१. पुरिसे णं भंते! पुरिसं हणमाणे किं पुरिसवेरेणं पुट्ठे? नोपुरिसवेरेणं पुट्ठे?

गोयमा! नियमं–ताव पुरिसवेरेणं पुट्ठे, अहवा पुरिसवेरेण य नो-पुरिसवेरेण य पुट्ठे, अहवा पुरिसवेरेण य नोपुरिस-वेरेहि य पुट्ठे। एवं आसं जाव चिल्ललगं जाव अहवा चिल्ललगवेरेण य नोचिल्ललग-वेरेहि य पुट्ठे॥

वैर-बन्ध-पदम्

पुरुषः भदन्त! पुरुषं घ्नन् किं पुरुषवैरेण स्पृष्टः? नोपुरुषवैरेण स्पृष्टः?

गौतम! नियमम्–तावत् पुरुषवैरेण स्पृष्टः, अथवा पुरुषवैरेण च नोपुरुषवैरेण च स्पृष्टः, अथवा पुरुषवैरेण च नोपुरुषवैरैः च स्पृष्टः। एवम् अश्वं यावत् 'चिल्ललगं' यावत् अथवा 'चिल्ललग' वैरेण च नो 'चिल्ललग' वैरैः च स्पृष्टः।

वैर बंध-पद

२५१. भंते! पुरुष पुरुष का हनन करता हुआ क्या पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है? नो-पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है?
गौतम! नियमतः उस पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुष के वैर से और नो-पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुष के वैर से और नो-पुरुषों के वैर से स्पृष्ट होता है
इसी प्रकार अश्व यावत् चित्रल यावत् अथवा चित्रल के वैर से और नो-चित्रलों के वैर से स्पृष्ट होता है।

२५२. पुरिसे णं भंते! इसिं हणमाणे किं इसिवेरेणं पुट्ठे? नोइसिवेरेणं पुट्ठे?

पुरुषः भदन्त! ऋषिं घ्नन् किम् ऋषिवैरेण स्पृष्टः? नोऋषिवैरेण स्पृष्टः?

२५२. भंते! पुरुष ऋषि का हनन करता हुआ क्या ऋषि के वैर से स्पृष्ट होता है,

१. भ. वृ. ९/२४९-५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! नियमं इसिवेरेण य नोइसिवेरेहि य पुट्ठे॥

गौतम! नियमम् ऋषिवैरेण च नोऋषिवैरैः च स्पृष्टः।

नो-ऋषि के वैर से स्पृष्ट होता है?
गौतम! नियमतः ऋषि के वैर से और नो-ऋषियों के वैर से स्पृष्ट होता है।

भाष्य

१. सूत्र–२५१-२५२

वध और वैर–दोनों का गहरा संबंध है। वध करने वाला वैर से स्पृष्ट होता है, यह एक सामान्य सिद्धांत है। पुरुष का वध करने वाला नियमतः पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है। पुरुष का वध करने वाला नो-पुरुष के वैर से भी स्पृष्ट होता है। इसके दो विकल्प हैं–

१. नो पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है।

२. अनेक नो-पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है।[1]

वैर शब्द के अनेक अर्थ है–१. आठकर्म, २. पाप, ३. वैर, ४. वर्ज्य।[2]

प्रस्तुत प्रकरण में वैर का अर्थ दो संदर्भों में किया जा सकता है–१. कर्मबंध २. शत्रुता का भाव। वैर-स्पर्श का उल्लेख प्रस्तुत आगम के प्रथम शतक में हुआ है।[3] उससे वैर का अर्थ कर्म-बंध फलित होता है। भगवई १/३७०–७१ के भाष्य में वैरानुबंधी वैर पर विचार किया गया है।[4] वैरानुबंधी वैर की स्पष्ट अवधारणा सूत्रकृतांग में है–

वेराइं कुव्वती वेरी, ततो वेरेहिं रज्जती।[5]

इसकी व्याख्या में चूर्णिकार और वृत्तिकार ने वैरानुबंध का स्पष्ट उल्लेख किया है।

चूर्णिकार का आशय है कि एक व्यक्ति दूसरे को मारता है, बांधता है, दंडित करता है, देश निकाला देता है, वह अनेक व्यक्तियों के साथ वैर बांधता है। जैसे चोर, पारदारिक, ब्याजखोर आदि व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से वैर का अनुबंध करते हैं।[6]

वृत्तिकार का अभिमत है–जीवों का उपमर्दन करने वाला वैरी होता है। वह सैकड़ों जन्मों तक चलने वाले वैर का बंध करता है। उस एक वैर के कारण वह अनेक दूसरे वैरों से संबंधित होता है और उसकी वैर परंपरा अविच्छिन्न रूप से चलने लगती है।[7]

पुरुष का हनन करने वाला पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है, इस वाक्य में कर्मबंध की अपेक्षा वैरानुबंध का अर्थ अधिक उजागर होता है। आचार्य भिक्षु ने स्नेहानुबंधी स्नेह और वैरानुबंधी वैर का सुन्दर विवेचन किया है। जो व्यक्ति किसी जीव को मृत्यु से बचाता है, उसके साथ उसका स्नेह-बंध हो जाता है। इस जीवन में ही नहीं, किंतु आगामी जन्म में भी उसे देखते ही स्नेह उत्पन्न होता है। जो व्यक्ति किसी जीव को मारता है, उसके साथ उसका द्वेष-बंध हो जाता है। पर-जन्म में भी उसे देखकर द्वेष भाव उभर आता है। मित्र के साथ मित्रता और शत्रु के साथ शत्रुता चलती जाती है।[8]

पुढविक्काइयादीणं आणपाण-पदं

२५३. पुढविक्काइए णं भंते! पुढविक्कायं चेव आणमइ वा? पाण-मइ वा? ऊससइ वा? नीससइ वा?
हंता गोयमा! पुढविक्काइए पुढविक्काइयं चेव आणमइ वा जाव नीससइ वा॥

पृथ्वीकायिकादीनाम् आनपान पदम्

पृथ्वीकायिकः भदन्त!, पृथ्वीकायं चैव आनिति वा अपानिति वा? उच्छ्वसिति वा? निःश्वसिति वा?
हन्त गौतम! पृथ्वीकायिकः पृथ्वीकायिकं चैव आनिति वा यावत् निःश्वसिति वा।

पृथ्वीकायिक आदि का आनपान पद

२५३. भंते! क्या पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का ही आन और अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं?
हां, गौतम! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का ही आन यावत् निःश्वास लेते हैं।

२५४. पुढविक्काइए णं भंते! आउक्काइयं आणमइ वा जाव नीससइ वा?
हंता गोयमा! पुढविक्काइए णं

पृथ्वीकायिकः भदन्त! अप्कायिकम् आनिति वा यावत् निःश्वसिति वा?
हन्त गौतम! पृथ्वीकायिकः अप्कायिकम्

२५४. भंते! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?
हां, गौतम! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का

---

१. भ. वृ. १।२५१-२५२– पुरुषस्य हनत्वाद्यियमात पुरुषवधपापेन स्पृष्ट इत्येको भङ्गः, तत्र च यदि प्राण्यंतरमपि हतं तदापुरुषवैरेण नोपुरुषवैरेण चेति द्वितीयः, यदि तु बहवः प्राणिनः हतास्तत्र तदा पुरुषवैरेण नोपुरुषवैरैश्चेति तृतीयः।

२. सूत्र. चू. पृ. २२– द्रष्टव्य सूयगडो १/१/३ तथा १/१/३ का टिप्पण।

३. भ. १/३७०-३७१।

४. वही, १/३७०-३७१ का भाष्य, पृ. १६४.

५. सूत्र. १/८/७।

६. सूत्र. चू. पृ. १६७– स वैराणि कुरुते वैरी। ततो अण्णे मारेति, अण्णे बंधति, अण्णे दंडेति, अण्णे णिव्विसए, आणवेति चोरपारदारियचोपगादिबहुजणं वेरियं करेति।

७. सूत्र. वृ. प. १७०– वैरमस्यास्तीति वैरी, स जीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबन्धीनि वैराणि करोति, ततोऽपि च वैराद्वैरंवैरानुरज्यते, संबध्यते, वैरपरंपरानुषङ्गो भवतीत्यर्थः।

८. (क) भिक्षु विचार दर्शन पृ. ५१।
(ख) अनुकंपा की चौपई–११: ४३-४५–
जीव ने जीवां बचावे तिण सूं, बंध जाए तिणरो राग स्नेह।
जो पर भव में आय मिले तो, देखत पांण जागे तिण सूं नेह॥
जीव नें जीव मारे छे तिण सूं, बंध जावे तिण सूं द्वेष वशेख।
ने पर भव में आय मिले तो, देखत पांण जागे तिण सूं द्वेष॥
मित्र सूं मित्रीपणो चलीयो जावे, वैरी सूं वैरीपणो चालीयो जावे।
ओ नो राग द्वेष कर्मा रो चाला, ने श्री जिणधर्म मांहे नहीं आवे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउक्काइयं आणमइ वा जाव नीससइ वा। एवं तेउक्काइयं, वाउक्काइयं, एवं वणस्सइकाइयं॥

आनिति वा यावत् निःश्वसिति वा। एवं तेजस्कायिकं वायुकायिकम् एवं वनस्पतिकायिकम्।

आन यावत् निःश्वास लेते हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक, वायुकायिक, इसी प्रकार वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

२५५. आउक्काइए णं भंते! पुढविक्काइयं आणमइ वा जाव नीससइ वा?
हंता गोयमा! आउक्काइए णं पुढविक्काइयं आणमइ वा जाव नीससइ वा॥

अप्कायिकः भदन्त! पृथ्वीकायिकम् आनिति वा यावत् निःश्वसिति वा?

हन्त गौतम! अप्कायिकः पृथ्वीकायिकम् आनिति वा यावत् निःश्वसिति वा।

२५५. भंते! अप्कायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?

हां, गौतम! अप्कायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं।

२५६. आउक्काइए णं भंते! आउक्काइयं चेव आणमइ वा?
एवं चेव। एवं तेउवाउवणस्सइ-काइयं॥

अप्कायिकः भदन्त! अप्कायिकं चैव आनिति वा?
एवं चैव। एवं तेजस्-वायु-वनस्पतिकायिकम्।

२५६. भंते! अप्कायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?
अप्कायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

२५७. तेउक्काइए णं भंते! पुढविक्काइयं आणमइ वा? एवं जाव वणस्सइकाइए णं भंते! वणस्सइकाइयं चेव आणमइ वा? तहेव॥

तेजस्कायिकः भदन्त! पृथ्वीकायिकम् आनिति वा? एवं यावत् वनस्पतिकायिकः भदन्त! वनस्पतिकायिकं चैव आनिति वा? तथैव।

२५७. भंते! क्या तैजसकायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं? भंते! यावत् वनस्पतिकायिक वनस्पतिकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?
पूर्ववत् वक्तव्यता।

किरिया-पदं

२५८. पुढविक्काइए णं भंते! पुढविक्काइयं चेव आणममाणे वा, पाणममाणे वा, ऊससमाणे वा, नीससमाणे वा कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए॥

क्रिया-पदम्

पृथ्वीकायिकः भदन्त! पृथ्वीकायिकं चैव आनन् वा, अपानन् वा, उच्छ्वसन् वा, निःश्वसन् वा कतिक्रियः?

गौतम! स्यात् त्रिक्रियः स्यात् चतुःक्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः।

क्रिया पद

२५८. भंते! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का आन अथवा अपान अथवा उच्छ्वास अथवा निःश्वास लेता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?
गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है।

२५९. पुढविक्काइए णं भंते! आउक्काइयं आणममाणे वा?
एवं चेव। एवं जाव वणस्सइकाइयं। एवं आउक्काएण वि सव्वे भाणियव्वा। एवं तेउक्काइएण वि, एवं वाउक्काइएण वि जाव–

पृथ्वीकायिकः भदन्त! अप्कायिकं आनन् वा? एवं चैव। एवं यावत् वनस्पतिकायिकम्। एवम् अप्कायिकेन अपि सर्वे भणितव्याः। एवं तैजसकायिकेन अपि, एवं वायुकायिकेन अपि यावत्–

२५९. भंते! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?
पूर्ववत् वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् अप्कायिक के सर्व विकल्प वक्तव्य हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक और वायुकायिक की वक्तव्यता यावत्–

२६०. वणस्सइकाइए णं भंते! वणस्सइकाइयं चेव आणममाणे वा–पुच्छा?

वनस्पतिकायिकः भदन्त! वनस्पतिकायिकं चैव आनन् वा–पृच्छा?

२६०. भंते! वनस्पतिकायिक वनस्पतिकायिक का आन यावत् निःश्वास लेता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ कितनी क्रिया वाला होता है? पृच्छा।

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।।

गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुःक्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः।

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला।

२६१. वाउक्काइए णं भंते! रुक्खस्स मूलं पचालेमाणे वा पवाडेमाणे वा कतिकिरिए?

वायुकायिकः भदन्त रुक्षस्य मूलं प्रचालयन् वा प्रपातयन् वा कतिक्रियः?

२६१. भंते! वायुकायिक वृक्ष के मूल को प्रकंपित करता हुआ, गिराता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए। एवं कंदं, एवं जाव–

गौतम! स्यात् त्रिक्रियः स्यात् चतुःक्रियः स्यात् पञ्चक्रियः एवं कन्दम् एवं यावत्–

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार कंद यावत्–

२६२. बीयं पचालेमाणे वा–पुच्छा?

बीजं प्रचालयन् वा–पृच्छा?

२६२. वायुकायिक बीज को प्रकंपित करता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है? पृच्छा।

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।।

गौतम! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुःक्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः।

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है।

२६३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति।।

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२६३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशम सयं

दसवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य नौ हैं, उनमें सातवां द्रव्य–दिक् दिशा है।[1] जैन दर्शन के अनुसार दिशा स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। वह आकाश का एक विभाग है।[2] प्रस्तुत प्रकरण में दिशा मुख्यतः प्रतिपाद्य नहीं है। प्रतिपाद्य विषय है–दिशा में व्याप्त होने वाले जीव और अजीव का बोध कराना।

प्रस्तुत आगम में शरीर का निरूपण पहले हो चुका है।[3] प्रस्तुत शतक में पुनः शरीर[4] का निरूपण किया गया है, उसमें प्रज्ञापना के पांचवें पद का समवतार है। इसी प्रकार योनि पद[5] में प्रज्ञापना के नौवें पद और वेदना पद[6] में प्रज्ञापना के पैंतीसवें पद का समवतार है। भिक्षु प्रतिमा[7] में दशाश्रुतस्कंध की सातवीं दशा (सूत्र–४·२५) का समवतार है। द्वीप से संबद्ध अट्ठाईस[8] उद्देशक में जीवाभिगम[9] की भांति वक्तव्यता का निर्देश है। अंग में अंगबाह्य श्रुत का समवतार सूचित करता है कि आगमों के संकलन काल में कुछ प्रश्नोत्तरों का संवर्द्धन किया गया है। प्रस्तुत आगम में शरीर, योनि, वेदना, भिक्षु प्रतिमा आदि का पाठ होता और प्रज्ञापना में उन पाठों का समवतार होता–'**जहा विआहपण्णत्तीए**'–तो रचना अधिक संगत होती। यह समवतार संकलन काल में किया गया अथवा लिपि काल में ? यह अन्वेष्टव्य विषय है। यदि लिपिकाल में होता तो पूर्ण पाठ प्रज्ञापना आदि में लिखा गया, वैसा भगवती में लिखा जाता, प्रज्ञापना आदि में भगवती का समवतार कर दिया जाता। तात्पर्य में कोई अंतर नहीं आता। अधिक संभव है संकलन काल में ही यह परिवर्तन हुआ है। हो सकता है अंगश्रुत की संवादिता के लिए ऐसा किया गया हो।

प्रस्तुत आगम में ईर्यापथिकी क्रिया का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। प्रथम उल्लेख प्रथम शतक[10] में, द्वितीय उल्लेख तीसरे शतक[11] में, तीसरा उल्लेख छठे शतक[12] में, चौथा उल्लेख सातवें शतक[13] में, पांचवां उल्लेख आठवें शतक[14] में और छठा उल्लेख प्रस्तुत शतक[15] में हुआ है। ईर्यापथिकी क्रिया का विस्तृत वर्णन सूत्रकृतांग में भी है।[16] स्थानांग में अजीव क्रिया के दो भेद बतलाए गए हैं–ईर्यापथिकी क्रिया और सांपरायिकी क्रिया।[17] प्रज्ञापना में ऐर्यापथिक बंध की अपेक्षा सातवेदनीय की दो समय की स्थिति बतलायी गयी है।[18] भगवती के अठारहवें शतक में भावितात्मा अणगार के ईर्यापथिकी क्रिया होती है, इस विषय का उल्लेख है।[19] उत्तराध्ययन में ईर्यापथिकी क्रिया केवली के होती है इसका उल्लेख है।[20] इन सबका समग्रता से अध्ययन करने पर ईर्यापथिकी के व्यापक स्वरूप को समझा जा सकता है।

आलोचना के विषय में आठवें शतक में बतलाया गया है।[21] यहां उससे भिन्न निर्देश है।[22] तुलना के लिए दोनों प्रकरणों को एक साथ पढ़ना जरूरी है।

प्रस्तुत आगम में देवों का अनेक रूपों में वर्णन किया गया है। सूत्रांक २३ से ३८ तक पारस्परिक शिष्टाचार का निर्देश है। यह व्यवहार कौशल का सुंदर निदर्शन है। इससे यह प्रमाणित होता है कि व्यवहार कौशल का मूल्य सर्वत्र है।

प्रस्तुत आगम में महावीर और गौतम के संवाद प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कुछ संवाद भगवान पार्श्व के शिष्यों के साथ भी मिलते हैं। क्वचित् महावीर के अपने शिष्यों के साथ भी संवाद मिलते हैं। अणगार श्याम हस्ती का संवाद गौतम के साथ हुआ है, यह एक उल्लेखनीय घटना है।[23] इस संवाद में त्रायस्त्रिंश अथवा तावत्त्रिंश देवों की उत्पत्ति की घटना का श्यामहस्ती द्वारा उल्लेख करना, गौतम का संदिग्ध होना, श्रमण

---

१. वै. सू.–१/१/५ पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।
२. द्रष्टव्य सूत्र १०·१-७ का भाष्य।
३. भ. १/३४३।
४. वही, १०/८।
५. वही, १०/१५।
६. वही, १०/१६-१७।
७. वही, १०/१८।
८. वही १०/१०२।
९. जीवा. ३/२२७।
१०. भ. १·४४४-४४५।
११. वही ३·१४८।
१२. भ. ६/२९।
१३. वही, ७/१२५-१२६।
१४. वही, ८·३०२-३०३।
१५. वही, १०/११-१४।
१६. सूय. २/२/१६।
१७. ठाणं २/४।
१८. पण्ण. सू. २३·६३,१७९।
१९. भ. १८/१५९।
२०. उत्तर. २९·७२।
२१. भ. ८/२५१-३५५।
२२. वही, १०·१९-२१।
२३. वही, १०/४७-५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर के द्वारा श्यामहस्ती के अभिमत का निराकरण करना एक विशिष्ट प्रसंग है। इस प्रसंग में अनेकांत दृष्टि और अव्यवच्छित्ति नय का प्रयोग हुआ है।

भगवान महावीर के द्वारा त्रायस्त्रिंश देवों की उत्पत्ति का वर्णन बहुत ही रसप्रद और मनन्नीय है।[1]

प्रस्तुत आगम के अध्ययन से प्रतीत होता है कि परोक्ष के विषय में जिज्ञासा अत्यधिक रहती थी। स्थविरों ने भगवान महावीर से देवताओं की अग्रमहिषियों के विषय में प्रश्न पूछे और महावीर ने उनके उत्तर दिए। देवताओं के सुख, भोग आदि विषय भी चर्चित रहे हैं।

प्रस्तुत शतक आकार में छोटा है पर विषय वस्तु के कारण काफी बोधप्रद और रसप्रद है।

१. भ. १०/३२-६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमं सतं : दसवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
संगहणी गाहा १. दिस २. संवुडअणगारे, ३. आइड्ढी ४. सामहत्थि ५. देवि ६. सभा। ७-३४ उत्तरअंतरदीवा, दसमम्मि सयम्मि चउत्तीसा ॥१॥	संग्रहणी गाथा १.दिशा २. संवृतअनगारः ३. आत्मर्धिकः ४.श्यामहस्ती ५.देवी ६.सभा। ७-३४. उत्तर अन्तरद्वीपाः, दशमे शते चतुस्त्रिंशत्॥	संग्रहणी गाथा दशवें शतक में चौंतीस उद्देशक हैं– १. दिशा २. संवृत-अनगार ३. आत्म-ऋद्धि ४. श्यामहस्ती ५. देवी ६. सभा ७-३४. उत्तरवर्ती अन्तर्द्वीप
दिसा-पदं १.रायगिहे जाव एवं वयासी–किमियं भंते! पाईणा ति पवुच्चइ? गोयमा! जीवा चेव, अजीवा चेव॥	दिशा-पदम् राजगृहः यावत् एवमवादीत्–किमियं भदन्त! 'प्राचीना' इति प्रोच्यते? गौतम! जीवा चैव अजीवा चैव।	दिशा-पद १. 'राजगृह नगर यावत् गौतम इस प्रकार बोले– भंते! इस पूर्व दिशा को क्या कहा जाता है? गौतम! वह जीव है और अजीव है।
२. किमियं भंते! पडीणा ति पवुच्चइ? गोयमा! एवं चेव। एवं दाहिणा, एवं उदीणा, एवं उड्ढा, एवं अहो वि॥	किमियं भदन्त! प्रतीचीना इति प्रोच्यते? गौतम! एवं चैव। एवं दक्षिणा, एवं उदीचीना, एवं ऊर्ध्वा, एवं अधः अपि।	२. भंते! इस पश्चिम दिशा को क्या कहा जाता है? गौतम! जीव है और अजीव है। इसी प्रकार दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः दिशा जीव है और अजीव है।
३. कति णं भंते! दिसाओ पण्णत्ताओ? गोयमा! दस दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–१. पुरत्थिमा २. पुरत्थिम-दाहिणा ३. दाहिणा ४. दाहिणपच्च-त्थिमा ५. पच्चत्थिमा ६. पच्चत्थि-मुत्तरा ७. उत्तरा ८. उत्तरपुरत्थिमा ९. उड्ढा १०. अहो॥	कति भदन्त! दिशाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! दश दिशाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–१. पौरस्त्या २. पौरस्त्यदक्षिणा ३. दक्षिणा ४. दक्षिणपाश्चात्या ५. पाश्चात्या ६. पाश्चात्योत्तरा ७. उत्तरा ८. उत्तरपौरस्त्या ९. ऊर्ध्वा १०. अधः।	३. भंते! दिशाएं कितनी प्रज्ञप्त हैं? गौतम! दश दिशाएं प्रज्ञप्त हैं, जैसे– १. पूर्व दिशा २. पूर्व-दक्षिण ३. दक्षिण ४. दक्षिण-पश्चिम ५. पश्चिम ६. पश्चिम- उत्तर ७. उत्तर ८. उत्तर-पूर्व ९. ऊर्ध्व १०. अधः।
४. एयासि णं भंते! दसण्हं दिसाणं कति नामधेज्जा पण्णत्ता? गोयमा! दस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा– इंदा अग्गेयी जम्मा, य नेरई वारुणी य वायव्वा। सोमा ईसाणी या, विमला य तमा य बोद्धव्वा॥१॥	एतासां भदन्त! दशानां दिशानां कति नामधेयाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! दश नामधेयाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा– इन्द्रा आग्नेयी याम्या, च नैर्ऋती वारुणी च वायव्या। सौम्या ऐशानी वा, विमला च तमा च बोद्धव्या॥	४. भंते! इन दश दिशाओं के कितने नाम प्रज्ञप्त हैं? गौतम! दश नाम प्रज्ञप्त हैं, जैसे–ऐन्द्री (पूर्व) आग्नेयी (पूर्व-दक्षिण का कोण) याम्या (दक्षिण) नैर्ऋती (दक्षिण-पश्चिम का कोण) वारुणी (पश्चिम) वायव्य (पश्चिम-उत्तर का कोण) सौम्य (उत्तर) ईशान (उत्तर-पूर्व का कोण) विमला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ऊर्ध्व) और तमा (अधो दिशा) ज्ञातव्य हैं।

५. इंदा णं भंते! दिसा किं १. जीवा २. जीवदेसा ३. जीवपदेसा ४. अजीवा ५. अजीवदेसा ६. अजीवपदेसा?

इन्द्रा भदन्त! दिशा किं १. जीवा २. जीवदेशा ३. जीवप्रदेशा ४. अजीवा ५. अजीवदेशा ६. अजीवप्रदेशा?

५. भंते! ऐन्द्री दिशा क्या १. जीव है? २. जीव देश है? ३. जीव प्रदेश है? ४. अजीव है? ५. अजीव देश है? ६. अजीव प्रदेश है?

गोयमा! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवा ते नियमा एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिं-दिया, अणिंदिया।

जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा।

जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदिय-पदेसा बेइंदियपदेसा जाव अणिंदिय-पदेसा।

गौतम! जीवा अपि, जीवदेशा अपि, जीवप्रदेशा अपि। अजीवा अपि, अजीवदेशा अपि, अजीवप्रदेशा अपि।

ये जीवाः ते नियमात् एकेन्द्रियाः द्वीन्द्रियाः त्रीन्द्रियाः चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः अनिन्द्रियाः।

ये जीवदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियदेशाः यावत् अनिन्द्रियदेशाः।

ये जीवप्रदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियप्रदेशाः यावत् अनिन्द्रियप्रदेशाः।

गौतम! जीव भी है, जीव देश भी है, जीव प्रदेश भी है, अजीव भी है, अजीव देश भी है, अजीव प्रदेश भी है।

जो जीव है, वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीव देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय-देश यावत् अनिन्द्रिय-देश हैं।

जो जीवप्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय-प्रदेश, द्वीन्द्रियप्रदेश यावत् अनिन्द्रिय-प्रदेश हैं।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवा य, अरूवि-अजीवा य।

जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा, खंधदेसा, खंधपदेसा, परमाणुपोग्गला।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. नोधम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे २. धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३. नो-अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थि-कायस्स देसे ४. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ५. नोआगासत्थिकाए आगासत्थि-कायस्स देसे ६. आगासत्थि-कायस्स पदेसा ७. अद्धासमए॥

ये अजीवाः ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रूपि-अजीवाः च, अरूपि—अजीवाः च।

ये रूपिअजीवाः ते चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—स्कन्धाः, स्कन्धदेशाः, स्कन्ध-प्रदेशाः, परमाणुपुद्गलाः।

ये अरूपिअजीवाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—

१. नो धर्मास्तिकायः धर्मास्ति-कायस्य देशः २. धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः ३. नो-अधर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायस्य देशः ४. अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः ५. नो आकाशास्तिकायः आकाशास्तिकायस्य देशः ६. आकाशास्तिकायस्य प्रदेशाः ७. अद्धासमयः।

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपी-अजीव, अरूपी-अजीव।

जो रूपी-अजीव हैं, वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्कंध, स्कंध-देश, स्कन्ध-प्रदेश, परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपी-अजीव हैं, वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—

१. धर्मास्तिकाय नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश है, २. धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं ३. अधर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय का देश है ४. अधर्मास्ति-काय के प्रदेश हैं ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशा-स्तिकाय का देश है ६. आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं ७. अध्वासमय है,

६. अग्गेयी णं भंते! दिसा किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा—पुच्छा।

गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदिय-देसा, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदि-यस्स य देसे, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसा, अहवा एगिं-दियदेसा य बेइंदियाण य देसा। अहवा एगिंदियदेसा य तेइंदियस्स य देसे। एवं चेव तियभंगो भाणि-यव्वो। एवं जाव अणिंदियाणं

आग्नेयी भदन्त! दिशा किं जीवा, जीवदेशा, जीवप्रदेशा—पृच्छा।

गौतम! नो जीवा, जीवदेशा अपि, जीव-प्रदेशा अपि, अजीवा अपि, अजीवदेशा अपि, अजीवप्रदेशा अपि।

ये जीवदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियदेशाः, अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य च देशः, अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य च देशाः अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रि-यानां च देशाः। अथवा एकेन्द्रियदेशाः च त्रीन्द्रियस्य च देशः। एवं चैव त्रिकभंगः भणितव्यः। एवं यावत् अनिन्द्रियाणां

६. भंते! आग्नेयी दिशा क्या जीव है? जीवदेश है? जीवप्रदेश है? पृच्छा।

गौतम! जीव नहीं है, जीव-देश भी है, जीव-प्रदेश भी है, अजीव भी है, अजीव-देश भी है, अजीव-प्रदेश भी है।

जो जीवदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं, अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है, अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय के देश हैं अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रियों के देश हैं। अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और त्रीन्द्रिय का देश है। इसी प्रकार तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिय-भंगो। जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा। अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियस्स पदेसा, अहवा एगिंदिय-पदेसा य बेइंदियाण य पदेसा। एवं आइल्लविरहिओ जाव अणिंदियाणं।

त्रिकभंगः। ये जीवप्रदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियप्रदेशाः। अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियस्य प्रदेशः, अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च प्रदेशाः। एवम् आदिमविरहितः यावत् अनिन्द्रियाणाम्।

विकल्प वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय के तीन भंग वक्तव्य हैं। जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रियों के प्रदेश हैं। इसी प्रकार प्रथम विकल्प विरहित यावत् अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवा य, अरूवि-अजीवा य।

ये अजीवाः ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—रूपिअजीवाः च, अरूपिअजीवाः।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपी-अजीव, अरूपी-अजीव।

जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा जाव परमाणुपोग्गला।

ये रूपि-अजीवाः ते चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—स्कन्धाः यावत् परमाणुपुद्गलाः।

जो रूपी-अजीव हैं, वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्कन्ध यावत् परमाणु पुद्गल।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—नोधम्मत्थिकाए धम्मत्थि-कायस्स देसे, धम्मत्थि-कायस्स पदेसा, एवं अधम्मत्थि-कायस्स वि जाव आगासत्थि-कायस्स पदेसा, अद्धासमए॥

ये अरूपि-अजीवाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा—नोधर्मास्तिकायः धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः, एवम् अधर्मास्तिकायस्य अपि यावत् आकाशास्तिकायस्य प्रदेशाः, अद्धासमयः।

जो अरूपि-अजीव हैं— वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—नोधर्मास्तिकाय— धर्मास्ति-काय नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश है, धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय की वक्तव्यता यावत् आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं। अध्वा समय है।

७. जम्मा णं भंते! दिसा किं जीवा?

जहा इंदा। तहेव निरवसेसं नेरती य जहा अग्गेयी। वारुणी जहा इंदा। वायव्वा जहा अग्गेयी। सोमा जहा इंदा। ईसाणी जहा अग्गेयी। विमलाए जीवा जहा अग्गेयीए, अजीवा जहा इंदाए। एवं तमाए वि, नवरं—अरूवी छव्विहा, अद्धासमयो न भण्णति॥

याम्या भदन्त! दिशा किं जीवाः?

यथा इन्द्रा तथैव निरवशेषम्। नैर्ऋती च यथा आग्नेयी। वारुणी यथा इन्द्रा। वायव्या यथा आग्नेयी। सौम्या यथा इन्द्रा। ऐशानी यथा आग्नेयी। विमलायाः जीवाः यथा आग्नेय्याः, अजीवाः यथा इन्द्रायाः। एवं तमायाः अपि, नवरम्—अरूपिणः षड्विधाः, अध्वसमयः न भण्यते।

७. भंते! क्या याम्या दिशा जीव है?

जैसे ऐन्द्री वैसे ही याम्या की निरवशेष वक्तव्यता। नैर्ऋती आग्नेयी की भांति, वारुणी ऐन्द्री की भांति, वायव्या आग्नेयी की भांति, सौम्या ऐन्द्री की भांति, ऐशानी आग्नेयी की भांति, विमला के जीव आग्नेयी की भांति और अजीव ऐन्द्री की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार तमा की वक्तव्यता, इतना विशेष है—अरूपी अजीव के छह प्रकार हैं, अध्वा समय वक्तव्य नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र १-७

प्रस्तुत आलापक में दश दिशाओं का निरूपण है। स्थानांग के छठे स्थान में छह और दसवें स्थान में दश दिशाएं बतलाई गई हैं।[1] वास्तव में दिशाएं छह हैं, चार विदिशाएं हैं। जीवों की गति आदि सभी प्रवृत्तियां छहों दिशाओं में ही होती हैं, चार विदिशाओं में नहीं होती। इसलिए दिशा और विदिशा का विभाग बहुत सार्थक है। समुच्चय की अपेक्षा दश दिशाएं बतलाई गई हैं किन्तु कार्य की अपेक्षा छह दिशाएं और चार विदिशाएं हैं।

जैन दर्शन के अनुसार दिशा स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। वह आकाश के प्रदेशों की विशिष्ट रचना है। तिरछे लोक के मध्य में आकाश के आठ प्रदेश वाला रुचक है। उसके आठ प्रदेश गोस्तन-आकार वाले हैं—चार ऊपर और चार नीचे। वह रुचक सब दिशाओं और विदिशाओं का प्रवर्तक है।[2] सिद्धसेन गणि के अनुसार आठ प्रदेश वाला रुचक नैश्चयिक दिशा है।[3] पूर्व, पश्चिम, उत्तर और

१. (क) ठाणं, ६/३७।
(ख) वही, १०/३०-३१।
(ग) भ., २/२-७।

२. नंदी, मलय. प.११०।

३. (क) त. सू. भा. वृ. ३/१० पृ. २५४—अथ नैश्चयिकी दिक् कथं प्रतिपत्तव्येत्यत आह-
(ख) वही ३/१० का भाष्य—लोकमध्यावस्थितं त्वष्टप्रदेशं रुचकं दिग्नियत हेतुं प्रतीत्य यथासंभवं भवतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण–ये चार महादिशाएं हैं।

इनका प्रारंभ दो दो आकाशप्रदेश से होता है। क्रमशः चार, छह, आठ–इस प्रकार वृद्धि होते होते लोकाकाश में असंख्य-प्रदेशात्मक और अलोकाकाश में अनंत प्रदेशात्मक हो जाती हैं। ऊर्ध्व और अधः दिशा चार-चार आकाश-प्रदेशों से निष्पन्न होती हैं। चार विदिशाएं चार दिशाओं के कोणों में होती हैं। उनकी रचना एक एक प्रदेश से निष्पन्न है।

चार महादिशाओं की रचना गाड़ी के उद्धी के आकार वाली प्रारंभ में संकड़ी और अंत में विस्तृत होती है। चार विदिशाओं की रचना मुक्तावली संस्थान वाली है। ऊर्ध्व और अधःदिशा की रचना रुचक आकार वाली है।[1] भगवती के तेरहवें शतक में दिशा का वर्णन उपलब्ध है।[2]

आवश्यक निर्युक्ति में दिशा के सात प्रकार बतलाए गए हैं[3]–

१. नाम दिशा २. स्थापना दिशा ३. द्रव्य दिशा ४. क्षेत्र दिशा ५. ताप क्षेत्र दिशा ६. प्रज्ञापक दिशा ७. भाव दिशा।

व्यवहार में दिशा का प्रयोग सूर्य के उदय से संबद्ध है। वह ताप-क्षेत्र दिशा है। रुचक के आठ प्रदेशों से उद्भूत होने वाली दिशा क्षेत्र दिशा है। जीव के वर्तमान पर्याय का बोध कराने वाली दिशा भाव दिशा है। प्रस्तुत आलापक में क्षेत्र दिशा और भाव दिशा की दृष्टि से विमर्श किया गया है। भाव दिशा के साथ अजीव द्रव्य का परामर्श भी उपलब्ध है।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के साथ अनिन्द्रिय जीव का उल्लेख है। अनिन्द्रिय का अर्थ है–केवली।[4]

एकेन्द्रिय जीव प्राची आदि दिशाओं में व्याप्त हैं। धर्मास्तिकाय आदि का देश-भाग भी दिशाओं में व्याप्त है। इस अपेक्षा से छहों दिशाओं को जीव और अजीव दोनों बतलाया गया है।

विदिशाएं एक प्रदेशात्मक हैं इसलिए उनके अनेक विकल्प बनते हैं।

जीव असंख्य प्रदेशात्मक आकाशप्रदेश के बिना नहीं रह सकते इसलिए विदिशा, ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा में केवल जीव के देश का ही अस्तित्व हो सकता है।

पुद्गल स्कन्ध एक आकाशप्रदेश में भी रह सकता है इसलिए उसका अस्तित्व सभी दशों दिशाओं में हो सकता है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय अखंड द्रव्य हैं इसलिए इनके देश का अस्तित्व सभी दिशाओं में हो सकता है।[5] देखें यंत्र–

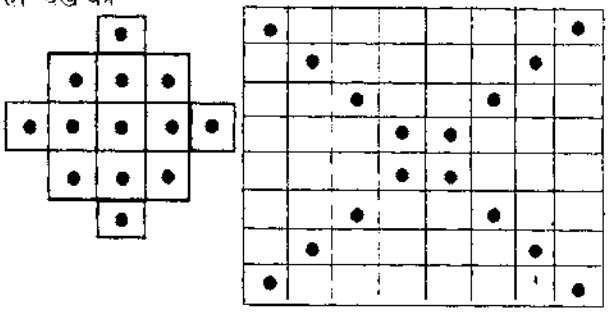

सरीर-पदं

८. **कति णं भंते! सरीरा पण्णत्ता?**

गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए॥

शरीर-पदम्

कति भदन्त! शरीराः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! पञ्च शरीराः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–औदारिकः वैक्रियः आहारकः तैजसः कर्मकः।

शरीर-पद

८. भंते! शरीर कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! शरीर पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे–औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

९. **ओरालियसरीरे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?**

एवं ओगाहणासंठाणं निरवसेसं भाणियव्वं जाव अप्पाबहुगं ति॥

औदारिकशरीरः कतिविधः प्रज्ञप्तः?

एवम् अवगाहना संस्थानं निरवशेषं भणितव्यं यावत् अल्पबहुकम् इति।

९. भंते! औदारिक शरीर कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

इस प्रकार अवगाहन-संस्थान पद (प्रज्ञापना २१) निरवशेष वक्तव्य है यावत् अल्प-बहुत्व तक।

भाष्य

१. सूत्र–८-९

द्रष्टव्य–भगवती १/३४०–३४४ तथा भगवती ८/३६६-३७२ का भाष्य।

१०. **सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥**

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. आव वृ. प. ४३८–
सगडुद्धि संठियाओ, महादिशाओ हवंति चत्तारि।
मुत्तावली य चउरो दो चेव य हुंति रुअगनिभा॥

२. भ. १३/५२-५४।

३. आव. ८०५–विशेष वर्णन के लिए द्रष्टव्य श्री भिक्षु आगम विषयकोश पृ. ५६७-५६८।

४. (क) भ. वृ. ९–नव ते जीवास्त एकेन्द्रियादयोऽनिन्द्रियाश्च केवलिनः
(ख) भ. जो. ३/२१७/२३।

५. भ. वृ. ९.१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल

संवुडस्स किरिया-पदं

११. रायगिहे जाव एवं वयासी—संवुडस्स णं भंते! अणगारस्स वीयी-पंथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स, मग्गओ रूवाइं अवयक्खमाणस्स, पासओ रूवाइं अवलोएमाणस्स, उड्ढं रूवाइं ओलोएमाणस्स, अहे रूवाइं आलोएमाणस्स तस्स णं भंते! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ? संपराइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! संवुडस्स णं अणगारस्स वीयीपंथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स, मग्गओ रूवाइं अवयक्खमाणस्स, पासओ रूवाइं अवलोएमाणस्स उड्ढं रूवाइं ओलोएमाणस्स, अहे रूवाइं आलोएमाणस्स तस्स णं नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ॥

१२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—संवुडस्स णं जाव संपराइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ। अहासुत्तं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ, उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ। से णं उस्सुत्तमेव रीयति। से तेणट्ठेणं जाव संपराइया किरिया कज्जइ॥

संस्कृत छाया

संवृतस्य क्रिया-पदं

राजगृहः यावत् एवमवादीत्-संवृतस्य भदन्त! अनगारस्य वीचिपथि स्थित्वा पुरतः रूपाणि निध्यायतः, 'मग्गओ' रूपाणि पश्यतः, पार्श्वतः रूपाणि अवलोकमानस्य, ऊर्ध्वं रूपाणि अवलोकमानस्य, अधः रूपाणि आलोकमानस्य तस्य भदन्त! किम् ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते? साम्परायिकी क्रिया क्रियते?

गौतम! संवृतस्य अनगारस्य वीचिपथि स्थित्वा पुरतः रूपाणि निध्यायतः, 'मग्गओ' रूपाणि पश्यतः, पार्श्वतः रूपाणि अवलोकमानस्य, उर्ध्वं रूपाणि अवलोकमानस्य, अधः रूपाणि आलोकमानस्य तस्य नो ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते, साम्परायिकी क्रिया क्रियते।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—संवृतस्य यावत् साम्परायिकी क्रिया क्रियते?

गौतम! यस्य क्रोध-मान-माया-लोभाः व्यवच्छिन्नाः भवन्ति तस्य ईर्यापथिकी क्रिया क्रियते, यस्य क्रोध-मान-माया-लोभाः अव्यवच्छिन्नाः भवन्ति तस्य साम्परायिकी क्रिया क्रियते। यथासूत्रं रीयमाणस्य ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते, उत्सूत्रं रीयमाणस्य साम्परायिकी क्रिया क्रियते। सः उत्सूत्रमेव रीयते। तत् तेनार्थेन यावत् साम्परायिकी क्रिया क्रियते।

हिन्दी अनुवाद

संवृत का क्रिया पद

११. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगार पुरोवर्ती रूपों को देखता है, पृष्ठवर्ती रूपों को देखता है, पार्श्ववर्ती रूपों को देखता है, ऊर्ध्ववर्ती रूपों को देखता है, अधोवर्ती रूपों को देखता है। भंते! क्या उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है? सांपरायिकी क्रिया होती है?

गौतम! कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगार पुरोवर्ती रूपों को देखता है, पृष्ठवर्ती रूपों को देखता है, पार्श्ववर्ती रूपों को देखता है, ऊर्ध्ववर्ती रूपों को देखता है, अधोवर्ती रूपों को देखता है, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, सांपरायिकी क्रिया होती है।

१२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगार के यावत् सांपरायिकी क्रिया होती है?

गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो जाते हैं, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते, उसके सांपरायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र—सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। उत्सूत्र—सूत्र के विपरीत चलने वाले के सांपरायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते) उत्सूत्र ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलना है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगार के सांपरायिकी क्रिया होती है।

१३. संवुडस्स णं भंते! अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव तस्स णं भंते! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ?—पुच्छा।

गोयमा! संवुडस्स णं अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ॥

संवृतस्य भदन्त! अनगारस्य अवीचिपथि स्थित्वा पुरतः रूपाणि निध्यायतः यावत् तस्य भदन्त! किं ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते?—पृच्छा।

गौतम! संवृतस्य अनगारस्य अवीचिपथि स्थित्वा यावत् तस्य ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते, नो साम्परायिकी क्रिया क्रियते।

१३. भंते! जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, वह संवृत अनगार पुरोवर्ती रूपों को देखता है यावत् भंते! क्या उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है? पृच्छा।

गौतम! जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, वह संवृत अणगार पुरोवर्ती रूपों को देखता है यावत् उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं होती।

१४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—संवुडस्स णं जाव इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ। अहासुत्तं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ, उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ। से णं अहासुत्तमेव रीयति। से तेणट्ठेणं जाव नो संपराइया किरिया कज्जइ॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—संवृतस्य यावत् ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते, नो साम्परायिकी क्रिया क्रियते?

गौतम! यस्य क्रोध-मान-माया-लोभाः व्यवच्छिन्नाः भवन्ति तस्य ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते, यस्य क्रोध-मान-माया-लोभाः अव्यवच्छिन्नाः भवन्ति तस्य साम्परायिकी क्रिया क्रियते। यथासूत्रं रीयमाणस्य ईर्यापथिकी क्रिया क्रियते उत्सूत्रं रीयमाणस्य साम्परायिकी क्रिया क्रियते। सः यथासूत्रमेव रीयते। तत् तेनार्थेन यावत् नो साम्परायिकी क्रिया क्रियते।

१४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, उस संवृत अणगार के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं होती? गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो जाते हैं उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते, उसके सांपरायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र— सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, उत्सूत्र—सूत्र के विपरीत चलने वाले के सांपरायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न होते हैं) यथासूत्र ही चलता है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, उस संवृत अणगार के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं होती।

भाष्य

१. सूत्र—११-१४

भगवती ७/२० में बतलाया गया है—अनायुक्त प्रवृत्ति करने वाले मुनि के ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती। भगवती ७/१२५ में बतलाया गया है—आयुक्त प्रवृत्ति करने वाले मुनि के ऐर्यापथिकी की क्रिया होती है। प्रस्तुत प्रकरण में उल्लेख है—अवीचि पथ में स्थित संवृत अनगार के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। वीचि पथ में स्थित संवृत अनगार के ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती। ऐर्यापथिकी क्रिया के स्वरूप को समझने के लिए इन तीनों प्रकरणों का तुलनात्मक अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

ऐर्यापथिकी क्रिया के संदर्भ में सर्वत्र आयुक्त और अनायुक्त शब्द का प्रयोग हुआ है। अवीचि-पथ और वीचि-पथ का प्रयोग केवल प्रस्तुत प्रकरण में मिलता है।

वीचि शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—संप्रयोग[1], तरंग, प्रकाश की किरण, आह्लाद, निर्विचार, विश्राम, असंगति[2]., अविवेक, सुख, चमक, दीप्ति, अल्पता, अवकाश, आकाश, संबंध, पृथग्भाव, लघु रथ्या, छोटा मुहल्ला।[3] वृत्तिकार ने वीचि के चार

१. भ. वृ १०-११।

२. आप्टे—Wave, Incanrtancy, thoughtiessness Pleasure, Delight, Rest, Leisure.

३. पाइय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ किए हैं—संप्रयोग, पृथग् भाव, विचिन्त्य और विकृति।[1]. तात्पर्यार्थ में वीचि का अर्थ है कषायवान। जो संवृत अणगार वीचि पथ—राग मार्ग में स्थित होकर रूपों को देखता है, उसके सांपरायिकी क्रिया होती है। जो संवृत अणगार अवीचि-पथ—अनासक्ति के मार्ग में स्थित होकर रूपों को देखता है, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है।

द्रष्टव्य भगवती १/४४-४७ तथा भगवती ७/२०-२१ का भाष्य। इस विषय में आचारांग ५/७१ से ७२ का भाष्य द्रष्टव्य है।

जोणी-पदं

१५. कतिविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—सीया, उसिणा, सीतोसिणा। एवं जोणीपदं निरवसेसं भाणियव्वं॥

योनि-पदम्

कतिविधा भदन्त! योनिः प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद् यथा—शीता, उष्णा, शीतोष्णा। एवं योनिपदं निर-वशेषं भणितव्यम्।

योनि-पद

१५. [1]भंते! योनि के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! योनि के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इस प्रकार योनिपद (प्रज्ञापना पद ९) निरवशेष वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १५

योनि का अर्थ है—जीवों का उत्पत्ति स्थान।

जिस प्रदेश में तैजस-कार्मण युक्त शरीर का औदारिक अथवा वैक्रिय शरीर के योग्य पुद्गल स्कंध समूह के साथ जीव मिश्रण करते हैं, उसका नाम है योनि।[2]

वैज्ञानिक जनन प्रक्रिया के अनुसार शुक्राणु और अण्ड के निषेचन की क्रिया दो प्रकार की होती है—बाह्य निषेचन और आंतरिक निषेचन। मछली, मेंढक आदि में यह क्रिया स्त्री के शरीर के बाहर होने के कारण इसे बाह्य निषेचन कहते है। गाय, भैंस, कुत्ता, बंदर और मनुष्य में यह क्रिया स्त्री के शरीर के अंदर होने से इसे आंतरिक निषेचन कहते हैं।

सूत्रकार ने विस्तृत जानकारी के लिए प्रज्ञापना के योनि-पद को देखने का निर्देश दिया है।[3]

वेदणा-पदं

१६. कतिविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा—सीया, उसिणा, सीओसिणा। एवं वेयणापदं भाणियव्वं जाव—

वेदना-पदम्

कतिविधा भदन्त! वेदना प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधा वेदना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—शीता, उष्णा, शीतोष्णा। एवं वेदनापदं भणितव्यं यावत्—

वेदना-पद

१६. भंते! वेदना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! वेदना के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। इसी प्रकार वेदना-पद (प्रज्ञापना पद ३५) वक्तव्य है यावत्—

१७. नेरइया णं भंते! किं दुक्खं वेयणं वेदेंति? सुहं वेयणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! दुक्खं पि वेयणं वेदेंति, सुहं पि वेयणं वेदंति, अदुक्खमसुहं पि वेयणं वेदेंति॥

नैरयिकाः भदन्त! किं दुक्खं वेदनां वेदयन्ति? सुखं वेदनां वेदयन्ति? अदुक्खम-सुखं वेदनां वेदयन्ति?

गौतम! दुक्खम् अपि वेदनां वेदयन्ति, सुखम् अपि वेदनां वेदयन्ति, अदुक्खम-सुखम् अपि वेदनां वेदयन्ति।

१७. [1]भंते! क्या नैरयिक दुःख का वेदन करते हैं? सुख का वेदन करते हैं? अदुःख-असुख का वेदन करते हैं?

गौतम! दुःख का वेदन भी करते हैं, सुख का वेदन भी करते हैं, अदुःख-असुख का वेदन भी करते हैं।

भाष्य

१. सूत्र १६-१७

वेदना शरीर और मन के द्वारा होने वाला संवेदन है। द्रष्टव्य ६/१८५ का भाष्य

---

१. भ. वृ. १०/११—वीचि शब्दः संप्रयोगे, स च संप्रयोगोद्वयोर्भवति ततश्चेद कषायाणां जीवस्य च संबंधो वीचिशब्दवाच्यः ततश्च वीचिमतः कषायवतो मतुप्रत्ययस्य षष्ठ्याश्च लोपदर्शनात अथवा विचिर् पृथग्भावे इति वचनाद् विविच्य—पृथग्भूय यथास्थानसंयमान् कषायोदयमनपवार्येत्यर्थः अथवा विचिन्त्य गत्यादिविकल्पादित्यर्थः अथवा विरूपा कृतिः—क्रिया सरागत्वात् यस्मिन्नवस्थाने तद्विकृति यथा भवतीति।

२. भ. वृ. १०/१५—तैजसकार्मणशरीरस्कन्ध औदारिकादिशरीरयोग्यस्कंध समुदायेन मिश्रीभवन्ति जीवाः यस्यां सा योनिः।

३. पण्ण. पद. ९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्खुपडिमा-पदं

१८. मासियण्णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स, निच्चं वोसट्ठकाए, चियत्तदेहे जे केइ परीसहोवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा–दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ। एवं मासिया भिक्खु-पडिमा निरवसेसा भाणियव्वा, जहा दसाहिं जाव आराहिया भवइ॥

भिक्षु-प्रतिमा-पदम्

मासिकीं भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नस्य अनगारस्य, नित्यं व्युत्सृष्टकाये, त्यक्तदेहे ये केऽपि परीषहोपसर्गाः उत्पद्यन्ते, तद् यथा–दिव्याः वा, मानुषाः वा, तिर्यग्योनिकाः वा तान् उत्पन्नान् सम्यक् सहते क्षमते तितिक्षते अध्यासते। एवं मासिकी भिक्षुप्रतिमा निरवशेषा भणितव्या, यथा दशासु यावत् आराधिता भवति।

भिक्षुप्रतिमा-पद

१८. [1]मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार, जो नित्य व्युत्सृष्ट काय और त्यक्त देह है, के अनेक परीषह–उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, जैसे–दिव्य, मानुषिक अथवा तिर्यक्योनिक। वह इन उत्पन्न परीषहों को सम्यक् सहन करता है, उनकी क्षमा, तितिक्षा और अधिसहन करता है।

इस प्रकार मासिकी भिक्षुप्रतिमा निरवशेष वक्तव्य है, जैसे–दशाश्रुतस्कंध में यावत् आराधित होती है।

भाष्य

१. सूत्र १८

भिक्षु-प्रतिमा का नामोल्लेख समवाओ में मिलता है।[1] उसका विस्तृत विवरण दशाश्रुतस्कंध में मिलता है।[2] प्रस्तुत सूत्र में मासिकी भिक्षु प्रतिमा का उल्लेख है। शेष प्रतिमाओं के लिए दशाश्रुतस्कंध को देखने का निर्देश दिया है।

अकिच्चट्ठाणपडिसेवण-पदं

१९. भिक्खू य अण्णयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा॥

अकृत्यस्थानप्रतिसेवन-पदम्

भिक्षुः च अन्यतरत् अन्यस्थानं प्रतिषेव्य सः तस्य स्थानस्य अनालोचित-प्रतिक्रान्तः कालं करोति नास्ति तस्य आराधना, सः तस्य स्थानस्य आलोचित-प्रतिक्रान्तः कालं करोति अस्ति तस्य आराधना।

अकृत्य-स्थान-प्रतिसेवन-पद

१९. भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का सेवन कर उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल (मृत्यु) को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त होता है, उसके आराधना होती है।

२०. भिक्खू य अण्णयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता तस्स णं एवं भवइ– पच्छा वि णं अहं चरिमकाल-समयंसि एयस्स ठाणस्स आलोएस्सामि, पडिक्कमिस्सामि, निंदिस्सामि, गरिहिस्सामि, विउट्टिस्सामि, विसोहिस्सामि, अकरणयाए अब्भुट्ठिस्सामि, अहारियं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा॥

भिक्षुः च अन्यतरत् अकृत्यस्थानं प्रतिषेव्य तस्य एवं भवति–पश्चादपि अहं चरमकालसमये एतत् स्थानं आलोचयिष्यामि, प्रतिक्रमिष्यामि, निन्दिष्यामि, गर्हिष्ये, व्यावर्तिष्ये, विशोधयिष्यामि, अकरणतया अभ्युत्स्थास्यामि, यथारीतं प्रायश्चित्तं तपः कर्म प्रतिपत्स्ये, सः तस्य स्थानस्य अनालोचित–प्रतिक्रान्तः कालं करोति नास्ति तस्य, आराधना, सः तस्य स्थानस्य आलोचित–प्रतिक्रान्तः कालं करोति अस्ति तस्य आराधना।

२०. [2]भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर इस प्रकार सोचता है–मैं पश्चात् चरमकाल के समय में इस स्थान की आलोचना करूंगा, प्रतिक्रमण करूंगा, निंदा करूंगा, गर्हा करूंगा, विवर्तन करूंगा, विशोधन करूंगा, पुनः न करने के लिए अभ्युत्थान करूंगा। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिनः काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना होती है।

२१. भिक्खू य अण्णयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता तस्स णं एवं भवइ–जइ ताव समणोवासगा वि कालमासे कालं

भिक्षुः च अन्यरत् अकृत्यस्थानं प्रतिषेव्य तस्य एवं भवति–यदि तावत् श्रमणोपासकाः अपि कालमासे कालं कृत्वा अन्य-

२१. भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर इस प्रकार सोचता है–यदि श्रमणोपासक कालमास में काल को

१. समवाओ १२/१।
२. दसाओ ७/१-३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किच्चा अण्ण-यरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, किमंग! पुण अहं अण-पन्नियदेवत्तणंपि नो लभिस्सामि त्ति कट्टु से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा।

तरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्तारः भवन्ति. किमंग! पुनः अहं अणपन्निकदेवत्वम् अपि नो लप्स्ये इति कृत्वा सः तस्य स्थानस्य अनालोचित प्रतिक्रान्तः कालं करोति नास्ति तस्य आराधना, सः तस्य स्थानस्य आलोचित-प्रतिक्रान्तः कालं करोति अस्ति तस्य आराधना।

प्राप्त कर किसी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होते हैं तो क्या मैं अणपन्निक देवत्व को भी प्राप्त नहीं होऊंगा? ऐसा सोचकर जो उस स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना होती है।

भाष्य

१. सूत्र १९-२१

प्रस्तुत आलापक में दोष की प्रतिसेवना के पश्चात् होने वाली दशा पर विचार किया गया है। दोष प्रतिसेवना के साथ आराधना और विराधना का सामान्य नियम यह है–

१. • दोष प्रतिसेवना आलोचना – आराधना
• दोष प्रतिसेवना अनालोचना – विराधना

२. दोष प्रतिसेवना अंतिम समय में आलोचना का संकल्प
अनालोचना – विराधना

दोष प्रतिसेवणा अंतिम समय में आलोचना का संकल्प
आलोचना – आराधना

अकृत्य स्थान और आलोचना के विषय में निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य हैं–

० भगवती ८/२५१-५५ का भाष्य।
० व्यवहार-सूत्र १/३३ तथा २/१-५।

शब्द विमर्श

अणपन्नियं–यह व्यन्तर देव की एक जाति है।

२२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

[redacted]

१. (क) ओवा. सू. ४१।
(ख) भ. वृ. १०/।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइयो उद्देसो : तृतीय उद्देशक

मूल

आइड्ढीए परिड्ढीए वीइवयण-पदं

२३. रायगिहे जाव एवं वयासी– आइड्ढीए णं भंते! देवे जाव चत्तारि, पंच देवावासंतराइं वीतिक्कंते, तेण परं परिड्ढीए?

हंता गोयमा! आइड्ढीए णं देवे जाव चत्तारि, पंच देवावासंतराइं वीतिक्कंते, तेण परं परिड्ढीए। एवं असुरकुमारे वि, नवरं–असुर-कुमारावासंतराइं, सेसं तं चेव। एवं एएणं कमेणं जाव थणिय-कुमारे, एवं वाणमंतरे, जोइसिए वेमाणिए जाव तेण परं परिड्ढीए॥

संस्कृत छाया

आत्मर्द्ध्या परर्द्ध्या व्यति-व्रजन-पदम्

राजगृहः यावत् एवमवादीत्–आत्मर्द्ध्या भदन्त! देवः यावत् चत्वारि, पञ्च देवावासान्तराणि व्यतिक्रान्तः, तेनं परं परर्द्ध्या।

हन्त गौतम! आत्मर्द्ध्या देवः यावत् चत्वारि, पञ्च देवावासान्तराणि व्यतिक्रान्तः, तेन परं परर्द्ध्या। एवम् असुर-कुमारोऽपि, नवरम् असुरकुमारावासा-न्तराणि, शेषं तच्चैव। एवम् एतेन क्रमेण यावत् स्तनितकुमारः, एवं वानमन्तरः, ज्योतिष्कः वैमानिकः यावत् तेन परं परर्द्ध्या।

हिन्दी अनुवाद

आत्मर्धिक परर्धिक व्यतिव्रजन पद

२३. [1]राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! देव आत्म-ऋद्धि के द्वारा यावत् चार-पांच देव-आवासांतरों को व्यतिक्रांत करता है, उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है?

हां गौतम! देव आत्मऋद्धि के द्वारा यावत् चार-पांच देव-आवासांतरों को व्यतिक्रांत करता है, उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है। इसी प्रकार असुरकुमार की वक्तव्यता, इतना विशेष है–असुरकुमार-आवासांतरों को व्यति-क्रांत करता है शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार इस क्रम से यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। इसी प्रकार वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक यावत् उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है।

भाष्य

१. सूत्र २३

प्रस्तुत सूत्र में देव की गति-शक्ति का नियम बतलाया गया है। सामान्यतः एक देव आत्मऋद्धि–अपनी शक्ति से चार-पांच देवावास तक जा सकता है। उससे आगे जाना हो तो उसे पर-ऋद्धि–पर शक्ति की अपेक्षा रहती है।

इस प्रकरण में आत्मऋद्धि और परऋद्धि–ये दोनों शब्द विमर्शनीय है।देव के स्थूल शरीर–वैक्रिय शरीर होता है। उसके दो प्रकार हैं–भव धारणीय और उत्तर वैक्रियक।[2] भवधारणीय वैक्रिय शरीर की शक्ति को आत्मऋद्धि, उत्तर वैक्रयिक शरीर की शक्ति को पर-ऋद्धि कहा जा सकता है। भगवती के अनुसार भवधारणीय शरीर जन्म के मूल स्थान में रहते हैं। उत्तर वैक्रियक शरीर बाहर जाते हैं।[3] तिलोयपण्णत्ती में भी इसका उल्लेख मिलता है।[4]

तात्पर्य यह है कि देव मूल शरीर अथवा भवधारणीय शरीर से अधिक गति नहीं कर सकते। उनकी लंबी यात्रा उत्तर-वैक्रिय शरीर के द्वारा ही निष्पन्न होती है।

पर-ऋद्धि का एक अर्थ दूसरे का सहारा हो सकता है। असुरराज चमर भगवान महावीर का सहारा लेकर सौधर्म कल्प तक गया था।[5] पर-ऋद्धि का एक अर्थ पराभियोग भी हो सकता है।[6]

---

१. पण्ण. २१/७०।

२. भ. वृ. १० देवः किल प्रायो देवस्थान एव वर्तत इति तत्र गतान्-देवलोकादिगतान् यतः कृतोत्तरः वैक्रियरूपः एव प्रायोन्यत्र गच्छतीति नो इह गतान् पुद्गलान पर्यादाय इत्याद्युक्तमिति।

३. तिलोयपण्णत्ति ५/९५–

गब्भावयारपहुदिसु उत्तरदेहासुराण गच्छंति।
जम्मण ठाणेसु सुहं, मूल सरीराणि चेट्ठंति॥

४. भ. ३/१५, ११२।

५. त. सू. भा. वृ. ४/२२ भाष्य–यस्माच्चारित्रिणोर्ध्वं च त्रीनपि लोकान् स्पृशन्तः स्वानन्त्यात्, पराभियोगाच्च प्रायेण प्रतिपतन्त्य नियतगति-प्रचाराः।.....,स्वातंत्र्यात्–स्वेच्छया,पराभियोगाच्च शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायोऽनियतगतिप्रचारा भवन्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणं विणयविहि-पदं

२४. अप्पिड्ढीए णं भंते! देवे महिड्ढि-यस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइव-एज्जा?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

२५. समिड्ढीए णं भंते! देवे समिड्ढीयस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइव-एज्जा?

नो इणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीइव-एज्जा॥

२६. से भंते! किं विमोहित्ता पभू? अविमोहित्ता पभू?

गोयमा! विमोहित्ता पभू, नो अविमोहित्ता पभू॥

२७. से भंते! किं पुव्विं विमोहित्ता पच्छा वीइवएज्जा? पुव्विं वीइ-वइत्ता पच्छा विमोहेज्जा?

गोयमा! पुव्विं विमोहित्ता पच्छा वीइवएज्जा, नो पुव्विं वीइवइत्ता पच्छा वीमोहेज्जा॥

२८. महिड्ढीए णं भंते! देवे अप्पिड्ढि-यस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइव-एज्जा?

हंता वीइवएज्जा॥

२९. से भंते! किं विमोहित्ता पभू? अविमोहित्ता पभू?

गोयमा! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू॥

३०. से भंते! किं पुव्विं विमोहित्ता पच्छा वीइवएज्जा? पुव्विं वीइ-वइत्ता पच्छा विमोहेज्जा?

गोयमा! पुव्विं वा विमोहेत्ता पच्छा

देवानां विनयविधि-पदम्

अल्पर्धिकः भदन्त! देवः महर्धिकस्य देवस्य मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

नो अयमर्थः समर्थः।

समर्धिकः भदन्त! देवः समर्धिकस्य देवस्य मध्यं-मध्येन व्यतिव्रजेत?

नो अयमर्थः समर्थः, प्रमत्तं पुनः व्यति-व्रजेत्।

स भदन्त! किं विमोह्य प्रभुः अविमोह्य प्रभुः?

गौतम! विमोह्य प्रभुः, नो अविमोह्य प्रभुः।

स भदन्त! किं पूर्वं विमोह्य पश्चात् व्यतिव्रजेत्? पूर्वं व्यतिव्रज्य पश्चात् विमोहयेत्?

गौतम! पूर्वं विमोह्य पश्चात् व्यतिव्रजेत्, नो पूर्वं व्यतिव्रजेत् पश्चात् विमोहयेत्।

महर्धिकः भदन्त! देवः अल्पर्धिकस्य देवस्य मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

हन्त व्यतिव्रजेत।

स भदन्त! किं विमोह्य प्रभुः? अविमोह्य प्रभुः?

गौतम! विमोह्य अपि प्रभुः, अविमोह्य अपि प्रभुः।

स भदन्त! किं पूर्वं विमोह्य पश्चात् व्यतिव्रजेत्? पूर्वं व्यतिव्रज्य पश्चात् विमोहयेत्?

गौतम! पूर्वं वा विमोह्य पश्चात् व्यति-

देवों का विनयविधि-पद

२४. भंते! क्या अल्पऋद्धि वाला देव महान ऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
यह अर्थ संगत नहीं है।

२५. भंते! समऋद्धि वाला देव समऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
यह अर्थ संगत नहीं है। वह समऋद्धि वाले प्रमत्त देव का व्यतिक्रमण कर सकता है

२६. भंते! क्या वह समऋद्धि वाले देव को विमोहित कर जाने में समर्थ है? विमोहित किए बिना जाने में समर्थ है?
गौतम! वह समऋद्धि वाले देव को विमोहित कर जाने में समर्थ है, विमोहित किए बिना जाने में समर्थ नहीं है।

२७. भंते! क्या वह पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है? पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है?
गौतम! पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है, पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित नहीं करता।

२८. भंते! महान ऋद्धि वाला देव अल्प-ऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
हां, व्यतिक्रमण करता है।

२९. भंते! क्या वह विमोहित कर व्यति-क्रमण करने में समर्थ है? विमोहित किए बिना व्यतिक्रमण करने में समर्थ है?
गौतम! वह विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में समर्थ है। विमोहित किए बिना भी व्यतिक्रमण करने में समर्थ है।

३०. भंते! क्या वह पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है? पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है?
गौतम! पहले विमोहित कर पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीइवएज्जा, पुव्वि वा वीइवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा॥

व्रजेत्, पूर्वं वा व्यतिव्रज्य पश्चात् विमोहयेत्।

व्यतिक्रमण करता है अथवा पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है।

३१. अप्पिड्ढिए णं भंते! असुर-कुमारे महिड्ढियस्स असुरकुमार-स्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
नो इणट्ठे समट्ठे। एवं असुरकुमारेण वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जहा ओहिएणं देवेणं भणिया। एवं जाव थणियकुमारेणं। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएणं एवं चेव॥

अल्पर्धिकः भदन्त! असुरकुमारः महर्धिकस्य असुरकुमारः मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?
नो अयमर्थः समर्थः। एवम् असुरकुमारेण अपि त्रयः आलापकाः भणितव्याः, यथा औधिकेन देवेन भणिता। एवं यावत् स्तनितकुमारेण। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकेन एवं चैव।

३१. भंते! अल्पऋद्धि वाला असुरकुमार महान ऋद्धि वाले असुरकुमार के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
यह अर्थ संगत नहीं है। इस प्रकार असुरकुमार के तीन आलापक वक्तव्य हैं, जैसे सामान्य देव के कहे गए हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। इसी प्रकार वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक की वक्तव्यता।

३२. अप्पिड्ढिए णं भंते! देवे महिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

अल्पर्धिकः भदन्त! देवः महर्धिकायाः देव्याः मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

नो अयमर्थः समर्थः।

३२. भंते! अल्पऋद्धि वाला देव महान् ऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
यह अर्थ संगत नहीं है।

३३. समिड्ढिए णं भंते! देवे समिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
एवं तहेव देवेण य देवीए य दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाए॥

समर्धिकः भदन्त! देवः समर्धिकायाः देव्याः मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

एवं तथैव देवेन च देव्या च दण्डकः भणितव्यः यावत् वैमानिकायाः।

३३. समऋद्धि वाला देव समऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?
इसी प्रकार देव और देवी का दंडक (पाठ पद्धति) वक्तव्य है यावत् वैमानिक।

३४. अप्पिड्ढिया णं भंते! देवी महिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
एवं एसो वि ततिओ दंडओ भाणियव्वो जाव–

अल्पर्धिका भदन्त! देवी महर्धिकस्य वैमानिकस्य मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

एवम् एषोऽपि तृतीयः दण्डकः भणितव्यः यावत्–

३४. भंते! अल्पऋद्धि वाली देवी महान् ऋद्धि वाले देवों के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?
इस प्रकार यहां भी तृतीय दण्डक वक्तव्य है यावत्–

३५. महिड्ढिया वेमाणिणी अप्पिड्ढियस्स वेमाणियस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

हंता वीइवएज्जा॥

महर्धिका वैमानिकी अल्पर्धिकस्य वैमानिकस्य मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

हन्त व्यतिव्रजेत्।

३५. भंते! क्या महान् ऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्पऋद्धि वैमानिक देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?
हाँ, व्यतिक्रमण करती है।

३६. अप्पिड्ढिया णं भंते! देवी महिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

नो इणट्ठे समट्ठे। एवं समिड्ढिया देवी समिड्ढियाए देवीए तहेव। महिड्ढिया वि देवी अप्पिड्ढियाए देवीए तहेव। एवं एक्केक्के तिण्णि-तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जाव–

अल्पर्धिका भदन्त! देवी महर्धिकायाः देव्याः मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?

नो अयमर्थः समर्थः। एवं समर्धिका देवी समर्धिकायाः देव्याः तथैव। महर्धिका अपि देवी अल्पर्धिकायाः देव्याः तथैव। एवम् एकैके त्रयः-त्रयः आलापकाः भणितव्याः यावत्–

३६. भंते! क्या अल्पऋद्धि वाली देवी महान् ऋद्धिवाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?
यह अर्थ संगत नहीं है। समऋद्धि वाली देवी की समऋद्धि वाली देवी के संदर्भ में पूर्ववत् वक्तव्यता (१०/२५-२७) महान् ऋद्धि वाली देवी की अल्पऋद्धि वाली देवी के संदर्भ में पूर्ववत् वक्तव्यता (१०/२८-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०)। इस प्रकार प्रत्येक के तीन तीन आलापक वक्तव्य हैं यावत्–

३७. महिड्ढिया णं भंते! वेमाणिणी अप्पिड्ढियाए वेमाणिणीए मज्झं-मज्झेणं वीइवएज्जा?
हंता वीइवएज्जा॥

महर्धिका भदन्त! वैमानिकी अल्पर्धिकायाः वैमानिक्याः मध्यंमध्येन व्यतिव्रजेत्?
हन्त व्यतिव्रजेत्।

३७. भंते! महान् ऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्पऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?
हां, व्यतिक्रमण करती है।

३८. सा भंते! किं विमोहित्ता पभू? अविमोहित्ता पभू?

गोयमा! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू। तहेव जाव पुव्विं वा वीइवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा। एए चत्तारि दंडगा।

सा भदन्त! किं विमोह्य प्रभुः अविमोह्य प्रभुः?

गौतम! विमोह्य अपि प्रभुः, अविमोह्य अपि प्रभुः। तथैव यावत् पूर्वं वा व्यतिव्रज्य पश्चात् विमोहयेत्। एते चत्वारः दण्डकाः॥

३८. भंते! क्या वह विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में समर्थ है? विमोहित किए बिना व्यतिक्रमण करने में समर्थ है?
गौतम! विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में भी समर्थ है, विमोहित किए बिना भी व्यतिक्रमण करने में समर्थ है। इसी प्रकार यावत् पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करती है। ये चार दण्डक वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र २४-३८

प्रस्तुत आलापक में अल्पर्धिक और महर्द्धिक देवों के शिष्टाचार का निरूपण है। इस प्रसंग में विमोहन की प्रक्रिया का उल्लेख है। अभयदेवसूरि ने विमोहन का अर्थ वातावरण को अंधकारमय बनाना किया है।[1]. विमोहन का अर्थ सम्मोहन भी किया जा सकता है।

आसस्स 'खु-खु' करण-पदं

३९. आसस्स णं भंते! धावमाणस्स किं 'खु-खु' त्ति करेति?
गोयमा! आसस्स णं धावमाणस्स हिययस्स य जगस्स य अंतरा एत्थ णं कक्कडए नामं वाए संमुच्छइ, जेणं आसस्स धावमाणस्स 'खु-खु' त्ति करेति॥

अश्वस्य 'खु-खु' करण-पदम्

अश्वस्य भदन्त! धावतः किं खु'-खु' इति करोति?
गौतम! अश्वस्य धावतः हृदयं च जगत् च अन्तरा अत्र 'कर्कटकः नाम' वातः सम्मूर्च्छति, येन अश्वस्य धावतः 'खु-खु' इति करोति।

अश्व का 'खु-खु' करण-पद

३९. भंते! दौड़ते हुए अश्व के क्या 'खु-खु' यह शब्द होता है?
गौतम! दौड़ते हुए अश्व के हृदय और यकृत के बीच कर्कटक वायु समुत्पन्न होती है, इस कारण दौड़ते हुए अश्व के 'खु-खु'–शब्द होता है।

भाष्य

१. सूत्र–३९

दौड़ते हुए अश्व के हृदय और यकृत के मध्य कर्कटक नाम का वायु सम्मूर्च्छित होता है।

पण्णवणी-भासा-पदं

४०. अह भंते! आसइस्सामो, सइस्सामो, चिट्ठिस्सामो, निसिइस्सामो, तुयट्टिस्सामो–पण्णवणी णं एसा भासा? न एसा भासा मोसा?
हंता गोयमा! आसइस्सामो, सइस्सामो, चिट्ठिस्सामो, निसिइस्सामो, तुयट्टिस्सामो–पण्णवणी णं एसा भासा, न एसा भासा मोसा॥

प्रज्ञापनी-भाषा-पदम्

अथ भदन्त! आसिष्यामहे, शयिष्यामहे, स्थास्यामः, निषत्स्यामः, त्वग्वर्तिष्यामहे–प्रज्ञापनी एषा भाषा? न एषा भाषा मृषा।
हन्त गौतम! आसिष्यामहे शयिष्यामहे, स्थास्यामः, निषत्स्यामः, त्वग्वर्तिष्यामहे–प्रज्ञापनी एषा भाषा, न एषा भाषा मृषा।

प्रज्ञापनी भाषा-पद

४०. भंते! मैं ठहरूंगा, सोऊंगा, खड़ा रहूंगा, बैठूंगा, लेटूंगा–क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है? क्या यह मृषा भाषा नहीं है?

हां, गौतम! ठहरूंगा, सोऊंगा, खड़ा रहूंगा, बैठूंगा, लेटूंगा–यह प्रज्ञापनी भाषा है, मृषा भाषा नहीं है।

---

१. भ. वृ. १०/२६ विमोह्य–महिकाद्यन्धकारकरणेन मोहमुत्पाद्य अपश्यंतमेव नं व्यतिक्रामेदिति भावः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र–४०

प्रज्ञापना में व्यवहार (असत्यामृषा) भाषा के बारह प्रकार बतलाए गये हैं, उनमें पांचवां प्रकार है प्रज्ञापनी।[1]. भाषा पद में प्रज्ञापनी भाषा के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।[2]. इस भाषा का प्रयोग प्रज्ञापन, व्यवहार संचालन के लिए किया जाता है इसलिए यह न सत्य है और न मृषा है किन्तु असत्यामृषा–व्यवहार भाषा है। जयाचार्य ने भविष्यकालीन क्रिया के संदर्भ में विमर्श किया है। उनके अनुसार खड़ा होऊंगा, बैठूंगा–यह अवधारिणी, निश्चयकारिणी भाषा है फिर प्रज्ञापनी कैसे? उन्होंने इस प्रश्न का समाधान भी किया है–यह भविष्य के आसन्न वर्तमान है इसलिए निश्चयकारिणी नहीं किन्तु प्रज्ञापनी है।[3].

४१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥ तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति। ४१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. पण्ण ११ : ३८।

२. वही, ११ : ४-१०।

३. भ. जो. २२०, पृ. ३२१,–इहां वैरस्यूं सुवरस्यूं इत्यादिक अनागतकाल आश्रयी कह्यो, जद तो निश्चयकारिणी हुवै। पिण ए वर्तमान काल में बैसण, सूवण का भाव निवारै कह्यो–हिवड़ा बेगूं शयन करूं छूं अथवा ए आश्रयवा जोग वस्तु हिवड़ा आश्रू छूं, इत्यादि अनागत काल छै, ते माटे वर्तमान कार्य ने विषे आसइस्सामो ए अनागत पाठ जणाय छै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चतुर्थ उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
तावत्तीसगदेव-पदं	तावत्त्रिंशकदेव-पदम्	तावत्त्रिंशक देव-पद
४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नयरे होत्था—वण्णओ। दूतिपलासए चेइए। सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाणिज्यग्रामः नगरम् आसीत्—वर्णकः। दूतिपलाशकं चैत्यम्। स्वामी समवसृतः यावत् परिषद् प्रतिगता।	४२. उस काल और उस समय वणिक्ग्राम नामक नगर था—वर्णक। दूतिपलाशक चैत्य। वहां भगवान् महावीर आए यावत् परिषद् वापिस नगर में चली गई।
४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जाव उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य ज्येष्ठः अन्तेवासी इन्द्रभूतिः नाम अनगारः यावत् ऊर्ध्वजानुः अधःशिराः ध्यानकोष्ठोपगतः संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।	४३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अणगार यावत् ऊर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।
४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सामहत्थी नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणु-कोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तेवासी श्यामहस्ती नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः प्रकृति-उपशान्तः प्रकृतिप्रतनुक्रोधमान-मायालोभः मृदुमार्दवसम्पन्नः आलीनः विनीतः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते ऊर्ध्वजानुः अधःशिराः ध्यानकोष्ठोपगतः संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।	४४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर का अंतेवासी श्यामहस्ती नामक अणगार था। वह प्रकृति से भद्र और उपशांत था। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ प्रतनु थे। वह मृदु-मार्दवसंपन्न, आलीन (संयतेंद्रिय) और विनीत था। वह श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट ऊर्ध्वजानु अधःसिर—इस मुद्रा में और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहा था।
४५. तए णं से सामहत्थी अणगारे जायसड्ढे जाव उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—	ततः सः श्यामहस्ती अनगारः जातश्रद्धः यावत् उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव भगवान् गौतमः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य भगवन्तं गौतमं त्रिः यावत् पर्युपासीनः एवमवादीत्—	४५. उस समय श्यामहस्ती अणगार के मन में एक श्रद्धा (इच्छा) यावत् उठने की मुद्रा में उठा, उठकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, वहां आकर भगवान् गौतम को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोला—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. अत्थि णं भंते! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा-तावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

४६. 'भंते!' असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

हां, हैं।

४७. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमार-रण्णो तावत्तीसगा देवातावत्ती-सगा देवा?
एवं खलु सामहत्थी! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कायंदी नामं नयरी होत्था-वण्णओ। तत्थ णं कायंदीए नयरीए तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासया परिव-संति-अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरि-भूता अभिगयजीवाजीवा, उवलद्धपुण्ण-पावा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते-चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तावत्-त्रिंशकाः देवाः-तावत्त्रिंशकाः देवाः?

एवं खलु श्यामहस्तिन्! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे काकन्दी नाम नगरी आसीत्-वर्णकः। तत्र काकन्द्यां नगर्यां त्रयस्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः परिवसन्ति-आढ्याः यावत् बहुजनस्य अपरिभूताः अभिगतजीवाजीवाः, उपल-ब्धपुण्यपापाः यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्तः विहरन्ति।

४७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है-असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

श्यामहस्ती! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप द्वीप में भारतवर्ष में काकंदी नामक नगरी थी-वर्णक। उस काकंदी नगरी में त्रायस्त्रिंशक-तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे-सम्पन्न यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय, जीव-अजीव को जानने वाले, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाले यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

४८. तए णं ते तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासया पुव्विं उग्गा उग्गविहारी, संविग्गा संविग्ग-विहारी भवित्ता तओ पच्छा पासत्था पासत्थविहारी, ओसन्ना ओसन्नविहारी, कुसीला कुसील-विहारी, अहाच्छंदा अहाच्छंद-विहारी बहूइं वासाइं समणो-वासगपरियागं पाउणित्ता, अद्धमा-सियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडि-क्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमार-रण्णो तावत्तीसगदेवत्ताए उववण्णा॥

ततः ते त्रयस्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः पूर्वम् उग्राःउग्रविहारिणः, संविग्नाः संविग्नविहारिणः भूत्वा ततः पश्चात् पार्श्वस्थाः पार्श्वस्थविहारिणः, अवसन्नाः अवसन्नविहारिणः, कुशीलाः कुशीलविहारिणः, यथाच्छंदाः यथा'-च्छंदविहारिणः बहूनि वर्षाणि श्रमणो-पासकपर्यायं प्राप्य, अर्द्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, त्रिंशत् भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्रान्ताः कालमासे कालं कृत्वा चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमार-राजस्य तावत्त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नः।

४८. वे तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक पहले उग्र, उग्रविहारी, संविग्न, संविग्नविहारी हुए उसके पश्चात् पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ-विहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाछंद, यथाछंदविहारी हो गए, वे बहुत वर्षों श्रामण्य पर्याय का पालन कर, अर्धमासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा तीस-भक्त (चौदह दिन) का छेदन कर उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए।

४९. जप्पभिइं च णं भंते! ते कायंदगा तायत्तीसं सहाया गाहावई समणो-वासगा चमरस्स असुरिंदस्स असुर-कुमाररण्णो तावत्तीसगदेव-त्ताए उववन्ना, तप्पभिइं च णं भंते! एवं वुच्चइ-चमरस्स असुरिंदस्स असुर-कुमाररण्णो तावत्तीसगा देवाता-वत्तीसगा देवा?
तए णं भगवं गोयमे सामहत्थिणा

यत्प्रभृतिं च भदन्त! ते काकन्दकाः त्रयस्त्रिंशत् सहायाः 'गावावई' श्रमणो-पासकाः चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकु-मारराजस्य तावत्त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नाः, तत्प्रभृति च भदन्त! एवं उच्यते-चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तावत्-त्रिंशकाः देवाः-तावत्त्रिंशकाः देवाः।

ततः भगवान् गौतमः श्यामहस्तिना

४९. भंते! जिस समय वे कांकंदक त्रायस्त्रिंशक परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए। भंते! क्या उस समय से इस प्रकार कहा जाता है-असुर-कुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

श्यामहस्ती अणगार के इस प्रकार कहने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सामहत्थिणा अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

अनगारेण एवमुक्ते सति शंकितः कांक्षितः विचिकित्सकः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्यामहस्तिना अनगारेण सार्धं यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–

पर भगवान् गौतम शंकित, कांक्षित और विचिकित्सित हो गए। वे उठने की मुद्रा में उठे, उठकर श्यामहस्ती अनगार के साथ जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए, वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–

५०. अत्थि णं भंते! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा-तावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः–तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

५०. भंते! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
हां, है।

५१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–एवं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव जप्पभिइं च णं भंते! ते कायंदगा तायत्तीसं सहाया गाहावई समणो-वासगा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगदेवत्ताए उववन्ना, तप्पभिइं च णं भंते! एवं वुच्चइ–चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–एवं तत् चैव सर्वं भणितव्यं यावत् यत्प्रभृति च भदन्त! ते काकन्दकाः त्रयस्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तावत्त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नाः, तत्प्रभृति च भदन्त! एवमुच्यते–चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमाराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः तावत्त्रिंशकाः देवाः?

५१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–इसी प्रकार सर्व वक्तव्य है यावत् भंते! जिस समय से वे काकंदक त्रायस्त्रिंशक–तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए, भंते! उस समय से क्या इस प्रकार कहा जा रहा है–असुरकुमार-राज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

नो इणट्ठे समट्ठे। गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगाणं देवाणं सासए नाम-धेज्जे पण्णत्ते–जं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य–धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति॥

नो अयमर्थः समर्थः।
गौतम! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमा-रराजस्य तावत्त्रिंशकानां देवानां शाश्वतः नामधेयः प्रज्ञप्तः–यत् न कदापि नासीत् न कदापि न भवति, न कदापि न भवि-ष्यति, अभवत् च, भवति च, भविष्यति च–ध्रुवः नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः, अव्यवच्छित्तिनयार्थेन अन्ये च्यवन्ते, अन्ये उपपद्यन्ते।

नहीं है।
गौतम! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देवों का शाश्वत नामधेय प्रज्ञप्त है–वह कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है–वह था, है और होगा–वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। अव्युच्छित्ति नय की दृष्टि से कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४६-५१

देव निकायों में दस प्रकार के देव होते हैं। उनमें त्रायस्त्रिंश तीसरा प्रकार है।[1] इनका स्थान मंत्री अथवा पुरोहित के समान माना गया है।[2] प्रस्तुत आलापक में त्रायस्त्रिंशक देवों के पूर्व जन्म का विवरण दिया गया है। उसके साथ अव्यवच्छित्ति नय की दृष्टि से बतलाया गया है–त्रायस्त्रिंशक देव च्युत और उत्पन्न होते रहते हैं।

शब्द विमर्श–

उग्र, उग्रविहारी–विधिपूर्वक आचार का अनुशीलन करने वाला। उदात्त और उदात्त आचारवाला, यह वृत्तिकार का अर्थ है।[3]

संविग्न, संविग्नविहारी–वैराग्यपूर्ण आचार वाला।

पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी–पासत्थ आदि पदों का प्रयोग प्रायः साधु के लिए हुआ है।[4] यहां इनका प्रयोग श्रावक के प्रसंग में

१. त. सू. ४/४–इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपरिषदात्मरक्षलोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः।

२. (क) भ. वृ. १०/४६–त्रायस्त्रिंशाः–मन्त्रिविकल्पा।
(ख) त. सू. भा. वृ. ४/४ पृ. २७५–त्रायस्त्रिंशाः–मन्त्रिपुरोहितस्थानीयाः।

३. भ. वृ. १०/४८।

४. दश. १/२६-३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है। पासत्थ और पासत्थविहारी का अर्थ है शिथिल आचारवाला।

ओसन्न, ओसन्नविहारी—आलस्य और प्रमाद के कारण आचार का सम्यक् अनुष्ठान न करने वाला।

कुसील, कुसीलविहारी—आचार की विराधना करने वाला।

यथाछंद, यथाछंदविहारी—स्वच्छंदविहारी, आगम-निरपेक्ष होकर विहार करने वाला।[1]

५२. अत्थि णं भंते! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तावत्ती-सगा देवातावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! बलिनः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवा—तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

५२. भंते! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
हां, हैं।

५३. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?
एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बेभेले नामं सण्णिवेसे होत्था—वण्णओ। तत्थ णं बेभेले सण्णिवेसे तायत्तीसं सहाया गाहावई समणो-वासया परिवसंति—जहा चमरस्स जाव तावत्तीसगदेवत्ताए उववण्णा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—बलिनः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः—यावत्त्रिंशकाः देवाः?
एवं खलु गौतम! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारत वर्षे बेभेलः नाम सन्निवेशः आसीत्—वर्णकः। तत्र बेभेले सन्निवेशे त्रयस्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः परिवसन्ति—यथा चमरस्य यावत् तावत्त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नाः।

५३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
गौतम! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप द्वीप में भारतवर्ष में बेभेल नाम का सन्निवेश था—वर्णक। उस बेभेल सन्निवेश में त्रायस्त्रिंशक तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे—जैसे चमर की वक्तव्यता यावत् त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए।

५४. जप्पभिइं च णं भंते! ते बेभेलगा तायत्तीसं सहाया गाहावई समणो-वासगा बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तावत्तीसगदेवत्ताए उववन्ना, सेसं तं चेव जाव निच्चे, अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति॥

यत्प्रभृति च भदन्त! ते बेभेलकाः तावत्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः बलिनः, वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य तावत्त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नाः, शेषं तच्चैव यावत् नित्यः, अव्यवच्छित्तिनयार्थेन अन्ये च्यवन्ते, अन्ये उपपद्यन्ते।

५४. भंते! जिस समय से वे बेभेलक त्रायस्त्रिंशक तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक वैरोचनराज, वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए। शेष पूर्ववत् वक्तव्य है यावत् नित्य है, अव्यवच्छित्ति नय की दृष्टि से कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

५५. अत्थि णं भंते! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः—तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

५५. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
हां, हैं।

५६. से केणट्ठेणं जाव तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?
गोयमा! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगाणं देवाणं सासए नामधेज्जे पण्णत्ते—जं न कयाइ नासी जाव अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति। एवं भूयाणंदस्स वि, एवं

तत् केनार्थेन यावत् तावत्त्रिंशकाः देवाः—तावत्त्रिंशकाः देवाः?
गौतम! धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य तावत्त्रिंशकानां देवानां शाश्वतः नामधेयः प्रज्ञप्तः—यत् न कदापि नासीत् यावत् अन्ये च्यवन्ते, अन्ये उपपद्यन्ते। एवं भूतानन्दस्यापि एवं यावत्

५६. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
गौतम! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देवों का शाश्वत नामधेय प्रज्ञप्त है—वह कभी नहीं था यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

१. भ. वृ. १०/४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव महाघोसस्स॥

महाघोषस्य।

इसी प्रकार भूतानन्द की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् महाघोष की वक्तव्यता।

५७. अत्थि णं भंते! सक्कस्स देविंद-स्स देवरण्णो तावत्तीसगा देवा-तावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः—तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

५७. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
हां, हैं।

५८. से केणट्ठेणं जाव तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?
एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पालए नामं सण्णिवेसे होत्था—वण्णओ। तत्थ णं पालए सण्णिवेसे तायत्तीसं सहाया गाहावई समणो-वासया जहा चमरस्स जाव विहरंति॥

तत् केनार्थेन यावत् तावत्त्रिंशकाः देवाः—तावत्त्रिंशकाः देवाः? एवं खलु गौतम! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे पालकः नाम सन्निवेशः आसीत्—वर्णकः। तत्र पालके सन्निवेशे तावत्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः यथा चमरस्य यावत् विहरन्ति।

५८. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
गौतम! उस काल और उस समय जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में पालक नाम का सन्निवेश था—वर्णक। उस पालक सन्निवेश में तैंतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे। चमर की भांति वक्तव्यता यावत् अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

५९. तए णं ते तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासया पुव्विं पि पच्छा वि उग्गा उग्गविहारी, संविग्गा संविग्गविहारी बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणिता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा सक्कस्स देविंदस्स देवरणो तावत्तीसगदेवत्ताए उववन्ना। जप्पभिइं च णं भंते! ते पालगा तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगा, सेसं जहा चमरस्स जाव अण्णे उववज्जंति॥

तत्र ते तावत्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः पूर्वम् अपि पश्चादपि उग्राः उग्रविहारिणः, संविग्नाः संविग्न-विहारिणः बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासक-पर्यायं प्राप्य, मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, षष्टि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा, आलोचित-प्रतिक्रान्ताः समाधिं प्राप्ताः कालमासे कालं कृत्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तावत्-त्रिंशकदेवत्वेन उपपन्नाः। यत्प्रभृति भदन्त! ते पालकाः तावत्त्रिंशत् सहायाः 'गाहावई' श्रमणोपासकाः, शेषं यथा चमरस्य यावत् अन्ये उपपद्यन्ते।

५९. वे त्रायस्त्रिंशक परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक पहले और पश्चात् उग्र, उग्रविहारी, संविग्न, संविग्नविहारी थे। वे बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर मासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठभक्त (भोजन के समय) का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त कर, कालमास में काल (मृत्यु) प्राप्त कर देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए। भंते! जिस समय से वे पालक त्रायस्त्रिंशक परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए, शेष चमर की भांति वक्तव्य है यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६०. अत्थि णं भंते! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो तावत्तीसगा देवातावत्तीसगा देवा?
एवं जहा सक्कस्स, नवरं चंपाए नयरीए जाव उववण्णा जप्पभिइं च णं भंते! ते चंपिज्जा तायत्तीसं सहाया, सेसं तं चेव

अस्ति भदन्त! ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः-तावत्-त्रिंशकाः देवाः?
एवं यथा शक्रस्य, नवरं—चम्पायां नगर्यां यावत् उपपन्नाः यत्प्रभृति च भदन्त! ते 'चंपिज्जा' तावत्त्रिंशत् सहायाः शेषं

६०. भंते! देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?
शक्र की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—चंपानगरी में यावत् देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव अण्णे उववज्जंति॥

तच्चैव यावत् अन्ये उपपद्यन्ते।

हुए। भंते! जिस समय से वे चंपानगरी में त्रायस्त्रिंशक परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति रहते थे, शेष पूर्ववत् यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६१. अत्थि णं भंते! सणंकुमारस्स देविंदस्स देवरण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! सनत्कुमारस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तावत्त्रिंशकाः देवाः, तावत्त्रिंशकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

६१. भंते! देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

हां, हैं।

६२. से केणट्ठेणं?

जहा धरणस्स तहेव, एवं जाव पाणयस्स, एवं अच्चुयस्स जाव अण्णे उववज्जंति॥

तत् केनार्थेन?

यथा धरणस्य तथैव, एवं यावत् प्राणतस्य, एवम् अच्युतस्य यावत् अन्ये उपपद्यन्ते।

६२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?

धरण की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् प्राणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अच्युत की वक्तव्यता यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

६३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी छाया
देवाणं तुडिएण सद्धिं दिव्वभोग-पदं	देवानां 'तुडिएण' सार्द्धं दिव्य-भोग-पदम्	देवों का अंतःपुर के साथ दिव्य-भोग-पद
६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं राय-गिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए जाव परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंते-वासी थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना जहा अट्ठमे सए सत्तमुद्देसए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। तए णं ते थेरा भगवंतो जायसड्ढा जायसंसया जहा गोयम-सामी जाव पज्जुवासमाणा एवं वयासी–	तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहः नाम नगरम्। गुणशिलकं चैत्यम् यावत् परिषद् प्रतिगता। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य बहवः अन्तेवासिनः स्थविराः भगवन्तः जाति-सम्पन्नाः यथा अष्टमे शते सप्तमोद्देशके यावत् संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्तः विहरन्ति। ततः ते स्थविराः भगवन्तः जात-श्रद्धाः जातसंशयाः यथा गौतमस्वामी यावत् पर्युपासीनाः एवमवादिषुः–	६४. उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था। गुणशीलक चैत्य यावत् भगवान् ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई। उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के बहुत अंतेवासी स्थविर भगवान् जाति-संपन्न जैसे आठवें शतक के सातवें उद्देशक (सूत्र २७२) की वक्तव्यता यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे। उन स्थविर भगवान् के मन में एक श्रद्धा (इच्छा) एक संशय (जिज्ञासा) जैसे गौतम स्वामी की वक्तव्यता यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–
६५. चमरस्स णं भंते असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गम-हिसीओ पण्णत्ताओ? अज्जो! पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–काली, राती, रयणी, विज्जू, मेहा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सं परिवारो पण्णत्तो॥	चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्य असुर-कुमारराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः? आर्य! पञ्च अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–काली, रात्री, रजनी, विद्युत, मेघा। तत्र एकैकस्याः देवाः अष्टाष्टदेवीसहस्रं परिवारः प्रज्ञप्तः।	६५. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं? आर्य! पांच अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे– काली, राजी, रजनी, विद्युत, मेघा। उनमें से प्रत्येक देवी के आठ आठ हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त हैं।
६६. पभू णं भंते! ताओ एगमेगा देवी अण्णाइं अट्ठट्ठ देवसहस्साइं परि-यारं विउव्वित्तए? एवामेव सपुव्वावरेणं चत्तालीसं देवीसहस्सा। सेत्तं तुडिए॥	प्रभुः भदन्त! ताः एकैका देवी अन्यानि अष्टाष्ट देवीसहस्राणि परिवारं विकर्तुम्? एवमेव सपूर्वापरेण चत्वारिंशत् देवीसहस्राणि तदेतत् 'तुडिए'।	६६. भंते! क्या एक एक देवी अन्य आठ आठ हजार देवी परिवार की विक्रिया (रूप निर्माण) करने में समर्थ है? हां, है। इसी प्रकार पूर्व अपर सहित चालीस हजार देवी परिवार विक्रिया करने में समर्थ है। यह है तुडिय (अंतःपुर) की वक्तव्यता।
६७. पभू णं भंते! चमरे असुरिंदे असुर-कुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए,	प्रभुः भदन्त! चमरः असुरेन्द्रः असुर-कुमारराजः चमरचञ्चायां राजधान्यां,	६७. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?
नो इणट्ठे समट्ठे॥

सभायां सुधर्मायां, चमरे सिंहासने 'तुडिएण' सार्द्धं दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहर्तुम्?
नो अयमर्थः समर्थः।

चमर सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोग भोगता हुआ विहरण करने में समर्थ है?
यह अर्थ संगत नहीं है।

६८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नो पभू चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नो प्रभुः चमरः असुरेन्द्रः असुरकुमारराजः चमरचञ्चायां राजधान्यां यावत् विहर्तुम्?

६८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर चमरचंचा राजधानी में यावत् दिव्य भोग भोगता हुआ विहरण करने में समर्थ नहीं है?

अज्जो! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्ट-समुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमार-रण्णो अण्णेसिं च बहूणं असुर-कुमाराणं देवाण य देवीण य अच्च-णिज्जाओ वंदणिज्जाओ नमंसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जु-वासणिज्जाओ भवंति। से तेणट्ठेणं अज्जो! एवं वुच्चइ–नो पभू चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सिहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए॥

आर्य! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चमरचञ्चायां राजधान्यां, सभायां सुधर्मायां, माणवके चैत्यस्तम्भे वज्रमयेषु गोल-वृत्त-समुद्गतेषु बहवः जिनसक्थिनः सन्निक्षिप्ताः तिष्ठन्ति, याः चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य अन्येषां च बहूनाम् असुरकुमाराणां देवानां च देवीनां च अर्चनीयाः वन्दनीयाः नमनीयाः पूजनीयाः सत्करणीयाः सम्माननीयाः कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपासनीयाः भवन्ति। तत् तेनार्थेन आर्य! एवमुच्यते–नो प्रभुः चमरः असुरेन्द्रः असुरकुमारराजा चमरचञ्चायां राजधान्यां, सभायां सुधर्मायां, चमरे सिंहासने 'तुडिएण' सार्धं दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहर्तुम्।

आर्यो! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में माणवक चैत्य स्तंभ में वज्रमय गोलवृत्त–वर्तुलाकार पेटियों में जिनेश्वर देव की अनेक अस्थियां रखी हुई हैं, जो असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर तथा अन्य बहुत असुरकुमार देव-देवियों के लिए अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याणकारी, मंगल, दैवत, चैत्य और पर्युपासनीय होती है। आर्यो! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में, चमर सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र ६७-६८

जयाचार्य ने 'जिणसकहाओ' की लंबी समीक्षा की है–

जिण नी दाढा होय, तो छै एह अशाश्वती।
असंख्य काल अवलोय, तेहनी स्थिति कही नथी॥
जिन दाढा आकार, पुद्गल स्थित्या तेहनें।
कहि जिन-दाढा सार, तो नसु कहिये शाश्वती॥

इस विषय में पूरा प्रकरण द्रष्टव्य है।[1]. जिण सकहाओ का उल्लेख समवाओं में भी मिलता है।[2]

६९. पभू णं अज्जो! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तावत्तीसगेहिं, चउहिं लोगपालेहिं, पंचहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं चउसट्ठीए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहि य बहूहिं असुर-

प्रभुःआर्य! चमरः असुरेन्द्रः असुरकुमाराजः चमरचञ्चायां राजधान्यां, सभायां सुधर्मायां, चमरे सिंहासने चतुष्षष्ट्याः सामानिकसाहस्रीभिः, त्रयस्त्रिंशत् तावत्त्रिंशकैः, चतुर्भिः लोकपालैः, पञ्चभिः अग्रमहिषीभिः सपरिवारैः चतुष्षष्ट्या आत्मरक्षदेवसाहस्रीभिः, अन्यैः च बहुभिः असुरकुमारैः देवैः च, देवीभिः च

६९. आर्यो! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सभा सुधर्मा में चमर सिंहासन पर चौसठ हजार सामानिक, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, पांच अग्रमहिषियां, सपरिवार चौसठ हजार आत्मरक्षक देव, अन्य बहुत असुरकुमार देव और देवियों के साथ संपरिवृत है। वह आहत नाट्यों, गीतों

१. भ. जो. ३/२२२ पृ. ३३७-३३९।
२. सम. ३५/५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारेहिं देवेहि य, देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्प-वाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?

केवलं परियारिड्ढीए, नो चेव णं मेहुणवत्तियं॥

सार्धं सम्परिवृतः, महत्-आहतनाट्य-गीत-वादित-तन्त्री-तल-ताल-'तुडिय'-घनमृदङ्ग-पटुप्रवादितरवेण भोगभोगानि भुञ्जानः विहर्तुम्?

केवलं परिचारर्द्धया, नो चेव मैथुनप्रत्ययम्।

तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित्र, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित घन और मृदंग की महान ध्वनि से युक्त दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ रहता है?

केवल परिचारणा (शब्द श्रवण, रूप दर्शन) ऋद्धि का उपभोग करते हैं, मैथुन रूप भोग का नहीं।

७०. चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महा-रण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

अज्जो! चतारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कणगा, कणग-लता, चित्तगुत्ता, वसुंधरा। तत्थ णं गएमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे पण्णत्ते॥

चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता, वसुन्धरा। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः प्रज्ञप्तः।

७०. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता, वसुंधरा। उनमें से प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी परिवार प्रज्ञप्त है। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

७१. पभू णं ताओ एगामेगा देवी अण्णं एगमेगं देवीसहस्सं परियारं विउव्वित्तए? एवामेव सपुव्वावरेणं चत्तारि देवी-सहस्सा। सेतं तुडिए॥

प्रभुः ताः एकैका देवी अन्यम् एकैकं देवी-सहस्रं परिवारं विकर्तुम्?

एवमेव सपूर्वापरेण चत्वारि देवीसहस्राणि। तदेतत् 'तुडिए'।

७१. क्या एक देवी अन्य एक हजार देवी परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व अपर सहित चार हजार देवी परिवार विक्रिया करने में समर्थ है।

७२. पभू णं भंते! चमरस्स असुरिं-दस्स असुरकुमाररण्णो सोमे महाराया सोमाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, सोमंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरितए? अवसेसं जहा चमरस्स नवरं—परियारो जहा सूरियाभस्स। सेसं तं चेव जाव नो चे णं मेहुणवत्तियं॥

प्रभुः भदन्त! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमः महाराजः सोमायां राजधान्यां, सभायां सुधर्मायां, सोमे सिंहासने 'तुडिएणं' सद्धिं दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहर्तुम्? अवशेषं यथा चमरस्य, नवरं—परिवारः यथा सूर्याभस्य। शेषं तच्चैव यावत् नो चैव मैथुनप्रत्ययम्।

७२. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज सोम सोम राजधानी की सुधर्मा सभा में सोम सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ है?

अवशेष चमर की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है—परिवार सूर्याभदेव की भांति (रायपसेणइय ७) वक्तव्य है। शेष पूर्ववत यावत् मैथुन रूप भोग का नहीं।

७३. चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुरकुमार रण्णो जमस्स महा-रण्णो कति अग्गमहिसीओ?

एवं चेव, नवरं—जमाए रायहाणीए, सेसं जहा सोमस्स। एवं वरुणस्स वि, नवरं—वरुणाए रायहाणीए। एवं वेसमणस्स वि, नवरं—वेसमणाए रायहाणीए। सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं॥

चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्य असुरकुमार-राजस्य यमस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः?

एवं चैव, नवरं—यमायां राजधान्यां, शेषं यथा सोमस्य। एवं वरुणस्यापि, नवरं वरुणायां राजधान्याम्। एवं वैश्रमणस्यापि, नवरं—वैश्रमणायां राजधान्याम्। शेषं तच्चैव यावत् नो चैव मैथुनप्रत्ययम्।

७३. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज यम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

पूर्ववत, इतना विशेष है—यम राजधानी में शेष सोम की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार वरुण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वरुण राजधानी में। इसी प्रकार वैश्रमण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वैश्रमण राजधानी में। शेष पूर्ववत यावत मैथुन रूप भोग का नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. बलिस्स णं भंते! वइरोयणिंदस्स–पुच्छा।

अज्जो! पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–सुंभा, निसुंभा, रंभा, निरंभा, मदणा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सं परिवारो, सेसं जहा चमरस्स, नवरं–बलिचंचाए रायहाणीए, परि-यारो जहा मोउद्देसए। सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं॥

बलिनः भदन्त! वैरोचनेन्द्रस्य–पृच्छा।

आर्य! पञ्च अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा– शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा, मदना। तत्र एकैकस्याः देव्याः अष्टाष्ट देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा चमरस्य, नवरं– बलिचञ्चायां राजधान्याम्, परिवारः यथा मोयोकद्देसके शेषं तच्चैव यावत् नो चैव मैथुनप्रत्ययम्।

७४. भंते! वैरोचनेन्द्र बलि की पृच्छा।

आर्यो! पांच अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे– शुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा, मदना। उनमें से प्रत्येक देवी के आठ आठ हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है। शेष चमर की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है– बलिचंचा राजधानी में, परिवार की मोक उद्देशक (भगवई ३/४) की भांति वक्तव्यता। शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन रूप भोग का नहीं।

७५. बलिस्स णं भंते! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–मीणगा, सुभद्दा, विज्जुया, असणी। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारो, सेसं जहा चमरसोमस्स एवं जाव वरुणस्स॥

बलिनः भदन्त! वैराचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–मीनका, सुभद्रा, विद्युत्, अशनि। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा चमरसोमस्य एवं यावत् वरुणस्य।

७५. भंते! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यो! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे– मीनका, सुभद्रा, विद्युत्, असनी। उनमें से प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है। शेष सोम चमर की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वरुण की वक्तव्यता।

७६. धरणस्स णं भंते! नाग-कुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

अज्जो! अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–अला, सक्का, सतेरा, सोदामिणी, इंदा, घणविज्जुया। तत्थ णं एगमेगाए देवीए छ-छ देवीसहस्सं परिवारो पण्णत्तो॥

धरणस्य भदन्त! नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?

आर्य! षट् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा– अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युत्। तत्र एकैकस्याः देव्याः षट्-षट् देवीसहस्रं परिवारः प्रज्ञप्तः।

७६. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यो! छह अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–अला, शक्रा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घन-विद्युत्। उनमें प्रत्येक देवी के छह-छह हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है।

७७. पभू णं ताओ एगमेगा देवी अण्णाइं छ-छ देविसहस्साइं परियारं विउव्वित्तए? एवामेव सपुव्वावरेणं छत्तीसाइं देवि-सहस्साइं। सेत्तं तुडिए॥

प्रभुः ताः एकैका देवी अन्यानि षट्-षट् देवीसहस्राणि परिवारं विकर्तुम्? एवमेव सपूर्वापरेण षट्त्रिंशत् देवीसहस्राणि। तदेतत 'तुडिए'।

७७. क्या एक देवी अन्य छह-छह हजार देवी परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकर पूर्व अपर सहित छत्तीस हजार देवी परिवार विक्रिया करने में समर्थ है। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

७८. पभू णं भंते! धरणे? सेसं तं चेव, नवरं–धरणाए रायहाणीए, धरणंसि सीहासणंसि, सओ परियारो। सेसं तं चेव॥

प्रभुः भदन्त! धरणः? शेषं तच्चैव, नवरं– धरणायां राजधान्यां धरणे सिंहासने, स्वकः परिवारः। शेषं तच्चैव।

७८. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण धरण सिंहासन पर दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ हैं?

शेष पूर्ववत्, इतना विशेष है–धरण राजधानी में, धरण सिंहासन पर, स्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवार के साथ। शेष रायपसेणइय (सूत्र ७) की भांति वक्तव्य है।

७९. धरणस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–असोगा, विमला, सुप्पभा, सुदंसणा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारो, अवसेसं जहा चमरलोगपालाणं। एवं सेसाणं तिण्ह वि॥

धरणस्य भदन्त! नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालपालस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?
आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, अवशेषं यथा चमरलोकपालानाम्। एवं शेषाणां तिसृणामपि।

७९. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल महाराज कालवास के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?
आर्यो! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार धरण के शेष तीन लोकपालों की वक्तव्यता।

८०. भूयाणंदस्स भंते!–पुच्छा
अज्जो! छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रूया रूयंसा, सुरूया, रूयगावती, रूयकंता, रूयप्पभा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए छ-छ देवीसहस्सं परिवारे, अवसेसं जहा धरणस्स॥

भूतानन्दस्य भदन्त! पृच्छा–।
आर्य! षट् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकान्ता, रूपप्रभा। तत्र एकैकस्याः देव्याः षट्-षट् देवीसहस्रं परिवारः, अवशेषं यथा धरणस्य।

८०. भंते! भूतानंद की पृच्छा।
आर्यो! छह अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकांता, रूपप्रभा। उनमें प्रत्येक देवी के छह-छह हजार देवी का परिवार है। अवशेष धरण की भांति वक्तव्य है।

८१. भूयाणंदस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो नागचित्तस्स–पुच्छा
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–सुणंदा,सुभद्द, सुजाया, सुमणा। तत्थ णं एगमे-गाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, अवसेसं जहा चमरलोग-पालाणं। एवं सेसाणं तिण्ह वि लोगपालाणं।
जे दाहिणिल्ला इंदा तेसिं जहा धरणिंदस्स, लोगपालाण वि तेसिं जहा धरणस्स लोगपालाणं। उत्तरिल्लाणं इंदाणं जहा भूयाणंदस्स, लोगपालाण वि तेसिं जहा भूयाणंदस्स लोगपालाणं, नवरं–इंदाणं सव्वेसिं रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसणामगाणि, परियारो जहा मोउद्देसए। लोग-पालाणं सव्वेसिं रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसणामगाणि, परियारो जहा चमरस्स लोगपालाणं॥

भूतानन्दस्य भदन्त! नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य नागचित्रस्य पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा– सुनंदा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, अवशेषं यथा चमरलोकपालानाम्। एवं शेषाणां त्रयाणामपि लोकपालानाम्।
ये दाक्षिणात्याः इन्द्राः तेषां यथा धरणेन्द्रस्य, लोकपालानामपि तेषां यथा धरणस्य लोकपालानाम्। औत्तराहानाम् इन्द्राणां यथा भूतानन्दस्य, लोकपालानामपि तेषां यथा भूतानन्दस्य लोकपालानाम्, नवरम्–इन्द्राणां सर्वेषां राजधान्यः सिंहासनानि च सदृशनामकानि, परिवारः यथा मोयोद्देशके। लोकपालानां सर्वेषां राजधान्यः सिंहासनानि च सदृशनामकानि, परिवारः यथा चमरलोकपालानाम्।

८१. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानंद के लोकपाल नागचित्त की पृच्छा।
आर्यो! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–सुनंदा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार भूतानंद के शेष तीन लोकपालों की वक्तव्यता।
जो दक्षिण दिशा के इन्द्र हैं, उनकी धरणेन्द्र की भांति वक्तव्यता। उनके लोकपालों की भी धरणेन्द्र के लोकपालों की भांति वक्तव्यता। इतना विशेष है–सब इन्द्रों की राजधानी और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं। परिवार मोक उद्देशक (भगवई ३/४) की भांति वक्तव्य है। सब लोकपालों की राजधानी और सिंहासन भी सदृश नाम वाले हैं, उनका परिवार चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है।

८२. कालस्स णं भंते! पिसायिंदस्स पिसायरण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

कालस्य भदन्त! पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?

८२. भंते! पिशाचराज पिशाचेन्द्र काल के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदंसणा। तत्थ णं एगमेगाए, देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारो, सेसं जहा चमरलोग-पालाणं। परिवारो तहेव नवरं–कालाए रायहाणीए, कालंसि सीहासणंसि, सेसं तं चेव। एवं महाकालस्स वि॥

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–कमला, कमलप्रभा, उत्पला, सुदर्शना। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा चमर-लोकपालानाम्। परिवारः तथैव, नवरं–कालायां राजधान्यां, काले सिंहासने, शेषं तच्चैव। एवं महाकालस्यापि।

आर्यो! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कमला, कमलप्रभा, उत्पला, सुदर्शना। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार परिवार की वक्तव्यता, इतना विशेष है–काल राजधानी में काल सिंहासन पर, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महाकाल की वक्तव्यता।

८३. सुरूवस्स णं भंते! भूतिंदस्स भूतरण्णो–पुच्छा।
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रूववई, बहुरूवा, सुरूवा, सुभगा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा कालस्स। एवं पडिरूवस्स वि॥

सुरूपस्य भदन्त! भूतेन्द्रस्य भूतराजस्य–पृच्छा।
आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा, सुभगा। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा कालस्य। एवं प्रतिरूपस्यापि।

८३. भंते! भूतराज भूतेन्द्र सुरूप की पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा, सुभगा। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार प्रतिरूप की वक्तव्यता।

८४. पुण्णभद्दस्स णं भंते! जक्खिंदस्स–पुच्छा।
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पुण्णा, बहुपुत्तिया, उत्तमा, तारया। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा कालस्स। एवं माणिभद्दस्स वि॥

पुण्यभद्रस्य भदन्त! यक्षेन्द्रस्य–पृच्छा।
आर्य! चतस्र अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा– पुण्या, बहुपुत्रिका, उत्तमा, तारका। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा कालस्य। एवं माणिभद्रस्यापि।

८४. भंते! यक्षेन्द्र पुण्यभद्र की पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पुण्या, बहुपुत्रिका, उत्तमा, तारका। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार मणिभद्र की वक्तव्यता।

८५. भीमस्स णं भंते! रक्खसिंदस्स–पुच्छा।
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पउमा, वसुमती, कणगा, रयणप्पभा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवी-सहस्सं परिवारे, सेसं जहा कालस्स। एवं महाभीमस्स वि॥

भीमस्य भदन्त! राक्षसेन्द्रस्य–पृच्छा।
आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा कालस्य। एवं महाभीमस्यापि।

८५. भंते! राक्षसेन्द्र भीम की पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार महाभीम की वक्तव्यता।

८६. किन्नरस्स णं–पुच्छा।
अज्जो! चतारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–वडेंसा, केतुमती, रतिसेणा, रइप्पिया। तत्थ णं ऐगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं तं चेव। एवं किंपुरिसस्स वि॥

किन्नरस्य–पृच्छा।
आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–अवतंसा, केतुमती, रतिसेना, रतिप्रिया। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं तच्चैव। एवं किंपुरुषस्यापि।

८६. किन्नर की पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–अवतंसा, केतुमती, रतिसेना, रतिप्रिया। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार किंपुरुष की वक्तव्यता।

८७. सप्पुरिसस्स णं–पुच्छा।

सत्पुरुषस्य–पृच्छा।

८७. सत्पुरुष की पृच्छा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रोहिणी, नवमिया, हिरी, पुप्फवती। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं तं चेव। एवं महापुरिसस्स वि॥

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–रोहिणी, नवमिका, ह्री, पुष्पवती। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं तच्चैव। एवं महापुरुषस्यापि।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रोहिणी, नवमिका, ह्री, पुष्पवती। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महापुरुष की वक्तव्यता।

८८. अतिकायस्स णं–पुच्छा।

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–भुयगा, भुयगवती, महाकच्छा, फुडा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं तं चेव। एवं महाकायस्स वि॥

अतिकायस्य–पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–भुजगा, भुजगवती, महाकच्छा, स्फुटा। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः शेषं तच्चैव। एवं महाकायस्यापि।

८८. अतिकाय की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–भुजगा, भुजगवती, महाकक्षा, स्फुटा। उनमें प्रत्येक देवी के एक एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महाकाय की वक्तव्यता।

८९. गीयरइस्स णं–पुच्छा

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सई। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं तं चेव। एवं गीयजसस्स वि। सव्वेसिं एएसिं जहा कालस्स, नवरं–सरिसनामियाओ रायहाणीओ सीहासणाणि य, सेसं तं चेव॥

गीतरतेः–पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सुघोषा, विमला, सुस्वरा, सरस्वती। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं तच्चैव। एवं गीतयशसः अपि। सर्वेषाम् एतेषां यथा कालस्य, नवरं–सदृशनामिकाः राजधान्यः सिंहासनानि च, शेषं तच्चैव।

८९. गीतरति की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–सुघोषा, विमला, सुस्वरा, सरस्वती। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार गीतयश की वक्तव्यता। इन सबकी काल की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–राजधानी और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं, शेष पूर्ववत्।

९०. चंदस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो–पुच्छा।

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा। एवं जहा जीवाभिगमे जोइसिय-उद्देसए तहेव सूरस्स वि सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली पभंकरा। सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

चन्द्रस्य भदन्त! ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्योतीराजस्य–पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली, प्रभंकरा। एवं यथा जीवाभिगमे ज्योतिष्कोद्देशके, तथैव सूरस्यापि सूरप्रभा, आतपा, अर्चिमालिनी, प्रभंकरा। शेषं तच्चैव यावत् नो चेव मैथुनप्रत्ययम्।

९०. भंते! ज्योतिषराज ज्योतिषेन्द्र चन्द्र की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली प्रभंकरा। इस प्रकार जैसे जीवाभिगम (३/९९८-१०३६) में ज्योतिष्क उद्देशक की वक्तव्यता। इसी प्रकार सूर्य की चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं–सूर्यप्रभा, आतपा, अर्चिमाली, प्रभंकरा। शेष पूर्ववत् यावत् परिवार की ऋद्धि का उपभोग करते हैं, मैथुन रूप भोग का नहीं।

९१. इंगालस्स णं भंते! महग्गहस्स कति अग्गमहिसीओ–पुच्छा।

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा चंदस्स, नवरं–इंगालवडेंसए विमाणे, इंगालगंसि सीहासणंसि, सेसं तं चेव। एवं वियालगस्स वि। एवं अट्ठासीतिए वि

अङ्गारस्य भदन्त! कति अग्रमहिष्यः–पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा चन्द्रस्य, नवरम्–अङ्गारावतंसके विमाने, अङ्गारके सिंहासने, शेषं तच्चैव। एवं विकालकस्यापि। एवम् अष्टाशीतिः अपि

९१. भंते! महाग्रह इंगाल के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं–पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चन्द्र की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है– अंगारावतंसक विमान, अंगारक सिंहासन पर, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार विकालक की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महग्गहाणं भाणि-यव्वं जाव भावकेउस्स, नवरं–वडेंसगा सीहासणाणि य सरिस-नामगाणि, सेसं तं चेव॥

महाग्रहाणां भणितव्यं यावत् भाव-केतोः, नवरम्–अवतंसकाः सिंहासनानि च सदृशनामकानि, शेषं तच्चैव।

वक्तव्यता। इसी प्रकार अठासी महाग्रहों की वक्तव्यता यावत् भावकेतु की वक्तव्यता, इतना विशेष है–अवतंसक और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं, शेष पूर्ववत्।

९२. सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो–पुच्छा।
अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पउमा, सिवा, सची, अंजू, अमला, अच्छरा, नवमिया, रोहिणी। तत्थ णं एगमेगाए देवीए सोलस-सोलस देवीसहस्सा परिवारो पण्णत्तो॥

शक्रस्य भदन्त! देवेन्द्रस्य देवराजस्य–पृच्छा।
आर्य! अष्ट अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी। तत्र एकैकस्याः देव्याः षोडश-षोडश देवीसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः।

९२. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र की पृच्छा।
आर्य! आठ अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी। उनमें प्रत्येक देवी के सोलह-सोलह हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है।

९३. पभू णं ताओ एगमेगा देवी अण्णाइं सोलस-सोलस देवीसह-स्साइं परिवारं विउव्वित्तए?
एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठावीसुत्तरं देवीसयसहस्सं। सेत्तं तुडिए॥

प्रभुः ताः एकैका देवी अन्यानि षोडश-षोडश देवीसहस्राणि परिवारं विकर्तुम्?

एवमेव सपूर्वापरेण अष्टाविंशत्युत्तरं देवशतसहस्रम्। तदेतत् 'तुडिए'।

९३. क्या एक देवी अन्य सोलह हजार देवी परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व अपर सहित एक लाख अट्ठाइस हजार देवियों की वक्तव्यता। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

९४. पभू णं भंते! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे, सोहम्मवडेंसए विमाणे, सभाए सुहम्माए, सक्कंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?
सेसं जहा चमरस्स, नवरं–परियारो जहा मोउद्देसए॥

९४. प्रभुः भदन्त! शक्रः देवेन्द्रः देवराजा सौधर्मे कल्पे, सौधर्मावतंसके विमाने, सभायां सुधर्मायां, शक्रे सिंहासने 'तुडिएणं' सार्धं दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहर्तुम्।
शेषं यथा चमरस्य, नवरं–परिवारः यथा मोघोद्देशके।

९४. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र सौधर्म-कल्प में, सौधर्मावतंसक विमान में, सभा सुधर्मा में शक्र सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ है?
चमर की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–परिवार की मोक उद्देशक की भांति वक्तव्यता।

९५. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ– पुच्छा।
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रोहिणी, मदणा, चित्ता, सोमा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा चमर-लोगपालाणं, नवरं–सयंपभे विमाणे, सभाए सुहम्माए, सोमंसि सीहासणंसि, सेसं तं चेव। एवं जाव वेसमणस्स, नवरं–विमाणाइं जहा ततियसए॥

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः–पृच्छा।

आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–रोहिणी, मदना, चित्रा, सोमा। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा चमरलोकपालानाम्, नवरं– स्वयंप्रभे विमाने, सभायां सुधर्मायां, सोमे सिंहासने, शेषं तच्चैव। एवं यावत् वैश्रमणस्य, नवरं–विमानानि यथा तृतीयशते।

९५. देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं–पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रोहिणी, मदना, चित्रा, सोमा। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमरलोकपाल की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–स्वयंप्रभ विमान, सभा सुधर्मा, सोम सिंहासन। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् वैश्रमण की वक्तव्यता, इतना विशेष है–विमान तृतीय शतक (३/२५०-५१) की भांति वक्तव्य है।

९६. ईसाणस्स णं भंते!–पुच्छा।

ईशानस्य भदन्त!–पृच्छा।

९६. भंते! ईशान की पृच्छा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिया, वसू, वसुगुत्ता, वसुमित्ता, वसुंधरा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए सोलस-सोलस देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा सक्कस्स॥

आर्य! अष्ट अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कृष्णा, कृष्णारात्री, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुधरा। तत्र एकैकस्याः देव्याः षोडश-षोडश देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा शक्रस्य।

आर्यो! आठ अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कृष्णा, कृष्णरात्रि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुंधरा। उनमें प्रत्येक देवी के सोलह सोलह हजार देवी का परिवार है, शेष शक्र की भांति वक्तव्यता।

९७. ईसाणस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ–पुच्छा।
अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पुहवी, राई, रयणी, विज्जू। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारे, सेसं जहा सक्कस्स लोगपालाणं, एवं जाव वरुणस्स, नवरं–विमाणा जहा चउत्थसए, सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं॥

ईशानस्य भदन्त! देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य कति अग्रमहिष्यः–पृच्छा।
आर्य! चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पृथिवी, रात्री, रत्नी, विद्युत्। तत्र एकैकस्याः देव्याः एकैकं देवीसहस्रं परिवारः, शेषं यथा शक्रस्य लोकपालानाम् एवं यावत् वरुणस्य, नवरं–विमानानि यथा चतुर्थशते, शेषं तच्चैव यावत् नो चैव मैथुनप्रत्ययम्।

९७. भंते! देवराज देवेन्द्र ईशान के लोकपाल महाराजा सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं–पृच्छा।
आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे–पृथ्वी, रात्रि, रत्नी, विद्युत्। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष शक्र के लोकपाल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वरुण की वक्तव्यता, इतना विशेष है–विमान चतुर्थ शतक की भांति वक्तव्य है, शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन रूप भोग का नहीं।

९८. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

९८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सुहम्मा सभा-पदं	**सुधर्मा सभा-पदम्**	**सुधर्मा सभा-पद**
९९. कहि णं भंते! सक्कसस देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरम-णिज्जातो भूमिभागातो उड्ढं एवं जहा रायप्पसेणइज्जे जाव पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा–असोगवडेंसए, सत्तवण्णवडेंसए, चंपगवडेंसए, चूयवडेंसए, मज्झे सोहम्मवडेंसए। से णं सोहम्मवडेंसए महाविमाणे अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं,	कुत्र भदन्त! शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सभा सुधर्मा प्रज्ञप्ता? गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे अस्याः रत्नप्रभायाः पृथ्व्याः बहुसम-रमणीयात् भूमिभागात् ऊर्ध्वम् एवं यथा राजप्रश्नीये यावत् पञ्च अवतंसकाः प्रज्ञप्ताः तद् यथा–अशोकावतंसकः, सप्तपर्णावतंसकः, चम्पकावतंसकः, चूतावतंसकः मध्ये सौधर्मावतंसकः, महाविमानम् अर्द्धत्रयोदश-योजन-शतसहस्राणि आयामविष्कम्भेन,	सुधर्मा सभा-पद ९९. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र की सुधर्मा सभा कहां प्रज्ञप्त है? गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत सम और रमणीय भूभाग से ऊर्ध्व में स्थित है, इस प्रकार रायपसेणइय की भांति वक्तव्यता यावत् पांच अवतंसक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–अशोकावतंसक, सप्त-पर्णावतंसक, चंपकावतंसक, चूतावतंसक, मध्य में सौधर्मावतंसक है। वह सौधर्मावतंसक महाविमान साढ़े बारह लाख योजन लंबा चौड़ा है, इस प्रकार जैसे सूर्याभ की वक्तव्यता वैसे ही उसके मान और उपपात की वक्तव्यता। शक्र का अभिषेक सूर्याभ (रायपसेणइय सूत्र १२५) की भांति वक्तव्य है। अलंकार अर्चनिका यावत् आत्मरक्षक सूर्याभ की भांति वक्तव्य हैं। शक्र की स्थिति दो सागरोपम प्रमाण है।
एव जह सूरियाभे, तहेव माणं तहेव उववाओ। सक्कस्स य अभिसेओ, तहेव जह सूरियाभस्स। अलंकारअच्चणिया, तहेव जाव आयरक्ख त्ति॥१॥ दो सागरोवमाइं ठिती॥	एवं यथा सूर्याभे, तथैव मानं तथैव उपपातः। शक्रस्य चाभिषेकः, तथैव यथा सूर्याभस्य॥ अलङ्कार - अर्चनिका, तथैव यावत् आत्मरक्ष इति॥१॥ द्वे सागरोपमे स्थितीः।	
सक्कं-पदं	**शक्र-पदम्**	**शक्र-पद**
१००. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया केमहिड्ढिए जाव केमहासोक्खे। गोयमा! महिड्ढिए जाव महा-सोक्खे। से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। एमहिड्ढिए जाव एमहा-सोक्खे सक्के देविंदे देवराया॥	शक्रः भदन्त! देवेन्द्रः देवराजा कियन्महर्धिकः यावत् कियन्महासौख्यः। गौतम! महर्धिकः यावत् महासौख्यः। सः तत्र द्वात्रिंशत् विमानावासशतसहस्राणाम् यावत् दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहरति। इयन् महर्द्धिकः यावत् इयन्महासौख्यः शक्रः देवेन्द्रः देवराजः।	१००. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र कितनी महान् ऋद्धि वाला यावत् कितने महान सुख वाला है? गौतम! वह महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् सुख वाला है। वह बत्तीस लाख विमानावास यावत् दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहरण करता है। वह देवराज देवेन्द्र शक्र इतनी महान् ऋद्धि वाला यावत् इतने महान् सुख वाला है।
१०१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	१०१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७-३४ उद्देसो : ७-३४ उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अंतरदीव-पदं	अन्तरद्वीप-पदम्	अन्तरद्वीप-पद
१०२. कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगूरुयमणुस्साणं एगूरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते? एवं जहा जीवाभिगमे तहेव निरव-सेसं जाव सुद्धदंतदीवो त्ति। एए अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा॥	कुत्र भदन्त! औत्तराहानाम् एकोरुकमनुष्याणाम् एकोरुकद्वीपः नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः? एवं यथा जीवाभिगमे तथैव निरवशेषं यावत् शुद्धदन्तद्वीपः इति। एते अष्टाविंशतिः उद्देशकाः भणितव्याः।	१०२. भंते! उत्तर दिशा में एक पैर वाले मनुष्यों का एकोरुक द्वीप कहां प्रज्ञप्त है? इस प्रकार जैसे जीवाभिगम की वक्तव्यता वैसे ही निरवशेष वक्तव्य है यावत् शुद्धदंत द्वीप की वक्तव्यता। ये अट्ठाइस उद्देशक वक्तव्य हैं।
१०३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् आत्मानं भावयन् विहरति।	१०३. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है यावत् भगवान् गौतम संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकारसमं सयं

ग्यारहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत शतक के प्रथम आठ उद्देशक वनस्पति से संबद्ध हैं। वनस्पति के अनेक प्रकार हैं। उनमें से उत्पल, शालु, पलाश आदि का चयन क्यों किया गया ? यह रहस्यपूर्ण तथ्य है। आठ प्रकारों में पांच प्रकारों—उत्पल[1], शालु[2], पद्म[3], कर्णिका[4], और नलिन[5] का संबंध 'कमल' जाति से है। उत्पल आदि वनस्पति जगत की उत्तम प्रजातियां हैं। देवलोक से च्युत होकर देव इनमें उत्पन्न हो सकते हैं[6] इसीलिए उनमें चार लेश्याएं बतलाई गई हैं।[7] सामान्यतः वनस्पति में चार लेश्याओं के होने का निर्देश मिलता है[8] किंतु सब वनस्पतिकायिक जीवों में चार लेश्याएं नहीं होतीं। कुछ जीवों के चार लेश्याएं होती हैं। शेष सब वनस्पतिकायिक जीवों के तीन लेश्याएं होती हैं। प्रथम आठ उद्देशकों में निर्दिष्ट पलाश, कुंभी और नाड़िका में देव उत्पन्न नहीं होते अतः उनमें तीन लेश्याएं ही होती हैं।

इस विषय में प्रस्तुत आगम के इक्कीसवें और बावीसवें शतक का अध्ययन बहुत उपयोगी है।

आगम साहित्य में वनस्पति, पेड़ पौधों का अध्ययन अनेक पहलुओं से किया गया है। आचारांग सूत्र में मनुष्य और वनस्पति का एक समान निरूपण मिलता है—

मनुष्य	वनस्पति
• जन्मता है।	जन्मती है।
• बढ़ता है।	बढ़ती है।
• चैतन्ययुक्त है।	चैतन्ययुक्त है।
• छिन्न होने पर म्लान होता है।	छिन्न होने पर म्लान होती है।
• आहार करता है।	आहार करती है।
• अनित्य है।	अनित्य है।
• अशाश्वत है।	अशाश्वत है।
• उपचित और अपचित होता है।	उपचित और अपचित होती है।
• विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है।	विविध अवस्थाओं को प्राप्त होती है।[9]

प्रस्तुत शतक में जीव-संख्या, उत्पत्ति, कितने जीवों की उत्पत्ति अपहार, अवगाहना, कर्म का बंधन, कर्म के वेदन, कर्म का उदय, कर्म की उदीरणा, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, उच्छ्वास-निःश्वास, आहारक अनाहारक, विरत-अविरत, क्रिया, बंध, संज्ञा, कषाय, वेद, संज्ञी, इन्द्रिय, काय-स्थिति, गति-आगति, आहार, आयुष्य, समुद्घात, उद्वर्तन-अपवर्तन, उपपात—इन बत्तीस पहलुओं से वनस्पति कायिक जीवों का विमर्श किया गया है।

स्थानांग में वनस्पति में तीन लेश्या[10] होने का और प्रज्ञापना में चार लेश्या[11] होने का निर्देश है।

संक्लिष्ट लेश्याएं तीन ही होती हैं, स्थानांग का निर्देश संक्लिष्ट लेश्या सापेक्ष है। कुछ वनस्पतियों में तीन लेश्याएं होती हैं, उसका निर्देश पलाश, कुंभी और नाड़िका के प्रसंग में है।[12] वनस्पति में चार लेश्या होने का प्रज्ञापना का निर्देश सामान्य निर्देश है। उसके विशेष नियम इन पूर्ववर्ती आठ उद्देशकों में मिलते हैं।

अनुबंध और संवेध के आधार पर पुनर्जन्म के नियमों का संसूचन उत्पल उद्देशक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।[13]

नौवें उद्देशक में शिव राजर्षि के विभंग ज्ञान का उल्लेख, सात द्वीप और सात समुद्र की स्थापना और उसका प्रतिवाद एक रोचक घटना है। इस प्रसंग में जीवाजीवाभिगम सूत्र[14] का उल्लेख हुआ है, वह लिपि की सुविधा के कारण हुआ है, यह स्वीकार करना संगत होगा।

---

१. भ. ११/१-४०।
२. वही, ११/४२।
३. वही, ११/५१।
४. वही, ११/५३।
५. वही, ११/५५।
६. वही, ११/२।
७. वही, ११/१२।
८. पण्ण. १६/३९-४०।
९. आयारो ५/११३।
१०. ठाणं ३/६१।
११. पण्ण. १७/३९-४०।
१२. भ. ११/४७-४७,४९।
१३. वही, ११/२९-३० का भाष्य।
१४. वही, ११/१११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवें उद्देशक में लोक के तीन विभागों का निरूपण है। लोक का वर्णन पांचवें शतक में हो चुका है।[1] वहां उसके तीन विभागों का वर्णन नहीं है। लोक और अलोक की व्यवस्था—इन दोनों के संस्थानों का निरूपण विश्व व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है।[2] लोक और अलोक के परिमाण की प्रज्ञापना में देवों तथा दिशा कुमारियों की गति का प्रज्ञाप्त विकसित गति सिद्धांतों की मान्यता से भी परे है।[3]

काल सूक्ष्म होता है।[4] क्षेत्र उससे सूक्ष्मतर होता है। नंदी सूत्र के इस सिद्धांत की व्याख्या प्रस्तुत सूत्र के आधार पर की जा सकती है। एक आकाश प्रदेश में रहने वाले अनेक जीवों के प्रदेश परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुंचाते, इसका हेतु आकाश-प्रदेश की विशिष्ट अवगाहन शक्ति अथवा उसकी सूक्ष्मता है।[5]

ग्यारहवें उद्देशक में सुदर्शन श्रेष्ठी के प्रश्न और भगवान महावीर के द्वारा उनका समाधान एक नई शैली में प्रस्तुत किया गया है। भगवान ने प्रश्न का उत्तर संक्षेप में दिया होगा। सूत्रकार ने काव्य की शैली में उसका विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रकरण में भगवान महावीर की चिर-परिचित शैली का निदर्शन मिलता है। भगवान महावीर व्यक्ति को संबुद्ध करने के लिए जाति-स्मरण की प्रक्रिया में ले जाते। इस विषय में मेघकुमार और सुदर्शन के जाति स्मरण की तुलना की जा सकती है।

भगवती

- तए णं तस्स सुदंसणस्स सेट्ठिस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णीपुव्वे जातिस्मरणे समुप्पन्ने एयमट्ठं सम्मं अभिसमेति।
- तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय पुव्वभवे दुगुणाणीयसद्धसंवेगे आणंदंसुपुण्णनयणे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ।[6]

ज्ञातधर्म कथा

- तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहिं परिणामेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहा-पूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुव्वे जाई सरणे समुप्पण्णे एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ।
- तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय पुव्व दुगुणाणीयसंवेगे आणंदअंसु पुण्णमहे हरिसवस-विसप्पमाणहियए धाराहयकलंबकं पिव समूससिय रोमकूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ।[7]

श्रमणोपासक ऋषिभद्र का प्रसंग ऐतिहासिक है। श्रमणोपासक गृहीतार्थ होते थे। उसका एक सुंदर निदर्शन है।[8]

पुद्गल परिव्राजक का आख्यान विभंगज्ञान का एक उदाहरण है। शिवराजर्षि ने विभंगज्ञान के द्वारा सात द्वीप-समूह की स्थापना की और पुद्गल परिव्राजक ने विभंगज्ञान के द्वारा ब्रह्मलोक तक स्वर्ग होने का सिद्धांत स्थापित किया। अपूर्ण ज्ञान को पूर्ण मानकर पूर्णता के सिद्धांत की एकांगी स्थापना वास्तविक नहीं होती। यह इन घटनाओं से प्रत्यक्ष जाना जा सकता है।

प्रस्तुत शतक अनेक तत्त्वों, लोक व्यवस्था और घटनाओं के कारण बहुत ही सरस और रोचक बना हुआ है।

---

१. भ. ५/२५५।
२. वही, ११/१००-१०९।
३. वही, ११/१०९-११०।
४. नंदी १८/८।
५. भ. ११/१११-११३।
६. वही, ११/१७१-१७२।
७. ज्ञातधर्म कथा। १/१९०-१९१।
८. भ. २/७४—लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कारसम् सतं : ग्यारहवां शतक
पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल

संगहणी गाथा

१. उप्पल २. सालु ३. पलासे
४. कुंभी ५. नाली य ६.पउम
७. कण्णी य।
८. नलिण ९. सिव १०. लोग
११,१२.कालालभिय दस दो य
एक्कारे॥१॥

उप्पलजीवाणं उववायादि-पदं

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी– उप्पले णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे?

गोयमा! एगजीवे नो अणेगजीवे। तेण परं जे अण्णे जीवा उववज्जंति ते णं नो एगजीवा अणेगजीवा॥

संस्कृत छाया

संग्रहणी गाथा

उत्पलः शालूकपलाशे,
कुम्भी नाली च पद्मं कर्णी च।
नलिनं शिवः लोकः
कालालभिके दश द्वौ च एकादशे॥

उत्पलजीवानाम् उपपातादि-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहः यावत् पर्युपासीनः एवमवादीत्–उत्पलं भदन्त! एकपत्रकं किम् एकजीवः? अनेकजीवः?

गौतम! एकजीवः, नो अनेकजीवः। तेन परं ये अन्ये जीवाः उपपद्यन्ते ते नो एकजीवाः अनेकजीवाः।

हिन्दी अनुवाद

संग्रहणी गाथा

१. उत्पल २. शालु ३. पलाश ४. कुंभी ५. नाड़ीक ६. पद्म ७. कर्णिका ८. नलिन ९. शिव १०. लोक–ये दस तथा काल ग्यारहवां और आलभिका बारहवां उद्देशक है।

उत्पल जीवों का उपपात आदि-पद

१. 'उस काल और उस समय राजगृह नगर यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! एकपत्रक उत्पल एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

गौतम! एक जीव वाला है, अनेक जीव वाला नहीं है। प्रथम पत्र के पश्चात् जो अन्य जीव-पत्र उत्पन्न होते हैं, वे एक जीव वाले नहीं हैं, अनेक जीव वाले हैं।

भाष्य

१. सूत्र १

प्रस्तुत आलापक में वनस्पति के जीवों की उत्पत्ति के विषय में कुछ पहलुओं का विमर्श किया गया है। उत्पल के एक पत्ते में एक जीव होता है, यह सूत्रकार का अभिमत है। वृत्तिकार ने इस विषय में एक सूचना दी है। यहां किसलय अवस्था के बाद का पत्र विवक्षित है।[1] जयाचार्य ने इसकी स्पष्ट व्याख्या की है–किसलय अनंत जीवात्मक होता है। वह पत्र के रूप में आकर एक जीव वाला हो जाता है।[2] प्रज्ञापना के अनुसार बीज का उत्पादक जीव एक ही होता है। वह अंकुरित अवस्था में अकेला ही रहता है। किसलय अवस्था उसकी उत्तरवर्ती अवस्था है। उसमें अनंत जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपनी स्थितिक्षय के कारण मर जाते हैं। वह मूल जीव उन अनंत जीवों के शरीरों को अपने शरीर रूप में परिणत कर लेता है और पत्र अवस्था में आ जाता है। इसीलिए उत्पल पत्र में एक जीव होने का निर्देश किया गया है। पत्र की पूर्ववर्ती अवस्था किसलय में अन्य जीव उत्पन्न होते हैं और उसके आश्रय में अन्य अनेक जीव उत्पन्न होते हैं, किंतु मूल पत्र का उत्पादक जीव एक ही होता है। इस अपेक्षा से उत्पल के एक पत्र को एक जीव वाला बतलाया गया है।[3]

---

१. भ. वृ. ११/१–एकपत्रकं चेह किसलयावस्थाया उपरि द्रष्टव्यम्।

२. भ. जो. ३/२२५/११-१२–
ए किसलय नव अंकूर ने अवस्था थी ऊपर भूर।
किसलय सुओ तो छे अनंतकाय, सूआं पछै एक पत्र थाय॥
एक पत्रपणां थी विशेष एक जीव पिण नहीं छे अनेक।
उत्पल शब्दे नाय, नीलोत्पलादि कहाय॥

३. (क) भ. वृ. ११/१–एग जीवे नि यदा हि एकपत्रावस्थं तदैकजीवं तत्, यदा तु द्वितीयादिपत्रं तेन समारब्धं भवति तदा नैकपत्रावस्था तस्येति बहवो जीवास्तत्रोत्पद्यन्त इति।

(ख) पण्ण. १/४८/५१-५२–
बीए जोणिब्भूए जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जो वि य मूले जीवो, सो वि य पत्ते पढमताए॥
सव्वोवि किसलओ खलु, उग्गममाणो अणंतओ भणिओ।
सो चेव विवड्ढंतो, होइ परित्तो अणंतो वा॥

(ग) प्रज्ञा. वृ. प. ३८–इह बीजजीवोन्यो वा बीजमूलत्वेनोत्पद्य तंदुलसूत्रावस्थां करोति ततस्तदन्तरभाविनीं किसलयावस्थां नियमतोऽनंता जीवाः कुर्वन्ति। पुनश्च तेषु स्थितिक्षयात् परिणतेषु असावेव मूलजीवोऽनन्तजीवतनुं स्वशरीरतया परिणमय्य तावद्वर्धते यावत् प्रथमपत्रमिति न विरोधः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. ते णं भंते! जीवा कतोहिंतो उववज्जंति–किं नेरइएहिंतो उववज्जंति? तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति? मणुस्सेहिंतो उववज्जंति? देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! नो नेरइएहिंतो उवव-ज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उवव-ज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति देवेहिंतो वि उववज्जंति। एवं उववाओ भाणियव्वो जहा वक्कंतीए वणस्सइकाइयाणं जाव ईसाणेति॥

ते भदन्त! जीवाः कुतः उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते? तिर्यग्योनिकेभ्यः उपपद्यन्ते? मनुष्येभ्यः उपपद्यन्ते? देवेभ्यः उपपद्यन्ते?

गौतम! नो नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, तिर्यग्-योनिकेभ्यः उपपद्यन्ते, मनुष्येभ्यः उपप-द्यन्ते, देवेभ्योऽपि उपपद्यन्ते।
एवं उपपातः भणितव्यः यथा अवक्रान्त्यां वनस्पतिकायिकानां यावत् ईशानः इति।

२. 'भंते! वे जीव कहां से उपपन्न होते हैं–क्या नैरयिक से उपपन्न होते हैं? तिर्यग्-योनिक से उपपन्न होते हैं? मनुष्य से उपपन्न होते हैं? देव से उपपन्न होते हैं?

गौतम! वे जीव नैरयिक से उपपन्न नहीं होते, तिर्यग्योनिक से उपपन्न होते हैं, मनुष्य से उपपन्न होते हैं, देव से भी उपपन्न होते हैं। इस प्रकार वनस्पतिकायिक का उपपात अवक्रान्ति पद (प्रज्ञापना ६/८६) की भांति वक्तव्य है यावत् ईशान तक।

भाष्य

१. सूत्र २

प्रस्तुत सूत्र में उत्पल पत्र के जीवों की आगति का नियम निर्दिष्ट है। उत्पल पत्र में उत्पन्न होने वाला जीव नरक गति से नहीं आता, शेष तीन गतियों में से किसी एक गति से आकर उत्पल पत्र के रूप में उत्पन्न होता है, यह एक नियम है। इस नियम का समर्थन प्रज्ञापना के उद्वर्तन सूत्र से होता है। नैरयिक जीव नरक से उद्वर्तन कर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न नहीं होता।[1] इस नियम का हेतु कहीं व्याख्यात नहीं है। यह अतीन्द्रिय विषय है इसलिए यह अहेतुगम्य है।

३. ते णं भंते! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति॥

ते भदन्त! जीवाः एकसमये कियन्तः उपपद्यन्ते?

गौतम! जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः वा असंख्येयाः वा उपपद्यन्ते।

३. 'भंते! वे जीव एक समय में कितने उपपन्न होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय अथवा असंख्येय उपपन्न होते हैं।

४. ते णं भंते! जीवा समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवति-कालेणं अवहीरंति?

गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा असंखे-ज्जाहिं ओसप्पिणिउस्सप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।

ते भदन्त! जीवाः समये समये अपहिय-माणाः-अपहियमाणाः कियत्कालेन अपहियन्ते?

गौतम! ते असंख्येयाः समये समये अपहिय-माणाः-अपहियमाणाः असंख्येयाभ्यः अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीभ्यः अपहियन्ते, नो चैव अपहृताः स्युः।

४. भंते! वे जीव प्रति समय अपहृत करने पर कितने काल में अपहृत होते हैं?

गौतम! वे असंख्येय जीव प्रति समय अपहृत करने पर असंख्येय अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल में अपहृत होते हैं। (यह असत् कल्पना है) उनका अपहार किया नहीं जाता।

भाष्य

१. सूत्र–३-४

उत्पल पत्र प्रत्येक शरीरी है इसलिए उसमें तथा उसके आश्रय में उत्कर्षतः असंख्य जीव उत्पन्न हो सकते हैं, अनंत नहीं। असंख्येय जीवों का काल की दृष्टि से अनुमापन किया गया है। प्रति समय एक-एक जीव का अवहार किया जाए तो उनका अवहरण करने में असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का काल लग जाएगा। इसका तात्पर्यार्थ यह है कि असंख्येय अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं, असंख्येय जीवों का वही परिमाण है।

५. तेसि णं भंते! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं॥

तेषां भदन्त! जीवानां कियन्महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता?

गौतम! जघन्येन अङ्गुलस्य असंख्येयभागम् उत्कर्षेण सातिरेकं योजनसहस्रम्।

५. 'भंते! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

गौतम! जघन्यतः अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्टतः कुछ अधिक हजार योजन।

१ पण्ण ६ ८८-९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ५

वनस्पति का शरीर औदारिक शरीर है। औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सातिरेक एक हजार योजन है। वह वनस्पति की अपेक्षा से बतलाई गई है। आचार्य मलयगिरि ने लवण समुद्र के घाट पर होने वाले कमल की नाल की अपेक्षा से इतनी बड़ी अवगाहना बतलाई है।[1] अभयदेवसूरि ने लवण समुद्र का नाम लिए बिना इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।[2]

६. ते णं भंते! जीवा नाणा-वरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा? अबंधगा?
गोयमा! नो अबंधगा, बंधए वा, बंधगा वा॥

ते भदन्त! जीवाः ज्ञानावरणस्य कर्मणः किं बन्धकाः? अबन्धकाः?
गौतम! नो अबन्धकाः, बन्धकः वा, बन्धकाः वा।

६. भंते! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक हैं? अबंधक हैं?
गौतम! अबंधक नहीं हैं, बंधक है (एक वचन) अथवा बंधक हैं (बहुवचन)।

७. एवं जाव अंतराइयस्स, नवरं–आउयस्स–पुच्छा।

गोयमा! १. बंधए वा २. अबंधए वा ३. बंधगा वा ४. अबंधगा वा ५. अहवा बंधए य अबंधए य ६. अहवा बंधए य अबंधगा य ७. अहवा बंधगा य अबंधए य ८. अहवा बंधगा य अबंधगा य–एते अट्ठ भंगा॥

एवं यावत् आन्तरायिकस्य, नवरं-आयुष्यकस्य–पृच्छा।

गौतम! १. बन्धकः वा २. अबन्धकः वा ३. बन्धकाः वा ४. अबन्धकाः वा ५. अथवा बन्धकश्च अबन्धकश्च ६. अथवा बन्धकश्च अबन्धकाश्च ७. अथवा बन्धकाश्च अबन्धकश्च ८. अथवा बन्धकाश्च अबन्धकाश्च–एते अष्ट भङ्गाः।

७. इस प्रकार यावत् आंतरायिक कर्म की वक्तव्यता, इतना विशेष है–आयुष्य कर्म की पृच्छा।
गौतम! १. बंधक भी है २. अबंधक भी है ३. बंधक भी हैं ४. अबंधक भी हैं ५. अथवा बंधक है और अबंधक है ६. अथवा बंधक है और अबंधक हैं ७. अथवा बंधक हैं और अबंधक है ८. अथवा बंधक हैं और अबंधक हैं–आयुष्य कर्म के ये आठ भंग हैं।

८. ते णं भंते! जीवा नाणा-वरणिज्जस्स कम्मस्स किं वेदगा? अवेदगा?
गोयमा! नो अवेदगा, वेदए वा, वेदगा वा। एवं जाव अंतराइयस्स॥

ते भदन्त! जीवा ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः किं वेदकाः? अवेदकाः?
गौतम! नो अवेदकाः, वेदकः वा, वेदकाः वा। एवं यावत् आन्तरायिकस्य।

८. भंते! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के वेदक हैं? अवेदक है?
गौतम! वे अवेदक नहीं हैं, वेदक है अथवा वेदक हैं। इस प्रकार यावत् आन्तरायिक की वक्तव्यता।

९. ते णं भंते! जीवा किं सायावेदगा? असायावेदगा?
गोयमा! सायावेदए वा, असायावेदए वा–अट्ठ भंगा॥

ते भदन्त! जीवाः किं सातवेदकाः? असातवेदकाः?
गौतम! सातवेदकः वा, असातवेदकः वा–अष्ट भङ्गाः।

९. भंते! वे जीव सातावेदक हैं? असातावेदक है!
गौतम! सातावेदक है, अथवा असातवेदक है–आठ भंग वक्तव्य हैं।

१०. ते णं भंते! जीवा नाणा-वरणिज्जस्स कम्मस्स किं उदई? अणुदई?
गोयमा! नो अणुदई, उदई वा, उदइणो वा। एवं जाव अंतराइयस्स॥

ते भदन्त! जीवाः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः किम् उदयिनः? अनुदयिनः?
गौतम! नो अनुदयिनः, उदयी वा, उदयिनः वा। एवं यावत् आन्तरायिकस्य।

१०. भंते! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय वाले हैं? अनुदय वाले हैं?
गौतम! वे अनुदय वाले नहीं हैं, उदय वाला है अथवा उदय वाले हैं। इस प्रकार यावत् आंतरायिक की वक्तव्यता।

११. ते णं भंते! जीवा नाणा-वरणिज्जस्स

ते भदन्त! जीवाः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः

११. भंते! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के

---

१. प्रज्ञा. वृ. प. ४१३–एष लवणसमुद्रगोतीर्थादिषु पद्मनालाद्यधिकृत्य वक्तव्यः, अन्यत्रतावत् औदारिकशरीरस्यायमसंभवात्।

२. भ. वृ. ११/५–तथाविधसमुद्रगोतीर्थकादाविदमुच्चत्वं उत्पलनाद्यावगन्तव्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मस्स किं उदीरगा? अणुदीरगा?	किम् उदीरकाः? अनुदीरकाः?	उदीरक–उदीरणा करने वाले हैं? अनुदीरक हैं?
गोयमा! नो अणुदीरगा, उदीरए वा, उदीरगा वा। एवं जाव अंतराइयस्स, नवरं–वेदणिज्जाउ-एसु अट्ठ भंगा॥	गौतम! नो अनुदीरकाः, उदीरकः वा, उदीरकाः वा। एवं यावत् आन्तरायिकस्य, नवरं–वेदनी- आयुष्कयोः अष्ट भङ्गाः।	गौतम! अनुदीरक नहीं हैं? उदीरक है अथवा उदीरक हैं। इस प्रकार यावत् आंतरायिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है–वेदनीय और आयुष्य के आठ विकल्प वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र ६-११

एक बहुत प्रसिद्ध सूक्त है–**मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः**। जैन दर्शन का सिद्धान्त इससे भिन्न है। उत्पल वनस्पतिकायिक जीव है उसके मन नहीं होता फिर भी कर्म बंध होता है। कर्म बंध का हेतु मन नहीं किंतु कषाय है, राग-द्वेष है। कषाय का अस्तित्व वनस्पतिकायिक जीवों में भी होता है। उनका कषाय व्यक्त नहीं है। संभवतः इसी दृष्टि से प्रश्न पूछा गया–उत्पल के जीव ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का बंध करते हैं अथवा नहीं करते?

भगवान महावीर का उत्तर था–वे ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का बंध करते हैं।

वे जीव जैसे कर्म के कर्त्ता हैं, वैसे कर्म के वेदक भी हैं। उनके कर्म का उदय भी होता है और उसकी उदीरणा भी करते हैं। वेदन का अर्थ है अनुक्रम (कालावधि पूर्ण होने पर) अथवा उदीरणा के द्वारा उदीरित कर्म का अनुभव करना। उदय का अर्थ है–अनुक्रम (कालावधि पूर्ण होने पर) से कर्म का अनुभव करना।

प्रथम पत्र की अपेक्षा एक वचन और उससे आगे होने वाले पत्रों की अपेक्षा बहुवचन का प्रयोग किया गया है। एक वचन और बहुवचन के आधार पर इनके आठ-आठ भंग बनते हैं। देखें यंत्र–

कर्म	बंधक (एकवचन)	बंधक (बहुवचन)	अबंधक (एकवचन)	अबंधक (बहुवचन)
ज्ञानावरणीय यावत् आन्तरायिक कर्म (आयुष्य-वर्जित)	बंधक है।	बंधक हैं।		अबंधक नहीं हैं।
आयुष्य कर्म	१. बंधक भी है। ५. बंधक है। ६. बंधक है।	३. बंधक भी हैं। ७. बंधक हैं। ८. बंधक हैं।	२. अबंधक भी है। ५. अबंधक है। ७. अबंधक है।	४. अबंधक भी हैं। ७. अबंधक हैं। ८. अबंधक हैं।
कर्म	**वेदक (एकवचन)**	**वेदक (बहुवचन)**	**अवेदक (एकवचन)**	
ज्ञानावरणीय यावत् आन्तरायिक कर्म	वेदक है।	वेदक हैं।	अवेदक नहीं है।	
उत्पल जीव	सातवेदक (एकवचन)	सातवेदक (बहुवचन)	असातवेदक (एकवचन)	असातवेदक (बहुवचन)
	१. सातवेदक है। ५. है। ६. है।	३. सातवेदक हैं। ७. हैं। ८. हैं।	२. असातवेदक भी है। ५. है। ७. है।	४. सातवेदक हैं। ६. हैं। ८. हैं।
कर्म	**उदय (एकवचन)**	**उदय (बहुवचन)**	**अनुदय (एकवचन)**	**अनुदय (बहुवचन)**
ज्ञानावरणीय यावत् आन्तरायिक कर्म	उदय वाले है।	उदय वाले हैं।		अनुदय वाले नहीं।
कर्म	**उदीरक (एकवचन)**	**उदीरक (बहुवचन)**	**अनुदीरक (एकवचन)**	**अनुदीरक (बहुवचन)**
ज्ञानावरणीय यावत् आन्तरायिक कर्म (वेदनीय आयुष्य-वर्जित)	उदीरक है।	उदीरक हैं।	उदीरक है।	अनुदीरक नहीं है।
वेदनीय और आयुष्य कर्म	१. उदीरक है। ५. है। ६. है।	१. उदीरक हैं। ५. हैं। ६. हैं।	२. उदीरक भी हैं। ५. है। ७. है।	४. अनुदीरक भी हैं। ६. हैं। ८. हैं।

१. भ. वृ. ११ ८-१०-वेदनं अनुक्रमोदितस्य उदीरणोदीरितस्य वा कर्मणोऽनुभवः, उदयश्चानुक्रमोदितस्यैवेति वेदकत्वप्ररूपणेऽपि भेदेनोदयित्वप्ररूपणामिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेसा? नीललेसा? काउलेसा? तेउलेसा?

गोयमा! कण्हलेसे वा नीललेसे वा काउलेसे वा तेउलेसे वा, कण्ह-लेस्सा वा नीललेस्सा वा काउ-लेस्सा वा तेउलेस्सा वा, अहवा कण्हलेसे य नीललेसे य। एवं एए दुयासंजोग-तियासंजोग-चउक्क- संजोगेणं असीती भंगा भवंति॥

ते भदन्त! जीवाः किं कृष्णलेश्याः? नीललेश्याः? तेजोलेश्याः?

गौतम! कृष्णलेश्यः वा, नीललेश्यः वा, कापोतलेश्यः वा, तेजोलेश्यः वा, कृष्णलेश्याःवा, नीललेश्याः वा, कापोतलेश्याः वा, तेजोलेश्याः वा अथवा कृष्णलेश्यः च, नीललेश्यः च। एवम् एते द्विकसंयोग-त्रिकसंयोग-चतुष्कसंयोगेन अशीतिः भङ्गाः भवन्ति।

१२. 'भंते! वे जीव कृष्ण लेश्या वाले हैं? नील लेश्या वाले हैं? कापोत लेश्या वाले हैं? तैजस लेश्या वाले हैं?

गौतम! १. कृष्ण लेश्या वाला है अथवा नील लेश्या वाला है अथवा कापोत लेश्या वाला है अथवा तैजस लेश्या वाला है. २. कृष्ण लेश्या वाले हैं अथवा नील लेश्या वाले हैं अथवा कापोत लेश्या वाले हैं अथवा तैजस लेश्या वाले हैं ३. अथवा कृष्ण लेश्या वाला और नील लेश्या वाला है। इस प्रकार ये द्वि-संयोग, त्रि-संयोग और चतुष्क संयोग से अस्सी भंग होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र–१२

उत्पल पत्र में चार लेश्याएं बतलाई गई हैं। प्रज्ञापना के अनुसार एकेन्द्रिय में समुच्चय रूप में चार लेश्याएं होती हैं। विभागशः पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में चार लेश्याएं होती हैं। तैजसकायिक और वायुकायिक जीवों में तीन होती हैं।[1]

स्थानांग सूत्र में पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक में तीन लेश्याएं बतलाई गई हैं। वहां तेजोलेश्या का निषेध नहीं है। संक्लिष्ट लेश्या का प्रकरण है इसलिए तीन लेश्याओं का निर्देश है।[2]

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और प्रथम, द्वितीय कल्प के वैमानिक देव अपने स्थान से च्युत होकर इन तीन जीव निकायों में उत्पन्न होते हैं।[3] इस अपेक्षा से इनमें तेजोलेश्या का अस्तित्व बतलाया गया है।

जीव जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में उत्पन्न होता है।[4] इस नियम के अनुसार इन तीन जीव निकायों में तेजोलेश्या का अस्तित्व सम्मत है।

इन तीन जीव निकायों में उत्पन्न होने वाले देव अपर्याप्त अवस्था में रहते हैं तब तक तेजोलेश्या होती है, पर्याप्त होने के बाद उसकी उपलब्धि नहीं रहती।

इन तीन जीव निकायों में उत्पन्न होने वाले देव बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं, सूक्ष्म में नहीं। पर्याप्तक में उत्पन्न होते हैं, जिन बादर पृथ्वीकाय आदि की पर्याप्त होने से पहले मृत्यु नहीं होती, उनमें उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्तक में नहीं।[5]

इक संयोगिक भंग ८ एकवचन के भंग चार		
१	कृ.	१
२	नी.	१
३	का.	१
४	ते.	१
बहुवचन के चार भंग		
१	कृ.	१
२	नी.	१
३	का.	१
४	ते.	१
द्वि-संयोगिक भंग २४		
	कृ.	नी.
१	१	१
२	१	३
३	३	१
४	३	३

	कृ.	का.
५	१	१
६	१	३
७	३	१
८	३	३
	कृ.	ते.
९	१	१
१०	१	३
११	३	१
१२	३	३
	कृ.	का.
१३	१	१
१४	१	३
१५	३	१
१६	३	३

	कृ.	का.
१७	१	१
१८	१	३
१९	३	१
२०	३	३
	कृ.	ते.
२१	१	१
२२	१	३
२३	३	१
२४	३	३

१. पण्ण. १७/३९-४०।
२. (क) ठाणं ३/६१.
(ख) स्था. वृ. प. १०१।
३. भ. २४/२०४।
४. वही, ३ १८३।
५. पण्ण. ६/१०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रि-सांयोगिक भंग ३२			
	कृ.	नी.	का.
१	१	१	१
२	१	१	३
३	१	३	१
४	१	३	३
५	३	१	१
६	३	१	३
७	३	३	१
८	३	३	३
	कृ.	नी.	ते.
९	१	१	१
१०	१	१	३
११	१	३	१
१२	१	३	३
१३	३	१	१
१४	३	१	३
१५	३	३	१
१६	३	३	३

त्रि-सांयोगिक भंग ३२			
	कृ.	नी.	ते.
१७	१	१	१
१८	१	१	३
१९	१	३	१
२०	१	३	३
२१	३	१	१
२२	३	१	३
२३	३	३	१
२४	३	३	३
	कृ.	नी.	ते.
२५	१	१	१
२६	१	१	३
२७	१	३	१
२८	१	३	३
२९	३	१	१
३०	३	१	३
३१	३	३	१
३२	३	३	३

त्रि-सांयोगिक भंग ३२				
	कृ.	नी.	का.	ते.
१	१	१	१	१
२	१	१	१	३
३	१	१	३	१
४	१	१	३	३
५	१	३	१	१
६	१	३	१	३
७	१	३	३	१
८	१	३	३	३
९	३	१	१	१
१०	३	१	१	३
११	३	१	३	१
१२	३	१	३	३
१३	३	३	१	१
१४	३	३	१	३
१५	३	३	३	१
१६	३	३	३	३

सर्व भंग–८+२४+३२+१६=८०

१३. ते णं भंते! जीवा किं सम्मद्दिट्ठी? मिच्छादिट्ठी? सम्मामिच्छादिट्ठी?
गोयमा! नो सम्मद्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी वा मिच्छादिट्ठीणो वा॥

१३. ते भदन्त! जीवाः किं सम्यग्दृष्टयः? मिथ्यादृष्टयः? सम्यग्मिथ्यादृष्टयः?
गौतम! नो सम्यग्दृष्टयः, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, मिथ्यादृष्टिः वा, मिथ्यादृष्टयः वा।

१३. भंते! वे जीव सम्यक्दृष्टि हैं? मिथ्यादृष्टि हैं? सम्यक्मिथ्यादृष्टि हैं?
गौतम! सम्यक् दृष्टि नहीं हैं, सम्यक्-मिथ्या दृष्टि नहीं हैं, मिथ्यादृष्टि है अथवा मिथ्यादृष्टि हैं।

१४. ते णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी वा, अण्णाणिणो वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनः? अज्ञानिनः?
गौतम! नो ज्ञानिनः, अज्ञानी वा, अज्ञानिनः वा।

१४. भंते! वे जीव ज्ञानी हैं। अज्ञानी हैं?
गौतम! ज्ञानी नहीं हैं। अज्ञानी है अथवा अज्ञानी हैं।

१५. ते णं भंते! जीवा किं मण-जोगी? वइजोगी? कायजोगी?
गोयमा! नो मणजोगी, नो वइ-जोगी, कायोगी वा, कायजोगिणो वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं मनोयोगिनः? वाग्योगिनः? काययोगिनः?
गौतम! नो मनोयोगिनः, नो वाग्योगिनः, काययोगी वा, काययोगिनः वा।

१५. भंते! वे जीव मनोयोग वाले हैं? वचनयोग वाले हैं? काययोग वाले हैं?
गौतम! मनोयोग वाले नहीं हैं, वचनयोग वाले नहीं हैं, काययोग वाला है अथवा काययोग वाले हैं।

१६. ते णं भंते! जीवा किं सागारोवउत्ता? अणागारोवउत्ता?
गोयमा! सागारोवउत्ते वा, अणागारोवउत्ते वा–अट्ठ भंगा॥

ते भदन्त! जीवाः किं साकारोपयुक्ताः? अनाकारोपयुक्ताः?
गौतम! साकारोपयुक्तः वा, अनाकारोपयुक्तः वा–अष्ट भङ्गाः।

१६. भंते! वे जीव साकार उपयोग सहित हैं? अनाकार उपयोग सहित हैं?
गौतम! साकार उपयोग सहित है, अनाकार उपयोग सहित है–इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

१७. तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरगा कतिवण्णा, कतिगंधा, कतिरसा,

तेषां भदन्त! जीवानां शरीरकाः कतिवर्णाः, कतिगन्धाः, कतिरसाः, कतिस्पर्शाः

१७. भंते! उन जीवों के शरीर कितने वर्ण कितने गंध, कितने रस और कितने स्पर्श

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कतिफासा पण्णत्ता?
गोयमा! पंचवण्णा, पंचरस्सा, दुगंधा, अट्ठफासा पण्णत्ता। ते पुण अप्पणा अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पण्णत्ता॥

प्रज्ञप्ताः?
गौतम! पञ्चवर्णाः, पञ्चरसाः, द्विगन्धाः, अष्टस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः। ते पुनः आत्मना अवर्णाः, अगन्धाः, अरसाः, अस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः।

वाले प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! उन जीवों के शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। वे जीव अपने स्वरूप से वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र १७

प्रस्तुत सूत्र में शरीर और आत्मा की भिन्नता का प्रतिपादन है। उत्पल पत्र का शरीर पौद्गलिक है इसलिए उसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं। उत्पल पत्र का जीव अमूर्त है इसलिए उसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श नहीं हैं।[1]

१८. ते णं भंते! जीवा किं उस्सा-सगा? निस्सासगा? नोउस्सास- निस्स-सगा?
गोयमा! १. उस्सासए वा २. निस्सासए वा ३. नोउस्सासनि-स्सासए वा ४. उस्सासगा वा ५. निस्सासगा वा ६. नोउस्सास-निस्सासगा वा १-४. अहवा उस्सासए य निस्सासए य १-४. अहवा उस्सासए य नोउस्सास-निस्सासए य १-४. अहवा निस्सासए य नोउस्सासनिस्सासए य १-८. अहवा उस्सासए य निस्सासए य नोउस्सा-सनिस्सासए य—अट्ठ भंगा। एते छव्वीसं भंगा भवंति॥

ते भदन्त! जीवाः किम् उच्छ्वासकाः? निःश्वासकाः? नो उच्छ्वासनिःश्वा-सकाः?
गौतम! १. उच्छ्वासकः वा २. निःश्वा-सकः वा ३. नो उच्छ्वासनिःश्वासकः वा ४. उच्छ्वासकाः वा ५. निःश्वासकाः वा ६. नो उच्छ्वासनिःश्वासकाः वा १-४. अथवा उच्छ्वासकः च निःश्वासकः च १-४. अथवा उच्छ्वासकः च नो उच्छ्वासनिःश्वासकः च १-४. अथवा निःश्वासकः च नो उच्छ्वासनिःश्वासकः च १-८. अथवा उच्छ्वासकः च निश्वासकः च नो उच्छ्वासनिःश्वासकः च-अष्ट भङ्गाः। एते षड्विंशतिः भङ्गाः भवन्ति।

१८. भंते! वे जीव उच्छवास लेने वाले हैं? निःश्वास लेने वाले हैं? उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाले हैं?
गौतम! १. उच्छवास लेने वाला भी है २. निःश्वास लेने वाला भी है ३. उच्छवास निःश्वास नहीं लेने वाला भी है ४. उच्छवास लेने वाले भी हैं ५. निःश्वास लेने वाले भी हैं ६. उच्छवास निःश्वास नहीं लेने वाले भी हैं १-४. अथवा उच्छवास लेने वाला है और निःश्वास लेने वाला है १-४. अथवा उच्छवास लेने वाला है और उच्छवास निःश्वास नहीं लेने वाला है १-४. निःश्वास लेने वाला है और उच्छवास-निःश्वास नहीं लेने वाला है १-८. अथवा उच्छवास लेने वाला है, निःश्वास लेने वाला है और उच्छवास-निःश्वास नहीं लेने वाला है- ये आठ भंग हैं। इस प्रकार छब्बीस भंग होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र–१८

अपर्याप्त अवस्था में उच्छवास निःश्वास नहीं होता, इस अपेक्षा से उत्पल पत्र जीव को उच्छवास निःश्वास से शून्य बतलाया गया है।[2] द्रष्टव्य यंत्र–

एक-सांयोगिक भंग ६		
१	उ.	१
२	उ.	३
३	नि.	१
४	नि.	३
५	नो.	१
६	नो.	३

द्वि-सांयोगिक भंग १२		
	उ.	नि.
७	१	१
८	१	३
९	३	१
१०	३	३

	उ.	नो.
११	१	१
१२	१	३
१३	३	१
१४	३	३
	नि.	नो.
१५	१	१
१६	१	३
१७	३	१
१८	३	३

त्रि-सांयोगिक भंग ८			
	उ.	नि.	नो.
१९	१	१	१
२०	१	१	३
२१	१	३	१
२२	१	३	३
२३	३	१	१
२४	३	१	३
२५	३	३	१
२६	३	३	३

१. भ. वृ. ११ १७– शरीराण्येव तेषां पञ्चवर्णादीनि ते पुनरुत्पलजीवाः अप्पणत्ति स्वरूपेण स्वकीया वर्णादिभिर्रहिताः अमूर्तत्वात्तेषामिति।

२. वही, ११ १८ नो उस्सासनिस्सासए त्ति अपर्याप्तावस्थायाम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. ते णं भंते! जीवा किं आहारगा? अणाहरगा?
गोयमा! आहारए वा, अणाहारए वा—अट्ठ भंगा॥

ते भदन्त! जीवाः किम् आहारकाः? अनाहारकाः?
गौतम! आहारकः वा, अनाहारकः वा—अष्ट भङ्गाः।

१९. भंते! वे जीव आहारक हैं? अनाहारक हैं?
गौतम! आहारक भी है, अनाहारक भी है—इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र—१९

उत्पन्न पत्र का जीव आहारक होता है। केवल विग्रह में अनाहारक होता है।[1]

२०. ते णं भंते! जीवा किं विरया? अविरया? विरयाविरया?
गोयमा! नो विरया, नो विरया-विरया, अविरए वा अविरया वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं विरताः? अविरताः? विरताविरताः?
गौतम! नो विरताः, नो विरताविरताः, अविरतः वा अविरताः वा।

२०. भंते! वे जीव विरत हैं? अविरत हैं? विरताविरत हैं?
गौतम! विरत नहीं हैं, विरताविरत नहीं हैं, अविरत है अथवा अविरत हैं।

२१. ते णं भंते! जीवा किं सकिरिया? अकिरिया?
गोयमा! नो अकिरिया, सकिरिए वा सकिरिया वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं सक्रियाः? अक्रियाः?
गौतम! नो अक्रियाः, सक्रियः वा, सक्रियाः वा।

२१. भंते! वे जीव क्रिया सहित हैं? क्रिया-रहित हैं?
गौतम! क्रिया-रहित नहीं हैं, क्रिया-सहित है अथवा क्रिया-सहित हैं।

२२. ते णं भंते! जीवा किं सत्तविहबंधगा? अट्ठविहबंधगा?
गोयमा! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविह बंधए वा—अट्ठ भंगा॥

ते भदन्त! जीवाः किं सप्तविधबन्धकाः? अष्टविधबन्धकाः?
गौतम! सप्तविधबन्धकः वा, अष्टविधबन्धकः अष्ट भङ्गाः।

२२. भंते वे जीव सप्तविध बंधक हैं? अष्टविध बंधक हैं?
गौतम! सप्तविध बंधक भी है, अष्टविध बंधक भी है—इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

२३. ते णं भंते! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता? भयसण्णोवउत्ता? मेहुणसण्णोवउत्ता? परिग्गहसण्णोवउत्ता?
गोयमा! आहारसण्णोवउत्ता—असीती भंगा॥

ते भदन्त! जीवाः किम् आहारसंज्ञोपयुक्ताः? भयसंज्ञोपयुक्ताः? मैथुनसंज्ञोपयुक्ताः? परिग्रहसंज्ञोपयुक्ताः?
गौतम! आहारसंज्ञोपयुक्ताः—अशीतिः भङ्गाः।

२३. भंते! वे जीव आहार-संज्ञा से उपयुक्त हैं? भय-संज्ञा से उपयुक्त हैं? मैथुन-संज्ञा से उपयुक्त हैं? परिग्रह-संज्ञा से उपयुक्त हैं?
गौतम! आहार-संज्ञा से उपयुक्त हैं—अस्सी भंग होते हैं।

२४. ते णं भंते! जीवा किं कोह-कसाई? माणकसाई? मायाकसाई? लोभ-कसाई?
असीती भंगा॥

ते भदन्त! जीवा किं क्रोधकषायिणः? मानकषायिणः? मायाकषायिणः? लोभ-कषायिणः?
अशीतिः भङ्गाः।

२४. भंते! क्या वे जीव क्रोध-कषाय वाले हैं? मान-कषाय वाले हैं? माया-कषाय वाले हैं? लोभ-कषाय वाले हैं?
अस्सी भंग होते हैं।

२५. ते णं भंते! जीवा किं इत्थिवेदगा? पुरिसवेदगा? नपुंसग-वेदगा?
गोयमा! नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदए वा, नपुंसगवेदगा वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं स्त्रीवेदकाः? पुरुषवेदकाः? नपुंसकवेदकाः?
गौतम! नो स्त्रीवेदकाः, नो पुरुषवेदकाः, नपुंसकवेदकः वा, नपुंसकवेदकाः वा।

२५. भंते! वे जीव क्या स्त्रीवेद वाले हैं? पुरुषवेद वाले हैं? नपुंसकवेद वाले हैं?
गौतम! स्त्रीवेद वाले नहीं हैं, पुरुषवेद वाले नहीं हैं, नपुंसकवेद वाला है अथवा नपुंसकवेद वाले हैं।

२६. ते णं भंते! जीवा किं इत्थिवेद-

ते भदन्त! जीवाः किं स्त्रीवेदबन्धकाः?

२६. भंते! क्या वे जीव स्त्रीवेद बंधक हैं?

१. भ. वृ ११ · १९—विग्रहगतावनाहारकोन्यदा त्वाहारकस्तत्र चाष्टौ भंगाः पूर्ववत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधगा? पुरिसवेदबंधगा? नपुंसगवेद-बंधगा?

पुरुषवेदबन्धकाः? नपुंसकवेदबन्धकाः?

पुरुषवेद बंधक हैं? नपुंसकवेद बंधक हैं?

गोयमा! इत्थिवेदबंधए वा, पुरिस-वेदबंधए वा, नपुंसगवेदबंधए वा—छब्बीसं भंगा॥

गौतम! स्त्रीवेदबन्धकः वा, पुरुषवेद-बन्धकः वा, नपुंसकवेदबन्धकः वा—षड्विंशतिः भङ्गाः।

गौतम! स्त्रीवेद बंधक भी है, पुरुषवेद बंधक भी है, नपुंसकवेद बंधक भी है—छब्बीस भंग होते हैं।

२७. ते णं भंते! जीवा किं सण्णी? असण्णी?

गोयमा! नो सण्णी, असण्णी वा असण्णिणो वा।

ते भदन्त! जीवाः किं संज्ञिनः? असंज्ञिनः?

गौतम! नो संज्ञिनः, असंज्ञी वा असंज्ञिनः वा।

२७. भंते! वे जीव संज्ञी (समनस्क) हैं? असंज्ञी (अमनस्क) हैं?

गौतम! संज्ञी नहीं हैं, असंज्ञी है अथवा असंज्ञी हैं।

२८. ते णं भंते! जीवा किं सइंदिया? अणिंदिया?

गोयमा! नो अणिंदिया, सइंदिए वा, सइंदिया वा॥

ते भदन्त! जीवाः किं सेन्द्रियाः? अनिन्द्रियाः वा?

गौतम! नो अनिन्द्रियाः, सेन्द्रियः वा सेन्द्रियाः वा।

२८. भंते! क्या वे जीव इन्द्रिय सहित हैं? इन्द्रिय रहित हैं?

गौतम! इन्द्रिय रहित नहीं हैं। इन्द्रिय सहित है अथवा इन्द्रिय सहित हैं।

२९. से णं भंते! उप्पलजीवेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं॥

सः भदन्त! उत्पलजीवः इति कालतः कियच्चिरं भवति।

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्।

२९. [1]भंते! वह उत्पल जीव उत्पल जीव के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः असंख्येय काल।

३०. से णं भंते! उप्पलजीवे पुढवि-जीवे, पुणरवि उप्पलजीवेत्ति केवतियं कालं सेवेज्जा? केवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

गोयमा! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं असं-खेज्जाइं भवग्गहणाइं। कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा॥

सः भदन्त! उत्पलजीवः पृथ्वीजीवः, पुनः अपि उत्पलजीवः इति कियन्तं कालं सेवेत? कियन्तं कालं गत्यागती कुर्यात्?

गौतम! भवादेशेन जघन्येन द्वे भवग्रहणे, उत्कर्षेण असंख्येयानि भवग्रहणानि। कालादेशेन जघन्येन द्वौ अन्तर्मुहूर्तौ, उत्कर्षेण असंख्येयं कालं, एतावन्तं कालं सेवते एतावन्तं कालं गत्यागती करोति।

३०. भंते! वह उत्पल जीव पृथ्वीकायिक जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण (जन्म) करता है, उत्कृष्टतः असंख्येय भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः असंख्येय काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है।

भाष्य

१. सू. २९-३०

प्रस्तुत आलापक में उत्पल पत्र की स्थिति का विचार अनुबंध और काय-संवेध की दृष्टि से किया गया है उत्पल की स्थिति जघन्यतः दो मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्य काल है। यह अनुबंध की दृष्टि से विवक्षित है।

अनुबंध का अर्थ है—विवक्षित पर्याय में अविच्छिन्न रूप से अवस्थान करना,[1] उत्पल जीव का उत्पल के रूप में पुनर्जन्म। पुनर्जन्म के अनेक नियम हैं, उनमें एक है काय-संवेध। एक प्राणी वर्तमान काय से च्युत होकर तुल्य काय में अथवा किसी दूसरे काय में उत्पन्न होता है। वहां से च्युत होकर पुनः पूर्ववर्ती काय में जन्म लेता है। इस प्रक्रिया का नाम काय-संवेध है।[2]

काय-संवेध का विचार दो दृष्टियों से किया जाता है—भवादेश और कालादेश।

भवादेश—एक उत्पल पत्र का जीव वनस्पतिकाय से च्युत होकर पृथ्वीकाय जीव के रूप में उत्पन्न होता है। वहां से च्युत होकर फिर उत्पल पत्र के रूप में उत्पन्न होता है। इस प्रकार भवादेश की

१. भ. वृ. ११-२९-३०—भणबंधोत्ति विवक्षितपर्यायेण अविच्छिन्नेन अवस्थानम्।

२. (क) भ. ३२-११

(ख) भ. वृ. ११/२९-३०—कायसंवेहोत्ति विवक्षितकायात् कायान्तरं तुल्यकायं वा गत्वा पुनरपि यथासंभवं तत्रैवागमनम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा जघन्यतः दो जन्म (भव ग्रहण) होते हैं, उसका तीसरा जन्म किसी अन्य काय में होता है, उत्कृष्टतः असंख्य जन्म होता हैं।

कालादेश—एक उत्पल-पत्र का जीव वनस्पति काय से च्युत होकर पृथ्वीकायिक जीव के रूप में उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त्त तक जीवित रहता है। वहां से च्युत होकर पुनः अन्तर्मुहूर्त्त एक उत्पल-पत्र के रूप में उत्पन्न होता है। इस प्रकार काल की अपेक्षा उत्पल-पत्र की जघन्य स्थिति दो अन्तर्मुहूर्त्त होती है।[1]

३१. से णं भंते! उप्पलजीवे, आउजीवे, पुणरवि उप्पलजीवेत्ति केवतियं कालं सेवेज्जा? केवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

सः भदन्त! उत्पलजीवः अपजीवः, पुनरपि उत्पलजीवः इति कियन्तं कालं सेवेत? कियन्तं कालं गत्यागती कुर्यात्?

३१. भंते! वह उत्पल जीव अप्कायिक जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

एवं चेव। एवं जहा पुढविजीवे भणिए तहा जाव वाउजीवे भाणियव्वे॥

एवं चैव। एवं यथा पृथ्वीजीवः भणितः तथा यावत् वायुजीवः भणितव्यः।

पूर्ववत् वक्तव्यता। इस प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक जीव की वक्तव्यता, वैसे यावत् वायुकायिक जीव की वक्तव्यता।

३२. से णं भंते! उप्पलजीवे सेसव-णस्स-इजीवे से पुणरवि उप्पल-जीवेत्ति केवतियं कालं सेवेज्जा? केवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

सः भदन्त! उत्पलजीवः शेषवनस्पति-जीवः, सः पुनरपि उत्पलजीवः इति कियन्तं कालं सेवेत? कियन्तं कालं गत्यागतीं कुर्यात्?

३२. भंते! वह उत्पल जीव शेष वनस्पति कायिक जीव के रूप में उत्पन्न होता है, वह पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गोयमा! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अणंताइं भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं अणंतं कालं तरुकालं, एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा॥

गौतम! भवादेशेन जघन्येन द्वे भवग्रहणे, उत्कर्षेण अनन्तानि भवग्रहणानि, कालादेशेन जघन्येन द्वौ अन्तर्मुहूर्त्तौ, उत्कर्षेण अनन्तं कालं तरुकालं, एतावन्तं कालं सेवते, एतावन्तं कालं गतिमागतिं करोति।

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव ग्रहण (जन्म) करता है, उत्कृष्टतः अनंत भव-ग्रहण करता है काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल वनस्पति काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है।

भाष्य

१. सूत्र-३२

वनस्पति की कायस्थिति अनंतकाल की है[2] इसलिए इसमें अनंत भव ग्रहण और अनंत-काल का निर्देश किया गया है। तरुकाल वनस्पति काल का ही सूचक है।

३३. से णं भंते! उप्पलजीवे बेइंदिय-जीवे, पुणरवि उप्पलजीवेत्ति केवतियं कालं सेवेज्जा? केवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

सः भदन्त! उत्पलजीवः द्वीन्द्रियजीवः, पुनरपि उत्पलजीवः इति कियन्तं कालं सेवेत? कियन्तं कालं गत्यागतीं कुर्यात्?

३३. भंते! वह उत्पल जीव द्वीन्द्रिय जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गोयमा! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा। एवं तेइंदियजीवे, एवं चउरिंदियजीवे वि॥

गौतम! भवादेशेन जघन्येन द्वे भवग्रहणे, उत्कर्षेण संख्येयानि भवग्रहणानि, कालादेशेन जघन्येन द्वौ अन्तर्मुहूर्त्तौ, उत्कर्षेण संख्येयं कालं एतावन्तं कालं सेवते, एतावन्तं कालं गत्यागतीं करोति। एवं त्रीन्द्रियजीवः, एवं चतुरिन्द्रियजीवः अपि।

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण करता है, उत्कृष्टतः संख्येय भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीव की वक्तव्यता। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीव की वक्तव्यता।

---

१. भ. वृ. ११/३०- भवादेसेणं ति भवप्रकारेण भवमाश्रित्य इत्यर्थः, जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं ति एकं पृथ्वीकायिकत्वे ततो द्वितीयमुत्पलत्वे ततः परं मनुष्यादिति गतिं गच्छेदिति। कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्त त्ति पृथ्वीत्वेनान्तर्मुहूर्तं पुनरुत्पलत्वेनान्तर्मुहूर्तमित्येवं कालादेशेन जघन्यतो द्वे अन्तर्मुहूर्त्ते इति।

२. पण्ण. १८/११४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. से णं भंते! उप्पलजीवे पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियजीवे, पुणरवि उप्पल-जीवेत्ति—पुच्छा।

गोयमा! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भव-ग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं पुव्व-कोडिपुहत्तं, एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा। एवं मणुस्सेण वि समं जाव एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा॥

सः भदन्त! उत्पलजीवः पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकजीवः, पुनरपि उत्पलजीवः इति पृच्छा।

गौतम! भवादेशेन जघन्येन द्वे भवग्रहणे, उत्कर्षेण अष्ट भवग्रहणानि, कालादेशेन जघन्येन द्वौ अन्तर्मुहूर्तौ, उत्कर्षेण पूर्वकोटिपृथक्त्वम्, एतावन्तं कालं सेवते, एतावन्तं कालं गत्यागती करोति। एवं मनुष्येणापि समं यावत् एतावन्तं कालं गत्यागती करोति।

३४. 'भंते! वह उत्पल जीव पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है—पृच्छा।

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण करता है उत्कृष्टतः आठ भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व पूर्वकोटि इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है। इसी प्रकार मनुष्य के साथ उत्पल जीव की वक्तव्यता, यावत् इतने काल तक गति-आगति करता है?

भाष्य

१. सूत्र ३४

उत्पल पत्र का जीव पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनि में भव-ग्रहण कर पुनः उत्पल जीव में आता है। कालादेश की अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट कालावधि पूर्वकोटि पृथक्त्व है। उत्पल जीव के कायसंवेध की दृष्टि से उत्कृष्ट भव आठ होते हैं। उनमें चार पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनि के और चार उत्पल-पत्र जीव के होते हैं। उत्पल काय से निकले हुए जीव की उत्कृष्ट तिर्यक्पंचेन्द्रिय की स्थिति विवक्षित है। इस प्रकार चार पूर्व कोटि का कालमान। उत्पल जीवन के चार भवों का कालमान जोड़ने पर उसकी उत्कृष्ट कालावधि पूर्व कोटि पृथक्त्व होती है।[1]

उत्पल जीव और तिर्यक्पंचेन्द्रिय जीव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है इसलिए दोनों की कालावधि जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त होती है। द्रष्टव्य यंत्र—

भवादेश		कालादेश	
जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
दो भव	आठ भव	दो अन्तर्मुहूर्त	पृथक्त्व पूर्व कोटि (२-९ पूर्व कोटि)

३५. ते णं भंते! जीवा किमाहारमाहारेंति?

गोयमा! दव्वओ अणंतपदेसियाइं दव्वाइं, खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं, कालओ अण्णयरकाल-ट्ठियाइं, भावओ वण्णमंताइं गंध-मंताइं रस-मंताइं फासमंताइं एवं जहा आहारुद्देसए वणस्सइकाइयाणं आहारो तहेव जाव सव्व-प्पणयाए आहारमाहारेंति, नवरं—नियमा छद्दिसिं, सेसं तं चेव॥

ते भदन्त! जीवाः किमाहारम् आहरन्ति?

गौतम! द्रव्यतः अनन्तप्रदेशिकानि द्रव्याणि। क्षेत्रतः असंख्येयप्रदेशावगाढानि, कालतः अन्यतरकालस्थितिकानि, भावतः वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति एवं यथा आहारोद्देशके वनस्पतिकायिकानाम् आहारः तथैव यावत् सर्वात्मना आहारम् आहरन्ति नवरं—नियमात् षड् दिग्भ्यः, शेषं तत् चैव।

३५. भंते! वे जीव क्या आहार करते हैं?

गौतम! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त प्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्येय प्रदेशावगाढ़, काल की अपेक्षा किसी भी स्थिति वाले और भाव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्शयुक्त। इस प्रकार जैसे आहार-उद्देशक (प्रज्ञापना २८/३६) में वनस्पतिकायिक जीवों के आहार की वक्तव्यता, वैसे ही यावत् सर्व आत्म-प्रदेशों से आहार करता है। इतना विशेष है—नियमतः छहों दिशाओं से आहार करता है। शेष प्रज्ञापना की भांति वक्तव्यता है।

भाष्य

१. सूत्र ३५

वनस्पतिकायिक जीव यदि कोई व्याघात न हो तो छहों दिशाओं से आहार लेते हैं। यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से आहार लेते हैं।

पृथ्वीकायिक आदि के जीव सूक्ष्म होने के कारण लोक के कोण में भी उत्पन्न होते हैं इसलिए वे कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से आहार लेते हैं। उत्पल जीव बादर हैं। वे लोक के कोण में उत्पन्न नहीं होते इसलिए वे नियमतः छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।[2]

१. भ. वृ. ११/३४—उक्कोसेणं पुव्वकोडी पुहुत्तं ति चतुर्षु पंचेन्द्रिय-तिरंगभवग्रहणेषु चतस्रः पूर्वकोट्यः। उत्कृष्टकालस्य विवक्षितत्वेन उत्पलकायोद्वृत्त जीव योग्योत्कृष्टपंचेन्द्रियतिर्यक्स्थितेर्ग्रहणात्, उत्पल-जीवितं त्वेतान्यधिकमि त्येवमुत्कृष्टतः पूर्वकोटीपृथक्त्वं भवतीति।

२. भ. वृ. ११/३५—पृथ्वीकायिकादयः सूक्ष्मतया निष्कुटगतत्वेन स्याद्विनि स्यात् तिसृषु दिक्षु स्याच्चतसृषु दिक्षु इत्यादिनापि प्रकारेणाहार-माहारयन्ति, उत्पलजीवास्तु बादरत्वेन तथाविधनिष्कुटेष्वभावात् नियमात षट्सु दिक्ष्वाहारयन्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याघात और निर्व्याघात दिशा की स्थापना इस प्रकार है–

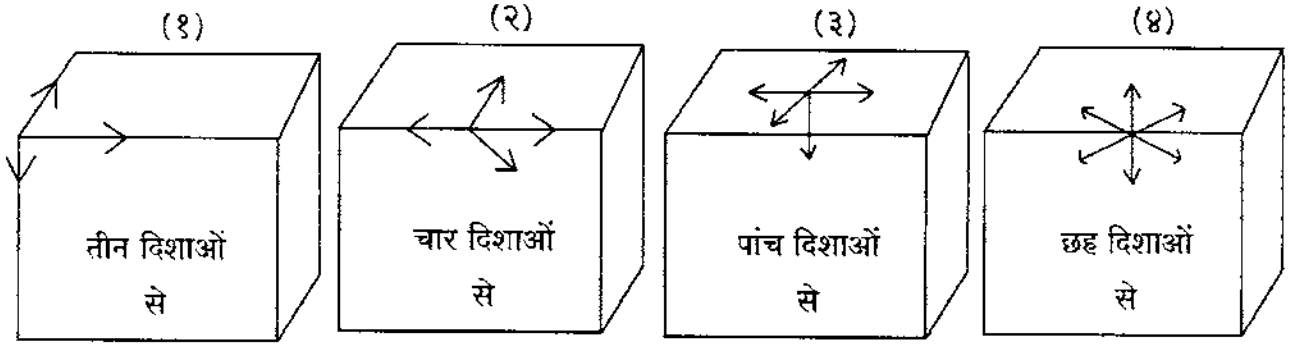

१. घन के एक कोण पर होने से नीची, पूर्व और उत्तर दिशाओं में।

२. घन के ऊपर की भुजा के बीच में होने से नीची, पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में।

३. घन के ऊपर के तल के मध्य में होने पर नीची, पूर्व, पश्चिम, उत्तर-दक्षिण दिशाओं में।

४. घन के बीच में कहीं भी होने पर छहों दिशाओं में।

३६. तेसि णं भंते! जीवाणं केवतियं कालं ठिई पण्णता?
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं॥

तेषां भदन्त! जीवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?
गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण दशवर्षसहस्राणि।

३६. भंते! उन जीवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?
गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष!

३७. तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाया पण्णत्ता?
गोयमा! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–वेदणासमुग्घाए, कसाय-समुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए॥

तेषां भदन्त! जीवानां कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! त्रयः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वेदनासमुद्घातः, कषायसमुद्घातः मारणान्तिकसमुद्घातः।

३७. भंते! उन जीवों के कितने समुद्घात प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! तीन समुद्घात प्रज्ञप्त हैं, जैसे–वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात।

३८. ते णं भंते! जीवा मारणंतिय-समुग्घाएणं किं समोहता मरंति? असमोहता मरंति?
गोयमा! समोहता वि मरंति, असमोहता वि मरंति॥

ते भदन्त! जीवाः मारणान्तिक-समुद्घातेन किं समवहताः म्रियन्ते? असमवहताः म्रियन्ते?
गौतम! समवहताः अपि म्रियन्ते, असमवहताः अपि म्रियन्ते।

३८. भंते! वे जीव मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत होकर मरते हैं? असमवहत रहकर मरते हैं?
गौतम! समवहत होकर भी मरते हैं, असमवहत रहकर भी मरते हैं।

३९. ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्व-ट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उवव-ज्जंति–किं नेरइएसु उववज्जंति? तिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जंति? एवं जहा वक्कंतीए उव्वट्टणाए वणस्सइ-काइयाणं तहा भाणियव्वं॥

ते भदन्त! जीवाः अनन्तरम् उद्वर्त्य कुत्र गच्छन्ति? कुत्र उपपद्यन्ते-किं नैरयिकेषु उपपद्यन्ते? तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यन्ते? एवं यथा अवक्रान्त्याम् उद्वर्त्तनायां वनस्पति-कायिकानां तथा भणितव्यम्।

३९. भंते! वे अनंतर उद्वर्तन कर कहां जाते हैं? कहां उत्पन्न होते हैं–क्या नैरयिक में उपपन्न होते हैं? तिर्यक् योनिक में उपपन्न होते हैं? इस प्रकार जैसे अवक्रान्ति पद (प्रज्ञापना ६/१०४) में वनस्पतिकायिक जीवों की उद्वर्तना वैसे ही उत्पल जीवों की वक्तव्यता।

भाष्य

१ सूत्र ३९

उत्पल जीव की उद्वर्तन के बाद दो गति ही होती है–तिर्यंच गति और मनुष्य गति।[1]

१. पण्ण. ६/१०३-१०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. अहं भंते! सव्वपाणा, सव्वभूता, सव्वजीवा, सव्वसत्ता उप्पलमूलत्ताए, उप्पलकंदत्ताए, उप्पलनालाए, उप्पलपत्तत्ताए, उप्पलकेसरत्ताए उप्पलकण्णियत्ताए, उप्पलथिभुगत्ताए उववन्नपुव्वा?

अथ भदन्त! सर्वप्राणाः सर्वभूताः, सर्वजीवाः सर्वसत्त्वाः उत्पलमूलत्वेन, उत्पलकन्दत्वेन, उत्पलनालतया, उत्पलपत्रत्वेन, उत्पलकेशरत्वेन, उत्पलकर्णिकत्वेन, उत्पलथिभुगत्वेन उत्पन्नपूर्वाः?

४०. [1]भंते! सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव, सर्व सत्त्व, उत्पल-मूल के रूप में, उत्पल-कंद के रूप में, उत्पल-नाल के रूप में, उत्पल-पत्र के रूप में, उत्पल-केसर के रूप में, उत्पल कर्णिका के रूप में और उत्पल-स्तबक (शाखा का वह भाग, जहां से पत्र निकलते हैं) के रूप में पहले उपपन्न हुए हैं?

हंता गोयमा! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो॥

हन्त! गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

हां गौतम! अनेक बार अथवा अनंत बार।

भाष्य

१. सूत्र-४०

एक स्थान में बार-बार जन्म लेना और अनंत बार जन्म लेना—ये पुनर्जन्म के नियम हैं। इसकी विस्तृत जानकारी के लिए बारहवां शतक द्रष्टव्य है।[1]

उत्पल-केसर—कर्णिका के चारों ओर के अवयव.[2] फूल के बीच का सींका या रेशा।[3]

उत्पल कर्णिका—बीज कोश

उत्पल थिभुग—उत्पल का वह भाग, जहां से पत्र निलकते हैं।

४१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति।

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

४१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भ. १२ १३०-१५२

२. भ. वृ. ११ ४०—इह केसराणि—कर्णिकायाः परितोऽवयवाः।

३. बृहद् हिंदी शब्द कोश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल

सालुयादिजीवाणं उववायादि-पदं

४२. सालुए णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे?

गोयमा! एगजीवे। एवं उप्पलुद्देसग-वत्तव्वया अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अणंतक्खुत्तो नवरं—सरीरो-गाहणा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखे-ज्जइभागं उक्कोसेणं धणु-पुहत्तं, सेसं तं चेव॥

४३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

संस्कृत छाया

शालूकादि जीवानाम् उपपातादि-पदम्

शालूकं भदन्त! एकपत्रकं किम् एकजीवः? अनेकजीवः?

गौतम! एकजीवः। एवम् उत्पलोद्देशक-वक्तव्यता अपरिशेषा भणितव्या यावत् अनन्तकृत्वः, नवरं—शरीरावगाहना जघन्येन अङ्गुलस्य असंख्येयतमभागम्, उत्कर्षेण धनुः पृथक्त्वं, शेषं तत् चैव।

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

हिन्दी अनुवाद

शालु आदि जीवों का उपपात आदि-पद

४२. भंते! एकपत्रक शालु क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

गौतम! एक जीव वाला है। इस प्रकार उत्पल-उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है यावत् अनन्त बार, इतना विशेष है—शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल का असंख्येय भाग, उत्कृष्टतः पृथक्त्व धनुष, शेष पूर्ववत्।

४३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
४४. पलासे णं भंते? एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे?	४४. पलाशं भदन्त! एकपत्रकं किम् एकजीवः? अनेकजीवः?	४४. भंते! एकपत्रक पलाश क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?
एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया अपरिसेसा भाणियव्वा, नवरं—सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहत्ता। देवेहिंतो न उववज्जंति॥	एवम् उत्पलोद्देशकवक्तव्यता अपरिशेषा भणितव्या, नवरं—शरीरावगाहना जघन्येन अङ्गुलस्य असंख्येयतमभागम्, उत्कर्षेण गव्यूतपृथक्त्वा। देवेभ्यः न उपपद्यन्ते।	इस प्रकार उत्पल उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है, इतना विशेष है—शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्टतः पृथक्त्व गव्यूत। देव गति से उपपन्न नहीं होते हैं।
४५. लेसासु—ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेस्सा? नीललेस्सा? काउलेस्सा?	लेश्यासु ते भदन्त? जीवाः किं कृष्णलेश्याः? नीललेश्याः? कापोतलेश्याः?	४५. भंते! वे जीव कृष्ण लेश्या वाले हैं? नील लेश्या वाले हैं? कापोत लेश्या वाले हैं?
गोयमा! कण्हलेस्से वा नीललेस्से वा काउल्लेस्से वा—छब्बीसं भंगा, सेसं तं चेव॥	गौतम! कृष्णलेश्यः वा नीललेश्यः वा कापोतलेश्यः वा—षड्विंशतिः भङ्गाः, शेषं तत् चैव।	गौतम! कृष्ण लेश्या वाले भी हैं, नील लेश्या वाले भी हैं, कापोत लेश्या वाले भी हैं—छब्बीस भंग होते हैं, शेष पूर्ववत्।
४६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	४६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
४७. कुंभिए णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे? एव जहा पलासुद्देसए तहा भाणियव्वे, नवरं—ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वासपुहत्तं सेसं तं चेव॥	कुम्भिकः भदन्त! एकपत्रकः किम् एकजीवः? अनेकजीवः? एवं यथा पलाशोद्देशके तथा भणितव्यः, नवरं—स्थितिः जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं, शेषं तत् चैव।	४७. भंते! एकपत्रक कुंभी क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है? इस प्रकार जैसे पलाश उद्देशक की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व वर्ष, शेष पूर्ववत्।
४८. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	४८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
४९. नालिए णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे? एवं कुंभिउद्देसगवत्तव्वया निरवसेसं भाणियव्वा॥	नालिकः भदन्त! एकपत्रकः किम् एकजीवः? अनेकजीवः? एवम् कुम्भिकोद्देशकवक्तव्यता निरवशेषा भणितव्या।	४९. भंते! एकपत्रक नाड़ीक क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है? इस प्रकार कुंभी उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से कथनीय है।
५०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	५०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छट्ठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छायाः	हिन्दी अनुवाद
५१. पउमे णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे? एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा॥	पद्म भदन्त! एकपत्रकं किम् एकजीवः? अनेकजीवः? एवम् उत्पलोद्देशकवक्तव्यता निरवशेषा भणितव्या।	५१. भंते! एकपत्रक पद्म क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है? इस प्रकार उत्पल उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से कथनीय है।
५२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	५२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
५३. कण्णिए णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे? एवं चेव निरवसेसं भाणियव्वं॥	कर्णिकः भदन्त! एकपत्रकः किम् एकजीवः? अनेकजीवः? एवं चैव निरवशेषं भणितव्यम्।	५३. भंते! एकपत्रक कर्णिका क्या एक जीव वाली है? अनेक जीव वाली है? इस प्रकार पूर्ववत् सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है।
५४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति।	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	५४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
५५. नलिणे णं भंते! एगपत्तए किं एगजीवे? अणेगजीवे? एवं चेव निरवसेसं जाव अणंत-खुत्तो॥	नलिनं भदन्त! एकपत्रकं किम् एकजीवः? अनेकजीवः? एवं चैव निरवशेषं यावत् अनन्तकृत्वः।	५५. भंते! एकपत्रक नलिन क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है? इस प्रकार पूर्ववत् सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है यावत् अनन्त बार उपपन्न हुए हैं।

भाष्य

१ सूत्र ४२-५५

वनस्पति के इन आठ पदों से कुछ रहस्यपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। इनमें पांच पद प्रशस्त हैं—उत्पल, शालु, पद्म, कर्णिका, नलिन। इसीलिए इनमें देव देवलोक से च्युत होकर जन्म ले सकते हैं। पलाश, कुंभी, नाडीक—ये तीन अप्रशस्त हैं इसलिए इनमें किसी देव की उत्पत्ति नहीं होती। प्रशस्त पदों में देव का उपपात होता है इसलिए उनमें तेजोलेश्या बतलाई गई है। शेष तीन पदों में देवों की उत्पत्ति नहीं होती इसलिए उनमें तीन अप्रशस्त लेश्याएं होती हैं, तेजोलेश्या नहीं होती।[1] द्रष्टव्य यंत्र—

	अवगाहना	उपपात	लेश्या	स्थिति
शालू	जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी, उत्कृष्टतः पृथक्त्व धनुष	उत्पलवत्	उत्पलवत्	उत्पलवत्
पलाश	जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी, उत्कृष्टतः पृथक्त्व गव्यूत	देवों से उपपन्न नहीं होते	कृष्ण लेश्या नील लेश्या कापोत लेश्या	उत्पलवत्
कुंभी	पलाशवत्	पलाशवत्	पलाशवत्	जघन्यतः अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्टतः पृथक्त्व वर्ष
नाडीक	कुंभीवत्	कुंभीवत्	कुंभीवत्	कुंभीवत्
पद्म कर्णिका, नलिन	उत्पलवत्	उत्पलवत्	उत्पलवत्	उत्पलवत्

५६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	५६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

[redacted]

१. भ. वृ. ११/४२-५५—उत्पलोद्देशके हि देवेभ्य उद्वृत्ता उत्पले उत्पद्यन्त इत्युक्तमिह तु पलाशे नोत्पद्यन्त इति वाच्यम्, अप्रशस्तत्वात्तस्य, यतस्ते प्रशस्तेष्वेवोत्पलादि वनस्पतिषूत्पद्यन्त इति।.....यदा किल तेजोलेश्यायुतो देवो देवभवादुद्धृत्य वनस्पतिषूत्पद्यते तदा तेषु तेजोलेश्या लभ्यते, न च पलाशे देवत्वोद्वृत्त उत्पद्यते पूर्वोक्तयुक्तेः एवं चेह तेजोलेश्या न संभवति, तदाभावादाद्या एव तिस्रो लेश्या इह भवन्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देसो : नौवां उद्देशक

मूल

सिवरायरिसि-पदं

५७. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था–वण्णओ। तस्स णं हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे, एत्थ णं सहसंबवणे नामं उज्जाणे होत्था–सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे रम्मे णंदणवण-सन्निभप्पगासे सुहसीतलच्छाए मणोरमे सादुप्फले अकंटए, पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे॥

५८. तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे सिवे नामं राया होत्था–महयाहिमवंत महंत - मलय - मंदर - महिंदसारे– वण्णओ। तस्स णं सिवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था–सुकुमाल-पाणिपाया–वण्णओ। तस्स णं सिवस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए अत्तए सिवभद्दे नामं कुमारे होत्था–सुकुमालपाणिपाए, जहा सूरियकंते जाव रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे-पच्चुवेक्खमाणे विहरइ॥

५९. तए णं तस्स सिवस्स रण्णो अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि रज्जधुरं चिंतेमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-ज्जित्था–अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं

संस्कृत छाया

शिवराजर्षि-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये हस्तिनापुरः नामनगरमासीत्–वर्णकः। तस्य हस्तिनापुरस्य नगरस्य बहिस्ताद् उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे, अत्र सहस्राम्रवनं नाम उद्यानमासीत्, सर्वर्तुक-पुष्प-फल-समृद्धं रम्यं नन्दनवनसन्निभप्रकाशं सुखशीतलच्छायं मनोरमं स्वादुफलम् अकण्टकं, प्रासादीयं दर्शनीयम् अभिरूपं प्रतिरूपम्।

तत्र हस्तिनापुरे नगरे शिवः नाम नृपः आसीत्–महत्हिमवत्-महत्-मलय-मन्दर-महेन्द्रसारः–वर्णकः। तस्य शिवस्य राज्ञः धारिणी नाम देवी आसीत्–सुकुमालपाणिपादा–वर्णकः। तस्य शिवस्य राज्ञः पुत्रः धारिण्याः आत्मजः शिवभद्रः नाम कुमारः आसीत्–सुकुमारपाणिपादः, यथा सूर्यकान्तः यावत् राज्यं च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोषं च कोष्ठागारं च पुरं च अन्तःपुरं च स्वयमेव प्रत्युपेक्षमाणः–प्रत्युपेक्षमाणः विहरति।

ततः तस्य शिवस्य राज्ञः अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये राज्यधुरां चिन्तयतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–अस्ति तावत् मे पुरा पुराणानां सुचीर्णानां सुपराक्रान्तानां शुभानां कल्याणानां कृतानां कर्मणां कल्याणफल-

हिन्दी अनुवाद

शिवराजर्षि-पद

५७. उस काल उस समय में हस्तिनापुर नाम का नगर था–वर्णक। उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशि भाग में सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था–सर्व ऋतु में पुष्प, फल से समृद्ध रम्य, नन्दनवन के समान प्रकाशक, सुखद शीतल छाया वाला, मनोरम, स्वादिष्ट फल युक्त, कंटकरहित, द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय।

५८. उस हस्तिनापुर नगर में शिव नाम का राजा था–वह महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति–वर्णक। उस शिवराजा के धारिणी नाम की देवी थी–सुकुमाल हाथ पैर वाली–वर्णक। उस शिवराजा का पुत्र और धारिणी का आत्मज शिवभद्र नाम का कुमार था–सुकुमार हाथ पैर वाला, सूर्यकांत (रायपसेणइयं ६७३-६७४) की भांति वक्तव्यता यावत् राज्य, राष्ट्र, बल वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर और अंतःपुर की स्वयं प्रत्युप्रेक्षणा (निरीक्षण) करता हुआ, प्रत्युप्रेक्षणा करता हुआ विहरण कर रहा था।

५९. 'उस शिव राजा के एक बार किसी मध्यरात्रि में राज्यधुरा का चिन्तन करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक स्मृत्यात्मक अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–इस समय मेरे पूर्वकृत, पुरातन, सुआचरित, सुपराक्रांत, शुभ और क्रांत, शुभ कल्याणकारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि, रज्जेणं वड्ढामि, एवं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण संतसार-सावएज्जेणं अतीव-अतीव अभि-वड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोरा-णाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहमाणे विहरामि? तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि जाव अतीव-अतीव अभिवड्ढामि जाव मे सामंतरायाणो वि वसे वट्टंति, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सुबहुं लोहि-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं घडावेत्ता सिवभद्दं कुमारं रज्जे ठावेत्ता तं सुबहुं लोहि-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं गहाय जे इमे गंगाकुले वाणपत्था तावसा भवंति, (तं जहा-होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जहा ओववाइए जाव आयावणाहिं पंचग्गि-तावेहिं इंगाल-सोल्लियं कंदुसोल्लियं कट्ठसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरंति)

तत्थ णं जे ते दिसापोक्खी तावसा तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसा-पोक्खिय-त्तावसत्ताए पव्वइत्तए, पव्वइते वि य णं समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभि-गिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्क-वालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सुबहुं लोहीलोह-कडाह-कडच्छुयं तंबियं तावस-भंडगं घडावेत्ता कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! हत्थिणापुरं नगरं सब्भ-ब्भंतरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जितोवलित्तं जाव सुगन्धवरगन्धियं गन्धवट्टिभूतं करेह य कारवेह य, करेत्ता कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते वृत्तिविशेषः. येनाहं हिरण्येन वर्धे, सुवर्णेन वर्धे, धनेन वर्धे, धान्येन वर्धे, पुत्रैः वर्धे, पशुभिः वर्धे, राज्येन वर्धे, एवं राष्ट्रेण बलेन वाहनेन कोषेण कोष्ठागारेण पुरेण अन्तः-पुरेण वर्धे, विपुलधन-कनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शङ्ख-शिला-प्रवाल-रक्तरत्न-सत्सारस्वापतेयेन अतीव-अतीव अभि-वर्धे, तत् किम् अहं पुरा पुराणानां सुचीर्णानां सुपराक्रान्तानां शुभानां कल्याणानां कृतानां कर्मणा एकान्तशः क्षयम्' उपेक्षमाणः विहरामि। तत् यावत्-तावत् अहं हिरण्येन वर्धे यावत् अतीव-अतीव अभिवर्धे यावत् मे सामन्तराजानोऽपि वशे वर्तन्ते, तावत् मे श्रेयः कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति सुबहु लौही-लोहकटाह 'कडुच्छयं' ताम्रिकं तापसभाण्डकं घटयित्वा शिवभद्रं कुमारं राज्ये स्थापयित्वा तत् सुबहु लौही-लोहकटाह-'कडुच्छयं' ताम्रिकं तापस-भाण्डकं गृहीत्वा ये इमे गङ्गाकुले वानप्रस्थाः तापसाः भवन्ति, (तद्यथा—होत्रियाः पोतिकाः कोत्रिकाः यथा औपपातिके यावत् आतापनाभिः पञ्चाग्नितापैः अङ्गार-'सोल्लियं' कन्दु'सोल्लियं' काष्ठ-'सोल्लियं' इव आत्मानं कुर्वाणाः विहरन्ति) तत्र ये ते दिशाप्रोक्षिणः तापसाः तेषामन्तिकं मुण्डः भूत्वा दिशाप्रोक्षित-तापसत्वेन प्रव्रजितुम्, प्रव्रजितोऽपि च सन् इममेतद्रूपमभिग्रहम् अभिग्रहिष्यामि—कल्पते मे यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन दिशाचक्रवालेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखस्य आतापन-भूम्याम् आतापयतः विहर्तुम्, इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति सुबहु लौही-लोहकटाह-'कडुच्छयं' ताम्रिकं तापस-भाण्डकं घटयित्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो! देवानुप्रियाः! हस्तिनापुरं नगरं साभ्य-न्तरबाह्यकम् आसिक्तसम्मार्जितोपलिप्तं यावत् सुगन्धवरगन्धिकं गन्धवर्तिभूतं कुरुत च कारयत च, कृत्वा कारयित्वा च एनामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयतः। ते अपि

कर्मों का कल्याणदायी फल मिल रहा है, जिससे मैं चांदी, सोना, धन, धान्य, पुत्र, पशु तथा राज्य से बढ़ रहा हूं। इसी प्रकार राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठा-गार, पुर और अंतःपुर से बढ़ रहा हूं। विपुल वैभव धन, सोना, रत्न, मणि मोती, शंख, शिला, प्रवाल, लालरत्न (पद्म राग मणि) और श्रेष्ठ-सार—इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं, तो क्या मैं पूर्वकृत पुरातन सुआचरित, सुपरा-क्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्मों का केवल क्षय करता हुआ विहरण कर रहा हूं? इसलिए जब तक मैं चांदी से वृद्धि कर रहा हूं यावत् इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं और जब तक सामंत राजा वश में रहते हैं तब तक मेरे लिए श्रेय है—दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्र-रश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बहुत सारे तवा, लोह-कडाह, कडछी, ताम्रपात्र आदि तापस-भंड बनवा कर, कुमार शिवभद्र को राज्य में स्थापित कर, उन बहुत तवा, लोह-कडाह, कडछी, ताम्रपात्र आदि तापस-भंड को लेकर जो इस गंगा के किनारे वानप्रस्थ तापस रहते हैं (जैसे—अग्निहोत्रिक, वस्त्रधारी, भूमि पर सोने वाले जैसे औपपातिक में वक्तव्यता है यावत् पंचाग्नि तप के द्वारा अंगारों से पक्व, लोह की कड़ाही में पक्व, काष्ठ से पक्व, श्याम वर्ण की भांति अपने आपको बनाते हुए विहार कर रहे हैं।)

उनमें जो दिशाप्रोक्षिक (दिशा का प्रक्षालन करने वाले) तापस हैं उनके पास मुंड होकर दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित होकर मैं इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार करूंगा—मैं जीवन भर निरन्तर बेले-बेले (दो दिन के उपवास) द्वारा दिशाचक्रवाल तप की साधना करूंगा। मैं आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ विहार करूंगा। ऐसी संप्रेक्षा करता है। संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! हत्थिणापुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जि-ओवलित्तं जाव सुगंध-वरगंधगंधियं गंधवट्टीभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बहुत सारे तवा, कडाह, कड़छी, ताम्र-पात्र आदि तापस-भंड बनवाकर, कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! हस्तिनापुर नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़-बुहार जमीन की सफाई करो, गोबर की लिपाई करो यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंधवर्ती तुल्य करो, कराओ। ऐसा कर और करवा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

भाष्य

१. सूत्र ५९

शब्द विमर्श–

होत्तिय–अग्निहोत्रिक।

पोत्तिय–कापासिक वस्त्र पहनने वाले।

कोत्तिय–भूमि पर सोने वाले।

इंगालसोल्लिय–अंगार से पका हुआ।

कंदुसोल्लिय–कंदु में पका हुआ।

कट्ठसोल्लिय–काष्ठ से पका हुआ।

दिशा चक्रवालतपः–कर्म का विशेषण है। इस तप के अनुष्ठान में चारों दिशाओं में जो अनुष्ठान किया जाता है, उसका वर्णन भगवती (११/६४-७०) में उपलब्ध है। वृत्तिकार ने दिशाचक्रवाल तपःकर्म की व्याख्या पारणा से संबंधित की है। पारणा के दिन एक-एक दिशा में होने वाले फल आदि का आहार किया जाता है; इसलिए वह तपःकर्म दिशा चक्रवाल तपःकर्म कहलाता है।[1]

६०. तए णं से सिवे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! सिवभद्दस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव उवट्ठवेंति॥

ततः सः शिवः राजा द्विः अपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो! देवानुप्रियाः! शिवभद्रस्य कुमारस्य महार्थं महार्घ्यं महार्हं विपुलं राजाभिषेकम् उपस्थापयत। ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव उपस्थापयन्ति।

६०. उस शिव राजा ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! कुमार शिवभद्र के लिए शीघ्र ही महान् अर्थ वाला, महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला विपुल राज्याभिषेक उपस्थित करो। उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही राज्याभिषेक उपस्थित किया।

६१. तए णं से सिवे राया अणेगगण-नायग - दंडनायग - राईसर - तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय - इब्भ - सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिपाल-सद्धिं संपरिवुडे सिवभद्दं कुमारं सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं, निसियावेइ, निसियावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-णिग्घोसणा- इयरवेणं महया-महया रायाभिसेगेणं अभिसिंचइ, अभि-

ततः सः शिवः राजा अनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-'तलवर'-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-दूत-संधिपाल-सार्धं सम्परिवृतः शिवभद्रं कुमारं सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखे निषादयति, निषाद्य अष्टशतेन सौवर्णिकानां कलशानां यावत् अष्टशतेन भौमेयानां कलशानां सर्वर्द्धया यावत् दुन्दुभि-निर्घोषनादितरवेण महता महता राजाभिषेकेण अभिषिञ्चति, अभिषिच्य पक्ष्मलसुकुमालेन सुरभिणा गन्धकाषायिणा गात्राणि

६१. अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजे, युवराज, कोटवाल, मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल के साथ संपरिवृत होकर उस शिवराजा ने कुमार शिवभद्र को पूर्वाभिमुख कर, प्रवर सिंहासन पर बिठाया, बिठाकर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों यावत् एक सौ आठ भौमेय (मिट्टी के) कलशों के द्वारा संपूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के द्वारा महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त

१. भ. वृ. ११/५४–एकत्र पारणके पूर्वस्यां दिशि यानि फलादीनि तान्याहृत्य भुक्ते, द्वितीये तु दक्षिणस्यामित्येवं दिक्चक्रवालेन यत्र तपःकर्मणि पारणककरणं तत्तपः कर्म दिक्चक्रवालमुच्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंचित्ता पम्हल-सुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति एवं जहेव जमालिस्स अलंकारो तहेव जाव कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेइ, करेत्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसा-वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिवभद्दं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता ताहिं इट्ठाहिं कंताहि पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणा-भिरामाहिं हियय-गमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजय-मंगलसएहिं अण-वरयं अभिणंदंतो य अभित्थुणंतो य एवं वयासी—जय-जय नंदा! जय-जय भद्दा! भद्दं ते, अजियं जिणाहि जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि। इंदो इव देवाणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुयाणं बहूइं वासाइं बहूइं वाससयाइं बहूइं वाससहस्साइं बहूइं वाससयसहस्साइं अणहस-मग्गो हट्ठतुट्ठो परमाउं पालयाहि, इट्ठजण-संपरिवुडे हत्थिणापुरस्स नगरस्स, अण्णेसिं च बहूणं गामा-गर-नगर-खेड-कव्वड - दोणमुह - मडंब - पट्टण-आसम-निगम - संवाह - सण्णिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट - गीय- वाइय-तंती-तल - ताल - तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति॥

मार्जति, मार्जयित्वा सरसेण गोशीर्ष-चन्दनेन गात्राणि अनुलिम्पति एवं यथैव जमालेः अलंकारो तथैव यावत् कल्पवृक्षकं इव अलंकृत-विभूषितं करोति, कृत्वा करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा शिवभद्रं कुमारं जयेन विजयेन वर्धयति, वर्धयित्वा ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभिः मनोज्ञाभिः 'मणामाहिं' मनोभिरा- माभिः, हृदयगमनी-याभिः वल्गुभिः जय-विजयमङ्गलशतैः अनवरतम् अभिनन्दन्तः च अभिष्टुवन्तः च एवमवादीत्—जय-जय नन्दा! जय-जय भद्रा! भद्रं ते, अजितं जय जितं पालय, जितमध्ये वस। इन्द्रः इव देवानां, चमरः इव असुराणां, धरणः इव नागानां, चन्द्रः इव ताराणां, भरतः इव मनुष्याणां बहूनि वर्षाणि बहूनि वर्षशतानि बहूनि वर्षसहस्राणि बहूनि वर्षशतसहस्राणि अनघसमग्रः हृष्टतुष्टः परमायुः पालय, इष्टजनसम्परिवृतः हस्तिनापुरस्य नगरस्य, अन्येषां च बहूनां ग्राम-आकर-नगर-खेट-कर्बट-द्रोणमुख-मडम्ब - पत्तन - आश्रम - निगम-सम्बाध-सन्निवेशानाम् आधिपत्यं पौरपत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वं महत्तरकत्वम् आज्ञा-ईश्वर-सेनापत्यं कारयन् पालयन् महत्-आहत-नाट्य-गीत-वादित-तन्त्री-तल-ताल-'तुडिय' घन-मृदङ्ग-पटुप्रवादितरवेण विपुलानि भोग-भोगानि भुञ्जानः विहर इति कृत्वा जय जय शब्दं प्रयुञ्जते।

किया। अभिषिक्त कर रोएंदार सुकुमार सुरभित गंध-वस्त्र से गात्र को पोंछा, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन का गात्र पर अनुलेप किया, इस प्रकार जैसे जमालि के अलंकारों की वक्तव्यता उसी प्रकार यावत् कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत-विभूषित कर दिया। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर कुमार शिवभद्र की 'जय हो विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर उन इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, मनोभिराम, हृदय का स्पर्श करने वाली वाणी और जय-विजय सूचक मंगल शब्दों के द्वारा अनवरत अभिनन्दन और अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले—हे नंद! समृद्धपुरुष! तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे भद्रपुरुष! तुम्हारी जय हो, जय हो। भद्र हो। अजित को जीतो, जित की पालना करो, जीते हुए लोगों के मध्य निवास करो। देवों में इन्द्र, असुरों में चमरेन्द्र, नागों में धरणेन्द्र, तारागण में चन्द्र और मनुष्यों में भरत की भांति अनेक वर्षों तक, सैकड़ों, हजारों लाखों वर्षों तक परमपवित्र, हृष्ट-तुष्ट होकर परम आयुष्य का पालन करो। इष्टजनों से संपरिवृत होकर हस्तिनापुर नगर के अन्य अनेक ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पत्तन, आश्रम, निगम, संभाग और सन्निवेश का आधिपत्य, पौरपत्य, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञा, ऐश्वर्य, सेनापतित्व करते हुए, उनका पालन करते हुए आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदंग की महान ध्वनि से युक्त विपुल भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार करो, इस प्रकार जय जय शब्द का प्रयोग किया।

६२. तए णं से सिवभद्दे कुमारे राया जाते—महया हिमवंत-महंत-मलय-

ततः सः शिवभद्रः कुमारः राजा जातः—महत्हिमवत्-महत् - मलय - मन्दर-महेन्द्र-

६२. वह कुमार शिवभद्र राजा हो गया—महान हिमालय, महान मलय, मेरु और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदर-महिंदसारे, वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ॥

सारः, वर्णकः यावत् राज्यं प्रशासयन् विहरति।

महेन्द्र की भांति—वर्णक यावत् राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

६३. तए णं से सिवे राया अण्णया कयाइ सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-मुहुत्त-नक्खत्तंसि विपुलं असण - पाण - खाइम - साइमं उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्तनाइ-नियम-सयण-संबंधि-परिजणं रायाणो य खत्तिए य आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए तेणं मित्त-नाइ-नियग - सयण - संबंधि-परिजणेणं रायहि य खत्तिएहि सद्धिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसा-देमाणे वीसा-देमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

ततः सः शिवः राजा अन्यदा कदाचित् शोभने तिथि-करण-दिवस-मुहूर्त्त-नक्षत्रे विपुलम् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यम् उपस्कारयति, उपस्कार्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं राज्ञः च क्षत्रियान् च आमन्त्रयन्ति, आमन्त्र्य ततः पश्चात् स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुक-मङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि माङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितः अल्पमहार्घ्याभरणालङ्कृतशरीरः भोजनवेलायां भोजन-मण्डपे सुखासन-वरगतः तेन मित्र-ज्ञाति-निजक - स्वजन - सम्बन्धि - परिजनेन राजभिः च क्षत्रियैः सार्धं विपुलम् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यम् आस्वादयन् विस्वादयन् परिभाजयन् परिभुञ्जानः विहरति।

६३. उस शिवराजा ने किसी समय शोभन तिथि, करण, दिवस, मुहूर्त्त, और नक्षत्र में विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पकवाया। पकवाने के बाद मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों को आमंत्रित किया। आमंत्रित करने के पश्चात् स्नान, बलिकर्म (पूजा) कौतुक (तिलक) आदि इष्ट नमस्कार रूप मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध-प्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित) प्रवर मांगलिक वस्त्र पहनकर, अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत कर भोजन की वेला में भोजन-मण्डप में सुखासन की मुद्रा में बैठा हुआ वह उन मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों के साथ उस विपुल भोजन, पेय, खाद्य और स्वाद्य का आस्वाद लेता हुआ, विशिष्ट स्वाद लेता हुआ, बांटता हुआ और परिभोग करता हुआ रह रहा था।

जिमियभुत्तुरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइब्भूए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेइ सम्मोणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग - सयण - संबंधि-परिजणं रायाणो य खत्तिए य सिवभद्दं च रायाणं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं गहाय जे इमे गंगाकूलगा वाणपत्था तावसा भवंति, तं चेव जाव तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसा-पोक्खियत्ताव-सत्ताए पव्वइए, पव्वइए वि य णं समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसा-चक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए—अयमेयारूवं अभिग्गहं

जिमितभुक्तोत्तरागत अपि सन् आचान्तः चोक्षः परमशुचीभूतः तं मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं विपुलेन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन वस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारेण च सत्करोति सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य च तं मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं राज्ञः च क्षत्रियान् च शिवभद्रं च राजानम् आपृच्छति, आपृच्छ्य सुबहु लौही-लौहकटाह-'कडुच्छुयं' ताम्रिकं तापस-भाण्डकं गृहीत्वा ये इमे गङ्गाकूलकाः वानप्रस्थाः तापसाः भवन्ति, तत् चैव यावत् तेषाम् अन्तिकं मुण्डः भूत्वा दिशाप्रोक्षिततापसत्वेन प्रव्रजितः, प्रव्रजितोऽपि सन् इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति—कल्पते मे यावज्जीवं षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन दिशाचक्रवालेन तपः कर्मणा ऊर्ध्वं-बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य विहर्तुम्—इममेतद्रूपमभिग्रहम् अभिगृह्य प्रथमं षष्ठक्षपणम् उपसम्पद्य विहरति।

उसने भोजन कर आचमन किया, आचमन कर वह स्वच्छ और परम शुचीभूत बैठने के स्थान पर आया। वहां उसने उन मित्र, ज्ञातियों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को विपुल भोजन, पेय, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों से तथा वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, माला और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन मित्रों, ज्ञातिजनों कुटुम्बियों, स्वजनों, संबंधियों, परिजनों, राजाओं, क्षत्रियों और राजा शिवभद्र की अनुमति ली। अनुमति लेकर वह बहुत सारे तवा, लोहकडाह, कड़छी, ताम्र-पात्र आदि तापस भंड लेकर जो गंगा किनारे वानप्रस्थ तापस रहते थे, पूर्ववत् यावत् उनके पास मुंड होकर दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित हुआ। प्रव्रजित होकर उसने इस आकार वाला यह अभिग्रह स्वीकार किया—मैं जीवन भर निरन्तर बेले बेले (दो दो दिन के उपवास) द्वारा दिशा चक्रवाल तपःकर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिगिण्हित्ता पढमं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥

की साधना करूंगा, मैं आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन लेता हुआ विहार करूंगा—इस आकार वाला अभिग्रह अभिगृहीत कर प्रथम बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६४. तए णं से सिवे रायरिसी पढम-छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावण-भूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं-अभिरक्खउ सिवं राय- रिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पसरइ, पसरित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गेण्हित्ता किढिणसंकाइयगं भरेइ, भरेत्ता दब्भे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोडं च गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं ठवेइ, ठवेत्ता वेदिं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवणं संमज्जणं करेइ, करेत्ता दब्भकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता गंगं महानदिं ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता जलकीडं करेइ, करेत्ता जलाभिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए देवय-पिति-कयकज्जे दब्भकलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाएहि य वेदिं रएति, रएता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गिं पाडेइ, पाडेत्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जा-

ततः सः शिवः राजर्षिः प्रथमषष्ठक्षपण-पारणके आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य वाकलवस्त्र-'नियत्थे' यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य 'किढिण'-'संकाइयगं' गृह्णाति, गृहीत्वा पौरस्त्यां दिशां प्रोक्षति, पौरस्त्यायां दिशायां सोमः महाराजः प्रस्थाने प्रार्थितम् अभिरक्षतु शिवं राजर्षिम्, अभिरक्षतु शिवं राजर्षिम्, यानि च तत्र कन्दानि च मूलानि च त्वचः च पत्राणि च पुष्पाणि च फलानि च बीजानि च हरितानि च तानि अनुजानातु इति कृत्वा पौरस्त्यां दिशां प्रसरति, प्रसृत्य यानि च तत्र कन्दानि च यावत् हरितानि च तानि गृह्णाति, गृहीत्वा 'किढिण'—'संकाइयगं' भरति, भृत्वा दर्भान् च कुशान् च समिधः च पत्रामोटं च गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैवोपागच्छति, उपागम्य 'किढिण'—'संकाइयगं' स्थापयति, स्थापयित्वा वेदीं वर्धयति, वर्धयित्वा उपलेपनं सम्मार्जनं करोति, कृत्वा दर्भकलशहस्तगतः यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गङ्गां महानदीम् अवगाहते, अवगाह्य जलमज्जनं करोति, कृत्वा जलक्रीडां करोति, कृत्वा जलाभिषेकं करोति, कृत्वा आचान्तः चोक्षः परमशुचीभूतः देवता-पितृ-कृतकार्यः दर्भ-कलशहस्तगतः गङ्गायाः महानद्याः प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य दर्भैः च कुशैः च बालुकाभिः च वेदीं रचयति, रचयित्वा, शरकेन अरणिं मथ्नाति, मथित्वा अग्निं पातयति, पातयित्वा संधुक्षति, संधुक्ष्य समित्काष्ठानि प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य, अग्निम् उज्ज्वालयति, उज्ज्वाल्य 'अग्नेः दक्षिणे पार्श्वे, सप्त अङ्गानि समादहेत्, तद्यथा—

६४. शिवराजर्षि प्रथम बेले के पारणे में आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल वस्त्र पहन कर जहां अपना उटज (पर्णशाला) था, वहां आया। वहां आकर बंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया। ग्रहण कर पूर्व दिशा में जल छिड़का। जल छिड़क कर कहा—पूर्व दिशा के लोकपाल महाराज सोम प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें। उस दिशा में जो कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरित हैं, उनकी अनुज्ञा दें—यह कहकर पूर्व दिशा में गया। जाकर जो वहां कंद यावत् हरित थी उसे ग्रहण किया, ग्रहण कर बंशमय-पात्र भरा, भर कर दर्भ, कुश, समिधा (ईंधन) और पत्र चूर्ण ग्रहण किया। ग्रहण कर जहां अपना उटज था वहां आया। वहां आकर बंशमय पात्र और कावड़ को रखा। रख कर वेदी का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन कर उपलेपन और सम्मार्जन किया। सम्मार्जन कर हाथ में दर्भ कलश लेकर जहां गंगा नदी थी, वहां गया। वहां जाकर महानदी गंगा में अवगाहन किया। अवगाहन कर जल में मज्जन किया, देह शुद्धि की। देह-शुद्धि कर जल-क्रीड़ा की, जल-क्रीड़ा कर जलाभिषेक किया, जलाभिषेक कर, जल का स्पर्श कर वह स्वच्छ और परम शुचीभूत (साफ-सुथरा) हो गया। देव पितरों का कृतकार्य जलांजलि अर्पित कर, दर्भ-कलश हाथ में लेकर महानदी गंगा से नीचे उतरा, उतरकर जहां अपना उटज था वहां आया, वहां आकर दर्भ, कुश और बालुका वेदी की रचना की, रचना कर शरकण्डों से अरणि का मंथन किया, मंथन कर अग्नि को उत्पन्न किया, उत्पन्न कर अग्नि को गुलगाया, सुलगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेत्ता "अग्गिस्स दाहिणे पासे, सत्तंगाइं समादहे," (तं जहा–

कर उसमें समिधा काष्ठ डाला, डाल कर अग्नि को प्रदीप्त किया, प्रदीप्त कर अग्नि के दक्षिण पार्श्व में सात अंगों को स्थापित किया, जैसे–

सकहं वक्कलं ठाणं,
सिज्जाभंडं कमंडलुं।
दंडदारुं तहप्पाणं,
अहे ताइं समादहे॥१॥)

'सकहं' वल्कलं स्थानं,
शय्याभाण्डं कमण्डलुम्।
दण्डदारू तथात्मानं,
अधः तानि समादहेत्॥१॥

अस्थि, वल्कल, ज्योति-स्थान, शय्या, भाण्ड, कमण्डलु, दण्ड-दारु और स्व-शरीर।

महुणा य घएण य तंदुलेहि य अग्गिं हुणइ, हुणित्ता चरुं साहेइ, साहेत्ता बलिवइस्सदेवं करेइ, करेत्ता अतिहिपूयं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति।

मधुना च घृतेन च तन्दुलैः च अग्निं जुहोति, हुत्वा चरुं साधयति साधयित्वा, बलिवैश्वदेवं करोति, कृत्वा अतिथि पूजां करोति, कृत्वा ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहरति।

मधु, घृत और चावल का अग्नि में हवन किया, हवन कर चरु–बलि-पात्र में बलि योग्य द्रव्य को पकाया, पका कर वैश्रमण देव की पूजा की, अतिथियों–आगन्तुकों का पूजन किया। पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६५. तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥

ततः सः शिवः राजर्षिः द्वितीयं षष्ठक्षपणम् उपसम्पद्य विहरति।

६५. वह शिव राजर्षि दूसरे बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६६. तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता दाहिणगं दिसं पोक्खेइ, दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव जाव तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ॥

ततः सः शिवः राजर्षिः द्वितीये षष्ठक्षपणपारणके आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य वाकलवस्त्र'नियत्थे' यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य 'किढिण'-संकाइयगं गृह्णाति, गृहीत्वा दक्षिणकां दिशां प्रोक्षति, दक्षिणायां दिशायां यमः महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितम् अभिरक्षतु शिवं राजर्षिं, शेषं तत् चैव यावत् ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहरति।

६६. वह शिवराजर्षि दूसरे बेले के पारणे में आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां आया। वहां आकर बंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर दक्षिण दिशा में जल को छिड़का। जल छिड़ककर कहा–दक्षिण दिशा के लोकपाल महाराज यम प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६७. तए णं से सिवे रायरिसी तच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥

ततः सः शिवः राजर्षिः तृतीयं षष्ठक्षपणम् उपसम्पद्य विहरति।

६७. वह शिव राजर्षि तीसरे बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६८. तए णं से सिवे रायरिसी तच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता पच्चत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पच्चत्थिमाए

ततः सः शिवः राजर्षिः तृतीये षष्ठक्षपणपारणके आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य वाकलवस्त्र'नियत्थे' यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य 'किढिण-संकाइयगं' गृह्णाति, गृहीत्वा पाश्चात्यां दिशां प्रोक्षति, पाश्चात्यायां दिशायां वरुणः महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितम्

६८. वह शिव राजर्षि तीसरे बेले के पारणे में आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां अया, वहां आकर बंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर पश्चिम दिशा में जल को छिड़का, जल छिड़क कर कहा–पश्चिम दिशा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिसाए वरुणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव जाव तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ॥

अभिरक्षतु शिवं राजर्षिं शेषं तत् चैव यावत् ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहरति।

लोकपाल महाराज वरुण प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६९. तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥

ततः सः शिवः राजर्षिः चतुर्थं षष्ठक्षपणं उपसम्पद्य विहरति।

६९. वह शिव राजर्षि चतुर्थ बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

७०. तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थे छट्ठक्खमणं पारणगंसि आयावण-भूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता उत्तरदिसं पोक्खेइ, उत्तराए दिसाए वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव जाव तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ॥

ततः सः शिवः राजर्षिः चतुर्थे षष्ठक्षपण-पारणके आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य वाकलवस्त्र'नियत्थे' यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति. उपागम्य 'किढिण'-'संकाइयगं' गृह्णाति, गृहीत्वा उत्तरदिशां प्रोक्षति, उत्तरायां दिशायां वैश्रमणः महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितम् अभिरक्षतु शिवं राजर्षिं, शेषं तत् चैव यावत् ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहरति।

७०. वह शिव राजर्षि चतुर्थ बेले के पारणे में आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था वहां आया, वहां आकर वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर उत्तर दिशा में जल को छिड़का, जल छिड़कर कहा—उत्तर दिशा के लोकपाल महाराज वैश्रमण प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिव राजर्षि की अभिरक्षा करें शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

७१. तए णं तस्स सिवस्स रायरि-सिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसा-चक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइ-भद्दयाए पगइ-उवसंतयाए पगइपयणु-कोहमाण-मायालोभयाए मिउमद्दव-संपन्नयाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गणगवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासति अस्सिं लोए सत्त दीवे सत्त समुद्दे, तेणं परं न जाणइ, न पासइ॥

ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन दिशाचक्रवालेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखस्य आतापनभूम्याम् आतापयतः प्रकृतिभद्रतया प्रकृत्युपशान्ततया प्रकृतिप्रतनुक्रोधमान-मायालोभेन मृदुमार्दवसम्पन्नतया, आलीन-तया विनीततया अन्यदा कदाचित् तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोह-मार्गणागवेषणां कुर्वतः विभङ्गः नाम ज्ञानं समुत्पन्नम्। सः तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति अस्मिन् लोके सप्त द्वीपान् सप्त समुद्रान्, तस्मात् परं न जानाति, न पश्यति।

७१. 'निरन्तर बेले बेले (दो-दो दिन का उपवास) दिशा चक्रवाल तप के द्वारा आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव संपन्नता, आत्म लीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम कर ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए उस शिवराजर्षि के विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ। वह उस समुत्पन्न विभंग ज्ञान के द्वारा उस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र को देखने लगा। उससे आगे न जानता है और न देखता है।

भाष्य

१. सूत्र ७१

पात्र भेद के आधार पर अवधिज्ञान के दो रूप बनते हैं—सम्यग्दृष्टि का अवधिज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है और मिथ्यादृष्टि का अवधिज्ञान विभंग ज्ञान कहलाता है। विकास की दृष्टि से दोनों में बहुत अंतर है। द्रष्टव्य भगवई ८/१८६-१९१।

शब्द विमर्श:—

दिशा पोक्खिय—दिशा में जल का अर्घ्य चढ़ाकर फल पुष्प आदि चुनने वाले।[1]

किढिण—बांस से निर्मित तापस पात्र।

संकाइयगं—कावड़।[2]

वेदी—देव अर्चना स्थान।

१. भ. वृ. ११ ५०—उदकेन दिशः प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुचिन्वन्ति।

२. भ. वृ. ११ ६४—सांकायिकं भारोद्वहनस्थेयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे-समुप्पज्जित्था–अत्थि णं ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य–एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आयावण-भूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं लोही-लोह-कडाह-कडच्छुयं तंबियं तावस-भंडगं किढिण-संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंड-निक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य।।

ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि– अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च–एवं सम्प्रेक्षते सम्प्रेक्ष्य आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य वाकलवस्त्र-'नियत्थे' यत्रैव स्वकः उटजः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य सुबहु लौही-लोहकटाह-'कडुच्छयं' ताम्रिकं तापस-भाण्डकं 'किढिण'–'संकाइयगं' च गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं यत्रैव तापसावसथः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य भाण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च।

७२. उस शिव राजर्षि के इस आकार वाला आध्यात्मिक स्मृत्यात्मक अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। इससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं–इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां आया, वहां आकर बहुत सारे तवा, लोह-कड़ाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस-भाण्ड, बंश-मय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां तापस रहते थे वहां आया, वहां आकर भांड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजनों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करता है–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

७३. तए णं तस्स सिवस्स रायरि-सिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिंघा-डग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह- महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्ण-स्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं मन्ने एवं?

ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रिय! शिवः राजर्षिः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-अस्ति देवानुप्रियाः। मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः च समुद्राः च। तत् कथमेतद् मन्ये एवम्?

७३. उस शिव राजर्षि के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करता है–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं, यह कैसे है?

७४. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया। धम्मो कहियो परिसा पडिगया।।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता। धर्मः कथितः। प्रतिगता परिषद्।

७४. उस काल और उस समय भगवान महावीर आए। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जहा बितिय-सए नियंठुद्देसए जाव घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहु-जणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणु-प्पिया! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–अत्थि णं देवाणु-प्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं मन्ने एवं?

तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवतः महावीरस्य ज्येष्ठः अन्तेवासी इन्द्रभूतिः नाम अनगारः यथा द्वितीयशते निर्ग्रन्थो-देशके यावत् गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् बहुजनशब्दं निशाम्यति, बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रिया! शिवः राजर्षिः एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च। तत् कथमेतद् मन्ये एवम्?

७५. उस काल और उस समय भगवान महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी इंद्रभूति नामक अनगार जैसे द्वितीय शतक में निर्ग्रंथ उद्देशक की वक्तव्यता यावत् सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने, बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं। यह कैसे है?

७६. तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे जाव समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी–एवं खलु भंते! अहं तुब्भेहिं अब्भ-णुण्णाए समाणे हत्थिणापुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमु-दाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि–एवं खलु देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एव-माइक्खइ जाव परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य॥

ततः भगवान् गौतमः बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य जातश्रद्धः यावत् श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-एवं खलु भदन्त! अहं भवद्भिः अभ्यनुज्ञातः सन् हस्तिनापुरे नगरे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् बहुजनशब्दं निशाम्यामि–एवं खलु देवानु-प्रियाः! शिवः राजर्षिः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति–अस्ति देवानुप्रियाः! मम अति-शेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च।

७६. बहुजनों के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर भगवान गौतम के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई यावत् भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–भंते! मैंने आपकी अनुज्ञा पाकर हस्तिनापुर नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने–देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

७७. से कहमेयं भंते! एवं?

गोयमादि! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–जण्णं गोयमा! एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्क-वालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावण-भूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइ-पयणुकोह-माणमायालोभयाए मिउ-मद्दव-संपन्नयाए अल्लीणयाए विणीय-

तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?

गौतम अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् एवमवादीत्–यत् गौतम! एवं खलु एतस्य शिवस्य राजर्षेः षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन दिशाचक्रवालेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखस्य आतापनभूम्याम् आतापयतः प्रकृतिभद्रतया प्रकृत्युपशान्तया प्रकृतिप्रतनुक्रोधमान-मायालोभेन मृदुमार्दवसम्पन्नतया आलीन-तया विनीततया अन्यदा कदाचित् तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन

७७. भंते! वह इस प्रकार कैसे है?

अयि गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा–गौतम! निरन्तर बेले बेले (दो दिन का उपवास) दिशा चक्रवाल तपःकर्म के द्वारा, आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशान्तता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव संपन्नता, आत्म-लीनता और विनीतता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याए अण्णया कयाइ तया-वरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गणगवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग - चउक्क - चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एव-माइक्खइ जाव एवं परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य॥

तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क - चच्चर - चउम्मुह - महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एव-माइक्खइ जाव परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य, तण्णं मिच्छा। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि–एवं खलु जंबुद्दीवादीया दीवा, लवणदीया समुद्दा संठाणओ एगविहिविहाणा, वित्थारओ अणेग-विहिविहाणा एवं जहा जीवाभिगमे जाव सयंभूरमणपज्जवसाणा अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता समणाउसो!

ईहापोहमार्गणगवेषणं कुर्वतः विभङ्गः नाम ज्ञानं समुत्पन्नम्। तत् चैव सर्वं भणितव्यं यावत् भाण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च।

ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रियाः! शिवः राजर्षिः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च, तत् मिथ्या। अहं पुनः गौतम! एवमाख्यामि यावत् प्ररूपयामि–एवं खलु जम्बू-द्वीपादिकाः द्वीपाः, लवणादिकाः समुद्राः संस्थानतः एकविधिविधानाः, विस्तारतः अनेकविधिविधानाः एवं यथा जीवाभिगमे यावत् स्वयंभूरमणपर्यवसानाः अस्मिन् तिर्यक्लोके असंख्येयाः द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन्!

के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम कर ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए उस शिव राजर्षि के विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ। पूर्ववत् सर्व वक्तव्य है। यावत भण्ड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर अनेक व्यक्तियों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करता है–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

उस शिव राजर्षि के पास यह अर्थ सुनकर अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर अनेक व्यक्ति इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रियो! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं–वह मिथ्या है। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करता हूं–इस प्रकार जम्बूद्वीप आदि द्वीप, लवण आदि समुद्र संस्थान से एक विधि विधान-गोलवृत्त वाले हैं, विस्तार से अनेक विधिविधान–क्रमशः द्विगुण द्विगुण विस्तार वाले हैं। इस प्रकार जैसे जीवाभिगम की वक्तव्यता है, यावत् आयुष्मन् श्रमण! इस तिर्यक् लोक में स्वयंभूरमण तक असंख्येय द्वीप-समुद्र प्रज्ञप्त हैं।

७८. अत्थि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे दव्वाइं–सवण्णाइं पि, अवण्णाइं पि संगधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि, अरसाइं पि सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्ण-घडत्ताए चिट्ठंति?

अस्ति भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे द्रव्याणि–सवर्णानि अपि, अवर्णानि अपि, सगन्धानि अपि अगन्धानि अपि, सरसानि अपि अरसानि अपि, सस्पर्शानि अपि अस्पर्शानि अपि, अन्योन्यबद्धानि अन्योन्यस्पृष्टानि अन्योन्यबद्धस्पृष्टानि अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?

७८. भंते! जम्बूद्वीप द्वीप में द्रव्य–वर्ण सहित भी हैं? वर्ण रहित भी हैं? गंध सहित भी हैं? गंध रहित भी हैं? रस सहित भी हैं? रस रहित भी हैं? स्पर्श सहित भी हैं? स्पर्श रहित भी हैं? अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंता अत्थि॥

हन्त अस्ति।

हां, है।

७९. अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे दव्वाइं-सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सर-साइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्ण-बद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्ध-पुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! लवणसमुद्रे द्रव्याणि-सवर्णानि अपि अवर्णानि अपि, सगन्धानि अपि अगन्धानि अपि, सरसानि अपि अरसानि अपि, सस्पर्शानि अपि अस्पर्शानि अपि, अन्योन्यबद्धानि अन्योन्यस्पृष्टानि अन्योन्यबद्धस्पृष्टानि अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?
हन्त अस्ति।

७९. भंते! लवण समुद्र में द्रव्य-वर्ण सहित भी हैं, वर्ण रहित भी हैं? गंध सहित भी हैं? गंध रहित भी हैं, रस सहित भी हैं, रस रहित भी हैं, स्पर्श सहित भी हैं, स्पर्श रहित भी हैं, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?
हां, हैं।

८०. अत्थि णं भंते! धायइसंडे दीवे दव्वाइं-सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?
हंता अत्थि। एवं जाव-

अस्ति भदन्त! धातकीखण्डे द्वीपे द्रव्याणि सवर्णानि अपि अवर्णानि अपि, सगन्धानि अपि अगन्धानि अपि, सरसानि अपि अरसानि अपि, सस्पर्शानि अपि अस्पर्शानि अपि, अन्योन्यबद्धानि अन्योन्यस्पृष्टानि अन्योन्यबद्धस्पृष्टानि अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?
हन्त अस्ति। एवं यावत्-

८०. भंते! धातकी खण्ड द्वीप में द्रव्य-वर्ण सहित भी हैं, वर्ण रहित भी हैं, गन्ध सहित भी हैं, गन्ध रहित भी हैं, रस सहित भी हैं, रस रहित भी हैं, स्पर्श सहित भी हैं, स्पर्श रहित भी हैं, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?
हां हैं। इस प्रकार यावत्-

८१. अत्थि णं भंते! सयंभूरमणसमुद्दे दव्वाइं-सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि, अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्ण-मण्णबद्ध-पुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! स्वयंभूरमणसमुद्रे द्रव्याणि-सवर्णानि अपि अवर्णानि अपि, सगन्धानि अपि अगन्धानि अपि, सरसानि अपि अरसानि अपि, सस्पर्शानि अपि अस्पर्शानि अपि अन्योन्यबद्धानि अन्योन्यस्पृष्टानि अन्योन्यबद्धस्पृष्टानि अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?
हन्त अस्ति।

८१. भंते! स्वयंभूरमण समुद्र में द्रव्य वर्ण सहित भी हैं, वर्ण रहित भी हैं, गन्ध सहित भी हैं, गन्ध रहित भी हैं, रस सहित भी हैं, रस रहित भी हैं, स्पर्श सहित भी हैं, स्पर्श रहित भी हैं, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट अन्योन्य बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?
हां हैं।

८२. तए णं सा महतिमहालिया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

ततः सा महातिमहती महार्चा परिषद् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः दिशः प्रादुर्भूता तस्यामेव दिशि प्रतिगता।

८२. वह विशालतम ऐश्वर्यशाली परिषद् श्रमण भगवान महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गई। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

८३. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एव-माइक्खइ जाव परूवेइ जण्णं देवाणु-प्पिया! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परू-वेइ-अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं

ततः हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति यत् देवानुप्रियाः! शिवः राजर्षिः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त

८३. हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं-देवानुप्रिय! शिव राजर्षि जो यह आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं-देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेणं परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। तं नो इणट्ठे समट्ठे, समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं तं चेव जाव भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य तण्णं मिच्छा, समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ –एवं खलु जंबुद्दीवादीया दीवा लवणदीया समुद्दा तं चेव जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता समणाउसो!

द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च। तत् नो अयमर्थः समर्थः, श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति–एवं खलु एतस्य शिवस्य राजर्षेः षष्ठंषष्ठेन तत चैव यावत् भाण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा हस्तिनापुरे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु अस्मिन् लोके सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः, तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च। ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य यावत् तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः द्वीपाः च समुद्राः च तत् मिथ्या, श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति–एवं खलु जम्बूद्वीपादिकाः द्वीपाः लवणादिकाः समुद्राः तत् चैव यावत् असंख्येयाः द्वीप-समुद्राः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन्!

समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं–यह अर्थ संगत नहीं है। श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–इस शिव राजर्षि के बेले बेले तप द्वारा शेष पूर्ववत् यावत् भाण्ड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राज-मार्गों और मार्गों पर बहुजनों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं। उस शिवराजर्षि के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर यावत् उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं–वह मिथ्या है। श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान करते हैं–आयुष्मान् श्रमण! इस जंबूद्वीप आदि द्वीप, लवण आदि समुद्र पूर्ववत् यावत् असंख्येय द्वीप और समुद्र प्रज्ञप्त हैं।

८४. तए णं से सिवे रायरिसी बहु-जणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए वितिगि-च्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने जाए या वि होत्था। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स संकियस्स कंखियस्स वितिगि-च्छियस्स भेदसमावन्नस्स कलुस-मावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव परिवडिए।।

ततः सः शिवः राजर्षिः बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य शङ्कितः कांक्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुष-समापन्नः जातः चापि आसीत्। ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः शङ्कितस्य कांक्षितस्य विचिकित्सितस्य भेदसमापन्नस्य कलुष-समापन्नस्य तत विभंगः ज्ञानं क्षिप्रमेव परिपतितः।

८४. शिवराजर्षि बहुजनों के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद समापन्न और कलुष-समापन्न हो गया। शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष समापन्न उस शिवराजर्षि के वह विभंग ज्ञान शीघ्र ही प्रतिपतित हो गया।

८५. तए णं तस्स सिवस्स रायरि-सिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु समणे भगवं महावीरे तित्थगरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु

ततः तस्य शिवस्य राजर्षेः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–एवं खलु श्रमणः भगवान् महावीरः तीर्थंकरः आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी आकाशगतेन चक्रेण यावत् सहस्राम्रवने उद्याने यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति, तत् महत्फलं खलु तथारूपाणाम् अर्हतां भगवतां नाम

८५. शिव राजर्षि के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर, आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत धर्मचक्र से शोभित यावत् सहस्राम्रवन उद्यान में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं। देवानुप्रिय!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण - वंदण - नमंसण - पुडिपुच्छण-पज्जुवासणाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तावसावसहं अणुप्पविसइ अणुप्पविसित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं किढिण संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता तावसावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पडिवडियविब्भंगे हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणेउज्जाणे, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिकडे पज्जुवासइ॥

गोत्रस्यापि श्रवणं, किमङ्ग पुनः अभिगमन-वंदन-नमस्यन-प्रतिप्रच्छन पर्युपासनम्? एकस्यापि आर्यस्य धार्मिकस्य सुवचनस्य श्रवणं किमङ्ग पुनः विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणम्? तत् गच्छामि श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे यावत् पर्युपासे, एतत् नः प्रेत्यभवे इहभवे च हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भविष्यति इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य यत्रैव तापसावसथः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तापसावसथम् अनुप्रविशति अनुप्रविश्य सुबहु लौही-लोहकटाह-'कडच्छुयं' ताम्रिकं तापसभाण्डकं किढिण-संकाइयगं' च गृह्णाति गृहीत्वा तापसावसथात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य प्रतिपतितविभङ्गः हस्तिनापुरं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवनम् उद्यानम् यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा नात्यासन्नः नातिदूरः शुश्रूषमाणः नमस्यन् अभिमुखः विनयेन कृत-प्राञ्जलिः पर्युपास्ते।

ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान फलदायक है फिर विपुल अर्थ ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए मैं जाऊं, श्रमण भगवान महावीर की वंदना करूं यावत् पर्युपासना करूं। यह मेरे इस भव और पर भव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा—इस प्रकार संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर जहां तापस गृह था, वहां आया, वहां आकर, तापसगृह में अनुप्रवेश करता है, अनुप्रवेश कर बहुत सारे तवा, लोह-कडाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस-भाण्ड, वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर तापस-आवस से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर विभंग ज्ञान से प्रतिपतित वह हस्तिनापुर नगर के बीचों-बीच निर्गमन करता है, निर्गमन कर जहां सहस्राम्रवन उद्यान है, जहां भगवान महावीर हैं, वहां आया, वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धांजलि होकर पर्युपासना करता है।

८६. तए णं समणे भगवं महावीरे सिवस्स रायरिसिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भवइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः शिवस्य राजर्षेः तस्यां च महामहात्यां परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् आज्ञायाः आराधकः भवति।

८६. श्रमण भगवान महावीर शिवराजर्षि को उस विशालतम धर्म परिषद् में धर्म कहते हैं यावत् आज्ञा की आराधना होती है।

८७. तए णं से सिवे रायरिसी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म जहा खंदओ जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं किढिण-संकाइयगं च एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता समणं

ततः सः शिवः राजर्षिः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य यथा स्कन्दकः यावत् उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अपक्रामति, अपक्रम्य लौही-लोहकटाह-'कडच्छुयं' ताम्रिकं तापसभाण्डकं 'किढिण-संकाइयगं' च एकान्ते एडयति, एडयित्वा स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-

८७. शिवराजर्षि भगवान महावीर के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर स्कंदक की भांति यावत् उत्तर पूर्व दिशा में जाता है, जाकर तवा, लोह-कटाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस- भाण्ड, वंशमय-पात्र और कावड़ को एकांत में डाल देता है, डालकर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच करता है, लोच कर श्रमण भगवान महावीर को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं जहेव उसभदत्तो तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, तहेव सव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे॥

प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवं यथैव ऋषभदत्तः तथैव प्रव्रजितः तथैव एकादश अङ्गानि अधीते, तथैव सर्वं यावत् सर्वदुःखप्रहीणः।

दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त प्रव्रजित हुआ वैसे ही शिवराजर्षि प्रव्रजित हो गया। उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, उसी प्रकार सर्व यावत् सर्व दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

८८. भंतेति! भगवं गोयमे! समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– जीवा णं भंते! सिज्झमाणा कयरम्मि संघयणे सिज्झंति?

भदन्त! अयि! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीद्–जीवाः भदन्त! सिध्यन्तः कतरे संहयणे सिध्यन्ति?

८८. भंते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को इस संबोधन से संबोधित कर वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं?

गोयमा! वइरोसभणाराय - संघयणे सिज्झंति, एवं जहेव ओववाइए तहेव।

संघयणं संठाणं,
उच्चत्तं आउयं च परिवसणा।
एवं सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्वा जाव–
अव्वाबाहं सोक्खं,
अणुहोंति सासयं सिद्धा॥

गौतम! वज्रऋषभनाराचसंहनने सिध्यन्ति, एवं यथैव औपपातिके तथैव।

संहयणं संस्थानं
उच्चत्वम्, आयुष्यकं च परिवसना।
एवं सिद्धिकण्डिका निरवशेषा भणितव्या यावत्–
अव्याबाधं सौख्यं,
अनुभवन्ति शाश्वतं सिद्धाः।

गौतम! वज्रऋषभनाराच संहनन में सिद्ध होते हैं। इस प्रकार जैसे औपपातिक की वक्तव्यता है वैसे ही संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयुष्य और परिवसन। इस प्रकार सिद्धिगंडिका (औ. सू. १८५-१९५) तक निरवशेष वक्तव्य है यावत् सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

८९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

८९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी व्याख्या
खेत्तलोय-पदं	**क्षेत्रलोक-पदम्**	**क्षेत्रलोक-पद**
९०. रायगिहे जाव एवं वयासी– कतिविहे णं भंते! लोए पण्णत्ते?	राजगृहः यावत् एवमवादीत्क–कतिविधः भदन्त! लोकः प्रज्ञप्तः?	९०. [1]राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! चउव्विहे लोए पण्णत्ते, तं जहा–दव्वलोए, खेत्तलोए, काल- लोए, भावलोए॥	गौतम! चतुर्विधः लोकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा- द्रव्यलोकः, क्षेत्रलोकः, काललोकः, भावलोकः।	गौतम! लोक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है. जैसे–द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक. भावलोक।

भाष्य

१. सूत्र-९०

लोक तीन भागों में विभक्त है–अधोलोक, तिर्यक् लोक और उर्ध्व लोक।

लोक का प्रमाण चौदह रज्जु है। अधोलोक का प्रमाण कुछ अधिक सात रज्जु है। तिर्यक् लोक का प्रमाण अठारह सौ योजन है। ऊर्ध्व लोक का प्रमाण कुछ न्यून सप्त रज्जु है।

अधोलोक तप्र के संस्थान वाला है।

मध्यलोक झल्लरी संस्थान वाला है।

ऊर्ध्वलोक ऊर्ध्वमुख वाले मृदंग के समान है।

झल्लरी–वाद्य यंत्र में झल्लरी की संरचना का विशद वर्णन उपलब्ध है–तश्तरी को बीच में से थोड़ा उभार देने पर झांझ व मर्तीरे बन जाते हैं। आकार व धातु की भिन्नता के आधार पर उनकी अनगिनत किस्में हैं। पांच सेंटीमीटर व्यास के मजीरा या जाल्रा से लेकर तीस से भी अधिक सेंटीमीटर व्यास वाले आसाम के बौरताल तक इनकी सभी किस्में कांसे या पीतल की बनी होती हैं। लगभग समतल प्लेट से लेकर गहरी घंटी की आवृत्तियों तक इन वाद्यों के बीच का उभार भी भिन्न-भिन्न मात्राओं में पाया जाता है। इन सभी किस्मों के नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। सामान्यतः छोटे आकार वाली किस्मों को जाल्रा, झल्लरी, करताल, ताली, तालम, एलन्तालम, कुम्पित्तालम और अपेक्षाकृत बृहदाकार किस्मों को झांझ, झल्लरी बृहत्तालम ब्रह्मतालम, बौरताल तथा कुछ अन्य नामों से पुकारा जाता है।[1]

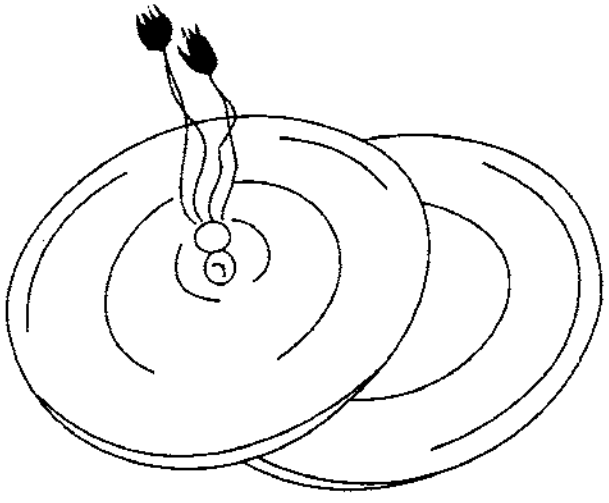

झल्लरी

मृदंग–यह दो मुखवाला अनवद्ध वाद्य है। यह लगभग साठ सेंटीमीटर लंबा होता है। यह बीच से फूला होता है, इसका दायां मुख बाएं मुख की अपेक्षा कुछ छोटा होता है। बायां मुख, जिसे टोपी कहा जाता है, दो पर्तों वाला और अपेक्षाकृत कम जटिल होता है। बाहरी पर्त चमड़े का एक छल्ला होती है और इसके किनारे एक छल्ले से जुड़े होते हैं जिन्हें पिन्नल कहा जाता है। इस पर्व में अन्दर की ओर एक गोल झिल्ली होती है जो बाहरी पर्त के अनुपात में होती है। यह पूरी रचना बायें मुख पर लगी होती है। दाएं मुख में तीन पर्तें होती हैं। दो पर्तों के मध्य में तीसरी पर्त खींच कर लगायी जाती है और दोनों पर्तों के किनारों से चिपका दी जाती है। इस जटिल संरचना जिसे तमिल में वालन तलई कहते हैं, दाएं मुख पर मढ़ दी जाती है। बायीं ओर का मुख टोपी और दायीं ओर का वालन चमड़े की डोरियों से कस कर बांध दिए जाते हैं, जो पिन्नल अथवा छेदों से निकलते और अंदर आते हैं। दाएं मुख पर काले रंग का मिश्रण स्थायी तौर पर चिपका दिया जाता है दूसरी ओर टोपी

१. वाद्य यंत्र पृ. २६-२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

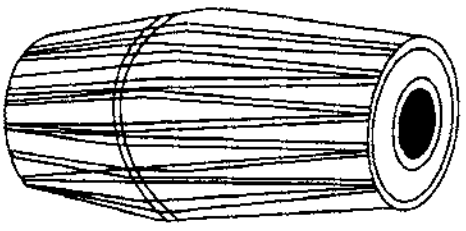

मृदंग–

एक सादा चमड़ा होता है, जिस पर वादन से पहले तुरना आटे की लोई मध्य भाग में लगा दी जाती है, जिसे वादन के उपरान्त हटा दिया जाता है। लकड़ी के टुकड़े और पत्थर से दाएं पिन्नल को ठोक बजाकर वाद्य को मिलाया जाता है।[1]

तिलोयपण्णत्ति के अनुसार ऊर्ध्वलोक का आकार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश है, मध्यलोक का आकार खड़े किए हुए आधे मृदंग के ऊर्ध्वभाग के समान है, ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े हुए मृदंग के सदृश है।[2]

९१. खेत्तलोए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–अहेलोयखेत्तलोए तिरियलोयखेत्त-लोए, उड्ढलोयखेत्तलोए॥

क्षेत्रलोकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अधोलोकक्षेत्रलोकः, तिर्यग्लोकक्षेत्र-लोकः, ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः।

९१. भंते! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–अधोलोक क्षेत्रलोक, तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक, ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक।

९२. अहेलोयखेत्तलोए णं भंते! कति-विहे पण्णत्ते?
गोयमा! सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–रयणप्पभापुढविअहेलोयखेत्तलोए जाव अहेसत्तमापुढविअहेलोयखेत्तलोए॥

अधोलोकक्षेत्रलोकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-रत्नप्रभापृथ्वीअधोलोकक्षेत्रलोकः यावत् अधःसप्तमीपृथ्वीअधोलोकक्षेत्रलोकः।

९२. भंते! अधोलोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! सात प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–रत्नप्रभा पृथ्वी अधोलोक क्षेत्रलोक यावत् अधःसप्तमा पृथ्वी अधोलोक क्षेत्रलोक।

९३. तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! असंखेज्जविहे पण्णत्ते, तं जहा–जंबुद्दीवे दीवे तिरियलोय-खेत्तलोए जाव सयंभूरमणसमुद्दे-तिरियलोयखेत्तलोए॥

तिर्यग्लोकक्षेत्रलोकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! असंख्येयविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-जम्बूद्वीपे द्वीपे तिर्यग्लोकक्षेत्रलोकः यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्रः तिर्यग्लोकक्षेत्रलोकः।

९३. भंते! तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! असंख्येय प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–जम्बूद्वीप द्वीप तिर्यक्लोक क्षेत्र-लोक यावत् स्वयंभूरमणसमुद्र तिर्यक्-लोक क्षेत्रलोक।

९४. उड्ढलोयखेत्तलोए णं भंते! कति-विहे पण्णत्ते?
गोयमा! पन्नरसविहे पण्णत्ते, तं जहा–सोहम्मकप्पउड्ढलोयखेत्तलोए ईसाण-सणंकुमार-माहिंद - बंभलोय - लंतय-महासुक्क-सहस्सार - आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पउड्ढलोय-खेत्तलोए, गेवेज्जविमाणउड्ढलोयखेत्तलोए, अणुत्तरविमाणउड्ढलोयखेत्तलाए, ईसिपब्भारपुढविउड्ढलोयखेत्तलोए॥

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चदशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सौधर्मकल्पोर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रार-आनत-प्राणत-आरण-अच्युतकल्पोर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः ग्रैवेयक-विमानोर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः अनुत्तरविमानो-र्ध्वलोकक्षेत्रलोकः, ईषत्प्राग्भारपृथ्वी-ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः।

९४. भंते! ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! पंद्रह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-सौधर्मकल्प ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्प ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक, ग्रैवेयक विमान ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक, अनुत्तर विमान ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक, ईषत् प्राग्भारपृथ्वी ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक।

९५. अहेलोयखेत्तलोए णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?
गोयमा! तप्पागारसंठिए पण्णत्ते।

अधोलोकक्षेत्रलोकः भदन्तः किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?
गौतम! तप्राकारसंस्थितः प्रज्ञप्तः।

९५. भंते! अधोलोक क्षेत्रलोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! डोंगी (छोटी नौका) संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

१. वाद्य यंत्र प. ४३-४४।
२. तिलोय पण्णत्ति/१३७-१३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?
गोयमा! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते॥

तिर्यक्लोकक्षेत्रलोकः भदन्त! किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?
गौतम! झल्लरिसंस्थितः प्रज्ञप्तः।

९६. भंते! तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! झल्लरी संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

९७. उड्ढलोयखेत्तलोए णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?
गोयमा! उड्ढमुइंगाकारसंठिए पण्णत्ते॥

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः भदन्त! किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?
गौतम! ऊर्ध्वमृदङ्गाकारसंस्थितः प्रज्ञप्तः।

९७. भंते! ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! ऊर्ध्वमृदंगाकार संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

लोयसंठाण-पदं

९८. लोए णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! सुपइट्ठगसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलि-यंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्ग-हिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए।

तंसि च णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि जाव उप्पिं उद्ध-मुइंगाकारसंठियंसि उप्पण्णनाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणइ-पासइ, अजीवे वि जाणइ-पासइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइसव्व-दक्खाणंअंतं करेइ॥

लोकसंस्थान-पदम्

लोकः भदन्त! किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?

गौतम! सुप्रतिष्ठकसंस्थितः प्रज्ञप्तः, तद् यथा-अधः विच्छिन्नः, मध्ये संक्षिप्तः, उपरि विशालः, अधः पर्यंकसंस्थितः, मध्ये वरवज्रवैग्रहिकः, उपरि ऊर्ध्वमृदङ्गा-कारसंस्थितः।

तस्मिन् च शाश्वते लोके अधः विच्छिन्ने यावत् उपरि ऊर्ध्वमृदङ्गाकारसंस्थिते उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हत् जिनः केवली जीवान् अपि जानाति-पश्यति, अजीवान् अपि जानाति-पश्यति, ततः पश्चात् सिध्यति 'बुज्झइ' मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

लोकसंस्थान-पद

९८. [1]भंते! लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! सुप्रतिष्ठिक संस्थान वाला प्रज्ञप्त है, जैसे–निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्नभाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है।
उस शाश्वत निम्न भाग में विस्तीर्ण यावत् ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में उत्पन्न ज्ञान-दर्शन का धारक, अर्हत्, जिन, केवली जीवों को भी जानता-देखता है, अजीवों को भी जानता-देखता है, उसके पश्चात् वह सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करता है।

भाष्य

१. सूत्र ९८

द्रष्टव्य ५/२५४-२५५ का भाष्य।

अलोयसंठाण-पदं

९९. अलोए णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! झुसिरगोलसंठिए पण्णत्ते॥

अलोकसंस्थान-पदम्

अलोकः भदन्त! किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?

गौतम! शुषिरगोलसंस्थितः प्रज्ञप्तः?

अलोकसंस्थान-पद

९९. [1]भंते! अलोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! शुषिरगोलक संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र ९९

अलोक अंतः शुषिर गोलक आकार वाला है।

श्वेतांबर परंपरा के अनुसार मेरु पर्वत जंबूद्वीप के मध्य में स्थित है। वह एक हजार योजन पृथ्वीतल से नीचे एवं निन्यानवें हजार योजन पृथ्वीतल से ऊपर है। मेरुपर्वत के सौ योजन का भाग अधोलोक में, अठारह सौ योजन तिर्यक्लोक में एवं शेष अठानवें हजार सौ (९८१००) योजन ऊर्ध्वलोक में है। इस प्रकार वह तीनों लोकों का स्पर्श करता है।[2]

दिगंबर परंपरा के अनुसार मेरुपर्वत तिर्यक् लोक में अवस्थित है, तिर्यक् लोक की ऊंचाई एक लाख योजन है।[3]

१. सूत्र १/१०-११ एवं उसका टिप्पण।
२. ति. प. १/१४९-१६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोयालोए जीवाजीव-मग्गणा-पदं

१००. अहेलोयखेत्तलोए णं भंते! किं १. जीवा २. जीवदेसा ३. जीव-पदेसा ४. अजीवा ५. अजीवदेसा ६. अजीव-पदेसा?

गोयमा! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।

जे जीवा ते नियमा एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया, अणिंदिया।

जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा।

जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदिय-पदेसा बेइंदियपदेसा जाव अणिंदियपदेसा।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–रूविअजीवा अरूवी-अजीवा य।

जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता–खंधा, खंधदेसा, खंध- पदेसा, परमाणुपोग्गला।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–१. नोधम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे २. धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३.नोअधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसे ४. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ५.नोआगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे ६. आगासत्थिकायस्स पदेसा ७.अद्धासमए॥

लोकालोकौ जीवाजीव-मार्गणा-पदम्

अधोलोकक्षेत्रलोकः भदन्त! किं १. जीवाः २. जीवदेशाः ३. जीवप्रदेशाः ४. अजीवाः ५. अजीवदेशाः ६. अजीव-प्रदेशाः?

गौतम! जीवा अपि, जीवदेशा अपि, जीवप्रदेशा अपि, अजीवा अपि, अजीवदेशा अपि, अजीवप्रदेशा अपि।

ये जीवाः ते नियमात् एकेन्द्रियाः द्वीन्द्रियाः त्रीन्द्रियाः चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, अनिन्द्रियाः।

ये जीवदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियदेशाः यावत् अनिन्द्रियदेशाः। ये जीवप्रदेशाः ते नियमात् एकेन्द्रियप्रदेशाः द्वीन्द्रियप्रदेशाः यावत् अनिन्द्रियप्रदेशाः।

ये अजीवाः ते द्विधा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपि अजीवाः च, अरूपि अजीवाः च।

ये रूपि अजीवाः ते चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–स्कन्धाः, स्कन्धदेशाः, स्कन्ध-प्रदेशाः, परमाणुपुद्गलाः।

ये अरूपि अजीवाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–१. नो धर्मास्तिकायः धर्मास्तिकायस्य देशः २. धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः ३. नो धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायस्य देशः ४. अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः ५. नो आकाशास्तिकायः आकाशास्तिकायस्य देशः ६. आकाशास्तिकायस्य प्रदेशाः ७. अध्वसमयः।

लोक-अलोक जीव-अजीव मार्गणा-पद

१००. [1]भंते! अधोलोक क्षेत्रलोक क्या १. जीव हैं २. जीव के देश हैं ३. जीव के प्रदेश हैं ४. अजीव हैं ५. अजीव के देश हैं ६. अजीव के प्रदेश हैं?

गौतम! जीव भी हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं। अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं।

जो जीव हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीव के देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय-देश यावत् अनिन्द्रिय के देश हैं।

जो जीव-प्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय-प्रदेश, द्वीन्द्रिय-प्रदेश यावत् अनिन्द्रिय-प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रूपी अजीव, अरूपी अजीव।

जो रूपी अजीव हैं वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–स्कंध, स्कन्ध-देश, स्कन्ध-प्रदेश, परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपी-अजीव हैं, वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं जैसे–१. धर्मास्तिकाय नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश है २. धर्मास्तिकाय का प्रदेश है ३. अधर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय का देश है ४. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशास्तिकाय का देश है ६. आकाशास्तिकाय का प्रदेश है। ७. अध्वा समय है।

१०१. तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते! किं जीवा? जीवदेसा? जीवपदेसा?

एवं चेव। एवं उड्ढलोयखेत्तलोए वि, नवरं–अरूवी छव्विहा, अद्धासमयो नत्थि॥

तिर्यग्लोकक्षेत्रलोकः भदन्त! किं जीवाः? जीवदेशाः? जीवप्रदेशाः?

एवं चैव। एवं ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः अपि, नवरम्–अरूपिणः षड्विधाः अद्धासमयः नास्ति।

१०१. भंते! तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक क्या जीव हैं? जीव-देश हैं? जीव-प्रदेश हैं?

पूर्ववत् वक्तव्यता, इतना विशेष है–अरूपी अजीव के छह प्रकार हैं, अध्वा समय वक्तव्य नहीं है।

१०२. लोए णं भते! किं जीवा? जीवदेसा? जीवपदेसा?

जहा बितियसए अत्थिउद्देसए लोयागासे, नवरं–अरूवि अजीवा सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–धम्म- त्थिकाए नोधम्मत्थिकायस्स देसे,

लोकः भदन्त! किं जीवाः? जीवदेशाः? जीवप्रदेशाः?

यथा द्वितीयशते अस्ति-उद्देशके लोकाकाशः, नवरम्–अरूपि अजीवाः सप्तविधा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–धर्मास्तिकायः नो धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य

१०२. भंते! लोक क्या जीव है? जीव-देश है? जीव-प्रदेश है?

द्वितीय शतक के अस्तिकाय-उद्देशक में लोकाकाश की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–अरूपी अजीव सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–१. धर्मास्तिकाय है, धर्मास्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मत्थिकायस्स पदेसा, नोआगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे, आगासत्थिकायस्स पदेसा, अद्धासमए, सेसं तं चेव॥

प्रदेशाः, अधर्मास्तिकायः नो अधर्मास्तिकायस्य देशः, अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः, नो आकाशास्तिकायः आकाशास्तिकायस्य देशः, आकाशास्तिकायस्य प्रदेशाः, अद्धासमयः, शेषं तत् चैव।

काय का देश नहीं है २. धर्मास्तिकाय का प्रदेश है ३. अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं है ४. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशास्तिकाय का देश है। ६. आकाशास्तिकाय का प्रदेश है ७. अध्वा-समय है। शेष पूर्ववत्।

१०३. अलोए णं भंते! किं जीवा? जीवदेसा? जीवपदेसा?
एवं जहा अत्थिकायउद्देसए अलोयागासे, तहेव निरवसेसं जाव सव्वागासे अणंतभागूणे॥

अलोकः भदन्त! किं जीवाः? जीवदेशाः? जीवप्रदेशाः?
एवं यथा अस्तिकायोद्देशके अलोकाकाशः, तथैव निरवशेषं यावत् सर्वाकाशः अनन्तभागोनः।

१०३. भंते! अलोक क्या जीव है? जीव-देश है? जीव-प्रदेश है?
इस प्रकार जैसे अस्तिकाय उद्देशक की वक्तव्यता वैसे ही निरवशेष वक्तव्य है यावत् अनन्त भाग से न्यून परिपूर्ण आकाश है।

भाष्य

१. सूत्र १००-१०३

द्रष्टव्य : २/१३८-१४० का भाष्य।

१०४. अहेलोगखेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे किं १. जीवा २. जीवदेसा ३. जीवपदेसा ४. अजीवा ५. अजीवदेसा ६. अजीवपदेसा?

गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि।
जे जीवदेसा ते नियमं १. एगिंदियदेसा २. अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे, ३. अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा।
एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियाण य देसा। जे जीवपदेसा ते नियमं १. एगिंदियपदेसा २. अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियस्स पदेसा, ३. अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियाण य पदेसा एवं आइल्लविरहिओ जाव पंचिंदिएसु, अणिंदिएसु तियभंगो।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–रूवी अजीवा य, अरूवी अजीवा य। रूवी तहेव। जे अरूवी अजीवा ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–नोधम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थि-

अधोलोकक्षेत्रलोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाशप्रदेशे किं जीवाः २. जीवदेशाः ३. जीवप्रदेशाः ४. अजीवाः ५. अजीवदेशाः ६. अजीवप्रदेशाः?

गौतम! नो जीवाः, जीवदेशाः अपि, जीव प्रदेशाः अपि, अजीवाः अपि, अजीवदेशाः अपि, अजीवप्रदेशाः अपि।
ये जीवदेशाः ते नियमम् १.एकेन्द्रियदेशाः २. अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य देशः ३. अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च देशाः। एवं मध्यमविरहितः यावत् अथवा एकेन्द्रियदेशाः च अनिन्द्रियाणां च देशाः। ये जीवप्रदेशाः ते नियमम् १. एकेन्द्रियप्रदेशाः २. अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियस्य प्रदेशाः ३. अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च प्रदेशाः, एवम् आदिमविरहितः यावत् पञ्चेन्द्रियेषु, अनिन्द्रियेषु त्रिकभङ्गः।

ये अजीवाः ते विधा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपिणः अजीवाः च, अरूपिणः अजीवाः च। रूपिणः तथैव। ये अरूपिणः अजीवाः ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नो धर्मास्तिकायः धर्मास्तिकायस्य देशः,

१०४. भंते! अधोलोक क्षेत्रलोक के एक आकाश-प्रदेश में क्या १. जीव हैं? २. जीव-देश हैं? ३. जीव-प्रदेश हैं? ४. अजीव हैं? ५. अजीव-देश हैं? ६. अजीव-प्रदेश हैं?

गौतम! जीव नहीं हैं, जीव-देश भी हैं, जीव-प्रदेश भी हैं, अजीव भी हैं, अजीव-देश भी हैं, अजीव-प्रदेश भी हैं।
जो जीव देश हैं वे नियमतः १. एकेन्द्रिय के देश हैं २. अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है ३. अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय के देश हैं। इस प्रकार मध्य विकल्प विरहित यावत् एकेन्द्रिय के देश हैं और अनिन्द्रिय के देश हैं। जो जीव प्रदेश, वे नियमतः १. एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं २. अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं ३. अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रथम विकल्प विरहित यावत् पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के तीन भंग वक्तव्य हैं।
जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी पूर्ववत् वक्तव्य है। जो अरूपी अजीव हैं, वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं जैसे–धर्मास्तिकाय नहीं है, धर्मास्तिकाय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायस्स पदेसे, नोअधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसे, अधम्मत्थिकायस्स पदेसे, अद्धासमए।

धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः, नो अधर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायस्य देशः, अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः, अद्धासमयः।

देश है। धर्मास्तिकाय का प्रदेश है। अधर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय का देश है। अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है। अथवा समय है।

१०५. तिरियलोगखेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे किं जीवा?
एवं जहा अहेलोगखेत्तलोगस्स तहेव, एवं उड्ढलोगखेत्तलोगस्स वि, नवरं—अद्धासमयो नत्थि! अरूवी चउव्विहा॥

तिर्यक्लोकक्षेत्रलोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाशप्रदेशे किं जीवाः?
एवं यथा अधोलोकक्षेत्रलोकस्य तथैव एवम् ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकस्य अपि, नवरम् अद्धासमयः नास्ति। अरूपिणः चतुर्विधा।

१०५. भंते! क्या तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक के एक आकाश प्रदेश में जीव हैं?
इस प्रकार अधोलोक क्षेत्रलोक की वक्तव्यता, इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक की वक्तव्यता, इतना विशेष है—अथवा समय वक्तव्य नहीं है।
अरूपी के चार प्रकार हैं।

१०६. लोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे किं जीवा?
जहा अहेलोगखेत्तलोगस्स एगम्मि आगासपदेसे॥

लोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाश-प्रदेशे किं जीवाः?
यथा अधोलोकक्षेत्रलोकस्य एकस्मिन् आकाशप्रदेशे।

१०६. भंते! क्या लोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव हैं?
अधोलोक क्षेत्रलोक के एक आकाश-प्रदेश की भांति वक्तव्यता।

१०७. अलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे—पुच्छा।
गोयमा! नो जीवा, नो जीवदेसा, नो जीवप्पदेसा, नो अजीवा नो अजीवदेसा, नो अजीवप्पदेसा; एगे अजीवदव्वदेसे अगरुयलहुए अणंतेहिं अगरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासस्स अणंतभागूणे॥

अलोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाश-प्रदेशे- पृच्छा।
गौतम! नो जीवाः, नो जीवदेशाः, नो जीवप्रदेशाः, नो अजीवाः, नो अजीवदेशाः, नो अजीवप्रदेशाः, एकः अजीवद्रव्यदेशः अगुरुलघुकः अनन्तैः अगुरुलघुकगुणैः संयुक्तः सर्वाकाशस्य अनन्तभागोनः।

१०७. भंते! अलोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव है—पृच्छा।
गौतम! जीव नहीं हैं, जीव के देश नहीं हैं, जीव के प्रदेश नहीं हैं, अजीव नहीं हैं, अजीव के देश नहीं हैं, अजीव के प्रदेश नहीं हैं। एक अजीव द्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनंत भाग न्यून है।

भाष्य

१. सूत्र १०४-१०७

द्रष्टव्य : १०/१-७ का भाष्य।

१०८. दव्वओ णं अहेलोगखेत्तलोए अणंता जीवदव्वा, अणंता अजीवदव्वा, अणंता जीवाजीवदव्वा। एवं तिरियलोयखेत्तलोए वि, एवं उड्ढलोयखेत्तलोए वि (एवं लोए वि?)। दव्वओ णं अलोए नेवत्थि जीव-दव्वा, नेवत्थि अजीवदव्वा, नेवत्थि जीवाजीवदव्वा, एगे अजीव-दव्वदेसे अगरुयलहुए अणंतेहिं अगरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वा-गासस्स अणंतभागूणे।

द्रव्यतः अधोलोकक्षेत्रलोके अनन्तानि जीवद्रव्याणि, अनन्तानि अजीवद्रव्याणि, अनन्तानि जीवाजीवद्रव्याणि। एवं तिर्यग्लोकक्षेत्रलोके अपि, एवम् ऊर्ध्व-लोकक्षेत्रलोके अपि (एवं लोके अपि?)। द्रव्यतः अलोके नैव सन्ति जीवद्रव्याः नैव सन्ति अजीवद्रव्याणि, नैव सन्ति जीवाजीवद्रव्याणि, एकः अजीव-द्रव्यदेशः अगुरुलघुकः अनन्तैः अगुरु-लघुकगुणैः संयुक्तः सर्वाकाशस्य अनन्तभागोनः।

१०८. अधोलोक क्षेत्रलोकमें द्रव्यतः अनन्त जीव द्रव्य, अनन्त अजीव द्रव्य, अनन्त जीव-अजीव द्रव्य हैं। इसी प्रकार तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक में भी, इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक में भी (इसी प्रकार लोक में भी) में जीव द्रव्य नहीं हैं, अजीव द्रव्य नहीं हैं। जीव-अजीव द्रव्य नहीं हैं। वह एक अजीव द्रव्य का देश है। अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनन्त भाग न्यून है।

कालओ णं अहेलोयखेत्तलोए न कयाइ नासि न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविंसु य, भवइ य,

कालतः अधोलोकक्षेत्रलोके न कदापि नासीत् न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति—अभूत् च, भवति च, भविष्यति

कालतः अधोलोक क्षेत्रलोक कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है, और होगा—वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविस्सइ य–धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, एवं तिरियलोयखेत्तलोए, एवं उड्ढलोयखेत्तलोए, एवं लोए एवं अलोए।

भावओ णं अहेलोयखेत्तलोए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, एवं तिरियलोयखेत्तलोए, एवं उड्ढलोयखेत्तलोए, एवं लोए। भावओ णं अलोए नेवत्थि वण्णपज्जवा, नेवत्थि गंधपज्जवा, नेवत्थि रसपज्जवा, नेवत्थि फासपज्जवा, नेवत्थि संठाणपज्जवा, नेवत्थि गरुयलहुयपज्जवा, एगे अजीवदव्वदेसे अगरुयलहुए अणंतेहिं अगरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासस्स अणंतभागूणे॥

ध्रुव–ध्रुवः नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः एवं तिर्यक्लोकक्षेत्रलोके एवं ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोके, एवं लोके, एवं अलोके।

भावतः अधोलोकक्षेत्रलोके अनन्ताः वर्णपर्यवाः, अनन्ताः गन्धपर्यवाः, अनन्ताः रसपर्यवाः अनन्ताः स्पर्शपर्यवाः, अनन्ताः संस्थानपर्यवाः, अनन्ताः गुरुकलघुकपर्यवाः, अनन्ताः अगुरुकलघुकपर्यवाः, एवं तिर्यक्लोकक्षेत्रलोके, एवम् ऊर्ध्वलोकक्षेत्र-लोके, एवं लोकेभावतः अलोके नैव अस्ति वर्णपर्यवाः, नैव अस्ति गन्धपर्यवाः नैव अस्ति रसपर्यवाः, नैव अस्ति स्पर्शपर्यवाः नैव अस्ति संस्थानपर्यवाः, नैव अस्ति गुरुकलघुकपर्यवाः एकः अजीवद्रव्यदेशः अगुरुलघुकः अनन्तैः अगुरुकलघुकगुणैः संयुक्तः सर्वाकाशस्य अनन्तभागोनः।

ध्रुव नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है। इसी प्रकार तिर्यक् क्षेत्रलोक में, इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक में, इसी प्रकार अलोक में।

भावतः अधोलोक क्षेत्रलोक में अनंत वर्णपर्यव, अनंत गंधपर्यव, अनंत रसपर्यव, अनंत स्पर्शपर्यव, अनंत संस्थानपर्यव, अनंत गुरुलघुपर्यव, अनंत अगुरुलघुपर्यव हैं। इसी प्रकार तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक में, इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक में, इसी प्रकार लोक में।

भावतः अलोक में वर्णपर्यव नहीं हैं, गंध पर्यव नहीं हैं, रस पर्यव नहीं हैं, स्पर्शपर्यव नहीं हैं, संस्थानपर्यव नहीं हैं, गुरुलघु पर्यव नहीं हैं। एक अजीव द्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनंत भाग न्यून है।

भाष्य

१. सूत्र १०८

द्रष्टव्य : २/४५-४८ का भाष्य।

लोयस्स परिमाण-पदं

१०९. लोए णं भंते! केमहालए पण्णत्ते?

गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए जाव एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्ता-वीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलगं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं छ देवा महिड्ढिया जाव महासोक्खा जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए मंदरचूलियं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठेज्जा। अहे णं चत्तारि दिसा-कुमारीओ महत्तरियाओ चत्तारि बलिपिंडे गहाय जंबुद्दीवस्स दीवस्स चउसु वि दिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा ते चत्तारि बलिपिंडे जमग-समगं बहियाभिमुहे पक्खि-

लोकस्य परिमाण-पदम्

लोकः भदन्त! कियन्महान् प्रज्ञप्तः?

गौतम! अयं जम्बूद्वीपः द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यान्तरकः यावत् एकं योजनशतसहस्रम् आयाम-विष्कम्भेण त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे च सप्तविंशतियोजनशते त्रयः च क्रोशाः अष्टाविंशतिः च धनुशतं त्रयोदश अंगुलानि अर्द्धाङ्गुलकं च किंचित् विशेषाधिकः परिक्षेपेण।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये षट् देवाः महर्द्धिकाः यावत् महासौख्याः जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकां सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठेयुः। अधः चतस्रः दिशाकुमार्यः महत्तरिकाः चतुरः बलिपिण्डान् गृहीत्वा जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य चतसृषु अपि दिशासु बहिः अभिमुख्यः स्थित्वा तान् चतुरः बलिपिण्डान् 'जमगसमगं' बहिः अभिमुखे प्रक्षिपेयुः। प्रभुः

लोक का परिमाण-पद

१०९. भंते! लोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य अवस्थित है यावत् एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है। उसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, अट्ठाईस धनुष साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है।

उस काल और उस समय में छह देव महान ऋद्धि वाले यावत् महासुख वाले जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत पर मंदर चूलिका को चारों ओर से घेर हुए खड़े हैं। नीचे चार दिशाकुमारी महत्तरिकाओं ने चार बलिपिण्डों को ग्रहण कर जंबूद्वीप की चारों दिशाओं में बाह्याभिमुख स्थित होकर उन चारों बलिपिण्डों को एक साथ बाहर फेंका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेज्जा। पभू णं गोयमा! तओ एगमेगे देवे ते चत्तारि बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए। ते णं गोयमा! देवा ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए एगे देवे पुरत्थाभि-मुहे पयाते एगे देवे दाहिणाभिमुहे पयाते, एगे देवे पच्चत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे उत्तराभिमुहे पयाते, एगे देवे उड्ढा-भिमुहे पयाते एगे देवे अहोभिमुहे पयाते।

गौतम! ततः एकैकः देवः तान् चतुरः बलिपिण्डान् धरणितलमसम्प्राप्तान् क्षिप्रमेव प्रतिसंहर्तुम्। ते गौतम! देवाः तया उत्कृष्टया त्वरितया चपलया चण्डया जयिन्या छेकया सिंहया शीघ्रया उद्धुतया दिव्यया देवगत्या एकः देवः पौरस्त्याभि-मुखः प्रयातः, एकः देवः दक्षिणाभिमुखः प्रयातः, एकः देवः पश्चात्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः उत्तराभिमुखः प्रयातः, एकः देवः ऊर्ध्वाभिमुखः प्रयातः, एकः देवः अधोभिमुखः प्रयातः।

गौतम! प्रत्येक देव उन चार बलिपिण्डों का भूमि के तल पर गिरने से पूर्व शीघ्र ही प्रतिसंहरण करने में समर्थ है।

गौतम! उन देवों ने उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेक, सिंही शीघ्र, उद्धुत और दिव्य देव गति से प्रस्थान किया। एक देव ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। एक देव ने ऊर्ध्व-दिशा की ओर प्रयाण किया। एक देव ने अधोदिशा की ओर प्रयाण किया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं वास-सहस्साउए दारए पयाते। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स अट्ठिमिंजा पहीणा भवंति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवंसे पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स नामगोए वि पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति।

तेसि णं भंते! देवाणं किं गए बहुए? अगए बहुए?

गोयमा! गए बहुए, नो अगए बहुए, गयाओ से अगए असंक्खेज्जइभागे, अगयाओ से गए असंखेज्जगुणे। लोए णं गोयमा! एमहालए पण्णत्ते॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये वर्षसहस्रा-युष्कः दारकः प्रजातः। ततः तस्य दारकस्य अम्बपितरौ प्रहीणौ भवतः, नो चैव ते देवा लोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य आयुष्कं प्रहीणं भवति, नो चैव ते देवाः लोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य अस्थिमज्जाः प्रहीणाः भवन्ति, नो चैव ते देवाः लोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य आसप्तमोऽपि कुलवंशः प्रहीणो भवति, नो चैव ते देवाः लोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य नामगोत्रमपि प्रहीणं भवति, नो चैव ते देवाः लोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति।

तेषां भदन्त! देवानां किं गतः बहुकः? अगतः बहुकः?

गौतम! गतः बहुकः, नो अगतः बहुकः। गतात् तस्य अगतः असंख्येयभागः, अगतात् तस्य गतः असंख्येयगुणः। लोकः गौतम! इमन्महान् प्रज्ञप्तः॥

उस काल और उस समय में एक हजार वर्ष की आयु वाले शिशु का जन्म हुआ। उस शिशु के माता-पिता प्रक्षीण—मृत्यु को प्राप्त हुए, फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का आयुष्य भी प्रक्षीण हो गया, फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु की अस्थि-मज्जा प्रक्षीण हो गई। फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु के सात कुल-वंश (पीढ़ियां) प्रक्षीण हो गए फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का नाम गोत्र प्रक्षीण हो गया फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके।

भंते! उन देवों का गत-क्षेत्र बहुत है? अगत-क्षेत्र बहुत है?

गौतम! गत-क्षेत्र बहुत है, अगत-क्षेत्र बहुत नहीं है। गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र असंख्येय भाग है और अगत क्षेत्र से गतक्षेत्र असंख्येयगुणा है। गौतम! लोक इतना बड़ा प्रज्ञप्त है।

अलोयस्स परिमाण-पदं

११०. अलोए णं भंते! केमहालए पण्णत्ते?

गोयमा! अयण्णं समयखेत्ते पणया-लीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बाया-लीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापन्न-जोयणसए किंचि

अलोकस्य परिणाम-पदम्

अलोकः भदन्त! कियन्महान् प्रज्ञप्तः?

गौतम! इदं समयक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशत् योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण, एका योजनकोटिः द्विचत्वारिंशच्च शतसह-स्राणि त्रिंशच्च सहस्राणि द्वयोः च एकोन-पञ्चाशद्योजनशते किंचित् विशेषाधिके

अलोक का परिमाण-पद

११०. भंते! अलोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! इस समयक्षेत्र में पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसाहिए परिक्खेवेणं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं दस देवा महिड्ढिया जाव महासोक्खा जंबु-दीवे दीवे मंदरे पव्वए मंदरचूलियं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं संचिट्ठेज्जा, अहे णं अट्ठ दिसा-कुमारीओ महत्तरियाओ अट्ठ बलिपिंडे गहाय माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स चउसु वि दिसासु चउसु वि विदिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा ते अट्ठ बलिपिंडे जमगसमगं बहियाभिमुहे पक्खिवेज्जा। पभू णं गोयमा! तओ एगमेगे देवे ते अट्ठ बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए। ते णं गोयमा! देवा ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए लोगतं ठिच्चा असब्भावपट्ठवणाए एगे देवे पुरत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे दाहिणपुरत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे दाहिणाभिमुहे पयाते, एगे देवे दाहिणपच्चत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे पच्चत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे पच्चत्थउत्तराभिमुहे पयाते, एगे देवे उत्तराभिमुहे पयाते एगे देवे उत्तरपुरत्थाभिमुहे पयाते, एगे देवे उड्ढाभिमुहे पयाते, एगे देवे अहोभिमुहे पयाते।

परिक्षेपेण।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये दश देवाः महर्द्धिकाः यावत् महासौख्याः जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकां सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठेयुः, अधः अष्ट दिशाकुमार्यः महत्तरिकाः अष्ट बलिपिण्डान् गृहीत्वा मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य चतसृषु अपि दिशासु चतसृषु अपि विदिशासु बहिः अभिमुख्यः स्थित्वा तान् अष्ट बलिपिण्डान् 'जगमसमगं' बहिः अभिमुखः प्रक्षिपेयुः। प्रभुः गौतम! ततः एकैकः देवः तान् अष्ट बलिपिण्डान् धरणितलमसम्प्राप्तान् क्षिप्रमेव प्रतिसंहर्तुम्। ते गौतम! देवाः तया उत्कृष्टया त्वरितया चपलया चण्डया जयिन्या छेकया सिंहया शीघ्रया उद्धुतया दिव्यया देवगत्या लोकान्ते स्थित्वा असद्भावप्रस्थापनया एकः देवः पौरस्त्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः दक्षिण-पौरस्त्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः दक्षिणाभिमुखः प्रयातः, एकः देवः दक्षिणपश्चात्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः पाश्चत्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः उत्तराभिमुखः प्रयातः, एकः देवः उत्तरपौरस्त्याभिमुखः प्रयातः, एकः देवः ऊर्ध्वाभिमुखः प्रयातः, एकः देवः अधोऽभिमुखः प्रयातः।

उस काल और उस समय में दस देव महान ऋद्धि वाले यावत् महासुख वाले जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत पर मंदर चूलिका को चारों ओर से घेर कर खड़े हैं। नीचे आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाओं ने आठ बलिपिण्डों को ग्रहण कर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में बाह्याभिमुख स्थित होकर उन आठ बलिपिण्डों को एक साथ बाहर फेंका।

गौतम! प्रत्येक देव उन आठ बलिपिण्डों का भूमि के तल पर गिरने से पूर्व शीघ्र ही प्रतिसंहरण करने में समर्थ है।

गौतम! उन देवों ने उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेक, सिंही शीघ्र, उद्धुत और दिव्य देव गति के द्वारा लोकांत में स्थित होकर असद्भाव प्रस्थापन के अनुसार प्रस्थान किया। एक देव ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण-पूर्व की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम-उत्तर की ओर प्रयाण किया, एक देव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। एक देव ने उत्तर-पूर्व की ओर प्रयाण किया। एक देव ने ऊर्ध्व-दिशा की ओर प्रयाण किया। एक देव ने अधोदिशा की ओर प्रयाण किया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं वास-सयसहस्साउए दारए पयाते। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति, नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स अट्ठिमिंजा पहीणा भवंति, नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति। तए णं तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवंसे पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति। तए णं तस्स

तस्मिन् काले तस्मिन् समये वर्षशत-सहस्रायुष्कः दारकः प्रजातः। ततः तस्य दारकस्य मातापितरौ प्रहीणौ भवतः, नो चैव ते देवाः अलोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य आयुष्कः प्रहीणो भवति, नो चैव ते देवाः अलोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य अस्थिमज्जाः प्रहीणाः भवन्ति, नो चैव ते देवाः अलोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य आसप्तमोऽपि कुलवंशः प्रहीणः भवति, नो चैव ते देवाः अलोकान्तं समप्राप्नुवन्ति। ततः तस्य दारकस्य

उस काल और उस समय एक लाख वर्ष की आयु वाले शिशु का जन्म हुआ। उस शिशु के माता-पिता प्रक्षीण हुए, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का आयुष्य भी प्रक्षीण हो गया, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु की अस्थि-मज्जा प्रक्षीण हो गई, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु के सात कुल वंश (पीढ़ियां) प्रक्षीण हो गए फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का नाम-गोत्र प्रक्षीण हो गया। फिर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दारगस्स नामगोए वि पहीणे भवति, नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति।
तेसि णं भंते! देवाणं किं गए बहुए? अगए बहुए?
गोयमा! नो गए बहुए, अगए बहुए, गयाओ से अगए अणंतगुणे, अगयाओ से गए अणंतभागे। अलोए णं गोयमा! एमहालए पण्णत्ते॥

नामगोत्रमपि प्रहीणं भवति. नो चैव ते देवाः अलोकान्तं सम्प्राप्नुवन्ति।
तेषां भदन्त! देवानां किं गतः बहुकः? अगतः बहुकः?
गौतम! नो गतः बहुकः, अगतः बहुकः, गतात् तस्य अगतः अनन्तगुणः अगतात तस्य गतः अनन्तगुणः। अलोकः गौतम! इयन्महान् प्रज्ञप्तः।

भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके।

भंते! उन देवों का गत-क्षेत्र बहुत है? अगत-क्षेत्र बहुत है?
गौतम! गत-क्षेत्र बहुत नहीं है, अगत-क्षेत्र बहुत है। गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र अनंत गुण है। और अगत क्षेत्र से गतक्षेत्र अनंत भाग है। गौतम! अलोक इतना बड़ा प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१ सूत्र १०९-११०

लोक और अलोक का विभाग आकाश के आधार पर किया गया है। विवरण के लिए दूसरा शतक द्रष्टव्य है।[1]

राजगृह में भगवान् स्थविरों ने गति प्रवाद नामक अध्ययन का प्रज्ञापन किया। इसका उल्लेख भगवती के आठवें शतक में[2] तथा प्रज्ञापना के सोलहवें पद[3] में मिलता है। त्वरित गति का वर्णन प्रस्तुत आगम में चार स्थानों में उपलब्ध है—

१. तमस्काय का प्रकरण[4]
२. कृष्णराजि का प्रकरण[5]
३. चमर का प्रकरण[6]
४. लोक और अलोक का परिमाण[7]

बलिपिण्ड का उल्लेख केवल लोक-अलोक के प्रकरण में है।[8] गति की त्वरा का उल्लेख बहुत आश्चर्यजनक है। दिव्य गति की तुलना में वैज्ञानिक यंत्रों की गति अति मंद प्रतीत हो रही है।

छह देव मेरु पर्वत की चूलिका से अपनी यात्रा शुरू करते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में गति करने वाले देवों को आधा रज्जु की दूरी तय करनी होती है क्योंकि मध्यलोक का विस्तार एक रज्जु है। ऊर्ध्व दिशा में गति करने वाले देव को सात रज्जु से कम तथा अधोदिशा में गति करने वाले देव को सात रज्जु से अधिक का अंतर तय करना होता है। इस प्रकार सभी देव एक समान दूरी तय नहीं करते। प्रस्तुत सूत्र में बताए गए समय में सभी देवों की तय की गई दूरी अवशिष्ट रही दूरी से असंख्यात गुना अधिक है अथवा अवशिष्ट रही दूरी तय की गई दूरी का असंख्यातवां भाग है। यह बात संगत कैसे हो सकती है? इस जिज्ञासा का समाधान अभयदेव सूरि ने लोक को घन चतुरस्राकार (Cube) मानकर किया है।[9] लोक को घन चतुरस्राकार मानने पर सभी देवों के द्वारा तय की गई दूरी तथा अवशिष्ट दूरी समान ही होगी।

दिगंबर परंपरा के महान् गणितज्ञ वीरसेनाचार्य तथा यतिवृषभाचार्य कृत तिल्लोयपण्णत्ति में भी लोक को घन चतुरस्राकार मानकर लोक का आयतन (Volume) ३४३ घन रज्जु माना है।[10]

लोक सुप्रतिष्ठक आकार वाला है, देखें चित्र नं. १।

घन चतुरस्राकार मानने पर लोक का आकार चित्र नं. २ की भांति होता है। इसमें लोक के मध्यभाग को 'क' के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यदि 'क' बिंदु से छह देव छहों दिशाओं में गति करते हैं तो उनके द्वारा गत क्षेत्र और अगत क्षेत्र समान ही होगा।

चित्र नं.—एक

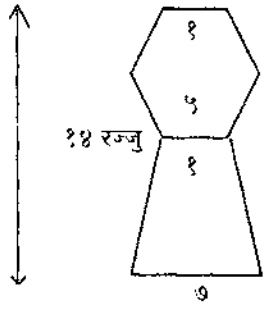

चित्र नं.—दो

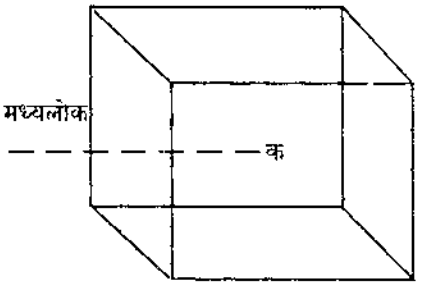

१. भ. २/१३८ सूत्र एवं भाष्य।
२. वही, ८/२९३।
३. पण्ण. १६/१७।
४. भ. ६/९५।
५. वही, ६/२५।
६. वही, ३/११६-१२०।
७. वही, १२/१०९-११०।
८. भ. वृ. ११/१०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगागासे जीवपदेस-पदं

१११. लोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे जे एगिंदियपदेसा जाव पंचिंदियपदेसा अणिंदियपदेसा अण्णमण्णबद्धा अण्णमण्णपुट्ठा अण्णमण्णबद्धपुट्ठा अण्ण-मण्णघडत्ताए चिट्ठंति? अत्थि णं भंते! अण्णमण्णस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पायंति? छविच्छेदं वा करेंति?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

लोकाकाशे जीवप्रदेश-पदम्

लोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाश-प्रदेशे ये एकेन्द्रियप्रदेशाः यावत् पञ्चेन्द्रिय-प्रदेशाः अनिन्द्रियप्रदेशाः अन्योन्यबद्धाः अन्योन्य-स्पृष्टाः अन्योन्यबद्धस्पृष्टाः अन्योन्य-घटतया तिष्ठन्ति?

अस्ति भदन्त! अन्योन्यस्य किञ्चित् अबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयन्ति? छविच्छेदं वा कुर्वन्ति?

नो अयमर्थः समर्थः।

लोकाकाश में जीव-प्रदेश पद

१११. भंते! लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश यावत् पंचेन्द्रिय प्रदेश, अनिन्द्रिय-प्रदेश, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य-बद्ध-स्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं। भंते! क्या वे परस्पर किञ्चित आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करते हैं? छविच्छेद करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

११२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—लोगस्स णं एगम्मि आगासपदेसे जे एगिंदियपदेसा जाव अण्णमण्ण-घडत्ताए चिट्ठंति, नत्थि णं भंते! अण्णमण्णस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पायंति, छविच्छेदं वा करेंति?

गोयमा! से जहानामए नट्टिया सिया—सिंगारागारचारुवेसा संगय - गय-हसिय- भणिय - चेट्ठिय -विलास-सललिय - संलाव - निउणजुत्तोवयार कुसलासुंदरथण - जघण - वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण - रूव - जोव्वण-विलासकलिया रंगट्ठाणंसि जण-सयाउलंसि(जणसहस्साउलंसि?) जणसयसहस्साउलंसि बत्तीसइ-विहस्स नट्टस्स अण्णयरं नट्टविहिं उवदंसेज्जा, से नूणं गोयमा! ते पेच्छगा तं नट्टियं अणिमिसाए दिट्ठिए सव्वओ समंता समभि- लोएंति?

हंता समभिलोएंति।

ताओ णं गोयमा! दिट्ठीओ तंसि नट्टियंसि सव्वओ समंता सन्नि-पडियाओ?

हंता सन्निपडियाओ।

अत्थि णं गोयमा! ताओ दिट्ठीओ तीसे नट्टियाए किंचि वि आबाहं वा वाबाहं उप्पायंति? छविच्छेदं वा करेंति?

नो इणट्ठे समट्ठे।

सा वा नट्टिया तासिं दिट्ठीणं किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते-लोकस्य एकस्मिन् आकाशप्रदेशे ये एकेन्द्रियप्रदेशाः यावत् अन्योन्यघटतया तिष्ठन्ति, नास्ति भदन्त! अन्योन्यस्य किञ्चित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयन्ति छविच्छेदं वा कुर्वन्ति?

गौतम! अथ यथानामका नर्तिका स्यात्—शृङ्गाराकारचारुवेशा, संगत—गत-हसित-भणित-चेष्टित-विलास-सललित-संलाप-निपुणयुक्तोपचारकुशला सुन्दरस्तन-जघन-वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन-विलासकलिता रङ्गस्थाने जन-शताकुले (जनसहस्राकुले) जनशत-सहस्राकुले द्वात्रिंशद्विधस्य नाट्यस्य अन्यतरां नाट्यविधिमुपदर्शयेत्, अथ नूनं गौतम! ते प्रेक्षकाः तां नर्तिकाम् अनिमिषया दृष्टया सर्वतः समन्तात् समभिलोकन्ते?

हन्त समभिलोकन्ते।

ताः गौतम! दृष्टयः तस्मिन् नर्तिते सर्वतः समन्तात् सन्निपतिताः?

हन्त सन्निपतिताः।

अस्ति गौतम! ताः दृष्टयः तस्याः नर्तिकायाः किंचित् अपि आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयन्ति? छविच्छेदं वा कुर्वन्ति।

नो अयमर्थः समर्थः।

सा वा नर्तिका तासां दृष्टीनां किंचित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयति?

११२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश यावत् अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं, भंते! वे परस्पर किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करते? छविच्छेद नहीं करते?

गौतम! जैसे कोई नर्तिका हो—मूर्तिमान, शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, तथा विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित। वह नर्तिका सैकड़ों (हजारों?) लाखों लोगों से आकुल नाट्यशाला में बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियों में से किसी एक नाट्यविधि का उपदर्शन करती है। गौतम! वे प्रेक्षक अनिमेष दृष्टि से चारों ओर से उस नर्तिका को देखते हैं?

हां, देखते हैं।

गौतम! वे दृष्टियां उस नर्तकी की ओर चारों ओर से गिर रही हैं?

हां, गिर रही हैं।

गौतम! वे दृष्टियां उस नर्तकी को किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती हैं? छविच्छेद करती हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

वह नर्तकी उन दृष्टियों में किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छविच्छेदं वा करेइ?
नो इणट्ठे समट्ठे।
ताओ वा दिट्ठीओ अण्णमण्णाए दिट्ठीए किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति? छविच्छेदं वा करेंति?
नो इणट्ठे समट्ठे। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—लोगस्स णं एगम्मि आगासपदेसे जे एगिंदियपदेसा जाव अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति, नत्थि णं अण्णमण्णस्स आबाहं वा वाबाहं वा उप्पायंति? छविच्छेदं वा करेंति॥

छविच्छेदं वा करोति?
नो अयमर्थः समर्थः।
ताः दृष्टयः अन्योन्यस्याः दृष्टयाः किंचित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयन्ति? छविच्छेदं वा कुर्वन्ति?
नो अयमर्थः समर्थः। नत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते—लोकस्य एकस्मिन् आकाश-प्रदेशे ये एकेन्द्रियप्रदेशाः यावत् अन्योन्य-घटतया तिष्ठन्ति, नास्ति अन्योन्यस्य आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयन्ति। छविच्छेदं वा कुर्वन्ति।

छविच्छेद करती है?
यह अर्थ संगत नहीं है।
वे दृष्टियां परस्पर—एक दूसरे की दृष्टि में किञ्चित आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती हैं? छविच्छेद करती हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश हैं यावत अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं, वे परस्पर आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करते, छविच्छेद नहीं करते।

११३. लोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपदेसे जहण्णपए जीवपदे- साणं, उक्कोसपए जीवपदेसाणं- सव्वजीवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा लोगस्स एगम्मि आगासपदेसे जहण्णपए जीवपदेसा, सव्वजीवा असंखेज्जगुणा, उक्कोसपए जीवपदेसा विसेसाहिया।

लोकस्य भदन्त! एकस्मिन् आकाशप्रदेशे जघन्यपदे जीवप्रदेशानाम्, उत्कर्षपदे जीवप्रदेशानां सर्वजीवानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः लोकस्य एकस्मिन् आकाशप्रदेशे जघन्यपदे जीवप्रदेशाः, सर्वजीवाः असंख्येयगुणाः, उत्कर्षपदे जीवप्रदेशाः विशेषाधिकाः।

११३. भंते! लोक के एक आकाश-प्रदेश में जघन्य पद में अवस्थित जीव-प्रदेश, उत्कृष्ट पद में अवस्थित जीव-प्रदेश और सर्व जीव—इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?
गौतम! सबसे अल्प लोक के एक आकाश प्रदेश में जघन्य पद में अवस्थित जीव-प्रदेश सबसे अल्प है, सर्व जीव उनसे असंख्येय गुण हैं, उत्कृष्ट पद में अवस्थित जीव-प्रदेश उनसे विशेषाधिक हैं।

भाष्य

१. सूत्र ११३

आकाश के तेरह प्रदेशों में दश दिशाओं का स्पर्श करने वाले तेरह प्रदेशों वाले तेरह द्रव्य स्थित हैं। प्रत्येक आकाश प्रदेश में उनके तेरह तेरह प्रदेश होते हैं। इस प्रकार लोकाकाश में अनंत जीवों का अवगाहन है। इसलिए एक-एक आकाश प्रदेश में अनंत जीव प्रदेश होते हैं।

लोक के सूक्ष्म अनंत जीव वाले निगोद—पृथ्वी आदि सब जीव असंख्येय हैं—के तुल्य होते हैं। एक एक आकाश प्रदेश में उनके जीव प्रदेश अनंत होते हैं। इस प्रकार जघन्य पद में एक आकाश प्रदेश में अवस्थित उनके जीव प्रदेश सबसे अल्प हैं। सब जीव उनसे असंख्येय गुण अधिक हैं। उत्कृष्ट पद में अवस्थित जीव प्रदेश उनसे विशेषाधिक हैं।

जघन्य पद लोकांत में होता है। वहां निगोद के देश तीन दिशाओं का ही स्पर्श करते हैं। शेष दिशाएं अलोक से आवृत होती हैं। तीन दिशाओं की स्पर्शना खण्ड गोलक में ही होती है। जिस गोलक में निगोद देशों की स्पर्शना छहों दिशाओं में होती है, वह उत्कृष्ट पद है। यह संपूर्ण गोलक लोक के मध्य में ही होता है।

देखें स्थापना—

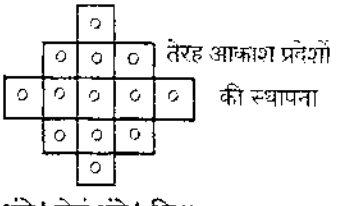
तेरह आकाश प्रदेशों की स्थापना

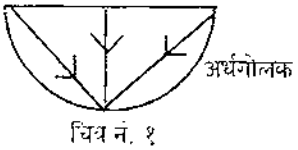
अर्धगोलक
चित्र नं. १

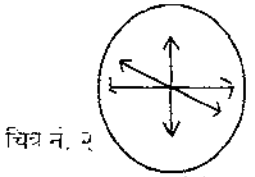
चित्र नं. २
संपूर्ण गोलक

११४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

११४. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है।

१. भ. वृ. ११. ११३—तत्र त्रयोजघन्येतरपदयोर्जघन्यपदं लोकान्ते भवति जत्थ त्ति यत्र गोलके स्पर्शना निगोददेशैस्त्रिसृष्वेव दिक्षु भवति, शेष दिशामलोकेनावृतत्वात् सार्धं खण्डगोल एव भवतीति भावः छद्दिसिं ति यत्र पुनर्गोलके षट्स्वपि दिक्षु निगोददेशैः स्पर्शना भवति तत्रोत्कृष्टपदं भवति, तच्च समस्तगोलैः परिपूर्णगोलके भवति, नान्यत्र, खण्डगोलके न भवतीत्यर्थः, सम्पूर्ण गोलकश्च लोकमध्य एव स्यादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कारसमो उद्देसो : ग्यारहवां उद्देशक

मूल

सुदंसणसेट्ठि-पदं

११५. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नगरे होत्था—वण्णओ। दूतिपलासे चेइए—वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ। तत्थ णं वाणियग्गामे नगरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ—अड्ढे जाव बहु-जणस्स अपरिभूए समणोवासए अभिगय-जीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावमाणे विहरइ। सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ॥

११६. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडि-निक्खमित्ता सकोरेंटमल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं पायविहार चारेणं महयापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते वाणिय-ग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्ग-च्छित्ता जेणेव दूतिपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभि-गमेणं अभिगच्छइ, (तं जहा—सच्चित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए) जहा उसभदत्तो जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ॥

११७. तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स सेट्ठिस्स तीसे य महति-महालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ

संस्कृत छाया

सुदर्शनश्रेष्ठि-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाणिज्यग्रामं नाम नगरम् आसीत्—वर्णकः। दूतिपलाशं चैत्यं—वर्णकः यावत् पृथ्वीशिलापट्टकः। तत्र वाणिज्यग्रामे नगरे सुदर्शनः नाम श्रेष्ठी परिवसति—आढ्यः यावत् बहुजनस्य अपरिभूतः श्रमणोपासकः अभिगतजीवा-जीवः यावत् यथापरिगृहीतैः तपः कर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति। स्वामी समवसृतः यावत् परिषद् पर्युपासते।

ततः सः सुदर्शनः श्रेष्ठी अनया कथया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टः स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुक-मंगल-प्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः स्वस्मात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य सकोरण्ट-माल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेण पादविहार-चारेण महत् पुरुषवागुरापरिक्षिप्तः वाणिज्य-ग्रामं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव दूतिपलाशं चैत्यं यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं पञ्चविधेन अभिगमेन अभिगच्छति, (तद्यथा-सचित्तानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनया) यथा ऋषभदत्तः तथा त्रिविधया पर्युपासनाया पर्युपास्ते।

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः सुदर्शनस्य श्रेष्ठिनः तस्यां च महामहत्यां परिषदि धर्मं कथयति यावत् आज्ञायाः आराधकः भवति।

हिन्दी अनुवाद

सुदर्शन श्रेष्ठी-पद

११५. उस काल और उस समय वाणिज्य ग्राम नामक नगर था—वर्णक। दूति-पलाश चैत्य—वर्णक यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक। उस वाणिज्यग्राम नगर में सुदर्शन नाम का श्रेष्ठी रहता था—संपन्न यावत् बहुत जन के द्वारा अपरिभवनीय। श्रमणोपासक, जीव-अजीव को जानने वाला यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ रह रहा था। भगवान् महावीर आए यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

११६. सुदर्शन श्रेष्ठी इस कथा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, सर्व अलंकार से विभूषित होकर अपने घर से प्रति-निष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर कट-सरैया की माला और दाम तथा छत्र को धारण कर, विशाल पुरुष वर्ग से घिरा हुआ वह वाणिज्यग्राम नगर के बीचों बीच पैदल चलते हुए निकला, निकल कर जहां दूतिपलाश चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, वहां आकर पांच प्रकार के अभिगमों के साथ श्रमण भगवान् महावीर के पास गया। (जैसे सचित्त द्रव्यों को छोड़ना, भ. ९/१४५) ऋषभदत्त की भांति वक्तव्यता यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना की।

११७. श्रमण भगवान् महावीर ने उस विशालतम परिषद् में सुदर्शन श्रेष्ठी को धर्म कहा यावत् आज्ञा की आराधना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव आणाए आराहए भवइ॥

११८. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

ततः सः सुदर्शनः श्रेष्ठी श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्–

११८. वह सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुन कर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट होकर उठने की मुद्रा में उठा। उठकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–

११९. कतिविहे णं भंते! काले पण्णत्ते?

सुदंसणा! चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा–पमाणकाले, अहाउनिव्वत्तिकाले, मरणकाले, अद्धाकाले॥

कतिविधः भदन्त! कालः प्रज्ञप्तः।

सुदर्शन! चतुर्विधः कालः प्रज्ञप्तः तद्यथा–प्रमाणकालः यथायुर्निवृत्तिकालः, मरणकालः, अध्वाकालः।

११९. 'भंते! काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

सुदर्शन! काल चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–प्रमाण काल, यथायुनिवृत्ति काल, मरण काल, अध्वा काल।

१२०. से किं तं पमाणकाले?

पमाणकाले दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–दिवसप्पमाणकाले, राइप्पमाण-काले य। चउपोरसिए दिवसे, चउ- पोरिसिया राई भवइ। उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ॥

अथ किं तत् प्रमाणकालः?

प्रमाणकालः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–दिवसप्रमाणकालः, रात्रिप्रमाणकालश्च। चतुःपौरुषीकः दिवसः, चतुःपौरुषिका च रात्रिः भवति। उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति। जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति।

१२०. वह प्रमाण काल क्या है?

प्रमाण काल दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे दिवसप्रमाण काल, रात्रिप्रमाण काल। चार प्रहर का दिवस और चार प्रहर की रात्रि होती है। दिन अथवा रात्रि का प्रहर उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त्त का होता है। दिवस अथवा रात्रि का प्रहर जघन्यतः तीन मुहूर्त्त का होता है।

१२१. जदा णं भंते! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी-परिहायमाणी जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ? जदा णं जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ? तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपंचम-मुहुत्ता दिव-सस्स वा राईए वा पोरसी भवइ?

यदा भदन्त! उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चम-मुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति, तदा कतिभागमुहूर्त्तभागेन परिहीयमाना-परिहीयमाना जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति? यदा जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति, तदा कतिभागमुहूर्त्तभागेन परिवर्द्धमाना-परिवर्द्धमाना उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति?

१२१. भंते! जब दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त्त भाग का कितना भाग कम होते होते जघन्यतः तीन मुहूर्त्त का प्रहर होता है? जब दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त्त भाग का कितना भाग बढ़ते बढ़ते उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त्त का प्रहर होता है?

सुदंसणा! जदा णं उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीस-

सुदर्शन! यदा उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति, तदा द्वाविंशतिशतभागमुहूर्त्तभागेन परिहीय-

सुदर्शन! जब दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त्त भाग का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी-परिहायमाणी जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ। जदा वा जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीससयभाग-मुहुत्तभागेणं परिवड्ढ माणी-परिवड्ढ-माणी उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ॥

माना-परिहीयमाना जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति। यदा वा जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति, तदा द्वाविंशतिशत-भागमुहूर्तभागेन परिवर्द्धमाना-परिवर्द्धमाना उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति।

एक सौ बाईसवां भाग कम होते होते जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है। जब दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का एक सौ बाईसवां भाग बढ़ते बढ़ते उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त का प्रहर होता है।

१२२. कदा णं भंते! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवई, कदा वा जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ?

सुदंसणा! जदा णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, तदा णं उक्कोसिया अद्ध-पंचममुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ, जहण्णिया तिमुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ। जदा णं उक्को-सिया अट्ठारसमुहुत्तिया राई भवई, जहण्णिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तदा णं उक्कोसिया अद्ध-पंचममुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ, जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ॥

कदा भदन्त! उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चम-मुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति? कदा वा जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्याः वा पौरुषी भवति?

सुदर्शन! यदा उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तः दिवसः भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः भवति, तदा उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता दिवसस्य पौरुषी भवति। जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता रात्र्याः पौरुषी भवति। यदा उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्तिका रात्रिः भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तः दिवसः भवति, तदा उत्कर्षिका अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता रात्र्याः पौरुषी भवति, जघन्यिका त्रिमुहूर्त्ता दिवसस्य पौरुषी भवति।

१२२. भंते! दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त का प्रहर कब होता है? दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर कब होता है?

सुदर्शन! जब उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त का दिन होता है, जघन्यतः बारह मुहूर्त की रात्रि होती है तब दिवस का उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त का प्रहर होता है और रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है। जब उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, जघन्यतः बारह मुहूर्त का दिन होता है तब रात्रि का उत्कृष्टतः साढे चार मुहूर्त का प्रहर होता है और दिवस का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है।

१२३. कदा णं भंते! उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जह- ण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवई? कदा वा उक्कोसिया अट्ठार-समुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ?

सुदंसणा! आसाढपुण्णिमाए उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। पोसपुण्णिमाए णं उक्को-सिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ॥

कदा भदन्त! उत्कर्षकः अष्टादश-मुहूर्त्तः दिवसः भवति, जघन्यिका द्वादश-मुहूर्त्ता रात्रिः भवति। कदा वा उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तः दिवसः भवति?

सुदर्शन! आषाढपूर्णिमायाम् उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तः दिवसः भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः भवति, पौष पूर्णिमायाम् उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तः दिवसः भवति।

१२३. भंते! उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त्त का दिवस कब होता है? जघन्यतः बारह मुहूर्त्त की रात्रि कब होती है? उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त्त की रात्रि कब होती है? जघन्यतः बारह मुहूर्त्त का दिवस कब होता है?

सुदर्शन! आषाढ-पूर्णिमा के दिन उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त्त का दिवस होता है और जघन्यतः बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। पौष पूर्णिमा के दिन उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और बारह मुहूर्त्त का दिवस होता है।

१२४. अत्थि णं भंते! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति?

अस्ति भदन्त! दिवसाः रात्र्यः च समाः चैव भवन्ति?

१२४. भंते! क्या दिन और रात्रि समान होते हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंता अत्थि॥

हन्त अस्ति।

हां, होते हैं।

१२५. कदा णं भंते! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति?

सुदंसणा! चेत्तासोयपुण्णिमासु, एत्थ णं दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति–पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ। चउ-भाग-मुहुत्तभागूणा चउमुहुत्ता दिव-सस्स वा राई वा पोरिसी भवइ। सेत्तं पमाणकाले॥

कदा भदन्त! दिवसाः च रात्र्यः च समाः चैव भवन्ति?

सुदर्शन! चैत्राश्वायुक्पूर्णिमयोः अत्र दिवसाः च रात्र्यः च समाः चैव भवन्ति–पञ्चदशमुहूर्त्तः दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः भवति। चतुर्भागमुहूर्त्तभागोना चतुर्मुहूर्त्ता दिवसस्य वा रात्र्यः वा पौरुषी भवति। सः एषः प्रमाणकालः।

१२५. भंते! दिवस और रात्रि समान कब होते हैं?

सुदर्शन! चैत्र और आश्विन की पूर्णिमा में दिवस और रात्रि समान होते हैं–पंद्रह मुहूर्त्त का दिन और पंद्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। दिन अथवा रात्रि के मुहूर्त्त भाग का चौथा भाग–पौने चार मुहूर्त्त का प्रहर होता है। वह है प्रमाण काल।

१२६. से किं तं अहाउनिव्वत्ति-काले?

अहाउनिव्वत्तिकाले–जण्णं जेणं नेरइएण वा तिरिक्खजोणिएण वा मणुस्सेण वा देवेण वा अहाउयं निव्वत्तियं। सेत्तं अहाउनिव्वत्ति-काले॥

सः किं तत् यथायुर्निवृत्तिकालः?

यथायुर्निवृत्तिकालः–यत् येन नैरयिकेन वा तिर्यग्योनिकेन मनुष्येन वा देवेन वा यथायुर्निवर्त्तितम्।

स एषः यथायुर्निवृत्तिकालः।

१२६. वह यथायुनिवृत्ति काल क्या है?

नैरयिक, तिर्यक् योनिक, मनुष्य अथवा देवों ने जितना और जैसा आयुष्य बांधा है, यथायुनिवृत्ति काल है। यह है यथायु-निवृत्ति काल।

१२७. से किं तं मरणकाले?

मरणकाले–जीवो वा सरीराओ, सरीरं वा जीवाओ। सेत्तं मरण-काले॥

सः किं तत् मरणकालः?

मरणकालः–जीवः वा शरीरात् शरीरं वा जीवात्। सः तत् मरणकालः।

१२७. वह मरणकाल क्या है?

जीव का शरीर से अथवा शरीर का जीव से पृथक् होने का क्षण मरण काल है। यह है मरणकाल।

१२८. से किं तं अद्धाकाले?

अद्धाकाले–से णं समयट्ठयाए-आवलि-यट्ठयाए जाव उस्सप्पिणीट्ठयाए। एस णं सुदंसणा! अद्धा दोहाराछेदेणं छिज्ज-माणी जाहे विभागं नो हव्वमागच्छइ, सेत्तं समए समयट्ठयाए। असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा आवलियत्ति पवुच्चइ। संखे-ज्जाओ आवलियाओ उस्सासो जहा सालिउद्देसए जाव–

एएसि णं पल्लाणं,
कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सागरोवमस्स उ,
एगस्स भवे परिमाणं॥१॥

सः किं तत् अद्धाकालः?

अद्धाकालः–सः समयार्थाय आवलिका-र्थाय यावत् उत्सर्पिण्यर्थाय। एषः सुदर्शन! अद्धा द्विधाराछेदेन छिद्यमाना यदा विभागं नो हव्यमागच्छति सः तत् समयः समयार्थाय। असंख्येयानां समयानां समुदयसमितिसमागमनेन सा एका 'आवलिका' इति प्रोच्यते। संख्येयाः आवलिकाः यथा शालि-उद्देशके यावत्–

एतेषां पल्यानां,
कोटिकोटिः भवेत् दशगुणिता।
तत् सागरोपमस्य तु,
एकस्य भवेत् परिमाणम्।

१२८. वह अध्वा काल क्या है?

वह अध्वा काल है–उसका अर्थ है समय, उसका अर्थ है आवलिका यावत् उसका अर्थ है उत्सर्पिणी।

द्विभाग छेद से छेदन करते करते जिसका विभाग न किया जा सके, वह समय है, उसका अर्थ है समय। असंख्येय समयों का समुदय, समिति और समागम से एक आवलिका होती है। संख्येय आवलिका का एक उच्छ्वास होता है। शालि उद्देशक की भांति वक्तव्य है यावत्–

इन दस कोड़ाकोड़ पल्यों से एक सागरोपम परिमाण होता है।

१२९. एएहिं णं भंते! पलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं?

सुदंसणा! एएहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं

एताभ्यां पल्योपम–सागरोपमाभ्यां किं प्रयोजनम्?

सुदर्शन! एताभ्यां पल्योपम–सागरो-

१२९. भंते! इन पल्योपम और सागरोपम से क्या प्रयोजन है?

सुदर्शन! इन पल्योपम सागरोपम के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवाणं आउयाइं मविज्जंति॥

पमाभ्यां नैरयिक-तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवानाम् आयूंषि मापयन्ति।

नैरयिक, तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देवों के आयुष्य का मापन होता है।

१३०. नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

एवं ठिइपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता॥

नैरयिकानां कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?

एवं स्थितिपदं निरवशेषं भणितव्यं यावत् अजघन्यमनुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३०. भंते! नैरयिकों की कितने काल की स्थिति प्रज्ञप्त है?

इस प्रकार स्थिति पद (प्रज्ञापना-पद ४) वक्तव्य है यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट—उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१ सूत्र ११९-१३०

काल के चार प्रकार का निर्देश स्थानांग में मिलता है। वहां मूल पाठ में उनका विस्तार नहीं है। प्रस्तुत प्रकरण में इनका स्पष्ट अर्थ सूत्र में उपलब्ध है।

समय आदि का विस्तृत अर्थ जानने के लिए द्रष्टव्य है, अनुयोगद्वार ४१३-४३३।

पेरिया के लिए द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि २६/१२-१६ का टिप्पण।

१३१. अत्थि णं भंते! एएसिं पलिओवमसागरोवमाणं खएति वा अवचएति वा?

हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! एतयोः पल्योपम-सागरोपमयोः क्षयः इति वा अपचयः इति वा?

हन्त अस्ति॥

१३१. भंते! इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है?

हां, होता है।

१३२. से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ—अत्थि णं एएसिं पलिओवमसागरोवमाणं खएति वा अवचएति वा?

एवं खलु सुदंसणा! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ। सहसंबवणे उज्जाणे—वण्णओ। तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे बले नामं राया होत्था—वण्णओ। तस्स णं बलस्स रण्णो पभावई नामं देवी होत्था—सुकुमालपाणिपाया वण्णओ जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोग पच्चणुभवमाणी विहरइ॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—अस्ति एतयोः पल्योपम-सागरोपमयोः क्षयः इति वा अपचयः इति वा?

एवं खलु सुदर्शन! तस्मिन् काले तस्मिन् समये हस्तिनापुरं नाम नगरमासीत्—वर्णकः। सहस्राम्रवनम् उद्यानम्—वर्णकः। तत्र हस्तिनापुरे नगरे बलः नाम राजा आसीत्—वर्णकः। तस्य बलस्य राज्ञः प्रभावती नाम देवी आसीत्—सुकुमाल-पाणि-पादा वर्णकः यावत् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्ती विहरति।

१३२. भंते! यह किस अपेक्षा कहा जा रहा है—इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है?

सुदर्शन! उस काल उस समय में हस्तिनापुर नाम नगर था—वर्णक। सहस्राम्रवन उद्यान—वर्णक। उस हस्तिनापुर नगर में बल नाम का राजा था—वर्णक। उस बल राजा के प्रभावती नाम की देवी थी—सुकुमाल हाथ पैर वाली—वर्णक यावत् मनुष्य संबंधी पंचविध काम-भोगों का प्रत्यनुभव करती हुई विहरण कर रही थी।

१३३. तए णं सा पभावई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्त-कम्मे, बाहिरओ दूमिय-घट्ठ-मट्ठे विचित्तउल्लोग-चिल्लियतले मणिरयणपणासियंधयारे बहुसम-सुविभत्तदेसभाए पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामे सुगंध-वरगंधिए गंधवट्टिभूए, तंसि तारिसगंसि

ततः सा प्रभावती देवी अन्यदा कदापि तस्मिन् तादृशके वासगृहे आभ्यन्तरतः सचित्रकर्मणि, बाह्यतः धवलित-घृष्ट-मृष्टे विचित्रोल्लोक- चिल्लियतले मणिरत्न-प्रणाशितान्धकारे बहुसमसुविभक्तदेशभागे पंचवर्ण-सरस-सुरभि-मुक्तपुष्पपुञ्जो-पचारकलिते काला-गुरु-प्रवरकुन्दुरुक-तुरुष्क-धूप-मघमघाय-मान-गन्धोद्धुता-भिरामे सुगन्धवरगन्धिते गन्धवर्तिभूते, तस्मिन् तादृशके शयनीये सालिंगनवर्तिके

१३३. एक दिन प्रभावती देवी उस अनुपम वासगृह, जो भीतर से चित्र कर्म से युक्त और बाहर से धवलित था, कोमल पाषाण से घिसा होने के कारण चिकना था। उसका ऊपरी भाग विविध चित्रों से युक्त तथा अधोभाग प्रकाश से दीप्तिमान था। मणि और रत्न की प्रभा से अंधकार प्रणष्ट हो चुका था। उसका देश-भाग बहुत सम और सुविभक्त था। पांच वर्ण के सरस और सुरभित मुक्त पुष्प, पुञ्ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयणिज्जंसि–सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झे णयगंभीरे गंगा-पुलिणवालुय-उद्दाल-सालिसए ओय-विय-खोमियदुकुल्लपट्ट-पडिच्छयणे सुविरइयरयत्ताणे रत्त-सुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगंधवरकुसुम-चुण्ण-सयणोवयारकलिए अद्धरत्त-काल-समयंसि सुत्तजागरा ओहीर-माणी-ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं सस्सिरीयं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

उभयतः विब्बोयणे द्वयतः उन्नते मध्ये नत-गम्भीरे गंगापुलिनवालुकावदालशालिशते ओदविय-क्षौमिकदुकूलपट्ट-प्रतिच्छदने सुविरचितरजस्त्राणे रक्तांशुकसंवृते सुरम्ये आजिनक - रूय - बूर - नवनीत - तूलस्पर्शे सुगन्धवरकुसुम-चूर्ण-शयनोपचारकलिते अर्द्धरात्रिकालसमये सुप्तजागरा निद्राय-माणा-निद्रायमाणा इदमेतद्रूपं 'ओरालं' कल्याणं शिवं धन्यं मांगल्यं सश्रीकं महास्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा।

हार-रयय-खीरसागर - ससंक-किरण-दगरय - रययमहासेल - पंडर-तरोरुर-मणिज्ज-पेच्छणिज्जं थिर-लट्ठ-पउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ - विसिट्ठ-तिक्ख-दाढाविडंबियमुहं परिकम्मियजच्च-कमलकोमल - माइयसोभंतलट्ठओट्ठं रत्तुप्पलपत्त - मउय-सुकुमालतालुजीहं मूसागय - पवरकणगतावियआवत्ता-यंतवट्ट - तडिविमलसरिसनयणं विसाल-पीवरोरुं पडिपुण्णविपुलखंधं मिउ- विसयसुहुमलक्खण - पसत्थ-विच्छिन्नकेसरसडोवसोभियं ऊसिय-सुनिम्मिय-सुजाय - अप्फोडियलं-गूलं सोमं सोमाकारं लीला-यंतं जंभायंतं, नहयलाओ ओवयमाणं, निययवयण-मतिवयंतं सीहं सुविणे पासिता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइ-मणा परमसोमणस्सिया हरिसव-सविसप्पमाणहियया धारा-हयक-लंबगं पिव समूसवियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अवि-लंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव बलस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीय-याहिं मिय-महुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी-संलवमाणी पडिबोहेइ,

हार - रजत - क्षीरसागर - शशांककिरण दकरजस् - रजतमहाशैल - पाण्डुरतरोरु-रमणीय-प्रेक्षणीयं स्थिर-लष्ट-प्रकोष्ठ-वृत्त-पीवर - सुश्लिष्ट - विशिष्ट - तीक्ष्ण-दंष्टाविडम्बित-मुखं परिकर्मितजात्यकमल-कोमल-मात्रिक-शोभमान लष्टौष्ठं रक्तो-त्पलपत्रमृदुक-सुकुमालतालु-जिह्वं मूषा-गतप्रवरकनकतापितावर्त्तायमान-वृत्त-तडित्विमलसदृशनयनं विशालपीवरोरुं प्रतिपूर्णविपुलस्कन्धं मृदुविशदसूक्ष्म-लक्षणप्रशस्त - विच्छिन्न - केशरसटो-पशोभितम् उच्छ्रित-सुनिर्मित-सुजात-आस्फोटित-लांगूलं सौम्यं सौम्याकारं लीलायमानं जृम्भमाणं, नभतलात् अवपतन्तं, निजक-वदनमतिपतन्तं सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा सती हृष्टतुष्टचित्ता आनन्दिता नन्दिता प्रीतिमना परम-सौमनस्यिता हर्षवशविसर्पद्-मानहृदया धाराहतकदम्बकं इव समुच्छ्रयित-रोमकूपा तं स्वप्नम् अवगृह्णाति, अवगृह्य शयनीयात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय अत्वरिता-चपलासम्भ्रान्तया अविलम्बितया राजहंस-सदृश्या गत्या यत्रैव बलस्य राज्ञः शयनीयं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य बलं राजानं ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभिः मनोज्ञाभिः 'मणामाहिं' मनोरमाभिः 'ओरालाहिं' कल्याणाभिः शिवाभिः मांगल्याभिः सश्रीकाभिः मित-मधुर-मंजुलाभिः गीर्भिः संलपती-संलपती प्रतिबोधयति, प्रतिबोध्य बलेन राज्ञा अभ्यनुज्ञाता सती नानामणिरत्नभित्तिचित्रे

के उपचार से कलित, कृष्ण अगर, प्रवर कुन्दुरु और जलते हुए लोबान की धूप से उठती हुई सुगंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंध-वर्तिका के समान उस प्रासाद में एक विशिष्ट शयनीय था--उस पर शरीर-प्रमाण उपधान (मसनद) रखा हुआ था, शिर और पांवों की ओर शरीर-प्रमाण उपधान रखे हुए थे इसलिए वह दोनों ओर से उभरा हुआ तथा मध्य में नत और गंभीर था। गंगा तट की बालुका की भांति पांव रखते ही नीचे धंस जाता था। वह परिकर्मित क्षौम दुकूल पट्ट से ढका हुआ था। उसका रजस्त्राण (चादरा) सुनिर्मित था, वह लाल रंग की मसहरी से सुरम्य था, उसका स्पर्श चर्म वस्त्र, कपास, बूर वनस्पति और नवनीत के समान (मृदु) था। प्रवर सुगंधित कुसुम चूर्ण के शयन-उपचार से कलित था। उस शयनीय पर अर्द्ध रात्रि के समय सुप्त-जाग्रत (अर्धनिद्रा) अवस्था में बार बार इसकी लेती हुई प्रभावती देवी इस प्रकार का उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगल और श्री संपन्न महास्वप्न देखकर जागृत हो गई।

वह हार, रजत, क्षीर-सागर, चंद्र-किरण, जल-कण, रजत महाशैल (वैताढ्य) के समान अतिशुक्ल, रमणीय और दर्शनीय था। उसका प्रकोष्ठ अप्रकंप और मनोज्ञ था। वह गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढ़ा से मुक्त मुंह को खोले हुए था। उसके ओष्ठ परिकर्मित, जातिवान, कमल के समान कोमल, प्रमाण-युक्त और अत्यंत शोभनीय थे। उसकी जिह्वा और तालु रक्त-कमल-पत्र के समान मृदु और सुकुमाल थे। उसके नयन मूसा (स्वर्ण आदि को गलाने का पात्र) में रहे हुए, अग्नि में तपाये हुए, आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के सदृश रंग वाले और विद्युत् के समान विमल थे। उसकी जंघा विशाल और पुष्ट थी। उसके स्कंध प्रतिपूर्ण और विपुल थे। वह मृदु, विशद, सूक्ष्म, विस्तीर्ण और प्रशस्त लक्षण युक्त अयाल की सटा से सुशोभित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिबोहेत्ता बलेणं रण्णा अब्भणु-ण्णाया समाणी णाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसी-यति, निसीयित्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव मिय-महुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलव-माणी-संलवमाणी एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए तं चेव जाव नियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

भद्रासने निषीदति. निषद्य आश्वस्ता विश्वस्ता सुखासनवरगता बलं राजानं ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः यावत् मित-मधुर-मंजुलाभिः गीर्भिः संलपती-संलपती एवमवादीत्—एवं खलु अहं देवानुप्रिय! अद्य तस्मिन् तादृशे शयनीये सालिंगनवर्तिके तं चैव यावत् निजकवदनमतिपतन्तं सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा. तत् देवानुप्रिय! एतस्य 'ओरालस्स' यावत् महास्वप्नस्य कः मन्ये कल्याणं फलवृत्तिविशेषः भविष्यति।

था। वह ऊपर की ओर उठी हुई सुनिर्मित पूंछ से भूमि को आस्फालित कर रहा था। सौम्य, सौम्य आकार वाले, लीला करते हुए, जंभाई लेते हुए, आकाश-पथ से उतर कर अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह के स्वप्न को देखकर जागृत हो गई। जागृत होकर वह हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गई। मेघ की धारा से आहत कदंब पुष्प की भांति रोम-कूप उच्छ्वसित हो गए। उसने उस स्वप्न का अवग्रहण किया, अवग्रहण कर शयनीय से उठी। उठकर वह अत्वरित, अचपल, असंभ्रांत, अविलंबित राजहंसिनी जैसी गति से जहां बल राजा का शयनीय था, वहां आई, वहां आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय श्री-संपन्न, मृदु, मधुर और मंजुल भाषा में पुनः पुनः संलाप करती हुई राजा बल को जगाया, जगाकर बल राजा की अनुज्ञा से नाना मणि रत्न की भांतों से चित्रित भद्रासन पर बैठ गई। आश्वस्त, विश्वस्त हो, प्रवर सुखासन पर बैठकर राजा बल को इष्ट, कांत यावत मृदु-मधुर और मंजुल भाषा में पुनः पुनः संलाप करती हुई इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय! मैं आज शरीर-प्रमाण उपधान वाले विशिष्ट शयनीय पर पूर्ववत् यावत् अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह के स्वप्न को देखकर जागृत हो गई देवानुप्रिय! क्या मैं मानूं? इस उदार यावत् महास्वप्न का कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

१३४. तए णं से बले राया पभावईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्प-माण हियए धाराहयनीव-सुरभि-कुसुम-चंचुमालइयतणुए ऊसवियरोमकूवे तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभा-विएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स

ततः सः बलः राजा प्रभावत्याः देव्याः अन्तिकं एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परम-सौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्धानहृदयः धाराहतनीपसुरभिकुसुम-चंचुमालइय-तनुकः उच्छ्रितरोमकूपः तं स्वप्नम् अवगृह्णाति, अवगृह्य ईहां प्रविशति, प्रविश्य आत्मनः स्वाभाविकेन मतिपूर्वकेन बुद्धिविज्ञानेन तस्य स्वप्नस्यार्थावग्रहणं

१३४. देवी प्रभावती के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर राजा बल हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। उसका शरीर मेघधारा से आहत कदंब के सुरभिकुसुम की भांति पुलकित एवं उच्छ्वसित रोमकूप वाला हो गया। उसने स्वप्न को अवग्रहण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ, करेत्ता पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव मंगल्लाहिं मिय-महुर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलव-माणे-संलवमाणे एवं वयासी–ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे? कल्लाणे णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे जाव सस्सिरीए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणु-प्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! रज्जलाभो देवाणु-प्पिए! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कं-ताणं अम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडेंसयं कुलतिलगं कुलकि-त्तिकरं कुलनंदिकरं कुल-जसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीण - पडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं माणुम्मा-णप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पिय-दंसणं सुरूवं देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेते जोव्वणगमणु-प्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउलबल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ। तं ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं दोच्चं पि तच्चं पि अणुबूहति॥

करोति, कृत्वा प्रभावतीं देवीं ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः यावत् मांगल्याभिः मित-मधुर-सश्रीकाभिः वाग्भिः संपलन्-संपलन् एवमवादीत्-'ओराले' त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः, कल्याणं त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः यावत् सश्रीकः त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः, आरोग्य-तुष्टि-दीर्घायु-कल्याण-मांगल्य-कारकः त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः, अर्थलाभः देवानुप्रिये! भोगलाभः देवानुप्रिये! पुत्रलाभः देवानुप्रिये! राज्यलाभः देवानु-प्रिये! एवं खलु त्वं देवानुप्रिये! नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानाम् अर्धाष्टमानां च रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानाम् अस्माकं कुलकेतुं कुलदीपं कुलपर्वतं कुलावतंसकं कुलतिलकं कुलकीर्तिकरं कुलनन्दिकरं कुलयशस्करं कुलाधारं कुलपादपं कुलवि-वर्धनकरं सुकुमारपाणिपादम् अहीनप्रति-पूर्णपञ्चेन्द्रियशरीरं लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपपेतं मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-सुजात-सर्वांगसुन्दरांगं शशिसौम्याकारं कान्तं प्रियदर्शनं सुरूपं देवकुमारसमप्रभं दारकं प्रजनिष्यसि।

सः अपि च दारकः उन्मुक्तबालभावः विज्ञकपरिणतिमात्रः यौवनकमनुप्राप्तः शूरः वीरः विक्रांतः विस्तीर्ण-विपुलबल-वाहनः राज्यपतिः राजा भविष्यति। ततं 'ओराले' त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः यावत आरोग्य–तुष्टि–दीर्घायु-कल्याण-मांगल्य-कारकः त्वया देवि! स्वप्नः दृष्ट इति कृत्वा प्रभावतीं देवीं ताभिः इष्टाभिः यावत् वाग्भिः द्विः अपि त्रिः अपि अनुबृंहति।

अवग्रहण कर ईहा में प्रवेश किया। ईहा में प्रवेश कर अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि-विज्ञान के द्वारा उस स्वप्न के अर्थ का अवग्रहण किया। अर्थ का अवग्रहण कर प्रभावती देवी से इष्ट, कांत यावत् मंगल, मृदु, मधुर, श्री संपन्न शब्दों के द्वारा पुनः पुनः संलाप करते हुआ इस प्रकार बोला–देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखा है। यावत् देवी! तुमने श्री संपन्न स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुम्हें अर्थ लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें भोग लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें पुत्र लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें राज्य लाभ होगा। इस प्रकार देवानुप्रिये! तुम बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात दिन-रात व्यतिक्रांत होने पर एक बालक को जन्म दोगी। वह बालक हमारे कुल की पताका, कुल-दीप, कुल-पर्वत, कुल-अवतंस, कुल-तिलक, कुल-कीर्तिकर, कुल को आनंदित करने वाला, कुल के यश को बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल-पादप, कुल को बढ़ाने वाला, सुकुमाल हाथ पैर वाला, अक्षीण और प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाला, लक्षण और व्यंजन गुणों से उपेत, मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग सुन्दर, चंद्रमा के समान सौम्य आकार वाला, कांत, प्रियदर्शन, सुरूप और देव कुमार के समान प्रभा वाला होगा।

वह बालक बाल अवस्था को पार कर विज्ञ और कला का पारगामी बन कर, यौवन को प्राप्त कर, शूर, वीर, विक्रांत, विपुल और विस्तीर्ण सेना-वाहन युक्त, राज्य का अधिपति राजा होगा। इसलिए देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है। ऐसा कह कर उन इष्ट यावत् मंजुल शब्दों के द्वारा दूसरी तीसरी बार भी प्रभावती देवी के उल्लास को बढ़ाया।

१३५. तए णं सा पभावती देवी बलस्स

ततः सा प्रभावती देवी बलस्य राज्ञः

१३५. राजा बल के पास इस अर्थ को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–एवमेयं देवाणु-प्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया! असंदिद्ध-मेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणु-प्पिया! इच्छिय-पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रण्णा अब्भणु-ण्णाया समाणी णाणामणिरयण-भत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता सयणि-ज्जंसि निसीयति, निसीयित्ता एवं वयासी–मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहिं पाव-सुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ त्ति कट्टु देवगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ॥

अन्तिकं एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्–एवमेतद् देवानुप्रिय! तथ्यमेतद् देवानुप्रिय! अवितथमेतद् देवानुप्रिय! असंदिग्धमेतद् देवानुप्रिय! इष्टमेतद् देवानुप्रिय! प्रतीष्टमेतद् देवानुप्रिय! इष्ट-प्रतीष्टमेतद् देवानुप्रिय! तत् यथेदं यूयं वदथ इति कृत्वा तं स्वप्नं सम्यक् प्रतीच्छति, प्रतीष्य बलेन राज्ञा अभ्यनुज्ञाता सती नानामणिरत्न-भित्तिचित्रात् भद्रासनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय अत्वरिताचपला-सम्भ्रान्तया अविलंबितया राजहंससदृश्या गत्या यत्रैव स्वकं शयनीयं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य शयनीये निषीदति निषद्य एवमवादीत्–मा मम सः उत्तमः प्रधानः मांगल्यं स्वप्नः अन्यैः पापस्वप्नैः प्रतिहनिष्यति इति कृत्वा देवगुरुजन-सम्बद्धाभिः प्रशस्ताभिः मांगल्याभिः धार्मिकाभिः कथाभिः स्वप्नजागरिकां प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती विहरति।

सुनकर, अवधारण कर प्रभावती देवी हृष्ट-तुष्ट हो गई; दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! यह ऐसा ही है। देवानुप्रिय! यह तथा (संवादिता पूर्ण) है। देवानुप्रिय! यह अवितथ है। देवानुप्रिय! यह असंदिग्ध है। देवानुप्रिय! यह इष्ट है। देवानुप्रिय! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। देवानुप्रिय! यह इष्ट-प्रतीप्सित है।

जैसा आप कह रहे हैं वह अर्थ सत्य है–ऐसा भाव प्रदर्शित कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर बल राजा की अभ्यनुज्ञा प्राप्त कर नाना मणिरत्न की भीतों से चित्रित भद्रासन से उठी। उठकर अत्वरित, अचपल, असंभ्रांत, अविलंबित राजहंसिनी के सदृश गति द्वारा जहां अपना शयनीय था, वहां आई, वहां आकर शयनीय पर बैठ गई। बैठकर इस प्रकार बोली–मेरा वह उत्तम, प्रधान और मंगल स्वप्न किन्हीं अन्य पाप स्वप्नों के द्वारा प्रतिहत न हो जाए। ऐसा कहकर वह देव तथा गुरुजनों से संबद्ध प्रशस्त मंगल धार्मिक कथाओं के द्वारा स्वप्न जागरिका के प्रति सतत प्रतिजागृत रहती हुई विहार करने लगी।

१३६. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अज्ज सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदय- सित-सुइय-संमज्जिओवलित्तं सुगंधवरपंचवण्ण-पुप्फोवयारकलियं कालागरु-पवर - कुंदुरुक्क - तुरुक्क-धूव - मघमघेंत - गंधुद्धयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंध-वट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य सीहासणं रएह, रएत्ता ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह॥

ततः सः बलः राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! अद्य सविशेषां बाहिरिकाम् उपस्थानशालां गन्धोदक-सिक्त-शुचिक-सम्मार्जितोपलिप्तां सुगन्ध-वरपंच-वर्णपुष्पोपचारकलितां कालागरु-प्रवरकुन्दु-रुक - तुरुष्क-धूप-मघमघाय-मान-गन्धोद्-भूताभिरामां सुगन्धवर-गन्धिकां गन्धवर्तिभूतां कुरुत च कारयत च कृत्वा च कारयित्वा च सिंहासनं रचयत, रचयित्वा मामेनामा-ज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत।

१३६. उस बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय! आज शीघ्र ही बाहरी उपस्थानशाला (सभामंडप) को विशेष रूप से सुगंधित जल से सींच, झाड़-बुहार कर, गोबर का लेप कर, प्रवर सुगंधित पंच वर्ण के पुष्पों के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुन्दुरु, जलते हुए लोबान की धूप से उद्धत गंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंध-वर्तिका के समान करो, कराओ। कर तथा करा कर सिंहासन की रचना करो। रचना कर मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सवि-सेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधो-दयसित्त - सुइय-संमज्जिओवलित्तं सुगंधवर-पंचवण्णपुप्फोवयारकलियं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघेंत-गंधुद्धयाभिरामं सुगंध-वरगंधियं गंध-वट्टिभूयं करेत्ता य कारवेत्ता य सीहासणं रएत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रतिश्रुत्य क्षिप्रमेव सविशेषकां बाहिरिकाम् उपस्थान-शालां गन्धोदकसिक्त-शुचिक-सम्मार्जितोपलिप्तां सुगन्धवरपंचवर्ण-पुष्पोपचार-कलितां कालागरु-प्रवरकुन्दुरुक-तुरुष्क-धूप-मघमघायमान-गन्धोद्भूता-भिरामां-सुगन्धवरगन्धिकां गन्धवर्तिभूतां कृत्वा च कारयित्वा च सिंहासनं रचयित्वा ताम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

१३७. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् स्वीकार कर शीघ्र ही बाहरी उपस्थान शाला को विशेष रूप से सुगंधित जल से सींचा, झाड़-बुहार कर गोबर का लेप किया। प्रवर सुगंधित पंच वर्ण पुष्प के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुंदुरु और जलती हुई लोबान की धूप से उद्धत सुगंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्ण से सुगंधित गंधवर्तिका के समान कर, कराकर सिंहासन की रचना की। रचना कर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१३८. तए णं से बले राया पच्चूसकालसमयंसि सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टण-साला तेणेव उवागच्छइ, अट्टणसालं अणुपविसइ, जहा ओववाइए तहेव अट्टणसाला तहेव मज्जणघरे जाव ससिव्व पियदंसणे नरवई जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला तेणेव उवाग-च्छइ, उवाग-च्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्था-भिमुहे निसीयइ, निसीयित्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थगकयमंगलोवयाराइं रयावेइ, रयावेत्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणा-मणि-रयण-मंडियं अहिय-पेच्छणिज्जं महग्घ-वरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसय-चित्तत्ताणं ईहा-मिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणामणिरयण-भत्तिचित्तं अत्थरयमउयमसूरगोत्थयं सेयवत्थ-पच्चत्थुयं अंगसुहफासयं सुमउयं पभावतीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासि—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहा-निमित्त-सुत्तत्थधारए विविहसत्थ-कुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह॥

ततः सः बलः राजा प्रत्यूषकालसमये शयनीयात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव अट्टनशाला तत्रैव उपागच्छति, अट्टन-शालाम् अनुप्रविशति, यथा औपपातिके तथैव अट्टनशाला तथैव मज्जनगृहे यावत् शशीः इव प्रियदर्शनः नरपतिः यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य सिंहासनवरे पुरस्तादभिमुखे निषीदति, निषद्य आत्मनः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अष्टौ भद्रासनानि श्वेतवस्त्रप्रत्यवस्तृतानि सिद्धार्थककृत-मंगलोपचाराणि रचयति, रचयित्वा आत्मनः अदूरसामंते नानामणि-रत्न-मण्डिताम् अधिकप्रेक्षणीयां महार्घ्य-वरपत्तनोद्गतां सूक्ष्मपट्टभक्तिशत-चित्रितानाम् ईहामृग-वृषभ-तुरग-नर-मकर-विहग-व्यालक-किन्नर-रुरु-शरभ-चमर-कुञ्जर-वनलता-पद्मलता-भक्ति-चित्रां आभ्यन्त-रिकां यवनिकां कर्षयति, कर्षयित्वा नानामणि रत्नभक्तिचित्रम् आस्तरक-मृदुमसूरका-वस्तृतं श्वेतवस्त्र-प्रत्यवस्तृतम् अंगसुखस्पर्शकं सुमृदुकं प्रभावत्यै देव्यै भद्रासनं रचयति, रचयित्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! अष्टांगमहानिमित्तसूत्रार्थधारकान् विविध-शास्त्रकुशलान् स्वप्नलक्षणपाठकान शब्दयत।

१३८. वह बल राजा प्रत्यूष काल समय में शयनीय से उठा, उठकर पादपीठ से उतरा, उतरकर जहां व्यायामशाला थी, वहां आया, व्यायामशाला में अनुप्रवेश किया, जैसे औपपातिक की वक्तव्यता वैसे ही व्यायामशाला और स्नानघर की वक्तव्यता यावत् चंद्रमा की भांति प्रियदर्शनि नरपति जहां बाहरी उपस्थान-शाला थी, वहां आया, वहां आकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा। बैठकर स्वयं ईशान कोण में आठ भद्रासन स्थापित कराए। उन पर श्वेत-वस्त्र बिछाए तथा सरसों डालकर मंगल उपचार और शांति कर्म किए। भद्रासन स्थापित करवाकर अपने से न अति दूर न अति निकट नाना मणिरत्नों से मंडित, अति प्रेक्षणीय बहुमूल्य प्रवर पत्तन में बनी हुई सूक्ष्म सैकड़ों भांतों से चित्रित भेड़िया, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, काल हिरण, अष्टापद, याक (चमरी गाय), हाथी, अशोकलता, पद्मलता आदि की भांतों से चित्रित भीतरी यवनिका लगाई। लगवा कर नाना मणिरत्न की भांतों से चित्रित, बिछौने और कोमल उपधानों से युक्त, धवल वस्त्र से आच्छादित, शरीर के लिए सुखद स्पर्श वाला और अतीव सुकोमल भद्रासन प्रभावती देवी के लिए स्थापित करवाया। स्थापित करवा कर कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही अष्टांग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महानिमित्त के सूत्र और अर्थ के धारक, विविध शास्त्रों में कुशल, स्वप्न लक्षण पाठक को बुलाओ।

१३९. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता बलस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडि-निक्खमित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं वेइयं हत्थिणपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेसिं सुविण-लक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति॥

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रतिश्रुत्य बलस्य राज्ञः अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य शीघ्रं त्वरितं चपलं चण्डं वेगितं हस्तिनापुरं नगरं मध्यंमध्येन यत्रैव तेषां स्वप्नलक्षणपाठकानां गृहाणि तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य तान् स्वप्नलक्षण-पाठकान् शब्दयन्ति।

१३९. उन कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् आज्ञा को स्वीकार कर बल राजा के पास से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर शीघ्र, त्वरित, चपल, चंड और वेग युक्त गति के द्वारा हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच जहां उन स्वप्न-लक्षण-पाठकों के घर थे, वहां आए, वहां आकर स्वप्न-लक्षण पाठकों को बुलाया।

१४०. तए णं ते सुविणलक्खण-पाढगा बलस्स रण्णो कोडुंबिय-पुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा सिद्धत्थ-गहरियालियाकयमंगलमुद्धाणा सएहिं-सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता हत्थिणपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव बलस्स रण्णो भवण-वरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भवणवरवडेंसगपडि-दुवारंसि एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव बले राया तेणेव उवाग-च्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बलं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलेणं रण्णा वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्मा-णिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं पुव्व-ण्णत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति॥

ततः ते स्वप्नलक्षणपाठकाः बलस्य राज्ञः कौटुम्बिकपुरुषैः शब्दायिताः सन्तः हृष्ट-तुष्टाः स्नाताः कृतबलिकर्माणः कृतकौतुक-मंगलप्रायश्चित्ताः शुद्धप्रावेश्यानि मांगल्यानि वस्त्राणि प्रवरपरिहिताः अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीराः सिद्धार्थक-हरितालिकाकृतमंगलमूर्धानः स्वकेभ्यः स्वकेभ्यः गृहेभ्यः निर्गच्छन्ति, निर्गत्य हस्तिनापुरं नगरं मध्यंमध्येन यत्रैव बलस्य राज्ञः भवनवरावतंसकः तत्रैव उपाग-च्छन्ति, उपागम्य भवनवरावतंसकप्रतिद्वारे एकतः मिलन्ति, मिलित्वा यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव बलः राजा तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा बलं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धापयन्ति। ततः ते स्वप्नलक्षणपाठकाः बलेन राज्ञा वन्दित-पूजित-सत्कारित-सम्मानिताः सन्तः प्रत्येकं प्रत्येकं पूर्वन्यस्तेषु भद्रासनेषु निषीदन्ति।

१४०. राजा बल के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर वे स्वप्न-पाठक हृष्ट-तुष्ट हो गए। उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। सभा में प्रवेशोचित मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। मस्तक पर दूब और श्वेत सर्षप रख अपने-अपने घर से निकले, निकल कर हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच, जहां बल राजा का प्रवर भवन-अवतंसक था, वहां आए, वहां आकर प्रवर भवन-अवतंसक के मुख्य-द्वार पर एक साथ मिले। मिलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला थी, जहां बल राजा था, वहां आए, वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिका कर, बल राजा का जय विजय की ध्वनि से वर्धापन किया।
वे स्वप्नलक्षण-पाठक बल राजा के द्वारा वंदित, पूजित, सत्कारित और सम्मानित होकर अपने-अपने लिए पूर्व स्थापित भद्रासन पर बैठ गए।

१४१. तए णं से बले राया पभावतिं देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल-पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—एवं

ततः सः बलः राजा प्रभावतीं देवीं यवनिकान्तरिकां स्थापयति, स्थापयित्वा पुष्प-फल-प्रतिपूर्णहस्तः परेण विनयेन तान् स्वप्न-लक्षणपाठकान् एवमवादीत्—एवं

१४१. बल राजा ने प्रभावती देवी को यवनिका के भीतर बिठाया। बिठाकर फूलों और फलों से भरे हुए हाथों वाले राजा बल ने परम विनयपूर्वक उन स्वप्न-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खलु देवाणु-प्पिया! पभावती देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

खलु देवानुप्रियाः! प्रभावती देवी अद्य तस्मिन् वासगृहे यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, तत् देवानुप्रियाः! एतस्य 'ओरालस्स' यावत् महास्वप्नस्य कः मन्ये कल्याणं फलवृत्ति-विशेषः भविष्यति?

लक्षणपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! प्रभावती देवी आज उस विशिष्ट वासघर में यावत् सिंह का स्वप्न देखकर जागृत हो गई। देवानुप्रियो! इस उदार यावत् महास्वप्न का क्या कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

१४२. तए णं ते सुविणलक्खण-पाढगा बलस्स रण्णो अंतियं एय-मट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेंति, करेत्ता अण्णमण्णेणं सद्धिं संचालेंति, संचालेत्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभि-गयट्ठा बलस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारे-माणा एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महा-सुविणा—बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिया! तित्थगरमायरो वा चक्कवट्टि-मायरो वा तित्थगरंसि वा चक्क-वट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा—

ततः ते स्वप्नलक्षणपाठकाः बलस्य राज्ञः अन्तिकम् एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टाः तं स्वप्नम् अवगृह्णन्ति, अवगृह्य ईहाम् अनुप्रविशन्ति, अनुप्रविश्य तस्य स्वप्नस्य अर्थावग्रहणं कुर्वन्ति, कृत्वा अन्योऽन्येन सार्धं संचालयन्ति, संचाल्य तस्य स्वप्नस्य लब्धार्थाः गृहीतार्थाः पृष्टार्थाः विनिश्चितार्थाः अभिगतार्थाः बलस्य राज्ञः पुरतः स्वप्नशास्त्राणि उच्चारयन्तः, उच्चारयन्तः एवमवादिषुः—एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माकं स्वप्नशास्त्रे द्वाचत्वारिंशत् स्वप्नाः, त्रिंशत् महास्वप्नाः, द्विसप्ततिः सर्वस्वप्नाः दृष्टाः। तत्र देवानुप्रियाः! तीर्थंकरमातरः वा चक्रवर्तिमातरः वा तीर्थंकरे वा चक्रवर्त्ती गर्भं वा अवक्रामति एतेषां त्रिंशत् महास्वप्नानां इमान् चतुर्दश महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते, तद् यथा—

१४२. वे स्वप्नलक्षणपाठक राजा बल के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्टतुष्ट हो गए, उस स्वप्न का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर ईहा में अनुप्रवेश किया। अनुप्रवेश कर उस स्वप्न के अर्थ का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर एक दूसरे के साथ संचालना की। संचालना कर स्वप्न के अर्थ को स्वयं जाना, अर्थ का ग्रहण किया, उस विषय में प्रश्न किया, विनिश्चय किया, अर्थ को हृदयंगम किया। राजा बल के सामने स्वप्न-शास्त्रों का पुनः पुनः उच्चारण करते हुए इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! हमारे स्वप्न-शास्त्रों में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न हैं—सर्व बहत्तर स्वप्न दृष्ट हैं। देवानुप्रिय! तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती के गर्भावक्रांति के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं, जैसे—

गय उसह सीह अभिसेय दाम
ससि दिणयरं झयं कुंभं।
पउमसर सागर विमाणभवण
रयणुच्चय सिहिं च॥१॥

गजं वृषभं सिंहं अभिषेकं
दाम शशिनं दिनकरं ध्वजं कुम्भम्।
पद्मसरः सागरं विमानभवनं
रत्नोच्चयं शिखिनं॥१॥

हाथी, वृषभ, सिंह, अभिषेक, माला, चंद्रमा, दिनकर, ध्वज, कलश, पद्म-सरोवर, सागर, विमान-भवन, रत्न-राशि, अग्नि।

वासुदेवमायरो वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे सत्त महा-सुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। बलदेवमायरो बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडि-बुज्झंति। मंडलियमायरो मंडलि-यंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसि णं चोद्दसण्हं

वासुदेवमातरः वासुदेवे गर्भम् अवक्रामति एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानाम् अन्यतरान् सप्त महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते। बलदेवमातरः बलदेवे गर्भम् अवक्रामति एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानाम् अन्यतरान् चतुरः महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते। माण्डलिकमातरः माण्डलिके गर्भम् अवक्रामति एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानाम् अन्यतरम् एकं महास्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते। अयं च देवानुप्रियाः!

वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महा स्वप्नों में से कोई सात महास्वप्न देखकर जागृत होती है। बलदेव की माता बलदेव के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई चार महास्वप्न देखकर जागृत होती है। मांडलिक राजा की माता मांडलिक के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासुविणाणं अण्णयरं एगं महासुविणं पासित्ता णं पडि-बुज्झंति। इमे य णं देवाणुप्पिया! पभावतीए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं देवाणुप्पिया! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं देवाणु-प्पिया! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया! भोग-लाभो देवाणुप्पिया! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया! रज्जलाभो देवाणु-प्पिया! एवं खलु देवाणुप्पिया! पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं जाव देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिति।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमत्ते जोव्वणग मणुप्पते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्णविउल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा। तं ओराले णं देवाणुप्पिया! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण मंगल्लकारए पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे॥

प्रभावत्या देव्या एकः महास्वप्नः दृष्टः, तत् 'ओराले' देवानुप्रियाः! प्रभावत्या देव्या स्वप्नः दृष्टः यावत् आरोग्य-तुष्टि-दीर्घायु-कल्याण-मांगल्यकारकः देवानुप्रियाः! प्रभावत्या देव्या स्वप्नः दृष्टः, अर्थलाभः देवानुप्रियाः! भोगलाभः देवानुप्रियाः! पुत्रलाभः देवानुप्रियाः! राज्यलाभः देवानुप्रियाः! एवं खलु देवानुप्रियाः! प्रभावती देवी नवानां मासानां बहुप्रति-पूर्णानाम् अर्धाष्टमानां रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानां युष्माकं कुलकेतुं यावत् देवकुमाररामप्रभं दारकं प्रजनिष्यति। सः अपि दारकः उन्मुक्तबालभावः विज्ञक-परिणतमात्रः यौवनकमनुप्राप्तः शूरः वीरः विक्रान्तः विस्तीर्ण-विपुलबल-वाहनः राज्यपतिः राजा भविष्यति, अनगारः वा भाविनात्मा। तत् 'ओराले' देवानुप्रियाः! प्रभावत्या देव्या स्वप्नः दृष्टः यावत् आरोग्य-तुष्टि-दीर्घायु-कल्याण-मांगल्य-कारकः प्रभावत्या देव्या स्वप्नः दृष्टः।

देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने इन स्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है, इसलिए देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण तथा मंगलकारी स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिय! अर्थ लाभ होगा। देवानुप्रिय! भोग लाभ होगा। देवानुप्रिय! पुत्र-लाभ होगा। देवानुप्रिय! राज्य-लाभ होगा।

इस प्रकार देवानुप्रिय! प्रभावती देवी बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात दिन-रात व्यतिक्रांत होने पर तुम्हारे कुलकेतु यावत् देवकुमार के समान प्रभा वाले पुत्र को जन्म देगी।

वह बालक बाल्य अवस्था को पार कर, विज्ञ और कला का पारगामी बनकर, यौवन को प्राप्त कर शूर, वीर, विक्रांत, विपुल और विस्तीर्ण सेना-वाहन युक्त, राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा। इसलिए देवानुप्रिय! (हमारा मत प्रामाणिक है) प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् प्रभावती देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है।

१४३. तए णं से बले राया सुविण-लक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु ते सुविण-लक्खणपाढगे एवं वयासी—एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणु-प्पिया! अवितहमेयं देवाणु-प्पिया! असंदिद्धमेयं देवाणु-प्पिया! इच्छिय-मेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणु-प्पिया! से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविण-लक्खणपाढए विउलेणं असण-पाण-खाइमसाइम-पुप्फ- वत्थ - गंध - मल्ललंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता

ततः सः बलः राजा स्वप्नलक्षण-पाठकानाम् अन्तिके एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा तान् स्वप्नलक्षणपाठकान् एवमवादीत्—एवमेतद् देवानुप्रियाः! तथ्यमेतद् देवानुप्रियाः! अवितथमेतद् देवानुप्रियाः! असंदिग्धमेतद् देवानुप्रियाः! इष्टमेतद् देवानुप्रियाः! प्रतीष्टमेतद् देवानुप्रियाः! इष्ट-प्रतीष्टमेतद् देवानुप्रियाः! तत् यथैव यूयं वदथ इति कृत्वा तं स्वप्नं सम्यक् प्रतीच्छति, प्रतीष्य स्वप्नलक्षणपाठकान् विपुलेन अशन-पान-खाद्य - स्वाद्य - पुष्प - वस्त्र - गन्ध-माल्यालंकारेण सत्करोति, सम्मानयति सत्कृत्य सम्मान्य विपुलं जीवितार्हं प्रीतिदानं ददाति, दत्वा प्रतिविसृजति,

१४३. वह बल राजा स्वप्नलक्षणपाठकों से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला—देवानुप्रियो! यह ऐसा ही है। देवानुप्रियो! यह तथा (संवादितापूर्ण) है। देवानुप्रियो! यह अवितथ है। देवानुप्रियो! यह असंदिग्ध है। देवानुप्रियो! यह इष्ट है। देवानुप्रियो! यह प्रतीप्सित है। देवानुप्रियो! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसा आप कह रहे हैं, ऐसा भाव प्रदर्शित कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर स्वप्नलक्षणपाठकों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गंध और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जेत्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव पभावती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पभा-वतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव मिय-महुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलव-माणे संलवमाणे एवं वयासी– एवं खलु देवाणुप्पिए! सुविण-सत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महा-सुविणा–बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिए! तित्थ-गरमायरो वा चक्कवट्टि-मायरो वा तित्थगरंसि वा चक्क-वट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महा-सुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति तं चेव जाव मंडलियमायरो मंडलि-यंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसि णं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरं एगं महासुविणं पासित्ता णं पडि-बुज्झंति। इमे य णं तुमे देवाणु-प्पिए! एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा, तं ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव मिय-महुर-सस्सिरी-याहिं वग्गूहिं दोच्चं पि तच्चं पि अणुबूहइ॥

प्रतिविसृज्य सिंहासनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय यत्रैव प्रभावती देवी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य प्रभावतीं देवीं ताभिः इष्टाभिः यावत् मित-मधुर-सश्रीकाभिः वाग्भिः संलपन् संलपन् एवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्रे द्वि-चत्वारिंशत् स्वप्नाः, त्रिंशत् महास्वप्नाः– द्विसप्ततिः महास्वप्नाः दृष्टाः। तत्र देवानुप्रिये! तीर्थंकरमातरः वा चक्रवर्ति-मातरः वा तीर्थंकरे वा चक्रवर्ती वा गर्भम् अवक्रामति एतेषां त्रिंशत् महास्वप्नानाम् इमान् चतुर्दशान् महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते तत् चैव यावत् मांडलिक-मातारः मांडलिके गर्भम् अवक्रामति एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानाम् अन्यतरत् एकं महास्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते। अयं च त्वया देवानुप्रिये! एकः महास्वप्नः दृष्टः, तत् 'ओराले' त्वया–देवि! स्वप्नः दृष्टः यावत् राज्यपतिः राजा भविष्यति, अनगारः वा भावितात्मा, तत् 'आराले' त्वया देवि! स्वप्नः दृष्टः यावत् आरोग्य-तुष्टि-दीर्घायु-कल्याण-मांगल्यकारकः त्वया देवि स्वप्नः दृष्टः इति कृत्वा प्रभावतीं देवीं ताभिः इष्टाभिः यावत् मित-मधुर-सश्रीकाभिः वाग्भिः द्विः अपि त्रिः अपि अनुबृंहति।

माल्यालंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर जीवन-निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर प्रतिविसर्जित किया। प्रतिविसर्जित कर सिंहासन से उठा। उठकर जहां प्रभावती देवी थी वहां आया। वहां आकर प्रभावती देवी को इष्ट यावत् मृदु-मधुर और श्री संपन्न शब्दों के द्वारा पुनः पुनः संलाप करता हुआ इस प्रकार बोला–देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न– सर्व बहत्तर स्वप्न निर्दिष्ट हैं। देवानुप्रिये! तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती के गर्भावक्रांति के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती है। पूर्ववत् यावत् मांडलिक राजा की माता मांडलिक राजा के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है। देवानुप्रिये! तुमने एक महास्वप्न देखा है इसलिए देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत राज्य का अधिपति राजा अथवा भावितात्मा अनगार होगा। देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है। इस प्रकार उन इष्ट यावत् मृदु मधुर, श्री संपन्न शब्दों के द्वारा दूसरी और तीसरी बार प्रभावती देवी के उल्लाप्य का संवर्द्धन करता है।

१४४. तए णं सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–एयमेयं देवाणु-प्पिया! जाव तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दा-सणाओ अब्भुट्ठेइ, अतुरिय-मचवल-मसंभंताए अविलंबियाए रायहंस-

ततः सा प्रभावती देवी बलस्य राज्ञः अन्तिकम् एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्– एवमेतद् देवानुप्रियाः! यावत् तं स्वप्नं सम्यक् प्रतीच्छति, प्रतीष्य बलेन राज्ञा अभ्यनुज्ञाता सती नानामणिरत्नभक्ति-चित्रात् भद्रासनात् अभ्युत्तिष्ठति, अत्वरिताचपलासम्भ्रान्तया अविलम्बितया राजहंससदृश्या गत्या यत्रैव स्वके भवने

१४४. वह प्रभावती देवी बल राजा के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुई। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंजलि को मस्तक के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! यह ऐसा ही है यावत् उस स्वप्न को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर राजा बल की अनुज्ञा प्राप्त कर नाना मणि-रत्नों की भक्तियों से चित्रित भद्रासन से उठी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता सयं भवणमणुपविट्ठा॥

तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य स्वकं भवनमनुप्रविष्टा।

अत्वरित, अचपल, असंभ्रांत, अविलंबित राजहंसिनी जैसी गति के द्वारा जहां अपना भवन था, वहां आई। वहां आकर अपने भवन में अनुप्रवेश किया।

१४५. तए णं सा पभावती देवी ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सव्वा-लंकार-विभूसिया तं गब्भं नाति-सीतेहिं नातिउण्हेहिं नातितित्तेहिं नातिकडुएहिं नातिकसाएहिं नातिअंबिलेहिं नाति-महुरेहिं उउभय-माणसुहेहिं भोयण-च्छायण-गंध-मल्लेहिं जं तस्स गब्भस्स हियं मितं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइ-रिक्कसुहाए मणाणुकुलाए विहार-भूमीए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला सम्माणियदोहला अविमाणिय-दोहला वोच्छिण्णदोहला विणीय-दोहला ववगयरोग-सोग-मोह-भय-परित्तासा तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहति॥

ततः सा प्रभावती देवी स्नाता कृतबलिकर्मा यावत् सर्वालंकारविभूषिता तं गर्भं नाति-शीतैः नात्युष्णैः नातितिक्तैः नातिकटुकैः नातिकषायैः नात्याम्लैः नातिमधुरैः ऋतु-भजमानसुखैः भोजनाच्छादन-गंध-माल्यैः यत् तस्य गर्भस्य हितं मितं पथ्यं गर्भ-पोषणं तत् देशे च काले च आहारमाहरन्ती विविक्तमृदुकैः शयनासनैः प्रतिरिक्त-शुभायां मनोनुकूलायां विहारभूम्यां प्रशस्त-दोहदा सम्पूर्णदोहदा सम्मानितदोहदा अविमानित-दोहदा व्युच्छिन्नदोहदा विनीतदोहदा व्यपगतरोग-शोक-मोह-भय-परित्रासात् गर्भं सुखेन परिवहन्ति।

१४५. प्रभावती देवी ने स्नान किया, बलि कर्म किया यावत् शरीर को सर्व-अलंकार से विभूषित किया। वह उस गर्भ के लिए न अति शीत, न अति उष्ण, न अति तिक्त, न अति कटुक, न अति कषैला, न अति खट्टा, न अति मधुर, प्रत्येक ऋतु में सुखकर भोजन, आच्छादन और गंध, माल्य का सेवन करती। जो आहार हित, मित, पथ्य और गर्भ का पोषण करने वाला था उस देश और काल में वही आहार करती। दोष रहित कोमल शय्या पर सोती। एकांत सुखकर मनोनुकूल विहार-भूमि में रहती। इस प्रकार अपने दोहद को प्रशस्त किया, अपने दोहद को संपूर्ण किया, अपने दोहद का सम्मान किया, अपने दोहद का लेश मात्र मनोरथ भी अधूरा नहीं छोड़ा, दोहद में उत्पन्न इच्छाओं को पूरा किया, दोहद पूर्ण किया। उसने रोग, शोक, मोह, भय और परित्रास से मुक्त होकर उस गर्भ का सुखपूर्वक वहन किया।

१४६. तए णं सा पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णां अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कं-ताणं सुकुमाल-पाणिपायं अहीण-पडिपुण्णपंचिंदिय-सरीरं लक्खण-वंजणगुणोववेयं माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगं ससि-सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाया॥

ततः सा प्रभावती देवी नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानाम् अर्द्धाष्टमानां च रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानां सुकुमालपाणिपादम् अहीन-प्रतिपूर्णपञ्चेन्द्रियशरीरं लक्षण-व्यंजन-गुणोपपेतं मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-सुजात-सर्वांगसुन्दरांगं शशिसौम्याकारं कान्तं प्रियदर्शनं सुरूपं दारकं प्रजाता।

१४६. प्रभावती देवी ने बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढे सात रात दिन के व्यतिक्रांत होने पर सुकुमाल हाथ पैर वाले, अहीन पंचेन्द्रिय शरीर, लक्षण व्यंजन गुणों से युक्त, मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग-सुन्दर, चंद्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कांत, प्रियदर्शन और सुरूप पुत्र को जन्म दिया।

१४७. तए णं तीसे पभावतीए देवीए अंगपडियारियाओ पभावतिं देविं पसूयं जाणेत्ता जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-

ततः तस्याः प्रभावत्याः देव्याः अंग-प्रतिचारिकाः प्रभावतीं देवीं प्रसूतां ज्ञात्वा यत्रैव बलः राजा तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य करतलपरिगृहीतं दशनखं

१४७. प्रभावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया है—यह जानकर प्रभावती देवी की अंग-प्रतिचारिका जहां राजा बल था, वहां आई। वहां आकर दोनों हथेलियों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्गहियं दसनहं सिरसा-वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बलं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं जाव सुरूवं दारगं पयाया। तं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं निवेदेमो। पियं भे भवतु॥

शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा बलं राजानं जयेन विजयेन वर्धयन्ति, वर्धयित्वा एवमवादीत्–एवं खलु देवानुप्रियाः! प्रभावती देवी नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानां यावत् सुरूपं दारकं प्रजाता। तत् एतं देवानुप्रियानां प्रियार्थाय प्रियं निवेदयामः। प्रियं भवतां भवतु।

निष्पन्न संपुट आकार वाली दशनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर राजा बल को जय विजय के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोली–देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने बहु प्रतिपूर्ण नव मास साढे सात रात दिन के व्यतिक्रांत होने पर यावत् सुरूप पुत्र को जन्म दिया है। इसलिए हम देवानुप्रिय को प्रिय निवेदन करती हैं। आपका प्रिय हो।

१४८. तए णं से बले राया अंगपडियारियाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम - चंचुमालइयतणुए ऊसवियरोमकूवे तासिं अंगपडियारियाणं मउडवज्जं जहामालियं ओमोयं दलयइ, दलयित्ता सेतं रययामयं विमलसलिलपुण्णं भिंगारं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता, मत्थए धोवइ, धोवित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ॥

ततः सः बलः राजा अंगप्रतिचारिकाणाम् अन्तिकं एनमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्थितः हर्षवशविसर्पद्मानहृदयः धारा - हतनीपसुरभिकुसुम - चंचुमालाइयतनुकः उच्छ्रितरोमकूपः ताभ्यः अंगप्रतिचारिकेभ्यः मुकुटवर्जं यथामालितम् अवमोचं ददाति, दत्वा श्वेतं रजतमयं विमलसलिलपूर्णं भृंगारं प्रगृह्णाति, प्रगृह्य मस्तकान् धावति, धावित्वा विपुलं जीवनार्हं प्रीतिदानं ददाति, दत्वा सत्करोति, सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य प्रतिविसृजति।

१४८ अंग-प्रतिचारिका से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, राजा बल हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। उसका शरीर धारा से आहत कदंब के सुरभि कुसुम की भांति पुलकित शरीर एवं उच्छ्वसित रोम कूप वाला हो गया। उसने उन अंग-प्रतिचारिकाओं को मुकुट को छोड़ कर धारण किये हुए शेष सभी आभूषण दे दिए। देकर श्वेतरजतमय विमल जल से भरी हुई झारी को ग्रहण किया। ग्रहण कर अंग प्रतिचारिकाओं के मस्तक को प्रक्षालित किया। प्रक्षालित कर दासत्व से मुक्त कर जीवन निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर सत्कार-सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर प्रतिविसर्जित किया।

१४९. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! हत्थिणापुरे नयरे चारग-सोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माण-वद्धणं करेह, करेत्ता हत्थिणापुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसिय-संमज्जि-ओवलित्तं जाव गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य जूवसहस्सं वा चक्कसहस्सं वा पूयामहामहिमसं-जुत्तं उस्सवेह, उस्सवेत्ता ममेत माणत्तियं पच्चप्पिणह॥

ततः सः बलः राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! हस्तिनापुरे नगरे चारकशोधनं कुरुत, कृत्वा मानोन्मानवर्द्धनं कुरुत, कृत्वा हस्तिनापुरं नगरं साभ्यन्तरबाहिरिकं आसिक्तसम्मार्जितोवलिप्तं यावत् गन्ध-वर्त्तिभूतं कुरुत च कारयत च, कृत्वा च कार-यित्वा च यूपसहस्रं वा चक्रसहस्रं वा पूजामहामहिमसंयुक्तम् उच्छ्रयत, उच्छ्रित्य मामेनाम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयथ।

१४९. बल राजा ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय! हस्तिनापुर नगर में शीघ्र ही चारक-शोधन–बंदियों का विमोचन करो, विमोचन कर मान-उन्मान (तौल-माप) में वृद्धि करो, वृद्धि कर हस्तिनापुर नगर के भीतरी और बाहरी क्षेत्र को सुगंधित जल से सींचो, झाड़-बुहार कर गोबर का लेप करो यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंधवर्तिका के समान करो, कराओ, कर और कराकर यूप-सहस्र और चक्र-सहस्र की पूजा और महामहिमा युक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्सव करो। उत्सव कर मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।

१५०. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा बलेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

ततः कौटुम्बिकपुरुषाः बलेन राज्ञा एवम् उक्ताः सन्तः हृष्टतुष्टाः यावत् ताम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

१५०. वे कौटुम्बिक पुरुष बल राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए यावत् बल राजा की आज्ञा बल राजा को प्रत्यर्पित की।

१५१. तए णं से बले राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं चेव जाव मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालाचराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदामं पमुइयपक्कीलियं सपुरजणजाणवयं दसदिवसे ठिइवडियं करेति॥

ततः सः बलः राजा यत्रैव अट्टनशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत् चैव यावत् मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य उच्छुल्कां उत्कराम् उत्कृष्टाम् अदेयाम् अमेयाम् अभटप्रवेशाम् अदण्डकुदण्डिमाम् अधार्याम् गणिकावरनाटकीयकलिताम् अनेकतालाचरानुचरिताम् अनुद्धूयमृदंगाम् अम्लानमाल्यदामं प्रमुदितप्रक्रीडिताम् सपुर-जनजानपदं दशदिवसे स्थितिपतितां करोति।

१५१. वह बल राजा जहां व्यायामशाला थी, वहां आया, वहां आकर पूर्ववत् यावत् स्नानघर से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर राजा बल ने निर्देश दिया—दस दिवस के लिए कुल मर्यादा के अनुरूप पुत्र जन्म महोत्सव मनाया जाए—प्रजा से शुल्क और भूमि का कर्षण न करें, क्रय-विक्रय का निषेध करने के कारण देने और मापने की प्रणाली स्थगित हो गई है। सुभट प्रजा के घर में प्रवेश न करें। राज दण्ड से प्राप्त द्रव्य और कुदंड—अपराधी आदि से प्राप्त दंड द्रव्य न लें। ऋण धारण करने वालों को ऋण मुक्त करें। गणिका आदि के द्वारा प्रवर नाटक किए जाएं, वहां अनेक ताल बजाने वालों का अनुचरण होता रहे, नगर में सतत मृदंग बजते रहें, अम्लान पुष्प मालाएं (तोरणद्वारों आदि पर) बांधी जाएं। इस प्रकार प्रमुदित और खुशियों से झूमते हुए नागरिक और जनपद वासी पुत्र जन्म उत्सव में सहभागी बनें।

भाष्य

१ सूत्र ११९-१३०

शब्द विमर्श—

- **पसत्थ दोहला**—प्रशस्त मनोरथ।
- **संपुण्ण दोहला**—अभिलषित प्रयोजन की पूर्ति।
- **सम्माणिय दोहला**—प्राप्त और अभिलषित अर्थ का उपयोग।
- **अविमाणिय दोहला**—वह मनोरथ जो लेश मात्र भी अपूर्ण नहीं रहा।
- **वोच्छिण्ण दोहला**—दोहद में उत्पन्न इच्छा की पूर्ति।
- **विणीय दोहला**—दोहद का पूर्ण होना।
- **जहामालियं**—धारण किए हुए।
- **चारग सोहणं**—बंदी जनों की मुक्ति।
- **अदंड कोदंडिमं**—दण्ड-राजदंड से प्राप्त हुआ, कुदण्ड—अपराधी आदि से प्राप्त दंड द्रव्य न लेना।
- **अधरिम**—ऋण धारण करने वालों को ऋण मुक्त करना।
- **पमुइय पक्कीलिय**—प्रमुदित और खुशियों से झूमते हुए।
- **दुगुल्ल**—वृक्ष-छाल से निष्पन्न वस्त्र युगल।

१५२. तए णं से बले राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे

ततः सः बलः राजा दशाहिकायां स्थितिपतितायां वर्तमानायां शतान् च साहस्रिकान् च शतसाहस्रिकान् च यागान् च दायान् च भागान् च ददन् दापयन्,

१५२. कुल मर्यादा के अनुरूप चल रहे दसाह्निक महोत्सव में बल राजा बल ने सैकड़ों, हजारों, लाखों द्रव्यों से याग कार्य कराए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य, सइए य सहस्सिए य सयसाहस्सिए य लंभे पडिच्छेमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं यावि विहरइ॥

शतकान् साहस्रिकान् शतसाहस्रिकान् च लम्भान् प्रतीच्छन् प्रत्येषयन् च एवं चापि विहरति।

दान और भाग (विवक्षित द्रव्य का अंश) दिया, दिलवाया। सैकड़ों, हजारों, लाखों लोगों से उपहार को ग्रहण करता हुआ, स्वीकार करता हुआ, स्वीकार करवाता हुआ विहरण कर रहा था।

१५३. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइ-वडियं करेइ, तइए दिवसे चंद-सूरदंसावणियं करेइ, छट्ठे दिवसे जागरियं करेइ, एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते निव्वत्ते असुइजाय-कम्मकरणे संपत्ते बारसमे दिवसे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं रायाणो य खत्तिए य आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाया तं चेव जाव सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स राईण य खत्ति-याण य पुरओ अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागयं बहुपुरिस-परंपरप्प-रूढं कुलाणुरूवं कुलसरिसं कुलसंताणतंतुवद्धणकरं अयमेया-रूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए बलस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं महब्बले-महब्बले। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति महब्बले त्ति॥

ततः तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे स्थितिपतितां कुरुतः, तृतीये दिवसे चन्द्रसूरदर्शनिकां कुरुतः, षष्ठे दिवसे जागरिकां कुरुतः, एकादशमे दिवसे व्यतिक्रान्ते निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे सम्प्राप्ते द्वादशमे दिवसे विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयति, उपस्कार्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-संबन्धि-परिजनं राज्ञः च क्षत्रियान् च आमंत्रयति, आमन्त्र्य ततः पश्चात् स्नाताः तं चैव यावत् सत्कुर्वन्ति संमन्यन्ते, सत्कृत्य सम्मान्य तस्यैव मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-संबन्धि-परिजनस्य राज्ञां च क्षत्रियाणां च पुरतः आर्यक-प्रार्यक-पितृप्रार्यकागतं बहुपुरुष-परम्पराप्ररूढं कुलानुरूपं कुलसदृशं कुलसन्तानतन्तुवर्द्धन-करम् इदमेतद्रूपं गौणं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुरुतः—यस्मात् अस्माकम् अयं दारकः बलस्य राज्ञः पुत्रः प्रभावत्याः देव्याः आत्मजः, तत् भवतु अस्माकम् अस्य दारकस्य नामधेयं 'महाबलः—महाबलः।' ततः तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः महाबल इति।

१५३. बालक के माता-पिता ने प्रथम दिन कुल मर्यादा के अनुरूप महोत्सव मनाया। तीसरे दिन चंद्र-सूर्य के दर्शन कराए। छट्ठे दिन जागरण किया। इस प्रकार ग्यारह दिन व्यतिक्रांत होने पर अशुचिजात-कर्म से निवृत्त होकर बारहवें दिन के आने पर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार कराए, कराकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करने के पश्चात् स्नान किया, पूर्ववत् यावत् सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान कर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों के सामने पितामह, प्रपितामह प्रप्रपितामह आदि बहुपुरुष की परंपरा से रूढ, कुलानुरूप, कुल-सदृश, कुल संतान के तंतु का संवर्द्धन करने वाला, इस प्रकार का गुणयुक्त गुणनिष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि यह बालक राजा बल का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है इसलिए इसका नाम होना चाहिए—'महाबल-महाबल।' तब उसके माता-पिता ने उस बालक का नाम महाबल किया।

१५४. तए णं से महब्बले दारए पंचधाईपरिग्गहिए, (तं जहा—खीरधाईए), एवं जहा दढपइण्णस्स जाव निव्वाय-निव्वाघायंसि सुहं-सुहेणं परिवड्ढति॥

ततः सः महाबलः दारकः पंचधात्रीपरिगृहीतः, (तद् यथा—क्षीरधात्र्या) एवं यथा दृढप्रतिज्ञस्य यावत् निर्वातनिर्व्याघाते सुखंसुखेन परिवर्धते।

१५४. बालक महाबल पांच धायों के द्वारा परिगृहीत (जैसे क्षीर धात्री) इस प्रकार दृढ-प्रतिज्ञ की भांति वक्तव्यता (रायपसेणीय सूत्र ८०५) यावत् निर्वात और व्याघात रहित स्थान में सुखपूर्वक बढने लगा।

१५५. तए णं तस्स महब्बलस्स दारगस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं वा चंदसूरदंसावणियं वा जागरियं वा

ततः तस्य महाबलस्य दारकस्य अम्बापितरौ अनुपूर्वेण स्थितिपतितां वा चन्द्रसूरदर्शनिकां वा जागरिकां वा

१५५. उस बालक महाबल के माता-पिता ने अनुक्रम से कुल मर्यादा के अनुरूप चंद्र-सूर्य के दर्शन कराए, जागरण, नामकरण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकरणं वा परंगामणं वा पचंकामणं वा पजे-मामणं वा पिंडवद्धणं वा पजंपावणं वा कण्णवेहणं वा संवच्छर-पडिलेहणं वा चोलोयणगं वा उवणयणं वा, अण्णाणि य बहूणि गब्भा-धाण-जम्मणमादियाइं कोउयाइं करेंति॥

नामकरणं वा पर्यङ्कनं वा पदचंक्रामणं वा प्रजेमापनं वा पिंडवर्द्धनं वा प्रजल्पापनं वा कर्णवेधनं वा संवत्सर- प्रतिलेखनं वा चूलोपनयनं वा उपनयनं वा, अन्यानि वा बहूनि गर्भाधान-जन्मादिकानि कौतुकानि कुर्वन्ति।

भूमि पर रेंगना, पैरों से चलना, भोजन प्रारंभ करना, ग्रास को बढ़ाना, संभाषण सिखाना, कर्ण वेधन, संवत्सर प्रतिलेखन (वर्षगांठ-मनाना) चूड़ा धारण करना, उपनयन संस्कार (कलादि ग्रहण) और अन्य अनेक गर्भाधान, जन्म महोत्सव आदि कौतुक किए।

१५६. तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति, एवं जहा दढप्पइण्णे जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था॥

ततः तं महाबलं कुमारं अम्बापितरौ सातिरेकाष्टवर्षकं ज्ञात्वा शोभने तिथि-करण-नक्षत्र-मुहूर्ते कलाचार्यस्य उपनयतः, एवं यथा दृढप्रतिज्ञः यावत् अलंभोगसमर्थः जातः चापि अभवत्।

१५६. माता-पिता ने महाबल कुमार को सातिरेक आठ वर्ष का जानकर शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मूहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ की भांति वक्तव्यता यावत् भोग के उपभोग करने में समर्थ हुआ।

१५७. तए णं तं महब्बलं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाव अलंभोग-समत्थं विजाणित्ता अम्मापियरो अट्ठ पासायवडेंसए कारेंति—अब्भुग्गय-मूसिय-पहसिए इव वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे जाव पडिरूवे। तेसिं णं पासायवडेंसगाणं बहुमज्झ-देसभागे, एत्थणं महेगं भवणं कारेंति—अणेगखंभसयसंनिविट्ठं वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे पेच्छाघरमंडवंसि जाव पडिरूवे॥

ततः तं महाबलं कुमारं उन्मुक्त- बालभावं यावत् अलंभोगसमर्थं विज्ञाय अम्बापितरौ अष्ट प्रासादावतंसकान् कारयतः—अभ्युद्गत-उच्छ्रित-प्रहसितान् इव वर्णकः यथा राजप्रश्नीये यावत् प्रतिरूपान्। तेषां प्रासादा-वतंसकानां बहुमध्यदेशभागे, अत्र च महान्तं भवनं कारयतः—अनेक-स्तम्भशत-सन्निविष्टं वर्णकः यथा राजप्रश्नीये प्रेक्षागृहमण्डपे यावत् प्रतिरूपान्।

१५७. महाबल कुमार बाल्यावस्था को पार कर यावत् भोग के उपभोग में समर्थ है, यह जानकर माता-पिता ने आठ प्रासाद-अवतंसक बनवाए—अत्यंत ऊंचे, हंसते हुए श्वेतप्रभा पटल की भांति श्वेत वेदिका-संयुक्त—रायपसेणइय की भांति वक्तव्यता यावत् प्रतिरूप थे। उन आठ प्रासाद-अवतंसक के बहु मध्य-भाग में एक महान भवन बनवाया—अनेक सैकड़ों स्तंभों पर अवस्थित था, रायपसेणइय की भांति वर्णक—प्रेक्षाघर मंडप यावत् प्रतिरूप था।

१५८. तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो अण्णया कयाइ सोभ-णंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि ण्हायं कयबलिकम्मं कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वा-लंकारविभूसियं पमक्खणग-ण्हाण-गीय-वाइय-पसाहण-अट्ठंगतिलग-कंकण-अविहवबहुउवणीयं मंगल-सुजंपिएहि य वरकोउय-मंगलोवयार-कयसंतिकम्मं सरि-सियाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोव-वेयाणं विणीयाणं कय-कोउय-मंगलपायच्छित्ताणं सरिसएहिं रायकुलेहिंतो आणिल्लियाणं अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु॥

ततः तं महाबलं कुमारं अम्बापितरौ अन्यदा कदाचित् शोभने तिथि-करण-दिवस-नक्षत्र-मूहूर्ते स्नातं कृतबलिकर्माणं कृतकौतुक-मंगल-प्रायश्चितं सर्वालंकार-विभूषितं प्रम्रक्षणक-स्नान-गीत-वादित्र-प्रसाधन-अष्टांगतिलक-कंकण-अविध-ववधूपनीतं मंगलसुजम्पितैः च वरकौतुक-मंगलोप-चारकृतशान्तिकर्म, सदृशीनां सदृग्त्वचानां सदृग्व्रतानां सदृग्लावण्य-रूप-यौवनगुणोपपेतानां विनीतानां कृतकौतुक- मंगलप्रायश्चित्तानां सदृग्भ्यः राजकुलेभ्यः आनीतानाम् अष्टानां राजवरकन्यकानाम् एकदिवसेन पाणिम् अग्राह्यताम्।

१५८. उस महाबल कुमार ने किसी समय शोभन तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ। सौभाग्यवती स्त्रियों ने अभ्यंगन, स्नान, गीत, वादित आदि से प्रसाधन तथा आठ अंगों पर तिलक किए, कंकण के रूप में लाल डोरे को हाथ में बांधा, दधि अक्षत आदि मंगल एवं मंगल गीत आशीर्वाद के रूप में गाए, प्रवर कौतुक एवं मंगल-उपचार के रूप में शांति कर्म आदि उपनय किए। माता पिता ने एक दिन समान जोड़ी वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन गुणों से उपेत, विनीत, कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई, सदृश राजकुलों से आई हुई आठ प्रवर राजकन्याओं के साथ महाबल कुमार का पाणिग्रहण करवाया।

१५९. तए णं तस्स महाबलस्स कुमारस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं पीइदाणं दलयंति, तं जहा–अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्ण-कोडीओ, अट्ठ मउडे मउडप्पवरे, अट्ठ कुंडलजोए कुंडल-जोयप्पवरे अट्ठ हारे हारप्पवरे, अट्ठ अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, अट्ठ एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ, एवं रयणावलीओ, अट्ठ कडगजोए कडग-जोयप्पवरे, एवं तुडियजोए, अट्ठ खोमजुयलाइं खोमजुयलप्प-वराइं, एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं, अट्ठ सिरीओ, अट्ठ हिरीओ एवं धिइओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, अट्ठ नंदाइं, अट्ठ भद्दाइं, अट्ठ तले तलप्पवरे सव्वरयणामए, नियगवरभवणकेऊ अट्ठ झए झयप्पवरे, अट्ठ वए वयप्पवरे दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अट्ठ नाडगाइं नाडगप्पवराइं बत्तीस-इबद्धेणं नाडएणं, अट्ठ आसे आसप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघर- पडिरूवए, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघर-पडिरूवए, अट्ठ जाणाइं जाणप्पवराइं, अट्ठ जुगाइं जुगप्पवराइं, एवं सिबियाओ, एवं संदमाणीओ, एवं गिल्लीओ थिल्लीओ, अट्ठ वियडजाणाइं वियड-जाणप्पवराइं, अट्ठ रहे पारिजाणिए, अट्ठ रहे संगामिए, अट्ठ आसे आसप्पवरे, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे, अट्ठ गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं, अट्ठ दासे दासप्पवरे, एवं दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, अट्ठ सोवण्णिए ओलंबणदीवे, अट्ठ रुप्पामए ओलंबण-दीवे, अट्ठ सोवण्णरुप्पामए ओलंबण-दीवे, अट्ठ सोवण्णिए उक्कंबण-दीवे, एवं चेव तिण्णि वि, अट्ठ सोवण्णिए पंजरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि, अट्ठ

ततः तस्य महाबलस्य कुमारस्य अम्बापितरौ इदमेतद्रूपं प्रीतिदानं दत्तः, तद्यथा–अष्ट हिरण्यकोटीः, अष्ट सुवर्ण-कोटीः, अष्ट मुकुटान् मुकुटप्रवरान्, अष्टकुण्डल'जोए' कुण्डलजोयप्रवराणि अष्ट हारान् हारप्रवरान् अष्ट अर्द्धहारान् अर्द्धहारप्रवरान्, अष्ट एकावलीः एकावली-प्रवराः, एवं मुक्तावलीः, एवं कनकावलीः, एवं रत्नावलीः, अष्ट कटकयुगानि कटक-युगप्रवराणि एवं 'तुडिय' युगानि अष्ट क्षौमयुगलानि क्षौमयुगलप्रवराणि, एवं 'वडग' युगलानि, एवं पट्ट- युगलानि, एवं 'दुगुल्ल' युगलानि, अष्ट श्रियः, अष्ट ह्रियः एवं धियः, कीर्त्तीः, बुद्धीः, लक्ष्मीः, अष्ट नन्दानि, अष्ट भद्रानि, अष्ट तलान् तलप्रवरान् सर्वरत्नमयान् निज-कवरभवनकेतून् अष्ट ध्वजान् ध्वजप्रवरान्, अष्ट व्रजान् व्रजप्रवरान् दशगोसाहस्रिकेण व्रजेन, अष्ट नाटकानि नाटकप्रवराणि द्वात्रिंशद्बद्धेन नाटकेन, अष्ट अश्वान् अश्वप्रवरान् सर्वरत्नमयान् श्रीगृह-प्रतिरूपकान्, अष्ट हस्तिनः हस्तिप्रवरान् सर्वरत्नमयान् श्रीगृहप्रतिरूपकान्, अष्टानि यानानि यानप्रवराणि, अष्ट युगानि युगप्रवराणि, एवं शिबिकाः, एवं स्यन्द-मानिकाः, एवं गिल्लीओ, 'थिल्लीओ', अष्ट विकट-यानानि विकटयानप्रवराणि, अष्ट रथान् पारियानिकान्, अष्ट रथान् सांग्रामिकान्, अष्ट अश्वान् अश्वप्रवरान्, अष्ट हस्तिनः हस्तिप्रवरान्, अष्ट ग्रामान् ग्रामप्रवरान् दशकुलसाहस्रिकेण ग्रामेण, अष्ट दासान् दासप्रवरान्, एवं दासीः, एवं किंकरान्, एवं कंचुकीयान्, एवं वर्षधरान्, एवं महत्तरकान् अष्ट सौवर्णिकान् अवलम्बनदीपान्, अष्ट रूप्यकमयान् अवलम्बनदीपान्, अष्ट सुवर्ण-रूप्यकमयान् अवलम्बनदीपान्, अष्ट सौवर्णिकान् अवकम्बनदीपान् एवं चैव त्रीन् अपि, अष्ट सौवर्णिकान् पञ्जरदीपान् एवं चैव त्रीन् अपि, अष्ट सौवर्णिकान् स्थालान्, अष्ट

१५९. महाबल कुमार के माता पिता ने इस आकार वाला प्रीतिदान किया, जैसे–आठ करोड़ हिरण्य, आठ करोड़ स्वर्ण, मुकुटों में प्रवर आठ मुकुट, कुंडल युगलों में प्रवर आठ कुंडल-युगल, हारों में प्रवर आठ हार, अर्द्धहारों में प्रवर आठ अर्द्धहार, एकावलियों में प्रवर आठ एकावली, इसी प्रकार आठ मुक्तावली, इसी प्रकार आठ कनकावली, इसी प्रकार आठ रत्नावली, कड़ों की जोड़ी में प्रवर आठ कड़ों की जोड़ी, इसी प्रकार आठ बाजूबंध की जोड़ी, क्षौम-युगल में आठ प्रवर क्षौम-युगल वस्त्र, आठ टसर-युगल (एक तरह का कड़ा, मोटा रेशम या उसका बना कपड़ा) इसी प्रकार आठ पट्ट-युगल, इस प्रकार आठ वृक्ष छाल से निष्पन्न वस्त्र-युगल, आठ श्री, आठ ह्री, इस प्रकार आठ धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, रत्नमय आठ नंद–मंगल वस्तुएं, आठ भद्र–मृदु आसन और ताल में प्रवर आठ तालवृक्ष, निज घर के लिए केतु रूप ध्वजों में प्रवर आठ ध्वज, दस दस हजार गायों वाले गोकुलों में प्रवर आठ गोकुल, बत्तीस व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले नृत्य में प्रवर आठ नृत्य, अश्वों में प्रवर श्रीगृह रूप आठ रत्नमय अश्व, हस्तियों में प्रवर श्रीगृह रूप आठ रत्नमय हस्ती, यानों में प्रवर आठ यान, युग्यों में प्रवर आठ युग्य–वाहन, इस प्रकार शिविका, इस प्रकार स्यंदमानिका, इसी प्रकार डोली, दो खच्चरों वाली बग्घी, विकट यान में आठ प्रवर विकट (खुले) यान, आठ पारियानिक रथ, आठ सांग्रामिक रथ, अश्वों में प्रवर आठ अश्व, हस्तियों में प्रवर आठ हस्ति, दस हजार कुलों (परिवारों) से युक्त एक ग्राम होता है ऐसे ग्रामों में प्रवर आठ ग्राम, दासों में प्रवर आठ दास, इसी प्रकार दासी, किंकर, कंचुकी-पुरुष, वर्षधर (अंतःपुर रक्षक) और महत्तरक, आठ सोने के अवलंबक दीपक, आठ चांदी के अवलंबक दीपक, आठ स्वर्ण-रजत के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोवण्णिए थाले अट्ठ सुवण्णरुप्पामए थाले, अट्ठ रुप्पामए थाले, अट्ठ सोवण्णियाओ पत्तीओ ३, अट्ठ सोवण्णियाइं थासगाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाओ तलियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ कविचियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए अवएडए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पायपीढए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पल्लंके ३, अट्ठ सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, अट्ठ हंसा-सणाइं, अट्ठ कोंचासणाइं, एवं गरुलासणाइं, उन्नयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दास- णाइं, पक्खासणाइं, मगरासणाइं, अट्ठ पउमासणाइं, अट्ठ दिसा-सोवत्थियासणाइं, अट्ठ तेल्ल-समुग्गे, अट्ठ कोट्ठसमुग्गे, एवं पत्त-चोयग-तगर-एल-हरियाल-हिंगुलय-मणोसिल-अंजण-समुग्गे, अट्ठ सरिसव-समुग्गे, अट्ठ खुज्जाओ जहा ओववाइए जाव अट्ठ पारिसीओ अट्ठ छत्ते, अट्ठ छत्तधारीओ चेडीओ, अट्ठ चामराओ, अट्ठ चामरधारीओ चेडीओ अट्ठ तालियंते, अट्ठ तालियंटधारीओ चेडीओ, अट्ठ करोडियाओ, अट्ठ करोडिया-धारीओ चेडीओ, अट्ठ खीरधाईओ, अट्ठ मज्जणधाईओ, अट्ठ मंडणधाईओ अट्ठ खेल्लावण-धाईओ, अट्ठ अंकधाईओ, अट्ठ अंगमद्दियाओ, अट्ठ उम्मद्दियाओ अट्ठ ण्हावियाओ, अट्ठ पसा-हियाओ, अट्ठ वण्णगपेसीओ अट्ठ चुण्णगपेसीओ अट्ठ कीडागारीओ, अट्ठ दवकारीओ, अट्ठ उवत्था-णियाओ, अट्ठ नाडइज्जाओ, अट्ठ कोडुंबिणीओ,अट्ठ महाणसिणीओ, अट्ठ भंडागारिणीओ, अट्ठ अब्भा-धारिणीओ, अट्ठपुप्फ-घरणीओ, अट्ठ पाणिघरणीओ, अट्ठ बलिका-रीओ , अट्ठ सेज्जाकारीओ, अट्ठ अब्भितरियाओ पडिहारीओ अट्ठ बाहिरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ रूप्यकमयान् स्थालान्, अष्ट सुवर्णरूप्य-कमयान् स्थालान्, अष्टा सौवर्णिकाः पात्रीः ३, अष्ट सौवर्णिकानि 'थासगाइं' ३ अष्ट सौवर्णिकानि 'मल्लगाइं' ३, अष्ट सौवर्णिकाः 'तलियाओ' ३, अष्ट सौवर्णिकाः 'कविचियाओ' ३, अष्ट सौवर्णिकान् 'अवएडए' ३, अष्ट सौवर्णिकाः 'अवयक्काओ',३, अष्ट सौवर्णिकान् पादपीठान् ३, अष्ट सौवर्णिकाः 'भिसियाओ' ३, अष्ट सौवर्णिकाः 'करोडियाओ' ३, अष्ट सौवर्णिकान् पर्यंकान् ३, अष्ट सौवर्णिकाः प्रतिशयाः ३, अष्ट हंसासनानि, अष्टानि क्रौंचासनानि, एवं गरुडासनानि, उन्नतासनानि, प्रणतासनानि, दीर्घासनानि, भद्रासनानि, पक्षासनानि, मकरासनानि, अष्ट, पद्मासनानि, अष्टानि दिशासौवस्तिकासनानि, अष्ट तैलसमुद्गान्, अष्ट कोष्ठसमुद्गान्, एवं पत्र-'चोयग'-तगर-एला-हरिताल-हिंगुलक-मनःशिला-अंजन-समुद्गान्, अष्ट सर्षपसमुद्गान्, अष्ट 'खुज्जाओ' यथा औपपातिके यावत् अष्ट पारसीः, अष्टानि छत्राणि, अष्ट छत्रधारीः चेटीः, अष्ट चामराणि, अष्ट चामरधारिकाः चेटीः, अष्ट तालवृन्तानि, अष्ट तालवृन्तधारिकाः चेटीः, अष्ट 'करोडियाओ', अष्ट 'करोडियाधारीः' चेटीः, अष्ट क्षीरधात्रीः, अष्ट मज्जनधात्रीः, अष्ट मण्डनधात्रीः, अष्ट खेलनकधात्रीः, अष्ट अंकधात्रीः, अष्ट अंगमर्दिकाः, अष्ट उन्मर्दिकाः अष्ट स्नापिकाः, अष्ट प्रसाधिकाः, अष्ट वर्णकपेषिकाः, अष्ट चूर्णकपेषिकाः, अष्ट क्रीडाकारिकाः, अष्ट 'दवकारीओ', अष्ट उपस्थानिकाः, अष्ट नाटकीयाः, अष्ट कौटुम्बिनीः अष्ट महानसिनीः, अष्ट भाण्डागारिणीः, अष्ट अर्भकधारिणीः, अष्ट पुष्पगृहिणीः, अष्ट पानीयगृहिणीः, अष्ट बलिकारिकाः, अष्ट शय्याकारिकाः, अष्ट अभ्यन्तरिकाः प्रतिहारिकाः, अष्ट बाहिरिकाः, प्रतिहारिकाः, अष्ट मालाकारिकाः, अष्ट प्रेषणकारिकाः, अन्यत् वा सुबहु हिरण्यं वा सुवर्णं वा, कांस्यं वा दूष्यं वा विपुलधन-कनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शंख-शिला-प्रवाल-रक्तरत्न-सत्सारस्वापतेयम्, अलं अवलंबक दीपक, आठ स्वर्ण के उत्कंचक (ऊर्ध्व दंड युक्त) दीपक, इसी प्रकार रजत और स्वर्ण-रजत के उत्कंचक दीपक, आठ स्वर्ण के पंजर (ऊर्ध्वपटल युक्त) दीपक, इसी प्रकार रजत और स्वर्ण-रजत के आठ पंजर दीपक, आठ स्वर्ण की थाली, आठ रजत की थाली, आठ स्वर्ण-रजत की थाली, आठ स्वर्ण परात, आठ रजत परात, आठ स्वर्ण-रजत परात, आठ स्वर्ण स्थासक, आठ रजत स्थासक, आठ स्वर्ण-रजत स्थासक, आठ स्वर्ण मल्लक (कटोरे), आठ रजत मल्लक, आठ स्वर्ण-रजत मल्लक, आठ स्वर्ण तलिका (पात्र-विशेष) आठ रजत तलिका, आठ स्वर्ण-रजत तलिका, आठ स्वर्ण कलाचिका, आठ रजत कलाचिका, आठ स्वर्ण-रजत कलाचिका, आठ स्वर्ण तापिकाहस्तक (संडासी), आठ रजत तापिकाहस्तक, आठ स्वर्ण-रजत तापिकाहस्तक, आठ स्वर्ण तवे, आठ रजत तवे, आठ स्वर्ण-रजत तवे, आठ स्वर्ण पादपीठ, आठ रजत पादपीठ, आठ स्वर्ण-रजत पादपीठ, आठ स्वर्ण भीषिका (आसन-विशेष), आठ रजत भीषिका, आठ स्वर्ण-रजत भीषिका, आठ स्वर्ण करोटिका (लोटा) आठ रजत करोटिका, आठ स्वर्ण, रजत करोटिका, आठ स्वर्ण पर्यंक, आठ रजत पर्यंक, आठ स्वर्ण, रजत पर्यंक, आठ स्वर्ण प्रतिशय्या, आठ रजत प्रतिशय्या, आठ स्वर्ण-रजत प्रतिशय्या, आठ स्वर्ण, हंसासन, आठ रजत हंसासन, आठ स्वर्ण रजत हंसासन, आठ स्वर्ण क्रौंचासन, आठ रजत क्रौंचासन, आठ स्वर्ण-रजत क्रौंचासन, इसी प्रकार आठ गरुड़ासन, उन्नत-आसन, प्रणत-आसन, दीर्घ-आसन, भद्रासन, पक्षासन, मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक् स्वस्तिक आसन, आठ तेल के डिब्बे, आठ सुगंधित चूर्ण के डिब्बे, इसी प्रकार आठ नागर, धूमवास, तगर, इलायची, हरताल, हिंगुर, मनःशिल और अंजन के डिब्बे, आठ सर्षप के डिब्बे, आठ कुब्जा दासियां औपपातिक की भांति वक्तव्यता यावत् आठ पारसी दासियां, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियां, आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालाकारीओ, अट्ठ पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जं, अलाहि जाव आसत्त-माओ कुल-वंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकामं परिभाएउं॥

यावत् आसप्तमात् कुलवंशात् प्रकामं दातुं, प्रकामं भोक्तुं, प्रकामं परिभाजयितुम्।

चामर, आठ चामरधरिणी दासियां, आठ तालवृंत (वींजन), आठ तालवृंतधारिणी दासियां, आठ करोटिका, आठ करोटिकाधारिणी दासियां, आठ क्षीर-धात्रियां, आठ मज्जनधात्रियां, आठ मंडन-धात्रियां, आठ खेलनकधात्रियां, आठ अंक-धात्रियां, आठ अंगमर्दिका, आठ उन्मर्दिका, आठ स्नान कराने वाली, आठ मंडन (प्रवर पोशाक पहनाने वाली) करने वाली, आठ चन्दन आदि घिसने वाली, आठ चूर्णक (तांबूल, गंधद्रव्य आदि) पीसने वाली, आठ क्रीड़ा कराने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ आसन के समीप रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक आज्ञाकारिणी दासियां, आठ रसोई बनाने वाली, आठ भंडार की रक्षा करने वाली, आठ बालक का लालन-पालन करने वाली दासियां, आठ पुष्पधारिणी (पुष्प की रक्षा करने वाली), आठ पानी भरने वाली, आठ बलि करने वाली, आठ शय्या करने वाली, आठ आभ्यंतर प्रातिहारियां, आठ बाह्य प्रातिहारियां, आठ माला बनाने वाली, आठ आटा आदि पीसने वाली, इसके अतिरिक्त बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (वस्त्र), विपुल वैभव, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मनःशिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठ सार—इन वैभवशाली द्रव्यों का प्रीतिदान किया, जो सातवीं पीढ़ी तक प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ था।

१६०. तए णं से महब्बले कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्ण-कोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउडप्पवरं दलयइ, एवं तं चेव सव्वं जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग-रयण - मणि - मोत्तिय - संख-सिल-प्पवाल - रत्तरयण - संतसार-सावएज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल-वंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं,

ततः सः महाबलः कुमारः एकैकस्यै भार्यायै एकैकां हिरण्यकोटिं ददाति, एकैकां सुवर्णकोटिं ददाति, एकैकां मुकुटं मुकुटप्रवरं ददाति, एवं तत् चैव सर्वं यावत् एकैकां प्रेषणकारिकां ददाति, अन्यत् वा सुबहु हिरण्यं वा सुवर्णं वा कांस्यं वा दूष्यं वा विपुलधन - कनक - रत्न - मणि-मौक्तिक-शंख-शिला - प्रवाल - रक्तरत्न - सत्सार-स्वापतेयम्, अलं यावत् आसप्तमात् कुलवंशात् प्रकामं दातुं, प्रकामं भोक्तुं, प्रकामं परिभाजयितुम्।

१६०. महाबल कुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक कोटि हिरण्य दिया, एक-एक कोटि सुवर्ण दिया, एक-एक मुकुटों में प्रवर मुकुट दिया, इसी प्रकार संपूर्ण वर्णन पूर्ववत् यावत् एक-एक आटा आदि पीसने वाली दासी दी। इसके अतिरिक्त बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (वस्त्र) विपुल वैभव, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मनःशिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों का प्रीतिदान किया, जो सातवीं पीढ़ी तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पकामं परिभाएउं॥

प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ था।

१६१. तए णं से महब्बले कुमारे उप्पिं पासायवरगए जहा जमाली जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरइ॥

ततः सः महाबलः कुमारः उपरि प्रासादवरगतः यथा जमालिः यावत् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति।

१६१. महाबल कुमार अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में जैसे जमाली की यावत् पंचविध मनुष्य संबंधी काम-भोग को भोगता हुआ विहार करने लगा।

१६२. तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे जाइसंपन्ने वण्णओ जहा केसिसामिस्स जाव पंचेहि अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये विमलस्य अर्हतः 'पओप्पए' धर्मघोषः नाम अनगारः जातिसम्पन्नः वर्णकः यथा केशिस्वामिनः यावत् पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं सम्परिवृतः पूर्वानुपूर्वी चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् यत्रैव हस्तिनापुरं नगरम्, यत्रैव सहस्राम्रवनम् उद्यानम् तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्णाति, अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

१६२. उस काल और उस समय अर्हत् विमल (तेरहवें तीर्थंकर) के प्रपौत्र (प्रशिष्य) जातिसंपन्न वर्णक केशीस्वामी (रायपसेणइय-६८७) की भांति वक्तव्यता यावत् धर्मघोष नामक अणगार पांच सौ अणगारों के साथ संपरिवृत होकर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए जहां हस्तिनापुर नगर था जहां सहस्राम्रवन उद्यान था, वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे थे।

१६३. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जणसद्दे इ वा जाव परिसा पज्जुवासइ॥

ततः हस्तिनापुरे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु महान् जनशब्द इति वा यावत् पर्षत् पर्युपास्ते।

१६३. हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान् जन सम्मर्द यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

१६४. तए णं तस्स महब्बलस्स कुमारस्स तं महयाजणसद्दं वा जणवूहं वा जाव जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा एवं जहा जमाली तहेव चिंता, तहेव कंचुइज्जं पुरिसं सद्दावेति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया! अज्ज हत्थिणापुरे नयरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति॥

ततः तस्य महाबलकुमारस्य तं महत्-जनशब्दं वा जनव्यूहं वा यावत् जनसन्निपातं वा शृण्वतः वा पश्यतः वा एवं यथा जमाली तथैव चिंता, तथैव कञ्चुकीयपुरुषं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-किं देवानुप्रिया! अद्य हस्तिनापुरे नगरे इन्द्रमहः इति वा यावत् निर्गच्छन्ति।

१६४. महाबल कुमार उस महान् जन-सम्मर्द जन-व्यूह यावत् जन-सन्निपात सुन कर, देखकर इस प्रकार जैसे जमाली की वैसे ही सोचा, कंचुकी पुरुष को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! क्या हस्तिनापुर नगर में इन्द्र महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं?

१६५. तए णं से कंचुइ-पुरिसे महब्बलेणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे धम्मघोसस्स अणगारस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ,

ततः सः कञ्चुकिपुरुषः महाबलेन कुमारेण एवम् उक्ते सति हृष्टतुष्टः धर्मघोषस्य अनगारस्य आगमनगृहीतविनिश्चयः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयति, वर्धयित्वा एवमवादीत्—नो खलु

१६५. महाबलकुमार के यह कहने पर वह कंचुकी पुरुष हृष्टतुष्ट हो गया। उसने धर्मघोष अनगार के आगमन का निश्चय होने पर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वद्धावेत्ता एवं वयासी–नो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज हत्थिणापुरे नगरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति। एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्ज विमलस्स अरहओ एओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते बहवे उग्गा, भोगा जाव निग्गच्छंति॥

देवानुप्रियः! अद्य हस्तिनापुरे नगरे इन्द्रमहः इति वा यावत् निर्गच्छन्ति। एवं खलु देवानुप्रियः! अद्य विमलस्य अर्हतः 'पओप्पए' धर्मघोषः नाम अनगारः हस्तिनापुरस्य नगरस्य बहिः सहस्राम्रवने उद्याने यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति, ततः एते बहवः उग्राः भोगाः यावत् निर्गच्छन्ति।

टिकाकर महाबल कुमार को 'जय विजय' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर वह इस प्रकार बोला–देवानुप्रिय! आज हस्तिनापुर नगर में न इन्द्रमहोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं। देवानुप्रिय! आज अर्हत् विमल के प्रशिष्य, धर्मघोष नामक अनगार हस्तिनापुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में प्रवास योग्यस्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं इसलिए ये बहुत उग्र, भोज यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं।

१६६. तए णं से महब्बले कुमारे तहेव रहवरेणं निग्गच्छति। धम्मकहा जहा केसिसामिस्स। सो वि तहेव अम्मापियरं आपुच्छइ, नवरं–धम्मघोसस्स अणगारस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तहेव वुत्तपडिवुत्तिया, नवरं–इमाओ य ते जाया! विउलरायकुलबालियाओ कलाकुसलसव्वकाललालिय-सुहोचियाओ सेसं तं चेव जाव ताहे अकामाइं चेव महब्बलकुमारं एवं वयासी–तं इच्छामो ते जाया! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए॥

ततः सः महाबलः कुमारः तथैव रथवरेण निर्गच्छति। धर्मकथा यथा केशिस्वामिनः। सः अपि तथैव अम्बापितरौ आपृच्छति, नवरं–धर्मघोषस्य अनगारस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्। तथैव उक्तप्रत्युक्तिका, नवरं–इमाः च ते जातः! विपुलराज-कुलबालिकाः कला-कुशल-सर्वकलालालित-सुखोचिताः शेषं तत् चैव यावत् तदा अकामानि चैव महाबलकुमारम् एवम् अवादिष्टाम्–तत् इच्छावः तव जात! एकदिवसमपि राज्यश्रियं द्रष्टुम्।

१६६. महाबल कुमार ने उसी प्रकार श्रेष्ठ रथ पर बैठकर निर्गमन किया। धर्म कथा केशी स्वामी की भांति वक्तव्य है। उसने उसी प्रकार माता-पिता से पूछा, इतना विशेष है–धर्मघोष अनगार के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होना चाहता हूं। उसी प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर, इतना विशेष है–जात! ये तुम्हारी आठ गुण वल्लभ पत्नियां, जो विशाल कुल की बालिकाएं, कला कुशल, सर्वकाल लालित, सुख भोगने योग्य शेष (भ. ९/१७३) जमालि की भांति वक्तव्यता यावत् उसके माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार को इस प्रकार कहा–जात! हम तुम्हें एक दिन के लिए राज्यश्री से संपन्न (राजा) देखना चाहते हैं।

१६७. तए णं से महब्बले कुमारे अम्मापिउ-वयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ॥

ततः सः महाबलः कुमारः अम्बापितृवचनमनुवर्तमानः तूष्णीकः संतिष्ठते।

१६७. महाबल कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करता हुआ मौन हो गया।

१६८. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, एवं जहा सिवभद्दस्स तहेव रायाभिसेओ भाणियव्वो जाव अभिसिंचति, करयलपरिग्गहियं दसनहं सिर-सावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेति, वद्धावेत्ता एवं वयासी–भण जाया! किं देमो? किं पयच्छामो? सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव–

ततः सः बलः राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, एवं यथा शिवभद्रस्य तथैव राजाभिषेकः भणितव्यः यावत् अभिसिञ्चति, करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा महाबलं कुमारं जयेन विजयेन वर्धयति, वर्धयित्वा एवम् अवादीत्–भण जात! किं ददः, किं प्रयच्छावः? शेषं यथा जमालेः तथैव तावत्–

१६८. बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, इस प्रकार शिवभद्र की भांति राज्याभिषेक वक्तव्य है, यावत् अभिसिक्त किया, दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर महाबल कुमार को 'जय विजय' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार कहा–जात!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताओ, हम क्या दें? क्या निरण करें? शेष जैसे जमालि की वक्तव्यता वैसे ही यावत्–

१६९. तए णं से महब्बले अणगारे धम्मघोसस्स अणगारस्स अंतियं सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहि विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवालस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समा-हिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसह-स्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडा-कोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंदे कप्पे वीईवइत्ता बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं महब्बलस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। से णं तुमं सुदंसणा! बंभलोगे कप्पे दस सागरोवमाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्ता तओ देव-लोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव वाणियग्गामे नगरे सेट्ठि-कुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाए॥

ततः सः महाबलः अनगारः धर्मघोषस्य अन्तिकं सामायिकादिकानि चतुर्दश-पूर्वाणि अधीते, अधीत्य बहुभिः चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम-दशम-द्वादशैः मासार्द्धमासक्षपणैः विचित्रैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् बहु-प्रतिपूर्णानि द्वादशवर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, षष्टं भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं चन्द्रमस्-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूपाणां बहूनि योजनानि, बहूनि योजनशतानि, बहूनि योजनसहस्राणि, बहूनि योजनशतसहस्राणि, बह्व्यः योजन-कोट्यः बह्व्यः योजन-कोटिकोट्याः ऊर्ध्वं दूरम् उत्पत्य सौधर्मेशान-सनत्कुमार-माहेन्द्रे कल्पे व्यतिव्रज्य ब्रह्मलोके कल्पे देवत्वेन उपपन्नः। तत्र अस्त्येकेषां देवानां दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र महाबलस्यापि देवस्य दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। अथ त्वं सुदर्शन! ब्रह्मलोके कल्पे दश सागरोपमाणि दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानः विहृत्य तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा इहैव वाणिज्यग्रामे नगरे श्रेष्ठिकुले पुत्रत्वेन प्रत्यायातः।

१६९. महाबल अनगार ने धर्मघोष अनगार के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, अध्ययन कर चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त, अर्धमास और मासक्षपण आदि विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहु प्रतिपूर्ण बारह वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। पालन कर एक महीने की संलेखना से अपने आपको कृश बनाकर, अनशन के द्वारा साठ भक्त का छेदन कर, आलोचना- प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर, चांद, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, तारा-रूप, बहुत योजन ऊपर, बहुत सौ, हजार, लाख, करोड़ और क्रोडाक्रोड़ योजन ऊपर, सौधर्म, सनत्कुमार माहेन्द्र कल्प का व्यतिक्रमण कर ब्रह्मलोक कल्प में देव रूप में उपपन्न हुआ। वहां कुछ देवों की स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। वहां महाबल देव की स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। सुदर्शन! तुम ब्रह्मलोक कल्प में दस सागरोपम काल तक दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार कर उस देवलोक से आयु क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय के अनंतर उस देवलोक से च्यवन कर इसी वाणिज्य ग्राम नगर में श्रेष्ठिकुल में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए।

१७०. तए णं तुमे सुदंसणा! उम्मुक्क-बालभावेणं विण्णय-परि-णयमेत्तेणं जोव्वणगमणुप्पत्तेणं तहारूवाणं थेराणं अंतियं केवलि-पण्णत्ते धम्मे निसंते, सेवि य धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभि-रुइए। तं सुट्ठु णं तुमं सुदंसणा! इदाणिं पि करेसि। से तेणट्ठेणं सुदंसणा! एवं वुच्चइ–अत्थि णं एतेसिं पलि-ओवम-सागरोवमाणं खएति वा अवचएति वा॥

ततः त्वं सुदर्शन! उन्मुक्तबालभावेन विज्ञकपरिणतिमात्रेण यौवनकमनुप्राप्तेन तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिकं केवलि-प्रज्ञप्तः धर्मः निशान्तः, सोऽपि च धर्मः इष्टः, प्रतीष्टः, अभिरुचितः। तत् सुष्ठु त्वं सुदर्शन! इदानीमपि करोषि। अथ तेनार्थेन! एवमुच्यते-अस्ति एतयोः पल्योपम-सागरोपमयोः क्षयः इति वा अवचयः इति वा।

१७०. सुदर्शन! तुमने बाल्यावस्था को पार कर, विज्ञ और कला के पारगामी बन कर, यौवन को प्राप्त कर तथारूप स्थविरों के पास केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुना। वही धर्म इच्छित, प्रतीच्छित, अभिरुचित है। सुदर्शन! वह अच्छा है, जो तुम अभी कर रहे हो। सुदर्शन! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय-अपचय होता है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

१७१. तए णं तस्स सुदंसणस्स सेट्ठिस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गणगवेसणं करेमाणस्स सण्णी-पुव्वे जातीसरणे समुप्पन्ने, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेति॥

ततः तस्य सुदर्शनस्य श्रेष्ठिनः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य शुभेन अध्यवसायेन शुभेन परिणामेन लेश्याभिः विशुध्यमानाभिः तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोह-मार्गण-गवेषणं कुर्वतः संज्ञीपूर्वं जातिस्मरणं समुत्पन्नम्, एनमर्थं सम्यक् अभिसमेति।

१७१. श्रमण भगवान महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या और तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के द्वारा ईहा, अपोह, मार्गणा गवेषणा करते हुए सुदर्शन श्रेष्ठी को पूर्ववर्ती संज्ञी भवों का जाति- स्मृति ज्ञान समुत्पन्न हुआ। उसने इस अर्थ को सम्यक् साक्षात् जान लिया।

१७२. तए णं ते सुदंसणे सेट्ठी समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय-पुव्वभवे दुगुणाणीयसद्धसंवेगे आणंदंसुपुण्णनयणे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! —से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, सेसं जहा उसभदत्तस्स जाव सव्व- दुक्खप्पहीणे, नवरं—चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ, बहुपडिपुण्णाइं दुवालस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, सेसं तं चेव॥

ततः सः सुदर्शनः श्रेष्ठी श्रमणेन भगवता महावीरेण संस्मारितपूर्वभवः द्विगुणानीतश्रद्धासंवेगः आनन्दाश्रुपूर्णनयनः श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-एवमेतद् भदन्त! तथैतद् भदन्त! अवितथमेतद् भदन्त! असंदिग्धमेतद् भदन्त! इष्टमेतद् भदन्त! प्रतीष्टमेतद् भदन्त! इष्ट-प्रतीष्टमेतद् भदन्त! तत् यथैवं यूयं वदथ इति कृत्वा उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागम् अपक्रामति, शेषं यथा ऋषभदत्तस्य यावत् सर्वदुक्खप्रहीणः, नवरं—चतुर्दश पूर्वाणि अधीते, बहुप्रतिपूर्णानि द्वादश वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, शेषं तत् चैव।

१७२. श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्वभव का जाति-स्मृति ज्ञान कराने से सुदर्शन श्रेष्ठी की श्रद्धा और संवेग द्विगुणित हो गए। उसके नेत्र आनंदाश्रु से पूर्ण हो गए। उसने श्रमण भगवान महावीर को दाईं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! यह ऐसा ही है, भंते! यह तथा (संवादितापूर्ण) है, भंते! यह अवितथ है, भंते! यह असंदिग्ध है। भंते! यह इष्ट है, भंते! यह प्रतीप्सित है, भंते! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसा आप कह रहे हैं—ऐसा भाव प्रदर्शित कर वह उत्तर-पूर्व दिशा भाग (ईशान कोण) की ओर गया शेष जैसे ऋषभदत्त (भ.९/१५१) की वक्तव्यता वैसे ही यावत् सर्व दुःखों अंत किया, इतना विशेष है—चौदहपूर्वों का अध्ययन किया, बहुप्रतिपूर्ण बारह वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया, शेष पूर्ववत्।

१७३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति

१७३. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारसमो उद्देसो : बारहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
इसिभद्दपुत्त-पदं	ऋषिभद्रपुत्र-पदम्	ऋषिभद्रपुत्र-पद
१७४. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था–वण्णओ। संखवणे चेइए–वण्णओ। तत्थ णं आलभियाए नगरीए बहवे इसिभद्दपुत्तपामोक्खा समणो-वासया परिवसंति–अड्ढा जाव-बहुजणस्स अपरिभूया अभिगय-जीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये आलभिका नाम नगरी आसीत्–वर्णकः शंखवनं चैत्यम् वर्णकः। तत्र आलभिकायां नगर्यां बहवः ऋषिभद्रपुत्रप्रमुखाः श्रमणोपासकाः परिवसन्ति–आढ्याः यावत् बहुजनस्य अपरिभूताः अभिगतजीवाजीवाः यावत् यथा परिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्तः विहरन्ति।	१७४. उस काल और उस समय में आलभिका नामक नगरी थी–वर्णक शंखवन चैत्य–वर्णक। उस आलभिका नगरी में अनेक ऋषिभद्रपुत्र आदि श्रमणोपासक रहते थे। वे संपन्न यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय थे। जीव-अजीव के जानने वाले यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे थे।
१७५. तए णं तेसिं समणोवासयाणं अण्णया कयाइ एगयओ समुवा-गयाणं सहियाणं सण्णिविट्ठाणं सण्णिसण्णाणं अयमेयारूवे मिहो-कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था–देवलोगेसु णं अज्जो! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?	ततः तेषां श्रमणोपासकानाम् अन्यदा कदाचित् एकतः समुपागतानां सहितानां सन्निविष्टानां सन्निषण्णानाम्। अयमेतद्रूपः मिथः कथासमुल्लापः समुदपादि–देव-लोकेषु आर्य! देवानां कियन्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१७५. किसी समय एकत्र सम्मिलित, समुपागत, सन्निविष्ट और सन्निषण्ण उन श्रमणोपासकों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ–आर्यो! देवलोक में देवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?
१७६. तए णं इसिभद्दपुत्ते समणो-वासए देवट्ठिती–गहियट्ठे ते समणो-वासए एवं वयासी–देवलोएसु णं अज्जो! देवाणं जहण्णेणं दसवास-सहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया, तिस-मयाहिया जाव दससमयाहिया, संखेज्जसमयाहिया, असंखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य॥	ततः सः ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः देवस्थितिगृहीतार्थः तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्–देवलोकेषु आर्य! देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका, त्रिसमयाधिका, यावत् दशसमयाधिका, संख्येयसमयाधिका, असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च।	१७६. ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक को देवस्थिति का अर्थ गृहीत था। उसने श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा–आर्यो! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक, तीन समय अधिक यावत् दस समय अधिक, संख्येय समय अधिक, असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है, उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।
१७७. तए णं ते समणोवासया इसि-भद्दपुत्तस्स समणोवासगस्स एवमा-इक्खमाणस्स जाव एवं परू-वेमाणस्स	ततः ते श्रमणोपासकाः ऋषिभद्रपुत्रस्य श्रमणोपासकस्य एवमाचक्षाणस्य यावत् एवं प्ररूपयतः एतमर्थं नो श्रद्दधते नो प्रतियन्ति	१७७. श्रमणोपासकों ने श्रमणोपासक ऋषि-भद्र पुत्र के इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोयमाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

नो रोचन्ते, एतमर्थम् अश्रद्दधानाः अप्रतियन्तः अरोचमानाः यस्या एव दिशः प्रादुर्भूताः तस्यामेव दिशि प्रतिगताः।

प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति, और अरुचि करते हुए जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में लौट गए।

१७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरं जाव समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ। तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा, हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे जाव आलभियाए नगरीए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण पडिपुच्छण-पज्जुवासणाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो।

एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणु-गामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव सयाइं-सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति, मेलायित्ता पायविहारचारेणं आलभियाए नगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणः भगवान् महावीरः यावत् समवसृतः यावत् पर्षत् पर्युपास्ते। ततः ते श्रमणोपासकाः अनया कथया लब्धार्थाः सन्तः, हृष्टतुष्टाः अन्योन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादिषुः–एवं खलु देवानुप्रियाः! श्रमणः भगवान् महावीरः यावत् आलभिकायां नगर्यां यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

तत् महत्-फलं खलु देवानुप्रियाः! तथारूपाणाम् अर्हतां भगवतां नामगोत्रस्यापि श्रवणस्य, किमंग पुनः अभिगमन-वंदन-नमस्यन-प्रतिप्रच्छन-पर्युपासनया? एकस्यापि आर्यस्य धार्मिकस्य सुवचनस्य श्रवणस्य, किमंग पुनः विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणस्य? तद् गच्छामः देवानुप्रिया! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामहे नमस्यामः सत्कारयामः सम्मानयामः कल्याणं मंगलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्महे।

एतत् नः प्रेत्यभवे इहभवे च हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिके एतदर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्वकानि-स्वकानि गृहाणि तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य स्नाताः कृतबलिकर्माणः कृतकौतुक-मंगल-प्रायश्चित्ताः शुद्ध-प्रवेश्यानि मंगलानि वस्त्राणि प्रवरपरिहिताः अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीराः स्वकेभ्यः स्वकेभ्यः गृहेभ्यः प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य एकतः मिलन्ति, मिलित्वा पादविहारचारेण आलभिकायाः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छन्ति, निर्गत्य यत्रैव शंखवनं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य

१७८. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर यावत् पधारे यावत् परिषद् ने पर्युपासना की। वे श्रमणोपासक इस कथा को सुनकर हृष्टतुष्ट चित्त वाले हो गए। वे परस्पर एक-दूसरे को संबोधित कर इस प्रकार बोले–देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर यावत् आलभिका नगरी में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

देवानुप्रियो! तथारूप अर्हत् भगवान के नाम गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक है, फिर अभिगमन, वन्दन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्यधार्मिक सुवचन का श्रवण महान फलदायक है फिर विपुल अर्थ ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए देवानुप्रियो! हम चलें, श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें। वे कल्याणकारी हैं, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले हैं। उनकी पर्युपासना करें।

यह हमारे परभव और इहभव के लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। ऐसा सोच कर उन्होंने परस्पर इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां अपना अपना घर था वहां आए। वहां आकर उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, शुद्ध प्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित) मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। इस प्रकार सज्जित होकर वे अपने-अपने घरों से निकलकर एक साथ मिले, एक साथ मिलकर पैदल चलते हुए आलभिका नगरी के बीचों-बीच निर्गमन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, समणं भगवं महावीरं जाव तिविहाए पज्जु-वासणाए पज्जुवासंति। तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महति-महालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भवइ ॥

श्रमणं भगवन्तं महावीरं यावत् त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपासते। ततः श्रमणः भगवान् महावीरः तेषां श्रमणोपासकानां तस्यै महातिमहत्यै 'धर्मं परिकथयति' यावत् आज्ञायाः आराधकः भवति।

किया, निर्गमन कर जहां शंखवन चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना की। श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को उस विशालतम परिषद् में धर्म का उपदेश दिया यावत् आज्ञा की आराधक होता है।

१७९. तए णं ते समणोवासया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी–एवं खलु भंते! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए अम्हं एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–देव-लोएसु णं अज्जो! देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया जाव तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य।

ततः ते श्रमणोपासकाः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टाः उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादिषुः-एवं खलु भदन्त! ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः अस्मान् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति–देवलोकेषु आर्य! देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका यावत् तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाश्च।

१७९. वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर से धर्म को सुनकर, अवधारण कर, हृष्टतुष्ट हो गए। वे उठकर खड़े हुए–खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–'भंते! श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की–आर्यो! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है। इसके बाद एक समय अधिक यावत् उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न है।

१८०. से कहमेयं भंते! एवं?

अज्जोति! समणे भगवं महावीरे ते समाणोवासए एवं वयासी–जण्णं अज्जो! इसिभद्दपत्ते समणोवासए तुब्भं एवमाइक्खइ जाव परूवेइ– देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया जाव तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य– सच्चे णं एसमट्ठे, अहं पि णं अज्जो! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि– देवलाएसु णं अज्जो! देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समया-हिया, दुसमयाहिया, तिसमयाहिया जाव दससमयाहिया, संखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य–सच्चे णं एसमट्ठे॥

तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?

आर्य इति! श्रमणः भगवान् महावीरः तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्-यत् आर्य! ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः युष्मान् एवमाख्याति यावत् परूपयति-देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, यावत् तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाश्च–सत्योऽयमर्थः, अहमपि आर्य! एवमाख्यामि यावत् प्ररूपयामि–देवलोकेषु आर्य! देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका, त्रिसमयाधिका यावत् दशसमयाधिका, संख्येयसमयाधिका, असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाश्च–सत्योऽयमर्थः।

१८०. भंते! यह इस प्रकार कैसे है?

आर्यो! श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार कहा–आर्यो! श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की–देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक यावत् उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न है–यह अर्थ सत्य है। आर्यो! मैं भी इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करता हूं–आर्यो! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक, तीन समय अधिक यावत् दस समय अधिक, संख्येय समय अधिक, असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। इसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं–यह अर्थ सत्य है।

१८१. तए णं ते समणोवासगा समणस्स

ततः ते श्रमणोपासकाः श्रमणस्य भगवतः

१८१. उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता, जेणेव इसि-भद्दपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता इसिभद्दपुत्तं समणोवासगं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति। तए णं ते समणोवासया पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परि-यादियंति, परियादियित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

महावीरस्य अन्तिकं एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य ऋषिभद्रपुत्रं श्रमणोपासकं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एतमर्थं सम्यक् विनयेन भूयः भूयः क्षमयन्ति। ततः ते श्रमणोपासकाः प्रश्नान् पृच्छन्ति, पृष्ट्वा अर्थान् पर्याददति, पर्यादाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूताः तस्यामेव दिशि प्रतिगताः।

महावीर से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर जहां श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र थे वहां आए, वहां आकर श्रमणोपासक ऋषिभद्र-पुत्र को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर बोले--'तुमने जो कहा, वह अर्थ सम्यक् है' विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की। उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान महावीर से अन्य प्रश्न पूछे, पूछकर अर्थ को हृदय में धारण किया, हृदय में धारण कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए।

भाष्य

१. सूत्र १८१

इस प्रसंग में भगवती सूत्र शतक १२/१ का द्रष्टव्य है।

१८२. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--पभू णं भंते! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?

नो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इसिभद्द-पुत्ते समणोवासए बहूहिं सीलव्वय-गुणवेरमण पच्चक्खाण पोसहोव-वासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवो-कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासग-परियागं पाउ-णिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेहिति, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेहिति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं इसिभद्दपुत्तस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती भविस्सति॥

भदन्त अयि! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्--प्रभु भदन्त! ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः देवानुप्रियाणाम् अंतिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्?

नो अयमर्थः समर्थः, गौतम! ऋषिभद्रपुत्रः श्रमणोपासकः बहुभिः शीलव्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासैः यथा-परिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं प्राप्स्यति प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषिष्यति, जोषित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छेत्स्यति, छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रांतः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे अरुणाभे विमाने देवत्वेन उपपत्स्यते। तत्र अस्त्येककानां देवानां चतसः पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र ऋषिभद्र-पुत्रस्यापि देवस्य चतसः पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८२. भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को 'भंते!' ऐसा कहकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--भंते! श्रमणोपासक ऋषिभद्र-पुत्र देवानुप्रिय के समीप मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होगा?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र बहुत शीलव्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोप-वास से यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करेगा, पालन कर एक महीने की संलेखना से अपने शरीर को कृश बनाकर, अनशन के द्वारा साठ भक्त का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर सौधर्मकल्प के अरुणाभ विमान में देव रूप में उत्पन्न होगा। वहां कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की प्रज्ञप्त है। वहां ऋषिभद्रपुत्र देव की भी स्थिति चार पल्योपम होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. से णं भंते! इसिभद्दपुत्ते देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त! ऋषिभद्रपुत्रः देवः तस्माद् देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनंतरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति, 'बुज्झिहिति' मोक्षयति परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानाम् अंतं करिष्यति।

१८३. भंते! ऋषिभद्रपुत्र देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?
गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अंत करेगा।

१८४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे जाव अप्पाणं भावमाणे विहरइ॥

तदेवं भदंत! तदेवं भदंत! इति भगवान् गौतमः यावत् आत्मानं भावयन् विहरति।

१८४. भंते! वे ऐसा ही है, वह ऐसा ही है। भगवान गौतम यावत् आत्मा को भावित करते हुए विहार करने लगे।

१८५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ आलभियाओ नगरीओ संखवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् आलभिकायाः नगर्याः शंखवनात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति।

१८५. श्रमण भगवान महावीर ने कभी किसी दिन आलभिका नगरी से शंखवन चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहर जनपद विहार करने लगे।

पोग्गल-परिव्वायग-पदं

१८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं संखवणे नामं चेइए होत्था—वण्णओ। तस्स णं संखवणस्स चेइयस्स अदूरसामंते पोग्गले नामं परिव्वायए—रिउव्वेद-जजुव्वेद जाव बंभण्णएसु परिव्वाय-एसु य नएसु सुपरिनिट्ठिए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ॥

पुद्गल-परिव्राजक-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये आलभिका नाम नगरी आसीत्-वर्णकः। तत्र शंखवनं नाम चैत्यम् आसीत्-वर्णकः। तस्य शंखवनस्य चैत्यस्य अदूरसामन्ते पुद्गलः नाम परिव्राजकः—ऋग्वेद-यजुर्वेद यावत् ब्राह्मण्यकेषु परिव्राजकेषु च नयेषु सुपरिनिष्ठितः षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूर्याभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरति।

पुद्गल-परिव्राजक-पद

१८६. उस काल और उस समय में आलभिका नाम की नगरी थी—वर्णक। वहां शंखवन नाम का चैत्य था—वर्णक। उस शंखवन चैत्य से कुछ दूरी पर पुद्गल नाम का परिव्राजक था—वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, यावत् अन्य अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात, निरंतर बेले-बेले (दो दिन का उपवास) के तप की साधना के द्वारा दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन भूमि में आतापना लेता हुआ विहरण कर रहा है।

१८७. तए णं तस्स पोग्गलस्स परिव्ववायगस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउव-संतयाए-पगइपयणुकोहमाणमायालोभाए मिउमद्दव-संपन्नयाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तया-वरणिज्जाणं

ततः तस्य पुद्गलस्य परिव्राजकस्य षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूर्याभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् प्रकृतिभद्रतया प्रकृत्युपशान्तया प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभेन मृदुमार्दव-संपन्नतया आलीनतया विनीततया अन्यदा कदाचित् तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोहमार्गणगवेषणं कुर्वतः विभंगः नाम ज्ञानं समुत्पन्नम्। सः तेन

१८७. उस पुद्गल परिव्राजक का निरंतर बेले-बेले तपःकर्म के द्वारा, दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन भूमि में आतापना लेते हुए, प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदुमार्दव संपन्नता, आत्मलीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। से णं तेणं विब्भंगेणं नाणेणं समुप्पन्नेणं बंभलोए कप्पे देवाणं ठितिं जाणइ-पासइ॥

विभंगेन ज्ञानेन समुत्पन्नेन ब्रह्मलोके कल्पे देवानां स्थितिं जानाति-पश्यति।

ईहा, अपोह, मार्गणा-गवेषणा करते हुए विभंग नाम का ज्ञान समुत्पन्न हुआ। वह उस समुत्पन्न विभंग ज्ञान के द्वारा ब्रह्मलोक कल्प तक के देवों की स्थिति को जानता-देखता है।

भाष्य

१ सूत्र-१८७

प्रस्तुत आगम में विभंग ज्ञान के अनेक प्रसंग हैं किंतु विभंगज्ञान की ज्ञेय को जानने की कितनी क्षमता है, इसका स्पष्ट निर्धारण नहीं मिलता। आठवें शतक में विभंग ज्ञान के विषय का प्रतिपादन किया गया है[1] किंतु वहां भी अवधिज्ञान की भांति विभंग ज्ञान के विषय का स्पष्ट निर्धारण नहीं है।

१८८. तए णं तस्स पोग्गलस्स परिव्वायगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–अत्थि णं ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया जाव असंखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोव-माइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य–एवं संपेहेइ,संपेहेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरु-हित्ता, तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव आलभिया नगरी, जेणेव परिव्वाय-गावसहे, तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया, जाव असंखेज्ज-समयाहिया, उक्को-सेणं दससागरोव-माइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य॥

ततः तस्य पुद्गलस्य परिव्राजकस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिंतितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका, यावत् असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण दशसागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च-एवं सम्प्रेक्षते सम्प्रेक्ष्य आतापनभूम्याः प्रत्यव-रोहति, प्रत्यवरुह्य त्रिदण्डं च कुण्डिकां च यावत् धातुरक्ताः च गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव आलभिका नगरी, यत्रैव परिव्राजकाः वसथः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य भण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा आलभिकायाः नगर्याः शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-अस्ति देवानुप्रियाः! अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका, यावत् असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण दशसागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च।

१८८. उस पुद्गल परिव्राजक के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ–मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है। उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं–इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतर कर त्रिदंड, कमंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को ग्रहण किया, ग्रहण कर जहां आलभिका नगरी थी, जहां परिव्राजक रहते थे, वहां आया, आकर भंड को स्थापित किया, स्थापित कर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगा–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान दर्शन समुत्पन्न हुआ है, देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१८९. तए णं पोग्गलस्स परिव्वाय-गस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-

ततः पुद्गलस्य परिव्राजकस्य अंतिकम् एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य आलभिकायाः नगर्याः शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-

१८९. पुद्गल परिव्राजक के समीप इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों,

१. भ. वृ. ८-१०,११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउक्क - चच्चर - चउम्मुह - महापह-पहेसु बहुजणो अण्ण-मण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! पोग्गले परिव्वायए एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–अत्थि णं देवाणु-प्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समया-हिया, दुसमयाहिया जाव असंखे-ज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दस-सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगाय।
से कहमेयं मन्ने एवं?

चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-एवं खलु देवानुप्रियाः! पुद्गलः परिव्राजकः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् एवं खलु देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका, यावत् असंख्येय-समयाधिका, उत्कर्षेण दशसागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च। तत् कथमेतद् मन्येत् एवम्।

चौहटों, चार-द्वार वाले स्थानों राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगे–देवानुप्रिय! पुद्गल परिव्राजक ने इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा की है–देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार निश्चित ही देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं। इस प्रकार यह कैसे है?

१९०. सामी समोसढे परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया। भगवं गोयमे तहेव भिक्खायरियाए तहेव बहुजणसद्दं निसामेइ, निसामेत्ता तहेव सव्वं भाणियव्वं जाव अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि, एवं भासामि जाव परूवेमि–देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वास-सहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया जाव असंखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य॥

स्वामी समवसृतः। परिषद् निर्गता। धर्मः कथितः, परिषद् प्रतिगता। भगवान् गौतमः तथैव भिक्षाचर्यायै तथैव बहुजनशब्दं निशा-मयति, निशम्य तथैव सर्वं भणितव्यं यावत् अहं पुनः गौतम! एवमाख्यामि, एवं भाषे यावत् प्ररूपयामि–देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका यावत् असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च।

१९०. भगवान महावीर पधारे, परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा। परिषद् वापिस नगर में चली गई। सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमते हुए भगवान गौतम ने अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने, सुनकर पूर्वोक्त सम्पूर्ण वृत्तांत भगवान महावीर से निवेदित किया यावत् गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, इस प्रकार कथन यावत् प्ररूपणा करता हूं–देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१९१. अत्थि णं भंते! सोहम्मे कप्पे दव्वाइं–सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि सगंधाइं पि अगंधाइं पि सरसाइं पि अरसाइं पि सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्ध-पुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?
हंता अत्थि।
एवं ईसाणे वि, एवं जाव अच्चुए, एवं गेवेज्जविमाणेसु, अणुत्तरविमाणेसु वि, ईसिपब्भाराए वि जाव?

अस्ति भदन्त! सौधर्मे कल्पे द्रव्याणि-सवर्णानि अपि अवर्णानि अपि, सगन्धानि अपि अगन्धानि अपि, सरसानि अपि अर-सानि अपि, स्पर्शानि अपि, अस्पर्शानि अपि अन्योन्यबद्धानि अन्योन्यस्पृष्टानि अन्योन्य-बद्धस्पृष्टानि अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?
हंत अस्ति।
एवम् ईशाने अपि, एवं यावत् अच्युते, एवं ग्रैवेयकविमानेषु, अनुत्तरविमानेषु अपि, ईषत्प्राग्भारायाम् अपि यावत्।

१९१. भंते! सौधर्मकल्प में द्रव्य वर्ण-सहित, वर्ण-रहित, गंध-सहित, गंध रहित, रस-सहित, रस-रहित, स्पर्श-सहित, स्पर्श-रहित, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्ध-स्पृष्ट और अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?

हां, हैं।
इसी प्रकार ईशान में भी, इसी प्रकार यावत् अच्युत में, इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानों में भी, अनुत्तर विमानों में भी, ईषत्प्राक्भारा पृथ्वी में भी यावत् अन्योन्य एकीभूत बने हुए हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंता अत्थि॥

हन्त अस्ति।

हां, है।

१९२. तए णं सा महतिमहालिया परिसा जाव जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

ततः सा महामहती परिषद् यावत् यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूता तस्यामेव दिशि प्रतिगता।

१९२. वह विशालतम परिषद् यावत् जिस दिशा से आई, उसी दिशा में लौट गई।

१९३. तए णं आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ जण्णं देवाणुप्पिया! पोग्गले परिव्वायए एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—अत्थि णं देवाणु-प्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया जाव असंखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोव-माइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य। तं नो इणट्ठे समट्ठे। समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया जाव असंखेज्जसमयाहिया, उक्को-सेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य॥

ततः आलभिकायां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति यत् देवानुप्रियाः! पुद्गलः परि-व्राजकः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति-अस्ति देवानुप्रियाः! मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, एवं खलु देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्विसमयाधिका यावत् असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण दशसागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च। तत् नो अयमर्थः समर्थः। श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति यावत् देवलोकेषु देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्मात् परं समयाधिका, द्वि-समयाधिका यावत् असंख्येयसमयाधिका, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता तस्मात् परं व्यवच्छिन्नाः देवाः च देवलोकाः च।

१९३. आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रिय! पुद्गल परिव्राजक ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की है—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार निश्चित ही देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय, अधिक दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं। यह अर्थ संगत नहीं है। श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१९४. तए णं से पोग्गले परिव्वायए बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए विति-गिच्छिए भेदसमा-वन्ने कलुस-समावन्ने जाए यावि होत्था। तए णं तस्स पोग्गलस्स परिव्वायगस्स संकियस्स कंखियस्स विति-गिच्छियस्स भेदसमावन्नस्स कलुस-समावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव पडिवडिए॥

ततः सः पुद्गलः परिव्राजकः बहुजनस्य अन्तिकं एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य शंकितः कांक्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुष-समापन्नः जातः चापि अभूत्। ततः तस्य पुद्गलस्य परिव्राजकस्य शंकितस्य कांक्षितस्य विचिकित्सितस्य भेदसमा-पन्नस्य कलुषसमा-पन्नस्य तत् विभंगः ज्ञानं क्षिप्रमेव प्रतिपतितः।

१९४. पुद्गल परिव्राजक बहुजन से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न भी हो गया। शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न, कलुष समापन्न पुद्गल परिव्राजक के वह विभंग ज्ञान शीघ्र ही प्रतिपतित हो गया।

१९५. तए णं तस्स पोग्गलस्स परिव्वायस्स अयमेयारूवे अज्झ-त्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थगरे जाव

ततः तस्य पुद्गलस्य परिव्राजकस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि—एवं खलु श्रमणः भगवान् महावीरः तीर्थकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी आकाशगतेन चक्रेण

१९५. पुद्गल परिव्राजक के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—श्रमण भगवान महावीर आदिकर तीर्थंकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत धर्मचक्र से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव संखवणे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगि-ण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण - पडिपुच्छण - पज्जु-वासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिय-त्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वाय-गावसहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तिदंडं च कुडियं च जाव धाउरत्ताओ य गेण्हइ गेण्हित्ता परिव्वायगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पडिवदियविब्भंगे आलभियं नगरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्ग-च्छित्ता जेणेव संखवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिकडे पज्जुवासइ॥

यावत् शंखवने चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति, तत् महत्फलं खलु तथारूपाणाम् अर्हतां भगवतां नामगोत्र-स्यापि श्रवणस्य, किमंगपुनः अभिगमन-वंदन-नमस्यन-प्रति-प्रच्छन-पर्युपासनया। एकस्यापि आर्यस्य धार्मिकस्य सुवचनस्य श्रवणस्य, किमंग पुनःविपुलस्य अर्थस्य ग्रहणस्य? तत् गच्छामि श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे यावत् पर्युपासे, एतत् नः इहभवे च परभवे च हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रयसे आनुगामिकत्वाय भविष्यति इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य यत्रैव परिव्राजकावसथः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य परिव्राजकावसथम्अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य त्रिदण्डं च कुण्डिकां च यावत् धातुरक्ताः च गृह्णाति, गृहीत्वा परि-व्राजकावसथात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रति-निष्क्रम्य प्रतिपतितविभंगः आलभिकां नगरीं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव शंखवनं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा न अत्यासन्नः नातिदूरः शुश्रूषमाणः नमस्यन् अभिमुखः विनयेन कृतप्राञ्जलिः पर्युपास्ते।

शोभित यावत् शंखवन चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं। ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम, गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक होता है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान फलदायक होता है फिर विपुल अर्थ ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए मैं जाऊं, श्रमण भगवान महावीर को वंदन करूं यावत् पर्युपासना करूं—यह मेरे इहभव और परभव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा—इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर जहां परिव्राजक रहते थे, वहां आया, आकर परिव्राजक गृह में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर त्रिदंड, कमंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को ग्रहण किया, ग्रहण कर परिव्राजक आवास से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर विभंगज्ञान से प्रतिपतित उस पुद्गल परिव्राजक ने आलभिका नगरी के बीचों-बीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां शंखवन चैत्य था, जहां भगवान महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धांजलि होकर पर्युपासना करने लगा।

१९६. तए णं समणे भगवं महावीरे पोग्गलस्स परिव्वायगस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भवइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः पुद्गलस्य परिव्राजकस्य तस्यां महामहत्यां परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् आज्ञायाः आराधकः भवति।

१९६. श्रमण भगवान महावीर ने पुद्गल परिव्राजक को उस विशालतम परिषद में धर्म कहा यावत् आज्ञा का आराधक होता है।

१९७. तए णं से पोग्गले परिव्वायए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म जहा खंदओ जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता

ततः सः पुद्गलः परिव्राजकः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य यथा स्कंदकः यावत् उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागम् अपक्रामति, अपक्रम्य त्रिदण्डं च, कुण्डिकां च यावद् धातुरक्ता एकान्ते एडयति, एडयित्वा स्वयं पंचमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः

१९७. पुद्गल परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर स्कंदक की भांति यावत् उत्तर पूर्व दिशा में गया, जाकर त्रिदण्ड, कमंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को एकांत में डाल दिया, डालकर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया, लोच कर श्रमण भगवान महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं जहेव उसभदत्तो तहेव पव्वइओ, तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, तहेव सव्वं जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे॥

आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवं यथैव ऋषभदत्तः तथैव प्रव्रजितः, तथैव एकादश अंगानि अधीते, तथैव सर्वं यावत् सर्वदुःख-प्रहीणः।

को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त प्रव्रजित हुआ, वैसे ही पुद्गल परिव्राजक प्रव्रजित हो गया, उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, उसी प्रकार सर्व यावत् सब दुःखों को प्रक्षीण कर दिया।

१९८. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—जीवा णं भंते! सिज्झमाणस्स कयरम्मि संघयणे सिज्झंति?

गोयमा! वइरोसभणारायसंघयणे सिज्झंति, एवं जहेव ओववाइए तहेव।

संघयणं संठाणं
उच्चत्तं आउयं च परिवसणा।

एवं सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्वा जाव—

अव्वाबाहं सोक्खं,
अणुभवंति सासयं सिद्धा।

भदन्त! अयि! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—जीवाः भदन्त! सिध्यतः कतरे संघयणे सिद्ध्यन्ति?

गौतमः! वज्रऋषभनाराचसंघयणे सिध्यन्ति एवं यथैव औपपातिके तथैव।

संघयणे संस्थानं,
उच्चत्वम् आयुष्कं च परिवसना।

एवं सिद्धिकण्डिका निरवशेषा भणितव्या यावत्—

अव्याबाधं सौख्यम्,
अनुभवन्ति शाश्वतं सिद्धाः॥

१९८. भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को 'भंते!' ऐसा कहकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा— भंते! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं?

गौतम! वज्रऋषभनाराच संहनन में सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार औपपातिक की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयुष्य और परिवसन, इसी प्रकार सिद्धिकंडिका तक निरवशेष वक्तव्य है, यावत् सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

१९९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त इति।

१९९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

	पृष्ठ
१. नामानुक्रम– (क) व्यक्ति और स्थान	४५५-४५७
(ख) देव	४५८-४६२
(ग) पशु-पक्षी	४६३-४६४
२. शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम	४६५-४६८
३. भाष्य-विषयानुक्रम	४६९-४७२
४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम	४७३-४८०
५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति– शतक ८,९,१०,११	४८१-५६८
६. आधारभूत ग्रंथ सूची	५६९-५७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१ (क)

नामानुक्रम : व्यक्ति और स्थान

अ

अकलंक ८ १ (भा.) १८४-१८८ (भा.) ३१५-३२७ (भा.)
अणगार श्याम हस्ति १० (आमुख)
अनवद्यांगी ९, २२६-२२९ (भा.)
अनवद्या ९, २२६-२२९ (भा.)
अनुपालक ८, २४२
अपविध ८, २४२
अभयदेव सूरी (सारे अंक भाष्य के हैं) ८, १.१६.१७-१०३.१०५.१३९-१४६. १८४-१८८.२३०-२३५.२४१-२४२.२४५-२४७.२५१-२५५.२७५-३००.३०२-३१४. ३१५-३२८.३५४. ३६३-३६५. ३७३-३७५.४२५-४२८. ४५१-४६६.४७७-४८४; ९, ९-३२.३६.४२.५६.१४१. १४९.१७७.२०८.२२६-२२९;१० २४-३८
अयंपुल ८, २४२
अर्हत् विमल ११, १६२.१६५

आ

आचार्य भिक्षु (सारे अंक भाष्य के हैं) ८, २३०-२३५.२४१-२४२.२४५-२४७.४४९-४५०; ९, २५१-२५२.२५६
आर्य चंदना ९, १५३-१५५.१५३-१५५ (भा.)
आलभिका नगरी ११, १०४.१०८.१८५.१९३

इ

इंद्रभूति १०, ४३; ११, ७५

उ

उदक ८, २४२
उदविध ८ २४२
उमास्वाति (सारे अंक भाष्य के हैं) ८ १; ८/९७-१०३. ३१५-३२७.४१९ ४२०.४२२-४२३.४२४.४२५-४२८

ऋ

ऋषभ ३, ४०
ऋषभदत्त ९ आमुख. १३७.१३७ (भा.) १३९-१४३.१४५.१४९-१५२; ११ ११६.१७२.१९७
ऋषिभद्र ११ आमुख
ऋषिभद्रपुत्र ११ १०४.१०६-१०७.१७९-१८३

क

काकंदी नगरी १०/४७
कुंडग्राम ९ १
कुंडपुर ९, २२६-२२९ (भा.)
कुन्दकुन्द ८, १८४-१८८ (भा.) ४७७-४८४ (भा.)
कुमारिल ८, १८४-१८८
कुंशी ९/१३३-१३५; ११, १६२
कोष्ठक चैत्य ९ २२१.२२२.२३०
क्षत्रियकुण्ड ग्राम १५७-१५९.१६५.१८०.२०७-२०९

ग

गांगेय अनगार ९ (आमुख), ७७-१३०.१३१ (भा.) १३३-१३४ (भा.) १३२-१३५.१३३-१३५ (भा.)
गुणशीलक चैत्य ८, २७१; १०, ६४
गौतम ८, १-११.१३ १५.१७-२४.२६.४०.४२ ४६.४९-६१. ६४.६५.६७-७६.७९-८२.८४. ८६-९५.९७.९९.१०४. १०५.१०७-११२.११५.११८.१३६.१३९-१६३.१६५-१६७.१७१.१७५.१८४ १९३.१९६-२००.२०७-२०८.२११-२१४.२१६.२१७.२२४.२२६.२२८.२३०.२३२-२३३.२३५-२३७.२३०-२३५ (भा.), २४३.२४५-२४७. २५१.२५४-२५९.२६१.२६३.२६५-२६९.२७३.२७९ ३१०.३१२.३१३.३१५-३२३.३२५-३३४.३३७-३३९. ३४१.३४३.३४५-३५०.३६७-३६९.३७३.३७५-३८०. ३८३-३८६.३८८-४१२.४१४-४४७.४५०-४७३. ४७५-४८८.४९०-५००.५०२.५०३.९ १.३.७.९-३२.३४-४५.४७.४८.५०-५३.५६-६७.७५.१३३-१३५ (भा.) १३७ (भा.) १४८.२३१-२३२.२३३ २४४.२४६-२५५.२५८.२६०-२६२; १०. आमुख १० १-६.८.११-१७.२३.२६.२७.२९.३०.३८-४०.४५.४९.५३. ५६.५८. ६४.९९.१००; ११ १-२३.२५-३०.३२-३८.४०.४२. ४५.७६.७७.८८. ९० १००.१०४.१०७.१०९.११०. ११२.११३.१८२-१८४.१९०.१९८

च

चंपा नगरी ९, २२१.२२३.२३०;१० ६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज

जंबूद्वीप ८/३२९,३३३,३३५,३३७,३३९,९ आमुख १,३,३-५, (भा.) १० ४७,५३,५८,९९; ११/७७,७८,८३,१०९,११०
जमालि ९ आमुख,१५६,१५८-१९९,२०१-२२०,२१३ (भा.) २१४ (भा.) २२२,२२४-२३५,२२६-२२९ (भा.) २३०-२३४ (भा.) २४२-२४४ (भा.); ११/६१,१६१,१६४-१६६,१६८,१७०
जयाचार्य– (सारे अंक भाष्य के हैं) ८/१३९-१४६,१९२-१९९,२३०-२३५,२४१-२४२,२४५-२४७,२५६-२५७, २५८-२६९,३०२-३१४,४२५-४२८,४४९-४५०,४५१-४६६,४७०-४७४; ९/९-३२,३६; १०/४०,६७-६८; ११/१
जिनदास महत्तर ८/१८४-१८८ (भा.)
जिनभद्र ८/१८० (भा.) १८४-१८८ (भा.)
जिनभद्रगणि ९/३७ (भा.)
जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण ८/१८४-१८८ (भा.)
जेतवन ८/२७१-२८४ (भा.)
जोजेफ डोल्लू ८/२४१-२४२ (भा.)
ज्येष्ठ ९/२२६-२२९ (भा.)

ड

डा. हर्मन जेकोबी ९ आमुख
डेविड ८/४३-८४ (भा.)

ढ

ढंक ९/२२६-२२९ (भा.)

त

ताल ८/२४२
ताल प्रलंब ८/२४२
तिष्य गुप्त ९ आमुख
त्रिशला ९/१४२ (भा.)

द

देवानंदा ९ आमुख १३७,१३९,१४०,१४४-१५०,१४८ (भा.) १५२-१५५,१५३-१५५ (भा.)
दूति पलाश चैत्य ९/७७; १०/४२; ११/११५,११६

ध

धर्मकीर्ति ८/१८४-१८८
धर्मघोष अणगार ११/१६२,१६५,१६६
धानकी खंड ९/३-५ (भा.); ११/८०
धारिणी ११/५८

न

नर्मोदक ८/२४२
नामोदक ८/२४२
नेमिचंद्र ९/३६ (भा.)
न्यूटन ८/४३-८४ (भा.)

प

पायरक ८/२४२
पार्श्व ९ (आमुख), १२१, (भा.) १३३-१३५ (भा.) १० (आमुख)
पुद्गल परिव्राजक ११ आमुख, १८६-१८९,१९३-१९५,१९७
पुष्करद्वीप ९/३-५ (भा.)
पुष्करार्ध ९/३-५ (भा.)
पूज्यपाद ८/४२३ (भा.) ४७७-४८४ (भा.)
पूर्ण भद्र चैत्य ९/२२१,२२३,२३०
प्रभाचंद्र ८/१८४,१८८
प्रभावती ११/१३२-१३४,१३८,१४१-१४७,१५३
प्रियदर्शना ९/२२६-२२९ (भा.)

ब

बलराजा ११/१३२-१३६,१३८,१४०; १४२-१४४,१४९-१५२, १६८
बहुशालक चैत्य ९/१३७,१४५,१५७,१५९,१६५,२०९,२२०
बेभेल १०/५३ (भा.)
ब्राह्मण कुंड ग्राम नगर ९/१३७,१४५,१५६,१५९,२०७,२०९
ब्रोह्य ८/४३-८४ (भा.)

भ

भगवान बुद्ध ८/२४१-२४२ (भा.) ९ आमुख
भद्रबाहु ८/३०१
भरत क्षेत्र ८/१०३
भारत वर्ष १०/४७,५३,५८

म

मंदर पर्वत १०/९९; ११/१०९
मणिभद्र चैत्य ९/१
मलयगिरी ८/१८४-१८८
मल्लधारी हेमचंद्र ९/२२६-२९९ (भा.)
मल्लवादी ८/१८४-१८८ (भा.)
महापद्म अर्हत् ९/१३३-१३५
महाबल ११/१५३-१६१,१६४-१६९
महावीर ८ (आमुख) ८/१,२३०-२३५ (भा.) २३६-२४० (भा.) २७१,२७२,२७१-२८४ (भा.) ३०१ (भा.) ४४९-४५० (भा.) ९वां (आमुख), ९/४०,७७,७८, १२१ (भा.) १३३, १३४,१३३-१३५ (भा.) १३७ (भा.) १३९,१४५,१४८, १४७ (भा.) १४९ (भा.) १५०-१५२, १५३-१५५ (भा.) १५७,१५९,१६२,१६३,१६७,१६९-१७८,१७७ (भा.) २१०-२२०,२१४ (भा.) २२३,२२८,२२९,२२६-२२९ (भा.) २३०,२३३-२३५,२३०-२३४ (भा.) १० आमुख, १०/४२-४५,४९,६४; ११/आमुख ११/६-११ (भा.) ७४,७६,७७,८२,८३,८५-८८,११५-११८,१७१-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२,१७८-१८२,१८५,१९०,१९५-१९८
माणिभद्र चैत्य ९/१
मानुषोत्तर पर्वत ८/३४०,३४२
मिथिला ९/१
मेघकुमार ११ आमुख
मेरु पर्वत ११/१०९,११० (भा.)

य

यशोविजय (उपाध्याय) ८/१८४-१८८ (भा.)

र

राजगृह ८/१,२२८,२३०,२७१,२७१-२८४ (भा.) २९२,२९५,४४९, ९ (आमुख) २/३, ७,९,२४६; १०/१,११,२३,६४; ११/१,९०, १०९-१०० (भा.)

व

वणिक ग्राम ९/७७,१०/४२
वर्ष ८/१०३
वर्षधर ८/१०३
वाणिज्य ग्राम ११/११५,११६
विद्यानंद ८/१८४-१८८ (भा.)
वेस्मम ८/२४१-२४२ (भा.)

श

शंखपालक ८/२४२
शंखवन चैत्य ११/१०५,१८५,१८६,१८८,१८९; १९५
शांत रक्षित ८/१८४-१८८
शिवभद्र ११/५८-६२,१६८
शिव राजर्षि ११ आमुख, ११/५७-६१,६२,६४-७३, ७५,८३-८७
श्याम हस्ती १०/१,४४,४५,४७,४९
श्रावस्ती नगरी ९/२२१,२२२,२३०

स

संविध ८/२४२
सद्दालपुत्र ८/२४१-२४२ (भा.)
समन्त भद्र ८/१८४-१८८
सहस्राम्रवन ११/५७,८५,१३२,१६२,१६५
सिद्धसेन ८/१८४-१८८ (भा.)
सिद्धसेन गणि (सारे अंक भाष्य के हैं) ८/१,२४१-२४२,३१५-३२६,३५४, ४२४-४२८,४३९-४४४,४७७,४८४; १०/१-७
सिद्धसेन-दिवाकर ८/१८४-१८८, (भा.) ४७७-४८४ (भा.)
सुखलालजी (पंडित) ८/१८४-१८८ (भा.)
सुदर्शन श्रेष्ठी ११ आमुख ११/११५-११९,१२१-१२३,१२५-१३२,१६९-१७२
सुदर्शना ९/२२६-२२९ (भा.)
सुब्रिंग ८/२४१-२४२ (भा.)

ह

हरिभद्र सूरि ८/१८४-१८८ (भा.)
हस्तिनापुर ११/५७-५९,७७,८३,८५,१३२,१३९,१४०,१४९,१६२-१६५
हिमवंत ८/१०३
हिरण्य गर्भ ८/४३-८४ (भा.)
हेगेल ८ आमुख
हेमचंद्र ८/१८४-१८८ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१ (ख)

नामानुक्रम : देव

अ

अंगारक १०/९१
अंगारावतंसक १०/९१
अंजु १०/९२
अग्रमहिषी १० आमुख, ६५,६९,७०,७३-७६,७९-९२,९५-९७
अच्युत ८/१६,२५,३१,९५,३९१,४०१; १०/६२
अच्युत कल्प ११/१४,१९१
अणपन्निक देवत्व १०/२१
अतिकाय १०/८८
अनुत्तर विमान ८/४०३ (भा.), ११/१९१
अनुत्तरोपपातिक ८/१६,१७,२५,२६,३१,३६,६०,६१,६४,६६, ३८६,३९१,३९२,३९५,४०३,४४७ (भा.)
अपराजित ८/२५
अपराजिता १०/९१
अमला १०/९२
अरुणाभ विमान १०/१०२
अर्चनिका १०/९९
अर्चिमाली १०/९०
अप्सरा १०/९२
अला १०/७६
अवतंसा १०/८६
अशोका १०/७९
अशोकावतंसक १०/९२
असनी १०/७५
असुरकुमार ८/१५,१७,२४,३१,९५,२६०,३९५,४००; ९/८०, १२०,१२१,१२७,१२८,१३२; १०/२३,३१,६८,६९; ११/ ६१
असुरकुमार राज १०/४६-५१,६५,६७-७०,७२,७३
असुरराज १०/२३ (भा.)
असुरेन्द्र १०/४६-५१,६५,६७-७०,७२,७३

आ

आतपा १०/९०
आत्मरक्षक १०/९९
आत्मरक्षक देव १०/६९
आनत ११/१४
आनतदेव ८/४०१
आरण ११/१४

इ

इंगाल १०/९१
इन्द्र १०/८१; ११/६१
इन्द्र महोत्सव ९/१५८,१५८ (भा.) १६८ (भा.) ११/१६४
इन्द्रस्थान ८/२३७/३४३
इन्द्रा १०/७६

ई

ईशान ९/२३७,२३८; १०/६०,९६,९७,११ १४,१९१

उ

उत्तमा १०/८४
उत्तरवैक्रियक १०/२३ (भा.)
उत्पला १०/८२
उपपन्न ९/७९-८१,१२०,१२१,१२३-१२८,१३२,२३४,२३५, २४०,२४१,२४३,२४४,२४२-२४४ (भा.) १०/२१, ४८,४९,५१,५३,५४,५६,५९,६०,६२; ११/१६९,१८५
उपपात ८/३४१,३४३; १०/९९; ११/४२-५५ (भा.)

क

कनकलता १०/७०
कनका १०/७०,८५
कमल-प्रभा १०/८२
कमला १०/८२
कल्प ८/३१,९२ (भा.), ९/२३४,२३५-२३९, २४३; ११/१२ (भा.) १६२
कल्पवृक्ष ११/६१
कल्पातीत ८/३९१,३९२,४०२,४४७ (भा.)
कल्पातीतग ८/१६,१७,२५,२६,६०,६४,९५,३८६
कल्पोपग ८/१६,२५,९५
कल्पोपपन्न ८/३९१
काकंदक १०/४९,५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल १०/८२-८५,८९
काल राजधानी १०/८२
काली १०/६५
किंपुरुष १०/८६
किन्नर १०/८६,११/१३८
किल्विषिक देव ९/२३४-२४१,२४३,२४४
कृष्णरात्रि १०/९६
कृष्णा १०/९६
केतुमती १०/८६

ग

गन्धर्व ८/१६,२५,३१
गीतयश १०/८९
गीतरति १०/८९
ग्रहगण ८/३४०,३४२; ११/१६९
ग्रैवेयक ८/१६,२५,३१,३९१,४०२; ११/१९१

घ

घन (विद्युत्) १०/७६

च

चंपकावतंसक १०/९९
चन्द्र ८/१६,२५,३१,३४०,३४२; ९/३,१०/९०,९१; ११/६१, १३३,१५३,१५५
चन्द्रकिरण ११/१३३
चन्द्रप्रभा १०/९०
चन्द्रमण्डल ९/२०४
चन्द्रमा ९/४,३-५ (भा.), ११/१३४,१३८,१४२,१४६
चमर १०/२३ (भा.) ४६-५१,५३,५८,५९,६५,६७-७०,७२-७५,७९,८१,८२,९४; ११/१०९,११० (भा.)
चमरचंचा १०/६१-६९
चित्र १०/९५
चित्रगुप्ता १०/७०
चूतावतंसक १०/९९
चांद ११/१६९
च्यवन ९ आमुख, २४१,२४४; १०/५१,५४,५६,५९,६०,६२; ११/१६९,१८५
च्युत ९/१२०,१२३; १०/४६-५१ (भा.) ११/आमुख, १२ (भा.) ४२-५५ (भा.)

ज

जयन्ती १०/९१
ज्योतिष्क ८/१६,९५,२४३,३४०,३९१; ९/१,३-५,८५, ११५-११८,१२०,१३२; १०/२३,३१,९०; ११/१२ (भा.)
ज्योतिषराज १०/९०
ज्योतिषेन्द्र १०/९०
ज्योत्स्नाभा १०/९०

त

तारका १०/८४
तारा ८/१६,२५,३१,३४०,३४२
तारागण ९/३-५, ३-५ (भा.) ११/६१
तारा-रूप ११/१६९
तावस्त्रिंश १० आमुख
तावस्त्रिंशक १०/४२
तुडिय १०/६६
त्रायस्त्रिंश १० आमुख
त्रायस्त्रिंशक १०/४६-५१,४६-५१ (भा.) ५२-६१,६९

द

दिनकरइ ११/१४२
दिव्य १०/१८,६४; ११/१०९,११०,१०९-११० (भा.)
दिव्य भोग १०/६४,६७
दिव्य भोगार्ह १०/६८,६९,७२,७८,९४,१००; ११/१६९
दिशाकुमारी ११/आमुख, १०९,११०
दुन्दुभि ९/१६३
देव ८/१४-१७,२४,३१,३६,६०,६१,६४,६६,९२ (भा.) ९५, १३४,३४०,३६७-३७२ (भा.) ३८६,३९५,४००,४०३, (भा.), ४२४, (भा.) ४२८, ४४७ (भा.); ९/४६,४० (भा.) ६८,८६,११४-११९,१२५-१३२ (भा.), २३४-२४१,२४३, २४४,१० आमुख, २१,२३,२३ (भा.) २४-२६,२८,३१-३५,२४-३८ (भा.) ४६-५१,४६-५१ (भा.), ५२-६१,६४,६८,६९,११ (आमुख), १२ (भा.) ४२-५५ (भा.) ६१,६४,१०९,११०,१०९-११० (भा.) १३५,१६९,१७५, १७६,१७९,१८०,१८२,१८५,१८८-१९०,१९३
देव अर्चना ११/७१ (भा.)
देवकुल ८/३५९
देवगति ९/४६,४६ (भा.) ६८,१२५-१३२ (भा.); ११/४४
देवगतिक ८/१११-११३ (भा.)
देवता ८/३७९,३८० (भा.),१० आमुख
देव परिषद ९/१६३
देव पूजा ९/१५८ (भा.)
देव प्रवेशनक ९/११४-११६
देवराज १०/५७-६१; ९२,९४,९७,९९,१००
देवलोक ८/२४३;९/७,२४१,२४३,२४४; १०/२१,११ (आमुख) ४२-५५ (भा.); १६९,१७५,१७६,१७९, १८०,१८५, १८८,१९०,१९३
देवस्थिति ११/१७६
देवायु ८/४२५-४२८ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवायुष्य ९/१२५-१३२ (भा.)
देवावास १०/२३ (भा.)
देवावासांतर १०/२३
देवी १०/१.३२-३७.६५.६६.६८-७१.७४-७७.७९-९३.९५-९७
देवेन्द्र १०/५७-६१.९२.९४.९५.९७.९९.१००
देवोचित कर्म ९/१२५-१३२ (भा.)
धरण १०/५५.५६.६२.७६.७८-८०
धरण राजधानी १०/७८
धरणेन्द्र १०/८१; ११/६१

न

नक्षत्र ८/३४०.३४२; ११/६३.१५६.१५८.१६९
नवमिका १०/८७.९२
नाग ११/६१
नागकुमार ८/३३५.४००
नागकुमार राज १०/५५.५६.७६.७८.७९.८१
नागकुमारेन्द्र १०/५५.५६.७६.७९.८१
नागचित्त १०/८१
नाग पूजा ९/१८९.१८९ (भा.)
नाग महोत्सव ९/१५८.१५८ (भा)
निकाय (देव) १०/४६-५१ (भा.)
निरंभा १०/७४
निशुंभा १०/७४

प

पद्मा १०/८५.९२
परिचारणा १०/६९
पर्वणी उत्सव ९/१८९/१८९ (भा.)
पितर ११/६४
पिशाच ८/१६.२५.३१.९५
पिशाच राज १०/८२
पिशाचेन्द्र १०/८२
पुण्या १०/८४
पुष्पवती १०/८७
पूर्णभद्र १०/८४
पूर्णिमा उत्सव ९/१८९.१८९ (भा.)
पृथ्वी १०/९७
प्राणत १०/६२; ११/९४
प्रभंकरा १०/९०
प्रभास ९/३-५

ब

बलि १०/५२-५४.७४.७५
बलिचंचा राजधानी १०/७४
बहुपुत्रिका १०/८४
बहुरूपा १०/८३
बंभेलक १०/५४
ब्रह्मलोक ९/२३९, ११ (आमुख) ९४.१६९

भ

भवधारणीय वैक्रियक १०/२३ (भा.)
भवनपति ११/१२ (भा.)
भवनवासी ८/१४,१५,२४.३१,९५,२४३; ९/११४-११८
भावकेतु १०/९१
भीम १०/८५
भुजगवती १०/८८
भुजगा १०/८८
भूत महोत्सव ९/१५८.१५८ (भा.)
भूतराज १०/८३
भूतानन्द १०/५६,८०,८१
भूतेन्द्र १०/८३

म

मधराज कालवास १०/७९
मणिभद्र १०/८४
मदना १०/७४.९५
महत्तरिका ११/१०९.११०
महाकक्षा १०/८८
महाकाय १०/८८
महाकाल १०/८२
महाग्रह ९/३-५ (भा.), १०/९०.९१
महाघोष १०/५६
महापुरुष १०/८७
महाबल देव ११/१६९
महा भीम १०/८५
महाराज कालवास १०/७९
महाराज वरुण ११/६८
महाराज वैश्रमण ११/७०
महाराजा यम १०/७२; ११/६६
महाराजा सोम १०/७२.७५.९५.९७
महाविमान १०/९९
महाशुक्र ११/९४
माणवक चैत्य १०/६८
माहेन्द्र ९/२३८; ११/९४,१६९
मीनका १०/७५
मुकुन्द महोत्सव ९/१५८.१५८ (भा.)
मेघा १०/६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य

यक्ष महोत्सव ९/१५८,१५८ (भा.)
यक्षेन्द्र १०/८४
यम राजधानी १०/७३

र

रंभा १०/७४
रक्षेयेन्द्र १०/८५
रजनी १०/६५
रत्नी १०/९७
रतिप्रिया १०/८६
रतिसेना १०/८६
रत्नप्रभा १०/८५
राक्षसेन्द्र १०/८५
रात्री १०/९२
राजी १०/६५
रात्रि १०/९७
रामरक्षिता १०/९६
रामा १०/९६
रूपकांता १०/८०
रूपकावती १०/८०
रूपप्रभा १०/८०
रूपवती १०/८३
रूपा १०/८०
रूपांसा १०/८०
रोहिणी १०/८७,९२,९५

ल

लान्तक ११/९४
लान्तक कल्प ९/२३४,२३५,२४३
लोकपाल १०/६९-७०,७२,७३,७५,७९,८१,८२,९५,९७

व

वरुण १०/७३,७५,९७
वसुंधरा १०/७०,९६
वसु १०/९६
वसुमती १०/८५
वसुगुप्ता १०/९६
वसुमित्रा १०/९६
वानमंतर ८/१६,९५,२४३,३९१; ९/८४,११५-११८,१२०, १३२; १०/२३,३१
विकालक १०/९१
विक्रिया १०/६६,७१,७७,९३
विजय ८/१७,२५,३१
विजया १०/९१
विद्युत १०/६५,७५,९७
विमला १०/७९,८९
विमान ८/१६,२५,३१,४०३ (भा.); १०/९१,९४,९५,९७; ११/१९१
विमानावास १०/१००
विमान भवन ११/४२
वैजयन्ती १०/९१
वैमानिक ८/१४,१६,१७,६०,६४,९५,२४३,२६९,३८६,३९१, ३९२,४४७ (भा.); ४७८,४८१,४८३,५०१; ९/८१,८५, ११४-११८,१२०-१२४,१३२; १०/२३,३१,३५,३७; ११/ १२ (भा.)
वैरोचनराज १०/५२-५४,७५
वैरोचनेन्द्र १०/५२-५४,७४,७५
वैश्रमण १०/७३,९५; ११/६४
वैश्रमण राजधानी १०/७३
व्यंतर ११/१२ (भा.)

श

शक्र १०/५७-६०,९२,९४,९७,९९-१००
शक्रा १०/७६
शिवा १०/९२
शुंभा १०/७४

स

सतेरा १०/७६
सत्पुरुष १०/८७
सनत्कुमार ९/२३८; १०/६१; ११/९४,१६९
सन्नपर्णवितंसक १०/९९
सभा १०/१,९४
सरस्वती १०/८९
सर्वार्थसिद्ध ८/१७,२६,३१,३६,६०,६१,६४,६६,३७९,३८० (भा.) ३८६,४४७, (भा.)
सहस्रार ८/९२ (भा.), ९५,४००; ११/९४
सामानिक १०/६९
सुघोषा १०/८९
सुजाता १०/८१
सुदर्शना १०/७९,८२
सुधर्मा सभा १०/६७-७२,९४,९५,९९
सुनंदा १०/८१
सुप्रभा १०/७९
सुभगा १०/८३
सुभद्रा १०/७५,८१
सुमना १०/८१
सुरूपा १०/८०,८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्वरा १०/८९
सूर्य ८/३२९-३३५,३३७-३४०,३४२; ९/३-५ (भा.) १०/१-७ (भा.), ९०; ११/६३,७१,७७,१५३,१५५,१६९,१८६, १८७
सूर्यप्रभा १०/९०
सूर्याभदेव १०/७२,९९
सोमसिंहासन १०/९५
सोम १०/७३,७५
सोम राजधानी १०/७२
सोमा १०/९५
सौदामिनी १०/७६
सौधर्म ८/१६,२५,३१,९५,३९१; ९/२३६,२३८; ११. १६९
सौधर्म कल्प ८/३१; १०/२३ (भा.),९४; ११/९४,१८२,१९१
सौधमावतंसक १०/९४,९९
स्कन्ध महोत्सव ९/१५८,१५८ (भा.)
स्तनितकुमार ८/१५,२४,३१,९५,३९१; ९/८०,८१,१२०, १२८; १०/२३,३१
स्फुटा १०/८८
स्वयंप्रभविमान १०/९५
स्वर्ग ९/२४२-२४४ (भा.), ११ (आमुख)

ह

ह्री १०/८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामानुक्रम : पशु-पक्षी

आ

१. आम्मं. आसा (अश्व) ९/२०६,२०९, २४८,२५१; १०/३९, ३९ (भा.) ११/१५९
Horse

ई

२. ईहामिय (भेड़िया) ११/१३८
Wolf

उ

३. उरग (सर्प) ८/८७,९०,८६,९१ (भा.)
Snake

४. उसभ, उसह (वृषभ) ११/१३८,१४२
Ox

क

५. कुंजर (हाथी) ११/१३८
Elephant

६. कुत्ता १०/१५ (भा.)
Dog

७. कुम्मं (कछुआ) ८/२२२
Tortoise, Turtle

८. कृमि (किटाणु) ९/२४६-२४८ (भा.)
Worm

ग

९. गय (गज) ८/१०३,९७-१०३ (भा.) ९/२०५; ११/१४२
Elephant

१०. गाय, गो १०/१५ (भा.), ११/१५९
Cow

११. गोणा (बैल) ८/२२२
Ox

१२. गोहा (गोह) ८/२२२
A Kind of Lizard

च

१३. चमर (याक) (चमरी गाय) ११/१३८
Yalk

त

१४. तुरग (घोड़ा) ११/१३८
Horse

न

१५. नागा (हाथी) ९/२०६
Elephant

१६. नाय (नाग) ९/२०४
Snake

ब

१७. बन्दर १०/१५ (भा.)
Monkey

म

१८. मंडुक्क (मन्डूक) मेंढक ८/८७,८९,८६-९१ (भा.); १०/१५ (भा.)
Frog

१९. मगर (मगरमच्छ) ११/१३८
Crocodile

२०. मछली १०/१५ (भा.)
Fish

२१. महिसे (भैंसा) ८/२२२; १०/१५ (भा.)
Buffalow

र

२२. राजहंसिनी ११/१३५,१४४
Female Flamingo

२३. रुरु (काला हिरण) ११/१३८
Black Deer

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व

२४. वग्घं (व्याघ्र) ९/२४८
Tiger
२५. वालग (सर्प) ११/१३८
Snake
२६. विच्छुय (वृश्चिक) ८/८७,८८,८६-९१ (भा.)
Scorpian

स

२७. सरभ (अष्टापद) ११/१३८
२८. सीहं (सिंह) ११/१३३,१४२
Lion

ह

२९. हत्थिं (हस्ती) ९/२४८,१५९
Elephant
३०. हय (हय) ८/९७-१०३ (भा.), १०३; ९/२०५
Horse

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-२

शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम

अ

अंगद ९/११०
अगरल ९/१४९
अट्ठियकट्ठट्ठिय ९/१७२
अणिट्ठविय ९/१७२
अतिशयबल ९/१४९
अदंड कोदंडिमं ११/११९-१३०
अधरिम ११/११९-१३०
अध्यवसान ९/१-३२
अन्योन्य अनुगमन ८/४७७-४८४
अन्योन्य अनुप्रवेश ८/४७७-४८४
अपरिमितबल ९/१४९
अभिहणइ ८/२८५-२९४
अमम्मणा ९/१४९
अर्थावग्रह ८/९७-१०३
अवग्रह ८/९७-१०३
अवधिज्ञान ८/९७-१०३
अवाय ८/९७-१०३
अविकल कुल ९/१७३
अवितथ ९/१७७
अविमाणिय दोहला ११/११९-१३०
असईजणपोसणया ८/२४१-२४२
असब्भभावुब्भावणा ९/२३०-२३४
अहीव एगंतादिट्ठीए ९/१७७

आ

आचार विनय ८/३०१
आलापनबंध ८/३५५
आलुग ९/१६८
आवेष्टन-परिवेष्टन ८/४७७-४८४
आसेलय ९/१४१

इ

इंगाल ११/५९
इंगालकम्मे ८/२४१-२४२
इंदयट्ठी ९/१६८
इन्द्रिय लब्धि ८/१३९-१४६

ई

ईहा ८/९७-१०३

उ

उंबरपुप्फं ९/१६९
उक्खेवगं ९/१६९
उग्ग १०/४६-५१
उग्गविहारी १०/४६-५१
उच्चय बंध ८/३५६-३६२
उत्तरावक्रमण ९/१९०
उत्पलकर्णिका ११/४०
उत्पलकेसर ११/४०
उत्पलथिमुग ११/४०
उत्सव ९/१८९
उद्धारणा ८/३०१
उपभोग लब्धि ८/१३९-१४६
उवट्टवेइ ८/२८५-२९४

ए

एक क्षेत्रावगाह ८/४७७-४८४
एकावलि ९/१९०
एकास्थिक ८/२१६-२२१

ओ

ओग्गहिय ९/१४१
ओघबल ९/१४९

क

कंचुकी ९/१५८
कंदप्पिया ९/२०४
कंदुसोल्लिय ११/५९
कटिसूत्र ९/१९०
कट्ठसोल्लिय ११/५९
कडग ९/१९०
कलमल ९/१७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारवाहिया ९/२०८
कारोडिया ९/२०८
किच्छदुक्ख ९/१७४
किडुकरा ९/२०४
किढ़िण ११/७१
किलामेह ८/२८५-२९४
किव्विसिया ९/२०८
कुंडल ९/१९०
कुलवंश ९/१६९
कुवग्गाहा ९/२०४
कुश ८/३५५
कुसील १०/४६-५१
कुसील विहारी १०/४६-५१
कृतलक्षण ९/१६६
कृतार्थ ९/१६६
केयूर ९/१९०
केवलज्ञान ८/९७-१०३
केवलं ९/१७७
केसवाणिज्जे ८/२४१-२४२
केसहत्थ ९/१६८
कोक्कुइया ९/२०४
कोत्तिय ११/५९
क्षण ९/१८९

ख

खंडियगण ९/२०८
खुण्णिय ९/१६८
खुर ९/१४१

ग

गंधकासाईए ९/१९०

घ

घंटियाजाल ९/१४१
घटी ९/२०४
घेरकंचुइ ९/१४४

च

चक्किया ९/२०८
चरित्रलब्धि ८/१३९-१४६
चरित्राचरित्रलब्धि ८/१३९-१४६
चाटुकर ९/२०४
चारगं सोहणं ११/११९-१३०
चिलिण ९/१६८
चुडल्लिव ९/१७४
चूडामणि ९/१९०
चेट्ठिय ९/१९५

छ

छाण ८/२५६-२५७
छिन्नर ८/२५६-२५७

ज

जंतपीलणकम्मे ८/२४१-२४२
जंबूनदमयकलाप ९/१४१
जटी ९/२०४
जन्नोवयारकुसल ९/१९५
जराकुणिमज्जरघर ९/१७२
जहामालियं ११/११९-१३०
जाति स्थविर ८/२९५-३००
जीविऊसविए ९/१६९
जुग ९/१४१
जोयण नीहारिणा ९/१४९
ज्ञान अत्याशातना ८/४१९-४२०
ज्ञान निह्नवन ८/४१९-४२०
ज्ञान प्रत्यनीकता ८/४१९-४२०
ज्ञान प्रदोष ८/४१९-४२०
ज्ञान लब्धि ८/१३९-१४६
ज्ञान-विसंवादना ८/४१९-४२०
ज्ञानान्तराय ८/४१९-४२०

झ

झल्लरी ११/९०

ड

डमरकर ९/२०४
डवकर ९/२०४

त

तंत्रोद्गत ८/२५१-२५५
तत गति ८/२८५-२९४
तालियंट ९/१६९
तिथि ९/१८९
तुडिय ९/१९०
तृणशूक ८/२५१-२५५
तेज ९/१४९

द

दंतवाणिज्जे ८/२४१-२४२
दर्भ ८/३५५
दवग्गिदावणया ८/२४१-२४२
दर्शन लब्धि ८/१३९-१४६
दान लब्धि ८/१३९-१४६
दिशापेक्खिय ११/७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीणविमण वयण ९/१६८
दीव चंपय ८/२५६-२५७
दुगुल्ल ११/११९-१३०
दुरूय ९/१७४
देश ८/२८५-२९४
दोषनिर्घात विनय ८/३०१

ध

धारण ८/२५६-२५७
धारणा ८/९७-१०३

न

नंगलिया ९/२०८
नत्थ ९/१४१
निच्छाय ९/१६८
निर्ग्रन्थ प्रवचन ९/१७७
निल्लंछणकम्मे ८/२४१-२४२
नेयाउय ९/१७७

प

पइविसिट्ठ ९/१४१
पगब्भुब्भवभाविणीओ ९/१७३
पग्गह ९/१४१
पडिपुण्ण ९/१७७
पमुयपक्कीलिय ११/११९-१३०
पम्हसुउमाल ९/१९०
परस्पर श्लेष ८/४७७-४८४
परिक्लेश ९/१७४
परिनिव्वायंति ९/१७७
पर्याय स्थविर ८/२९५-३००
पर्वणि ९/१८९
पसत्थ दोहला ११/११९-१३०
पसय ८/९७-१०३
पार्श्वस्थ १०/४६-५१
पार्श्वस्थविहारी १०/४६-५१
पिच्छी ९/२०४
पुण्णरत्ता ९/१४९
पुष्यमाण ९/२०८
पेच्चेह ८/२८५-२९४
पोत्तिय ११/५९
प्रदेश ८/२८५-२९४
प्रयोग ८/१
प्रयोग गति ८/२८५-२९४
प्रालम्ब ९/११०

फ

फोडीकम्मे ८/२४१-२४२

ब

बंध छेदनगति ८/२८५-२९४
बलका ८/२५६-२५७
बलहरण ८/२५६-२५७
बलियाण ९/१४१
बहुबीजक ८/२१६-२२१
बुज्झंति ९/१७७
ब्रह्मचर्यवास ९/९-३२

भ

भाडीकम्मे ८/२४१-२४२
भोगलब्धि ८/१३९-१४६

म

मज्जिष्ठा राग ८/२५१-२५५
मतिअज्ञान ८/९७-१०३
मनःपर्यवज्ञान ८/९७-१०३
मल्ल ८/२५६-२५७
महत्तरग ९/१४४
महाबल ९/१४९
माहात्म्य ९/१४९
मिच्छत्ताभिनिवेस ९/२३०-२३४
मिश्र ८/१
मुक्तावलि ९/१९०
मुच्चंति ९/१७७
मुरवी ९/१९०
मुहमंगलिया ९/२०८
मृदंग ११/९०
मृदंग मस्तक ९/१५६

य

यज्ञ ९/१८९
यथाछंद १०/४६-५१
यथाछंदविहारी १०/४६-५१

र

रका ९/१४९
रज्जु ८/३५५
रत्नावलि ९/१९०
रयणमय घंटा ९/१४१
रसवाणिज्जे ८/२४१-२४२
रूप ९/१९५

ल

लक्खवाणिज्जे ८/२४१-२४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहुसगा ९/१७४
लाभ लब्धि ८/१३९-१४६
लेसेह ८/२८५-२९४

व

वणकम्मे ८/२४१-२४२
वत्तेह ८/२८५-२९४
वद्धमाण ९/२०८
वर्द्धमान ९/२०८
वर्द्धमानक ९/२०८
वल्क ८/३५५
वल्ली ८/३५५
वषहर ९/१४४
वस्त्रा ८/३५५
विकच्छमुत्तग ९/१९०
विक्षेपणा विनय ८/३०१
विणीय दोहला ११/११९-१३०
विधारणा ८/३०१
विभंग अज्ञान ८/९७-१०३
विमक्कसंधिबंधण ९/१६८
विलास ९/१७३,१९५
विसप्सा ८/१
विहायगति ८/२८५-२९४
वीर्य लब्धि ८/१३९-१४६
वुग्गाहेमाण ९/२३०-२३४
वुप्पाएमाण ९/२३०-२३४
वेत्रलता ८/३५५
वेदि ११/७१
वोच्छिण्ण दोहला ११/११९-१३०
व्यंजनावग्रह ८/९७-१०३

श

शिखंडी ९/२०४
शिरा ९/१७२
श्रीगृह ९/१८४
श्रुतअज्ञान ८/९७-१०३
श्रुत विनय ८/३०१
श्रुत स्थविर ८/२९५-३००
श्लेष बंध ८/३५६-३६२

स

संकाइयणं ११/७१
संखिया ९/२०८
संगय ९/१९५
संघट्टेह ८/२८५-२९४
संघाएह ८/२८५-२९४
संट्ठप्पया ९/१७२
संधारणा ८/३०१
संपुण्णा दोहला ११/११९-१३०
संप्रधारणा ८/३०१
संलाप ९/१९५
संविग्न १०/४६-५१
संविग्नविहारी १०/४६-५१
संसुद्ध ९/१७७
संहनन बंध ८/३५६-३६२
सत्य ९/१७७
समलिहियसिंग ९/१४१
सफसिय ९/१६९
समुच्चय बंध ८/३५६-३६२
सम्माणिय दोहला ११/११९-१३०
सरदब्भ ९/१९५
सरदहतलायसोसणया ८/२४१-२४२
सर्वभाषानुगामिनी ९/१४९
सल्लगत्तणं ९/१७७
सव्वत्तक्खरसण्णिवाइया ९/१४९
सव्वदुक्खाणमंतंकरेंति ९/१७७
साडीकम्मे ८/२४१-२४२
सालभंजिया ९/१९१
सावेंता ९/२०४
सासंता ९/२०४
सिंगारागारचारुवेसा ९/१९५
सिज्झेति ९/१७७
सीयं ९/१९१
सुत्तरज्जुय ९/१४१
सेयापीए ९/१९०
स्नायु ९/१७२

ह

हडप्प ९/२०४
होत्तिय ११/५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य-विषयानुक्रम

अ

अक्षीण प्रतिभोजी ८/२४१-२४२
अज्ञान ८/१८९-१९१
अध्यात्म के सूत्र ९/९-३२
अनगारिता और धर्मान्तरायिक कर्म ९/९-३२
अनुत्तर विमान देव ८/४०३
अन्तराय कर्म ८/४३३
अन्तर्द्वीप ९/७
अन्ययूथिक संवाद अदत्त की अपेक्षा ८/२७१-२८४
अन्यलिंगी एक समय में सिद्ध ९/५१
अप्रशस्त वनस्पति व देवों की अनुत्पत्ति ११/४२-५५
अभिनिष्क्रमण व केशकर्त्तन ९/१८८
अलेश्य ८/१७८
अवधिज्ञान और लेश्या ९/५६
अवेदक ८/१८१
अश्रुत्वा पुरुष के आध्यात्मिक विकास के साधन ९/९-३३,३४
अश्रुत्वा पुरुष के लिए स्त्री वेद का निषेध ९/४२
अश्रुत्वा पुरुष के अवधिज्ञान में वेद अवेद ९/६४
अश्रुत्वा श्रुत्वा पुरुष में ज्ञान की भिन्नता ९/५७
अश्रुत्वा श्रुत्वा पुरुष में ज्ञान दर्शन की भिन्नता ९/५५
अश्रुत्वा पुरुष में द्रव्य लेश्या भाव लेश्या ९/५६
अष्टमंगल ९/२०४
असोच्चा और सोच्चा ९/९-३२

आ

आजीवक उपासकों की विशेषताएं ८/२४१-२४२
आजीवक संप्रदाय ८/२३०-२३५
आठ कर्मों में परस्पर नियमा, भजना ८/४८५-४९८
आन्तरिक शुद्धि के सूत्र ९/९-३२
आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान ९/९-३२
आयुष्य ८/४२५-४२८
आराधक विराधक ८/२५१-२५५
आराधना ८/४५१-४६६
आलापन बंध के साधन ८/३५५
आलीनकरण बन्ध ८/३५६-३६२
आलोचनाभिमुख का आराधक पद ८/२५१-२५५
आशीविष के प्रकार ८/८६-९१
आहारक शरीर प्रयोग बंध ८/४०८-४११

इ

ईर्यापथिक बन्ध ८/३०२-३१४

उ

उत्पत्ति (द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय से) ९/१२१
उत्पल के एक पत्ते में जीव ११/१
उत्पल जीव उच्छ्वास निश्वास ११/१८
उत्पल जीव और कर्म बन्धन ११/६-११
उत्पल जीव और काय संवेध ११/३०
उत्पल व आहारग्रहण ११/३४
उत्पल जीव व कर्म बन्धक व अबंधक भंग ११/६-११
उत्पल जीव व स्थिति ११/३०, ३४
उत्पल पत्र के जीवों का परिमाण ११-३-४
उत्पल पत्र के जीवों की आगति ११/२
उत्पल पत्र में जीवों की उत्पत्ति ११/३-४
उपनिमंत्रित पिण्डादि परिभोग विधि ८/२४८-२५०

ऋ

ऋषभदत्त और परम्परा ९/१३७
ऋषि के वध में अनंत जीवों का वध ९/२४९, २५०

ए

एक एक आकाश प्रदेश में जीवों के प्रदेश ११/११३
एक के वध में अनेक जीवों का वध ९/२४६-२४८
एक समय में योग ९/३६

ऐ

ऐर्यापथिकी क्रिया और संवृत अनगार १०/११-१४

औ

औदारिक आदि शरीर बंधक और अबंधक ८/४३९-४४६
औदारिक आदि शरीर बंध का अल्प बहुत्व ८/४४७
औदारिक-वैक्रिय शरीर प्रयोग बन्ध की स्थिति एवं अन्तरकाल ८/४१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक शरीर प्रयोग बंध की अवस्थाएं ८/३७२-३७५
औदारिक शरीर बन्धक का अल्प बहुत्व ८/३८५
औदारिक शरीर बन्ध का अन्तरकाल ८/३७९-३८१,३८३,३८४

क

कर्म प्रकृति और परीषह का सम्बन्ध ८/३१५-३२८
कर्म बन्ध की भूमिकाएं ८/३१५-३२८
कर्म बन्ध के हेतु ८/४१९-४३३
कर्म से आशीविष ८/९२
कर्मों का अविभाग परिच्छेद ८/४७७-४८४
कषाय की क्षीणता व अवधिज्ञान ९/६५
कार्मण शरीर ८/३६६
कालातिक्रान्त ९/२२४
क्रियमाणकृत ९/२२६-२२९
क्रिया (शरीर और शरीरयुक्त जीव की अपेक्षा) ८/२५८-२६९
क्रिया का अल्प बहुत्व ८/२२८
क्रिया काल और निष्ठा काल ८/२७१-२८४
क्रिया की सापेक्षता ८/२५६-२५७
क्रियावाद ८/४४९-४५०
क्षपक श्रेणी और कर्म क्षय की प्रक्रिया ९/४६
क्षपक श्रेणी के आरोहण की प्रक्रिया ९/४६
क्षुल्लक भव ८/३७६-३७८

ग

गति उत्पत्ति के परोक्ष हेतु ९/१२५-१३२
गति उत्पत्ति के प्रत्यक्ष हेतु ९/१२५-१३२
गति के आधार पर हिंसा-अहिंसा ८/२८५-२९४
गति में उत्पत्ति के हेतु ९/१२५-१३२
गोत्र कर्म ८/४३१-४३२

च

चतुर्याम धर्म और पंच महाव्रत धर्म ९/१३३-१३५
चरम-अचरम ८/२२४-२२६
चारित्र अवस्था और कषायोदय ९/४३
चारित्राराधना ८/४५१-४६६

छ

छद्मस्थ और केवली ८/९६

ज

जमाली जीवन चरित्र ९/२२६-२२९
जम्बूद्वीप आदि में चन्द्रमा आदि की संख्या ९/३-५
जिह्वा की अलब्धि वाले जीव ८/१७१
जीव की उत्पत्ति, उद्वर्तना व गत्यंतर में प्रवेश ९/७९-८६
जीव के प्रदेश और कर्म पुद्गलों का संबंध ८/४७७-४८४
जीव प्रदेश ८/२२२-२२३
जीवों के रत्नप्रभा आदि के भंग ९/८८-९०,९१,९२,९३,९४,९५-९७
ज्ञान-अज्ञान (अंतराल गति की अपेक्षा) ८/१११-११३
ज्ञान-अज्ञान (आहारक-अनाहारक की अपेक्षा) ८/१८२-१८३
ज्ञान-अज्ञान (इंद्रिय की अपेक्षा) ८/११५-११७
ज्ञान-अज्ञान (इन्द्रिय लब्धि की अपेक्षा ८/१६६-१६८
ज्ञान-अज्ञान (काय की अपेक्षा) ८/११८-११९
ज्ञान-अज्ञान (चारित्र लब्धि अलब्धि की अपेक्षा) ८/१६१-१६२
ज्ञान-अज्ञान (तिर्यक् पंचेंद्रिय) ८/१२५
ज्ञान-अज्ञान (दर्शन लब्धि की अपेक्षा) ८/१५९-१६०
ज्ञान-अज्ञान (दान-वीर्यलब्धि की अपेक्षा) ८/१६५
ज्ञान-अज्ञान (सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा) ८/१२०-१२२
ज्ञान-अज्ञान, अपर्याप्त अवस्था में ८/१२६
ज्ञान-अज्ञान का अंतरकाल ८/२००-२०४
ज्ञान-अज्ञान की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति ८/२००-२०४
ज्ञान-अज्ञान के पर्यवों का अल्प-बहुत्व ८/२०८-२१४
ज्ञान-अज्ञान द्वीन्द्रिय में ८/१२८
ज्ञान-अज्ञान नैरयिक में ८/१२७
ज्ञान-अज्ञान मनुष्य में ८/१२९
ज्ञान का प्रतिपक्ष ८/१५३
ज्ञान की विषय (ज्ञेय) वस्तु का प्रतिपादन ८/१८४-१८८
ज्ञान के प्रकार ८/९७-१०३
ज्ञान छद्मस्थ-वीतराग में ८/१८०
ज्ञान पर्यवों का अल्प-बहुत्व ८/२०८-२१४
ज्ञानवाद ८/४४९-४५०
ज्ञानाराधना ८/४५१-४६६
ज्ञानावरणीय कर्म ४१९-४३३
ज्ञानी-अज्ञानी (ज्ञान लब्धि की अपेक्षा) ८/१५०
ज्ञानी-अज्ञानी का अल्प बहुत्व ८/२०८-२१४
ज्ञानी और अज्ञानी ८/१०४
ज्ञानी का अल्प-बहुत्व ८/२०३-२०७
ज्ञानी की कालावधि ८/१९२-१९९

झ

झल्लरी, मृदंग ११/९०

त

तीर्थंकर की वाणी ९/१४९
तेजस् और कार्मण शरीर का प्रमाण ८/४३९-४४४

द

दर्शनाराधना ८/४५१-४६६
दर्शनावरणीय कर्म ८/४१९-४३३
दान के तीन रूप ८/२४५-२४७
दिशाएं व द्रव्यों का अस्तित्व १०/१-७
दिशा चक्रवाल तपःकर्म ११/५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिशा-विदिशा १०/१-७
देव की गति शक्ति १०/२३
देव की स्थावर जीव निकायों में उत्पत्ति ११/१२
देव निकाय व त्रायस्त्रिंशक १०/४६-५१
देवों की त्वरित गति व रज्जु ११/१०९-११०
दोष प्रतिसेवना व आराधना विराधना १०/१९-२१
दोहद के प्रकार ११/११९-१३०

ध

धर्म का ज्ञान और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ९/९-३२

न

नाम कर्म ८/४२१-४३०
निर्ग्रंथ प्रवचन ९/१७७
नैरयिक का अज्ञान ८/१०५

प

पंखा ९/१६९
पंचमुष्टिक लोच ९/२१४
पन्द्रह कर्मादान ८/२४१-२४२
परमाणु और प्रदेश ८/४७०-४७४
पलाश आदि की अवगाहना, उपपात, लेश्या, स्थिति ११/४२-५५
पांच व्यवहार ८/३०१
पुद्गल और पुद्गली ८/४९९-५०३
पुद्गल के प्रकार ८/१
पुद्गल परिणाम ८/४६७-४६८
पुद्गल परिवर्त ८/३८४
पुद्गलास्तिकाय ८/४७०-४७४
पुनर्जन्म की व्यवस्था का हेतु ९/१२५-१३२
पूजा ९/१५८
प्रज्ञापनी भाषा, व्यवहार भाषा १०/४०
प्रत्यनीकों का वर्गीकरण ८/२९५-३००
प्रत्याख्यान के भंग ८/२३६-२४०
प्रदेश परिमाण ८/४७५-४७६
प्रमाणातिक्रान्त ९/२२४
प्रयोगपरिणत ८/१,२-३९
प्रयोग बन्ध ८/३५४
प्रशस्त वनस्पति व देवोत्पत्ति ११/४२-५५

ब

बन्ध का विश्लेषण (विभिन्न परम्पराओं में) ८/३४५-३५३
बहुकरणजुत्तजोइय ९/१४१
बहुनिर्जरा अल्पपाप ८/२४५-२४७
बहुरतवाद ९, २२६-२२९
बोधि और दर्शनावरणीय कर्म ९/९-३२
ब्रह्मचर्यवास और चारित्रावरणीय कर्म ९/९-३२

भ

भवनपति और व्यंतर देवों का अज्ञान ८/१०६
भारतीय दर्शनों (चार्वाक् सांख्य आदि) में सृष्टिवाद ८/४३-८४
भिक्षु प्रतिमा १०/१८

म

मनःपर्यवज्ञान में अंतर ८/२००-२०४
मनुष्य शरीर व आधारभूत तत्त्व ९/१७२
महावीर और ऋषभ की अवगाहना ९/४०
महावीर की परिषद् ९/१४९
महावीर की वाणी ९/१४९
महोत्सव ९/१५८
मिथ्यात्व का अभिनिवेष व भवभ्रमण ९/२४२-२४४
मिश्रपरिणत ८/१, ४०-४१
मुनि ९/१४९
मेरु पर्वत की अवगाहना व लोक का स्पर्श ११/९९
मोहनीय कर्म ८/४२४

य

योनि १०/१५

ल

लब्धि ८/१३९-१४६
लब्धियों की प्राप्ति में उपयोग ९/३७
लोक-प्रमाण व संस्थान ११/९०
लोकाकाश में जीव प्रदेश ११/११३

व

वध और वैर ९/२५१-२५२
वनस्पति ८/२१६-२२१
वनस्पति की अवगाहना ११/५
वनस्पति की कायस्थिति व तरुकाल ११/३२
वनस्पति व आहार ग्रहण की दिशाएं ११/३५
विनय प्रतिपत्तियां ८/३०१
विमोहन १०/२४-३८
विसदृश बन्ध का नियम ८/३४५-३५३
विस्रसा परिणत ८/१,४२
विस्रसा बन्ध ८/३४५-३५३
वीचि अवीचि पथ व सांपरायिकी ऐर्यापथिकी क्रिया १०, ११-१४
वेदना १०/१६-१७
वेदनीय कर्म ८/४२२-४२३
वैक्रिय शरीर के बंधक का अल्प बहुत्व ८/४०४
वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध ८/३२७, ३९८
वैरानुबन्धी वैर ९/२५१-२५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श

शरीर और वर्गणाएं ८/३६६
शरीर का स्वरूप और कार्य ८/३६६
शरीर निर्माण ८/३६७-३७२
शरीर प्रयोग बन्ध ८/३६६
शरीर बन्ध ८/३६३-३६५
शाश्वत अशाश्वत में अनेकांत दृष्टि ९/२३०-२३४
श्रमण संप्रदाय ८/२३०-२३५
श्रमणोपासककृत दान का परिणाम ८/२४५-२४७
श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान विधि के विकल्प ८/२३६-२४०
श्रुतशील ८/४४९-४५०

स

संवर और अध्यवसानावरणीयकर्म ९/९-३२
सदृश बन्ध का नियम ८/३४५-३५३
साम्परायिक बंध ८/३०२-३१४
सास्वादन सम्यक्त्व ८/१०७-११०
सिद्ध और सिद्धगतिक ८/११४
स्थावर जीव व लेश्या ११/१२
स्वतः ज्ञान परतः ज्ञान ९/१२३-१२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिभाषिक शब्दानुक्रम

अ

अंग ८/१०२
अंतर्द्वीप ८/१८७, ९/७, १०/१०२
अकाय ८/११८-११९ (भा.)
अकृत्यस्थान ८/२५१-२५४, १०/१९-२१
अक्रियावाद ८/४३-८४ (भा.)
अग्रकेश ९/१८८,१८८ (भा.), २१४ (भा.)
अचक्षु दर्शन ८/१७४, १८४-१८८ (भा.)
अचरम ८/२२५-२२६, २२४-२२६ (भा.)
अजीव १०/६, ११/१००,१०४
अज्ञान ८/९९, १०४-११३, १११-११३ (भा.), ११५-११८, १२४-१२९, १३६, १४८, १५०-१५४, १५६-१६६, १६९-१७५, १८३, १८४-१८८ (भा.), १८९-१९१ (भा.)
अज्ञानलब्धि ८/१५७
अज्ञानी ८/१०२, १०४-१३७, १४७-१८३, १९८, २०५-२०७ (भा.)
अढाईद्वीप समुद्र ८/१८७
अतीन्द्रियज्ञान ८/११५-११७ (भा.)
अदत्त ८/२७५-२७८, २८२-२८४
अदत्तादान ८/२४०, २४८-२५० (भा.)
अधर्मास्तिकाय ८/९६, ९६ (भा.)
अधस्तन क्षुल्लकप्रतर ८/१८७
अधोलोक ११/१००, १०४, १०८
अध्यवसान ९/९-३२ (भा.)
अध्यवसानावरणीय कर्म ९/२०, ९-३२ (भा.)
अध्यवसाय ९/३६ (भा.)
अध्यात्म ९/९-३२ (भा.)
अध्वाकाल ११/११९, १२८
अनाकार उपयोग ८/१८४-१८८ (भा.)
अनाकारोपयुक्त ८/१७४-१७५
अनापात ८/२४८-२५०
अनाहारक ८/१८३, १८२-१८३ (भा.)
अनुयोगद्वार ८/९७-१०३ (भा.), १३९-१४६ (भा.) २२२-२२३ (भा.)
अनिवृत्ति गुणस्थान ८/१८१ (भा.)
अनीन्द्रिय ८/११७, १८४-१८८ (भा.)
अनुगवेषणा ८/२३०, २४८, २४९
अनेकान्तवादी ८/१
अनेषणीय ८/२४६, २४७, २४५-२४७ (भा.)
अन्तराय ८/३१७, ३२२, ३१५-३२८ (भा.)
अन्तराल गति ८/१११-११३, १११-११३ (भा.) ११४, १३१
अन्ययूथिक ८/२७१, २७३-२९२, ४४९
अपर्याप्त ८/२७-२९, ३१-३९, १०७-११० (भा.) १२६, १२७, १२९
अपर्याप्तक ८/१८-२६, ३०, १११-११३ (भा.) १२९, १६६-१६८ (भा.)
अपार्धपुद्गल परावर्त ८/१९२-१९९ (भा.) २००
अप्रतिहत ८/२४७
अप्रत्याख्यातपापकर्म ८/२४७
अप्रत्याख्यान क्रिया ८/२२८, २२८ (भा.)
अप्रासुक ८/२४६, २४७, २४५-२४७ (भा.)
अबंधक ८/४३९-४४७
अभवसिद्धिक ८/१३६
अभवस्थ ८/१३४
अभेदवाद ८/१८४-१८८ (भा.)
अभ्युत्थान ८/२५१
अमूर्त्त ८/९६ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
अयोगी ८/१७६, १८२-१८३ (भा.)
अरूपी द्रव्य ८/१८४-१८८ (भा.)
अर्थावग्रह ८/९७-१०३ (भा.) १०१
अर्धमागधी भाषा ९/१४९
अर्हत् ८/९६
अलब्धिक ८/१४८, १५०, १५४
अलोक ८/१८६, ११/९९, ९९ (भा.) १०३, १०७, ११०, १०९-११० (भा.)
अलोकाकाश ८/४७५-४७६
अवग्रह ८/९७-१०३ (भा.), ९८-१०१
अवधिज्ञान ८/९६ (भा.) १०४, १०५, १११-११३ (भा.), १२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भा.), १५१, १५२, १६३, १७३, १८६, १८४-१८८ (भा.), १८९-१९१ (भा.), १९२-१९९ (भा.), २००-२०४ (भा.), २१०, २१२, २१४, ९/ ३३, ५५, ५५ (भा.), ६५ (भा.)
अवधिज्ञानलब्धि ८/१५१
अवधिज्ञानी ८/१९५, २०१, २०५, २०७, २०५-२०७ (भा.)
अवधिदर्शन ८/१७५
अवसर्पिणी ८/१८६
अवाय ८/९७-१०३ (भा.), ९८, १००
अविरत ८/२४७
अवीचि पथ १०/११-१४ (भा.)
अवेदक ८/१८१ (भा.)
अशरीरी ८/११८-११९ (भा.), १२०-१२२ (भा.)
अशुभ कर्म ९/१२६, १३०, १२५-१३२ (भा.)
अश्रुत्वा पुरुष ९/१-३२ (भा.), ३३ (भा.), ३४-५१, ५५ (भा.), ५६
असंख्येय ११/३-४ (भा.)
असंज्ञी ८/१०६ (भा.), १०७-११० (भा.), १११-११३ (भा.), १३८
असंयत ८/१६५ (भा.), २४७, २४५-२४७ (भा.)
असंयमी सम्यक्दृष्टि ८/१६१-१६२ (भा.)
असत् ९/१२१-१२२, १२१ (भा.), १२३-१२४ (भा.)

आ

आकाश प्रवेश १०/१-७ (भा.), ११/१०४-१०७, १११-११३, ११३ (भा.)
आकाशस्तिकाय ८/९६, ९६ (भा.)
आगति ८/१८४-१८८ (भा.)
आगम ८/१८४-१८८ (भा.), ३०१, ३०१ (भा.)
आगमबलिक ८/३०१
आगम व्यवहार ८/३०१ (भा.)
आचार्य ८/३०१ (भा.)
आजीवक ८/ २३०, २३०-२३५ (भा.), २४०, २३६-२४० (भा.) २४१-२४२, २४१-२४२ (भा.)
आजीवकोपासक के प्रकार ८/२४२
आज्ञा ८/३०१, ३०१ (भा.)
आठ मंगल ९/२०४, २०४ (भा.)
आतापन-भूमि ११/६३-६४, ६८,७०, ७२, १८६
आत्मऋद्धि १०/२३
आत्मज ९/१४८ (भा.)
आत्मा ८/१८४-१८८ (भा.)
आधिकरणिकी ८/२२८, २५८-२६९ (भा.)
आधोवधिक ८/१८४-१८८ (भा.)
आन-पान ९/२५३-२५७
आभिनिबोधिक ज्ञान ८/९७, ९८, १०१, १०४-१०५, १०८, १४९,१५०, १५० (भा.), १६३, १६९, १७३, १८४-१८८ (भा.) २००-२०४ (भा.) २०८, २१२, २०८-२१४ (भा.)
आभिनिबोधिक ज्ञानी ८/१९३, २००, २०१, २०५, २०७, २०५-२०७ (भा.) २०८-२१४ (भा.)
आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध ९/४, ३-५ (भा.)
आयुष्य कर्म ८/३१५-३२८ (भा.)
आरंभिकी क्रिया ८/२२८, २२८ (भा.)
आराधक ८/२५१, २५५, २५१-२५५ (भा.), ३०१
आराधना ८/४५१-४६६, ४५१-४६६ (भा.) १०/१९-२१
आराधिका ८/२५४
आलोचना ८/२५१-२५४
आलोचना-प्रतिक्रमण १०/१९-२१
आवलिका ८/१८६
आविश कर्म ८/१८४-१८८ (भा.)
आवेष्टित-परिवेष्टित ८/४८२, ४८४, ४७७-४८४ (भा.)
आसीविष के प्रकार ८/८६-९५
आहार ११/३५ (भा.) १४५
आहारक ८/१८२,१८२-१८३ (भा.)
आहारक शरीर ८/२६८

इ

इन्द्रिय ८/११५, १६७, १६६-१६८ (भा.)
इन्द्रि युक्त ८/१७८, १७९, १८१
इन्द्रिय लब्धि ८/१६६, १६८, १६६-१६८ (भा.)
इसिभासियाइं ८/२४१-२४२ (भा.)

ई

ईर्यापथिकी बंध ८/३०२-३१४ (भा.)
ईश्वरवाद ८/४३-८४ (भा.)
ईहा ८/९८, १००, ९७-१०३ (भा.)

उ

उत्पत्ति ९/७९-८६ (भा.) १२१
उत्पल पत्र ११/१ (भा.), ३-४ (भा.), ६-११ (भा.), ३० (भा.), ३४ (भा.)
उदवर्तना ९/७९-८६ (भा.), १२१
उपपात ८/१८४-१८८ (भा.)
उपशम श्रेणी ८/३०२-३१४ (भा.)
उपशांत मोह ८/३०२-३१४ (भा.)
उपांग ८/१०२
उर्ध्वजानु अधःशिर ८/२७२, १०/४३, ४४

ऋ

ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी ८/१८७, २००-२०४
ऋषि ९/१४९ (भा.) २४९, २५०, २४९-२५० (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए

एकेन्द्रिय ८/१०७-११० (भा.), ११६, १२४, १२७
एकोरुक द्वीप ९/७

ऐ

ऐर्यापथिकी बंध ८/३०२-३०८, ३१४, ३०२-३१४ (भा.)
ऐर्यापथिकी क्रिया १०/११-१४, ११-१४ (भा.)
ऐषणीय ८/२४५, २४७, २४५-२४७ (भा.)

ओ

ओघा देश ८/१८४-१८८ (भा.)

औ

औत्पत्तिकी बुद्धि ८/१८४-१८८ (भा.)
औदयिक ८/१८४-१८८ (भा.)
औदारिक ८/१ (भा.)
औपशमिक ८/१८४-१८८ (भा.)

क

कंबल ८/२५०, २४८-२५० (भा.)
करण ८/२३७, २३७-२४० (भा.), २७३-२७६, २७८, २८०-२८२, २८६-२९०
कर्म ८/१३९-१४६ (भा.), २४१-२४२ (भा.), ३०२-३१४ (भा.), ४७७-४९८, ९/१२६, १२८, १३०, १२५-१३२ (भा.) ११/६-११ (भा.)
कर्मज ८/४३-८४ (भा.)
कर्म-प्रकृति ८/४७७-४८४, ४७७-४८४ (भा.)
कर्म-प्रकृति के प्रकार ८/३१५
कर्म बन्ध ८/१ (भा.)
कर्मवाद ९/१२५-१३२ (भा.)
कर्म शरीर ८/२२२-२२३ (भा.), २६८-२६९
कर्मादान ८/२४२, २४१-२४२ (भा.)
कषाय ८/१७६-१८२, ९/४३ (भा.), १०/११-१४, ११-१४ (भा.)
काय ८/११८, ११९, १७७
काय योगी ८/७६
काया ८/२३७, २३६-२४० (भा.)
कायिकी ८/२२८, २२८ (भा.), २५८-२६९ (भा.) २७४
काल ८/१८४-१९१, ११/१७५-१७६
काल के प्रकार ११/११९-१३०, ११९-१३० (भा.)
कालातिक्रांत ९/२२४ (भा.)
कालोदधि २/४, ३-५ (भा.)
किल्बिष ११/१ (भा.)
कूटस्थ नित्यवाद ८/४३-८४ (भा.)
कृतलक्षण २/१६६ (भा.)
कृतार्थ ९/१६६ (भा.)
कृष्ण लेश्या ८/१७८
केवलज्ञान ८/९६ (भा.), ९७, ९८, १०४, ११४ (भा.) १५०, १६२, १६१-१६२ (भा.), १६५ (भा.) १७३, १८२, १८८, १८४-१८८ (भा.) १९२-१९९ (भा.) २००-२०४ (भा.) २१०, २१२, २१४, २०८-२१४ (भा.)
केवलज्ञान लब्धि ८/१५५
केवलज्ञानी ८/१६५, १६९, १७१, १९७, १९२-१९९ (भा.), २०२, २०५-२०७ (भा.) ३०१ (भा.)
केवलदर्शन ८/१७५
केवली ८/९६, ९६ (भा.) १८२-१८३ (भा.) ९/९-३२, ५२-५४, १२४, २३१
केवलीगम्य ८/२४५-२४७ (भा.)
केवली समुद्घात ८/१८२-१८३ (भा.)
क्रमवाद ८/१८४-१८८ (भा.)
क्रिया ८/२२८, २२८ (भा.), २५८-२६९, ९/२५८-२६२, १०/११-१४, ११-१४ (भा.)
क्रियावाद ८/४४९-४५० (भा.)
क्षपक श्रेणी ८/३०२-३१४ (भा.), ९/४६ (भा.)
क्षय ८/१३९-१४६ (भा.), ९/३०, ३२
क्षयोपशम ८/१३९-१४६ (भा.) ९/१०, १२, १४, १६, १८, २०, २२, २४, २६, २८, ३२, ५३
क्षायिक ८/१८४-१८८ (भा.)
क्षायोपशमिक ८/१३९-१४६ (भा.), १८४-१८८ (भा.), १९२-१९९ (भा.)
क्षुल्लक प्रतर ८/१८७
क्षुल्लकहिमवंत वर्षधर पर्वत ९/७
क्षेत्र ८/१८४-१९१
क्षेत्रलोक के प्रकार ११/९१-९७, १००-१०१, १०४-१०५, १०८

ग

गंधापाति पर्वत ९/५०
गति ८/१८४-१८८ (भा.)
गतिप्रवाद ८/२९२-२९३
गतिप्रवाद के प्रकार ८/२९३
गम्यमान ८/२९१-२९२
गर्भ का पोषण ११/१४५, १४६
गर्भ-संहरण ९/१४८ (भा.)
गुणविरमण ८/२३१, २३४
गृहपति ८/२४८-२५१, २५४
गोच्छग ८/२५०, २४८-२५० (भा.)

घ

घ्राणेन्द्रिय ८/१६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च

चक्षु दर्शन ८/१७४
चतुरिन्द्रिय ८/१०८, १०७-११० (भा.), ११६, १२४, १६६-१६८ (भा.)
चतुर्याम धर्म ९/१३३-१३४, १३३-१३५ (भा.)
चरम ८/२२५-२२६, २२४-२२६ (भा.)
चरित्र लब्धि ८/१६१, १६२, १६२ (भा.)
चरित्राचरित्र ८/१६३
चाक्षुष प्रत्यक्ष ८/९६ (भा.)
चारित्र मोहनीय ८/३२०, ३२१, ३१५-३१८ (भा.)
चारित्राराधना ८/४५१-४६६ (भा.)
चार्वाक दर्शन ८/४३-८४ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
चुल्लपट्टक ८/२५०, २४८-२५० (भा.)
चौदहपूर्वी ८/३०१ (भा.)
च्यवन ८/१८४-१८८ (भा.)

छ

छद्मस्थ ८/९६,९६ (भा.) ३२५ (भा.), ३१५-३२८ (भा.) ९/२३३, २३०-२३४ (भा.)
छद्मस्थ मुनि ८/१८२-१८३ (भा.)
छेदोपस्थापनीय ८/१६१-१६२ (भा.)

ज

जम्बूद्वीप ११/७८, ७९
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ९/१
जय धवला ८/१८४-१८८ (भा.)
जिन ८/९६
जिह्वेन्द्रिय ८/१७१
जिह्वेन्द्रिय लब्धि ८/१७०
जीत व्यवहार ८/३०१, ३०१ (भा.)
जीव-प्रदेश ८/२२२, २२३, २२२-२२३ (भा.), ४७६
जीवभिगम ९/३, ४, ७
ज्योतिष्क ९/८५
ज्योतिष्चक्र ८/१८७
ज्ञान ८/९६, ९६ (भा.), १०४-११३, १११-११३ (भा.), ११५-११८, १२४-१२९, १४७-१७५, १८०, १८३, १८४-१८८ (भा.), १८९-१९१ (भा.), १९२-१९९ (भा.)
ज्ञान के प्रकार ८/९७-१०३
ज्ञान लब्धि ८/१४७
ज्ञानावरण ८/९६ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
ज्ञानवाद ८/४४९-४५० (भा.)
ज्ञानाराधना ८/४५१-४६६ (भा.)
ज्ञानावरणीय कर्म ८/३१७, ३१८, ३१५-३२८ (भा.)
ज्ञानी ८/१०४-१३७, १४७-१८३, १९२, १९२-१९९ (भा.)

त

तत्पाक्षिक (स्वयंबुद्ध) ९/९-३२, ५२-५४
तत्ववेत्ता ८/१८४-१८८ (भा.)
तपःकर्म ८/२५१, २५४
तापस ११/४९, ७२
तिर्यंच ८/११२, १३२
तिर्यक् गतिक ८/१११-११३ (भा.)
तिर्यक् योनिक ८/१०२, १२५, १२८
तिर्यक्योनिक प्रवेशनक ९/१०२-१०६
तिलोयपण्णत्ति ११/९० (भा.)
तीर्थंकर की वाणी ९/१४९ (भा.)
तीस अकर्मभूमि ८/१८७
तेजस शरीर ८/२२२-२२३ (भा.),२६८-२६९
त्रसकायिक ८/११८
त्रीन्द्रिय ८/१०८, १०७-११० (भा.) ११६, १६६-१६८ (भा.)

द

दत्त ८/२७८-२८०
दर्शन ८/९६, १६०
दर्शन लब्धि ८/१५९, १६०, १५९-१६० (भा.)
दर्शनाराधना ८/४५१-४६६ (भा.)
दशपूर्वी ८/३०१ (भा.)
दान ८/१६५ (भा.), २४५-२४७ (भा.)
दान लब्धि ८/१६४, १६५
दिगम्बर ८/१८४-१८८ (भा.)
दिवस ११/१२०-१२५
दिशा १०/१-७, १-७ (भा.)
दिशा के प्रकार १०/३
दिशाचक्रवाल तप ११/४९, ४९ (भा.), ६३, ७१, ७७
दुःख १०/१६-१७
देवगतिक ८/१११-११३ (भा.)
देवप्रवेशनक ९/११४-११९
देशविराधक ८/४५०, ४४९-४५० (भा.)
देशाराधक ८/४५०, ४४९-४५० (भा.)
दोष प्रतिसेवना १०/१९-२१ (भा.)
दोहद ११/१४५
द्रव्य ८/१७३, १८२, १८४-१९१, १८४-१८८ (भा.), ४७०, ४७४
द्वीन्द्रिय ८/१०८, १०७-११० (भा.) ११६, १६६-१६८ (भा.), ९/८४

ध

धर्म देशना ९/१४९ (भा.)
धर्मान्तरायिक कर्म ९/१४, ९-३२ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मास्तिकाय ८/९६, ९६ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
धातकी खंड ९/४, ३-५ (भा.), ११/८०
धारणा ८/१०१, ९७-१०३ (भा.), ३०१, ३०१ (भा.)

न

नन्दी ८/१०२, १८४-१८८ (भा.)
नपुंसक वेद ८/१८१
नरक ८/१०५ (भा.), १११, ११३
नामकर्म ८/१२०-१२२ (भा.)
निरयगतिक ८/१११-११३ (भा.)
निर्ग्रंथ ८/२३०-२३५ (भा.) २४८-२५४, ३०१
निर्ग्रन्थ प्रवचन ९/१७७, १७७ (भा.), १७८
निर्ग्रन्थिनी ८/२५४
निर्जरा ८/२४५-२४७, २४५-२४७ (भा.)
निश्चयनय ८/२५६-२५७ (भा.)
नैरयिक ८/१०५, १२४-१३४, २५८-२६९ (भा.), ९/७९, ८७-१०१, ११९-१२२, १२५-१२६, १०/१६-१७, ११/१३०
नैरयिक प्रवेशनक ९/८७-१०१
नो कर्म बन्ध ८/१ (भा.)
नो पर्याप्तक नो अपर्याप्तक ८/१३०
नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक ८/१३७
नो संज्ञी नो असंज्ञी ८/१३८
नो सूक्ष्म नो बादर ८/१२२, १२०-१२२ (भा.)

प

पंचमुष्टि लोच ९/२१४ (भा.)
पंचेन्द्रिय ८/१०६ (भा.), १०९, १०७-११० (भा.) ११६, १२५, १२८, १८७
पंडकवन ९/५०
पंडितवीर्य लब्धि ८/१६५, १६५ (भा.)
पद्मलेश्या ८/१७८
पन्द्रह कर्म भूमि ८/१८७
परऋद्धि १०/२३
परमाणु ८/१ (भा.), ४७०-४७४ (भा.)
परमाणु पुद्गल ८/९६, ९६ (भा.)
परमाधोवधिक ८/१८४-१८८ (भा.)
परमावधि ८/१८४-१८८ (भा.)
परिग्रह ८/२४०
परिष्ठापन ८/२४८-२५०
परीषह ८/३१६-३२८, ३१५-३२८ (भा.), १०/१८
परीषह के प्रकार ८/३१६
परोक्ष ८/३०१ (भा.)
परोक्षज्ञान ८/१८४-१८८ (भा.)
पर्यव ८/२०८-२१४, २०८-२१४ (भा.)
पर्याप्त ८/३१-३९, १०७-११० (भा.), १२३-१२५
पर्याप्तक ८/१८-२१, २३-२६, ३०
पल्योपम ८/१८७, ११/१२९, १३२
पांच महाभूत ८/४३-८४ (भा.)
पातंजल योग दर्शन ८/४३-८४ (भा.)
पातंजलयोग सूत्र ८/१८४-१८८ (भा.)
पात्र ८/२५०
पान ८/२४५-२४७
पाप ८/२४५-२४७ (भा.)
पापकर्म ८/२४५-२४७, २७४-२८१
पारिग्रहिकी ८/२२८, २२८ (भा.)
पारिणामिक ८/१८४-१८८ (भा.)
पारितापनिकी ८/२२८, २५८-२६९ (भा.)
पिण्ड ८/२४८, २४९, २४८-२५० (भा.)
पुद्गल ८/४९९-५०३
पुद्गल के प्रकार ८/१-८५
पुद्गल परिणाम ८/४६७-४६८
पुद्गलस्कन्ध ८/१ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
पुद्गलास्तिकाय ८/४७०-४७४, ४७०-४७४ (भा.)
पुद्गली ८/४९९-५०३
पुनर्जन्म ९/१२५-१३२ (भा.)
पुरुष ८/४३-८४ (भा.)
पुरुषवेद ८/१८१
पुरुषार्थवाद ८/१ (भा.)
पुष्करवर द्वीप ९/४, ३-५ (भा.)
पुष्करोद समुद्र ९/५, ३-५ (भा.)
पृथ्वीकायिक ८/१०७, ११६, ११८, १२०, १२४, १२७, ९/८१, ८३
पौषधोपवास ८/२३१, २३४
प्रकृति ८/४३-८४ (भा.)
प्रज्ञापना ८/९३, ९४, १८४-१८८ (भा.) १९०, २२४-२२६ (भा.) ९/८६ (भा.) १०/९
प्रज्ञापनी भाषा १०/४०, ४० (भा.)
प्रतिक्रमण ८/२३६-२३८, २४०, २३६-२४० (भा.), २५१, ९/१३३-१३५ (भा.)
प्रतिलेखना ८/२४८-२५०
प्रत्यक्ष ८/३०१ (भा.)
प्रत्यनीक के प्रकार ८/२९५-३००, २९५-३०० (भा.)
प्रत्याख्यान ८/२३१, २३२, २३४, २३०-२३५ (भा.), २३६, २३९, २३६-२४० (भा.)
प्रदेश ८/४७५-४७६
प्रमाणातिक्रांत ९/२२४ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण काल ११/११९-१२५
प्रमार्जन ८/२४८-२५०
प्रयोग परिणत ८/१, ७३-७६, ७९-८४
प्रयोग परिणत पुद्गल के प्रकार ८/२-६४
प्रयोग बंध के प्रकार ८/३५४-४३८
प्रवेशनक के प्रकार ९/८६, ८६ (भा.)
प्राणातिपात ८/२३६, २४०, २३६-२४० (भा.)
प्राणातिपात क्रिया ८/२२८, २५८-२६९ (भा.)
प्रादोषिकी ८/२२८, २५८-२६९ (भा.)
प्रासुक ८/२४५, २४७, २४५-२४७ (भा.)

ब

बंध ८/१ (भा.), ३०२-३१४
बंधक ८/४३९-४४७
बंध के प्रकार ८/३४५-४४७
बहुनिर्जरा ८/२४५-२४७ (भा.)
बहुरतवाद ९/२२६-२२९ (भा.)
बालपंडित वीर्य लब्धि ८/१६५, १६५ (भा.)
बालवीर्य लब्धि ८/१६५, १६५ (भा.)
बादर जीव ८/१२१, १२०-१२२ (भा.)
बिछौना ८/२४५-२५० (भा.)
बोधि ९/११, १२, ९/३२ (भा.)
बौद्ध दर्शन ८/४३-८४ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
ब्रह्मचर्यवास ९/१५, १६, ९-३२ (भा.)
ब्रह्माद्वैतवादी ८/४३-८४ (भा.)
ब्राह्मण ११/१८६

भ

भव ८/१३१-१३४
भव प्रत्ययिक ८/१११-११३ (भा.)
भवसिद्धिक ८/१३५
भाव ८/१८४-१९१
भिक्षा ८/२४८-२५१, २५४
भिक्षु १०/१८-२१
भिक्षु प्रतिमा १०/१८, १८ (भा.)

म

मंदर पर्वत ९/७, १०/९९
मज्झिम निकाय ८/१८४-१८८ (भा.)
मति ८/९६ (भा.), ९७-१०३ (भा.), १०४, १०४ (भा.)
मति अज्ञान ८/९९-१०१, १०४, १०७, १०८, ११८, १५३ (भा.) १५८, १७३, १८९, १८९-१९१ (भा.), २००-२०४ (भा.) २१०, २१३, २१४, २०८-२१४ (भा.)
मति अज्ञानी ८/२०३, २०६, २०५-२०७ (भा.)
मन ८/२३७, २३६-२४० (भा.), ११/६-११ (भा.)
मनःपर्यवज्ञान ८/९६ (भा.) ९७, १०४, १५१, १५३, १५३ (भा.), १६१, १६१-१६२ (भा.), १७३, १८३, १८७, १८४-१८८ (भा.), १९२-१९९ (भा.), २००-२०४ (भा.), २०५-२०७ (भा.), २१०, २१२, २१४, ९/५७ (भा.)
मनःपर्यवज्ञान लब्धि ८/१५३
मनःपर्यवज्ञानी ८/१८७, १९६, २०१, २०५, २०७, २०५-२०७ (भा.)
मन योगी ८/१७६
मनुष्य ८/११३, १३३, ११/आमुख
मनुष्यक्षेत्र ८/१८७, ९/४, ३-५ (भा.)
मनुष्य गतिक ८/१११-११३ (भा.)
मनोद्रव्य ८/१८४-१८८ (भा.)
मनुष्यप्रवेशनक ९/१०७-११३
मनोवर्गणा ८/१८७, २००-२०४ (भा.)
मरणकाल ११/११९, १२७
महाव्रत धर्म ९/१३३, १३४, १३३-१३५ (भा.)
महास्वप्न ११/१४२, १४३
महोत्सव ९/१५८ (भा.)
मायाप्रत्ययिकी ८/२२८
मालवंत पर्वत ९/५०
माहन ८/२४५-२४६
मिथ्यात्व ८/१०७-११० (भा.)
मिथ्यादृष्टि ८/१०२, १०४ (भा.), १०५ (भा.), १११-११३ (भा.), १२५ (भा.), १३९-१४६ (भा.), १५९-१६० (भा.) ४४९-४५० (भा.)
मिथ्यादर्शन ८/१५९-१६० (भा.), १८९-१९१ (भा.)
मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया ८/२२८
मिथ्यादर्शन लब्धि ८/१६०
मिश्रदृष्टि ८/१५९-१६० (भा.)
मिश्रधर्म ८/२४५-२४७ (भा.)
मिश्र परिणत ८/१, ७३, ७७, ७९, ८२, ८४
मिश्र परिणत के प्रकार ८/६५, ६६
मीमांसा ८/१८४-१८८ (भा.), ४४९-४५० (भा.)
मुनि ८/१५३ (भा.)
मुहूर्त्त ११/१२०-१२५
मूर्त्त ८/१८४-१८८ (भा.)
मृषा भाषा १०/४०, ४० (भा.)
मृषावाद ८/२४०
मैथुन ८/२४०
मोहनीय कर्म ८/३१७, ३२०, ३१५-३२८ (भा.)

य

यतनावरणीय कर्म ९/१८, ९-३२ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यति ९/१४९ (भा.)
यथाख्यात चरित्र ८/१६२, १६१-१६२ (भा.)
यथायुनिवृत्तिकाल ११/११९, १२६
यष्टि ८/२५०, २४८-२५० (भा.)
युगपत्वाद ८/१८४-१८८ (भा.)
योग ८/१७६, २३७, २३६-२४० (भा.), २७३-२७६, २७८, २८०-२८२, २८६-२९०, ९/३६ (भा.)
योग भाष्य ८/१८४-१८८ (भा.)
योनि के प्रकार १०/१५, १५ (भा.)

र

रजोहरण ८, २५०, २४८-२५० (भा.)
रत्नप्रभा पृथ्वी ८/१८७, २२५
रात्री ११/१२०-१२५
रुचकोद समुद्र ९/३-५ (भा.)
रूपी द्रव्य ८/१८६, १८४-१८८ (भा.)

ल

लब्धि ८/१३९, १३९-१४६ (भा.), ९/३७ (भा.)
लब्धि के प्रकार ८/१३९-१४९, १३९-१४६ (भा.)
लवण समुद्र ९/४, ३-५ (भा.) ७, ११/७९
लाभ ८/२४५-२४७ (भा.)
लेश्या ९/९-३२ (भा.), ३३ (भा.), ३४-५६ (भा.), ११/१२ (भा.)
लेश्यामुक्त ८/१७८
लेश्यायुक्त ८/१७७, १७८
लोक ८/१८६, ९/२३१, २३३, ११/९०, ९० (भा.), ९१-९८, १०२, १०६, १०९, १०९-११० (भा.)
लोकाकाश ८/४७५, ४७६

व

वचन ८/२३७, २३६-२४० (भा.)
वचन योगी ८, १७६
वनस्पति ११/आमुख, ५ (भा.), ६-११ (भा.), ३२ (भा.), ३५ (भा.), ४२-५५ (भा.)
वनस्पति ८/२१६-२२१, २१६-२२१ (भा.)
वनस्पतिकायिक ८/१०७, ११८, १२७,९/८१.८३, २५६-२५७ (भा.)
वर्गणा ८/१८४-१८८ (भा.)
वध ९/२५१-२५२ (भा.)
विकटापाति पर्वत ९/५०
विकलेन्द्रिय ८/१०७-११० (भा.), १६६-१६८ (भा.), २०५-२०७ (भा.)
विग्रहगति ८/१८२-१८३ (भा.)
विचार भूमि ८/२५२
विनय के प्रकार ८/३०१ (भा.)
विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी ८/१८७, २००-२०४ (भा.)
विभंगज्ञान ८/९९, १०३, १११-११३, (भा.), १२५ (भा.), १५३ (भा.), १७३, १९१, १९२-१९९ (भा.), २००-२०४ (भा.), २११, २१३, ९/३३, ११/७१, ७७, ८४, १८७ (भा.), १९५
विभंगज्ञान के प्रकार ८/१०३, १०४
विभंगज्ञान लब्धि ८/१५८
विभंगज्ञानी ८/२०४, २०६, २०७, २०५-२०७ (भा.)
विमोहित १०/२४-३८
विराधक ८/२५१-२५५, २५१-२५५ (भा.)
विराधिका ८/२५४
विवर्तन ८/२५०
विविक्तजीवी ९/२४२, २४३
विशोधन ८/२५०
विस्रसा परिणत ८/१, ७३, ७८, ७९, ८२, ८४
विस्रसा परिणत के प्रकार ८/६५-७२
विस्रसा बंध के प्रकार ८/३४५-३५३
विहार ८/२५३
विहार भूमि ८/२५२
वीचिपथ १०/११-१४ (भा.)
वीर्य ९/१४९ (भा.)
वीर्यान्तराय कर्म ९/९-३२ (भा.)
वेद ८/१८१
वेदन ८/३२३-३२८, ३१५-३२८ (भा.)
वेदना १०/१६-१७
वेदनीय ८/३१७, ३१९, ३१५-३२८ (भा.)
वेदान्त ८/४३-८४ (भा.), १८४-१८८ (भा.)
वैक्रिय शरीर ८/२६८, १०/२३ (भा.)
वैताढ्य पर्वत ९/५०
वैर ९/२५१-२५२ (भा.)
वैशेषिक ८/१८४-१८८ (भा.)
व्यञ्जनावग्रह ८/१०१, ९७-१०३ (भा.)
व्यतिक्रमण १०/२४-३८
व्यवहार ८/३०१ (भा.)
व्यवहार के पांच प्रकार ८/३०१
व्यवहार नय ८/२५६-२५७ (भा.)

श

शब्दापाति पर्वत ९/५०
शय्या-संस्तारक ९/२२५-२२९, २२५-२२९ (भा.)
शरीर ८/१ (भा.), ९/१७२ (भा.), १०/८-९
शारदनम् स्तनित ९/१४९ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलव्रत ८/२३१, २३४
शुक्ललेश्या ८/१७८
शुभकर्म ९/१२८, १२५-१३२ (भा.)
शैलेषी ८/१८२-१८३ (भा.)
श्वेताम्बर ८/१८४-१८८ (भा.)
श्रमण ८/२३०, २३३-२३५ (भा.) २४५-२४६, ३०१
श्रमणों के प्रकार ८/२३०-२३५ (भा.)
श्रमणोपासक ८/२३०, २३१-२३५, २३०-२४० (भा.), २३६, २४२, २४१-२४२ (भा.), २४५, २४७
श्रुत अज्ञान ८/९९, १०२, १०४, १०७, १०८, ११८, १५३ (भा.) १७३, १९०, २००-२०४ (भा.), २१०, २१३, २१४
श्रुत अज्ञानी ८/२०३, २०५-२०७ (भा.)
श्रुत केवली ८/१८४-१८८ (भा.)
श्रुत ज्ञान ८/९६ (भा.), ९७, १०४, १०८, १५१, १५३, १५८, १६३, १७३, १८५, १८४-१८८ (भा.), १९०, २००-२०४ (भा.), २०९, २१२
श्रुत ज्ञानी ८/१९४, २०१, २०५, २०७
श्रुत व्यवहार ८/३०१, ३०१ (भा.)
श्रुतशील ८/४४९, ४४९-४५० (भा.)
श्रुतोपयोग ८/१८४-१८८ (भा.)
श्रुत्वा पुरुष ९/५४, ५५-७५, ५५ (भा.) ५६ (भा.), ५७ (भा.)
श्रोत्रेन्द्रिय ८/१६९
श्रोत्रेन्द्रियलब्धि ८/१६८

ष

षट्खण्डागम ८/९७-१०३ (भा.)
षट् द्रव्य ८/१८४-१८८ (भा.)

स

संज्वलन कषाय ९/६५ (भा.)
संज्ञी ८/१०७-११० (भा.), १११-११३ (भा.) १३८
संयत ८/२४७
संयतासंयत ८/१६५ (भा.)
संयम ९/१७, १८, ९-३२ (भा.)
संयमी ८/१५३ (भा.)
संवर ८/२४०, ९/१९, २०, ९-३२ (भा.)
संवरण ८/२३६, २३८, २३६-२४० (भा.)
संस्तारक ८/२५०
संस्थान ८/१ (भा.), ९७-१०३ (भा.) ११/९५-९९, ९९ (भा.)
संस्थान परिणाम ८/४६९
सकाय ८/११८-११९ (भा.)
सत् ९/१२१, १२१ (भा.) १२३-१२४ (भा.)
समनस्क ८/१८७
समुद्घात ८/२२२-२२३
सम्यक्त्व ८/१०७-११० (भा.), ९/३३, ३३ (भा.), ३४
सम्यक् दर्शन लब्धि ८/१६०
सम्यक् दृष्टि ८/१०४ (भा.), १११-११३ (भा.), १२५ (भा.), १५९-१६० (भा.)
सम्यक् मिथ्यादर्शन लब्धि ८/१६०
सम्यग्दर्शन ८/१८९-१९१ (भा.), १९२-१९९ (भा.), २००-२०४ (भा.)
सर्वज्ञ ८/१८४-१८८ (भा.)
सर्वविराधक ८/१५०, १४९-१५० (भा.)
सर्वाराधक ८/१५०, १४९-१५० (भा.)
सशरीरी ८/११८-११९ (भा.)
सांख्य ८/४३-८४ (भा.), २७१-२८४
सांख्य दर्शन ८/१८४-१८८ (भा.)
सांख्य योग ८/१८४-१८८ (भा.)
सांपरायिक बंध ८/३०२, ३०९-३१४, ३०२-३१४ (भा.)
सांपरायिकी क्रिया १०/११-१४, ११-१४ (भा.)
साकार उपयोग ८/१८४-१८८ (भा.)
साकारोपयुक्त ८/१७२, १७३
साकारोपयोग ९/३७ (भा.)
सागरोपम ८/१९२, ११/१२९, १३२
सामयिक ८/२३०, २३०-२३५ (भा.)
सामायिक चरित्र ८/१६१, १६२, १६२ (भा.)
सास्वादन सम्यक्त्व ८/१०७-११० (भा.)
सास्वादन सम्यक् दर्शनी ८/१६६-१६८ (भा.)
सिद्ध ८/११४, ११४ (भा.), ११८-११९ (भा.), १३४, १६५ (भा.), १७६, १७८, ११/८८, १९८
सिद्धावस्था ८/१८२-१८३ (भा.)
सिद्धिगतिक ८/११४ (भा.)
सुख १०/१६-१७
सूक्ष्म जीव ८/१२०, १२०-१२२ (भा.)
सूक्ष्मसंपराय चारित्र ८/३०२-३१४ (भा.)
सूत्रकृतांग ८/२४५-२४७ (भा.)
सृष्टिवाद ८/४३-८४ (भा.)
सोमनस वन ९/५०
स्त्रीवेद ८/१८१, ९/४२ (भा.)
स्थविर ८/२४८,२४९, २५१, २७३-२९२
स्थण्डिल भूमि ८/२४८-२५०
स्थानांग ८/१८४-१८८ (भा.)
स्वभाववाद ८/१ (भा.)
स्वयंभूरमण ९/५, ३-५ (भा.), ११/७७, ८१
स्वाद्य ८/२४५-२४७

ह

हनन ९/२४६-२४८, २४६-२४८ (भा.), २४९-२५२
हिंसा ८/२८५-२९३, ९/२४६-२४८ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-५

अभयदेवसूरि-कृता भगवती-वृत्ति

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्यं,
सर्व्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्।
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतं,
श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि॥१॥
नत्वा श्रीवर्द्धमानाय, श्रीमते च सुधर्म्मणे।
सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो, वाण्यै सर्वविदस्तथा॥२॥
एतद्टीकाचूर्णी जीवाभिगमादिवृत्तिलेशांश्च।
संयोज्य पञ्चमाङ्गं विवृणोमि विशेषतः किञ्चित्॥३॥

अथ अष्टमशतकम्

प्रथम उद्देशकः

पूर्वं पुद्गलादयो भावाः प्ररूपिताः। इहापि त एव प्रकारान्तरेण प्ररूप्यन्त इत्येवं संबद्धमथाष्टमशतं विव्रियते। तस्य चोद्देशसङ्ग्रहार्थं 'पुग्गले' त्यादिगाथामाह–

पोग्गल त्ति पुद्गलपरिणामार्थः प्रथम उद्देशकः पुद्गल एवोच्यते एवमन्यत्रापि १. आसीविस त्ति आशीविषादिविषयो द्वितीयः २ 'रुक्ख' त्ति संख्यातजीवादिवृक्षविषयस्तृतीयः ३ 'किरिय' त्ति कायिक्यादिक्रियाभिधानार्थश्चतुर्थः ४ 'आजीव' त्ति आजीविकवक्तव्यतार्थः पंचमः ५ 'फासुग' त्ति प्रासुकदानादिविषयः षष्ठः ६ 'अदत्ते' त्ति अदत्तादानविचारणार्थः सप्तमः ७ 'पडिणीय' त्ति गुरुप्रत्यनीकाद्यर्थप्ररूपणार्थोऽष्टमः ८ 'बंध' त्ति प्रयोगबन्धाद्यभिधानार्थो नवमः ९, 'आराहण' त्ति देशाराधनाद्यर्थो दशमः १०॥

८/१. 'पओग्गपरिणय' त्ति जीवव्यापारेण शरीरादितया परिणताः 'मीससापरिणय' त्ति मिश्रकपरिणताः–प्रयोगविस्रसाभ्यां परिणताः। प्रयोगपरिणाममत्यजन्तं विस्रसया स्वभावान्तरमापादिता मुक्तकडेवरादिरूपाः, अथवौदारिकादिवर्गणारूपा विस्रसया निष्पादिताः सन्तो ये जीवप्रयोगेणैकेन्द्रियादिशरीरप्रभृतिपरिणामान्तरमापादितास्ते मिश्रपरिणताः। ननु प्रयोगपरिणामोऽप्येवंविध एव ततः क एषां विशेषः?. सत्यं किन्तु प्रयोगपरिणतेषु विस्रसा सत्यपि न विवक्षिता इति। 'वीससापरिणय' त्ति स्वभावपरिणताः।

अथ 'पओगपरिणयाण'-मित्यादिना ग्रन्थेन नवभिर्दण्डकैः प्रयोगपरिणतपुद्गलान् निरूपयति, तत्र च–

८/४. एकेन्द्रियादिसर्वार्थसिद्धदेवान्तजीवभेदविशेषितप्रयोगपरिणतानां पुद्गलानां प्रथमो दण्डकः। तत्र च 'आउक्काइय-एगिंदिय एवं चेव' त्ति पृथिवीकायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः इव अप्कायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणताः वाच्या इत्यर्थः 'एवं दुयओ' त्ति पृथिव्यप्कायप्रयोगपरिणतेष्विव द्विको–द्विपरिणामो द्विप्रादेशो वा भेदः–सूक्ष्मबादरविशेषणः कृतस्ते (स्तथा ते) जः कायिकैकेन्द्रियप्रयोगपरिणतादिषु वाच्य इत्यर्थः।

८/५. 'अणेगविह' त्ति पुलाककृमिकादिभेदत्वाद् द्वीन्द्रियाणां, त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधाः कुन्थुपिपीलिकादिभेदत्वात्तेषां, चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधा एव मक्षिकामशकादि-भेदत्वात्तेषाम्। एतदेव सूचयन्नाह–'एवं तेइंदी' त्यादि॥

'सुहुमपुढविकाइए' इत्यादि सर्वार्थसिद्धदेवान्तः पर्याप्तका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्तकविशेषणो द्वितीयो दण्डकः, तत्र 'एक्केक्के' त्यादि एकैकस्मिन् काये सूक्ष्मबादरभेदाद्द्विद्विविधाः पृद्गला वाच्याः, ते च प्रत्येकं पर्याप्तकापर्याप्तकभेदात्पुनर्द्विविधा वाच्या इत्यर्थः॥

८/१८. 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरौदारिकादिशरीरविशेषण-स्तृतीयो दण्डकः।

८/२७. तत्र च 'ओरालियसरीरप्पओगपरिणय' त्ति औदारिकतैजसकार्मणशरीराणां यः प्रयोगस्तेन परिणता ये ते तथा, पृथिव्यादीनां हि एतदेव शरीरत्रयं भवतीति कृत्वा तत्प्रयोगपरिणता एव ते भवन्ति, बादरपर्याप्तकवायूनां त्वौदारिकवर्जशरीरचतुष्टयं भवतीतिकृत्वाऽऽह–नवरं 'जे पज्जत्ते' त्यादि।

८/३०. 'एवं गब्भवक्कंतिया वि अपज्जत्तग' त्ति वैक्रियाहारक-शरीराभावाद् गर्भव्युत्क्रान्तिका अप्यपर्याप्तका मनुष्यास्त्रिशरीरा एवेत्यर्थः॥

'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरिन्द्रियविशेषणश्चतुर्थो दण्डकः॥

'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी'त्यादिरौदारिकादिशरीरस्पर्शा-दीन्द्रियविशेषणः पञ्चमः॥

'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादि वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थान-विशेषणः षष्ठः ६॥

एवमौदारिकादिशरीरवर्णादिभावविशेषणः सप्तमः ७॥

इन्द्रियवर्णादिविशेषणोऽष्टमः ८॥

शरीरेन्द्रियवर्णादिविशेषणो नवम इति, अत एवाह–एते नव दण्डकाः॥

८/४१. मिश्रपरिणतेष्वप्येत एव नव दण्डका इति॥

अथ विस्रसापरिणतपुद्गलांश्चिन्तयति–

८/४२. 'वीससापरिणया णं' मित्यादि, 'एवं जहा पन्नवणाए' त्ति तत्रैवमिदं सूत्रं–'जे रूवपरिणया ते पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा–तित्तरसपरिणया एवं कडुयकसायअंबिलमहुररसपरिणया, जे फासपरिणया ते अट्ठविहा प० तं०–कक्खडफासपरिणया एवं मउयगरुयलहुयसीयउसिणणिद्धलुक्खफासपरिणया य' इत्यादि॥

अथैक पुद्गलद्रव्यमाश्रित्य परिणामं चिन्तयन्नाह–

८/४३,४४. 'एगे' इत्यादि, 'मणप्पओगपरिणए' त्ति मनस्तया परिणतमित्यर्थः 'वइप्पयोगपरिणए' त्ति भाषाद्रव्यं काययोगेन गृहीत्वा वाग्योगेन निसृज्यमानं वाक्प्रयोगपरिणतमित्युच्यते 'कायप्पओगपरिणए' त्ति औदारिकादिकाययोगेन गृहीत-मौदारिकादिवर्गणाद्रव्यमौदारिकादिकायतया परिणतं काय-प्रयोगपरिणतमित्युच्यते।

८/४५. 'सच्चमणे' त्यादि सद्भूतार्थचिन्तननिबन्धनस्य मनसः प्रयोगः सत्यमनःप्रयोग उच्यते, एवमन्येऽपि, नवरं मृषा–असद्भूतोऽर्थः सत्यमृषा–मिश्रो यथा पञ्चसु दारकेषु जातेषु दश दारका जाता इति, असत्यमृषा–सत्यमृषास्वरूप-मतिक्रान्तो यथा देहीत्यादि।

८/४६. 'आरंभसच्चे' त्यादि, आरम्भो–जीवोपघातस्तद्विषयं सत्य-मारम्भसत्यं तद्विषयो यो मनःप्रयोगस्तेन परिणतं यत्तथा, एवमुत्तरत्रापि नवरमनारम्भो–जीवानुपघातः 'संरंभे' त्ति संरम्भो–वधसङ्कल्पः समारम्भस्तु परिताप इति।

८/४९-७२. 'ओरालिए' त्यादि, औदारिकशरीरमेव पुद्गलस्कन्ध-रूपत्वेनोपचीयमानत्वाद् काय औदारिकशरीरकायस्तस्य यः प्रयोगः औदारिकशरीरस्य वा यः कायप्रयोगः स तथा। अयं च पर्याप्तकस्यैव वेदितव्यस्तेन यत् परिणतं तत्तथा। 'ओरालिय-मिस्ससरीरकायप्पयोगपरिणए' त्ति औदारिकमुत्पत्तिकालेऽ-सम्पूर्णं सत् मिश्रं कार्म्मणेनेति औदारिकमिश्रं तदेवौदारिक-मिश्रकं तल्लक्षणं शरीरमौदारिकमिश्रकशरीरं तदेव कायस्तस्य यः प्रयोगः औदारिकमिश्रकशरीरस्य वा यः कायप्रयोगः स औदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगस्तेन परिणतं यत्तथा, अयं पुनरौदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगोऽपर्याप्तकस्यैव वेदितव्यः, यत आह–

'जोएण कम्मएणं आहारेई अणंतरं जीवो।
तेण परं मीसेणं जाव सरीरस्स निप्फत्ती॥१॥'

(उत्पत्त्यनन्तरं जीवः कार्मणेन योगेनाहारयति ततो यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः (शरीरपर्याप्तिः) तावदौदारिक-मिश्रेणाहारयति॥१॥)

एवं तावत् कार्म्मणेनौदारिकशरीरस्य मिश्रता उत्पत्तिमाश्रित्य तस्य प्रधानत्वात्, यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः पर्याप्तबादरवायुकायिको वा वैक्रियं करोति तदा औदारिककाययोग एव वर्त्तमानः प्रदेशान् वैक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानुपादाय यावद वैक्रिय-शरीरपर्याप्त्या न पर्याप्तिं गच्छति तावद्वैक्रियेणौदारिकशरीरस्य मिश्रता, प्रारम्भकत्वेन तस्य प्रधानत्वात्, एवमाहार-केणाप्यौदारिकशरीरस्य मिश्रता वेदितव्येति, 'वेउव्विय-सरीरकायप्पओगपरिणए' त्ति इह वैक्रियशरीरकायप्रयोगो वैक्रियपर्याप्तकस्येति। 'वेउव्वियमीससरीरकायप्पओग-परिणए' त्ति, इह वैक्रियमिश्रकशरीरकायप्रयोगो देवनार-केषूत्पद्यमानस्यापर्याप्तकस्य, मिश्रता चेह वैक्रियशरीरस्य कार्मणेनैव, लब्धिवैक्रियपरित्यागे त्वौदारिकप्रवेशाद्यावा-औदारिकोपादानाय प्रवृत्ते वैक्रियप्राधान्यादौदारिकेणापि वैक्रियस्य मिश्रतेति। 'आहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए' त्ति इहाहारकशरीरकायप्रयोग आहारकशरीरमिर्वृत्तौ सत्यां तदानीं तस्यैव प्रधानत्वात्। 'आहारगमीससरीरकायप्पओगपरिणए' त्ति इहाहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग आहारकस्यौदारिकेण मिश्रतायां, स चाहारकत्यागेनौदारिकग्रहणाभिमुखस्य, एतदुक्तं भवति–यदाऽऽहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यजति यावत्सर्वथैवाहारकं तावदौदारिकेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सह मिश्रतेति, ननु तत्तेन सर्वथाऽमुक्तं पूर्वनिर्वर्तितं तिष्ठत्येव तत्कथं गृह्णाति?, सत्यं तिष्ठति तत् तथाऽप्यौदारिकशरीरोपादानार्थं प्रवृत्त इति गृह्णात्येवेत्युच्यत इति। 'कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए' त्ति इह कार्म्मणशरीरकायप्रयोगो विग्रहे समुद्घातगतस्य च केवलिनस्तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भवति। उक्तं च–'कार्म्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये वे' ति, एवं प्रज्ञापनाटीकानुसारेणौदारिकशरीरकायप्रयोगादीनां व्याख्या, शतकटीकाऽनुसारतः पुनर्मिश्रकायप्रयोगाणामेवं–औदारिकमिश्र औदारिक एवापरिपूर्णो मिश्र उच्यते, यथा गुडमिश्रं दधि, न गुडतया नापि दधितया व्यपदिश्यते तत् ताभ्यामपरिपूर्णत्वात्, एवमौदारिकं मिश्रं कार्मणेनैव नौदारिकतया नापि कार्म्मणतया व्यपदेष्टुं शक्यमपरिपूर्णत्वादिति तस्यौदारिकमिश्रव्यपदेशः, एवं वैक्रियाहारकमिश्रावपीति। नवरं 'बायरवाउक्काइए' इत्यादि, यथौदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणते सूक्ष्मपृथिवीकायिकादि प्रतीत्यालापकोऽधीतस्तथौदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगपरिणतेऽपि वाच्यो, नवरमयं विशेषः–तत्र सर्वेऽपि सूक्ष्मपृथिवीकायिकादयः पर्याप्तापर्याप्तविशेषणा अधीताः इह तु बादरवायुकायिका गर्भजपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याश्च पर्याप्तकापर्याप्तकविशेषणा अध्येतव्याः, शेषस्त्वपर्याप्तकविशेषणा एव, यतो बादरवायुकायिकादीनां पर्याप्तकावस्थायामपि वैक्रियारम्भणत औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगो लभ्यते, शेषाणां पुनरपर्याप्तकावस्थायामेवेति। 'जहा ओगाहणसंठाणे' त्ति प्रज्ञापनायामेकविंशतितमपदे, तत्र चैवमिदं सूत्रं–'जइ वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं सुहुमवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए बादरवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए?, गोयमा! नो सुहुम जाव परिणए बायर जाव परिणए' इत्यादीति।

'एवं जहा ओगाहणसंठाणे' त्ति तत्र चैवमिदं सूत्रं–'गोयमा! णो असण्णिपंचिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए मणुस्साहारगसरीरकायप्पओगपरिणए' इत्यादि। 'एवं जहा ओगाहणासंठाणे कम्मगस्स भेओ' त्ति स चायं भेदः–'बेइंदियकम्मासरीरकायप्पओगपरिणए वा एवं तेइंदियचउरिंदिय' इत्यादिरिति॥

अथ द्रव्यद्वयं चिन्तयन्नाह–

८/७३. 'दो भंते!' इत्यादि, इह प्रयोगपरिणतादिपदत्रये एकत्वे त्रयो विकल्पाः, द्विकयोगेऽपि त्रय एवेत्येवं षट्।

८/७४. एवं मनःप्रयोगादित्रयेऽपि।

८/७५. सत्यमनःप्रयोगपरिणतादीनि तु चत्वारि पदानि तेष्वेकत्वे चत्वारि द्विकयोगे तु षट् एवं सर्वेऽपि दश।

८/७६. आरम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणतादीनि च षट् पदानि, तेष्वेकत्वे षट् द्विकयोगे तु पञ्चदश सर्वेऽप्येकविंशतिः ६, एकत्वे १-२-३-४-५-६॥ द्वित्वे १५

१-२	२-३	३-४	४-५	५-६
१-३	२-४	३-५	४-६	(१५)
१-४	२-५	३-६		
१-५	२-६			
१-६				

सूत्रे च 'अहवा एगे आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए' इत्यादिनेह द्विकयोगे प्रथम एव भङ्गको दर्शितः शेषास्तदन्यपदसम्भवांश्चातिदेशेन पुनर्दर्शयतोक्तम्–'एवं एएणं गमेणं' इत्यादि एवमेतेन गमेनारम्भसत्यमनःप्रयोगादिपदप्रदर्शितेन द्विकसंयोगेन नेतव्यं समग्रं द्रव्यद्वयसूत्रं, द्विकसंयोगस्य चैकत्वविकल्पाभिधानपूर्वकत्वादेकत्वविकल्पैश्चेति दृश्यं, तत्र च यत्रारम्भसत्यमनःप्रयोगादिपदसमूहे यावन्तो द्विकसंयोगा उनिष्ठन्ते सर्वे ते तत्र भणितव्याः, तत्र चारम्भसत्यमनःप्रयोगा दर्शिता एव, आरम्भादिपदषट्कविशेषितेषु पुनरित्थमेव त्रिषु मृषामनःप्रयोगादिषु, चतुर्षु च सत्यवाक्प्रयोगादिषु तु प्रत्येकमेकत्वे षड् विकल्पाः द्विकसंयोगे तु पञ्चदशेत्येवं प्रत्येकमेवमेव सर्वेष्वप्येकविंशतिः, औदारिकशरीरकायप्रयोगादिषु तु सप्तसु पदेष्वेकत्वे सप्त द्विकयोगे त्वेकविंशतिरित्येवमष्टाविंशतिरिति (एकत्वे १-२-३-४-५-६-७ द्वित्वे २१।

१-२	२-३	३-४	४-५	५-६	६-७
१-३	२-४	३-५	४-६	५-७	
१-४	२-५	३-६	४-७		
१-५	२-६	३-७			
१-६	२-७				
१-७					

एवमेकेन्द्रियादिपृथिव्यादिपदप्रभृतिभिः पूर्वोक्तक्रमेणौदारिकादिकायप्रयोगपरिणतद्रव्यद्वयं प्रपञ्चनीयं, कियद्दूरं यावत्? इत्याह–'जाव सव्वट्ठसिद्धगं' ति एतच्चैवं–'जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचेंदियकम्मासरीरकायप्पओगपरिणया किं पज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणया अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणया वा? गोयमा! पज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणया वा अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणया वा। अहवा एगे पज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणए एगे अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध जाव परिणए' त्ति।

८/७८. 'एवं वीससापरिणयावि' त्ति एवमिति–प्रयोगपरिणतद्रव्यद्वयवत्प्रत्येकविकल्पैर्द्विकसंयोगैश्च विस्रसापरिणते अपि द्रव्ये वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानेषु पञ्चादिभेदेषु वाच्ये, कियद्दूरं यावत्? इत्याह–'जाव अहवेगे' इत्यादि, अयं च पञ्चभेदसंस्थानस्य दशानां द्विकसंयोगानां दशम इति॥

अथ द्रव्यत्रयं चिन्तयन्नाह–

८/७९. 'तिन्नी' त्यादि, इह प्रयोगपरिणतादिपदत्रये एकत्वे त्रयो विकल्पाः द्विकसंयोगे तु षट्, कथम्?, आद्यस्यैकत्वे शेषयोः क्रमेण द्वित्वे द्वौ तथाऽऽद्यस्य द्वित्वे शेषयोः क्रमेणैकत्वेऽन्यौ द्वौ ४ तथा द्वितीयस्यैकत्वे तृतीयस्य च द्वित्वेऽन्यः ५ तथा द्वितीयस्य द्वित्वे तृतीयस्य चैकत्वेऽन्यः ६ इत्येवं षट्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिकयोगेत्येक एवेत्येवं सर्वे दश, एवं मनःप्रयोगादिषदन्येऽपि, अत एवाह–'एवमेक्कगसंजोगो' इत्यादि, सत्यमनःप्रयोगादीनि तु चत्वारि पदानीत्यत एकत्वे चत्वारो द्विकसंयोगे तु द्वादश। कथम्?, आद्यस्यैकत्वेन शेषाणां त्रयाणां क्रमेणानेकत्वेन त्रयो लब्धाः, पुनरन्ये त्रय आद्यस्यानेकत्वेन शेषाणां त्रयाणां क्रमेणैकत्वेन ६, तथा द्वितीयस्यैकत्वेन शेषयोः क्रमेणानेकत्वेन द्वौ, पुनर्द्वितीयस्यानेकत्वेन शेषयोः क्रमेणैवैकत्वेन द्वावेव तृतीयचतुर्थयोरेकत्वानेकत्वाभ्यामेकः पुनर्विपर्ययेणैक इत्येवं द्वादश त्रिकयोगे तु चत्वार इत्येवं सर्वेऽपि विंशतिरिति। सूत्रे तु कांश्चिदुपदर्श्य शेषानतिदेशत आह–'एवं दुयासंजोगो' इत्यादि, 'एत्थवि नहेव' त्ति अत्रापि द्रव्यत्रयाधिकारे तथैव वाच्यं सूत्रं यथा द्रव्यद्वयाधिकारे उक्तं, तत्र च मनोवाक्कायप्रभेदतो यः प्रयोगपरिणामो मिश्रतापरिणामो वर्णादिभेदनश्च विस्रसापरिणाम उक्तः स इहापि वाच्य इति भावः, किमन्तं तत्सूत्रं वाच्यम्? इत्याह–'जावे' त्यादि, इह च परिमण्डलादीनि पञ्च पदानि तेषु चैकत्वे पञ्च विकल्पाः द्विकसंयोगे तु विंशतिः, कथम्?, आद्यस्यैकत्वे शेषाणां च क्रमेणानेकत्वे तथाऽऽद्यस्यानेकत्वे शेषाणां तु क्रमेणैवैकत्वे एवं द्वितीयस्यैकत्वेऽनेकत्वे च शेषत्रयस्य चानेकत्वे एकत्वे च षट् तथा तृतीयस्यैकत्वे च द्वयोश्चानेकत्वे एकत्वे च चत्वारः तथा चतुर्थस्यैकत्वेऽनेकत्वे च पञ्चमस्य चानेकत्वे एकत्वे च द्वावित्येवं सर्वेऽपि विंशतिः, त्रिकयोगे तु दश। अत्र च 'अहवा एगे तंससंठाणे' इत्यादिना त्रिकयोगानां दशमो दर्शित इति। अथ द्रव्यचतुष्कमाश्रित्याह–'चत्तारि भंते!' इत्यादि, इह प्रयोगपरिणतादित्रये एकत्वे त्रयो द्विकसंयोगे तु नव कथम्? आद्यस्यैकत्वे द्वयोश्च क्रमेण त्रित्वे द्वौ, तथाऽऽद्यस्य द्वित्वे द्वयोरपि क्रमेणैव द्वित्वेऽन्यौ द्वौ, तथाऽऽद्यस्य त्रित्वे द्वयोश्च क्रमेणैवैकत्वेऽन्यौ द्वौ, तथा द्वितीयस्यैकत्वेऽन्यस्य त्रित्वे तथा द्वयोरपि द्वित्वे तथा द्वितीयस्य त्रित्वेऽन्यस्य चैकत्वे त्रयोऽन्ये इत्येवं सर्वेऽपि नव त्रययोगे तु त्रय एव भवन्तीत्येवं सर्वेऽपि पञ्चदश इति।

८/८०. 'जइ पओगपरिणया किं मणप्पओगे' त्यादिना चोक्तशेषम्।

८/८२. द्रव्यचतुष्कप्रकरणमुपन्यस्तं, तच्च पूर्वोक्तानुसारेण संस्थानसूत्रान्तमुचितभङ्गकोपेतं सप्तरन्तगण्टेयमिति।

अथ पञ्चादिद्रव्यप्रकरणान्यतिदेशतो दर्शयन्नाह–

८/८३. 'एवं एएण' मित्यादि, एवं चाभिलापः–'पंच भंते! दव्वा किं पओगपरिणया ३?, गोयमा! पओगपरिणया ३ अहवा एगे पओगपरिणए चत्तारि मीसापरिणया' इत्यादि. इह च द्विकसंयोगे विकल्पा द्वादश, कथम्?, एकं चत्वारि च १ द्वे त्रीणि च २ त्रीणि द्वे च ३ चत्वार्येकं च ४ इत्येवं चत्वारो विकल्पा द्रव्यपञ्चक-माश्रित्यैकत्र द्विकसंयोगे पदत्रयस्य त्रयो द्विकसंयोगास्ते च चतुर्भिर्गुणिता द्वादशेति, त्रिकयोगे तु षट्, कथम्?, त्रीण्येकमेकं च १ एकं त्रीण्येकं च २ एकमेकं त्रीणि च ३ द्वे द्वे एकं च ४ द्वे एकं द्वे च ५ एकं द्वे द्वे च ६ इत्येवं षट्, 'जाव दससंजोएणं' ति इह यावत्करणाच्चतुष्कादिसंयोगाः सूचिताः, तत्र च द्रव्य-पञ्चकापेक्षया सत्यमनःप्रयोगादिषु चतुर्षु पदेषु द्विकत्रिकचतुष्कसंयोगा भवन्ति, तत्र च द्विकसंयोगाश्चतुर्विंशतिः २४, कथम्?, चतुर्णां पदानां षट् द्विकसंयोगाः, तत्र चैकैकस्मिन् पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो विकल्पाः षण्णां च चतुर्भिर्गुणने (च) चतुर्विंशतिरिति, त्रिकसंयोगा अपि चतुर्विंशतिः, कथम्?, चतुर्णां पदानां त्रिकसंयोगाश्चत्वारः एकैकस्मिंश्च पूर्वोक्तक्रमेण षड्विकल्पाः, चतुर्णां च षड्भिर्गुणने चतुर्विंशतिरिति, चतुष्कसंयोगे तु चत्वारः, कथम्?, आदौ द्वे त्रिषु चैकैकं १ तथा द्वितीयस्थाने द्वे शेषेषु चैकैकं २ तथा तृतीये स्थाने द्वे शेषेषु चैकैकं ३ तथा चतुर्थे द्वे शेषेषु चैकैकम् ४ इत्येवं चत्वार इति, एकेन्द्रियादिषु तु पञ्चसु पदेषु द्विकचतुष्कपञ्चकसंयोगा भवन्ति, तत्र च द्विकसंयोगाश्चत्वारिंशत्, कथम्?, पञ्चानां पदानां दश द्विकसंयोगाः एकैकस्मिंश्च द्विकसंयोगे पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो विकल्पा दशानां च चतुर्भिर्गुणने चत्वारिंशदिति, त्रिकसंयोगे तु षष्टिः कथम्?, पञ्चानां पदानां दश त्रिकसंयोगाः एकैकस्मिंश्च त्रिकसंयोगे पूर्वोक्तक्रमेण षट् विकल्पाः दशानां च षड्भिर्गुणने षष्टिरिति, चतुष्कसंयोगास्तु विंशतिः, कथम्?, पञ्चानां पदानां तु चतुष्कसंयोगे पञ्च विकल्पा एकैकस्मिंश्च पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो भङ्गाः पञ्चानां चतुर्भिर्गुणने विंशतिरिति, पञ्चकसंयोगे त्वेक एवेति, एवं षट्कादिसंयोगा अपि वाच्याः, नवरं षट्कसंयोग आरम्भसत्यमनःप्रयोगादिपदान्याश्रित्य सप्तकसंयोगस्त्वौदारिकादिकायप्रयोगमाश्रित्य अष्टकसंयोगस्तु व्यन्तरभेदान् नवकसंयोगस्तु ग्रैवेयकभेदान् दशकसंयोगस्तु भवनपतिभेदानाश्रित्य वैक्रियशरीरकायप्रयोगापेक्षया समवसेयः, एकादशसंयोगस्तु सूत्रे नोक्तः, पूर्वोक्तपदेषु तस्यासम्भवात्, द्वादशसंयोगस्तु कल्पोपपन्नदेवभेदानाश्रित्य वैक्रियशरीरकायप्रयोगापेक्षया वेति। 'पवेसणं' ति नवमशतकसत्कतृतीयोद्देशके गाङ्गेयाभिधानानगारकृतनरकादिगतप्रवेशनविचारे, कियन्ति तदनुसारेण द्रव्याणि वाच्यानि? इत्याह–'जाव असंखेज्जे' ति असंख्येयान्तनारकादिवक्तव्यताश्रयं हि तत्सूत्रम्, इह तु यो विशेषस्तमाह–'अणंता' इत्यादि, एतदेवाभिलापतो दर्शयन्नाह–'जाव अणंत' इत्यादि॥

अथैतेषामेवाल्पबहुत्वं चिन्तयन्नाह–

८/८४. 'एएसि ण' मित्यादि, 'सव्वत्थोवा पुग्गला पओगपरिणय' त्ति कायादिरूपतया, जीवपुद्गलसम्बन्धकालस्य स्तोकत्वात्, 'मीसापरिणया अणंतगुण' त्ति कायादिप्रयोगपरिणतेभ्यः सकाशान्मिश्रकपरिणता अनन्तगुणाः, यतः प्रयोगकृतमाकार-

१. यद्यपि नवमे शतके द्वात्रिंशत्तमोद्देशके वक्तव्येऽपि तथाऽपि उत्पातोद्वर्तनारूप्याधिकारद्वयानन्तरं प्रवेशनकस्य तृतीयस्य भावात् द्वात्रिंशत्तमोद्देशकस्य तृतीये उद्देश-विभागापरनामके इदं ज्ञेयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मपरित्यजन्तो विस्रसया ये परिणामान्तरमुपागता मुक्तकडेवराद्यवयवरूपास्तेऽनन्तानन्ताः, विस्रसापरिणतास्तु तेभ्योऽप्यनन्तगुणाः, परमाण्वादीनां जीवागृहणप्रायोग्याणामप्यनन्तत्वादिति॥

अष्टमशते प्रथमः॥८-१॥

द्वितीय उद्देशकः

प्रथमे पुद्गलपरिणाम उक्तो, द्वितीये तु स एवाशीविषद्वारेणोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यादिसूत्रम्–

८/८६,८७. 'कइविहे' त्यादि, 'आसीविसे' त्ति 'आशीविषाः' दंष्ट्राविषाः 'जाइआसीविसे' त्ति जात्या–जन्मना-ऽऽशीविषा जात्याशीविषाः 'कम्मआसीविसे' त्ति कर्म्मणा–क्रियया शापादिनोपघातकरणेनाशीविषाः कर्माशीविषाः। तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च कर्माशीविषाः पर्याप्तका एव, एते हि तपश्चरणानुष्ठानेनेऽन्यतो वा गुणतः खल्वाशीविषा भवन्ति, शापप्रदानेनैव व्यापादयन्तीत्यर्थः, एते चाशीविषलब्धिस्वभावत् सहस्रारान्तदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते, देवास्त्वेत एव ये देवत्वेनोत्पन्नास्तेऽपर्याप्तकावस्थायामनुभूतभावतया कर्म्माशीविषा इति, उक्तञ्च शब्दार्थभेदसम्भवादि भाष्यकारेण–

'आसी' दाढा तग्गयमहाविसाऽऽसीविसा दुविहभेया।
ते कम्मजाइभेएण णेगहा चउविहविगप्पा॥१॥'

८/८८-९१. 'केवइए' त्ति कियान् 'विसए' त्ति गोचरो विषयस्येति गम्यम् 'अद्धभरहप्पमाणमेत्तं' ति अर्द्धभरतस्य यत् प्रमाणं–सातिरेकत्रिषष्ट्यधिकयोजनशतद्वयलक्षणं तदेव मात्रा–प्रमाणं यस्याः सा। तथा तां 'बोंदिं' ति तनुं 'विसेणं' ति विषेण स्वकीयाशीप्रभवेण करणभूतेन 'विसपरिगयं' ति विषं भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य विषतां परिगता-प्राप्ता विषपरिगतः-ऽतस्ताम्, अत एव 'विसट्टमाणिं' ति विकसन्तीं-विदलन्तीं। 'करेत्तए' त्ति कर्तुं विसए से' त्ति गोचरोऽसौ, अथवा 'से' तस्य वृश्चिकस्य 'विसट्ठयाए' त्ति विषमेवार्थो विषार्थस्तद्भावस्तत्ता तस्या विषार्थतायाः–विषत्वस्य तस्यां वा 'नो चेव' नैवेत्यर्थः 'संपत्तीए' त्ति संपत्त्या एवंविधबोन्दिसंप्राप्तिद्वारेण 'करिंसु' त्ति अकार्षुर्वृश्चिका इति गम्यते, इह चैकवचनप्रक्रमेऽपि बहुवचननिर्देशो वृश्चिकाशीविषाणां बहुत्वज्ञापनार्थम्, एवं कुर्वन्ति करिष्यन्तीत्यपि, त्रिकालनिर्देशश्चामीषां वैकालिकत्वज्ञापनार्थः, 'समयक्खेत्तं' ति 'समयक्षेत्रं' मनुष्यक्षेत्रम

८/९३. 'एवं जहावेउव्वियगमगस्स भेउ' त्ति यथा वैक्रिय भणना जीवभेदो भणितस्तथेहापि वाच्योऽसावित्यर्थः, स चायं–'गोयमा' नो संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, जइ गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे असंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे?, गोयमा! संखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे नो असंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे, जइ संखेज्ज जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसंखेज्ज जाव कम्मासीविसे अपज्जत्तसंखेज्ज जाव कम्मासीविसे?, गोयमा!' शेषं लिखितमेवास्ति।

एतच्चोक्तं वस्तु अज्ञानी न जानाति, ज्ञान्यपि कश्चिद्दश वस्तूनि कथञ्चिच्च जानातीति दर्शयन्नाह–

८/९६. 'दसे' त्यादि, 'स्थानानि' वस्तूनि गुणपर्यायाश्रितत्वात्, छद्मस्थ इहावध्याद्यतिशयविकलो गृह्यते, अन्यथाऽमूर्त्तत्वेन धर्मास्तिकायादीनजानन्नपि परमाण्वादि जानात्येवासौ, मूर्त्तत्वात्तस्य, समस्तमूर्त्तविषयत्वाच्चावधिविशेषस्य। अथ सर्वभावेनेत्युक्तं ततश्च तत् कथञ्चिज्जानन्नप्यनन्तपर्यायतया न जानातीति, सत्यं, केवलमेवं दर्शेति संख्यानियमो व्यर्थः स्यात्, घटादीनां सुबहूनामर्थानामेकेन्द्रियेण सर्वपर्यायतया ज्ञातुमशक्यत्वात्, सर्वभावेन च साक्षात्करेण–चक्षुःप्रत्यक्षेणेति हृदयं, श्रुतज्ञानादिना त्वसाक्षात्कारेण जानात्यपि, 'सीवं असरीरपडिबद्धं' ति देहविमुक्तं सिद्धमित्यर्थः, 'परमाणुपुग्गलं' ति परमाणुश्चासौ पुद्गलश्चेति, उपलक्षणमेतत्तेन द्व्यणुकादिकमपि कश्चिन्न जानातीति, अयमिति–प्रत्यक्षः कोऽपि प्राणी जिनो–वीतरागो भविष्यति न वा भविष्यतीति नवमम् ९, 'अयं' मित्यादि च दशमम्॥ उक्तव्यतिरेकमाह–'एयाणं' त्यादि, 'सव्वभावेन जाणइ' त्ति सर्वभावेन साक्षात्कारेण जानाति केवलज्ञानेनेति हृदयम्॥

जानातीत्युक्तमतो ज्ञानसूत्रम्–

८/९७. तत्र च 'आभिणिबोहियनाणे' त्ति अर्थाभिमुखोऽविपर्ययरूपत्वात् नियतोऽसंशयरूपत्वाद्बोधः–संवेदनमभिनिबोधः स एव स्वार्थिकेकप्रत्ययोपादानादाभिनिबोधिकं, ज्ञानिर्ज्ञायते वाऽनेनेति ज्ञानम्, आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चेति आभिनिबोधिकज्ञानम्–इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तो बोध इति। 'सुयनाणे' त्ति श्रूयते तदिति श्रुतं–शब्दः स एव ज्ञानं भावश्रुतकारणत्वात् कारणे कार्योपचारात् श्रुतज्ञानं, श्रुताद्याशब्दात् ज्ञानं श्रुतज्ञानम्–इन्द्रियमनोनिमित्तः श्रुतग्रन्थानुसारी बोध इति। 'ओहिणाणे' त्ति अवधीयते–अधोऽधो विस्तृतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः स एव ज्ञानम् अवधिना वा–मर्यादया मूर्तद्रव्याण्येव जानाति नेतराणीति व्यवस्थया ज्ञानमवधिज्ञानं 'मणपज्जवनाणे' त्ति मनस्सामान्यमानमनोद्रव्याणां पर्यवः–परिच्छेदो मनःपर्यवः स एव ज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं मनःपर्यायाणां वा तत्तदवस्थाविशेषाणां ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्। 'केवलनाणे' त्ति केवलमेकं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात् शुद्धं वा आवरणमलकलङ्करहितत्वात्। सकलं वा–तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणाभावतः सम्पूर्णोत्पत्तेः असाधारणं वाऽनन्यसदृशत्वात् अनन्तं वा ज्ञेयानन्तत्वात्। यथाऽवस्थिता-

१. अत्र्यो दंष्ट्राभ्यां दंष्ट्रासु वा विषं आशीविषास्ते कर्मजातिभेदेन द्विविधाः कर्माशीविषा अनेकविधः जात्याशीविषाश्चतुर्विधास्तेषां विकल्पाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासीति भावना तच्च तत् ज्ञानं चेति केवलज्ञानम्।

८/९,८. 'उग्गहो' त्ति सामान्यार्थस्य-अशेषविशेषनिरपेक्षस्यानिर्देश्यस्य रूपादेः अव इति-प्रथमतो ग्रहणं-परिच्छेदनमवग्रहः 'ईह' त्ति सदर्थविशेषालोचनमीहा। 'अवाओ' त्ति प्रक्रान्तार्थविनिश्चयोऽवायः। 'धारणे' त्ति अवगतार्थविशेषधरणं धारणा। 'एवं जहे' त्यादि, 'एवम्' उक्तक्रमेण यथा राजप्रश्नकृते द्वितीयोपाङ्गे ज्ञानानां भेदो भणितस्तथैवेहापि भणितव्यः।

स चैवम्-

८/१०१. 'से किं तं उग्गहे?, उग्गहे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा-अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य' इत्यादिरिति, यच्च वाचनान्तरे श्रुतज्ञानाधिकारे यथा नन्द्यामङ्गप्ररूपणेत्यभिधाय 'जाव भविअभविया तत्तो सिद्धा असिद्धा य' त्युक्तं तस्यायमर्थः-श्रुतज्ञानसूत्रावयवाने किल नन्द्यां श्रुतविषयं दर्शयतेदमभिहितम्-'इच्चेयंमि दुवालसंगे गणिपिडए अणंता भावा अणंता अभावा जाव अणंता भवसिद्धिया अणंत अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंता असिद्धा पन्नत्ते' ति, अस्य च सूत्रस्य या षडग्रहगाथा-

'भावमभावा' हेउमहेउ कारणमकारणा जीवा।
अजीव भवियाऽभविया तत्तो सिद्धा असिद्धा य॥१॥'

इत्येवंरूपा तस्याः खण्डमिदमेतदन्तं श्रुतज्ञानसूत्रमिहाध्येयमिति॥ ज्ञानविपर्ययस्त्वज्ञानमिति तत्सूत्रम्-तत्र च 'अन्नाणे' ति नञः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं, कुत्सितत्वं च मिथ्यात्वसंयुक्तत्वात्, उक्तञ्च-

'अविसेसिया' मइच्चिय सम्मद्दिट्ठिस्स सा मइन्नाणं।
मइअन्नाणं मिच्छदिट्ठिस्स सुयंपि एमेव॥१॥'

'विभंगणाणे' त्ति विरुद्धो भङ्गः-वस्तुविकल्पो यस्मिंस्तद्विभङ्गं तच्च तज्ज्ञानं च अथवा विरूपो भङ्गः-अवधिभेदो विभङ्गः स चासौ ज्ञानं चेति विभङ्गज्ञानम्, इह च कुत्साविभङ्गशब्देनैव गमितेति न ज्ञानशब्दो नञा विशेषितः, 'अत्थोग्गहे य' ति अर्थ्यत इत्यर्थस्तस्यावग्रहः अर्थावग्रहः-सकलविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यार्थग्रहणमेकसामयिकमिति भावार्थः, 'वंजणोग्गहे य' ति व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपनेव घट इति व्यञ्जनं तच्चोपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतद्रव्यसङ्घातो वा, ततश्च व्यञ्जनेन-उपकरणेन्द्रियेण व्यञ्जनानां वा-शब्दादिपरिणतद्रव्याणामवग्रहो व्यञ्जनावग्रहः अत्रार्थावग्रहस्य सुलक्ष्यत्वात् सकलेन्द्रियार्थव्यापकत्वाच्च प्रथममुपन्यासः, 'एवं जहेवे' त्यादि, यथैवाभिनिबोधिकज्ञानमधीतं तथैव मत्यज्ञानमप्यध्येयं, तच्चैवम्-'से किं तं वंजणोग्गहे?, २ चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा-सोइंदियवंजणोग्गहे घाणिंदियवंजणोग्गहे जिब्भिंदियवंजणोग्गहे फासिंदियवंजणोग्गहे' इत्यादि, यश्चेह विशेषस्तमाह-'नवरं एगिंदियवज्जं ति इहाभिनिबोधिकज्ञानं 'उग्गहणया अवधारणया सवणया अवलंबणया मेहा' इत्यादीनि (पञ्च) पञ्च पञ्चैकार्थिकान्यवग्रहादीनामधीतानि, मत्यज्ञाने तु न तान्यध्येयानीति भावः, 'जाव नोइंदियधारणा' त्ति इदमन्त्यपदं यावदित्यर्थः।

८/१०२. 'जं इमं अन्नाणिएहिं' ति यदिदम् 'अज्ञानिकैः' निर्ज्ञानैः, तत्रात्यज्ञानभावाद्यथनवदशीलवद्भा सम्यग्दृष्टयोऽप्य-ज्ञानिकाः प्रोच्यन्तेऽत एवाह-मिथ्यादृष्टिभिः, 'जहा नंदीए' ति, तत्रेयमेतत्सूत्रम्-'सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं तं जहा-भारहं रामायणं' मित्यादि, तत्रावग्रहेहे बुद्धिः अवायधारणे च मतिः, स्वच्छन्देन-स्वाभिप्रायेण तत्त्वतः सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं-स्वबुद्धिकल्पनाशिल्पनिर्मितमित्यर्थः 'चत्तारि य वेए' त्ति साम ऋक् यजुः अथर्वा चेति 'संगोवंगे' ति इहाङ्गानि-शिक्षादीनि षट् उपाङ्गानि च-तद्व्याख्यानरूपाणि।

८/१०३. 'गामसंठिए' त्ति ग्रामालम्बनत्वाद् ग्रामाकारम्, एवमन्यान्यपि, नवरं 'वासंसंठिए' त्ति भरतादिवर्षाकारं 'वासहरसंठिए' त्ति हिमवदादिवर्षधरपर्वताकारं 'हयसंठिए' अश्वाकारं, 'पसय' त्ति पसयसंठिए, तत्र पसयः-आटव्यो द्विखुरश्चतुष्पदविशेषः, एवं च नानाविधसंस्थानसंस्थितमिति॥

अनन्तरं ज्ञानान्यज्ञानानि चोक्तानि, अथ ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च निरूपयन्नाह-

८/१०४. 'जीवा णं भंते!' इत्यादि'

८/१०५. इह च नारकाधिकारे 'जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी' ति सम्यग्दृष्टिनरकाणां भवप्रत्ययमवधिज्ञानमस्तीतिकृत्वा ते नियमात्रिज्ञानिनः। 'जे अन्नाणी ते अत्थेगतिया दुअन्नाणी अत्थेगतिया तिअन्नाणी' ति. कथम्?, उच्यते, असंज्ञिनः सन्तो ये नारकेषूत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तकावस्थायां विभङ्गाभावादाद्यमेवाज्ञानद्वयमिति ते द्व्यज्ञानिनः ये तु मिथ्यादृष्टिसंज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते तेषां भवप्रत्ययो विभङ्गो भवतीति ते त्र्यज्ञानिनः। एतदेव निगमयन्नाह-'एवं तिन्नि अन्नाणाणि भयणाए' ति।

८/१०८. 'बेइंदियाण' मित्यादि, द्वीन्द्रियाः केचित् ज्ञानिनोऽपि सास्वादनसम्यगदर्शनभावेनापर्याप्तकावस्थायां भवन्तीत्यत उच्यते। 'नाणावि अन्नाणीवि' त्ति॥

अनन्तरं जीवादिषु षड्विंशतिपदेषु ज्ञान्यज्ञानिनश्चिन्तिताः, अथ तान्येव गतीन्द्रियकायादिद्वारेषु चिन्तयन्नाह-

८/१११. 'निरयगइया णं' मित्यादि, गत्यादिद्वाराणि चैतानि

---

१. भावा अभावा हेतवोऽहेतवः कारणान्यकारणानि जीवा अजीवा भव्या अभव्यास्ततः सिद्धा असिद्धाः॥ (द्वादशाङ्गीरूपगणिपिटके)।

२. अविशेषिता मतिरेव सा सम्यग्दृष्टेर्मतिज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्मत्यज्ञानं श्रुतमप्येवमेव॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गइइंदिए[1] य काए सुहुमे पज्जत्तए भवत्थे य।
भवसिद्धिए य सन्नी लद्धी उवओग जोगे य॥१॥
लेसा कसाय वेए आहारे नाणगोयरे काले।
अंतर अप्पाबहुयं च पज्जवा चेह दाराइं॥२॥

तत्र च निरये गतिः--गमनं येषां ते निरयगतिकास्तेषाम्, इह च सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वा ये पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्यो नरके उत्पत्तुकामा अन्तरगतौ वर्त्तन्ते ते निरयगतिका विवक्षिताः। एतत्प्रयोजनत्वाद्विग्रहणस्येति, 'तिन्नि नाणाइं नियम' ति अवधेर्भवप्रत्ययत्वेनान्तरगतावपि भावात् 'तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए' त्ति असंज्ञिनां नरके गच्छतां द्वे अज्ञाने अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात् संज्ञिनां तु मिथ्यादृष्टीनां त्रीण्यज्ञानानि भवप्रत्ययविभङ्गस्य सद्भावाद् अतस्त्रीण्यज्ञानानि भजनयेत्युच्यत इति।

८/११२. 'तिरियगइया णं' ति तिर्यक्षु गतिः--गमनं येषां ते तिर्यग्गतिकास्तेषां तदपान्तराल्वर्त्तिनां 'दो नाण'त्ति सम्यग्दृष्टयो ह्यवधिज्ञाने प्रपतिते एव तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेषां द्वे एव ज्ञाने 'दो अन्नाणे' ति मिथ्यादृष्टयोऽपि हि विभङ्गज्ञाने प्रतिपतिते एव तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेषं द्वे अज्ञाने इति।

८/११३. 'मणुस्सगइया णं' इत्यादौ, 'तिन्नि नाणाइं भयणाए' ति मनुष्यगतौ हि गच्छन्तः केचिज्ज्ञानिनोऽवधिना सहैव गच्छन्ति तीर्थङ्करवत् केचिच्च तद्विमुच्य तेषां त्रीणि वा द्वे वा ज्ञाने स्यातामिति। ये पुनरज्ञानिनो मनुष्यगतावुत्पत्तुकामास्तेषां प्रतिपतित एव विभङ्गे तदुत्पत्तिः स्यादित्यत उक्तं 'दो अन्नाणाइं नियम' ति। 'देवगइया जहा निरयगइय' त्ति देवगतौ ये ज्ञानिनो यातुकामास्तेषामवधिर्भवप्रत्ययो देवायुःप्रथमसमय एवोत्पद्य-तेऽतस्तेषां नारकाणामिवोच्यते, 'तिन्नि नाणाइं नियम' ति। ये त्वज्ञानिनस्तेऽसंज्ञिभ्य उत्पद्यमाना द्वयज्ञानिनः, अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात् संज्ञिभ्य उत्पद्यमानास्त्र्यज्ञानिनो भवप्रत्यय-विभङ्गस्य सद्भावाद् अतस्तेषां नारकाणामिवोच्यते--'तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए' त्ति।

८/११४. 'सिद्धिगइया णं' इत्यादि, यथा सिद्धाः केवलज्ञानिन एव एवं सिद्धिगतिका अपि वाच्या इति भावः, यद्यपि च सिद्धानां सिद्धिगतिकानां चान्तरगत्यभावान्न विशेषोऽस्ति तथापीह गतिद्वारबलायातत्वात्ते दर्शिताः, एवं द्वारान्तरेष्वपि परस्परान्तरभवेऽपि तत्तद्विशेषापेक्षयाऽपौनरुक्त्यं भावनीयमिति॥

अथेन्द्रियद्वारे--

८/११५. 'सइंदिये' त्यादि, 'सेन्द्रियाः' इन्द्रियोपयोगवन्तस्ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ज्ञानिनः चत्वारि ज्ञानानि भजनया स्यात् द्वे स्यात् त्रीणि स्याच्चत्वारि, केवलज्ञानं तु नास्ति तेषाम्, अतीन्द्रियज्ञानत्वात्तस्य, द्व्यादिभावश्च ज्ञानानां लब्ध्यपेक्षया, उपयोगापेक्षया तु सर्वेषामेकैकमेव ज्ञानम्। अज्ञानिनां तु त्रीण्यज्ञानानि भजनयैव--स्यात् द्वे स्यात् त्रीणीति।

८/११६. 'जहा पुढविकाइय' त्ति एकेन्द्रिया मिथ्यादृष्टित्वादज्ञानिनस्ते च द्व्यज्ञाना एवेत्यर्थः। 'बेइंदिये' त्यादि, एषां द्वे ज्ञाने, सास्वादनस्तेषूत्पद्यत इतिकृत्वा, सास्वादनश्चोत्कृष्टतः षडावलिकामानोऽतो द्वे ज्ञाने तेषु लभ्येत इति।

८/११७. 'अणिंदिय' त्ति केवलिनः॥

कायद्वारे--

८/११८. 'सकाइया णं' इत्यादि, सह कायेन--औदारिकादिना शरीरेण पृथिव्यादिषट्कायान्यतरेण वा कायेन ये ते सकायास्त एव सकायिकाः, ते च केवलिनोऽपि स्युरिति सकायिकानां सम्यग्दृशां पञ्च ज्ञानानि मिथ्यादृशां तु त्रीण्यज्ञानानि भजनया स्युरिति।

८/११९. 'अकाइया णं' ति नास्ति कायः--उक्तलक्षणो येषां तेऽकायास्त एवाकायिकाः सिद्धाः॥

सूक्ष्मद्वारे--

८/१२०. 'जहा पुढविकाइय' त्ति द्व्यज्ञानिनः सूक्ष्मा मिथ्यादृष्टित्वादित्यर्थः 'जहा सकाइय' त्ति बादराः केवलिनोऽपि भवन्तीतिकृत्वा ते सकायिकवद्भजनया पञ्चज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनश्च वाच्या इति।

पर्याप्तकद्वारे--

८/१२३. 'जहा सकाइय' त्ति पर्याप्तकाः केवलिनोऽपि स्युरिति ते सकायिकवत्पूर्वोक्तप्रकारेण वाच्याः।

८/१२४. पर्याप्तकद्वार एव चतुर्विंशतिदण्डके पर्याप्तकनारकाणां 'तिन्नि नाणा नियम' त्ति अपर्याप्तकानामेवासंज्ञिनारकाणां विभङ्गाभाव इति पर्याप्त-कावस्थायां तेषामज्ञानत्रयमेवेति। 'एवं जाव चउरिंदिय'त्ति द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तका द्व्यज्ञानिन एवेत्यर्थः।

८/१२५. 'पज्जत्ता णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खे' त्यादि, पर्याप्तकपञ्चेन्द्रियतिरश्चामवधिर्विभङ्गो वा केषाञ्चिन्स्यात्केषाञ्चित्पुनर्नेति त्रीणि ज्ञानान्यज्ञानानि वा द्वे वा ज्ञाने अज्ञाने वा तेषां स्यानामिति।

८/१२८. 'बेइंदियाणं दो नाणे' त्यादि, अपर्याप्तकद्वीन्द्रियादीनां केषाञ्चित्सास्वादनसम्यग्दर्शनस्य सद्भावाद् द्वे ज्ञाने केषाञ्चित्पुनस्तस्यासद्भावाद्वे एवाज्ञाने।

८/१२९. अपर्याप्तकमनुष्याणां पुनः सम्यग्दृशामवधिभावे त्रीणि ज्ञानानि यथा तीर्थकराणां, तदभावे तु द्वे ज्ञाने, मिथ्यादृशां तु द्वे एवाज्ञाने, विभङ्गस्यापर्याप्तकत्वे तेषामभावात्। अत एवोक्तं 'तिन्नि नाणाइं भयणाए दो अन्नाणाइं नियम' त्ति। 'वाणमंतरे' त्यादि, व्यन्तरा अपर्याप्तका नारका इव त्रिज्ञाना द्व्यज्ञानास्त्र्यज्ञाना वा वाच्याः, तेष्वप्यसंज्ञिभ्य उत्पद्यमानानामपर्याप्तकानां

---

१. गतय एकेन्द्रियादिः पृथ्वीकायादिः सूक्ष्मः पर्याप्तः भवस्थश्च भवसिद्धिकश्च संज्ञी लब्धिरुपयोगो योगश्च॥१॥ लेश्या कषायः वेदः आहारः ज्ञानविषयः कालः अन्तरम् अल्पबहुत्वं च पर्यायाश्चेह द्वाराणि॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभङ्गाभावात् शेषाणां चाज्ञेर्विभङ्गस्य वा भावात् 'जोइसिए' त्यादि. एतेषु हि सञ्ज्ञिभ्य एवोत्पद्यन्ते, तेषां चापर्याप्तकत्वेऽपि भवप्रत्यय-स्यावधेर्विभङ्गस्य चावश्यम्भावात् त्रीणि ज्ञानान्यज्ञानानि वा स्युरिति।

८/१३०. 'नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तग' त्ति सिद्धाः॥

भवस्थद्वारे--

८/१३१. 'निरयभवत्था ण' मित्यादि, निरयभवे तिष्ठन्तीति निरयभवस्थाः--प्राप्तोत्पत्तिस्थानाः, ते च यथा निरयगति-कास्त्रिज्ञाना द्व्यज्ञानास्त्र्यज्ञानाश्चोक्तास्तथा वाच्या इति॥

भवसिद्धिक द्वारे--

८/१३५. 'जहा सकाइय' त्ति भवसिद्धिकाः केवलिनोऽपीति ते सकायिकवद्भजनया पञ्चज्ञानाः तथा यावत्सम्यक्त्वं न प्रतिपन्नास्तावद्भजनयैव त्र्यज्ञानाश्च वाच्या इति।

८/१३६. अभवसिद्धिकानां त्वज्ञानत्रयं भजनया स्यात् सदा मिथ्यादृष्टित्वात्तेषामत उक्तं 'नो नाणी अन्नाणी' त्यादीति।

सञ्ज्ञिद्वारे--

८/१३८. 'जहा सइंदिय' त्ति ज्ञानानि चत्वारि भज्यन्ते अज्ञानानि च त्रीणि तथैवेत्यर्थः। 'असन्नी जहा बेइंदिय' त्ति अपर्याप्तकावस्थायां ज्ञानद्वयमपि सास्वादनतया स्यात्, पर्याप्तकावस्थायां त्वज्ञानद्वयमेवेत्यर्थः॥

लब्धिद्वारे लब्धिभेदान् दर्शयन्नाह--

८/१३९. 'कतिविहा ण' मित्यादि, तत्र लब्धिः--आत्मनो ज्ञानादिगुणानां तत्तत्कर्मक्षयादितो लाभः। सा च दशविधा, तत्र ज्ञानस्य-विशेषबोधस्य पञ्चप्रकारस्य तथाविधज्ञानावरण-क्षयक्षयोपशमाभ्यां लब्धिर्ज्ञानलब्धिः, एवमन्यत्रापि, नवरं च दर्शनं--रुचिरूप आत्मनः परिणामः चारित्रं--चारित्रमोहनीय-क्षयक्षयोपशमोपशमजो जीवपरिणामः, तथा चरित्रं च तदचरित्रं चेति चरित्राचरित्रं--संयमासंयमः, तच्चाप्रत्याख्यानकषाय-क्षयोपशमजो जीवपरिणामः, दानादिलब्धयस्तु पञ्चप्रकारान्तरायक्षयक्षयोपशमसम्भवः, इह च सकृद्भोजनमशनादीनां भोगः, पौनःपुन्येन चोपभोजनमुपभोगः, स च वस्त्राभवनादेः, दानादीनि तु प्रसिद्धानीति, तथा इन्द्रियाणां--स्पर्शनादीनां मतिज्ञानावरणक्षयोपशमसम्भूतानामेकेन्द्रियादिजातिनाम-कर्मोदयनियमितक्रमाणां पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धानां द्रव्यभावरूपाणां लब्धिरात्मनीतीन्द्रियलब्धिः॥

अथ ज्ञानलब्धेर्विपर्ययभूताऽज्ञानलब्धिरित्यज्ञानलब्धि-निरूपणायाह--

८/१४१. 'अन्नाणलद्धी' त्यादि॥

८/१४२. 'सम्मद्दंसणे' त्यादि, इह सम्यग्दर्शनं मिथ्यात्वमोहनीय-कर्माणुवेदनोपशम १, क्षय २, क्षयोपशम ३, समुत्थ आत्म-परिणामः, मिथ्यादर्शनमशुद्धमिथ्यात्वदलिकोदयसमुत्थो जीव-परिणामः, सम्यग्मिथ्यादर्शनं त्वर्द्धविशुद्धमिथ्यात्वदलिकोदय-समुत्थ आत्मपरिणाम एव॥

८/१४३. 'सामाइयचरित्तलद्धि' त्ति सामायिकं--सावद्ययोगविरतिरूपं एतदेव चरित्रं सामायिकचरित्रं तस्य लब्धिः सामायिक-चरित्रलब्धिः, सामायिकचरित्रं च द्विधा--इत्वरं यावत्कथिकं च, तत्राल्पकालमित्वरं, तच्च भरतैरावतेषु प्रथमपश्चिमतीर्थ-करतीर्थेष्वनारोपितव्रतस्य शिक्षकस्य भवति, यावत्कथिकं तु यावज्जीविकं, तच्च मध्यमबैदेहिकतीर्थङ्करतीर्थान्तर्गत-साधूनामवसेयं, तेषामुपस्थापनाया अभावात्, नन्वितरस्यापि यावज्जीवनिया प्रतिज्ञानात् तस्यैव चोपस्थापनायां परित्यागात् कथं न प्रतिज्ञालोपः?, अत्रोच्यते, अतिचाराभावात्, तस्यैव सामान्यतः सावद्ययोगनिवृत्तिरूपेणावस्थितस्य शुद्धयन्तरा-दानेन सञ्ज्ञामात्रविशेषादिति। 'छेओवट्ठावणियचरित्तलद्धि' त्ति छेदे--प्राक्तनसंयमस्य व्यवच्छेदे सति यदुपस्थापनीयं--साधावारोप्णीयं तच्छेदोपस्थापनीयं, पूर्वपर्यायच्छेदेन महाव्रतानामारोपणमित्यर्थः, तच्च सातिचारमनतिचारं च, तत्रानतिचारमित्वरसामायिकस्य शिक्षकस्यारोप्यते, तीर्थान्तरसङ्क्रान्तौ वा, यथा पार्श्वनाथतीर्थाद्वर्द्धमानस्वामि-तीर्थं सङ्क्रामतः पञ्चयामधर्मप्रतिपत्तौ, सातिचारं तु मूलगुण-घातिनो यद्व्रतारोपणं, तच्च तत्चरित्रं च छेदोपस्थापनीयचरित्रं तस्य लब्धिश्छेदोपस्थापनीयचरित्रलब्धिः 'परिहारविसुद्धिय-चरित्तलद्धि' त्ति परिहारः--तपोविशेषस्तेन विशुद्धिर्यस्मिंस्तत्-परिहारविशुद्धिकं, शेषं तथैव, एतच्च द्विविधं--निर्विशमानकं निर्विष्टकायिकं च, तत्र निर्विशमानकास्तदासेवकास्त-दव्यतिरेकात्तदपि निर्विशमानकम्, आसेवितविवक्षित चारित्र-कायास्तु निर्विष्टकायास्त एव निर्विष्टकायिकास्तद-व्यतिरेकात्तदपि निर्विष्टकायिकमिति, इह च नवको गणो भवति, तत्र चत्वारः परिहारिका भवन्ति, अपरे तु तद्वैयावृत्यकराश्चत्वार एवानुपरिहारिकाः, एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुभूत इत्यर्थः एतेषां च निर्विशमानकानामयं परिहारः--

'परिहारियाण' उ तवो जहन्न मज्झो तहेव उक्कोसो।
सीउण्हवासकाले भणियो धीरेहिं पत्तेयं॥१॥
तत्थ जहन्नो गिम्हे चउत्थ छट्ठं तु होइ मज्झिमओ।
अट्ठममिह उक्कोसो एत्तो सिसिरे पवक्खामि॥२॥
सिसिरे उ जहन्नाई छट्ठाइं दसमचरिमगा होंति।
वासासु अट्ठमाइं बारसपज्जन्तओ णेइ॥३॥

१. परिहारिकाणां तपो जघन्यं मध्यमं तथैवोत्कृष्टं।
शीतोष्णवर्षाकाले धीरैः प्रत्येकं भणितम्॥१॥
तत्र जघन्यं ग्रीष्मे चतुर्थः षष्ठं तु भवति मध्यमः।
इहाष्टम उत्कृष्टं इतः शिशिरे प्रवक्ष्यामि॥२॥
शिशिरे तु जघन्यादिषु षष्ठाद्यं दशमचरमं भवति।
वर्षास्वष्टमादि द्वादशमपर्यन्तं नयति ततः॥३॥
पारणके आचाम्लं पञ्चस्वेकस्य ग्रहः द्वयोरभिग्रहो भिक्षायाम्।
कल्पस्थिताश्च प्रतिदिनमाचाम्लमेव कुर्वन्ति॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारणगे आयामं पंचसु गह्ह दोसऽभिग्गहो भिक्खे।
कप्पट्ठिया य पइदिण करेंति एमेव आयामं॥४॥'
इह सप्तस्वेषणासु मध्ये आद्ययोरग्रह एव, पञ्चसु पुनर्ग्रहः, तत्राप्येकतरया भक्तमेकतरया च पानकमित्येवं द्वयोरभिग्रहोऽवगन्तव्य इति।

'एवं' छम्मासतवं चरिउं परिहारिगा अणुचरंति।
अनुचरगे परिहारियपयट्ठिए जाव छम्मासा॥५॥
कप्पट्ठिओवि एवं छम्मासतवं करेइ सेसा उ।
अणुपरिहारिगभावं वयंति कप्पट्ठियत्तं च॥६॥
एवेसो अट्ठारसमासपमाणो उ वण्णिओ कप्पो।
संखेवओ विसेसो सुत्ता एयस्स णायव्वो॥७।
कप्पसमत्तीइ तयं जिणकप्पं वा उवेंति गच्छं वा।
पडिवज्जमाणगा पुण जिणस्सगासे पवज्जंति॥८॥
तित्थयरसमीवासेवगस्स पासे व नो य अन्नस्स।
एएसिं जं चरणं परिहारविसुद्धियं तं तु॥९॥'
अन्यैस्तु व्याख्यातं–परिहारतो मासिकं चतुर्लघ्वादि तपश्चरति यस्तस्य परिहारिकचरित्रलब्धिर्भवतीति, इदं च परिहारतपो यथा स्यात्तथोच्यते–

'नवमस्स' तइयवत्थुं जहन्न उक्कोस ऊणगा दस उ।
सुत्तत्थभिग्गहा पुण दव्वाइ तवो रयणमाती॥१॥'
अयमर्थः– यस्य जघन्यतो नवमपूर्वं तृतीयं वस्तु यावद्भवति उत्कर्षतस्तु दश पूर्वाणि न्यूनानि सूत्रतोऽर्थतो भवन्ति, द्रव्यादयश्चाभिग्रहा रत्नावल्यादिना च तपस्तस्य परिहरतपो दीयते, तद्दाने च निरुपसर्गार्थं कायोत्सर्गो विधीयते, शुभे च नक्षत्रादौ तत्प्रतिपत्तिः, तथा गुरुस्तं ब्रूते–यथाऽहं तव वाचनाचार्यः अयं च गीतार्थः साधुः सहायस्ते, शेषसाधवोऽपि वाच्याः, यथा–

'एस[1] तवं पडिवज्जइ न किंचि आलवइ मा य आलवह।
अत्तट्ठचिंतगस्स उ वाघाओ भे न कायव्वो॥१॥'
तथा कथमहमालापादिरहितः संस्तपः करिष्यामीत्येवं बिभ्यतस्तस्य भयापहारः कार्यः, कल्पस्थितश्च तस्यैतत्करोति–

'किइकम्मं[2] च पडिच्छइ परिन्न पडिपुच्छयंपि से देइ।
सोवि य गुरुमुवचिट्ठइ उदंतमवि पुच्छिओ कहइ॥१॥'
इह परिज्ञा–प्रत्याख्यानं प्रतिपृच्छा त्वान्यापकः, ततोऽसौ यदा ग्लानीभूतः सन्नुत्थानादि स्वयं कर्तुं न शक्नोति तदा भणति–उत्थानादि कर्तुमिच्छामि, ततोऽनुपरिहारकस्तूष्णीक एव तदभिप्रेतं समस्तमपि करोति, आह च–

'उट्ठेज्ज' निसीएज्जा भिक्खं हिंडेज्ज भंडगं पेहे।
कुवियपियबंधवस्स व करेइ इयरोवि तुसिणीओ॥१॥'
तपश्च तस्य ग्रीष्मशिशिरवर्षासु जघन्यादिभेदेन चतुर्थादिद्वादशान्तं पूर्वोक्तमेवेति। 'सुहुमसंपरायचरित्तलद्धि' त्ति संपर्यति–पर्यटति संसारमभिरिति सम्परायाः–कषायाः सूक्ष्मा–लोभांशावशेषरूपाः सम्पराया यत्र तत् सूक्ष्मसम्परायं शेषं तथैव, एतदपि द्विधा–विशुद्ध्यमानकं संक्लिश्यमानकं च, तत्र विशुद्ध्यमानकं क्षपकोपशमकश्रेणिद्वयमारोहतो भवति १ संक्लिश्यमानकं तूपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानस्येति २। 'अहक्खायचरित्तलद्धी' ति यथा–येन प्रकारेण आख्यातं–अभिहितमकषायतयेत्यर्थः तथैव यत्तद्यथाख्यातं, तदपि द्विविधम्–उपशमकक्षपकश्रेणिभेदात्, शेषं तथैवेति॥

८/१४४. एवं 'चरित्ताचरित्ते' त्यादौ, 'एगागार' त्ति मूलगुणोत्तरगुणादीनां तद्भेदानामविवक्षणात् द्वितीयकषायक्षयोपशमलभ्यपरिणाममात्रस्यैव च विवक्षणाच्चरित्राचरित्रलब्धेरेकाकारत्वमवसेयम्। एवं दानलब्ध्यादीनामप्येकाकारत्वं, भेदानामविवक्षणात॥

८/१४५. 'बालवीरियलद्धी' त्यादि, बालस्य–असंयतस्य यद्वीर्यं–असंयमयोगेषु प्रवृत्तिनिबन्धनभूतं तस्य या लब्धिश्चारित्रमोहोदयार्द्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च सा तथा, एतमितरे अपि यथायोगं वाच्ये, नवरं पण्डितः–संयतो, बालपण्डितस्तु संयतासंयत इति॥

८/१४८. 'तस्स अलद्धिया णं' ति तस्य ज्ञानस्य अलब्धिकाः अलब्धिमंतः ज्ञानलब्धिरहिता इत्यर्थः।

८/१५०. 'आभिणिबोहियनाणे' त्यादि, आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिकानां चत्वारि ज्ञानानि भजनया, केवलिनो नास्त्याभिनिबोधिकज्ञानमिति, मतिज्ञानस्यालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्ते केवलिनस्ते चैकज्ञानिन एव, ये त्वज्ञानिनस्तेऽज्ञानद्वयवन्तोऽज्ञानत्रयवन्तो वा, एवं श्रुतेऽपि।

---

१. एवं षण्मासीं तपश्चरित्वा परिहारिका अनुचरन्ति।
अनुचरकाः परिहारिकपदस्थिता भवन्ति यावत्षण्मासाः॥५॥
कल्पस्थितोऽप्येवं षण्मासीं तपः करोति।
शेषास्त्वनुपरिहारिकभावं कल्पस्थितत्वं च व्रजन्ति॥६॥
एवमेषोऽष्टादशमासप्रमाणस्तु कल्पो वर्णितः।
सङ्क्षेपतो विशेषस्त्वेतस्य सूत्राज्ज्ञातव्यः॥७॥
कल्पसमाप्तौ तं जिनकल्पं वा गच्छं वोपयन्ति।
प्रतिपद्यमानकाः पुनर्जिनसकाशे प्रपद्यन्ते॥८॥
तीर्थङ्करसमीपासेवकस्य पार्श्वे वा अन्यस्य पार्श्वे न।
एतेषां यच्चरणं तत्तु परिहारविशुद्धिकम्॥९॥

२. नवमस्य तृतीयवस्तु यावज्जघन्यत उत्कृष्टत ऊनानि दश।
सूत्रार्थाभ्यां द्रव्यादयोऽभिग्रहाः पुनस्तपो रत्नावल्यादि॥१॥

३. एष तपः प्रतिपद्यते न किञ्चिदालपिष्यति मां च लीलपध्वं।
आत्मार्थचिन्तकस्य भवद्भिर्व्याघातो न कर्तव्यः॥१॥

४. कृतिकर्म प्रतीच्छति प्रत्याख्यानं प्रतिपृच्छामपि तस्मै ददाति।
सोऽपि च गुरुमुपतिष्ठते उदन्तमपि पृष्टः कथयति॥१॥

५. उत्तिष्ठेत् निषीदेत् भिक्षां हिण्डेत भाण्डं प्रेक्षेत।
कुपितप्रियबान्धवस्येव करोति इतरोऽपि तूष्णीकः॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८/१५१,१५२. 'ओहिनाणलद्धी' त्यादि, अवधिज्ञानलब्धिकास्त्रिज्ञानाः केवलमनःपर्यायसद्भावे चतुर्ज्ञाना वा केवलाभावात्, अवधिज्ञानस्यालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्ते द्विज्ञाना मतिश्रुतभावात्, त्रिज्ञाना वा मतिश्रुतमनःपर्यायभावात्, एक ज्ञाना वा केवलभावात्, ये त्वज्ञानिनस्ते द्व्यज्ञाना मत्यज्ञानश्रुताज्ञानभावात्, व्यज्ञाना वाऽज्ञानत्रयस्यापि भावात्।

८/१५३-१५४. 'मणपज्जवे' त्यादि मनःपर्यवज्ञानलब्धिकास्त्रिज्ञाना अवधिकेवलाभावात्, चतुर्ज्ञाना वा केवलस्यैवाभावात्, मनःपर्यवज्ञानस्यालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्ते द्विज्ञाना आद्यद्वयभावत्, त्रिज्ञाना वाऽऽद्यत्रयभावात्, एकज्ञाना वा केवलस्यैव भावात्, ये त्वज्ञानिनस्ते द्व्यज्ञाना आद्याज्ञानद्वयभावात्, व्यज्ञाना वाऽज्ञानत्रयस्यापि भावात्।

८/१५५,१५६. 'केवलनाणे' त्यादि, केवलज्ञानलब्धिका एकज्ञानिनस्ते च केवलज्ञानिन एव, केवलज्ञानस्यालब्धिकास्तु ये ज्ञानिन-स्तेषामाद्यं ज्ञानद्वयं तत्त्रयं मतिश्रुतावधिज्ञानानि मतिश्रुत-मनःपर्यायज्ञानानि वा केवलज्ञानवर्जानि चत्वारि वा ज्ञानानि भवन्ति, ये त्वज्ञानिनस्तेषामाद्यमज्ञानद्वयं तत्त्रयं वा भवतीत्येवं भजनाऽवसेयेति॥

८/१५७,१५८. 'अन्नाणलद्धियाणं' मित्यादि, अज्ञानलब्धिका अज्ञानिनस्तेषां च त्रीण्यज्ञानानि भजनया, द्वे अज्ञाने त्रीणि वाऽज्ञानानीत्यर्थः, अज्ञानालब्धिकास्तु ज्ञानिनस्तेषां च पञ्च ज्ञानानि भजनया पूर्वोपदर्शितया वाच्यानि, 'जहा अन्नाणे' त्यादि, अज्ञानलब्धिकानां त्रीण्यज्ञानानि भजनयोक्तानि मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलब्धिकानामपि तानि तथैव, तथाऽज्ञाना-लब्धिकानां पञ्च ज्ञानानि भजनयोक्तानि, मत्यज्ञानश्रुता-ज्ञानालब्धिकानामपि पञ्च ज्ञानानि भजनयैव वाच्यानीति। 'विभंगे' त्यादि, विभङ्गज्ञानलब्धिकानां तु त्रीण्यज्ञानानि नियमात्, तदलब्धिकानां तु ज्ञानिनां पञ्च ज्ञानानि भजनया, अज्ञानिनां च द्वे अज्ञाने नियमादिति॥

८/१५९. 'दंसणलद्धी' त्यादि, 'दर्शनलब्धिकाः' श्रद्धानमात्रलब्धिका इत्यर्थः ते च सम्यक्श्रद्धानवन्तो ज्ञानिनस्तदितरे त्वज्ञानिनः, तत्र ज्ञानिनां पञ्च ज्ञानानि भजनया, अज्ञानिनां तु त्रीण्यज्ञानानि भजनयैवेति।

८/१६०. 'तस्स अलद्धिया नत्थि' त्ति तस्य दर्शनस्य येषामलब्धिस्ते न सन्त्येव, सर्वजीवानां रुचिमात्रस्यास्तित्वादिति। 'सम्मद्दंसणलद्धियाणं' ति सम्यग्दृष्टीनां, 'तस्स अलद्धियाण' मित्यादि, 'तस्यालब्धिकानां' सम्यग्दर्शनस्यालब्धिमतां मिथ्यादृष्टीनां, मिश्रदृष्टीनां च त्रीण्यज्ञानानि भजनया, यतो मिश्रदृष्टीनामप्यज्ञानमेव, तत्त्विकसद्बोधहेतुत्वाभावान्मिश्र-स्येति। 'मिच्छादंसणलद्धियाणं' ति मिथ्यादृष्टीनां, 'तस्स अलद्धियाण' मित्यादि, 'तस्यालब्धिकानां' मिथ्यादर्शन-स्यालब्धिमतां सम्यग्दृष्टीनां मिश्रदृष्टीनां च क्रमेण पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च भजनयेति॥

८/१६१. 'चरित्तलद्धी' त्यादि चरित्रलब्धिका ज्ञानिन एव, तेषां च पञ्च ज्ञानानि भजनयः, यतः केवल्यपि चारित्री। चारित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेषां मनःपर्यववर्जानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया भवन्ति, कथम्?, असंयतत्वे आद्यं ज्ञानद्वयं तत्त्रयं वा, सिद्धत्वे च केवलज्ञानं, सिद्धानामपि चरित्रलब्धिशून्यत्वाद् यतस्ते नोचारित्रिणो नोअचारित्रिण इति, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनया।

८/१६२. 'सामाइए' त्यादि, सामायिकचरित्रलब्धिका ज्ञानिन एव, तेषां च केवलज्ञानवर्जानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया, सामायिकचरित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेषां पञ्च ज्ञानानि भजनया, छेदोपस्थापनीयादिभावेन सिद्धभावेन वा, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनया। एवं छेदोपस्थापनीयादिष्वपि वाच्यम्, एतदेवाह–'एव' मित्यादि, तत्र छेदोपस्थापनीयादिचरित्रत्रयलब्धयो ज्ञानिन एव, तेषं चाद्यानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया, तदलब्धयो यथाख्यात-चारित्रलब्धयश्च ये ज्ञानिनस्तेषां पञ्च ज्ञानानि भजनया, ये त्वज्ञानिनस्तेषामज्ञानत्रयं भजनयैव, यथाख्यातचारित्रलब्धि-कानां तु विशेषोऽस्ति अतस्तद्दर्शनायाह–'नवरं अहक्खाये' त्यादि, सामायिकादिचारित्रचतुष्टयलब्धिमतां छद्मस्थत्वेन चत्वार्येव ज्ञानानि भजनया, यथाख्यातचारित्रलब्धिमतां छद्मस्थेतरभावेन पञ्चापि भजनया भवन्तीति तेषां तथैव तान्युक्तानीति।।

८/१६३. 'चरित्ताचरित्ते' त्यादौ, 'तस्स अलद्धिय' ति चरित्रा-चरित्रस्यालब्धिकाः श्रावकादन्ये, ते च ये ज्ञानिनस्ते (षां) पञ्च ज्ञानानि भजनया, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनयैव॥

८/१६४. 'दाणलद्धी' त्यादि, दानान्तरायक्षयक्षयोपशमाहाने दातव्ये लब्धिर्येषां ते दानलब्धयः, ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ये ज्ञानिनस्तेषां पञ्च ज्ञानानि भजनया, केवलज्ञानिनामपि दानलब्धियुक्तत्वात्, ये त्वज्ञानिनस्तेषं त्रीण्यज्ञानानि भजनयैव।

८/१६५. दानस्यालब्धिकास्तु सिद्धास्ते च दानान्तराय-क्षयेऽपि दातव्याभावात् सम्प्रदानासत्त्वाद्दानप्रयोजनाभावाच्च दानालब्धय उक्तास्ते च नियमात्केवलज्ञानिन इति॥ लाभभोगोपभोग-वीर्यलब्धीः सेतरा अतिदिशन्नाह–'एव' मित्यादि, इह चालब्धयः सिद्धानामेवोक्तन्यायादवसेयाः, ननु दानाद्यन्तराय-क्षयात्केवलिनो दानाद्यः सर्वप्रकारेण कस्मान्न भवन्ति? इति, उच्यते, प्रयोजनाभावात्, कृतकृत्या हि ते भगवन्त इति॥

'बालवीरियलद्धियाणं' मित्यादि, बालवीर्यलब्धयः–असंयताः तेषां च ज्ञानिनां त्रीणि ज्ञानानि अज्ञानिनं च त्रीण्यज्ञानानि भजनया भवन्ति, तदलब्धिकास्तु संयताः संयतासंयताश्च ते च ज्ञानिन एव, एतेषां च पञ्च ज्ञानानि भजनया।

'पंडियवीरिये' त्यादौ, 'तस्स अलद्धियाणं' ति असंयतानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयतासंयतानां सिद्धानां चेत्यर्थः, तत्रासंयतानामाद्यं ज्ञानत्रयमज्ञानत्रयं च भजनया, संयतासंयतानां तु ज्ञानत्रयं भजनयैव भवति, सिद्धानां तु केवलज्ञानमेव, मनःपर्यायज्ञानं तु पण्डितवीर्यलब्धिमतामेव भवति नान्येषामत उक्तं 'मणपज्जवे' त्यादि, सिद्धानां च पण्डितवीर्यलब्धिकत्वं पण्डितवीर्यवाच्ये प्रत्युपेक्षणाद्यनुष्ठाने प्रवृत्त्यभावात्, 'बालपंडिए' इत्यादौ, तस्स अलद्धियाणं' ति अश्रावकाणामित्यर्थः॥

८/१६६,१६७. 'इंदियलद्धियाण' मित्यादि, इन्द्रियलब्धिका ये ज्ञानिनस्तेषां चत्वारि ज्ञानानि भजनया, केवलं तु नास्ति, तेषां केवलिनामिन्द्रियोपयोगाभावात्, ये त्वज्ञानिनस्तेषामज्ञानत्रयं भजनयैवेति, इन्द्रियालब्धिकाः पुनः केवलिन एवेत्येकमेव तेषां ज्ञानमिति।

८/१६८,१६९. 'सोइंदिय' इत्यादि, श्रोत्रेन्द्रियलब्धय इन्द्रियलब्धिका इव वाच्याः, ते च ये ज्ञानिनस्तेऽकेवलित्वादाद्यज्ञानचतुष्टयवन्तो भजनया भवन्ति, अज्ञानिनस्तु भजनया त्र्यज्ञानाः, श्रोत्रेन्द्रियालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्ते आद्यद्विज्ञानिनः, तेऽपर्याप्तकाः सास्वादनसम्यग्दर्शनिनो विकलेन्द्रियाः, एकज्ञानिनो वा केवलज्ञानिनः, ते हि श्रोत्रेन्द्रियालब्धिका इन्द्रियोपयोगाभावात्, ये त्वज्ञानिनस्ते पुनराद्याज्ञानद्वयवन्त इति। 'चक्खिंदिए' इत्यादि, अयमर्थः—यथा श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतां चत्वारि ज्ञानानि भजनया त्रीणि चाज्ञानानि भजनयैव तदलब्धिकानां च द्वे ज्ञाने द्वे चाज्ञाने एकं च ज्ञानमुक्तमेवं चक्षुरिन्द्रियलब्धिकानां घ्राणेन्द्रियलब्धिकानां च तदलब्धिकानां च वाच्यं, तत्र चक्षुरिन्द्रियलब्धिका घ्राणेन्द्रियलब्धिकाश्च ये पञ्चेन्द्रियास्तेषां केवलवर्जानि चत्वारि ज्ञानानि त्रीणि चाज्ञानानि भजनयैव, ये तु विकलेन्द्रियाश्चक्षुरिन्द्रियघ्राणेन्द्रियलब्धिकास्तेषां सास्वादनसम्यग्दर्शनभावे आद्यं ज्ञानद्वयं तदभावे त्वाद्यमेवाज्ञानद्वयं, चक्षुरिन्द्रियघ्राणेन्द्रियालब्धिकास्तु यथायोगं त्रिद्व्येकेन्द्रियाः केवलिनश्च, तत्र द्वीन्द्रियादीनां सास्वादनभावे आद्यज्ञानद्वयसम्भवः, तदभावे त्वाद्याज्ञानद्वयसम्भवः, केवलिनां त्वेकं केवलज्ञानमिति।

८/१७०,१७१. 'जिब्भिंदिय' इत्यादौ, 'तस्स अलद्धिय' त्ति जिह्वालब्धिवर्जिताः, ते च केवलिन एकेन्द्रियाश्चेत्यत आह—'नाणीवी' त्यादि, ये ज्ञानिनस्ते नियमात्केवलज्ञानिनः येऽज्ञानिनस्ते नियमाद् द्व्यज्ञानिनः एकेन्द्रियाणां सास्वादनभावतोऽपि सम्यग्दर्शनस्याभावाद् विभङ्गाभावाच्चेति। 'फासिंदिय' इत्यादि, स्पर्शनेन्द्रियलब्धिकाः केवलवर्जज्ञानचतुष्कवन्तो भजनया तथैवाज्ञानत्रयवन्तो वा, स्पर्शनेन्द्रियालब्धिकास्तु केवलिन एव, इन्द्रियलब्ध्यलब्धिमन्तोऽप्येवंविधा एवेत्यत उक्तं 'जहा इंदिए' इत्यादि॥

उपयोगद्वारे—

८/१७२. 'सागारोवउत्ते' त्यादि, आकारो—विशेषस्तेन सह यो बोधः स साकारः, विशेष ग्राहको बोध इत्यर्थः तस्मिन्नुपयुक्ताः तत्संवेदका ये ते साकारोपयुक्ताः ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ज्ञानिनां पञ्च ज्ञानानि भजनया—स्याद् द्वे स्यात् त्रीणि स्याच्चत्वारि स्यादेकं, यच्च स्यादेकं यच्च स्याद्वे इत्याद्युच्यते तल्लब्धिमात्रमङ्गीकृत्य, उपयोगापेक्षया त्वेकत्र एकमेव ज्ञानमज्ञानं वेति, अज्ञानिनां तु त्रीण्यज्ञानानि भजनयैवेति॥

अथ साकारोपयोगभेदापेक्षमाह—

८/१७३. 'आभिणि' त्यादि, 'ओहिनाणसागारे' त्यादि, अवधिज्ञानसाकारोपयुक्ता यथाऽवधिज्ञानलब्धिकाः प्रागुक्ताः स्यात् त्रिज्ञानिनो मतिश्रुतावधियोगात् स्याच्चतुर्ज्ञानिनो मतिश्रुतावधिमनःपर्यवयोगात्तथा वाच्याः। 'मणपज्जवे' त्यादि, मनःपर्यवज्ञानसाकारोपयुक्ता यथा मनःपर्यवज्ञानलब्धिकाः प्रागुक्ताः स्यात् त्रिज्ञानिनो मतिश्रुतमनःपर्यवयोगात् स्याच्चतुर्ज्ञानिनः केवलवर्जज्ञानयोगात्तथा वाच्या इति॥

८/१७४. 'अणागारोवउत्ता ण' मित्यादि, अविद्यमान आकारो यत्र तदनाकारं—दर्शनं तत्रोपयुक्ताः—तत्संवेदनका ये ते तथा, ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ज्ञानिनां लब्ध्यपेक्षया पञ्च ज्ञानानि भजनया, अज्ञानिनां तु त्रीण्यज्ञानानि भजनयैव। 'एवं' मित्यादि, यथाऽनाकारोपयुक्ता ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चोक्ता एवं, चक्षुर्दर्शनाद्युपयुक्ता अपि, 'नवरं' ति विशेषः पुनरयं—चक्षुर्दर्शनिनस्तेऽपयुक्ताः केवलिनो न भवन्तीति तेषां चत्वारि ज्ञानानि भजनयेति॥

योगद्वारे—

८/१७६. 'सजोगी ण' मित्यादि, 'जहा सकाइय' त्ति प्रागुक्ते कायद्वारे यथा सकायिका भजनया पञ्चज्ञानाज्ञानाश्चोक्तास्तथा सयोगा अपि वाच्याः एवं मनोयोग्यादयोऽपि, केवलिनोऽपि मनोयोगादीनां भावात्, तथा मिथ्यादृशां मनोयोगादिमतामज्ञानत्रयभावाच्च, 'अजोगी जहा सिद्ध' त्ति अयोगिनः केवलिलक्षणैकज्ञानिन इत्यर्थः॥

लेश्याद्वारे—

८/१७७. 'जहा सकाइय' त्ति सलेश्याः सकायिकवद्भजनया पञ्चज्ञानाज्ञानाश्च वाच्याः केवलिनोऽपि शुक्ललेश्यासम्भवेन सलेश्यत्वात्।

८/१७८. 'कण्हलेसे' त्यादि, 'जहा सइंदिय' त्ति कृष्णलेश्याश्चतुर्ज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनश्च भजनयेत्यर्थः, 'सुक्कलेसा जहा सलेस' त्ति पञ्चज्ञानिनो भजनया त्र्यज्ञानिनश्चेत्यर्थः। 'अलेस्सा जहा सिद्ध' त्ति एकज्ञानिन इत्यर्थः॥

कषायद्वारे—

८/१७९. 'सकसाई जहा सइंदिय' त्ति भजनया केवलवर्जचतुर्ज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनश्चेत्यर्थः।

८/१८०. 'अकसाई ण' मित्यादि, अकषायिणां पञ्च ज्ञानानि भजनया, कथम्?, उच्यते, छद्मस्थो वीतरागः केवली चाकषायः, तत्र च छद्मस्थवीतरागस्याद्यं ज्ञानचतुष्कं भजनया भवति, केवलिनस्तु पञ्चममिति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदद्वारे–

८/१८१. 'जहा सइंदिय' त्ति सवेदकाः सेन्द्रियवद्भजनया केवलवर्जचतुर्ज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनश्च वाच्याः, 'अवेदगा जहा अकसाइ' त्ति अवेदका अकषायिवद्भजनया पञ्चज्ञाना वाच्याः, यतोऽनिवृत्तिबादरादयोऽवेदका भवन्ति, तेषु च छद्मस्थानां चत्वारि ज्ञानानि भजनया केवलिनां तु पञ्चममिति॥

आहारकद्वारे–

८/१८२. 'आहारगे' त्यादि, सकषाया भजनया चतुर्ज्ञानास्त्र्यज्ञानाश्चोक्ताः आहारका अप्येवमेव, नवरमाहारकाणां केवलमप्यस्ति, केवलिन आहारकत्वादपीति।

८/१८३. 'अणाहारए णं' मित्यादि, मनःपर्यवज्ञानमाहारकाणामेव, आद्यं पुनर्ज्ञानत्रय-मज्ञानत्रयं च विग्रहे भवति, केवलं च केवलिसमुद्घातशैलेशी-सिद्धावस्थास्वनाहारकाणामपि स्यादत उक्तं 'मणपज्जवे' त्यादि॥

अथ ज्ञानगोचरद्वारे–

८/१८४. 'केवइए' त्ति किंपरिणामः 'विसए' त्ति गोचरो ग्राह्योऽर्थ इति यावत्, तं च भेदपरिमाणतस्तावदाह–'से' इत्यादि, 'सः' आभिनिबोधिकज्ञानविषयस्तद्भाऽऽभिनिबोधिकज्ञानं 'समासतः' सङ्क्षेपेण प्रभेदानां भेदेष्वन्तर्भावेनेत्यर्थः चतुर्विधश्चतुर्विधं वा, द्रव्यतो–द्रव्याणि धर्मास्तिकायादीन्याश्रित्य क्षेत्रतो–द्रव्याधारमाकाशमात्रं वा क्षेत्रमाश्रित्य कालतः–अद्धां द्रव्यपर्यायावस्थितिं वा समाश्रित्य भावतः–औदयिकादिभावान् द्रव्याणां वा पर्यायान् समाश्रित्य 'दव्वओ णं' ति द्रव्यमाश्रित्याभिनिबोधिकज्ञानविषयद्रव्यं वाऽऽश्रित्य यदाभिनिबोधिकज्ञानं तत्र 'आएसेणं' ति आदेशः–प्रकारः सामान्यविशेषरूपस्तत्र चादेशेन–ओघतो द्रव्यमात्रतया न तु तद्गतसर्वविशेषापेक्षयेति भावः, अथवा 'आदेशेन' श्रुतपरिकर्मितमतया 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि 'जानाति' अवायधारणापेक्षयाऽवबुध्यते, ज्ञानस्यावायधारणारूपत्वात्, 'पासइ' त्ति पश्यति अवग्रहेहापेक्षयाऽवबुध्यते, अवग्रहेहयोर्दर्शनत्वात्, आह च भाष्यकारः–

'नाणमवायधिईओ दंसणमिट्ठं जहोग्गहेहाओ।
तह तत्तरुई सम्मं रोइज्जइणेण तं णाणं॥१॥'

तथा–जं सामन्नग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं नाणं। (अपायधारणे ज्ञानमवग्रहेहे दर्शनं यथेष्टं तथा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं येन रोच्यते तज्ज्ञानम्॥१॥ यत्सामान्यग्रहणं दर्शनमेतद् विशेषितं ज्ञानम्।) अवग्रहेहे च सामान्यार्थग्रहणरूपे अवायधारणे च विशेषग्रहणस्वभावे इति, नन्वष्टाविंशतिभेदमानमाभिनिबोधिकज्ञानमुच्यते, यदाह–'आभिणिबोहियनाणे अट्ठावीसं हवंति पयडीओ' त्ति (आभिनिबोधिकज्ञाने प्रकृतयोऽष्टाविंशतिर्भवन्ति) इह च व्याख्याने श्रोत्रादिभेदेन षड्भेदतयाऽवायधारणयोर्द्वादशविधं मतिज्ञानं प्राप्तं, तथा श्रोत्रादिभेदेनैव षड्भेदतयाऽर्थावग्रहईहयोर्व्यञ्जनावग्रहस्य च चतुर्विधतया षोडशविधं चक्षुरादिदर्शनमिति प्राप्तमिति कथं न विरोधः? सत्यमेतत्, किन्त्वविवक्षयित्वा मतिज्ञानचक्षुरादिदर्शनयोर्भेदं मतिज्ञानमष्टाविंशतिधोच्यते इति पूज्या व्याचक्षत इति, 'खेत्तओ' त्ति क्षेत्रमाश्रित्याभिनिबोधिकज्ञानविषयक्षेत्रं वाऽऽश्रित्य यदाभिनिबोधिकज्ञानं तत्र 'आदेसेणं' ति ओघतः श्रुतपरिकर्मिततया वा 'सव्वं खेत्तं' ति लोकालोकरूपम्, एवं कालतो भावतश्चेति, आह च भाष्यकारः–

'आएसोत्ति पगारो ओघादेसेण सव्वदव्वाइं।
धम्मत्थिकाइयाइं जाणइ न उ सव्वभावेणं॥१॥
खेत्तं लोगालोगं कालं सव्वद्धमहव तिविहंपि।
पंचोदइयाईए भावे जत्तेयमेवइयं॥२॥
आएसोत्ति व सुत्तं सुओवलद्धेसु तस्स मइनाणं।
पसरइ तब्भावणया विणावि सुत्ताणुसारेणं॥३॥'

(इति आदेश इति प्रकारः सामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि।
धर्मास्तिकायादीनि जानाति न तु सर्वभावैः॥१॥
लोकालोकं क्षेत्रं सर्वाद्धां कालमथवा त्रिविधमपि।
भावानौदयिकादीन् पञ्च यदेतावज्ज्ञेयम्॥२॥
यद्वा आदेश इति श्रुतं श्रुतोपलब्धेषु तस्य मतिज्ञानं।
प्रसरति तद्भावनया सूत्रानुसारेण विनाऽपि॥३॥)

इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' त्ति पाठान्तरेणाधीतम्, एवं च नन्दिटीकाकृता व्याख्यातम्–'आदेशः–प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषतश्च। तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि, न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति।'

८/१८५. 'उवउत्ते त्ति' भावश्रुतोपयुक्तो नानुपयुक्तः। स हि नाभिधानादभिधेयप्रतिपत्तिसमर्थो भवतीति विशेषणमुपात्तं, 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि 'जानाति' विशेषतोऽवगच्छति, श्रुतज्ञानस्य तत्स्वरूपत्वात्, पश्यति च श्रुतानुवर्तिना मानसेन अचक्षुर्दर्शनेन, सर्वद्रव्याणि चाभिलाप्यान्येव जानाति। पश्यति चाभिन्नदशपूर्वधरादिः श्रुतकेवली, तदारतस्तु भजना, सा पुनर्मतिविशेषतो ज्ञातव्येति, वृद्धैः पुनः पश्यतीत्यत्रेदमुक्तं–ननु पश्यतीति कथं?, कथं च न, सकलगोचरदर्शनायोगात्?, अत्रोच्यते, प्रज्ञापनायां श्रुतज्ञानपश्यत्तायाः प्रतिपादितत्वाद् नुत्तरविमानादीनां चालेख्यकरणात् सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्तेः, एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति। अन्ये तु 'न पासइ' त्ति पठन्तीति, ननु 'भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ' इति यदुक्तमिह तत् 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' त्ति (श्रुते चारित्रे न सर्वे पर्यायाः (अभिलाप्यापेक्षया)।) अनेन च सह कथं न विरुध्यते?, उच्यते, इह सूत्रे सर्वग्रहणेन पञ्चौदयिकादयो भावा गृह्यन्ते, तांश्च सर्वान् जातितो जानाति, अथवा यद्यप्यभिलाप्यानां भावानामनन्तभाग एव श्रुतनिबद्धस्तथापि प्रसङ्गानुप्रसङ्गतः सर्वेऽप्यभिलाप्याः श्रुतविषया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्यन्ते अतस्तदपेक्षया सर्वभावान् जानातीत्युक्तम्, अनभिलाप्यभावापेक्षया तु 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' इत्युक्तमिति न विरोधः।

८/१८६. दव्वओ ण' मित्यादि, अवधिज्ञानी रूपिद्रव्याणि पुद्गल-द्रव्याणीत्यर्थः, तानि च जघन्येनानन्तानि तैजसभाषाद्रव्याणा-मपान्तरालवर्त्तीनि। यत उक्तं–'तेयाभासाव्वाण अंतरा एत्थ लभति पट्ठवओ' त्ति, (अत्र प्रस्थापकस्तेजोभाषा-वर्गणयोरन्तरालद्रव्याणि जानाति) उत्कृष्टतस्तु सर्वबादर-सूक्ष्मभेदभिन्नानि जानाति विशेषाकारेण, ज्ञानत्वात्तस्य, पश्यति सामान्याकारेणावधिज्ञानिनोऽवधिदर्शनस्यावश्यम्भावात्। नन्वादौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति क्रमस्तत्किमर्थमेनं परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम्?, अत्रोच्यते, इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यख्यापनार्थमादौ जानातीत्युक्तम्। अवधिदर्शनस्य त्ववधिविभङ्गसाधारणत्वेना-प्रधानत्वात् पश्चात्पश्यतीति, अथवा सर्वा एव लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते लब्धिश्चावधिज्ञानमिति साकारोपयोगोपयुक्तस्यावधिज्ञान-लब्धिर्जायते। इत्येतस्यार्थस्य ज्ञापनार्थं साकारोपयोगाभि-धायकं जानातीति प्रथममुक्तं ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेः पश्यतीति। 'जहा नंदीए' त्ति एवं च तत्रेदं सूत्रं–'खेत्तओ णं ओहिणाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं जाणइ पासइ' इत्यादि, व्याख्या पुनरेवं–क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाङ्गुल-स्यासङ्ख्येयभागमुत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयान्यलोके शक्तिमपेक्ष्य लोकप्रमाणानि खण्डानि जानाति पश्यति, कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनावलिकाया असङ्ख्येयं भागमुत्कृष्ट-तोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिणीरतीता अनागताश्च जानाति पश्यति, तद्गतरूपिद्रव्यावगमात्, अथ कियद्दूरं यावदिह नन्दीसूत्रं वाच्यम्? इत्याह–'जाव भावओ' त्ति भावाधिकारं यावदित्यर्थः, स चैवं–भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनानन्तान् भावानाधारद्रव्या-नन्तत्वाज्जानाति पश्यति, न तु प्रतिद्रव्यमिति। उत्कृष्टतोऽप्यनन्तान् भावान् जानाति पश्यति च, तेऽपि चोत्कृष्टपदिनः सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति।

८/१८७. 'उज्जुमइ' त्ति मननं मतिः संवेदनमित्यर्थः ऋज्वी–सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः–घटोऽनेन चिन्तित इत्यध्वसायनिबन्धना मनोद्रव्यपरिच्छित्तिरित्यर्थः, अथवा ऋज्वी मतिर्यस्यासावृजुमति-स्तद्भावेन गृह्यते, 'अणंते' त्ति अनन्तान् अपरिमितान् 'अणंतपएसिए' त्ति अनन्तपर-माण्वात्मकान् 'जहा नंदीए' त्ति, तत्र चेदं सूत्रमेवं–'खंधे जाणइ पासइ, त्ति तत्र 'स्कन्धान्' विशिष्टैकपरिणामपरिणतान्, सञ्ज्ञिभिः पर्याप्तकैः प्राणिभिरर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्त-र्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थः, 'जाणइ' त्ति मनःपर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पटुत्वात्साक्षात्कारेण विशेषभूयिष्ठपरिच्छेदत् जानातीत्युच्यते, तदालोचितं पुनरर्थं घटादिलक्षणं मनःपर्यायज्ञानं स्वरूपाध्यक्षतो न जानाति किन्तु तत्परिणामान्यथाऽनुपपत्त्याऽतः पश्यतीत्युच्यते। उक्तञ्च भाष्यकारेण–'जाणइ बज्झेऽणुमाणाओ' त्ति, (बाह्याननु-मानाज्जानाति) इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, यतो मूर्त्तद्रव्या-लम्बनमेवेदं, मन्तारश्चामूर्त्तमपि धर्मास्तिकायादिकं मन्येरन्, न च तदनेन साक्षात् कर्त्तुं शक्यते, तथा चतुर्विधं च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनमुक्तमतो भिन्ना-लम्बनमेवेदमवसेयं, तत्र च दर्शन-सम्भवात्पश्यतीत्यपि न दृष्टम्। एकप्रमात्रपेक्षया तदनन्तर-भावित्वाच्चोपन्यस्तमित्यलमतिविस्तरेण, 'ते चेव उ विउलमई अब्भहियतराए वितिमिरतराए विसुद्धतराए जाणइ पासइ' तानेव स्कन्धान् विपुलाविशेषग्राहिणी मतिर्विपुलमतिः–घटोऽनेन चिन्तितः स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकोऽद्यतनो महानित्याद्यध्यवसायहेतुभूता मनोद्रव्यविज्ञप्तिः, अथवा विपुला मतिर्यस्यासौ विपुलमतिस्तद्भावेन, 'अभ्यधिकतरकान्' ऋजुमतिदृष्टस्कन्धापेक्षया बहुतरान् द्रव्यार्थतया वर्णादिभिश्च वितिमिरतरा इव–अतिशयेन विगतान्धकारा इव ये ते वितिमिरतरास्त एव वितिमिरतरका अतस्तान्, अत एव 'विशुद्धतरकान्' विस्पष्टतरकान् जानाति पश्यति च, तथा 'खेत्तओ णं उज्जुमई अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डागपयरे उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले तिरियं जाव अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ' तत्र क्षेत्रत ऋजुमतिरधः–अधस्ताद् यावदमुष्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरिमाधस्तन्यान् क्षुल्लकप्रतरान् तावत्, किं?–मनोगतान् भावान् जानाति पश्यतीति योगः, तत्र रुचकाभिधानान्तिर्यग्-लोकमध्यादधो यावन्नव योजनशतानि तावदमुष्या रत्नप्रभाया उपरिमाः क्षुल्लकप्रतराः, क्षुल्लकत्वं च तेषामधोलोक-प्रतरापेक्षया, तेभ्योऽपि येऽधस्तादधोलोकग्रामान् यावत्तेऽ-धस्तनाः क्षुल्लकप्रतरा ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिषश्च–ज्योतिश्च-क्रस्योपरितलं। 'तिरियं जाव अंतोमणुस्सखेत्ते' त्ति तिर्यङ् यावदन्तर्मनुष्यक्षेत्रं मनुष्यक्षेत्रस्यान्तं यावदित्यर्थः, तदेव विभागत आह–'अड्ढाइज्जेसु' इत्यादि, तथा 'तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिं अंगुलेहिं अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ' त्ति तत्र 'तं चेव' त्ति इह क्षेत्राधिकारस्य प्राधान्यात्तदेव मनोलब्धिसमन्वितजीवाधारं क्षेत्रमभिगृह्यते। तत्राभ्यधिकतर-कमायामविष्कम्भाश्रित्य विपुलतरकं बाहल्यमाश्रित्य 'विशुद्धतरकं' निर्मलतरकं वितिमिरतरकं तु तिमिरकल्पत-दावरणस्य विशिष्टतर-क्षयोपशमसद्भावादिति, तथा–'कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणवि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं जाणइ पासइ अईयं अणागयं च, तं चेव विपुलमई विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ' कियन्नन्दीसूत्रमिहाध्येयम्? इत्याह–'जाव भावओ' त्ति भावसूत्रं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावदित्यर्थः, तच्चैवं–'भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ सव्वभावाणं अणंतं भागं जाणइ पासइ, तं चेव विपुलमई विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ' ति।

८/१८८. 'केवलणाणस्से' त्यादि. 'एवं जाव भावओ' त्ति 'एवम्' उक्तन्यायेन यावद्भावत इत्यादि तावत्केवल-विषयाभिधायि नन्दीसूत्रमिहाध्येयमित्यर्थः, तच्चैवं–'खेत्तओ णं केवलनाणी सव्वखेत्तं जाणइ पासइ' इह च धर्मास्ति-कायादिसर्व-द्रव्यग्रहणेनाकाशद्रव्यस्य ग्रहणेऽपि यत्पुनरुपादानं तत्तस्य क्षेत्रत्वेन रूढत्वादिति। 'कालओ णं केवलणाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं केवली सव्वभावे जाणइ पासइ'॥

८/१८९. 'मइअन्नाणस्से' त्यादि, मइअन्नाणपरिगयाइं' ति मत्यज्ञानेन–मिथ्यादर्शनसंवलितेनावग्रहादिनौत्पत्तिक्यादिना च परिगतानि–विषयीकृतानि यानि तानि तथा, जानात्यपायादिना पश्यत्यवग्रहादिना, यावत्करणादिदं दृश्यं–'खेत्तओ णं मइअन्नाणी मइअन्नाणपरिगयं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं मइअन्नाणी मइअन्नाणपरिगयं कालं जाणइ पासइ' ति।

८/१९०. 'सुयअन्नाणे' त्यादि, 'सुयअन्नाणपरिगयाइं' ति श्रुताज्ञानेन–मिथ्यादृष्टिपरिगृहीतेन सम्यकश्रुतेन लौकिकश्रुतेन कुप्रावचनिकश्रुतेन वा यानि परिगतानि–विषयीकृतानि तानि तथा 'आघवेइ' त्ति आग्राहयति अर्थापयति वा आख्यापयति वा प्रत्याययतीत्यर्थः 'प्रज्ञापयति' भेदतः कथयति 'प्ररूपयति' उपपत्तितः कथयतीति, वाचनान्तरे पुनरिदमधिक-मवलोक्यते–'दंसेति निदंसेति उवदंसेति' ति तत्र च दर्शयति उपमामात्रतस्तच्च यथा गौरेवं गवय इत्यादि, निदर्शयति हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन उपदर्शयति उपनयनिगमनाभ्यां मतान्तर-दर्शनेन वेति।

८/१९१. 'तव्वओ णं विभंगनाणी' त्यादौ 'जाणइ' त्ति विभङ्गज्ञानेन 'पासइ' ति अवधिदर्शनेनेति॥

अथ कालद्वारे–

८/१९२-१९५. 'साइए' इत्यादि, इहाद्यः केवली द्वितीयस्तु मत्यादिमान्। तत्राद्यस्य साद्यपर्यवसितेति शब्दत एवं कालः प्रतीयत इति। द्वितीयस्यैव तं जघन्येतरं भेदमुपदर्शयितु-मिदमाह–'तत्थ णं जे से साइए' इत्यादि, तत्र च 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति आद्यं ज्ञानद्वयमाश्रित्योक्तं, तस्यैव जघन्य-तोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वात्, तथा 'उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं' त्ति यदुक्तं तदाद्यं ज्ञानत्रयमाश्रित्य, तस्य हि उत्कर्षेणैतावत्येव स्थितिः, सा चैवं भवति–

'दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नच्चुए अहव ताइं।
अइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सव्वद्धं॥१॥'

(विजयादिषु द्विरच्युते त्रिर्गतस्य अथ तानि नरभव्यातिरेकाणि नानाजीवानां सर्वाद्धां॥१॥) 'आभिणिबोहिये' त्यादि सूचामात्रम्, एवं चैतद्द्रष्टव्यम्–'आभिणिबोहियनाणी णं भंते! आभिणिबोहियनाणित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?' त्ति 'एवं नाणी–आभिणिबोहियनाणी' त्यादि, अयमर्थः–'एव' मित्यनन्तरोक्तेन 'आभिणिबोहिए' त्यादिना सूत्रक्रमेण ज्ञान्याभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानव्यवधिज्ञानिमनःपर्यवज्ञानि-केवलज्ञान्यज्ञानिमत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां 'संचिट्ठणे' ति अवस्थितिकालो यथा कायस्थितौ प्रज्ञापनाया अष्टादशे पदेऽभिहितस्तथा वाच्यः, तत्र ज्ञानिनां पूर्वमुक्त एवावस्थितिकालः, यच्च पूर्वमुक्तस्याप्यतिदेशतः पुनर्भणनं तदेकप्रकरणपतितत्वादित्यवसेयम्, आभिनिबोधिकज्ञानादिद्वयस्य तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतस्तु सातिरेकाणि षट्षष्टिः सागरोपमाणि, अवधिज्ञानिनामप्येवं, नवरं जघन्यतो विशेषः, स चायम्–'ओहिनाणी जहन्नेणं एक्कं समयं' कथं?, यदा विभङ्गज्ञानी सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते तत्प्रथमसमय एव विभङ्गमवधिज्ञानं भवति तदनन्तरमेव च तत् प्रतिपतति तदा एकं समयमवधिर्भवतीत्युच्यते।

८/१९६. 'मणपज्जवनाणी णं भंते! पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी,' कथं?, संयतस्याप्रमत्ताद्धायां वर्त्तमानस्य मनःपर्यवज्ञानमुत्पन्नं तत उत्पत्तिसमयसमनन्तरमेव विनष्टं चेत्येवमेकं समयं, तथा चरणकाल उत्कृष्टो देशोना पूर्वकोटी, तत्प्रतिपत्तिसमनन्तरमेव च यदा मनःपर्यवज्ञानमुत्पन्नमाजन्म चानुवृत्तं तदा भवति मनःपर्यवस्योत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति।

८/१९७. केवलनाणी णं पुच्छा, गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

८/१९८. अन्नाणी मइअन्नाणी सुयअन्नाणी णं पुच्छा, गोयमा! अन्नाणी मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य तिविहे पन्नत्ते, तं जहा–अणाइए वा अपज्जवसिए अभव्यानां १ अणाइए वा सपज्जवसिए भव्यानां २ साइए वा सपज्जवसिए प्रतिपतित-सम्यग्दर्शनानां ३, 'तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' सम्यक्त्वप्रतिपतितस्यान्तर्मुहूर्त्तोपरि सम्यक्त्वप्रतिपत्तौ, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंता उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं' सम्यक्त्वाद्-भ्रष्टस्य वनस्पत्यादि-ष्वनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिणीरतिवाह्य पुनः प्राप्तसम्यग्-दर्शनस्येति।

८/१९९. 'विभंगनाणी णं भंते! पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं' उत्पत्तिसमयानन्तरमेव प्रतिपाते। 'उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणपुव्वकोडिअब्भहियाइं' देशोनां पूर्वकोटिं विभङ्गितया मनुष्येषु जीवित्वाऽप्रतिष्ठानादावुत्पन्नस्येति॥

अन्तरद्वारे–

८/२००-२०४. 'अंतरं सव्वं जहा जीवाभिगमे' त्ति पञ्चानां ज्ञानानां त्रयाणां चाज्ञानानामन्तरं सर्वं यथा जीवाभिगमे तथा वाच्यं, तच्चैवम्–आभिणिबोहियणाणिस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, सुयनाणिओहिनाणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणपज्जवनाणीणं एवं चेव केवलनाणिस्स पुच्छा। गोयमा! नत्थि अंतरं मइअन्नाणिस्स सुयअन्नाणिस्स य पुच्छा। गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। विभंगनाणिस्स. पुच्छा। गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो'॥

अल्पबहुत्वद्वारे–'अप्पाबहुगाणि तिन्नि जहा बहुवत्तव्वयाए' त्ति अल्पबहुत्वानि त्रीणि ज्ञानिनां परस्परेणाज्ञानिनां च ज्ञान्यज्ञानिनां च यथाऽल्पबहुत्ववक्तव्यतायां प्रज्ञापना-सम्बन्धिन्यामभिहितानि तथा वाच्यानीति, तानि चैवम्–

८/२०५-२०७. 'एएसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं ५ कयरे २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी ओहिनाणी असंखेज्जगुणा आभिणि-बोहियनाणी सुयनाणी दोवि तुल्ला विसेसाहिया केवलनाणी अणंतगुणा' इत्येकम् १। 'एएसि णं भंते! जीवाणं मइअन्नाणीणं ३ कयरे २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभंगणाणी मइअन्नाणी सुयअन्नाणी दोवि तुल्ला अनंतगुणा' इति द्वितीयम्२। 'एएसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं ५ मइअन्नाणीणं ३ कयरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी ओहिनाणी असंखेज्जगुणा आभिणि-बोहियनाणी सुयनाणी य दोवि तुल्ला विसेसाहिया विभंगनाणी असंखेज्जगुणा केवलनाणी अनंतगुणा मइअन्नाणी सुयअन्नाणी दोवि तुल्ला अणंतगुण' त्ति, तत्र ज्ञानिसूत्रे स्तोका मनःपर्याय-ज्ञानिनो, यस्मादृद्धिप्राप्तादिसंयतस्यैव तद्भवति, अवधिज्ञानिन-स्तु चतसृष्वपि गतिषु सन्तीति तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्चान्योऽन्यं तुल्याः, अवधिज्ञानिभ्यस्तु विशेषाधिकाः, यतस्तेऽवधिज्ञानिनोऽपि मनःपर्यायज्ञानिनोऽपि अवधिमनःपर्यायाज्ञानिनोऽपि अवध्यादि-रहिता अपि पञ्चेन्द्रिया भवन्ति सास्वादनसम्यग्दर्शनसद्भावे विकलेन्द्रिया अपि च मतिश्रुतज्ञानिनो लभ्यन्त इति, केवलज्ञानिनस्त्वनन्तगुणाः, सिद्धानां सर्वज्ञानिभ्योऽनन्त-गुणत्वात्। अज्ञानिसूत्रे तु विभङ्गज्ञानिनः स्तोकाः, यस्मात् पञ्चेन्द्रिया एव ते भवन्ति, तेभ्योऽनन्तगुणा मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, यतो मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चैकेन्द्रिया अपीति तेन तेभ्यस्तेऽनन्तगुणाः, परस्परतश्च तुल्याः। तथा मिश्रसूत्रे स्तोका मनःपर्यायज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनस्तु तेभ्योऽ-सङ्ख्येयगुणाः, आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्चान्योऽन्यं तुल्याः प्राक्तनेभ्यश्च विशेषाधिकाः, इह युक्तिः पूर्वोक्तैव, आभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्यो विभङ्गज्ञानिनोऽसङ्ख्येयगुणाः कथम्?, उच्यते, यतः सम्यग्दृष्टिभ्यः सुरनारकेभ्यो मिथ्या-दृष्टयस्तेऽसङ्ख्येयगुणा उक्तास्तेन विभङ्गज्ञानिन आभिनि-बोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, केवलज्ञानिनस्तु विभङ्गज्ञानिभ्योऽनन्तगुणाः, सिद्धानामेकेन्द्रियवर्जसर्वजीव-भ्योऽनन्तगुणत्वात्. मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चान्योऽन्यं तुल्याः, केवलज्ञानिभ्यस्त्वनन्तगुणाः, वनस्पतिष्वपि तेषां भावात्, तेषां च सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वादिति॥

अथ पर्यायद्वारे–

८/२०८. 'केवइया' इत्यादि, आभिनिबोधिकज्ञानस्य पर्यवाः– विशेषधर्म्माः आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः, ते च द्विविधाः स्वपरपर्यायभेदात्, तत्र येऽवग्रहादयो मतिविशेषाः क्षयोपशमवैचित्र्यात्ते स्वपर्यायास्ते चानन्तगुणाः कथम्?, एकस्मादवग्रहादेरन्योऽवग्रहादिरनन्तभागवृद्ध्या विशुद्धः १ अन्यस्त्वसङ्ख्येयभागवृद्ध्या २ अपरः सङ्ख्येयभागवृद्ध्या ३ अन्यतरः सङ्ख्येयगुणवृद्ध्या ४ तदन्योऽसङ्ख्येयगुणवृद्ध्या ५ अपरस्त्वनन्तगुणवृद्ध्या ६ इति, एवं च सङ्ख्यातस्य सङ्ख्यातभेदत्वादसंख्यातस्य चासङ्ख्यातभेदत्वादनन्तस्य चानन्तभेदत्वादनन्ता विशेषा भवन्ति, अथवा तज्ज्ञेयस्या-नन्तत्वात् प्रतिज्ञेयं च तस्य भिद्यमानत्वात् अथवा मतिज्ञानमविभागपरिच्छेदैर्बुद्ध्या छिद्यमानमनन्तखण्डं भवतीत्येवमनन्तास्तत्पर्यवाः, तथा ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायास्ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः, परेषामनन्त-गुणत्वादिति, ननु यदि ते परपर्यायास्तदा तस्येति न व्यपदेष्टुं युक्तं, परसम्बन्धित्वात्।

अथ तस्य ते तदा न परपर्यायास्ते व्यपदेष्टव्याः स्वसम्बन्धि-त्वादिति, अत्रोच्यते, यस्मात्तत्रासम्बद्धास्ते तस्मात्तेषां परपर्यायव्यपदेशः, यस्माच्च ते परित्यज्यमानत्वेन तथा स्वपर्यायाणां स्वपर्याया एते इत्येवं विशेषणहेतुत्वेन च तस्मिन्नुपयुज्यन्ते तस्मात्तस्य पर्यवा इति व्यपदिश्यन्ते, यथाऽसम्बद्धमपि धनं स्वधनं उपयुज्यमानत्वादिति. आह च–

'जइ ते परपज्जाया न तस्स अह तस्स न परपज्जाया।

(आचार्य आह)–

जं तंमि असंबद्धा तो परपज्जायववएसो॥१॥

चायसपज्जायविसेसणाइणा तस्स जमुवजुज्जंति।

सधणमिवासंबद्धं हवंति तो पज्जवा तस्स॥२॥' त्ति।

(यदि ते परपर्यायास्तस्य न अथ तस्य न परपर्यायाः। यत्तस्मिन्नसम्बद्धा ततः परपर्यायव्यपदेशः॥१॥ तस्य त्यागस्वपर्यायविशेषणत्वादिना यदुपयुज्यन्ते ततः स्वधनमिवासम्बद्धमपि तस्य पर्याया भवन्ति॥२॥)

८/२०९. 'केवइया णं भंते! सुयणाणे' त्यादौ, 'एवं चेव' त्ति अनन्ताः श्रुतज्ञानपर्यायाः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, ते च स्वपर्यायाः परपर्यायाश्च, तत्र स्वपर्याया ये श्रुतज्ञानस्य स्वतोऽक्षरश्रुतादयो भेदास्ते चानन्ताः क्षयोपशमवैचित्र्यविषयानन्त्याभ्यां श्रुतानुसारिणां बोधानामनन्तत्वात् अविभागपरिच्छेदानन्त्याच्च, परपर्याया-स्त्वनन्ताः सर्वभावानां प्रतीता एव, अथवा श्रुतं–ग्रन्थानुसारि ज्ञानं श्रुतज्ञानं, श्रुतग्रन्थाश्चाक्षरात्मकाः, अक्षराणि चकारादीनि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषां चैकैकमक्षरं यथायोगमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् सानुनासिकनिरनुनासिकभेदात् अल्पप्रयत्नमहाप्रयत्नभेदादिभिश्च संयुक्तसंयोगासंयुक्तसंयोगभेदाद् द्व्यादिसंयोगभेदादभिधेयानन्त्याच्च भिद्यमानमनन्तभेदं भवति, ते च तस्य स्वपर्यायाः, परपर्यायाश्चान्येऽनन्ता एव, एवं चानन्तपर्यायं तत्, आह च–

'एक्केक्कमक्खरं पुण सपरपज्जायभेयओ भिन्नं।
तं सव्वदव्वपज्जायरासिमाणं मुणेयव्वं॥१॥
जे लब्भइ केवलो से सवन्नसहिओ य पज्जवेऽगारो।
ते तस्स सपज्जाया सेसा परपज्जवा तस्स॥२॥'त्ति

(तद् एकैकमक्षरं स्वपर्यायभेदतो भिन्नं तत् पुनः सर्वद्रव्यपर्यायराशिप्रमाणं ज्ञातव्यम्॥१॥ यान् पर्यवान् लभते केवलोऽकारः सवर्णसहितश्चाथ ते तस्य स्वपर्यायाः शेषास्तस्य परपर्यायाः॥२॥) एवं चाक्षरात्मकत्वेनाक्षरपर्यायोपेतत्वादनन्ताः श्रुतज्ञानस्य पर्याया इति।

८/२१०,२११. 'एवं जाव' त्ति करणादिदं दृश्यं–'केवइया णं भंते! ओहिनाणपज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता ओहिनाणपज्जवा पन्नत्ता। केवइया णं भंते! मणपज्जवनाणपज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता मणपज्जवनाणपज्जवा पण्णत्ता। केवइया णं भंते केवलनाणपज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता केवलनाणपज्जवा पन्नत्ता' इति, तत्रावधिज्ञानस्य स्वपर्याया येऽवधिज्ञानभेदाः भवप्रत्ययक्षायोपशमिकभेदात् नारकतिर्यग्मनुष्यदेवरूपतत्स्वामिभेदाद् असङ्ख्यातभेदतद्विषयभूतक्षेत्रकालभेदाद् अनन्तभेदतद्विषयद्रव्यपर्यायभेदादविभागपलिच्छेदाच्च ते चैवमनन्ता इति, मनःपर्यायज्ञानस्य केवलज्ञानस्य च स्वपर्याया ये स्वाम्यादिभेदेन स्वगता विशेष्यास्ते चानन्ता अनन्तद्रव्यपर्यायपरिच्छेदापेक्षयाऽविभागपलिच्छेदापेक्षया वेति, एवं मत्यज्ञानादित्रयेऽप्यनन्तपर्यायत्वमूह्यमिति। (ग्रन्थाग्रम् ८०००)।

अथ पर्यवाणामेवाल्पबहुत्वनिरूपणायाह–

८/२१२-२१४. 'एएसि णं' मित्यादि, इह च स्वपर्यायापेक्षयैवैषामल्पबहुत्वमवसेयं, स्वपरपर्यायापेक्षया तु सर्वेषां तुल्यपर्यायत्वादिति, तत्र सर्वस्तोका मनःपर्यायज्ञानपर्यायास्तस्य मनोमात्रविषयत्वात्, तेभ्योऽवधिज्ञानपर्याया अनन्तगुणाः, मनःपर्यायज्ञानापेक्षयाऽवधिज्ञानस्य द्रव्यपर्यायतोऽनन्तगुणविषयत्वात्, तेभ्यः श्रुतज्ञानपर्याया अनन्तगुणा, ततस्तस्य रूप्यरूपिद्रव्यविषयत्वेनानन्तगुणविषयत्वात्, ततोऽप्याभिनिबोधिकज्ञानपर्याया अनन्तगुणाः, ततस्तस्याभिलाप्यानभिलाप्यद्रव्यादिविषयत्वेनानन्तगुणविषयत्वात्, ततः केवलज्ञानपर्याया अनन्तगुणाः, सर्वद्रव्य-पर्यायविषयत्वात्तस्येति। एवमज्ञानसूत्रेऽप्यल्पबहुत्वकारणं सूत्रानुसारेणोहनीयं, मिश्रसूत्रे तु स्तोकाः मनःपर्यायज्ञानपर्यवाः, इहोपपत्तिः प्राग्वत्, तेभ्यो विभङ्गज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, मनःपर्यायज्ञानापेक्षया विभङ्गस्य बहुतमविषयत्वात्। तथाहि–विभङ्गज्ञानमूर्ध्ववर्ति उपरिमग्रैवेयकादारभ्य सप्तमपृथिव्यन्ते क्षेत्रे तिर्यक् चासङ्ख्यातद्वीपसमुद्ररूपे क्षेत्रे यानि रूपिद्रव्याणि तानि कानिचिज्जानाति कांश्चित्तत्पर्यायांश्च, तानि च मनःपर्यायज्ञानविषयापेक्षयाऽनन्तगुणानीति, तेभ्योऽवधिज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, अवधेः सकलरूपिद्रव्यप्रतिद्रव्यासङ्ख्यातपर्यायविषयत्वेन विभङ्गापेक्षया अनन्तगुणविषयत्वात्, तेभ्योऽपि श्रुताज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः श्रुताज्ञानस्य श्रुतज्ञानवदोघादेशेन समस्तमूर्तामूर्तद्रव्यसर्वपर्यायविषयत्वेनावधिज्ञानापेक्षयाऽनन्त-गुणविषयत्वात्, तेभ्यः श्रुतज्ञानपर्यवा विशेषाधिकाः, केषाञ्चित् श्रुताज्ञानाविषयीकृतपर्यायाणां विषयीकरणाद्, यतो ज्ञानत्वेन स्पष्टावभासं तत् तेभ्योऽपि मत्यज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, यतः श्रुतज्ञानमभिलाप्यवस्तुविषयमेव, मत्यज्ञानं तु तदनन्तगुणानभिलाप्यवस्तुविषयमपीति। ततोऽपि मतिज्ञानपर्यवा विशेषाधिकाः, केषाञ्चिदपि मत्यज्ञानाविषयीकृतभावानां विषयीकरणात्, तद्धि मत्यज्ञानापेक्षया स्फुटतरमिति, ततोऽपि केवलज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, सर्वोद्भाविनां समस्तद्रव्यपर्यायाणामनन्यसाधारणावभासनादिति॥

अष्टमशते द्वितीयः॥८-२॥

तृतीय उद्देशकः

अनन्तरमाभिनिबोधिकादिकं ज्ञानं पर्यवतः प्ररूपितं, तेन च वृक्षादयोऽर्था ज्ञायन्तेऽतस्तृतीयोद्देशके वृक्षविशेषानाह–

८/२१६-२२१. 'केई' त्यादि, 'संखेज्जजीविय' त्ति सङ्ख्याता जीवा येषु सन्ति ते सङ्ख्यातजीविकाः, एवमन्यदपि पदद्वयं, 'जहा पन्नवणाए' त्ति यथा प्रज्ञापनायां तथाऽत्रेदं सूत्रमध्येयं, तत्र चैवमेतत्–

'ताले तमाले तक्कलि तेतलि साले य सालकल्लाणे।
सरले जायइ केयइ कंदलि तह चम्मरुक्खे य॥१॥
भुयरुक्खे हिंगुरुक्खे लवंगरुक्खे य होइ बोद्धव्वे।
पूयफली खज्जूरी बोद्धव्वा नालिएरी य॥२॥'

'जे यावन्ने तहप्पगारे' त्ति ये चाप्यन्ये तथाप्रकारा वृक्षविशेषास्ते सङ्ख्यातजीविका इति प्रक्रमः। 'एगट्ठिया य' त्ति एकमस्थिकं–फलमध्ये बीजं येषां ते एकास्थिकाः 'बहुबीयगा य' त्ति बहूनि बीजानि फलमध्ये येषां ते बहुबीजकाः–अनेकास्थिकाः 'जहा पन्नवणापए' त्ति यथा प्रज्ञापनाख्ये प्रज्ञापनाप्रथमपदे तथाऽत्रेदं सूत्रमध्येयं, तच्चैवं–

'निंबंबजंबुकोसंबसालअंकोल्लपीलुसलूया।
सल्लइमोयइमालुय बउलपलासे करंजे य॥१॥'

इत्यादि। तथा 'से किं तं बहुबीयगा?, बहुबीयगा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थियतेंदुकविट्ठे अंबाडगमाउलुंगबिल्ले य।
आमलगफणसदाडिम आसोट्ठे उंबरवडे य॥१॥'

इत्यादि। अन्तिमं पुनरिदं सूत्रमत्र–'एएसिं मूलावि असंखेज्जजीविया कंदावि खंधावि तयावि सालावि पवालावि, पत्ता पत्तेयजीविया पुप्फा अणेगजीविया फला बहुबीयग' त्ति, एतदन्तं चेदं वाच्यमिति दर्शयन्नाह–'जावे' त्यादि॥

अथ जीवाधिकारादिदमाह–

८/२२२-२२३. 'अहे' त्यादि, 'कुम्मे' त्ति 'कूर्मः' कच्छपः 'कुम्मावलिय' त्ति 'कूर्मावलिका' कच्छपपङ्क्तिः 'गोहे' त्ति गोधा सरीसृपविशेषः 'जं अंतर' न्ति यान्यन्तरालानि 'तं अंतरे' त्ति तान्यन्तराणि 'कलिंचेण व' त्ति क्षुद्रकाष्ठरूपेण 'आमुसमाणे व' त्ति आमृशन् ईषत् स्पृशन्नित्यर्थः 'संमुसमाणे य' त्ति संमृशन् सामस्त्येन स्पृशन्नित्यर्थः। 'आलिहमाणे व' त्ति आलिखन् ईषत् सकृद्वाऽऽकर्षन्। 'विलिहमाणे व' त्ति विलिखन् नितरामनेकशो वा कर्षन्। 'आच्छिंदमाणे व' त्ति ईषत् सकृद्वा छिन्दन्। 'विच्छिंदमाणे व' त्ति नितरामसकृद्वा छिन्दन्। 'समोडहमाणे' त्ति समुप्दहन् 'आबाहं व' त्ति ईषद्बाधां 'वाबाहं व' त्ति व्याबाधां–प्रकृष्टपीडाम्॥

कूर्मादिजीवाधिकारात्तदुत्पत्तिक्षेत्रस्य रत्नप्रभादेशचरमाचरमविभागदर्शनायाह–

८/२२४-२२६. 'कइ णं' मित्यादि, तत्र 'इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा अचरिमा?' इति, अथ केयं चरमाचरमपरिभाषा? इति, अत्रोच्यते, चरमं नाम प्रान्तं पर्यन्तवर्त्ति, आपेक्षिकं च चरमत्वं, यदुक्तम्–'अन्यद्रव्यापेक्षयेदं चरमं द्रव्यमिति, यथा पूर्वशरीरापेक्षया चरमं शरीर' मिति, तथा अचरमं नाम अप्रान्तं मध्यवर्त्ति, आपेक्षिकं चाचरमत्वं, यदुक्तं–'अन्यद्रव्यापेक्षयेदमचरमं द्रव्यं, यथाऽन्त्यशरीरापेक्षया मध्यशरीर' मिति इह स्थाने प्रज्ञापनादशमं पदं वाच्यं, एतदेवाह–'चरिमे' त्यादि, तत्र पदद्वयं दर्शितमेव, शेषं तु दर्श्यते–'चरिमाइं अचरिमाइं, चरिमंतपएसा अचरिमंतपएसा?, गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी नो चरिमा नो अचिरमा नो चरिमाइं नो अचरिमाइं नो चरिमंतपएसा नो अचरिमंतपएसा नियमा अचरिमं चरमाणि य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य' इत्यादि, तत्र किं चरिमा अचरिमा? इत्येकवचनान्तः प्रश्नः 'चरिमाइं अचरिमाइं' इति बहुवचनान्तः प्रश्नः, 'चरिमंतपएसा अचरिमंतपएस' त्ति चरिमाण्येवान्तवर्त्तित्वादन्ताश्चरिमान्तास्तेषां प्रदेशा इति समासः तथाऽचरममेवान्तो–विभागोऽचरमान्तस्तस्य प्रदेशा अचरमान्तप्रदेशाः। गोयमा! नो चरिमा नो अचरिमा' चरमत्व ह्येतदापेक्षिकम्, अपेक्षणीयस्याभावाच्च कथं चरिमा भविष्यति?, अचरमत्वमप्यपेक्षयैव भवति ततः कथमन्यस्यापेक्षणीयस्याभावेऽचरमत्वं भवति?, यदि हि रत्नप्रभाया मध्येऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्याश्चरमत्वं युज्यते, न चास्ति सा, तस्मान्न चरमासौ, तथा यदि तस्या बाह्यतोऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्या अचरमत्वं युज्यते न चास्ति सा तस्मान्नाचरमाऽसाविति, अयं च वाक्यार्थोऽत्र–किमियं रत्नप्रभा पश्चिमा उत मध्यमा? इति, तदेतदुभयमपि यथा न संभवति तथोक्तम्, अथ 'नो चरिमाइं नो अचरिमाइं' ति कथं?, यदा तस्याश्चरमव्यपदेशोऽपि नास्ति तदा चरमाणीति कथं भविष्यति?, एवमचरमाण्यपि, तथा 'नो चरिमंतपएसा नो अचरिमंतपएस' त्ति, अत्रापि चरमत्वस्याचरमत्वस्य चाभावात्तत्प्रदेशकल्पनाया अप्यभाव एवेत्यत उक्तं–नो चरिमान्तप्रदेशा नो अचरिमान्तप्रदेशा रत्नप्रभा इति, किं तर्हि 'नियमात्' नियमेनाचरमं च चरमाणि च, एतदुक्तं भवति–अवश्यंतयेयं केवलभङ्गवाच्या न भवति, अवयवावयविरूपत्वादस्या ज्ञेयप्रदेशावगाढत्वाद्यथोक्तनिर्वचनविषयैवेति। तथाहिरत्नप्रभा तावदनेन प्रकारेण व्यवस्थितेतेति विनेयजनानुग्रहाय लिख्यते, स्थापना चेयम्–

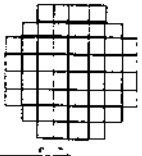

एवमवस्थितायां यानि प्रान्तेषु व्यवस्थितानि तदध्यासितक्षेत्रखण्डानि तानि तथाविधविशिष्टैकपरिणामयुक्तत्वाच्चरमाणि, यत्पुनर्मध्ये महद् रत्नप्रभाक्रान्तं क्षेत्रखण्डं तदपि तथाविधपरिणामयुक्तत्वादचरमं तदुभयसमुदायरूपा चेयमन्यथा तदभावप्रसङ्गात्, प्रदेशपरिकल्पनायां तु चरमान्तप्रदेशाश्चाचरमान्तप्रदेशाश्च, कथं?, ये बाह्यखण्डप्रदेशास्ते चरमान्तप्रदेशाः ये च मध्यखण्डप्रदेशास्तेऽचरमान्तप्रदेशा इति, अनेन चैकान्तदुर्णयनिरासप्रधानेन निर्वचनसूत्रेणावयवावयविरूपं वस्त्वित्याह, तयोश्च भेदाभेद इति। एवं शर्करादिष्वपि। अथ कियद्दूरं तद्वाच्यम्? इत्याह–'जावे' त्यादि ये वैमानिकभवसम्भवं स्पर्शं न लप्स्यन्ते पुनस्तत्रानुत्पादेन मुक्तिगमनात् ते वैमानिकाः स्पर्शचरमेण चरमाः, ये तु तं पुनर्लप्स्यन्ते ते त्वचरमा इति॥

अष्टमशते तृतीयः॥८-३॥

चतुर्थ उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके वैमानिका उक्तास्ते च क्रियावन्त इति चतुर्थोद्देशके ता उच्यन्ते। तत्र च रायगिहे' इत्यादिसूत्रम्–

८/२२८. 'एवं किरियापयं' ति, 'एवम्' एतेन क्रमेण क्रियापदं प्रज्ञापनाया द्वाविंशतितमं, तच्चैवं–'काइया अहिगरणिया पाओसिया पारियावणिया पाणाइवायकिरिया' इत्यादि, अन्तिमं पुनरिदं सूत्रमत्र 'एयासि णं भंते! आरंभियाणं परिग्गहियाणं अप्पच्चक्खाणियाणं मायावत्तियाणं मिच्छादंसणवत्तियाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा मिच्छादंसणवत्तियाओ किरियाओ' मिथ्यादृशामेव तद्भावात्, 'अप्पच्चक्खाणकिरियाओ विसेसाहियाओ' मिथ्यादृशामविरतसम्यग्दृशां च तासां भावात्, 'परिग्गहियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानां देशविरतानां च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासां भावात्, 'आरंभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानां प्रमत्तसंयतानां च तासां भावात्. 'मायावत्तियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानामप्रमत्तसंयतानां च तद्भावादिति, एतदन्तं चेदं वाच्यमिति दर्शयन्नाह–'जावे' त्यादि. इह गाथे–

मिच्छापच्चक्खाणे परिग्गहारंभमायकिरियाओ।
कमसो मिच्छा अविरयदेसपमत्तप्पमत्ताणं॥१॥
मिच्छत्तवत्तियाओ मिच्छद्दिट्ठीण चेव तो थोवा।
सेसाणं एक्केक्को वड्ढइ रासी तओ अहिया॥२॥

इति गतार्थे पूर्वोक्तेन॥

अष्टमशते चतुर्थोद्देशकः॥८-४॥

पंचम उद्देशकः

क्रियाधिकारात्पञ्चमोद्देशके परिग्रहादिक्रियाविषयं विचारं दर्शयन्नाह–

८/२३०. 'रायगिहे' इत्यादि. गौतमो भगवन्तमेवमवादीत्–'आजीविकाः' गोशालकशिष्या भदन्त! 'स्थविरान्' निर्ग्रन्थान् भगवतः 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारमवादिषुः, यच्च ते तान् प्रत्यवादिषुस्तद्गौतमः स्वयमेव पृच्छन्नाह–'समणोवासगस्स णं' मित्यादि, 'सामाइयकडस्स' त्ति कृतसामायिकस्य–प्रतिपन्नाद्यशिक्षाव्रतस्य, श्रमणोपाश्रये हि श्रावकः सामायिकं प्रायः प्रतिपद्यते इत्यत उक्तं श्रमणोपाश्रये आसीनस्येति, 'केइ' त्ति कश्चित्पुरुषः 'भंडं' ति वस्त्रादिकं वस्तु गृहवर्त्ति साधूपाश्रयवर्त्ति वा 'अवहरेज्ज' त्ति अपहरेत् 'से' त्ति स श्रमणोपासकः 'तं भंडं' ति तद्–अपहृतं भाण्डम् 'अणुगवेसमाणे' त्ति सामायिकपरिसमाप्त्यनन्तरं गवेषयन् 'सभंडं' ति स्वकीयं भाण्डं 'परायगं' ति परकीयं वा?, पृच्छतोऽयमभिप्रायः–स्वसम्बन्धित्वात्तत्स्वकीयं सामायिकप्रतिपत्तौ च परिग्रहस्य प्रत्याख्यातत्वादस्वकीयमतः प्रश्नः, अत्रोत्तरं–'सभंडं' ति स्वभाण्डं।

८/२३१. 'तेहिं' ति तैर्विवक्षितैर्यथाक्षयोपशमं गृहीतैरित्यर्थः, 'सीलेहिं' त्यादि, तत्र शीलव्रतानि–अणुव्रतानि गुणा–गुणव्रतानि विरमणानि–रागादिविरतयः प्रत्याख्यानं–नमस्कारसहितादि पौषधोपवासः–पर्वदिनोपवसनं तत एषां द्वन्द्वोऽतस्तैः, इह च शीलव्रतादीनां ग्रहणेऽपि सावद्य-योगविरत्या विरमणशब्दोक्तया प्रयोजनं तस्या एव परिग्रहस्यापरिग्रहतानिमित्तत्वेन भाण्डस्याभाण्डताभवनहेतुत्वादिति 'से भंडे अभंडे भवइ' ति 'तत् अपहृतं भण्डमभाण्डं भवत्यसंव्यवहार्यत्वात्॥

८/२३२. 'से केणं' ति अथ केन 'खाइ णं' ति पुनः अट्ठेणं' ति अर्थेन हेतुना 'एवं भवइ' त्ति एवंभूतो मनःपरिणामो भवति–'नो मे हिरन्ने' इत्यादि, हिरण्यादिपरिग्रहस्य द्विविध त्रिविधेन प्रत्याख्यातत्वात्, उक्तानुक्तार्थानुसङ्ग्रहेणाह–'नो मे' इत्यादि धनं–गणिमादि गवादि वा कनकं–प्रतीतं रत्नानि–कर्केतनादीनि मणयः–चन्द्रकान्तादयः मौक्तिकानि शङ्खाश्च प्रतीताः शिलाप्रवालानि–विद्रुमाणि, अथवा शिला–मुक्ताशिलाद्याः प्रवालानि–विद्रुमाणि रक्तरत्नानि–पद्मरागादीनि। तत एषां द्वन्द्वस्ततो विपुलानि–धनादीन्यादियंस्य स तत्तथा 'संत' त्ति विद्यमानं 'सार' त्ति प्रधानं 'सावएज्ज' त्ति स्वापतेयं द्रव्यम्, एतस्य च पदत्रयस्य कर्मधारयः, अथ यदि तद्भाण्डमभाण्डं भवति तदा कथं स्वकीयं तद्गवेषयति? इत्याशङ्क्याह–'ममत्ते' त्यादि, परिग्रहादिविषये मनोवाक्कायानां करणकारणे तेन प्रत्याख्याते ममत्वभावः पुनः–हिरण्यादिविषये ममतापरिणामः पुनः 'अपरिज्ञातः' अप्रत्याख्यातो भवति, अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात्, ममत्वभावस्य चानुमतिरूपत्वादिति॥

८/२३३. 'केइ जायं चरेज्ज' त्ति कश्चिद् उपपतिरित्यर्थः 'जायां' भार्यां 'चरेत्' सेवेत।

८/२३५. 'सुण्हं' ति स्नुषापुत्रभार्यां 'पेज्जबंधणे' त्ति प्रेमैव–प्रीतिरेव बन्धनं प्रेमबन्धनं तत्पुनः 'से' तस्य श्राद्धस्याव्यवच्छिन्नं भवति, अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात् प्रेमानुबन्धस्य चानुमतिरूपत्वादिति॥

८/२३६. 'समणोवासयस्स णं' ति तृतीयार्थत्वात् षष्ठ्याः श्रमणोपासकेनेत्यर्थः सम्बन्धमात्रविवक्षया वा षष्ठीयं, 'पुव्वमेव' त्ति प्राक्कालमेव सम्यक्त्वप्रतिपत्तिसमनन्तरमेवेत्यर्थः। 'अपच्चक्खाए' त्ति न प्रत्याख्यातो भवति, तदा देशविरतिपरिणामस्याज्जातत्वात्, ततश्च 'से णं' ति श्रमणोपासकः 'पश्चात्' प्राणातिपातविरतिकाले 'पच्चाइक्खमाणे' त्ति प्रत्याचक्षाणः प्राणातिपातमिति गम्यते किं करोति? इति प्रश्नः, वाचनान्तरे तु 'अपच्चक्खाए' इत्यस्य स्थाने 'पच्चक्खाए' त्ति दृश्यते 'पच्चाइक्खमाणे' इत्यस्य च स्थाने 'पच्चक्खावेमाणे' त्ति दृश्यते, तत्र च प्रत्याख्याता स्वयमेव प्रत्याख्यापयंश्च गुरुणा हेतुकर्त्रा प्राणातिपातप्रत्याख्यानं गुरुणाऽऽत्मानं ग्राहयन्नित्यर्थ इति।

८/२३७-२४०. 'तीतं' मित्यादि, 'तीतम्' अतीतकालकृतं प्राणातिपातं 'प्रतिक्रामति' ततो निन्दाद्वारेण निवर्त्तत इत्यर्थः 'पडुप्पन्नं' ति प्रत्युत्पन्नं–वर्त्तमानकालीनं प्राणातिपातं 'संवृणोति' न करोतीत्यर्थः 'अनागतं' भविष्यत्कालविषयं 'प्रत्याख्याति' न करिष्यामीत्यादि प्रतिजानीते॥ तिविहं तिविहेणं' मित्यादि, इह च नव विकल्पास्तत्र गाथा–

'तिन्नि तिया तिन्नि दुया तिन्नि य एक्का हवंति जोगेसु।
तिदुएक्क तिदुएक्कं तिदुएक्कं चेव करणाइं॥१॥'

(त्रयस्त्रिकास्त्रयो द्विकास्त्रयश्चैकका भवन्ति योगेषु।
त्रयो द्वावेकं त्रयो द्वावेकं त्रयो द्वावेकं चैव करणानि॥१॥)

एतेषु च विकल्पेष्वेकादयो विकल्पा लभ्यन्ते, आह च–

'एगो तिन्नि य तियगा दो नवगा तह य तिन्नि नव नव य।
भंगनवगस्स एवं भंगा एगूणपन्नासं॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(एकश्च त्रयस्त्रिंका द्वौ नवकौ तथा च त्रयो नव नव च। भङ्गनवकस्यैवं भङ्गा एकोनपञ्चाशत्॥१॥ व्रतेषु ७३५। स्थापना चेयम्–

३३३	२२२	१११	योगाः
३२१	३२१	३२१	कर.
१३३	३१९	३१९	ल.

तत्र 'तिविहं तिविहेणं' ति 'त्रिविधं' त्रिप्रकारं करणकारणानुमतिभेदात् प्राणातिपातयोगमिति गम्यते, 'त्रिविधेन' मनोवचनकायलक्षणेन करणेन प्रतिक्रामति, ततो निन्दनेन विरमति, 'तिविहं दुविहेणं' ति त्रिविधं बधकरणादिभेदात् 'द्विविधेन' करणेन मनःप्रभृतीनामेकतरवर्जितद्वयेन, 'तिविहं एगविहेणं' ति त्रिविधं तथैव 'एकविधेन' मनःप्रभृतीनामेकतरेण करणेनेति 'दुविहं तिविहेणं' 'द्विविधं' कृतादीनामन्यतमद्वयरूपं योगं 'त्रिविधेन' मनःप्रभृतिकरणेन, एवमन्येऽपि, तिविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे' इत्यादि, 'न करोति' न स्वयं विदधाति अतीतकाले प्राणातिपातं, मनसा–हा हतोऽहं येन मया तदाऽसौ न हत इत्येवमनुध्यानात्, तथा 'न नैव कारयति मनसैव यथा हा न युक्तं कृतं यदसौ परेण न घातित इति चिन्तनात्, तथा 'कुर्वन्तं' विदधानमुपलक्षणत्वात् कारयन्तं वा समनुजानन्तं वा परमात्मानं प्राणातिपातं 'नानुजानाति' नानुमोदयति, मनसैव वधानुस्मरणेन तदनुमोदनात्, एवं न करोति न कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा, तथाविधवचनप्रवर्त्तनात्, एवं न करोति कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन तथाविधाङ्गविकारकरणादिति, न चेह यथासङ्ख्यन्यायो न करोति मनसा न कारयति वचसा नानुजानाति कायेनेत्येवंलक्षणोऽनुसरणीयो, वक्तृविवक्षाऽधीनत्वात सर्वन्यायानां वक्ष्यमाणविकल्पायोगाच्चेति, एवं त्रिविधं त्रिविधेनेत्यत्र विकल्पे एक एव विकल्पः तदन्येषु पुनर्द्वितीयतृतीयचतुर्थेषु त्रयः २ पञ्चषष्ठयोर्नव नव सप्तमे त्रयः अष्टमनवमयोर्नव नवेति, एवं सर्वेऽप्येकोनपञ्चाशत्, एवमियमतीतकालमाश्रित्य कृता करणकारणादियोजना, अथवैवमेषाऽतीतकाले मनःप्रभृतीनां कृतं कारितमनुज्ञातं वा बधं क्रमेण न करोति न कारयति न चानुजानाति तन्निन्दनेन तदनुमोदननिषेधतस्ततो निवर्त्तत इत्यर्थः। तन्निन्दनस्याभावे हि तदनुमोदननिवृत्तेः कृतादिरसौ क्रियमाणादिरिव स्यादिति। वर्त्तमानकालं त्वाश्रित्य सुगमेव। भविष्यत्कालापेक्षया त्वेवमसौ–न करोति मनसा नं हनिष्यामीत्यस्य चिन्तनात्, न कारयति मनसैव तमहं घातयिष्यामीत्यस्य चिन्तनात्, नानुजानाति मनसा भाविनं वधमनुश्रुत्य हर्षकरणात्, एवं वाचा कायेन च तयोस्तथाविधयोः करणादिति, अथवैवमेव भविष्यत्काले मनःप्रभृतिना करिष्यमाणं कारयिष्यमाणमनुमंस्यमानं वा बधं क्रमेण न करोति न कारयति न चानुजानाति ततो निवृत्तिमभ्युपगच्छतीत्यर्थः, सर्वेषां चैषां मीलने सप्तचत्वारिंशदधिकं भङ्गकशतं भवति, इह च त्रिविधं त्रिविधेनेति विकल्पमाश्रित्याक्षेपपरिहारौ वृद्धोक्तावेवम्–

'न करेइच्चाइतियं गिहिणो कह होइ देसविरयस्स?
भन्नइ विसयस्स बहिं पडिसेहो अणुमईएवि॥१॥
केई भणंति गिहिणो तिविहं तिविहेण नत्थि संवरणं।
तं न जओ निद्दिट्ठं इहेव सुत्ते विसेसेउं॥२॥
तो कह निज्जुत्तीए ऽणुमईनिसेहोत्ति? सो सविसयंमि।
सामन्ने वऽन्नत्थ उ तिविहं तिविहेण को दोसो॥३॥'

(न करोतीत्यादि त्रिकं गृहिणो देशविरतस्य कथं भवति?। भण्यते विषयाद्बहिरनुमत्या अपि प्रतिषेधः॥१॥ केचिद्भणन्ति गृहिणस्त्रिविधं त्रिविधेन नास्ति संवरणं, तन्न यत इहैव सूत्रे विशिष्य निर्दिष्टम्॥२॥ तदा कथं निर्युक्तावनुमति-निषेधः? इति, स स्वविषये, सामान्ये वा, तथा चान्यत्र विशेषे वा त्रिविधं त्रिविधेन स्यात् को दोषः?॥३॥)

इह च 'सविसयंमि' ति स्वविषये यथानुमतिरस्ति 'सामन्ने व' ति सामान्ये वाऽविशेषे प्रत्याख्याने सति 'अण्णत्थ उ' ति विशेषे स्वयंभूरमणजलधिमत्स्यादौ–

'पुत्ताइसंतइनिमित्तमेत्तमेगारसिं पवण्णस्स।
जंपंति केइ गिहिणो दिक्खाभिमुहस्स तिविहंपि॥१॥'

(पुत्रादिसन्ततिनिमित्तमात्रमेकादशीं प्रतिमां प्रपन्नस्य गृहिणस्त्रिविधं त्रिविधेन केचित् जल्पन्ति दीक्षाभिमुखस्य॥१॥) यथा च त्रिविधं त्रिविधेनेत्यत्राक्षेपपरिहारौ कृतौ तथाऽन्यत्रापि कार्यौ यत्रानुमतेरनुप्रवेशोऽस्तीति। अथ कथं मनसा करणादि?, उच्यते, यथा वाक्काययोगिनि, आह च–

'आह कहं पुण मणसा करणं कारावणं अणुमई य?।
जह वइतणुजोगेहिं करणाई तह भवे मणसा॥१॥
तयहीणत्ता वइतणुकरणाईणं च अहव मणकरणं।
सावज्जजोगमणणं पन्नत्तं वीयरागेहिं॥२॥
कारावण पुण मणसा चिंतेइ करेउ एस सावज्जं।
चिंतेई य कए उण सुट्ठु कयं अणुमई होई॥३॥'

इति (आह कथं पुनर्मनसाकरणं कारापणमनुमतिश्च। यथा वाक्तनूयोगाभ्यां करणादि तथा मनसा भवेत्॥१॥ तदधीनत्वाद्वाक्तनूकरणादीनां अथवा मनःकरणं सावद्ययोगमननं प्रज्ञप्तं वीतरागैः॥२॥ मनसा पुनः कारणं एष सावद्यं करोत्विति चिन्तयति कृते पुनः सुष्ठु कृतमित्यनुमतिर्भवति चिन्तयति॥३॥'); इह च पञ्चस्वणुव्रतेषु प्रत्येकं सप्तचत्वारिंशदधिकस्य भङ्गशतस्य भावाद् भङ्गकानां सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि भवन्तीति। यत् स्थविरा आजीविकैः श्रमणोपासकगतं वस्तु पृष्टाः गौतमेन च भगवंस्तन्नावदुक्तम्, अथानन्तरोक्तशीलाः श्रमणोपासका एव भवन्ति न पुनराजीविकोपासकाः आजीविकानां गुणित्वेनाभिमता अपीति दर्शयन्नाह–'एए खलु' इत्यादि, 'एते खलु' एत एव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिदृश्यमाना निर्ग्रन्थसत्का इत्यर्थः 'एरिसग' त्ति ईदृशकाः प्राणातिपातादिष्वतीतप्रतिक्रमणादिमन्तः, 'नो खलु' ति नैव 'एरिसग' त्ति उक्तरूपा उक्तार्थानामपरिज्ञानात् 'आजीविओवासए' ति गोशालक शिष्यश्रावकाः॥

अथैतन्मध्यवर्त्यर्थस्य विशेषतः समर्थनार्थमाजीविकसमयार्थस्य तदुपासकविशेषस्वरूपस्य चाभिधानपूर्वकमाजीविकोपासकापेक्षया श्रमणोपासकानुत्कर्षयितुमाह–

८/२४१. 'आजीविए' त्यादि, आजीविकसमयः–गोशालकप्रसिद्धान्तः तस्य 'अथमट्ठे' ति इदमभिधेयम्–'अक्खीणपरिभोइणो सव्वे सत्त' ति अक्षीणं–अक्षीणायुष्कमप्रासुकं परिभुञ्जत इत्येवंशीला अक्षीणपरिभोगिनः, अथवा इन्प्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वादक्षीणपरिभोगा–अनपगताहारभोगासक्तय इत्यर्थः 'सर्वे सत्त्वाः' असंयताः सर्वे प्राणिनः, यद्येवं ततः किम्? इत्याह–'से हंते' त्यादि, 'से' ति ततः 'हंत' ति हत्वा लगुडादिना अभ्यवहार्यं प्राणिजातं 'छित्त्वा' असिपुत्रिकादिना द्विधा कृत्वा 'भित्त्वा' शूलादिना भिन्नं कृत्वा 'लुप्त्वा' पक्षादिलोपनेन 'विलुप्य' त्वचो विलोपनेन 'अपहार्य' विनाश्याहारमाहारयन्ति।

८/२४२. 'तत्थ' ति 'तत्र' एवं स्थितेऽसंयतसत्त्ववर्गे हननादि दोषपरायणे इत्यर्थः आजीविकसमये वाऽधिकरणभूते द्वादशेति विशेषानुष्ठानत्वात् परिगणिता आनन्दादिश्रमणोपासकवदन्यथा बहवस्ते, 'ताले' ति तालाभिधान एकः, एवं तालप्रलम्बादयोऽपि, 'अरिहंत-देवयाग' ति गोशालकस्य तत्कल्पनयाऽर्हत्त्वात्, 'पंचफल-पडिक्कंत' ति फल्गुपञ्चकान्निवृत्ताः, उदुम्बरादीनि च पञ्च पदानि पञ्चम्यन्तबहुवचनान्तानि प्रतिक्रान्तशब्दानुस्मरणादिति, 'अणिल्लंछणाहिं' ति अनर्द्धितकैः 'अनक्कभिन्नेहिं' ति अनस्तितैः। 'एतेवि ताव एवं इच्छंति' एतेऽपि तावद्विशिष्टयोग्यताविकला इत्यर्थः एवमिच्छन्ति–अमुना प्रकारेण वाञ्छन्ति धर्मामिति गम्यम्। किमंग पुणे' त्यादि, किं पुनर्ये इमे श्रमणोपासका भवन्ति ते नेच्छन्तीति गम्यम्?, इच्छन्त्येवेति, विशिष्टतरदेवगुरुप्रवचनसमाश्रितत्वादेषां, 'कम्मादाणाइं' ति कर्माणि–ज्ञानावरणादीन्यादीयन्ते यैस्तानि कर्मादानानि, अथवा कर्माणि च तान्यादानानि च-कर्मादानानि कर्महेतव इति विग्रहः, 'इंगाले' त्यादि, अङ्गारविषयं कर्म अङ्गारकर्म-अङ्गाराणां करणविक्रयस्वरूपम्, एवमन्येष्वपरेषु यदन्यदपीष्टकापाकादिकं कर्म तदङ्गारकर्मोच्यते। अङ्गारशब्दस्य तदन्योपलक्षणत्वात्, 'वणकम्मे' ति वनविषयं कर्म वनकर्म–वनच्छेदनविक्रयरूपम्, एवं बीजपेषणाद्यपि, 'साडीकम्मे' ति शकटानां वाहनघटनविक्रयादि। 'भाडीकम्मे' ति भाट्या–भाटकेन कर्म अन्यदीयद्रव्याणां शकटादिभिर्देशान्तरनयनं गोगृहादिसमर्पणं वा भाटीकर्म। 'फोडीकम्मे' ति स्फोटिः–भूमेः स्फोटने हलकुद्दालादिभिः सैव कर्म स्फोटकर्म। 'दंतवाणिज्जे' ति दन्तानां–हस्तिविषाणानाम् उपलक्षणत्वादेषां चर्मचामरपूतिकेशादीनां वाणिज्यं–क्रयविक्रयो दन्तवाणिज्यं। 'लक्ख-वाणिज्जे' ति लाक्षया आकरे गृहीतेः विक्रयः, एतच्च त्रसजन्तुसंसक्तनिमित्तस्यान्यस्यापि तिलादेर्द्रव्यस्य यद्वाणिज्यं तस्योपलक्षणं। 'केसवाणिज्जे' ति केशवज्जीवानां गोमहिषीस्त्रीप्रभृतिकानां विक्रयः। 'रसवाणिज्जे' त्ति मद्यादिरसविक्रयः। 'विसवाणिज्जे' ति विषयोपलक्षणत्वच्छस्त्रवाणिज्यस्वाप्यनेनावरोधः। 'जंतपीलणकम्मे' ति यन्त्रेण तिलेक्षवादीनां यत्पीडनं तदेव कर्म यन्त्रपीडनकर्म्म। 'निल्लंछणकम्मे' ति निर्लाञ्छनमेव–वर्द्धितककरणमेव कर्म निर्लाञ्छनकर्म्म। 'दवग्गिदावणया' ति दवाग्नेः–दवस्य दापनं–दाने प्रयोजकत्वमुपलक्षणत्वाद्दानं च दवाग्निदापनं तदेव प्राकृतत्वाद् 'दवग्गिदावणया'। 'सरदहतलायपरिसोसणया' ति सरसः–स्वयंसंभूतजलाशयविशेषस्य ह्रदस्य–नद्यादिषु निम्नतरप्रदेशलक्षणस्य तडागस्य–कृत्रिमजलाशयविशेषस्य परिशोषणं यत्तथा तदेव प्राकृतत्वात् स्वार्थिकतप्रत्यये 'सरदहतलाय-परिसोसणया'। 'असईपोसणया' ति दास्याः पोषणं तद्भाटी-ग्रहणाय, अनेन च कुर्कुटमार्जारादिक्षुद्रजीवपोषणमप्युपलक्षितं दृश्यमिति। 'इच्चेते' ति 'इति' एवंप्रकाराः 'एते' निर्ग्रन्थसत्काः 'सुक्क' ति शुक्ला अभिन्नवृत्ता अमत्सरिणः कृतज्ञाः सदारम्भिणो हितानुबन्धाश्च 'सुक्काभिजाइ य' त्ति 'शुक्लाभिजात्या' शुक्लप्रधानाः॥

अनन्तरं देवतयोपपत्तारो भवन्तीत्युक्तमथ देवानेव भेदत आह–

८/२४३. 'कतिविहा णं' मित्यादि॥

अष्टमशते पञ्चमः॥८-५॥

षष्ठम उद्देशकः

पञ्चमे श्रमणोपासकाधिकार उक्तः, षष्ठेऽप्यसावेवोच्यते। इत्येवं सम्बन्धस्यास्येदं सूत्रम्–

८/२४५. 'समणे' त्यादि, 'किं कज्जइ' ति किं फलं भवतीत्यर्थः, 'एगंतसो' ति एकान्तेन तस्य श्रमणोपासकस्य, 'नत्थि य से' ति नास्ति चैतद् यत् 'से' तस्य पापं कर्म 'क्रियते' भवति।

८/२४६. अप्रासुकदाने इदेति, 'बहुतरिय' ति पापकर्मापेक्षया 'अप्पतराए' ति अल्पतरं निर्जरापेक्षया, अयमर्थः–गुणवते पात्रायाप्रासुकादिद्रव्यदाने चारित्रकायोपष्टम्भो। जीवघाते व्यवहारतस्तच्चारित्रबाधा च भवति, ततश्च–चारित्रकायोपष्टम्भान्निर्जरा जीवघातादेश्च पापं कर्म, तत्र च स्वहेतुसामर्थ्यात्पापापेक्षया बहुतरा निर्जरा निर्जरापेक्षया चाल्पतरं पापं भवति, इह च विवेचका मन्यन्ते–असंस्तरणादिकारणत एवाप्रासुकादिदाने बहुतरा निर्जरा भवति नाकारणे, यदुक्तम्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'संथरणंमि असुद्धं दोण्हवि गेण्हंतदिंतयाणऽहियं।
आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे॥१॥'

इति. (निर्वाहेऽशुद्धं गृह्णद्ददतोर्द्वयोरप्यहितं। आतुरदृष्टान्तेन तदेवासंस्तरणे हितं॥१॥) अन्ये त्वाहुः—अकारेणऽपि गुणवत्पात्रायाप्रासुकादिदानं परिणामवशाद्बहुतरा निर्जरा भवत्यल्पतरं च पापं कर्मेतिः निर्विशेषणत्वात् सूत्रस्य परिणामस्य च प्रमाणत्वात्, आह च—

'परमरहस्समिसीणं समत्तगणिपिडगज्झरिय सारागं।
परिणामियं पमाणं निच्छयमवलंबमाणाणं॥१॥'

(सागरस्तमणिपिटकस्मारितसाराणामृषीणां। परमरहस्यं निश्चयमवलम्बयतां पारिणामिकं प्रमाणम् (विवादास्पदे दाने)॥१॥) यच्चोच्यते 'संथरणंमि असुद्धं' मित्यादिनाऽशुद्धदोरपि दातृगृहीत्रोरहितायेति तद्ग्राहकस्य व्यवहारतः संयमविराधनात् दायकस्य च लुब्धकदृष्टान्तभावितत्वेनाव्युत्पन्नत्वेन वा ददतः शुभाल्पायुष्कतानिमित्तत्वात्, शुभमपि चायुरल्पमहितं विवक्षया. शुभाल्पायुष्कतानिमित्तत्वं चाप्रासुकादिदानस्याल्पायुष्कताफलप्रतिपादकसूत्रे प्राक् चर्चितं, यत्पुनरिह तन्त्वं तत्केवलिगम्यमिति।

तृतीयेसूत्रे

८/२४७. 'अस्संजयअविरये' त्यादिनाऽगुणवान् पात्रविशेष उक्तः 'फासुएण वा अफासुएण वा' इत्यादिना तु प्रासुकाप्रासुकादेर्दानस्य पापकर्मफलता निर्जराया अभावश्चोक्तः, असंयमोपष्टम्भस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्। यश्च प्रासुकादौ जीवघाताभावेन अप्रासुकादौ च जीवघातसद्भावेन विशेषः सोऽत्र न विवक्षितः पापकर्मणो निर्जराया अभावस्यैव च विवक्षितत्वादिति, सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दानं तच्चिन्तितं, यत्पुनरनुकम्पादानमौचित्यदानं वा तत्र चिन्तितं, निर्जरायास्तत्रानपेक्षणीयत्वाद्, अनुकम्पौचित्ययोरेव चापेक्षणीयत्वादिति, उक्तञ्च—

'मोक्खत्थं जं दाणं तं पइ एसो विही समक्खाओ।
अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं न कयाइ पडिसिद्धं॥१॥'

इति (मोक्षार्थं यद्दानं तत्प्रतिविधिरेष भणितः। अनुकम्पादानं पुनर्न कदाचित्प्रतिषिद्धम्॥१॥) दानाधिकारादेवेदमाह—

८/२४८. 'निग्गंथं चेत्यादि. इह चशब्दः पुनरर्थस्तस्य चैवं घटना—निर्ग्रन्थाय संयतादिविशेषणाय प्रासुकादिदाने गृहपतेरेकान्तेन निर्जरा भवति, निर्ग्रन्थः पुनः 'गृहपतिकुलं' गृहिगृहं 'पिंडवायपडियाए' त्ति पिण्डस्य पातो—भोजनस्य पात्रे गृहस्थान्निपतनं तत्र प्रतिज्ञा—ज्ञानं बुद्धिः पिण्डपातप्रतिज्ञा तया, पिण्डस्य पातो मम पात्रे भवत्वितिबुद्ध्येत्यर्थः, 'उवनिमंतेज्ज' त्ति भिक्षो! गृहाणेदं पिण्डद्वयमित्यभिदध्यादित्यर्थः, तत्र च 'एग' मित्यादि, 'से य' त्ति स पुनर्निर्ग्रन्थः 'तं' ति स्थविरपिण्डं 'थेरा य से' त्ति स्थविराः पुनः 'तस्य' निर्ग्रन्थस्य सिय त्ति स्युर्भवन्तीत्यर्थः, 'दावए' त्ति दद्यात् दापयेद्वा अदनादानप्रसङ्गात्, गृहपतिना हि पिण्डोऽसौ विवक्षितस्थविरेभ्य एव दत्तो नान्यस्मै इति, 'एगंते' त्ति जनालोकवर्जिते 'अणावाए' त्ति जनसंपातवर्जिते 'अचित्ते' त्ति अचेतने. नाचेतनामात्रेणैवेत्यत आह—'बहुफासुए' त्ति बहुधा प्रासुकं बहुप्रासुकं तत्र. अनेन चाचिरकालकृते विकृते विस्तीर्णे दूरावगाढे त्रसप्राणबीजरहिते चेति सद्गृहीतं द्रष्टव्यमिति

८/२४९. 'से य ते' त्ति स च निर्ग्रन्थः 'तौ स्थविरपिण्डौ 'पडिग्गाहेज्ज' त्ति प्रतिगृह्णीयादिति॥

निर्ग्रन्थप्रस्तावादिदमाह—

८/२५१-२५३. निग्गंथेण ये' त्यादि, इह चशब्दः पुनरर्थस्तस्य घटना चैवं—निर्ग्रन्थं कश्चित् पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविष्टं पिण्डादिनोपनिमन्त्रयेत् तेन च निर्ग्रन्थेन पुनः 'अकिच्चट्ठाणे' त्ति कृत्यस्य—करणस्य स्थानं—आश्रयः कृत्यस्थानं तन्निषेधः अकृत्यस्थानं— मूलगुणादिप्रतिसेवनरूपोऽकार्यविशेषः। 'तस्स णं' ति तस्य निर्ग्रन्थस्य सञ्ज्ञानानुतापस्य। 'एवं भवति' एवं प्रकारं मनो भवति 'एयस्स ठाणस्स' त्ति विभक्तिपरिणामाद् 'एतत्स्थानम्' अनन्तरसेवितम् 'आलोचयामि' स्थापनाचार्यनिवेदनेन 'प्रतिक्रमामि' मिथ्या दुष्कृत दानेन 'निन्दामि' स्वयमक्षं स्वस्याकृत्यस्थानस्य वा कृत्यतेन 'गर्हे' गुरुसमक्षं कृत्यतेन 'विउट्टामि' त्ति विवेटयामि—तदनुबन्धं छिनद्मि 'विशोधयामि' प्रायश्चित्तपङ्क्तं प्रायश्चित्ताभ्युपगमेन 'अकरणतया' अकरणेन 'अभ्युत्तिष्ठामि' अभ्युत्थितो भवामीति 'अर्हारिहं' ति यथार्हं यथोचितम्, एतच्च गीतार्थनायामेव भवति नान्यथा, 'अंतियं' ति समीपं गत इति शेषः 'थेरा य अमुहा सिय' त्ति स्थविराः पुनः 'अमुखाः' निर्वचः स्युर्वाचादिदोषात्. ततश्च तस्यालोचनादि-परिणामे सत्यपि नालोचनादि संपद्यत इत्यतः प्रश्नयति—'से ण' मित्यादि, 'आराहए' त्ति मोक्षमार्गस्याराधकः शुद्ध इत्यर्थः भावस्य शुद्धत्वात्। संभवति चालोचनापरिणतौ सत्यां कथञ्चित्तदप्राप्तावप्याराधकत्वं, यत उक्तं मरणमाश्रित्य—

'आलोयणापरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ मरइ अंतरे च्चिय तहावि सुद्धोत्ति भावाओ॥१॥'

इति (आलोचनापरिणतः सम्यक् संप्रस्थितो गुरुसकाशे। यदि म्रियतेऽन्तरेव तथाऽपि शुद्ध इति भावात्॥१॥) स्थविरान्तमभेदेन चेह द्वे अमुखसूत्रे, द्वे कालगतसूत्रे, इत्येवं चत्वारि असंप्राप्तसूत्राणि ४, संप्राप्तसूत्राण्यप्येवं चत्वार्येव ४, एवमेतान्यष्टौ पिण्डपातार्थं गृहपतिकुले प्रविष्टस्य, एवं विचारभूम्यादावष्ट ८, एवं ग्रामगमनेऽष्टौ, एवमेतानि चतुर्विंशतिः सूत्राणि।

८/२५४. एवं निर्ग्रन्थिकाया अपि चतुर्विंशतिः सूत्राणीति॥

अथानालोचित एव कथमाराधकः? इत्याशङ्कामुत्तरं चाह—

८/२५५. 'से केणट्ठेण' मित्यादि, 'तणसूयं व' ति तृणाग्रं वा 'छिज्जमाणे छिन्ने' त्ति क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदेन प्रतिक्षणं कार्यस्य निष्पत्तेः छिद्यमानं छिन्नमित्युच्यते, एवमसावालोचना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्यितो सत्यामाराधनाप्रवृत्त आराधक एवेति। 'अहयं' व त्ति 'अहतं' नवं 'धोयं' ति प्रक्षालितं 'तंतुग्गयं' ति तन्त्रोद्गतं तूरिवेमदेरुत्तीर्णमात्रं 'मंजिट्ठादोणीए' त्ति मञ्जिष्ठारागभाजने॥

आराधकश्च दीपवद्दीप्यत इति दीपस्वरूपं निरूपयन्नाह–

८/२५६. 'पदीवस्से' त्यादि. 'झियायमाणस्स' त्ति ध्मायतो ध्मायमानस्य वा ज्वलत इत्यर्थः 'पदीवे' त्ति प्रदीपो दीपयष्ठ्यादिसमुदायः 'झियाइ' त्ति ध्मायति ध्मायते वा ज्वलति 'वट्टि' त्ति दीपयष्टिः 'वत्ति' त्ति दश 'दीवचंपए' त्ति दीपस्थगनकं 'जोइ' ति अग्निः॥

ज्वलनप्रस्तावादिदमाह–

८/२५७. 'अगारस्स ण' मित्यादि, इह चागारं– कुटीगृहं 'कुड्ड' नि भित्तयः 'कडण' त्ति वृद्धिकाः 'धारण' त्ति बलहरणाधारभूते स्थूणे 'बलहरणं' ति धारणद्वोरुपरिवर्ति तिर्यगायतकाष्ठं 'मोभ' इति यत्प्रसिद्धं 'वंस' त्ति वंशाश्छित्त्वराधारभूताः 'मल्ल' ति मल्लाः–कुड्यावष्टम्भन-स्थाणवः बलहरणा धारणाश्रितानि वा छित्त्वराधारभूतानि ऊर्द्ध्वंस्थितानि काष्ठानि 'वाग' ति वल्का–वंशादिबन्धनभूता वटादित्वचः 'छित्तर' त्ति छित्वरादि–वंशादिमयानि छादनाधार-भूतानि किलिञ्जानि 'छाणे' ति छादनं दर्भादिमयं पटलमिति॥

इत्थं च तेजसं ज्वलनक्रिया परशरीराश्रयेति परशरीरौदारिकाद्याश्रित्य जीवस्य नारकादेश्च क्रिया अभिधातुमाह–

८/२५८. 'जीवे णं' मित्यादि, 'ओरालियसरीराओ' नि औदारिकशरीरात्–परकीयौदारिकशरीरमाश्रित्य कतिक्रियो जीवः? इति प्रश्नः, उत्तरं तु 'सिय तिकिरिए' त्ति यदैको जीवोऽन्यपृथिव्यादेः सम्बन्ध्यौदारिकशरीरमाश्रित्य कायं व्यापारयति तदा त्रिक्रियः कायिक्यधिकरणिकीप्राद्वेषिकीनां भावात्, एतासां च परस्परेणाविनाभूतत्वात् स्यात्त्रिक्रिय इत्युक्तं न पुनः स्यादेकक्रियः स्याद्द्विक्रिय इति। अविनाभावश्च तासामेवम्– अधिकृतक्रिया ह्यवीतरागस्यैव नेतरस्य, तथाविधकर्मबन्धहेतुत्वात्, अवीतरागकायस्य चाधिकरणत्वेन प्रद्वेषान्वितत्वेन च कायक्रियासद्भावे इतरयोरवश्यंभावः इतरभावे च कायिकीसद्भावः, उक्तञ्च प्रज्ञापनायामिहार्थे–'जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जइ, जस्स अहिगरणियाकिरिया कज्जइ तस्सवि काइया किरिया नियमा कज्जइ' इत्यादि, तथाऽऽद्यक्रियात्रयसद्भावे उत्तरक्रियाद्वयं भजनया भवति, यदाह–'जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया सिय कज्जइ सिय नो कज्जइ' इत्यादि, ततश्च यदा कायव्यापारद्वारेणाद्यक्रियात्रय एव वर्त्तते न तु परितापयति न चातिपातयति तदा त्रिक्रिय एवत्यनोऽपि स्यात्त्रिक्रिय इत्युक्तं, यदा तु परितापयति तदा चतुष्क्रियः, आद्यक्रियात्रयस्य तत्रावश्यंभावात्, यदा त्वतिपातयति तदा पञ्चक्रियः। आद्यक्रियाचतुष्कस्य तत्रावश्यंभावात्, उक्तञ्च–'जस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया नियमा कज्जई' त्यादीति। अत एवाह–'सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए' त्ति, तथा 'सिय अकिरिय' त्ति वीतरागावस्थामाश्रित्य, तस्या हि वीतरागत्वादेव न सन्त्यधिकृतक्रिया इति॥

८/२५९. 'नेरइए णं' मित्यादि. नारको यस्मादौदारिकशरीरवन्तं पृथिव्यादिकं स्पृशति परितापयति विनाशयति च तस्मादौदारिकात् स्यात्त्रिक्रिय इत्यादि, अक्रियस्त्वयं न भवति, अवीतरागत्वेन क्रियाणामवश्यंभावित्वादिति।

८/२६०. 'एवं चेव त्ति स्यात्त्रिक्रिय इत्यादि सर्वेष्वसुरादिपदेषु वाच्यमित्यर्थः, 'मणुस्से जहा जीवे' त्ति जीवपदे इव मनुष्यपदेऽक्रियत्वमपि वाच्यमित्यर्थः, जीवपदे मनुष्यसिद्धापेक्षयैवाक्रियत्वस्याधीतत्वादिति।

८/२६१-२६६. 'ओरालियसरीरेहिंतो' नि औदारिकशरीरेभ्य इत्येवं बहुत्वापेक्षोऽयमपरो दण्डकः, एवमेतौ जीवस्यैकत्वेन द्वौ दण्डकौ, एवमेव च जीवस्य बहुत्वेनापरौ द्वौ, एवमौदारिकशरीरापेक्षया चत्वारो दण्डका इति॥

८/२६७-२६८. 'जीवे ण' मित्यादि जीवः परकीयं वैक्रियशरीरमाश्रित्य कतिक्रियः?, उच्यते, स्यात्त्रिक्रिय इत्यादि, पञ्चक्रियश्चेह नोच्यते, प्रागतिपातस्य वैक्रियशरीरिणः कर्तुमशक्यत्वाद्, अविरतिमात्रस्य चेहाविवक्षितत्वाद्, अत एवोक्तं–'पंचम-किरिया न भन्नइ' त्ति, 'एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारयंपि तेयगंपि कम्मगंपि भाणियव्वं' ति, अनेनाहारकादिशरीरत्रयमप्याश्रित्य दण्डकचतुष्टयेन नैरयिकादिजीवानां त्रिक्रियत्वं चतुष्क्रियत्वं चोक्तं पञ्चक्रियत्वं तु निवारितं, मारयितुमशक्यत्वात्तस्येति, अथ नारकस्याधोलोकवर्त्तित्वादाहारकशरीरस्य च मनुष्यलोकवर्त्तित्वेन तत्क्रियाणामविषयत्वात्। कथमाहारकशरीरमाश्रित्य नारकः स्यात्त्रिक्रियः स्याच्चतुष्क्रिय इति?, अत्रोच्यते, यावत्पूर्वशरीरं व्युत्सृष्टं जीवनिर्वर्त्तितपरिणामं न त्यजति तावत्पूर्वभावप्रज्ञापनानयमतेन निर्वर्त्तकजीवस्यैवेति व्यपदिश्यते। घृतघटन्यायेनेत्यतो नारकपूर्वभवदेहो नारकस्यैव तद्देशेन च मनुष्यलोकवर्त्तिनाऽऽस्थ्यादिरूपेण यदाहारकशरीरं स्पृश्यते परिताप्यते वा तदाहारकदेहान्नारकस्त्रिक्रियश्चतुष्क्रियो वा भवति, कायिकीभावे इतरयोरवश्यंभावात्। पारितापनिकीभावे चाद्यत्रयस्यावश्यंभावादिति। एवमिहान्यदपि वि (त्रि) षयमवगन्तव्यं, यच्च तैजसकार्म्मणशरीरापेक्षया जीवानां परितापकत्वं तदौदारिकाद्याश्रितत्वेन तयोरवसेयं, स्वरूपेण तयोः परितापयितुमशक्यत्वादिति।

अष्टमशते षष्ठोद्देशः॥ ८-६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम उद्देशकः

षष्ठोद्देशके क्रियाव्यतिकर उक्त इति क्रियाप्रस्तावात् सप्तमोद्देशके प्रद्वेषक्रियानिमित्तकोऽन्ययूथिकविवादव्यतिकर उच्यते। इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

८/२७१. 'तेण' मित्यादि।

८/२७३. तत्र 'अज्जो' त्ति हे आर्याः! 'तिविहं तिविहेणं' ति त्रिविधं करणादिकं योगमाश्रित्य त्रिविधेन मनःप्रभृतिकरणेन।

८/२७५. 'अदिन्नं साइज्जह' त्ति अदत्तं स्वदध्वे अनुमन्यध्व इत्यर्थः।

८/२७७. 'दिज्जमाणे अदिन्ने' इत्यादि दीयमानमदत्तं, दीयमानस्य वर्त्तमानकालत्वाद् दत्तस्य चातीतकालवर्त्तित्वाद् वर्त्तमानातीतयोश्चात्यन्तभिन्नत्वाद्दीयमानं दत्तं न भवति दत्तमेव दत्तमिति व्यपदिश्यते, एवं प्रतिगृह्यमाणादावपि, तत्र दीयमानं दायकापेक्षया प्रतिगृह्यमाणं ग्राहकापेक्षया 'निसृज्यमानं' क्षिप्यमाणं पात्रापेक्षयेति। 'अंतरे' त्ति अवसरे, अयमभिप्रायः– यदि दीयमानं पात्रेऽपतितं सदत्तं भवति तदा तस्य दत्तस्य सतः पात्रपतनलक्षणं ग्रहणं कृतं भवति, यदा तु तद्दीयमानमदत्तं तदा पात्रपतनलक्षणं ग्रहणमदत्तस्येति न्याय्यमिति।

निर्ग्रन्थोत्तरवाक्ये तु।

८/२८०. 'अम्हे णं अज्जो! दिज्जमाणे दिन्ने' इत्यादि यदुक्तं तत्र क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदाद्दीयमानत्वादेर्दत्तत्वादि समवसेयमिति।

अथ दीयमानमदत्तमित्यादेर्भवन्मतत्वाद् यूयमेवासंयतत्वादिगुणा इत्यावेदनायान्ययूथिकान् प्रति स्थविराः प्राहुः–

८/२८८.

'तुन्झे णं अज्जो! अप्पणा चेवे' त्यादि, 'रीयं रीयमाण' त्ति 'रीतं' गमनं 'रीयमाणाः' गच्छन्तो गम्नं कुर्वाणा इत्यर्थः 'पुढविं पेच्चेह' पृथिवीमाक्रामथेत्यर्थः 'अभिहणह' त्ति पादाभ्यामाभिमुख्येन हथ 'वत्तेह' त्ति पादाभिघातेनैव 'वर्तयथ' श्लक्ष्णतां नयथ 'लेसेह' त्ति 'श्लेषयथ' भूम्यां श्लिष्टां कुरुथ 'संघाएह' त्ति 'सङ्घातयथ' संहतं कुरुथ 'संघट्टेह' त्ति 'सङ्घट्टयथ' स्पृशथ 'परितावेह' त्ति 'परितापयथ' समन्ताज्जातसन्तापां कुरुथ 'किलामेह' त्ति क्लमयथ– मारणान्तिकसमुद्घातं गमयथेत्यर्थः 'उवद्दवेह' त्ति उपद्रवयथ मारयथेत्यर्थः 'कायं व' त्ति 'कायं' शरीरं प्रतीत्योच्चारादिकायकार्यमित्यर्थः 'जोगं व' त्ति 'योगं' श्लथनवैयावृत्यादिव्यापारं प्रतीत्य 'रियं वा पडुच्च' त्ति 'ऋतं' सत्यं प्रतीत्य–अप्कायादिजीवसंरक्षणं संयममाश्रित्येत्यर्थः 'देसं देसेणं वयामो' त्ति प्रभूताया पृथिव्या ये विवक्षिता देशास्तैर्व्रजामो नाविशेषेण, ईर्यासमितिपरायणत्वेन सचेतनदेशपरिहारतोऽचेतनदेशैर्व्रजाम इत्यर्थः। एवं 'पएसं पएसेणं वयामो' इत्यपि नवरं देशो–भूमेर्महत्खण्डं प्रदेशस्तु–लघुतरमिति॥

अथोक्तगुणयोगेन नास्माकमिवैषां गमनमस्तीत्यभिप्रायतः स्थविराः यूयमेव पृथिव्याक्रमणादितोऽसंयतत्वादिगुणा इति प्रतिपादनायान्ययूथिकान् प्रत्याहुः–

८/२९२. 'तुन्झे णं अज्जो' इत्यादि 'गइप्पवायं' ति गतिः प्रोच्यते– प्ररूप्यते यत्र तद्गतिप्रवादं गतेर्वा–प्रवृत्तेः क्रियायाः प्रपातः– प्रपतनसम्भवः प्रयोगादिष्वर्थेषु वर्त्तनं गतिप्रपातस्तत्प्रतिपादकमध्ययनं गतिप्रपातं तत् प्रज्ञापितवन्तो, गतिविचारप्रस्तावादिति।।

अथ गतिप्रपातमेव भेदतोऽभिधातुमाह–

८/२९३. 'कइविहे ण' मित्यादि, 'पओगगति' त्ति इह गतिप्रपातभेदप्रक्रमे यद्गतिभेदभणनं तद्गतिधर्मत्वात् प्रपातस्य गतिभेदभणने गतिप्रपातभेदा एव भणिता भवन्तीति न्यायाद्वक्तव्यं, तत्र प्रयोगस्य सत्यमनःप्रभृतिकस्य पञ्चदशविधस्य गतिः–प्रवृत्तिः प्रयोगगतिः, 'ततगइ' त्ति ततस्य–ग्रामनगरादिकं गन्तुं प्रवृत्तत्वेन तच्चास्तत्वेन तदन्तरालस्थे वर्त्तमानतया प्रसारितक्रमतया च विस्तारं गतस्य गतिस्ततगतिः, ततो वाऽवधिभूतग्रामादेर्नगरादौ गतिः प्राकृतत्वेन ततगई, अस्मिंश्च स्थाने इतः सूत्रादारभ्य प्रज्ञापनायां षोडशं प्रयोगपदं 'सेनं विहायगई' एतत्सूत्रं यावद्वाच्यमेतदेवाह–'एतो' इत्यादि, तच्चैवं–'बंधणछेयणगई उववायगई विहायगई' इत्यादि, तत्र बन्धनच्छेदनगतिः–बंधनस्य कर्मणः सम्बन्धस्य वा छेदने–अभावे गतिर्जीवस्य शरीरात् शरीरस्य वा जीवाद्बन्धनच्छेदनगतिः, उपपातगतिस्तु त्रिविधा–क्षेत्रभवनोभवभेदात्, तत्र नारकतिर्यग्नरदेवसिद्धानां यत् क्षेत्रे उपपाताय–उत्पादाय गमनं सा क्षेत्रोपपातगतिः, या च नारकादीनामेव स्वभवे उपपातरूपा गतिः सा भवोपपातगतिः, यच्च सिद्धपुद्गलयोर्गमनमात्रं सा नोभवोपपातगतिः, विहायोगतिस्तु स्पृशद्गत्यादिकाऽनेकविधेति॥

अष्टमे शते सप्तमः॥७॥

अष्टम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके स्थविरान् प्रत्यन्ययूथिकाः प्रत्यनीका उक्ताः, अष्टमे तु गुर्वादिप्रत्यनीका उच्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदं सूत्रम्–

८/२९५. 'रायगिहे' इत्यादि, तत्र 'गुरूणं' ति 'गुरून्' तत्त्वोपदेशकान् प्रतीत्य–आश्रित्य प्रत्यनीकमिव–प्रतिसैन्यमिव प्रतिकूलतया ये ते प्रत्यनीकाः, तत्राचार्यः–अर्थव्याख्याता उपाध्यायः–सूत्रदाता स्थविरस्तु जातिश्रुतपर्यायैः, तत्र जात्या षष्टिवर्षजातः श्रुतस्थविरः–समवायधरः पर्यायस्थविरो–विंशतिवर्षपर्यायः, एतत्प्रत्यनीकता चैवम्–

'जच्चाईहिं अवन्नं भासइ वट्टइ न यावि उववाए।
अहिओ छिद्दप्पेही पगासवाई अणणुलोमो॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहवावि वए एवं उवएस परस्स देंति एवं तु।
दसविहवेयावच्चे कायव्व सयं न कुव्वंति॥२॥'
(जात्यादिभिरवर्णं भाषते न चाप्युपपाते वर्त्तते। अहितश्छिद्रप्रेक्षी प्रकाशवादी अननुलोमः॥१॥ अथवाऽपि वदेदेवमुपदेशमेवं परस्य ददति दशविधवैयावृत्यं यत्कर्त्तव्यं स्वयं तु न कुर्वन्ति॥२॥)

८/२९६. 'गइं णं' मित्यादि, 'गतिं' मानुष्यत्वादिकां प्रतीत्य तत्रेहलोकस्य–प्रत्यक्षस्य मानुषत्वलक्षणपर्यायस्य प्रत्यनीक इन्द्रियार्थप्रतिकूलकारित्वात् पञ्चाग्नितपस्विवद् इहलोकप्रत्यनीकः, परलोकं–जन्मान्तरं तत्प्रत्यनीकः–'इन्द्रियार्थतत्परः, द्विधालोकप्रत्यनीकश्च चौर्यादिभिरिन्द्रियार्थसाधनपरः।

८/२९७. 'समूहण्णं भंते!' त्यादि, 'समूहं' साधुसमुदायं प्रतीत्य तत्र कुलं–चान्द्रादिकं तत्समूहो गणः–कोटिकादि-स्तत्समूहः सङ्घः, प्रत्यनीकता चैतेषामवर्णवादादिभिरिति, कुलादिलक्षणं चेदम्–

'एत्थ कुलं विन्नेयं एगायरियस्स संतई जा उ।
तिण्ह कुलाण मिहो पुण सावेक्खाणं गणो होइ॥१॥
सव्वोवि नाणदंसणचरणगुणविहूसियाण समणाणं।
समुदाओ पुण संघो गणसमुदाओत्तिकाऊणं॥२॥'
(अत्र कुलं विज्ञेयमेकाचार्यस्य या सन्ततिः। त्रयाणां कुलानामिह सापेक्षाणां पुनर्गणो भवति॥१॥ सर्वोऽपि ज्ञानदर्शनचरणगुणविभूषितानां श्रमणानां समुदयः पुनः सङ्घो गुणसमुदाय इतिकृत्वा)॥२॥

८/२९८. 'अणुकंप' मित्यादि, अनुकम्पा–भक्तपानादिभिरुपष्टम्भस्तां प्रतीत्य, तत्र तपस्वी–क्षपकः ग्लानः–रोगादिभिरसमर्थः शैक्षः–अभिनवप्रव्रजितः, एते ह्यनुकम्पनीया भवन्ति, तदकरणाकारणाभ्यां च प्रत्यनीकतेति॥

२/२९९. 'सुयण्णं' मित्यादि, 'श्रुत' सूत्रादि तत्र सूत्रं–व्याख्येयम् अर्थः–तद्व्याख्यानं निर्युक्त्यादि तदुभयं–एतद्वितयं, तत्प्रत्यनीकता च–

'काया वया य ते च्चिय ते चेव पमाय अप्पमाया य।
मोक्खाहिगारियाणं जोइसजोणीहिं किं कज्जं?॥१॥'
(काया व्रतानि च तान्येव त एव प्रमादा अप्रमादाश्च। मोक्षाधिकारिणां (योनिप्राभृतादि) ज्योतिर्योनिभिः किं कार्यम्?॥१॥) इत्यादि दूषणोद्भावनं।

८/३००. 'भाव' मित्यादि, भावः–पर्यायः, स च जीवाजीवगतः, तत्र जीवस्य प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च, तत्र प्रशस्तः–क्षायिकादिरप्रशस्तो विवक्षयौदयिकः, क्षायिकादिः पुनर्ज्ञानादिरूपोऽतो भावान् ज्ञानादीन् प्रति प्रत्यनीकः तेषां वितथप्ररूपणतो दूषणतो वा, यथा–

'पाययसुत्तनिबद्धं को वा जाणइ पणीय केणेयं।
किं वा चरणेणं तु दाणेण विणा उ हवइत्ति॥१॥'
(प्राकृतनिबद्धं सूत्रं को वा जानाति केनेदं प्रणीतं?, किंवा दानेन विना चरणेनैव भवति? इति॥१॥) एते च प्रत्यनीका अपुनःकरणेनाभ्युत्थिताः शुद्धिमर्हन्ति शुद्धिश्च व्यवहारादिति व्यवहारप्ररूपणायाह–

८/३०१. 'कइविहे णं' मित्यादि, व्यवहरणं व्यवहारो–मुमुक्षुप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः इह तु तन्निबन्धनत्वात् ज्ञानविशेषोऽपि व्यवहारः, तत्रागम्यन्ते–परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः–केवलमनःपर्यायावधिपूर्वचतुर्दशकदशकनवकरूपः, तथा श्रुतं–शेषमाचारप्रकल्पादि, नवादिपूर्वाणां च श्रुतत्वेऽप्यतीन्द्रियार्थेषु विशिष्टज्ञानहेतुत्वेन सातिशयत्वादागमव्यपदेशः केवलवदिति, तथाऽऽज्ञा–यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थनिवेदनायातीचारालोचनं इतरस्यापि तथैव शुद्धिदानं, तथा धारणा–गीतार्थसंविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षय यत्रापराधे यथा या विशुद्धिः कृता तामवधार्य यदगुप्तमेवालोचनदानतस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुञ्जते इति वैयावृत्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणोऽशेषानुचितस्य प्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरणमिति, तथा जीतं द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिसेवानुवृत्तया संहननधृत्यादिपरिहाणिमवेक्ष्य यत् प्रायश्चित्तदानं यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्तः कारणतः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्त्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्त्तित इति। आगमादीनां व्यापारणे उत्सर्गापवादावाह–'जहे' त्यादि, यथेति यथा प्रकारः केवलादीनामन्यतमः 'से' तस्य व्यवहर्तुः स चोक्तलक्षणो व्यवहारः 'तत्र' तेषु पञ्चसु व्यवहारेषु मध्ये तस्मिन् वा प्रायश्चित्तदानादिव्यवहारकाले व्यवहर्त्तव्ये वा वस्तुनि विषये 'आगमः' केवलादिः 'स्यात्' भवेत् तादृशेनेति शेषः आगमेन 'व्यवहारं' प्रायश्चित्तदानादिकं 'प्रस्थापयेत्' प्रवर्त्तयेत न शेषैः, आगमेऽपि षड्विधे केवलेनावश्यबोधित्वान्नस्य, तदभावे मनःपर्यायेण, एवं प्रधानतराभावे इतरेणेति। अथ 'नो' नैव चशब्दो यदिशब्दार्थः 'से' तस्य स वा तत्र व्यवहर्त्तव्यादावागमः स्यात्, 'यथा' यत्प्रकारं 'से' तस्य तत्र व्यवहर्त्तव्यादौ श्रुतं स्यात् तादृशेन श्रुतेन व्यवहारं प्रस्थाप्येदिति, 'इच्चेएहिं' इत्यादि निगमनं सामान्येन, 'जहा जहा से' इत्यादि तु विशेषनिगमनमिति॥ एतैर्व्यवहर्तुः फलं प्रश्नद्वारेणाह–'से किं' मित्यादि, अथ किं हे भदन्त!–भट्टारक 'आहुः' प्रतिपादयन्ति? ये 'आगमबलिकाः' उक्तज्ञानविशेषबलवन्तः श्रमणा निर्ग्रन्थाः केवलिप्रभृत्यः 'इच्चेयं' ति इत्येतद्वक्ष्यमाणं, अथवा इत्येवमिति–एवं प्रत्यक्षं पञ्चविधं व्यवहारं प्रायश्चित्तदानादिरूपं 'सम्मं ववहरमाणं' त्ति संबध्यते, व्यवहरन् प्रवर्त्तयन्नित्यर्थः, कथं?–'सम्मं' ति सम्यक्, तदेव कथम्? इत्याह–'यदा २' यस्मिन् २ अवसरे 'यत्र २' प्रयोजने वः क्षेत्रे वा यो य उचितस्तं तमिति शेषः तदा २ काले तस्मिन् २ प्रयोजनादौ, कथम्भूतम्? इत्याह–अनिश्रितैः–सर्वाशंसारहितैरुपाश्रितः–अङ्गीकृतोऽनिश्रितोपाश्रितस्तम् अथवा निश्रितश्च शिष्यत्वादि प्रतिपन्नः उपाश्रितश्च–स एव वैयावृत्यकरत्वादिना प्रत्यासन्नतरस्तौ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा निश्रितं–रागः उपाश्रितं च द्वेषस्ते, अथवा निश्रितं च आहाराद्यिलिप्सा उपाश्रितं च–शिष्यप्रतीच्छककुलाद्यपेक्षा ते न स्तो यत्र तत्तथेति क्रियाविशेषणं, सर्वथा पक्षपातरहितत्वेन यथावदित्यर्थः इह वृन्दव्याख्या–

'रागो य होइ निस्सा उवस्सिओ दोससंजुत्तो॥
अहवण आहाराई दाही मज्झं तु एस निस्सा उ।
सीसो पडिच्छओ वा होइ उवस्सा कुलादीया॥१॥'

इति (रागश्च भवति निश्रा उपाश्रितो भवति दोष संयुक्तः॥ अथवाऽऽहारादि मह्यं दास्यत्येवेति तु निश्रा। शिष्यः प्रतीच्छको वा भवत्युपश्रा कुलादिका॥१॥) आज्ञाया–जिनोपदेशस्याराधको भवतीति, हन्त! आहुरेवेति गुरुवचनं गम्यमिति, अन्ये तु 'से किमाहु भंते!' इत्याद्येवं व्याख्यान्ति–अथ किमाहुर्भदन्त! आगमबलिकाः श्रमण निर्ग्रन्थाः! पञ्चविधव्यवहारस्य फलमिति शेषः, अत्रोत्तरमाह–'इच्चेय' मित्यादि॥

आज्ञाराधकश्च कर्म क्षपयति शुभं वा तद् बध्नातीति बन्धं निरूपयन्नाह–

८/३०२. 'कइ' त्यादि, 'बंधे' नि द्रव्यतो निगडादिबन्धो भावतः कर्मबन्धः, इह च प्रक्रमात् कर्मबन्धोऽधिकृतः 'ईरियावहियाबंधे य' ति ईर्या–गमनं तत्प्रधानः पन्था–मार्गः ईर्यापथस्तत्र भवमैर्यापथिकं–केवलयोगप्रत्ययं कर्म तस्य यो बन्धः स तथा, स चैकस्य वेदनीयस्य, 'संपराइयबंधे य' ति संपरैति–संसारं पर्यटन्ति एभिरिति सम्पराया:–कषायास्तेषु भवं साम्परायिकं कर्म तस्य यो बन्धः स साम्परायिकबन्धः कषायप्रत्यय इत्यर्थः, स चावीतरागगुणस्यानकेषु सर्वेष्विति।

८/३०३. 'नेरइओ' इत्यादि, मनुष्यस्यैव तद्बन्धो, यस्मादुपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगकेवलिनामेव तद्बन्धनमिति, 'पुव्वपडिवन्ने' इत्यादि, पूर्वं–प्राक्काले प्रतिपन्नमैर्यापथिकबंधकत्वं यैस्ते पूर्वप्रतिपन्नकास्तान्, तद्बन्धकत्वद्वितीयादिसमयवर्तिन इत्यर्थः, ते च सदैव बहवः पुरुषाः स्त्रियश्च सन्ति उभयेषां केवलिनां सदैव भावादत उक्तं 'मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति' ति, 'पडिवज्जमाणए' नि प्रतिपद्यमानकान् ऐर्यापथिककर्मबन्धन-प्रथमसमयवर्तिन इत्यर्थः एषां च विरहसम्भवाद् एकदा मनुष्यस्य स्त्रियाश्चैकैकयोगे एकत्वबहुत्वाभ्यां चत्वारो विकल्पाः, द्विकसंयोगे तथैव चत्वारः, एवमेते सर्वेऽप्यष्टौ, स्थापना चेयमेषाम्–पु १ स्त्री १ पुं ३ स्त्री ३। एतदेवाह–'मणुस्से वा' इत्यादि, एषां च पुंस्त्वादि तत्तल्लिङ्गापेक्षया न तु वेदापेक्षया, क्षीणोपशान्तवेदत्वात्।

पुं	स्त्री
१	१
१	३
३	१
३	३

अथ वेदापेक्षं स्त्रीत्वाद्यधिकृत्याह–

८/३०४. 'तं भंते! किं' मित्यादि, 'नो इत्थी' इत्यादि च पदत्रयनिषेधेनावेदकः प्रश्नितः उत्तरे तु षण्णां पदानां निषेधः सप्तमपदोक्तस्तु व्यपगतवेदः, तत्र च पूर्वप्रतिपन्नाः प्रतिपद्यमानकाश्च भवन्ति, तत्र पूर्वप्रतिपन्नकानां विगतवेदानां सदा बहुत्वभावात् आह–'पुव्वपडिवन्ने' त्यादि, प्रतिपद्यमानकानां तु सामायिकत्वाद् विरहभावेनैकादि-सम्भवाद्विकल्पद्वयमत एवाह–'पडिवज्जमाणे' त्यादि॥

अपगतवेदमैर्यापथिकबन्धमाश्रित्य स्त्रीत्वादि भूतभावापेक्षया विकल्पयन्नाह -

८/३०५. 'जई' त्यादि, 'तं भंते!' तदा भदन्त! तद्बा कर्म्म 'इत्थी-पच्छाकडे' नि भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य स्त्रीत्वं पश्चात्कृतं–भूततां नीतं येनावेदकेनासौ स्त्रीपश्चात्कृतः, एवमन्यान्यपि, इहैककयोगे एकत्वबहुत्वाभ्यां षड् विकल्पाः द्विकयोगे तु तथैव द्वादश त्रिकयोगे पुनस्तथैवाष्टौ, एते च सर्वे षड्विंशतिः, इयं चैषां स्थापना–स्त्री १ पु. १ न. १ स्त्री ३ पु. ३ न. ३। सूत्रे च चतुर्भङ्गयष्टभङ्गीनां प्रथमविकल्पा दर्शिताः सर्वान्तिमश्चेति।

अथैर्यापथिककर्मबन्धनमेव कालत्रयेण विकल्पयन्नाह–

८/३०६. 'तं भंते!' इत्यादि, 'तद' ऐर्यापथिकं कर्म 'बंधी' नि बद्धवान् बध्नाति भन्त्स्यति चेत्येको विकल्पः, एवमन्येऽपि सप्त, एषां च स्थापना।

स्त्री	पुं	स्त्री	न	पुं	न
१	१	१	१	१	१
१	३	१	३	१	३
३	१	३	१	३	१
३	३	३	३	३	३

स्त्री	पुं	न	॥ प्रस्तार स्थापना
१	१	१	
१	१	३	
१	३	१	
१	३	३	
३	१	१	
३	१	३	
३	३	१	
३	३	३	

उत्तरे तु 'भवे' त्यादि, भवे अनेकयोपशमादिश्रेणिप्राप्त्या आकर्षः–ऐर्यापथिककर्माणुग्रहणं भवाकर्षस्तं प्रतीत्य 'अस्त्येकः' भवत्येकः कश्चिज्जीवः प्रथमभवैककल्पिकः, तथाहि–पूर्वभवे उपशान्तमोहत्वे सत्यैर्यापथिकं कर्म बद्धवान वर्त्तमानभवे चोपशान्तमोहत्वे बध्नाति, अनागते चोपशान्त-मोहावस्थायां भन्त्स्यतीति १, द्वितीयस्तु यः पूर्वस्मिन् भवे उपशान्तमोहत्वं लब्धवान् वर्त्तमाने च क्षीणमोहत्वं प्राप्तः स पूर्वं बद्धवान वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति २, तृतीयः पूर्वजन्मनि उपशान्तमोहत्वे बद्धवान तत्प्रतिपतितो न बध्नाति अनागते चोपशान्तमोहत्वं प्रतिपत्स्यते तदा भन्त्स्यतीति ३, चतुर्थस्तु शैलेशीपूर्वकाले बद्धवान शैलेश्यां च न बध्नाति न च पुनर्भन्त्स्यतीति ४, पञ्चमस्तु पूर्वजन्मनि नोपशान्तमोहत्वं लब्धवानिति न बद्धवान अधुना लब्धमिति बध्नाति पुनरग्रेष्वत्यकाले उपशान्तमोहाद्यवस्थायां भन्त्स्यतीति पञ्चमः ५, षष्ठः पुनः क्षीणमोहत्वादि न लब्धवानिति न पूर्वं बद्धवान अधुना तु क्षीणमोहत्वं लब्धमिति बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति षष्ठः ६, सप्तमः पुनर्भव्यस्य, स ह्यनादौ काले न बद्धवान् अधुनाऽपि कंश्चिन्न बध्नाति कालान्तरे तु भन्त्स्यतीति ७, अष्टमस्त्वभव्यस्य ८, स च प्रतीत एव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गहणागरिस' मित्यादि, एकस्मिन्नेव भवे ऐर्यापथिककर्मपुद्गलानां ग्रहणरूपो य आकर्षोऽसौ ग्रहणाकर्षस्तं प्रतीत्यास्त्येकः कश्चिज्जीवः प्रथमवैकल्पिकः, तथाहि– उपशान्तमोहादिर्यदा ऐर्यापथिकं कर्म बद्ध्वा बध्नाति तदाऽतीतसमयापेक्षया बद्धवान् वर्त्तमानसमयापेक्षया च बध्नाति अनागतसमयापेक्षया तु भन्त्स्यतीति १, द्वितीयस्तु केवली, स ह्यतीतकाले बद्धवान् वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति २, तृतीयस्तूपशान्तमोहत्वे बद्धवान् तत्प्रतिपतितस्तु न बध्नाति पुनस्तत्रैव भवे उपशमश्रेणीं प्रतिपन्नो भन्त्स्यतीति, एकभवे चोपशमश्रेणी द्विर्वारं प्राप्यन एवेति ३, चतुर्थः पुनः सयोगित्वे बद्धवान् शैलेश्यवस्थायां न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति ४, पञ्चमः पुनरायुषः पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धवानिति न बद्धवान् अधुना तु लब्धमिति बध्नाति तदवस्थाया एव चैष्यत्समयेषु पुनर्भन्त्स्यतीति ५, षष्ठस्तु नास्त्येव, तत्र न बद्धवान बध्नातीत्यनयोरुपपद्यमानत्वेऽपि न भन्त्स्यतीति इत्यस्यानुपपद्यमानत्वात्, तथाहि–आयुषः पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् तल्लाभसमये च बध्नाति ततोऽनन्तरसमयेषु च भन्त्स्यत्येव न तु न भन्त्स्यति, समयमात्रस्य बन्धस्येहाभावात्, यस्तु मोहोपशमनिर्ग्रन्थस्य समयानन्तरमरणेनैर्यापथिककर्मबन्धः समयमात्रो भवति नासौ षष्ठविकल्पहेतुः तदनन्तरैर्यापथिककर्म्मबन्धाभावस्य भावान्तरवर्त्तित्वाद्ग्रहणाकर्षस्य चेह प्रक्रान्तत्वात्। यदि पुनः सयोगिचरमसमये बध्नाति ततोऽनन्तरं न भन्त्स्यतीति विवक्ष्येत तदा यत्समयं योगिचरमसमये बध्नातीति तद्बन्धपूर्वकमेव स्यान्नबन्धपूर्वकं, तत्पूर्वसमये तस्य बन्धकत्वात्, एवं च द्वितीय एव भङ्गः स्यान्न पुनः षष्ठ इति ६, सप्तमः पुनर्भव्यविशेषस्य ७, अष्टमस्त्वभव्यस्येति ८, इह च भवाकर्षापेक्षेष्वष्टसु भङ्गकेषु 'बंधी बंधइ बंधिस्सइ' इत्यत्र प्रथमे भङ्गे उपशान्तमोहः, 'बंधी बंधइ न बंधिस्सइ' इत्यत्र द्वितीये क्षीणमोहः, 'बंधी न बंधइ बंधिस्सइ' इत्यत्र तृतीये उपशान्तमोह, 'न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ' इत्यत्र चतुर्थे शैलेशीगतः, 'न बंधी बंधइ बंधिस्सइ' इत्यत्र पञ्चमे उपशान्तमोहः, 'बंधी बंधइ न बंधिस्सइ' इत्यत्र षष्ठे क्षीणमोहः, 'न बंधी न बंधइ बंधिस्सइ' इत्यत्र सप्तमे भव्यः, 'न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ' इत्यत्राष्टमेऽभव्यः, ग्रहणाकर्षापेक्षेषु पुनरेतेष्वेव प्रथमे उपशांतमोहः क्षीणमोहो वा, द्वितीये तु केवली, तृतीये तूपशान्तमोहः चतुर्थे शैलेशीगतः पञ्चमे उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा, षष्ठः शून्यः, सप्तमे भव्यो भाविमोहोपशमो भाविमोहक्षयो वा, अष्टमे त्वभव्य इति॥

अथैर्यापथिकबन्धमेव निरूपयन्नाह–

८/३०७. 'त' मित्यादि, 'तत्' ऐर्यापथिकं कर्म 'साइयं सपज्जवसियं' मित्यादि चतुर्भङ्गी, तत्र चैर्यापथिककर्म्मणः प्रथम एव भङ्गे बन्धोऽन्येषु तदसम्भवादिति।

८/३०८. 'त' मित्यादि, 'तत्' ऐर्यापथिकं कर्म 'देसेणं देसं' ति 'देशेन' जीवदेशेन 'देशं' कर्म्मदेशं बध्नातीत्यादि चतुर्भङ्गी, तत्र च देशेन कर्म्मणो देशः सर्वं वा कर्म्म सर्वात्मना वा कर्म्मणो देशो न बध्यते, किं तर्हि?, सर्वात्मना सर्वमेव बध्यते, तथास्वभाव-त्वाज्जीवस्येति।

अथ साम्परायिकबन्धनिरूपणायाह–

८/३०९. 'संपराइयं ण' मित्यादि, किं नेरइओ' इत्यादयः सप्त प्रश्नाः, उत्तराणि च सप्तैव, एतेषु च मनुष्यमनुषीवर्जाः पञ्च साम्परायिकबन्धका एव सकषायित्वात्, मनुष्यमनुष्यौ तु सकषायित्वे सति साम्परायिकं बध्नीतो न पुनरन्यथेति॥

साम्परायिकबन्धमेव स्त्र्यादिद्वयपेक्षया निरूपयन्नाह–

८/३१०. 'नं भंते! किं इत्थी' त्यादि, इह स्त्र्यादयो विविक्षितैकत्व-बहुत्वाः षट् सर्वदा साम्परायिकं बध्नन्ति, अपगतवेदश्च कदाचिदेव, तस्य कादाचित्कत्वात्, ततश्च स्त्र्यादयः केवला बध्नन्ति अपगतवेदसहिताश्च, ततश्च यदाऽपगतवेद-सहितास्तदोच्यते अथवैते स्त्र्यादयो बध्नन्ति अपगतवेदश्च, तस्यैकस्यापि सम्भवात्, अथवैते स्त्र्यादयो बध्नन्ति अपगतवेदाश्च, तेषां बहूनामपि सम्भवात्, अपगतवेदश्च साम्परायिकबन्धके वेदत्रये उपशान्ते क्षीणे वा यावद्यथाख्यातं न प्राप्नोति तावल्लभ्यत इति, इह च पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकविवक्षा न कृता, द्वयोरप्येकत्वबहुत्वयोर्भावेन निर्विशेषत्वात्, तथाहि–अपगतवेदत्वे साम्परायिकबन्धोत्पत्काल एव, तत्र च योऽपगतवेदत्वं प्रतिपन्नपूर्वः साम्परायिकं बध्नात्यसावेकोऽनेको वा स्यात्, एवं प्रतिपद्यमानकोऽपीति॥

अथ साम्परायिककर्म्मबन्धमेव कालत्रयेण विकल्पयन्नाह–

८/३१२. तं भंते! किं' मित्यादि, इह च पूर्वोक्तेष्वष्टासु विकल्पेष्वाद्याश्चत्वार एव संभवन्ति नेतरे, जीवानां साम्परायिककर्मबन्धस्यानादित्वेन 'न बंधी' त्यस्यानुपपद्यमानत्वात्, तत्र प्रथमः सर्व एव संसारी यथाख्यात-संप्राप्तोपशमकक्षपकावसानः, स हि पूर्वं बद्धवान् वर्तमानकाले तु बध्नाति अनागतकालापेक्षया तु भन्त्स्यति १, द्वितीयस्तु मोहक्षयात्पूर्वमतीतकालापेक्षया बद्धवान् वर्त्तमानकाले तु बध्नाति भाविमोहक्षयापेक्षया तु न भन्त्स्यति २, तृतीयः पुनरुपशान्तमोहत्वात् पूर्वं बद्धवान् उपशान्तमोहत्वे न बध्नाति तस्माच्च्युतः पुनर्भन्त्स्यतीति ३, चतुर्थस्तु मोहक्षयात्पूर्वं साम्परायिकं कर्म बद्धवान् मोहक्षये न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति॥

साम्परायिककर्मबन्धमेवाश्रित्याह–

८/३१३. 'तं' मित्यादि, 'साइयं वा सपज्जवसियं बंधइ' त्ति उपशान्तमोहतायाश्च्युतः पुनरुपशान्तमोहतां क्षीणमोहतां वा प्रतिपत्स्यमानः, 'अणाइयं वा सपज्जवसियं बंधइ' त्ति आदितः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षपकापेक्षमिदम्, 'अणाउयं वा अपज्जवसियं बंधइ' त्ति एतच्चाभव्यापेक्षं, 'नो चेव णं साइयं अपज्जवसियं बंधइ' त्ति, सादिसाम्परायिकबन्धो हि मोहोपशमाच्च्युतस्यैव भवति, तस्य चावश्यं मोक्षयायित्वात्साम्परायिकबन्धस्य व्यवच्छेदसम्भवः, ततश्च न सादिरपर्यवसानः साम्परायिकबन्धोऽस्तीति॥

अनन्तरं कर्म्मबन्धस्योक्तः, अथ कर्म्मण्येव यथायोगं परीषहावतारं निरूपयितुमिच्छुः कर्म्मप्रकृतीः परीषहांश्च तावदाह–

८/३१६. 'कति णं' मित्यादि, 'परीसह' त्ति परीति–समन्तात् स्वहेतुभिरुदीरिता मार्गाच्यवननिर्जरार्थं सह्यन्त इति परीषहास्ते च द्वाविंशतिरिति 'दिगिंछ' त्ति बुभुक्षा सैव परीषहः–तपोऽर्थमनेषणीयभक्तपरिहारार्थं वा मुमुक्षुणा परिषह्यमाणत्वात् दिगिंछापरीसहेति, एवं पिपासापरीसहोऽपि, यावच्छब्दलब्धं सङ्ख्यानमेव दृश्यं–'सीयपरीसहे उसिणपरीसहे' शीतोष्णे परीषहौ आतापनार्थं शीतोष्णबाधायामप्यग्निसेवास्नानाद्यकृत्यपरिवर्जनार्थं वा मुमुक्षुणा तयोः परिषह्यमाणत्वात्, एवमुत्तरत्रापि, 'दंसमसगपरीसहे' दंशा मशकाश्च–चतुरिन्द्रियविशेषाः, उपलक्षणत्वाच्चैषां यूकामत्कुणमक्षिकादिपरिग्रहः, परीषहता चैतेषां देहव्यथामुत्पादयत्स्वपि तेष्वनिवारणभयद्वेषाभावतः 'अचेलपरीसहे' चेलानां–वाससामभावोऽचेलं तच्च परीषहोऽचेलतायां जीर्णापूर्वमलिनादिचेलत्वे च लज्जादैन्याकाङ्क्षाद्यकरणेन परिषह्यमाणत्वादिति, 'अरइपरीसहे' अरतिः–मोहनीयजो मनोविकारः सा च परीषहस्तन्निषेधनेन सहनादिति 'इत्थियापरीसहे' स्त्रियाः परीषहः २ तत् परीषहणं च तन्निरपेक्षत्वं ब्रह्मचर्यमित्यर्थः 'चरियापरीसहे' चर्या–ग्रामनगरादिषु संचरणं तत्परिषहणं चाप्रतिबद्धतया तत्करणं 'निसीहियापरीसहे' नैषेधिकी–स्वाध्यायभूमिः शून्यागारादिरूपा तत्परिषहणं च तत्रोपसर्गेष्वधीरः 'सेज्जापरीसहे' शय्या–वसतिस्तत्परिषहणं च तज्जन्यदुःखादेरुपेक्षा 'अक्कोसपरीसहे' आक्रोशो–दुर्वचनं 'वहपरीसहे' व्यधो वधो वा–यष्ट्यादिताडनं तत्परीषहणं च क्षान्त्यवलम्बनं 'जायणापरीसहे' याच्ञा–भिक्षणं तत्परिषहणं च तत्र मानवर्जनम् 'अलाभपरीसहे' अलाभः–प्रतीतस्तत्परिषहणं च तत्र दैन्याभाव 'रोगपरीसहे' रोगो–रुक् तत्परिषहणं च–तत्पीडासहनं चिकित्साऽवर्जनं च 'तणफासपरीसहे' तृणस्पर्शः–कुशादिस्पर्शस्तत्परिषहणं च कादाचित्कतृणग्रहणे तत्संस्पर्शजन्यदुःखाधिसहनं 'जल्लपरीसहे' जल्लो–मलस्तत्परिषहणं च देशतः सर्वतो वा स्नानोद्वर्त्तनादिवर्जनं 'सक्कारपुरक्कारपरीसहे' सत्कारो–वस्त्रादि पूजा पुरस्करो–राजादिकृताभ्युत्थानादिस्तत्परिषहणं च तत्सद्भावे आत्मोत्कर्षवर्जनं तदभावे दैन्यवर्जनं तदनाकाङ्क्षा चेति 'पण्णापरीसहे' प्रज्ञा–मतिज्ञानविशेषस्तत्परिषहणं च प्रज्ञाया अभावे उद्वेगाकरणं तद्भावे च मदाकरणं 'नाणपरीसहे' ज्ञानं–मत्यादि तत्परिषहणं च तस्य विशिष्टस्य सद्भावे मदवर्जनमभावे च दैन्यपरिवर्जनं, ग्रन्थान्तरे त्वज्ञानपरीषह इति पठ्यते, 'दंसणपरीसहे' दर्शनं–तत्त्वश्रद्धानं तत्परिषहणं च जिनानां जिनोक्तसूक्ष्मभावानां चाश्रद्धानवर्जनमिति।

८/३१७. 'कइसु कम्मपयडीसु समोयरंति' त्ति कतिषु कर्म्मप्रकृतिषु विषये परीषहाः समवतारं व्रजन्तीत्यर्थः।

८/३१८. 'पण्णापरीसहे' इत्यादि प्रज्ञापरीषहो ज्ञानावरणे मतिज्ञानावरणरूपे समवतरति, प्रज्ञाया अभावमाश्रित्य, तदभावस्य ज्ञानावरणोदयसम्भवत्वात्, यत्तु तदभावे दैन्यपरिवर्जनं तत्सद्भावे च मानवर्जनं तच्चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादिति, एवं ज्ञानपरीषहोऽपि नवरं मत्यादिज्ञानावरणेऽवतरति।

८/३१९. 'पंचे' त्यादि गाथा, 'पंचेव आणुपुव्वी' त्ति क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकपरीषहा इत्यर्थः, एतेषु च पीडैव वेदनीयोत्था तदधिसहनं तु चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादिसम्भवं, अधिसहनस्य चारित्ररूपत्वादिति॥

८/३२०. 'एगे दंसणपरीसहे समोयरति' त्ति यतो दर्शनं तत्त्वश्रद्धानरूपं दर्शनमोहनीयस्य क्षयोपशमादौ भवति उदये तु न भवतीत्यतस्तत्र दर्शनपरीषहः समवतरतीति।

८/३२१. 'अरई' त्यादि गाथा, तत्र चारतिपरीषहोऽरतिमोहनीये लज्जान्यत्वात्, अचेलपरीषहो जुगुप्सामोहनीये लज्जापेक्षया, स्त्रीपरीषहः पुरुषवेदमोहे स्त्र्यपेक्षया तु पुरुषपरीषहः स्त्रीवेदमोहे, तत्वतः स्त्र्याद्यभिलाषरूपत्वात्तस्य। नैषेधिकीपरीसहो भयमोहे उपसर्गभयापेक्षया। याच्ञापरीषहो मानमोहे तदुष्करत्वापेक्षया। आक्रोशपरीषहः क्रोधमोहे क्रोधोत्पत्त्यपेक्षया, सत्कारपुरस्कारपरीषहो मानमोहे मदोत्पत्त्यपेक्षया समवतरति। सामान्यतस्तु सर्वेऽप्येते चारित्रमोहनीये समवतरन्तीति॥

८/३२२. 'एगे अलाभपरीसहे समोयरति' त्ति अलाभपरीषह एकान्तराये समवतरति, अन्तरायं चेह लाभान्तरायं, तदुदय एव लाभाभावात्, तदधिसहनं च चारित्रमोहनीयक्षयोपशम इति॥

अथ बन्धस्थानान्याश्रित्य परीषहान् विचारयन्नाह–

८/३२३. 'सत्तविहे' त्यादि, सप्तविधबन्धकः–आयुर्वर्जशेषकर्मबन्धकः 'जं समयं सीयपरीसह' मित्यादि, यत्र समये शीतपरीषहं वेदयते न तत्रोष्णपरीषहं, शीतोष्णयोः परस्परमत्यन्तविरोधिनैकदैकत्रासम्भवात्; अथ यद्यपि शीतोष्णयोरेकदैकत्रसम्भवस्तथाऽप्यात्यन्तिके शीते तथाविधाग्निसन्निधौ युगपदेवैकस्य पुंस एकस्यां दिशि शीतमन्यस्यां चोष्णमित्येवं द्वयोरपि शीतोष्णपरीषहयोरस्ति सम्भवः, नैतदेवं, कालकृतशीतोष्णाश्रयत्वादधिकृतसूत्रस्यैवंविधव्यतिकरस्य वा प्रायेण तपस्विनामभावादिति। तथा 'जं समयं चरियापरीसहं' मित्यादि तत्र चर्या–ग्रामादिषु संचरणं नैषेधिकी च–ग्रामादिषु प्रतिपन्नमासकल्पादेः स्वाध्यायादिनिमित्तं शय्यातो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविक्तवसतेरुपाश्रये गत्वा निषदनम्, एवं चानयोर्विहारावस्थानरूपत्वेन परस्परविरोधान्नैकदा सम्भवः, अथ नैषेधिकीवच्छय्याऽपि चर्यया सह विरुद्धेति न तयोरेकदा सम्भवस्तदैश्चैकोनविंशतेरेव परीषहाणामुत्कर्षेणैकदा वेदनं प्राप्नोति, नैवं, यतो ग्रामादिगमनप्रवृत्तौ यदा कश्चिदौत्सुक्यादनिवृत्ततत्परिणाम एवं विश्रामभोजनाद्यर्थमित्वरशय्यायां वर्त्तते तदोभयमप्यविरुद्धमेव, तत्त्वतश्चर्याया अस्थमात्मत्वाद आश्रयस्य चाश्रयणादिति, यदेवं तर्हि कथं षड्विधबन्धकमाश्रित्य वक्ष्यति–'जं समयं चरियापरीसहं वेएइ नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ' इत्यादीति?, अत्रोच्यते, षड्विधबन्धको मोहनीयस्याविद्यमानकत्वात् सर्वत्रौत्सुक्याभावेन शय्याकाले शय्यायामेव वर्त्तते न तु बादररागवदौत्सुक्येन विहारपरिणामाविच्छेदाच्चर्यायामपि, अतस्तदपेक्षया तयोः परस्परविरोधाद्युगपदसंभवः,[1] ततश्च साध्वेव 'जं समयं चरिए' त्यादीति।

८/३२५. 'छव्विहबंधे' त्यादि, षड्विधबन्ध-कस्यायुर्मोहवर्जानां बन्धकस्य सूक्ष्मसम्परायस्येत्यर्थः, एतदेवाह–'सरागछउमत्थस्से' त्यादि, सूक्ष्मलोभाणूनां वेदनात्सरागोऽनुत्पन्नकेवलत्वाच्छद्मस्थस्ततः कर्म्मधारयोऽतस्तस्य 'चोद्दस परीसह' त्ति अष्टानां मोहनीयसम्भवानां तस्य मोहाभावेनाभावाद्द्वाविंशतेः शेषाश्चतुर्दशपरीषहा इति, ननु सूक्ष्मसम्परायस्य चतुर्दशानामेवाभिधानान्मोहनीयसम्भवानामष्टानामसंभव इत्युक्तं, ततश्च सामर्थ्यादनिवृत्तिबादरसंपरायस्य मोहनीयसम्भवनामष्टानामपि सम्भवः प्राप्तः। कथं चैतद् युज्यते?, यतो दर्शनसप्तकोपशमे बादरकषायस्य दर्शनमोहनीयोदयाभावेन दर्शनपरीषहा-भावात्सप्तानामेव सम्भवो नाष्टानां, अथ दर्शनमोहनीय-सत्तापेक्षयाऽऽसावपीष्यत इत्यष्टावेव तर्हि उपशमकत्वे सूक्ष्मसम्परायस्यापि मोहनीयसत्तासद्भावात्कथं तदुक्तः सर्वेऽपि परीषहा न भवन्ति? इति, न्यायस्य समानत्वादिति, अत्रोच्यते, यस्माद्दर्शनसप्तकोपशमस्योपर्येव नपुंसकवेदाद्युपशमकालेऽनिवृत्तिबादरसम्परायो भवति, स चावश्यकादिव्यतिरिक्तग्रन्थान्तरमतेन दर्शनत्रयस्य बृहति भागे उप[illegible]. 'शेषे चानुपशान्ते एव स्यात्, नपुंसकवेदं चासौ तेन सहोपशमयितुमुपक्रमते, ततश्च नपुंसकवेदोपशमावसरेऽनिवृत्तिबादरसम्परायस्य सतो दर्शनमोहस्य प्रदेशत उदयोऽस्ति न तु सत्तैव, ततस्तत्प्रत्ययो दर्शनपरीषहस्तस्यास्तीति, ततश्चाष्टावपि भवन्तीति, सूक्ष्मसम्परायस्य तु मोहसत्तायामपि न परीषहहेतुभूतः सूक्ष्मोऽपि मोहनीयोदयोऽस्तीति न मोहजन्यपरीषहसम्भवः, आह च–

'मोहनिमित्ता अट्ठवि बायररागे परीसहा किह णु?।
किह वा सुहुमसरागे न होंति उवसामए सव्वे?॥१॥

आचार्य आह–

सत्तगपरओ च्चिय जेण बायरो जं च सावसेसंमि।
मज्झिल्लंमि पुरिल्ले लग्गइ तो दंसणस्सावि॥२॥
लब्भइ पएसकम्मं पडुच्च सुहुमोदओ तओ अट्ठ।
तस्स भणिया न सुहुमे न तस्स सुहुमोदओऽवि जओ॥३॥'

(बादरसम्पराये मोहनिमित्ता अष्टौ परीषहाः कथं? कथं वा सूक्ष्मसम्पराये औपशमिके च सर्वे न भवन्ति?॥१॥ दर्शनसप्तकपरत एव बादरो येन यस्माच्च सावशेषे पाश्चात्येऽग्रे लगति ततो दर्शनस्यापि॥२॥ लभ्यते प्रदेशकर्म प्रतीत्य सूक्ष्मोदयस्ततोऽष्टौ तस्य भणिताः, न सूक्ष्मे, न तस्य सूक्ष्मोदयोऽपि यतः॥३॥; यच्च सूक्ष्मसम्परायस्य सूक्ष्मलोभकिट्टिकानामुदये नासौ परीषहहेतुर्लोभहेतुकस्य परीषहस्यानभिधानात्, यदि च कोऽपि कथञ्चिदसौ स्यात्तदा तस्यैहात्यन्ताल्पत्वेनाविवक्षेति।

८/३२६. 'एगविहबंधगस्स' त्ति वेदनीयबन्धकस्येत्यर्थः, कस्य तस्य? इत्यत आह–'वीयराग-छउमत्थस्स' त्ति उपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य चेत्यर्थः 'एवं चेवे' त्यादि चतुर्दश प्रज्ञप्ता द्वादश पुनर्वेदयतीत्यर्थः, शीतोष्णयोश्चर्याशय्ययोश्च पर्यायेण वेदनादिति॥

अनन्तरं परीषहा उक्तास्तेषु चोष्णपरीषहस्तद्धेतवश्च सूर्या इत्यतः सूर्यवक्तव्यतायां निरूपयन्नाह–

८/३२९-३३१. 'अंबुद्दीवे' इत्यादि, 'दूरे य मूले य दीसंति' त्ति 'दूरे च' द्रष्टृस्थानापेक्षया व्यवहिते देशे 'मूले च' आसन्ने द्रष्टृप्रतीत्य-पेक्षया सूर्यौ दृश्येते, द्रष्टा हि स्वरूपतो बहुभिर्योजनसहस्रैर्व्यवहितमुद्गमास्तमयवोः सूर्यं पश्यति, आसन्नं पुनर्मन्यते, सद्भूतं तु विप्रकर्षं सन्तमपि न प्रतिपद्यत इति। 'मज्झंतिय-मुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति' त्ति मध्यो–मध्यमोऽन्तो–विभागो गगनस्य दिवसस्य वा मध्यान्तः स यस्य मुहूर्तस्यास्ति स मध्यान्तिकः स चासौ मुहूर्तश्चेति मध्यान्तिकमुहूर्तस्तत्र 'मूले च' आसन्ने देशे द्रष्टृस्थानापेक्षया 'दूरे च' व्यवहिते देशे द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया सूर्यौ दृश्येते, द्रष्टा हि मध्याह्ने उदयास्तमनदर्शनापेक्षयाऽऽसन्नं रविं पश्यति योजनशताष्टकेनैव तदा तस्य व्यवहितत्वात्, मन्यते पुनरुदयास्तमयप्रतीत्यपेक्षया व्यवहितमिति। 'सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं' ति समभूतलापेक्षया सर्वत्रोच्चत्वमष्टौ योजनशतानीतिकृत्वा। 'लेसाविघाएणं' तेजसः प्रतिघातेन दूरतरत्वात् तद्देशस्य तदप्रसरणेनेत्यर्थः, लेश्याप्रतिघाते हि सुखदृश्यत्वेन दूरस्थोऽपि स्वरूपेण सूर्य आसन्नप्रतीतिं

१. अत एव ऋजुसूत्रादीनां संयतानामेव परीषहा इति कथने अविरतदेशविरतानां परीषहा इति पक्षरूपाभ्यां नैगमव्यवहाराभ्यां विशिष्टता, क्रमेणोपयोगे सहजसमाधानमिदं, तथापि विंशतिपरीषहयौगपद्यप्रतिपादकसूत्रविरोधात् न तत्कल्पना, भवतु वान्येषां परस्पराविरुद्धानां समुदित उपयोगो नानयोर्द्वयोः परस्परं विरुद्धयोः, वेदनाद्वयस्य यौगपद्याभावात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनयन्ति, 'लेसाभिघातेणं' ति तेजसोऽभिघातेन, मध्याह्ने हि आसन्नतरत्वात्सूर्यस्तेजसा प्रतपति, तेजःप्रतापे च दुर्दृश्यत्वेन प्रत्यासन्नोऽप्यसौ दूरप्रतीतिं जनयतीति।

८/३३२-३३९. 'नो तीतं खेत्तं गच्छंति' त्ति अतीतक्षेत्रस्यातिक्रान्तत्वात्, 'पडुप्पन्नं' ति वर्त्तमानं गम्यमानमित्यर्थः, 'नो अणागयं' ति गमिष्यमाणमित्यर्थः, इह च यदाकाशखण्डमादित्यःस्वतेजसा व्याप्नोति तत् क्षेत्रमुच्यते। 'ओभासंति' त्ति 'अवभासयतः' ईषदुद्द्योतयतः 'पुट्ठं' ति तेजसा स्पृष्टं 'जाव नियमा छद्दिसिं' ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'तं भंते! किं ओगाढं ओभासइ अणोगाढं ओभासइ?, गोयमा! ओगाढं ओभासइ नो अणोगाढं' मित्यादि 'तं भंते! कतिदिसिं ओभासेइ?, गोयमा!' इत्येतदन्तमिति। 'उज्जोवेंति' त्ति 'उद्द्योतयतः' अत्यर्थं द्योतयतः 'तवंति' त्ति तापयतः उष्णरश्मित्वात्तयोः 'भासंति' त्ति भासयतः शोभयत इत्यर्थः॥ उक्तमेवार्थं शिष्यहिताय प्रकारान्तरेणाह–'जंबू' इत्यादि, 'किरिया कज्जइ' त्ति अवभासनादिका क्रिया भवतीत्यर्थः 'पुट्ठ' त्ति तेजसा स्पृष्टात्–स्पर्शनाद् या सा स्पृष्टा 'एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति' त्ति स्वस्वविमानस्योपरि योजनशतप्रमाणस्यैव तापक्षेत्रस्य भावात् 'अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति' त्ति, कथं?, सूर्यादष्टासु योजनशतेषु भूतलं भूतलाच्च योजनसहस्रेऽधोलोकग्रामा भवन्ति तांश्च यावदुद्द्योतनादिति। 'सीयालीस' मित्यादि, एतच्च सर्वोत्कृष्टदिवसे चक्षुःस्पर्शापेक्षयाऽवसेयमिति॥

अनन्तरं सूर्यवक्तव्यतोक्ता, अथ सामान्येन ज्योतिष्कवक्तव्यतामाह–

८/३४०-३४३. 'अत्तो णं भंते!' इत्यादि, 'जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेसं' ति तत्र चेदं सूत्रमेवं–'कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावन्नगा?, गोयमा! ते णं देवा नो उड्ढोववन्नगा नो कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा' ज्योतिश्चक्रचरणोपलक्षितक्षेत्रोपपन्ना इत्यर्थः 'नो चारट्ठिइया' इह चारो–ज्योतिषामवस्थानक्षेत्रं 'नो' नैव चारे स्थितिर्येषां ते तथा, अत एव 'गइरइया' अत एव 'गइसमावन्नगा' इत्यादि, कियदूरमिदं वाच्यम्? इत्याह–'जाव उक्कोसेणं छम्मास' त्ति इदं चैवं द्रष्टव्यम्–'इंदट्ठाणे णं भंते! केवइयं कालं विरहिए उववाएणं?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मास' त्ति 'जहा जीवाभिगमे' त्ति, इदमप्येवं तत्र–'जे चंदिमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववन्नगा?' इत्यादि प्रश्नसूत्रम्, उत्तरं तु 'गोयमा! ते णं देवा नो उड्ढोववन्नगा नो कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा नो चारोववन्नगा चारट्ठिइया नो गइरइया नो गइसमावन्नगे' त्यादीति॥

अष्टमशतेऽष्टमः॥८-८॥

नवम उद्देशकः

अष्टमोद्देशके ज्योतिषां वक्तव्यतोक्ता, सा च वैस्रसिकीति वैस्रसिकं प्रायोगिकं च बन्धं प्रतिपिपादयिषुर्नवमोद्देशकमाह। तस्य चेदमादिसूत्रम्–

८/३४५. 'कहविहे णं' मित्यादि 'बंधे' त्ति बन्धः–पुद्गलादिविषयः सम्बन्धः 'पओगबंधे य' त्ति जीवप्रयोगकृतः 'वीससाबंधे य' त्ति स्वभावसंपन्नः।

यथासङ्ख्यन्यायमाश्रित्याह–

८/३४६. 'वीससे त्यादि, 'धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे य' त्ति धर्मास्तिकायस्यान्योऽन्यं–प्रदेशानां परस्परेण योऽनादिको विस्रसाबन्धः स तथा, एवमुत्तरत्रापि।

८/३४८. 'देसबंधे' त्ति देशतोसदेशापेक्षया बन्धो देशबन्धो यथा सङ्घलिकाकटिकानां, सव्वबंधे' त्ति सर्वतः सर्वात्मना बन्धः सर्वबन्धो यथा क्षीरनीरयोः 'देसबन्धे नो सव्वबंधे' त्ति धर्मास्तिकायस्य प्रदेशानां परस्परसंस्पर्शेन व्यवस्थितत्वाद्देशबन्ध एव न पुनः सर्वबन्धः, तत्र हि एकस्य प्रदेशस्य प्रदेशान्तरैः सर्वथा बन्धेऽन्योऽन्यान्तर्भविनैकप्रदेशत्वमेव स्यात् नासङ्ख्येयप्रदेशत्वमिति॥

८/३४९. 'सव्वद्धं' ति सर्वाद्धां–सर्वकालं।

८/३५०. 'साइयवीससाबंधे य' त्ति सादिको यो विस्रसाबन्धः स तथा, 'बंधणपच्चइए' त्ति बध्यतेऽनेनेति बन्धनं–विवक्षितस्निग्धतादिको गुणः स एव प्रत्ययो–हेतुर्यत्र स तथा, एवं भाजनप्रत्ययः परिणामप्रत्ययश्च, नवरं भाजनं–आधारः परिणामो–रूपान्तरगमनं।

८/३५१. 'जन्नं परमाणुपुग्गले' त्यादौ परमाणुपुद्गलः परमाणुरेव 'वेमायनिद्धयाए'–त्ति विषमा मात्रा यस्यां सा विमात्रा सा चासौ स्निग्धता चेति विमात्रस्निग्धता तया, एवमन्यदपि पदद्वयम्, इदमुक्तं भवति–

'समनिद्धयाए बन्धो न होइ समलुक्खयाएवि न होइ।
वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं॥१॥'

अयमर्थः–समगुणस्निग्धस्य समगुणस्निग्धेन परमाणुद्व्यणुकादिना बन्धो न भवति, समगुणरूक्षस्यापि समगुणरूक्षेण, यदा पुनर्विषमा मात्रा तदा भवति बन्धः, विषममात्रानिरूपणार्थं चोच्यते–

'निद्धस्स निद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं।
निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहन्नवज्जो विसमो समो वा॥१॥'

इति (स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन। स्निग्धस्य रूक्षेणोपैति बन्धो जघन्यवर्जो विषमः समो वा॥१॥) 'बंधणपच्चइएणं' ति बन्धनस्य–बन्धस्य प्रत्ययो–हेतुरुक्तरूपविमात्रस्निग्धतादिलक्षणो बन्धनमेव वा विवक्षितस्नेहादि प्रत्ययो बन्धनप्रत्ययस्तेन, इह च बन्धनप्रत्ययेनेति सामान्यं विमात्रस्निग्धतयेत्यादयस्तु तद्भेदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति। 'अस्संखेज्जं कालं' ति असङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणी। रूपं।

८/३५२. 'जुन्नसुरं' त्यादि तत्र जीर्णसुरायाः स्त्यानीभवनलक्षणो बन्धः, जीर्णगुडस्य जीर्णतन्दुलानां च पिण्डीभवनलक्षणः।

८/३५४. 'पओगबंधे' त्ति जीवव्यापारबन्धः स च जीवप्रदेशानामौदारिकादिपुद्गलानां वा 'अणाइए वा' इत्यादयो द्वितीयवर्जास्त्रयो भङ्गाः, तत्र प्रथमभङ्गोदाहरणायाह–'तत्थ णं जे से' इत्यादि, अस्य किल जीवस्यासङ्ख्येयप्रदेशिकस्याष्टौ ये मध्यप्रदेशास्तेषामनादिरपर्यवसितो बन्धो, यद्यपि लोकं व्याप्य तिष्ठति जीवस्तदाप्यसौ तथैवेति, अन्येषां पुनर्जीवप्रदेशानां विपरिवर्त्तमानत्वान्नास्त्यनादिरपर्यवसितो बन्धः, तत्स्थापना–

०	०
०	०

एतेषामुपर्यन्ये चत्वारः, एवमेतेऽष्टौ॥

एवं तावत्समुदायतोऽष्टानां बन्ध उक्तः, अथ तेष्वेकैकेनात्मप्रदेशेन सह यावतां परस्परेण सम्बन्धो भवति तदर्शनायाह–'तत्थवि णं' मित्यादि, 'तत्रापि' तेष्वष्टासु जीवप्रदेशेषु मध्ये त्रयाणां त्रयाणामेकैकेन सहानादिरपर्यवसितो बन्धः, तथाहि–पूर्वोक्तप्रकारेणावस्थितानामष्टानामुपरितनप्रतरस्य यः कश्चिद्विवक्षितस्तस्य द्वौ पार्श्ववर्त्तिनावेकश्चाधोवर्त्तीत्येते त्रयः संबध्यन्ते शेषस्त्वेक उपरितनस्त्रयश्चाधस्तना न संबध्यन्ते व्यवहितत्वात्; एवमधस्तनप्रतरापेक्षयाऽपीति चूर्णिकारव्याख्या, टीकाकारव्याख्या तु दुरवगमत्वान्नपरिहृतेति, 'सेसाणं साइए' त्ति शेषाणां मध्यमाष्टाभ्योऽन्येषां सादिर्विपरिवर्त्तमानत्वात् एतेन प्रथमभङ्ग उदाहृतः, अनादिरपर्यवसित इत्ययं तु द्वितीयो भङ्ग इह न संभवति, अनादिसंबद्धानामष्टानां जीवप्रदेशानामपरिवर्त्तमानत्वेन बन्धस्य सपर्यवसितत्वानुपपत्तेरिति। अथ तृतीयो भङ्ग उदाह्रियते–'तत्थ णं जे से साइए' इत्यादि, सिद्धानां सादिरपर्यवसितो जीवप्रदेशबन्धः, शैलेश्यवस्थायां संस्थापितप्रदेशानां सिद्धत्वेऽपि चलनाभावादिति। अथ चतुर्थभङ्गं भेदत आह–'तत्थ णं जे से साइए' इत्यादि, 'आलावणबंधे' त्ति आल्प्यते–आर्द्रीनं क्रियते एभिरित्यालापनानि–रज्ज्वादीनि तैर्बन्धस्तृणादीनामालापनबन्धः; 'अल्लियावणबंधे' त्ति अल्लियावणं–द्रव्यस्य द्रव्यान्तरेण श्लेषादिनाऽऽर्द्रीनस्य यत्करणं तद्रूपो यो बन्धः स तथा; 'सरीरबंधे' त्ति समुद्घाते सति यो विस्तारितसङ्कोचितजीवप्रदेशसम्बन्धविशेषवशात्तैजसादिशरीरप्रदेशानां सम्बन्धविशेषः स शरीरबन्धः। शरीरिबन्ध इत्यन्ये, तत्र शरीरिणः समुद्घाते विक्षिप्तजीवप्रदेशानां सङ्कोचने यो बन्धः स शरीरिबन्ध इति। 'सरीरप्पओगबंधे' त्ति शरीरस्य–औदारिकादेर्यः प्रयोगेण–वीर्यान्तरायक्षयोपशमादिजनितव्यापारेण बन्धः–तत्पुद्गलोपादानं शरीररूपस्य वा प्रयोगस्य यो बन्धः स शरीरप्रयोगबन्धः॥

८/३५५. 'तणभाराण व' त्ति तृणभारा-स्तृणभारकास्तेषां 'वेत्ते' त्यादि वेत्रलता–जलवंशकम्बा 'वाग' त्ति वल्कःवरत्र–चर्म्ममयी रज्जुः–सनादिमयी वल्ली–त्रपुष्यादिका कुशा–निर्मूलदर्भाः दर्भास्तु समूलाः, आदिशब्दार्च्चवरादिग्रहः।

८/३५६. 'लेसणाबंधे त्ति श्लेषणा–श्लथद्रव्येण द्रव्ययोः संबन्धनं तद्रूपो यो बन्धः स तथा, 'उच्चयबंधे' त्ति उच्चयः– ऊर्द्ध्वं चयनं–राशीकरणं तद्रूपो बन्ध उच्चयबन्धः, 'समुच्चय-बंधे' त्ति सङ्घातः–उच्चयापेक्षया विशिष्टतर उच्चयः समुच्चयः स एव बन्धःसमुच्चयबन्धः, 'साहणणाबंधे' त्ति संहननं– अवयवानां तद्रूपो यो बन्धः स संहननबन्धः, दीर्घत्वादि चेह प्राकृतशैलीप्रभवमिति।

८/३५७. कुड्डिमाणं' ति मणिभूमिकानां 'छुहाचिक्खिल्ले' त्यादौ सिलेस' त्ति श्लेषैः–वज्रलेपः 'लक्खरस' त्ति जतु 'महुसित्थ' त्ति मदनम्, आदिशब्दाद् गुग्गुलरालारसत्यादिग्रहः।

८/३५८. 'अवगररासीण' व' त्ति कचवररराशीनाम् 'उच्चणणं' त्ति ऊर्द्ध्वं चयनेन।

८/३५९. 'अगडतलागनई' इत्यादि प्रायः प्राग् व्याख्यातमेव।

८/३६०. 'देससाहणणाबंधे य' त्ति देशेन देशस्य संहननलक्षणो बन्धः–सम्बन्धः शकटाङ्गादीनामिवेति देशसंहननबन्धः, 'सव्वसाहणणाबंधे य' त्ति सर्वेण सर्वस्य संहननलक्षणो बन्धः–सम्बन्धः क्षीरनीरादीनामिवेति सर्वसंहननबन्धः।

८/३६१. 'जन्नं सगडरहे' त्यादि, शकटादीनि च पदानि प्राग् व्याख्यातान्यपि शिष्यहिताय पुनर्व्याख्यायन्ते–तत्र च 'सगड' त्ति गन्त्री 'रह' त्ति स्यन्दनः 'जाण' त्ति यानं–लघुगन्त्री 'जुग्ग' त्ति युग्यं गोल्लविषयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाणं वेदिकोपशोभितं जम्पानं 'गिल्लि' त्ति हस्तिन उपरि कोल्लरं यन्मानुषं गिलतीव 'थिल्लि' त्ति अड्डपल्लाणं 'सीय' त्ति शिबिका–कूटाकारेणाच्छादितो जम्पानविशेषः 'संदमाणिय' त्ति पुरुषप्रमाणो जम्पानविशेषः 'लोहि' त्ति मण्डकादिपचनभाजनं 'लोहकडाहे' ति भाजनविशेष एव 'कडुच्छुय' त्ति परिवेषणभाजनम् आसनशयनस्तम्भाः प्रतीताः 'भंड' त्ति मृन्मयभाजनं 'मत्त' त्ति अमत्रं भाजनविशेषः 'उवगरण' त्ति नानाप्रकारं तदन्योपकरणमिति।

८/३६३. 'पुव्वप्पओगपच्चइए य' त्ति पूर्वः–प्राक्कालासेवितः प्रयोगो–जीवव्यापारो वेदनाकषायादिसमुद्घातरूपः प्रत्ययः–कारणं यत्र शरीरबन्धे स तथा स एव पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकः, 'पच्चुप्पन्नपओगपच्चइए य' त्ति प्रत्युत्पन्नः–अप्राप्तपूर्वे वर्त्तमान इत्यर्थः प्रयोगः–केवलिसमुद्घातलक्षणव्यापारः प्रत्ययो यत्र स तथा स एव प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकः।

८/३६४. 'नेरइयाईण' मित्यादि, 'तत्थ तत्थ' त्ति अनेन समुद्घातकरणक्षेत्राणां बाहुल्यमाह, तेसु तेसु' त्ति अनेन समुद्घातकारणानां वेदनादीनां बाहुल्यमुक्तं 'समोहणमाणाणं' ति समुद्घन्यमानानां समुद्घातं शरीराद्बहिर्जीवप्रदेशप्रक्षेपलक्षणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छतां 'जीवपएसाणं' ति इह जीवप्रदेशानामित्युक्तावपि शरीरबन्धाधिकारात्तत्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इति न्यायेन जीवप्रदेशाश्रिततैजसकार्म्मणशरीरप्रदेशानामिति द्रष्टव्यं, शरीरिबन्ध इत्यत्र तु पक्षे समुद्घातेन विक्षिप्य सङ्कोचितानामुपसर्जनीकृतनैश्चादिशरीरप्रदेशानां जीवप्रदेशानामेवेति 'बंधे' त्ति रचनादिविशेषः।

८/३६५. 'जया केवली' त्यादि, केवलिसमुद्घातेन दण्ड १ कपाट २ मथिकरणा ३ न्तरपूरण ४ लक्षणेन 'समुपहतस्य' विस्तारितजीवप्रदेशस्य 'ततः' समुद्घातात् 'प्रतिनिवर्त्तमानस्य' प्रदेशान संहरतः, समुद्घातप्रतिनिवर्त्तमानत्वं च पञ्चमादिष्वनेकेषु समयेषु स्यादित्यतो विशेषणाह—'अंतरामंथे वट्टमाणस्स' त्ति निवर्त्तनक्रियाया अन्तरे—मध्येऽवस्थितस्य पञ्चमसमय इत्यर्थः, यद्यपि च षष्ठादिसमयेषु तैजसादिशरीरसङ्घातः समुत्पद्यते तथाऽप्यभूतपूर्वतया पञ्चमसमय एवासौ भवति शेषेषु तु भूतपूर्वतयैवेतिकृत्वा 'अंतरामंथे वट्टमाणस्से' त्युक्तमिति, 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणयोः शरीरयोः 'बन्धः' सङ्घातः समुत्पद्यते 'किं कारणं' कुतो हेतोः?, उच्यते—'ताहे' त्ति तदा समुद्घातनिवृत्तिकाले 'से' त्ति तस्य केवलिनः 'प्रदेशाः' जीवप्रदेशाः 'एगत्तीगय' त्ति एकत्वं गताः—संघातमापन्ना भवन्ति, तदनुवृत्त्या च तैजसादिशरीरप्रदेशानां बन्धः समुत्पद्यत इति प्रकृतम्, शरीरिबन्ध इत्यत्र तु पक्षे 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणाश्रयभूतत्वात्तैजसकार्मणाः शरीरिप्रदेशास्तेषां बन्धः समुत्पद्यत इति व्याख्येयम्।

८/३६९. 'वीरियसजोगसद्दव्वयाए' त्ति वीर्यं—वीर्यान्तरायक्षयादिकृता शक्तिः योगाः—मनःप्रभृतयः सह योगैर्वर्त्तत इति सयोगः सन्ति—विद्यमानानि द्रव्याणि—तथाविधपुद्गला यस्य जीवस्यासौ सद्द्रव्यः वीर्यप्रधानः सयोगो वीर्यसयोगः स चासौ सद्द्रव्यश्चेति विग्रहस्तद्भावस्तत्ता तया वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया, सवीर्यतया सयोगतया सद्द्रव्यतया जीवस्य, तथा 'पमायपच्चय' त्ति 'प्रमादप्रत्ययात्' प्रमादलक्षणकारणात् तथा 'कम्मं च' त्ति कर्म च एकेन्द्रियजात्यादिकमुदयवर्त्ति 'जोगं च' त्ति 'योगं च' काययोगादिकं 'भवं च' त्ति भवं च' तिर्यग्भवादिकमनुभूयमानम् 'आउयं च' त्ति 'आयुष्कं च' तिर्यगायुष्काद्युदयवर्त्ति 'पडुच्च' त्ति 'प्रतीत्य' आश्रित्य 'ओरालिए' त्यादि औदारिकशरीरप्रयोगसम्पाकं यत्नाम तदौदारिकशरीरप्रयोगनाम तस्य कर्म्मण उदयेनौदारिकशरीरप्रयोगबन्धो भवतीति शेषः, एतानि च वीर्यसयोगसद्द्रव्यतादीनि पदान्यौदारिकशरीरप्रयोगनामकर्मोदयस्य विशेषणतया व्याख्येयानि, वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया हेतुभूतया यो विवक्षितकर्मोदयस्तेनेत्यादिना प्रकारेण, स्वतन्त्राणि वैतान्यौदारिकशरीरप्रयोगबन्धस्य कारणानि, तत्र च पक्षे यदौदारिकशरीरप्रयोगबन्धः कस्य कर्म्मण उदयेन? इति पृष्टे यदन्यान्यपि कारणान्यभिधीयन्ते तद्विवक्षितकर्मोदयोऽभिन्नान्येव सहकारिकारणान्यपेक्ष्येह कारणतयोऽवसेय इत्यस्यार्थस्य ज्ञापनार्थमिति॥

८/३७०-३७२. 'एगिंदिए' त्यादौ 'एवं चेव' त्ति अनेनाधिकृतसूत्रस्य पूर्वसूत्रसम्मतामिधानेऽपि 'ओरालियसरीरप्पओगनामाए' इत्यत्र पदे 'एगिंदियओरालियसरीरप्पओगनामाए' इत्ययं विशेषो दृश्यः, एकेन्द्रियौदारिकशरीरप्रयोगबन्धस्येहाधिकृतत्वात्, एवमुत्तरत्रापि वाच्यमिति॥

८/३७३. 'देसबंधेऽवि सव्वबंधेऽवि' त्ति तत्र यथाऽपूपः स्नेहभृततप्तापिकायां प्रक्षिप्तः प्रथमसमये घृतादि गृह्णात्येव शेषेषु तु समयेषु गृह्णाति विसृजति च एवमयं जीवो यदा प्राक्तनं शरीरकं विहायान्यद्गृह्णाति तदा प्रथमसमये उत्पत्तिस्थानगतान् शरीरप्रायोग्यपुद्गलान् गृह्णात्येवेत्ययं सर्वबन्धः, ततो द्वितीयादिषु समयेषु तान् गृह्णाति विसृजति चेत्येष देशबन्धः, ततश्चैवमौदारिकस्य देशबन्धोऽप्यस्तीति सर्वबन्धोऽप्यस्तीति॥

८/३७६. 'सव्वबंधे एक्कं समयं' ति अपूपदृष्टान्तेनैव तत्सर्वबन्धकस्यैकसमयत्वादिति, 'देसबंधे' इत्यादि, तत्र यदा वायुर्मनुष्यादिर्वा वैक्रियं कृत्वा विहाय च पुनरौदारिकस्य समयमेकं सर्वबन्धं कृत्वा पुनस्तस्य देशबन्धं कुर्वन्नेकसमयमनन्तरं म्रियते तदा जघन्यत एकं समयं देशबन्धोऽस्य भवतीति 'उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं समयऊणाइं' ति, कथं?, कश्चिदौदारिकशरीरिणां त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्षतः स्थितिः, तेषु च प्रथमसमये सर्वबन्धक इति समयन्यूनानि त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्षत औदारिकशरीरिणां देशबन्धकालो भवति।

३/३७७. 'एगिंदियओरालिए' त्यादि, देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथं?, वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियं गतः पुनरौदारिकप्रतिपन्नौ सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धकश्चैकं समयं भूत्वा मृतः इत्येवमिति, 'उक्कोसेणं बावीसं' मित्यादि, एकेन्द्रियाणामुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिरुक्तासौ प्रथमसमये सर्वबन्धकः शेषकालं देशबन्धक इत्येवं समयोनानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राण्येकेन्द्रियाणामुत्कर्षतो देशबन्धकाल इति॥

८/३७८. 'पुढविक्काइए' त्यादि, 'देसबंधे जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयऊणं' ति, कथम?, औदारिकशरीरिणां क्षुल्लकभवग्रहणं जघन्यतो भवति, तच्च गाथाभिर्निरूप्यते—

'दोन्नि सयाइं नियमा छप्पन्नाइं पमाणओ होंति।
आवलियपमाणेणं खुड्डागभवग्गहणमेयं॥१॥
पणसट्ठि सहस्साइं पंचेव सयाइं तह य छत्तीसा।
खुड्डागभवग्गहणा हवंति अंतोमुहुत्तेणं॥२॥
सत्तरस भवग्गहणा खुड्डागा हुंति आणुपाणंमि।
तेरस चेव सयाइं पंचाणउयाइं अंसाणं॥३॥'

(यद् आवलिकाप्रमाणेन षट्पञ्चाशदधिके द्वे शते नियमात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवतः प्रमाणतः क्षुल्लकभवग्रहणमेतत्॥१॥ पञ्चषष्टिः सहस्राणि षट्त्रिंशदधिकानि पञ्चैव शतानि तथा च क्षुल्लकभवग्रहणानि भवन्त्यन्तर्मुहूर्तेन॥२॥ आनप्राणे सप्तदश क्षुल्लकभवग्रहणानि भवन्ति पञ्चनवत्यधिकानि त्रयोदश शतान्यंशानां (मुहूर्तोच्छ्वासानां)॥३॥) इहोक्तलक्षणस्य ६५५३६ मुहूर्तगतक्षुल्लकभवग्रहणराशेः सहस्रत्रयशतसप्तक-त्रिसप्ततिलक्षणेन ३७७३ मुहूर्तगतोच्छ्वासराशिनां भागे हृते यल्लभ्यते तदेकस्योच्छ्वासे क्षुल्लकभवग्रहणपरिमाणं भवति, तच्च सप्तदश, अवशिष्टस्तूक्ततल्लक्षणोऽशराशिर्भवतीति, अयमभिप्रायः–येषामंशानां त्रिभिः सहस्रैः सप्तभिश्च त्रिसप्तत्यधिकशतैः क्षुल्लकभवग्रहणं भवति तेषामंशानां पञ्चनवत्यधिकानि त्रयोदश शतानि अष्टादशस्यापि क्षुल्लकभवग्रहणस्य तत्र भवन्तीति, तत्र यः पृथिवीकायिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणागतः स तृतीयसमये सर्वबन्धकः शेषेषु देशबन्धको भूत्वा आक्षुल्लक-भवग्रहणं मृतः, मृतश्च सन्नविग्रहेणागतो यदा तदा सर्वबन्धक एव भवतीति, एवं च ये ते विग्रहसमयास्त्रयस्तैरूनं क्षुल्लकमित्युच्यते, 'उक्कोसेणं बावीस' मित्यादि भावित-मेवेति, देसबंधो जेसिं नत्थी' त्यादि, अयमर्थः–अप्तेजो-वनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं जघन्यतो देशबन्धो यतस्तेषां वैक्रियशरीरं नास्ति, वैक्रियशरीरे हि सत्येकसमयो जघन्यत औदारिकदेशबन्धः पूर्वोक्तयुक्त्या स्यादिति, 'उक्कोसेणं जा जस्से' त्यादि तत्रापां वर्षसहस्राणि सप्तोत्कर्षतः स्थितिः, तेजसामहोरात्राणि त्रीणि, वनस्पतीनां वर्षसहस्राणि दश, द्वीन्द्रियाणां द्वादश वर्षाणि त्रीन्द्रियाणामे-कोनपञ्चाशदहोरात्राणि चतुरिन्द्रियाणां षण्मासाः, तत एषां सर्वबन्धसमयोना उत्कृष्टतो देशबन्धस्थितिर्भवतीति, 'जेसिं पुणे' त्यादि, ते च वायवः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च, एषां जघन्येन देशबन्ध एकं समयं, भावना च प्रागिव, 'उक्कोसेण' मित्यादि तत्र वायूनां त्रीणि वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः स्थितिः, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च पल्योपमत्रयम्, इयं च स्थितिः सर्वबन्धसमयोना उत्कृष्टतो देशबन्धस्थितिरेषां भवतीत्यति-देशतो मनुष्याणां देशबन्धस्थितौ लब्धायामप्यन्तिमसूत्रत्वेन साक्षादेव तेषां तामाह–'जाव मणुस्साण' मित्यादि।

उक्त औदारिकशरीरप्रयोगबन्धस्य कालोऽथ तस्यैवान्तरं निरूपयन्नाह–

८/३७९. 'ओरालिए' त्यादि, सर्वबन्धान्तरं जघन्यतः क्षुल्लक-भवग्रहणं त्रिसमयोनं, कथं?, त्रिसमयविग्रहेणौदारिक-शरीरिष्वागतस्तत्र द्वौ समयावनाहारकस्तृतीयसमये सर्वबन्धकः क्षुल्लकभवं च स्थित्वा मृतः औदारिकशरी-रेष्वेवोत्पन्नस्तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकः एवं च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चान्तरं क्षुल्लकभवो विग्रहगतसमयत्रयोनः, 'उक्कोसेण' मित्यादि, उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि पूर्वकोटेः (टी च) समयाभ्यधिकानि (का) सर्वबन्धान्तरं भवतीति, कथं?, मनुष्यादिष्वविग्रहेणागतस्तत्र च प्रथमसमय एव सर्वबन्धको भूत्वा पूर्वकोटिं च स्थित्वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिर्नारकः सर्वार्थसिद्धको वा भूत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी संपन्नस्तत्र च विग्रहस्य द्वौ समयावनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकः औदारिक-शरीरस्यैव च यौ तौ द्वावनाहारसमयौ तयोरेकः पूर्वकोटी-सर्वबन्धसमयस्थाने क्षिप्तस्ततश्च पूर्णा पूर्वकोटी जाता एकश्च समयोऽतिरिक्तः, एवं च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चोत्कृष्ट-मन्तरं यथोक्तमानं भवतीति। 'देसबंधंतर' मित्यादि, देशबन्धान्तरं जघन्येनैकं समयं, कथं?, देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहेणैवोत्पन्नस्तत्र च प्रथम एव समये सर्वबन्धको द्वितीयादिषु च समयेषु देशबन्धकः संपन्नः, तदेवं देशबन्धस्य देशबन्धस्य चान्तरं जघन्यत एकः समयः सर्वबन्ध-सम्बन्धीति। 'उक्कोसेण' मित्यादि, उत्कृष्टतस्त्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमाणि त्रिसमयाधिकानि देशबन्धस्य देशबन्धस्यान्तरं भवतीति, कथं?, देशबन्धको मृत उत्पन्नश्च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः सर्वार्थसिद्धादौ, ततश्च च्युत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी संपन्नस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वयेऽनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धकोऽजनि, एवं चोत्कृष्टमन्तरालं देशबन्धस्य देशबन्धस्य च यथोक्तं भवतीति॥

औदारिकबन्धस्य सामान्यतोऽन्तरमुक्तमथ विशेषतस्तस्य तदाह–

८/३८०. 'एगिंदिए' त्यादि, एकेन्द्रियस्यौदारिकसर्वबन्धान्तरं जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं, कथं?, त्रिसमयेन विग्रहेण पृथिव्यादिष्वागतस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वय-मनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकस्ततः क्षुल्लकं भवग्रहणं त्रिसमयोनं स्थित्वा मृतः अविग्रहेण च यदोत्पद्य सर्वबन्धक एव भवति तदा सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति। 'उक्कोसेण' मित्यादि, उत्कृष्टतः सर्वबन्धान्तरं द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि समयाधिकानि भवन्ति, कथम्?, अविग्रहेण पृथिवी-कायिकेष्वागतः प्रथम एव च समये सर्वबन्धकस्ततो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि स्थित्वा समयोनानि विग्रहगत्या त्रिसमयाऽन्येषु पृथिव्यादिषूत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारको भूत्वा तृतीयसमये सर्वबन्धकः संपन्नः, अनाहार-कसमययोश्चैको, द्वाविंशतिवर्षसहस्रेषु समयोनेषु क्षिप्तस्तत्पूरणार्थं, ततश्च द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि समय-श्चैकेन्द्रियाणां सर्वबन्धयोरुत्कृष्टमन्तरं भवतीति। 'देस-बंधंतर' मित्यादि तत्रैकेन्द्रियौदारिकदेशबन्धान्तरं जघन्येनैकं समयं, कथं?, देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहेण सर्वबन्धको भूत्वा एकस्मिन् समये पुनर्देशबन्धक एव जातः, एवं च देशबन्धयो-र्जघन्यत एकः समयोऽन्तरं भवतीति, 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नि, कथं?, वायुरौदारिकशरीरस्य देशबन्धकः सन् वैक्रियं गतस्तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरौदारिकशरीरस्य सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धक एव जातः, एवं च देशबन्धयोरुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति।

८/३८१. 'पुढविकाइए' त्यादि, देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तिन्नि समय' त्ति, कथं?, पृथिवी-कायिको देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहगत्या पृथिवीकायिकेष्वे-वोत्पन्नः एकं समयं च सर्वबन्धको भूत्वा पुनर्देशबन्धको जातः एवमेकसमयो देशबन्धयोर्जघन्येनान्तरं, तथा पृथिवीकायिको देशबन्धको मृतः सन् त्रिसमयविग्रहेण तेष्वेवोत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारकः तृतीयसमये च सर्वबन्धको भूत्वा पुनर्देशबन्धको जातः, एवं च त्रयः समया उत्कर्षतो देशबन्धयोरन्तरमिति। अथाप्कायिकादीनां बन्धान्तर-मतिदेशन आह–'जहा पुढविकाइयाण' मित्यादि, अत्रैव च सर्वथा समतापरिहारार्थमाह–'नवर' मित्यादि, एवं चातिदेशतो यल्लब्धं तद्दर्श्यते–अप्कायिकानां जघन्यं सर्वबन्धान्तरं क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं उत्कृष्टं तु सप्तवर्षसहस्राणि समयाधिकानि, देशबन्धान्तरं जघन्यमेकः समय उत्कृष्टं तु त्रयः समयाः, एवं वायुवर्जानां तेजःप्रभृतीनामपि, नवरमुत्कृष्टं सर्वबन्धान्तरं स्वकीया स्वकीया स्थितिः समयाधिका वाच्या। अथातिदेशे वायुकायिकवर्जानामित्यनेनातिदिष्टबन्धान्तरेभ्यो वायुबन्धान्तरस्य विलक्षणता सूचितेति वायुबन्धान्तरं भेदेनाह–'वाउक्काइयाण' मित्यादि, तत्र च वायुकायिका-नामुत्कर्षेण देशबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, कथं?, वायुरौदारिक-शरीरस्य देशबन्धकः सन् वैक्रियबन्धमन्तर्मुहूर्त्तं कृत्वा पुनरौदारिकसर्वबन्धसमयानन्तरमौदारिकदेशबन्धं यदा करोति तदा यथोक्तमन्तरं भवतीति।

८/३८२. 'पंचिंदिये' त्यादि, तत्र सर्वबन्धान्तरं जघन्यं भावितमेव उत्कृष्टं तु भाव्यते– पञ्चेन्द्रियतिर्यङ् अविग्रहेणोत्पन्नः प्रथम एव च समये सर्वबन्धकस्ततः समयोनां पूर्वकोटिं जीवित्वा विग्रहगत्या त्रिसमयया तेष्वेवोत्पन्नस्तत्र च द्वावनाहारकसमयौ तृतीये च समये सर्वबन्धकः संपन्नः, अनाहारकसमययोश्चैकः समयोनायां पूर्वकोट्यां क्षिप्तस्तत्पूरणार्थमेकस्त्वधिक इत्येवं यथोक्तमन्तरं भवतीति, देशबन्धान्तरं तु यथैकेन्द्रियाणां, तच्चैवं–जघन्यमेकः समयः, कथं?, देशबन्धको मृतः सर्वबन्धसमयानन्तरं देशबन्धको जात इत्येवं, उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्त्तं?, कथं?, औदारिकशरीरी देशबन्धकः सन् वैक्रियं प्रतिपन्नस्तत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरौदारिकशरीरी जातस्तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको द्वितीयादिषु तु देशबन्धक इत्येवं देशबन्धयोरन्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति, एवं मनुष्याणामपीति, एतदेवाह–'जहा पंचिंदिए' त्यादि॥

औदारिकबन्धान्तरं प्रकारान्तरेणाह–

८/३८३. 'जीवे' त्यादि, एकेन्द्रियत्वे 'नोएगिंदियत्ते' त्ति द्वीन्द्रिय-त्वादौ पुनरेकेन्द्रियत्वे सति यत्सर्वबन्धान्तरं तज्जघन्येन द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे त्रिसमयोने, कथम्?, एकेन्द्रियस्त्रिसमयया विग्रहगत्योत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारको भूत्वा तृतीयसमये सर्वबन्धं कृत्वा तदूनं क्षुल्लकभवग्रहणं जीवित्वा मृतः अनेकेन्द्रियेषु क्षुल्लक-भवग्रहणमेव जीवित्वा मृतः सन्नविग्रहेण पुनरेकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जातः, एवं च सर्वबन्ध-योरुक्तमन्तरं जातमिति, 'उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवाससमब्भहियाइं' ति, कथम्?, अविग्रहेणैकेन्द्रियः समुत्पन्नस्तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा द्वाविंशतिं वर्षसहस्राणि जीवित्वा मृतस्त्रसकायिकेषु चोत्पन्नः, तत्र च सङ्ख्यातवर्षाभ्यधिकसागरोपमसहस्रद्वयरूपामुत्कृष्टत्रस-कायिककायस्थितिमति-वाह्य एकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जात इत्येवं सर्वबन्ध-योर्यथोक्तमन्तरं भवति, सर्वबन्धसमय-हीनएकेन्द्रियोत्कृष्ट-भवस्थितेस्त्रसकायस्थितौ प्रक्षेपणेऽपि सङ्ख्यातस्थानानां सङ्ख्यातभेदत्वेन सङ्ख्यातवर्षाभ्यधिकत्व-स्याव्याहतत्वादिति। 'देसबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं' ति, कथम्?, एकेन्द्रियो देशबन्धकः सन् मृत्वा द्वीन्द्रियादिषु क्षुल्लकभवग्रहणमनुभूयाविग्रहेण चागत्य प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा द्वितीये देशबन्धको भवति, एवं च देशबन्धान्तरं क्षुल्लकभवः सर्वबन्धसमयातिरिक्तः, 'उक्कोसेण' मित्यादि सर्वबन्धान्तरभावनोक्तप्रकारेण भावनीयमिति॥

अथ पृथिवीकायिकबन्धान्तरं चिन्तयन्नाह–

८/३८४. 'जीवस्से' त्यादि, 'एवं चेव' त्ति करणात् 'तिसमयऊणाइं' ति दृश्यम्, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं' ति, इह कालानन्तत्वं वनस्पतिकायस्थितिकालापेक्षयाऽनन्तकालमित्युक्तं तद्विभ-ज्यार्थमाह–'अणंताओ' इत्यादि, अयमभिप्रायः–तस्यानन्तस्य कालस्य समयेषु अवसर्पिण्युत्सर्पिणीसमयैरपहिय-माणेष्वनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यो भवन्तीति, 'कालओ' त्ति इदं कालापेक्षया मानं, 'खेत्तओ' त्ति क्षेत्रापेक्षया पुनरिदम्–'अणंता लोग' त्ति, अयमर्थः–तस्यानन्तकालस्य समयेषु लोकाकाशप्रदेशैरपहियमाणेष्वनन्ता लोका भवन्ति, अथ तत्र कियन्तः पुद्गलपरावर्त्ता भवन्ति? इत्यत आह–'असंखेज्जे' त्यादि, पुद्गलपरावर्त्तलक्षणं सामान्येन पुनरिदं–दशभिः कोटीकोटीभिरद्धापल्योपमानामेकं सागरोपमं दशभिः सागरोपमकोटीकोटीभिरवसर्पिणी, उत्सर्पिण्यप्येवमेव, ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्योऽनन्ताः पुद्गलपरावर्त्तः, एतद्विशेषलक्षणं तु इहैव वक्ष्यतीति, पुद्गलपरावर्त्तानामेवासङ्ख्यातत्व-नियमनायाह–'आवलिए' त्यादि, असङ्ख्यातसमयमुदायश-चावलिकेति। 'देसबंधंतरं जहन्नेणं' मित्यादि, भावना त्वेवं–पृथिवीकायिको देशबन्धकः सन्मृतःपृथिवीकायिकेषु क्षुल्लक-भवग्रहणं जीवित्वा मृतः सन् पुनरविग्रहेण पृथिवी-कायिकेष्वेवोत्पन्नः, तत्र च सर्वबन्धसमयानन्तरं देशबन्धको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातः, एवं च सर्वबन्धसमयेनाधिकमेकं क्षुल्लकभवग्रहणं देशबन्धयोरन्तरमिति। 'वणस्सइकाइयाणं दोन्नि खुड्डाइं' ति वनस्पतिकायिकानां जघन्यतः सर्वबन्धान्तरं द्वे क्षुल्लके भवग्रहणे 'एवं चेव' ति करणाद्विग्रहगतौ इति दृश्यम्, एतद्भावना च वनस्पतिकान्त्रिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणोत्पन्नः तत्र च विग्रहस्य समयद्वयमनाहारकस्तृतीये समये च सर्वबन्धको भूत्वा क्षुल्लकभवं च जीवित्वा पुनः पृथिव्यादिषु क्षुल्लकभवमेव स्थित्वा पुनरविग्रहेण वनस्पतिकायिकेष्वेवोत्पन्नः प्रथमसमये च सर्वबन्धकोऽभावीति सर्वबन्धयोस्त्रिसमयोने द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे अन्तरं भवत इति। 'उक्कोसेणं' मित्यादि, अयं च पृथिव्यादिषु कायस्थितिकालः 'एवं देसबंधंतरंपि' ति यथा पृथिव्यादीनां देशबन्धान्तरं जघन्यमेवं वनस्पतेरपि, तच्च क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकं, भावना चास्य पूर्ववत्, 'उक्कोसेणं पुढविकालो' त्ति उत्कर्षेण वनस्पतेर्देशबन्धान्तरं 'पृथिवीकालः' पृथिवीकायस्थितिकालोऽसङ्ख्यातावसर्पिण्युत्सर्पिण्यादिरूप इति॥

अथौदारिकदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह -

८/३८५. 'एएसी' त्यादि, तत्र सर्वस्तोकाः सर्वबन्धकास्तेषामुत्पत्तिसमय एव भावात्, अबन्धका विशेषाधिकाः, यतो विग्रहगतौ सिद्धत्वादौ च ते भवन्ति, ते च सर्वबन्धकापेक्षया विशेषाधिकाः, देशबन्धका असङ्ख्यातगुणाः, देशबन्धककालस्यासङ्ख्यातगुणत्वात्, एतस्य च सूत्रस्य भावना विशेषतोऽग्रे वक्ष्याम इति।

अथ वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धनिरूपणायाह–

८/३८६-३९१. तत्र 'एगिंदियवेउव्विए' त्यादि वायुकायिकापेक्षमुक्तं, 'पंचिंदिए' त्यादि तु पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यदेवनारकापेक्षमिति। 'वीरिये' त्यादौ यावत्करणात् 'पमायपच्चया कम्मं च जोगं च भवं चे' ति द्रष्टव्यं 'लद्धिं व' त्ति वैक्रियकरणलब्धिं वा प्रतीत्य, एतच्च वायुपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यानपेक्ष्योक्तं, तेन वायुकायादिसूत्रेषु लब्धिं वैक्रियशरीरबन्धस्य प्रत्ययतया वक्ष्यति, नारकदेवसूत्रेषु पुनस्तां विहाय वीर्ययोगसद्द्रव्यतादीन् प्रत्ययतया वक्ष्यतीति।

८/३९३. 'सव्वबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथं?, वैक्रियशरीररिषूत्पद्यमानो लब्धितो वा तत् कुर्वन् समयमेकं सर्वबन्धको भवतीत्येवमेकं समयं सर्वबन्ध इति, 'उक्कोसेणं दो समयं' ति, कथं?, औदारिकशरीरी वैक्रियतां प्रतिपद्यमानः सर्वबन्धको भूत्वा मृतः पुनर्नारकत्वं देवत्वं वा यदा प्राप्नोति तदा प्रथमसमये वैक्रियस्य सर्वबन्धक एवेतिकृत्वा वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धक उत्कृष्टतः समय-द्वयमिति, 'देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथं?, औदारिकशरीरी वैक्रियतां प्रतिपद्यमानः प्रथमसमये सर्वबन्धको भवति द्वितीयसमये देशबन्धको भूत्वा मृतं इत्येवं देशबन्धो जघन्यत एकं समयमिति, 'उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयऊणाइं ति, कथं?, देवेषु नारकेषु चोत्कृष्टस्थितिषूत्पद्यमानः प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य ततः परं देशबन्धकस्तेन सर्वबन्धकसमयेनोनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममुत्कर्षतो देशबन्ध इति।

८/३९४. 'वाउक्काइए' त्यादि, 'देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथं?, वायुरौदारिकशरीरी सन् वैक्रियं गतस्ततः प्रथमसमये सर्वबन्धको द्वितीयसमये देशबन्धको भूत्वा मृत इत्येवं जघन्येनैको देशबन्धसमयः 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति वैक्रियशरीरेण स एव यदाऽन्तर्मुहूर्तमात्रमास्ते तदोत्कर्षतो देशबन्धोऽन्तर्मुहूर्तं, लब्धिवैक्रिय-शरीरिणो जीवतोऽन्तर्मुहूर्तपरतो न वैक्रियशरीरावस्थानमस्ति, पुनरौदारिकशरीरस्यावश्यं प्रतिपत्तेरिति॥

८/३९५. 'रयणप्पभे' त्यादि, 'देसबंधे जहन्नेणं दस वाससहस्साइं तिसमयऊणाइं ति, कथं?, त्रिसमयविग्रहेण रत्नप्रभायां जघन्यस्थितिर्नारकः समुत्पन्नः तत्र च समयद्वयमनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धको वैक्रियस्य तदेवमाद्य-समयत्रयन्यूनं वर्षसहस्रदशकं जघन्यतो देशबन्धः, उक्कोसेणं सागरोवमं समयऊणं' ति, कथं?, अविग्रहेण रत्नप्रभायामुत्कृष्टस्थितिर्नारकः समुत्पन्नः तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य ततःपरं देशबन्धकस्तेन सर्वबन्धसमयेनोनं सागरोपममुत्कर्षतो देशबन्ध इति, एवं सर्वत्र सर्वबन्धः समयं देशबन्धश्च जघन्यो विग्रहसमयत्रयन्यूनो निजनिजजघन्यस्थितिप्रमाणो वाच्यः, सर्वबन्धसमयन्यूनोत्कृष्टस्थितिप्रमाणश्चोत्कृष्टदेशबन्ध इति, एतदेवाह–'एवं जावे' त्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां वैक्रियसर्वबन्ध एकं समयं देशबन्धस्तु जघन्यत एकं समयमुत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्तम्॥ एतदेवातिदेशेनाह–

'पंचिंदिये' त्यादि, यच्च 'अंतमुहुत्तं निरएसु होइ चत्तारि। तिरियमणुएसु देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणाकालो॥१॥' (नरकेष्वन्तर्मुहूर्तं भवति तिर्यङ्मनुष्येषु चत्वारि देवेष्वर्द्धमासः उत्कृष्टो विकुर्वणाकालः॥१॥) इति वचनसामर्थ्यादन्तर्मुहूर्तचतुष्टयं तेषां देशबन्ध इत्युच्यते तन्मतान्तरमित्यवसेयमिति।

उक्तं वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धस्य कालतः।

अथ तस्यैवान्तरं निरूपयन्नाह–'वेउव्वियं' त्यादि, 'सव्वबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथं?, औदारिकशरीरी वैक्रियं गतः प्रथमसमये सर्वबन्धको द्वितीये देशबन्धको भूत्वा मृतो देवेषु नारकेषु वा वैक्रियशरीररिष्वविग्रहेणोत्पद्यमानः प्रथमसमये सर्वबन्धक इत्येवमेकः समयः सर्वबन्धान्तरमिति, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं' ति, कथं?, औदारिकशरीरी वैक्रियं गतो वैक्रियशरीरिषु वा देवादिषु समुत्पन्नः स च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धं च कृत्वा मृतः ततः परमनन्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालमौदारिकशरीरेषु वनस्पत्यादिषु स्थित्वा वैक्रियशरीरवत्सूत्पन्नः, तत्र च प्रथम समये सर्वबन्धको जातः, एवं च सर्वबन्ध-योर्यथोक्तमन्तरं भवतीति, (ग्रन्थाग्रम् ९०००) 'एवं देसबंधंतरंपि' त्ति, जघन्येनैकं समयमुत्कृष्टतोऽनन्तं कालमित्यर्थः, भावना चास्य पूर्वोक्तानुसारेणेति।

८/३९७. 'वाउक्काइए' त्यादि सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियमापन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा मृतः पुनर्वायुरेव जातः, तस्य चापर्याप्तकस्य वैक्रिय-शक्तिर्नाविर्भवतीत्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रेणासौ पर्याप्तको भूत्वा वैक्रियशरीरमारभते, तत्र चासौ प्रथमसमये सर्वबन्धको जात इत्येवं सर्वबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्त्तमिति, 'उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं' ति, कथं?, वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियं गतः, तत्प्रथमसमये च सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धको भूत्वा मृतस्ततः परमौदारिकशरीरिषु वायुषु पल्योपमासङ्ख्येयभागमतिवाह्यावश्यं वैक्रियं करोति, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकः, एवं च सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति, 'एवं देसबंधंतरंपि' त्ति, अस्य भावना प्रागिवेति।

८/३९८. 'तिरिक्खे' त्यादि, सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वैक्रियं गतः तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकस्ततः परं देशबन्धकोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रं तत औदारिकस्य सर्वबन्धको भूत्वा समयं देशबन्धको जातः पुनरपि श्रद्धेयमुत्पन्ना वैक्रियं करोमीति पुनर्वैक्रियं कुर्वतः प्रथमसमये सर्वबन्धः, एवं च सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति, 'उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं' त्ति, कथं?, पूर्वकोट्यायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धको भूत्वा कालान्तरे मृतस्तत्र पूर्वकोट्यायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्ष्वेवोत्पन्नः पूर्वजन्मना सह सप्ताष्टौ वा वारान्, ततः सप्तमेऽष्टमे वा भवे वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धं कृत्वः देशबन्धं करोतीति, एवं च सर्वबन्धयोरुत्कृष्टं यथोक्तमन्तरं भवतीति, 'एवं देसबंधंतरंपि' त्ति, भावना चास्य सर्वबन्धान्तरोक्तभावनानुसारेण कर्त्तव्येति। वैक्रियशरीरबन्धान्तरमेव प्रकारान्तरेण चिन्तयन्नाह–

८/३९९. 'जीवस्से' त्यादि, 'सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, वायुर्वैक्रियशरीरं प्रतिपन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा मृतस्ततः पृथिवीकायिकेषूत्पन्नः, तत्रापि क्षुल्लकभवग्रहणमात्रं स्थित्वा पुनर्वायुर्जातः तत्रापि कतिपयान् क्षुल्लकभवान् स्थित्वा वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको जातस्ततश्च वैक्रियस्य सर्वबन्धयोरन्तरं बहवः क्षुल्लकभवास्ते च बहवोऽप्यन्तर्मुहूर्त्ते, अन्तर्मुहूर्त्ते बहूनां क्षुल्लकभवानां प्रतिपादितत्वात्, ततश्च सर्वबन्धान्तरं यथोक्तं भवतीति, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो' त्ति, कथं?, वायुर्वैक्रियशरीरीभवन् मृतो वनस्पत्यादिष्वनन्तं कालं स्थित्वा वैक्रियशरीरं पुनर्यदा लप्स्यते तदा यथोक्तमन्तरं भविष्यतीति, एवं देसबंधंतरंपि' त्ति, भावना चास्य प्रागुक्तानुसारेणेति॥

८/४००-४०२. रत्नप्रभासूत्रे 'सव्वबंधंतर' मित्यादि, एतद्भाव्यते– रत्नप्रभानारको दशवर्षसहस्रस्थितिक उत्पन्नो सर्वबन्धकः तत उद्धृतस्तु गर्भजपञ्चेन्द्रियेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा रत्नप्रभायां पुनरप्युत्पन्नः तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक इत्येवं सूत्रोक्तं जघन्यमन्तरं सर्वबन्धयोरिति, अयं च यद्यपि प्रथमोत्पत्तौ त्रिसमय-विग्रहेणोत्पद्यते तदापि न दश वर्षसहस्राणि त्रिसमयन्यूनानि भवन्ति, अन्तर्मुहूर्त्तस्य मध्यात्समयत्रयस्य तत्र प्रक्षेपात्, न च तत्प्रक्षेपेऽप्यन्तर्मुहूर्त्तस्यान्तर्मुहूर्त्तत्व-व्याघातस्तस्यानेकभेदत्वादिति, 'उक्कोसेणं वणस्सइकालो' त्ति, कथं?, रत्नप्रभानारक उत्पन्नो सर्वबन्धकः तत उद्धृतश्चानन्तं कालं वनस्पत्यादिषु स्थित्वा पुनस्तत्रैवोत्पद्यमानः सर्वबन्धक इत्येवमुत्कृष्टमन्तरमिति, देसबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, रत्नप्रभानारको देशबन्धकः सन् मृतोऽन्तर्मुहूर्त्तायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्तयोत्पद्य मृत्वा रत्नप्रभानारकतयोत्पन्नः, तत्र च द्वितीयसमये देशबन्धक इत्येवं जघन्यं देशबन्धान्तरमिति, 'उक्कोसेणं' मित्यादि, भावना प्रागुक्तानुसारेणेति। शर्कराप्रभादिनारकाणां वैक्रियशरीरबन्धान्तरमतिदेशतः सङ्ग्रहपार्थमाह–'एवं जावे' त्यादि, द्वितीयादिपृथिवीषु च जघन्या स्थितिः क्रमेणैकं त्रीणि सप्त दश सप्तदश द्वाविंशतिश्च सागरोपमाणीति। 'पंचिंदिए' त्यादौ 'जहा वाउकाइयाणं' ति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतः पुनरनन्तं कालमित्यर्थः। असुरकुमारादयस्तु सहस्रवर्षान्ता देवा उत्पत्तिसमये सर्वबन्धं कृत्वा स्वकीयां च जघन्यस्थितिमनुपाल्य पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तायुष्कत्वेन समुत्पद्य मृत्वा च तेष्वेव सर्वबन्धका जाताः, एवं च तेषां वैक्रियस्य जघन्यं सर्वबन्धान्तरं जघन्या तत्स्थितिरन्तर्मुहूर्त्ताधिका वक्तव्या, उत्कृष्टं त्वनन्तं कालं, यथा रत्नप्रभानारकाणामिति, एतदर्शनायाह– 'असुरकुमारे' त्यादि, तत्र जघन्या स्थितिरसुरकुमारादीनां व्यन्तराणां च दश वर्षसहस्राणि ज्योतिष्काणां पल्योपमाष्टभागः सौधर्मादिषु तु 'पलियमहियं दो सार साहिया सत्तदस य चोद्दस य सत्तरस य' इत्यादि।

आनतसूत्रे 'सव्वबंधंतर' मित्यादि, एतस्य भावना आनतकल्पीयो देव उत्पन्नो सर्वबन्धकः, स चाष्टादश-सागरोपमाणि तत्र स्थित्वा ततश्च्युतो वर्षपृथक्त्वं मनुष्येषु स्थित्वा पुनस्तत्रैवोत्पन्नः प्रथमसमये चासौ सर्वबन्धक इत्येवं सर्वबन्धान्तरं जघन्यमष्टादश सागरोपमाणि वर्षपृथक्त्वाधिकानीति, उत्कृष्टं त्वनन्तं कालं, कथं? स एव तस्माच्च्युतोऽनन्तं कालं वनस्पत्यादिषु स्थित्वः पुनस्तत्रैवोत्पन्नः प्रथमसमये चासौ सर्वबन्धक इत्येवमिति, देसबंधंतरं जहन्नेणं वासपुहुत्तं' ति, कथं?, स एव देशबन्धकः संश्च्युतो वर्षपृथक्त्वं मनुष्यत्वमनुभूय पुनस्तत्रैव गतस्तस्य च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वबन्धानन्तरं देशबन्ध इत्येवं सूत्रेऽक्तमन्तरं भवति, इह च यद्यपि सर्वबन्धसमयाधिकं वर्षपृथक्त्वं भवति तथाऽपि तस्य वर्षपृथक्त्वादनर्थान्तरत्वविवक्षयः न भेदेन गणनमिति। एवं प्राणतारणाच्युतग्रैवेयकसूत्राण्यपि ज्ञेयानि।

अथ सनत्कुमारादिसहस्रारान्ता देवा जघन्यतो नवदिनायुष्केभ्यः आनताद्यच्युतान्तास्तु नवमासायुष्केभ्यः समुत्पद्यन्त इति जीवसमासेऽभिधीयते, ततश्च जघन्यं तत्सर्वबन्धांतरं तन्नवधिकतज्जघन्यस्थितिरूपं प्राप्नोतीति, सत्यमेतत्, केवलं मतान्तरमेवेदमिति॥

८/४०३. अनुत्तरविमानसूत्रे तु 'उक्कोसेणं' मित्यादि, उत्कृष्टं सर्वबन्धान्तरं देशबन्धान्तरं च सङ्ख्यातानि सागरोपमाणि, यतो नानन्तकालमनुत्तर-विमानच्युतः संसरति, तानि च जीवसमासमतेन द्विसङ्ख्यानीति।

अथ वैक्रियशरीरदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह–

८/४०४. 'एएसी' त्यादि, तत्र सर्वस्तोका वैक्रियसर्वबन्धकास्तत्कालस्याल्पत्वात्, देशबन्धका असङ्ख्यातगुणास्तत्कालस्य तदपेक्षयाऽसंख्येयगुणत्वात्, अबन्धकास्त्वनन्तगुणाः सिद्धानां वनस्पत्यादीनां च तदपेक्षयाऽनन्तगुणत्वादिति॥

अथाहारकशरीरप्रयोगबन्धमधिकृत्याह–

८/४०५. 'आहारे' त्यादि, 'एगागारे' त्ति एकः प्रकारो नौदारिकादिबन्धवैकेन्द्रियाद्यनेक-प्रकार इत्यर्थः।

८/४०९. 'सव्वबंधे एक्कं समयं' ति आद्यसमय एव सर्वबन्धभावात्, देसबंधे जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्त-मात्रमेवाहारकशरीरी भवति, परत औदारिकशरीरस्यावश्यं ग्रहणात्, तत्र चान्तर्मुहूर्त्ते आद्यसमये सर्वबन्धः उत्तरकालं च देशबन्ध इति।

अथाहारकशरीरप्रयोगबन्धस्यैवान्तरनिरूपणायाह–

८/४१०. 'आहारे' त्यादि, सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, मनुष्य आहारकशरीरं प्रतिपन्नस्तत्प्रथमसमये च सर्वबन्धकस्त-तोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रं स्थित्वौदारिकशरीरं गतस्तत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थितः, पुनरपि च तस्य संशयादि आहारकशरीरकरण-कारणमुत्पन्नं ततः पुनरप्याहारकशरीरं गृह्णाति, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक एवेति, एवं च सर्वबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, द्वयोरप्यन्तर्मुहूर्त्तयोरेकत्वविवक्षणादिति, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं' ति, कथं?, यतोऽनन्तकालादाहारकशरीरं पुनर्लभत इति, कालानन्त्यमेव विशेषेणाह–'अणंताओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अणंता लोग' त्ति, एतद्व्याख्यानं च प्राग्वत्। अथ तत्र पुद्गलपरावर्त्तपरिमाणं किं भवति? इत्याह–'अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं' ति 'अपार्धम्' अपगतार्द्धमर्द्धमात्रमित्यर्थः 'पुद्गलपरावर्त्तं' प्रागुक्तस्वरूपम्, अपार्द्धमप्यर्द्धतः पूर्णं स्यादत आह–देशोनमिति। 'एवं देसबंधंतरंपि' त्ति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पुनरपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, भावना तु पूर्वोक्तानुसारेणेति॥

अथाहारकशरीरदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह–

८/४११. 'एएसि णं' मित्यादि, तत्र सर्वस्तोका आहारकस्य सर्वबन्धकास्तत्सर्वबन्धकालस्याल्पत्वात्, देशबन्धकाः सङ्ख्यातगुणास्तद्देशबन्धकालस्य बहुत्वात्, असङ्ख्यातगुणास्तु ते न भवन्ति, यतो मनुष्या अपि सङ्ख्याताः किं पुनराहारकशरीरदेशबन्धकाः?, अबन्धकास्त्वनन्तगुणाः, आहारकशरीरं हि मनुष्याणां तत्रापि संयतानां तेषामपि केषाञ्चिदेव कदाचिदेव च भवतीति, शेषकाले ते शेषमत्त्वाश्चाबन्धकाः, ततश्च सिद्धवनस्पत्यादीनामनन्तगुणत्वादनन्तगुणास्त इति॥

अथ तैजसशरीरप्रयोगबन्धमधिकृत्याह–

८/४१५. 'तेये' त्यादि, 'नो सव्वबंधे' ति तैजसशरीरस्यानादित्वान्न सर्वबन्धोऽस्ति, तस्य प्रथमतः पुद्गलोपादानस्याप्यत्वादिति।

८/४१६. 'अणाइए वा अपज्जवसिए' इत्यादि, तत्रायं तैजसशरीरबन्धोऽनादिरपर्यवसितोऽभव्यानां अनादिः सपर्यव-सितस्तु भव्यानामिति॥

अथ तैजसशरीरप्रयोगबन्धस्यैवान्तरनिरूपणायाह–

८/४१७. 'तेये' त्यादि, 'अणाइयस्से' त्यादि, यस्मात्संसारस्थो जीवस्तैजसशरीरबन्धेन द्वयरूपेणापि सदाऽविनिर्मुक्त एव भवति तस्माद्द्वयरूपस्याप्यस्य नास्त्यन्तरमिति॥

अथ तैजसशरीरदेशबन्धकाबन्धकानामल्पत्वादिनिरूपणायाह–

८/४१८. 'एएसी' त्यादि, तत्र सर्वस्तोकास्तैजसशरीरस्याबन्धकाः सिद्धानामेव तदबन्धकत्वात्, देशबन्धकास्त्वनन्तगुणास्तद्देशबन्धकानां सकलसंसारिणां सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वादिति।

अथ कार्म्मणशरीरप्रयोगबन्धमधिकृत्याह–

८/४१९-४२९. 'कम्मासरीरे' त्यादि, 'णाणपडिणीययाए' त्ति ज्ञानस्य–श्रुतादेस्तदभेदात् ज्ञानवतां वा या प्रत्यनीकता–सामान्येन प्रतिकूलना सा तथा तया, 'णाणनिण्हवणयाए' त्ति ज्ञानस्य–श्रुतस्य श्रुतगुरूणां वा या निह्नवता–अपलपनं सा तथा तया, 'नाणंतराएणं' ति ज्ञानस्य–श्रुतस्यान्तरायः–तद्ग्रहणादौ विघ्नो यः स तथा तेन, 'नाणपओसेणं' ति ज्ञाने–श्रुतादौ ज्ञानवत्सु वा यः प्रद्वेषः–अप्रीतिः स तथा तेन, 'नाणऽच्चासायणाए' त्ति ज्ञानस्य ज्ञानिनां वा याऽत्याशातना–हीलना सा तथा तया, 'नाणविसंवायणाजोगेणं' ति ज्ञानस्य ज्ञानिनां वा विसंवादनयोगो–व्यभिचारदर्शनाय व्यापारो यः स तथा तेन, एतानि च बाह्यानि कारणानि ज्ञानावरणीयकार्म्मणशरीरबन्धे, अथाऽऽन्तरं कारणमाह–'नाणावरणिज्जं' मित्यादि, ज्ञानावरणीयहेतुत्वेन ज्ञानावरणीयलक्षणं यत्कार्म्मणशरीरप्रयोगनाम तत्तथा तस्य कर्म्मण उदयेनेति, 'दंसणपडिणीययाए' त्ति इह दर्शनं–चक्षुर्दर्शनादि, 'तिव्वदंसणमोहणिज्जाए' त्ति तीव्रमिथ्यात्वतयेत्यर्थः 'तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए' ति कषायव्यतिरिक्तं नोकषायलक्षणमिह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्रमोहनीयं ग्राह्यं, तीव्रक्रोधतयेत्यादिना कषायचारित्रमोहनीयस्य प्रागुक्तत्वादिति. 'महारंभयाए' त्ति अपरिमितकृष्याद्यारम्भतयेत्यर्थः. 'महारंभपरिग्गहयाए' त्ति अपरिमाणपरिग्रहतया कुणिमाहारेणं' ति मांसभोजनेनेति 'माइल्लयाए' त्ति परवञ्चनबुद्धिव(म)तया 'नियडिल्लयाए' निकृतिः– वञ्चनार्थं चेष्टा मायाप्रच्छादनार्थं मायान्तरमित्येके अन्यादर-करणेन परवञ्चनमित्यन्ये तद्वत्तया. 'पगइभद्दयाए' त्ति स्वभावतः परानभुनाप्तितया 'पगइउवसंतयाए' त्ति सानुकम्पतया 'अमच्छरियाए' त्ति मत्सरिकः–परगुणानामसोढा तद्भावनिषेधोऽमत्सरिकता तया। 'सुभनामकम्मे' त्यादि. इह शुभनाम देवगत्यादिकं 'कायउज्जुययाए' त्ति कायर्जुकतया परावञ्चनपरकायचेष्टया 'भावुज्जुययाए' त्ति भावर्जुकतया परावञ्चनपरमनःप्रवृत्त्येत्यर्थः, 'भासुज्जुययाए' त्ति भाषर्जुकतया भाषाऽऽर्जवेनेत्यर्थः 'अविसंवायणाजोगेणं' ति विसंवादनं–अन्यथाप्रतिपन्नस्यान्यथाकरणं तद्रूपो योगः–व्यापारस्तेन वा योगः–सम्बन्धो विसंवादनयोगस्तन्निषेधादविसंवादनयोगस्तेन, इह च कायर्जुकतादि त्रयं वर्त्तमानकालाश्रयं, अविसंवादनयोगस्त्वतीतवर्त्तमानलक्षणकालद्वयाश्रय इति।

८/४३०. 'असुभनाम-कम्मे' त्यादि. इह चाशुभनाम नरकगत्यादिकम्।

'कम्मासरीरप्पओगबंधे ण' मित्यादि, कार्म्मणशरीरप्रयोगबन्धप्रकरणं तैजसशरीरप्रयोगबन्धप्रकरणवन्नेयं, यस्तु विशेषोऽसावुच्यते–

८/४३८. 'सव्वत्थोवा आउयस्स कम्मस्स देसबंधगा' त्ति, सर्वस्तोकत्वमेषामायुर्बन्धाद्धायां स्तोकत्वादबन्धाद्धायास्तु बहुगुणत्वात्. तदबन्धकाः सङ्ख्यातगुणाः, नन्वसङ्ख्यातगुणास्तदबन्धकाः कस्मान्नोक्ताः ? तदबन्धाद्धाया असङ्ख्यातजीवितानाश्रित्य सङ्ख्यातगुणत्वात्, उच्यते, इदमनन्तकायिकानाश्रित्यं सूत्रं. तत्र चानन्तकायिकाः सङ्ख्यातजीविता एव, ते चायुष्कस्याबन्धकास्तद्देशबन्धकेभ्यः सङ्ख्यातगुणा एव भवन्ति, यदबन्धकाः सिद्धादयस्तन्मध्ये क्षिप्यन्ते तथाऽपि तेभ्यः सङ्ख्यातगुणा एव ते, सिद्धाद्यबन्धकानामनन्तानामप्यनन्तकायिकायुर्बन्धकापेक्षयाऽनन्तभागत्वादिति। ननु यदायुषोऽबन्धकाः सन्तो बन्धका भवन्ति तदा कथं न सर्वबन्धसम्भवस्तेषाम्?, उच्यते, न हि आयुः प्रकृतिरसतीं सर्वतिर्निबध्यते औदारिकादिशरीरवदिति न सर्वबन्धसम्भव इति॥

प्रकारान्तरेणौदारिकादि चिन्तयन्नाह–

८/४३९-४४०. 'जस्से' त्यादि. 'नो बंधए' त्ति, न ह्येकसमये औदारिकवैक्रिययोर्बन्धो विद्यत इतिकृत्वा नो बन्धक इति। एवमाहारकस्यापि। तैजसस्य पुनः सदैवाविरहितत्वाद्बन्धको देशबन्धकेन, सर्वबन्धस्तु नास्त्येव तस्येति। एवं कार्म्मणशरीरस्यापि वाच्यमिति। एवमौदारिकसर्वबन्धमाश्रित्य शेषाणां बन्धचिन्तार्थः अनन्तरं दण्डक उक्तोऽथौदारिकस्यैव देशबन्धकमाश्रित्यान्यमाह–

८/४४१. 'जस्स ण' मित्यादि, अथ वैक्रियस्य सर्वबन्धमाश्रित्य शेषाणां बन्धचिन्तार्थोऽन्यो दण्डकः, तत्र च 'नेरइयस्स कम्मगस्स जहेव' त्यादि. यथौदारिकशरीरस्यसर्वबन्धकस्य तैजसकार्म्मणयोर्देशबन्धकत्वमुक्तमेवं वैक्रियशरीरस्यसर्वबन्धकस्यापि तयोर्देशबन्धकत्वं वाच्यमिति भावः।

८/४४२-४४४. वैक्रियदेशबन्धदण्डक आहारकस्य सर्वबन्धदण्डको देश-बन्धदण्डकश्च सुगम एव।

८/४४५. तैजसदेशबन्धकदण्डके तु 'बंधए वा अबंधए व' त्ति तैजसदेशबन्धक औदारिकशरीरस्य बन्धको वा स्याद्बन्धको वा, तत्र विग्रहे वर्त्तमानोऽबन्धकोऽविग्रहस्थः पुनर्बन्धकः स एवोत्पत्तिक्षेत्रप्राप्तिप्रथमसमये सर्वबन्धक द्वितीयादौ तु देशबन्धक इति।

८/४४६. एवं कार्म्मणशरीरदेशबन्धक-दण्डकेऽपि वाच्यमिति।

अथौदारिकादिशरीरदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह–

८/४४७. 'एएसिं' त्यादि, तत्र सर्वस्तोका आहारकशरीरस्य सर्वबन्धकाः, यस्मात्ते चतुर्दशपूर्वधरास्तथाविधप्रयोजनवन्त एव भवन्ति, सर्वबन्धकालश्च समयमेवेति, तस्यैव च देशबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, देशबन्धकालस्य बहुत्वात्, वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धका असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वात्, तस्यैव च देशबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, सर्वबन्धाद्धापेक्षया देशबन्धाद्धाया असङ्ख्यातगुणत्वात् अथवा सर्वबन्धकाः प्रतिपद्यमानकाः देशबन्धकास्तु पूर्वप्रतिपन्नाः, प्रतिपद्यमानकेभ्यश्च पूर्वप्रतिपन्नानां बहुत्वात्, वैक्रियसर्वबन्धकेभ्यो देशबन्धका असङ्ख्येयगुणाः. तैजसकार्म्मणयोरबन्धका अनन्तगुणाः, यस्मात्ते सिद्धास्ते च वैक्रियदेशबन्धकेभ्योऽनन्तगुणा एव, वनस्पतिवर्जसर्वजीवेभ्यः सिद्धानामनन्तगुणत्वादिति. औदारिकशरीरस्य सर्वबन्धका अनन्तगुणास्ते च वनस्पतिप्रभृतीन् प्रतीत्य प्रत्येतव्याः, तस्यैव चाबन्धका विशेषाधिकाः, एते हि विग्रहगतिकाः सिद्धादयश्च भवन्ति, तत्र च सिद्धादीनामल्पत्वान्नात्पत्वेनेहाविवक्षा, विग्रहगतिकाश्च वक्ष्यमाणन्यायेन सर्वबन्धकेभ्यो बहुतरा इति तेभ्यस्तदबन्धका विशेषाधिका इति, तस्यैव चौदारिकस्य देशबन्धका असङ्ख्यातगुणाः, विग्रहाद्धापेक्षया देशबन्धाद्धाया असङ्ख्यातगुणत्वात्, तैजसकार्म्मणयोर्देशबन्धका विशेषाधिकाः, यस्मात्सर्वेऽपि संसारिणस्तैजसकार्म्मणयोर्देशबन्धका भवन्ति. तत्र च ये विग्रहगतिका औदारिकसर्वबन्धका वैक्रियादिबन्धकाश्च ते औदारिकदेशबन्धकेभ्योऽतिरिच्यन्त इति ते विशेषाधिका इति, वैक्रियशरीरस्याबन्धका विशेषाधिकाः, यस्माद्वैक्रियस्य बन्धकाः प्रायो देवनारका एव शेषास्तु तदबन्धकाः सिद्धाश्च, तत्र च सिद्धास्तैजसादिदेशबन्धकेभ्योऽतिरिच्यन्ते इति ते विशेषाधिका उक्ताः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकशरीरस्याबन्धका विशेषाधिका यस्मान्मनुष्याणामेवाहारकशरीरं वैक्रियं तु तदन्येषामपि, ततो वैक्रियबन्धकेभ्य आहारकबन्धकानां स्तोकत्वेन वैक्रियाबन्धकेभ्य आहारकाबन्धका विशेषाधिका इति। इह चेयं स्थापना-

॥ओरालि. १॥
सव्वबंधा अणंता १
देसबंधा असंखेज्ज. २
(विग्रहगति) अबंधा विसेसाहिया ७
॥वेउव्विय. २॥
सव्वबंध. असंखेज्ज ३
देसबंध. असंखेज्ज ४
अबंधा विसेसाहिया १०
॥आहारग. ३॥
सव्वबंध. थोवा १
देसबंध. संख्यातगुणा २
अबंधा विसेसाहियः ११
॥तैजस. ४॥
देसबंध. विसेसाहिया ९
अबंध अणंता ५
॥कार्म्मण. ५॥
देसबंधा विसेसाहिया ९
अबंधा अणंता ५

इहाल्पबहुत्वाधिकारे वृद्धा गाथा एवं प्रपञ्चितवन्तः-

ओरालसव्वबंधा थोवा अब्बंधया विसेसहिया।
तत्तो य देसबंधा असंखगुणिया कहं नेया?॥१॥
पढमंमि सव्वबंधो समए सेसेसु देसबंधो उ।
सिद्धाईण अबंधो विग्गहगइयाण य जियाणं॥२॥
इह पुण विग्गहिए च्चिय पडुच्च भणिया अबंधगा अहिया।
सिद्धा अणंतभागंमि सव्वबन्धाणवि भवन्ति॥३॥
उजुयाय एगवंका दुहओवंका गई भवे तिविहा।
पढमाइ सव्वबंधा सव्वे बीयाइ अद्धं तु॥४॥
तइयाइ तइयभंगो लब्भइ जीवाण सव्वबंधाणं।
इति तिन्नि सव्वबंधा रासी तिन्नेव य अबंधा॥५॥
रासिप्पमाणओ ते तुल्लाऽबंधा य सव्वबंधा य।
संखापमाणओ पुण अबंधगा पुण जहब्भहिया॥६॥
जे एगसमइया ते एगनिगोदंमि छहिसिं एंति।
दुसमइया तिपयरिया तिसमईया सेसलोगाओ॥७॥
तिरियाययं चउद्दिसि पयरमसंखप्पएसबाहल्लं।
उड्ढं पुव्वावरदाहिणुत्तरायया य दो पयरा॥८॥
जे तिपयरिया ते छद्दिसिएहिंतो भवंतऽसंखगुणा।
सेसावि असंखगुणा खेत्तासंखेज्जगुणियत्ता॥९॥
एवं विसेसअहिया अबंधया सव्वबंधएहिंतो।
तिसमइयविग्गहं पुण पडुच्च सुत्तं इमं होइ॥१०॥
चउसमयविग्गहं पुण संखेज्जगुणा अबंधगा होंति।
एएसिं निदरिसणं ठवणारासीहिं वोच्छामि॥११॥
पढमो होइ सहस्सं दुसमइया दोवि लक्खमेक्केक्कं।
तिसमइया पुण तिन्निवि रासी कोडी भवेक्केक्का॥१२॥
एएसिं जहसंभवमत्थोवणयं करेज्ज रासीणं।
एत्तो असंखगुणिया वोच्छं जह देसबंधा से॥१३॥
एगो असंखभागो वट्टइ उववट्टणोववायम्मि।
एगनिगोए निच्चं एवं सेसेसुवि स एव॥१४॥
अंतोमुहुत्तमेत्ता ठिई निगोयाण जं विणिद्दिट्ठा।
पल्लट्टंति निगोया तम्हा अंतोमुहुत्तेणं॥१५॥
तेसिं ठितिसमयाणं विग्गहसमया हवंति जइभागे।
एवतिभागे सव्वे विग्गहिया सेसजीवाणं॥१६॥
सव्वेवि य विग्गहिया सेसाणं जं असंखभागंमि।
तेणासंखगुणा देसबंधयाऽबंधएहिंतो॥१७॥
वेउव्वियआहारगतेयाकम्माइं पढियसिद्धाइं।
तहवि विसेसो जो जत्थ तत्थ तं तं भणीहामि॥१८॥
वेउव्वियसव्वबंधा थोवा जे पढमसमयदेवाई।
तस्सेव देसबंधा असंखगुणिया कहं के वा?॥१९॥
(उच्यते-)
तेसिं चिय जे सेसा ते सव्वे सव्वबंधए मोत्तुं।
होंति अबंधाणंता तव्वज्जा सेसजीवा जे॥२०॥
आहारगसव्वबंधा थोवा दो तिन्नि पंच वा दस वा।
संखेज्जगुणा देसे ते उ पुहुत्तं सहस्साणं॥२१॥
तव्वज्जा सव्वजिया अबंधया ते हवंतऽणंतगुणा।
थोवा अबन्धया तेयगस्स संसारमुक्का जे॥२२॥
सेसा य देसबंधा तव्वज्जा ते हवंतऽणंतगुणा।
एवं कम्मगभेयावि नवरि णाणत्तमाउम्मि॥२३॥
(तच्चायुर्नानात्वमेवम्-)
थोवा आउयबंधा संखेज्जगुणा अबंधया होंति।
तेयाकम्माणं सव्वबंधगा नत्थऽणाइत्ता॥२४॥
अस्संखेज्जगुणा आउगस्स किमबंधगा न भन्नंति?।
जम्हा असंखभागो उव्वट्टइ एगसमएणं॥२५॥
भन्नइ एगसमइओ कालो उव्वट्टणाइ जीवाणं।
बंधणकालो पुण आउगस्स अंतोमुहुत्तो उ॥२६॥
जीवाण ठिईकाले आउयबंधद्धभाइए लद्धं।
एवइभागे आउस्स बंधइया सेसजीवाणं॥२७॥
जं संखेज्जतिभागो ठिइकालस्साउबंधकालो उ।
तम्हाऽसंखगुणा से अबंधया बंधएहिंतो॥२८॥
('से'त्ति आयुषः) संजोगप्पाबहुयं आहारगसव्वबंधगा थोवा।
तस्सेव देसबंधा संखगुणा ते य पुव्वुत्ता॥२९॥
तत्तो वेउव्वियसव्वबंधगा दरिसिया असंखगुणा।
जमसंखा देवाई उववज्जंतेगसमएणं॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्सेव देसबंधा असंखगुणिया हवंति पुव्वुत्ता।
तेयगकम्माबंधा अणंतगुणिया य ते सिद्धा॥३१॥
तत्तो उ अणंतगुणा ओरालियसव्वबंधगा होंति।
तस्सेव ततोऽबंधा य देशबंधा य पुव्वुत्ता॥३२॥
तत्तो तेयगकम्माणं देसबंधा भवे विसेसहिया।
ते चेवोरालियदेसबंधगा होंतिमे वऽन्ने॥३३॥
जे तस्स सव्वबंधा अबंधगा जे य नेरइयदेवा।
एएहिं साहिया ते पुणाइ के सव्वसंसारी?॥३४॥
वेउव्वियस्स तत्तो अबंधगा साहिया विसेसेणं।
ते चेव य नेरइयाइविरहिया सिद्धसंजुत्ता॥३५॥
आहारगस्स तत्तो अबंधगा साहिया विसेसेणं।
ते पुण के? सव्वजीवा आहारगलद्धिए मोत्तुं॥३६॥

भवन्त्येवमेकस्तेषां राशिः, एकवक्रया ये उत्पद्यन्ते तेषां ये प्रथमे समये तेऽबन्धका द्वितीये तु सर्वबन्धका इत्येवं तेषां द्वितीयो राशिः, स चैकवक्राभिधानद्वितीयगत्योत्पद्यमानानामर्द्धभूतो भवतीति, द्विवक्रया गत्वा ये पुनरुत्पद्यन्ते ते आद्ये समयद्वयेऽबन्धकास्तृतीये तु सर्वबन्धकाः, अयं च सर्वबन्धकानां तृतीयो राशिः, स च द्विवक्राभिधानतृतीयगत्योत्पद्यमानानां त्रिभागभूतो भवति, तृतीयसमयभावितत्वात्तस्य, एवं च त्रयः सर्वबन्धकानां राशयः त्रय एव चाबन्धकानां, समयभेदेन राशिभेदादिति, एवं च ते राशिप्रमाणतस्तुल्या यद्यपि भवन्ति तथाऽपि सङ्ख्याप्रमाणतोऽधिका अबन्धका भवन्ति॥४-५-६॥ ते चैवम्–ये एकसमयिका ऋजुगत्योत्पद्यमानका इत्यर्थः ते एकस्मिन्निगोदे–साधारणशरीरे लोकमध्यस्थिते षड्भ्यो दिग्भ्योनुश्रेण्याऽऽगच्छन्ति, ये पुनर्द्विसमयिका एकवक्रगत्योत्पद्यमाना इत्यर्थः ते त्रिप्रतरिकाः–प्रतरत्रयादागच्छन्ति, विदिशो वक्रेणाऽऽगमनात्, प्रतरश्च वक्ष्यमाणस्वरूपः, ये पुनस्त्रिसमयिकाः–समयत्रयेण वक्रद्वयेन चोत्पद्यमानकास्ते शेषलोकात् प्रतरत्रयातिरिक्तलोकादागच्छन्तीति॥७॥ प्रतरप्ररूपणायाह–लोकमध्यगतैकनिगोदमधिकृत्य तिर्यगायतश्चतसृषु दिक्षु प्रतरः कल्प्यते, असङ्ख्येयप्रदेशबाहल्यो–विवक्षितनिगोदोत्पादकालोचितावगाहनाबाहल्य इत्यर्थः तन्मात्रबाहल्यावेव 'उड्ढे' ति ऊर्ध्वाधोलोकान्तगतौ पूर्वापरायतो दक्षिणोत्तरायतश्चेति द्वौ प्रतराविति॥८॥ अथाधिकृतमल्पबहुत्वमुच्यते–ये जीवास्त्रिप्रतरिका एकवक्रया गत्योत्पत्तिमन्तस्ते षड्दिग्भ्यः–ऋजुगत्या षड्भ्यो दिग्भ्यः सकाशाद् भवन्त्यसङ्ख्यगुणाः, शेषा अपि ये त्रिसमयिकाः शेषलोकादागतास्तेऽप्यसङ्ख्येयगुणा भवन्ति, कुतः?, क्षेत्रासङ्ख्यगुणितत्वाद्, यतः षड्दिक्क्षेत्रात्त्रिप्रतरमसङ्ख्यगुणं, ततोऽपि शेषलोक इति॥९॥ ततः किम्? इत्याह–वक्रद्वयमाश्रित्येदं सूत्रमित्यर्थः॥१०॥ प्रथम ऋजुगत्युत्पन्नसर्वबन्धकराशिः सहस्रं परिकल्पितं, क्षेत्रस्याल्पत्वात्, द्विसमयोत्पन्नानां द्वौ राशी, एकोऽबन्धकानामन्यः सर्वबन्धकानां, तौ च प्रत्येकं लक्षमानौ, तत्क्षेत्रस्य बहुतरत्वात्, ये पुनस्त्रिभिः समयैरुत्पद्यन्ते तेषां त्रयो राशयः, तत्र चाद्ययोः समययोरबन्धकौ द्वौ राशी तृतीयस्तु सर्वबन्धको राशिः, ते च त्रयोऽपि प्रत्येकं कोटीमानाः क्षेत्रस्य बहुतमत्वादिति, तदेवं राशित्रयेऽपि सर्वबन्धकाः सहस्रं लक्षं कोटी चेत्येवं सर्वस्तोकाः, अबन्धकास्तु लक्षं कोटीद्वयं चेत्येवं विशेषाधिकास्त इति॥१२॥ अनेन च गाथाद्वयेनोद्वर्त्तनाभणनाद्विग्रहसमयसम्भवः, अन्तर्मुहूर्त्तान्ते परिवर्त्तनाभणनाच्च निगोदस्थितिसमयमानमुक्तं, ततश्च अयमर्थः॥१४॥ तेषामेव वैक्रियबन्धकानां सर्वबन्धकान् मुक्त्वा ये शेषास्ते सर्वे वैक्रियस्य देशबन्धका भवन्ति, तत्र च सर्वबन्धकान् मुक्त्यवेत्यनेन कथमित्यस्य निर्वचनमुक्तं, ये शेषा इत्यनेन तु के वेत्यस्येति, अबन्धकास्तु तस्यानन्ता भवन्ति, ते च के?, ये तद्वर्जा–वैक्रियसर्वदेशबन्धकवर्जाः शेषजीवास्ते चौदारिकादिबन्धकाः देवादयश्च वैग्रहिका इति॥२१॥ 'तद्वर्जाः' आहारकबन्धवर्जाः सर्वजीवा अबन्धका इत्याहारकाबन्धस्वरूपमुक्तं, ते च पूर्वेभ्योऽनन्तगुणा भवन्ति॥२२-२४॥ सङ्ख्यातगुणा आयुष्का-बन्धका इति यदुक्तं तत्र प्रश्नयन्नाह–एकोऽसङ्ख्यभागो निगोदजीवानां सर्वदोद्वर्त्तते, स च बद्धायुषामेव, तदन्येषां-मुहूर्त्तानाऽभावात्, तेभ्यश्च ये शेषास्तेऽबद्धायुषः, ते च तदपेक्षयाऽसङ्ख्यातगुणा एवेत्येवमस्यासङ्ख्यगुणा आयुष्यका-बन्धकाः स्युरिति॥२५॥ अत्रोच्यते, निगोदजीवभवकालापेक्षया तेषामायुर्बन्धकालः सङ्ख्यातभागवृत्तिरित्यबन्धकाः सङ्ख्यातगुणा एव। एतदेव भाव्यते–निगोदजीवानां स्थिति-कालोऽन्तर्मुहूर्त्तमानः, स च कल्पनया समयलक्षं, तत्र 'आउबन्धाद्धया' आयुर्बन्धकालेनान्तर्मुहूर्त्तमानेनैव कल्पनया समयसहस्रलक्षणेन भाज्यते सति यल्लब्धं कल्पनया शतरूपं एतावति भागे वर्त्तन्ते आयुर्बन्धकाः 'सेसजीवाणं' ति शेषजीवानां तदबन्धकानामित्यर्थः, तत्र किल लक्षापेक्षया शतं सङ्ख्येयतमो भागोऽतो बन्धकेभ्योऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणा भवन्तीति॥२६-२७॥ एतदेव भाव्यते–॥२८॥ समाप्तोऽयं बन्धः॥

अष्टमशते नवमः॥८-९॥

दशम उद्देशकः

अनंतरोद्देशके बन्धादयोऽर्था उक्ताः, तांश्च श्रुतशीलसंपन्नाः पुरुषा विचारयन्तीति श्रुतादिसंपन्नपुरुषप्रभृतिपदार्थविचारणार्थो दशम उद्देशकः, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

८/४४९-४५०. 'रायगिहे' इत्यादि, तत्र च 'एवं खलु सीलं सेयं १ सुयं सेयं २ सुयं सेयं ३ सीलं सेयं ४' इत्येतस्य चूर्ण्यनुसारेणव्याख्या–'एवं' लोकसिद्धन्यायेन खलु निश्चयेन इहान्य-यूथिकाःकेचिन् क्रियामात्रादेवाभीष्टार्थसिद्धिमिच्छन्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न च किञ्चिदपि ज्ञानेन प्रयोजनं, निश्चेष्टत्वात्, घटादिकरणप्रवृत्तावाकाशादिपदार्थवत्, पठ्यते च–

'क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम्।
यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितो भवेत्॥१॥'

तथा–

'जहा खरो चंदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, नाणस्स भागी नहु सोगईए॥१॥'

(यथा चन्दनभारवाही खरो भारभाग् न चैव चन्दनस्य। एवं चरणहीनो ज्ञानी ज्ञानभाग् न तु सुगतेः॥१॥) अतस्ते प्ररूपयन्ति–शीलं श्रेयः प्राणातिपातादिविरमण-ध्यानाध्ययनादिरूपा क्रियैव श्रेयः–अतिशयेन प्रशस्यं श्लाघ्यं पुरुषार्थसाधकत्वात्, श्रेयं वा–समाश्रयणीयं पुरुषार्थ-विशेषार्थिना, अन्ये तु ज्ञानादेवेष्टार्थसिद्धिमिच्छन्ति न क्रियातः, ज्ञानविकलस्य क्रियावतोऽपि फलसिद्ध्यदर्शनात्, अधीयते च–

'विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता।
मिथ्याज्ञानात्प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनात्॥१॥'

तथा–

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही किं वा नाहिई छेयपावयं॥१॥'

(प्रथमं ज्ञानं ततो दयैवं सर्वसंयतेषु तिष्ठति अज्ञानी किं करिष्यति किं वा ज्ञास्यति छेकं पापकं वा॥१॥) अतस्ते प्ररूपयन्ति–श्रुतं श्रेयः, श्रुतं–श्रुतज्ञानं तदेव श्रेयः–अतिप्रशस्यमाश्रयणीयं वा पुरुषार्थसिद्धिहेतुत्वात् न तु शीलमिति, अन्ये तु ज्ञानक्रियाभ्यामन्योऽन्यनिरपेक्षाभ्यां फलमिच्छन्ति, ज्ञानं क्रियाविकलमेवोपसर्जनीभूतक्रियं वा फलदं क्रियाऽपि ज्ञानविकला उपसर्जनीभूतज्ञाना वा फलदेति भावः, भणन्ति च–'किञ्चिद्वैद्यमयं पात्रं, किञ्चित्पात्रं तपोमयम्। आगमिष्यति तत्पात्रं, यत्पात्रं तारयिष्यति॥१॥' अतस्ते प्ररूपयन्ति–श्रुतं श्रेयः तथा शीलं श्रेयः३, द्वयोरपि प्रत्येकं पुरुषस्य पवित्रतानिबन्धनत्वादिति, अन्ये तु व्याचक्षते–शीलं श्रेयस्तावन्मुख्यवृत्त्या तथा श्रुतं श्रेयः–श्रुतमपि श्रेयो गौणवृत्त्या तदुपकारित्वादित्यर्थः इत्येकीयं मतं, अन्यदीयमतं तु श्रुतं श्रेयस्तावत्तथा शीलमपि श्रेयो गौणवृत्त्या तदुपकारित्वादित्यर्थः, अयं चार्थ इह सूत्रे काकुपाठाल्लभ्यते, एतस्य च प्रथम-व्याख्यानेऽन्ययूथिकमतस्य मिथ्यात्वं, पूर्वोक्तपक्षत्रयस्यापि फलसिद्धावनङ्गत्वात् समुदायपक्षस्यैव च फलसिद्धिकरण-त्वात्, आह च–

'णाणं पयासयं सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥१॥'

(ज्ञानं प्रकाशकं तपः शोधकं संयमश्च गुप्तिकरः। त्रयाणामपि समायोगे जिनशासने मोक्षो भणितः॥१॥) तपःसंयमौ च शीलमेव, तथा–

संजोगसिद्धीइ फलं वयंति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा॥१॥

इति, (फलं संयोगसिद्ध्या वदन्ति एकचक्रेण न रथः प्रयाति। वनेऽन्धः पङ्गुश्च समेत्य तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ॥१॥) द्वितीयव्याख्यानपक्षेऽपि मिथ्यात्वं, संयोगतः फलसिद्धे-र्दृष्टत्वात् एकैकस्य प्रधानेतरविवक्षयाऽसङ्गतत्वादिति, अहं पुनर्गौतम! एवमाख्यामि यावत्प्ररूपयामीत्यत्र श्रुतयुक्तं शीलं श्रेयः इत्येतावान् वाक्यशेषो दृश्यः, अथ कस्मादेवं?, अत्रोच्यते–'एव' मित्यादि, एवं वक्ष्यमाणन्यायेन–'पुरिसजाय' त्ति पुरुषप्रकाराः 'शीलवं असुयवं' ति कोऽर्थः?, 'उवरए अविन्नायधम्मे' त्ति 'उपरतः' निवृत्तः स्वबुद्ध्या पापात् 'अविज्ञातधर्मा' भावतोऽनधिगतश्रुतज्ञानो बालतपस्वीत्यर्थः, गीतार्थनिश्रिततपश्चरणनिरतोऽगीतार्थ इत्यन्ये, 'देसाराहए' त्ति देशं–स्तोकमंशं मोक्षमार्गस्याराधयतीत्यर्थः सम्यग्बोधर-हितत्वात् क्रियापरत्वाच्चेति, 'असीलयं सुयवं' ति, कोऽर्थः?–'अणुवरए विन्नायधम्मे' त्ति पापादनिवृत्तो विज्ञातधर्मा चाविरतिसम्यग्दृष्टिरितिभावः, 'देसविराहए' त्ति देशं–स्तोकमंशं ज्ञानादित्रयरूपस्य मोक्षमार्गस्य तृतीयभागरूपं चारित्रं विराधयतीत्यर्थः, प्राप्तस्य तस्यापालनादप्राप्तेर्वा, 'सव्वाराहए' त्ति सर्व्व–त्रिप्रकारमपि मोक्षमार्गमाराधय-तीत्यर्थः, श्रुतशब्देन ज्ञानदर्शनयोः सङ्गृहीतत्वात्, न हि मिथ्यादृष्टिर्विज्ञातधर्मा तत्त्वतो भवतीति, एतेन समुदितयोः शीलश्रुतयोः श्रेयस्त्वमुक्तमिति 'सव्वाराहए' त्युक्तम्॥

अथाराधनामेव भेदत आह–

८/४५१. 'कतिविहा ण' मित्यादि, 'आराहण' त्ति आराधना–निरतिचारयताऽनुपालना, तत्र ज्ञानं पञ्चप्रकारं श्रुतं वा तस्याराधना–कालाद्युपचारकरणं दर्शनं–सम्यक्त्वं तस्या-राधना–निश्शङ्कितत्वादितदाचारानुपालनं चारित्रं–सामायिकादि तदाराधना–निरतिचारता।

८/४५२-४५४. 'उक्कोसिय' त्ति उत्कर्षा ज्ञानाराधना ज्ञानकृत्यानुष्ठानेषु प्रकृष्टप्रयत्नता 'मज्झिम' त्ति तेष्वेव मध्यमप्रयत्नता 'जहन्न' त्ति तेष्वेवाल्पतमप्रयत्नता। एवं दर्शनाराधना चारित्राराधना चेति॥

अथोक्ताऽऽराधनाभेदानामेव परस्परोपनिबन्धमभिधातुमाह–

८/४५५-४५७. 'जस्स ण' मित्यादि, 'अजहन्नुक्कोसा व' त्ति जघन्या चासौ उत्कर्षा च–उत्कृष्टा जघन्योत्कर्षा तन्निषेधाद-जघन्योत्कर्षा मध्यमेत्यर्थः, उत्कृष्टज्ञानाराधनावतो हि आद्ये द्वे दर्शनाराधने भवतो न पुनस्तृतीया, तथास्वभावत्वात्तस्येति। 'जस्स पुणे' त्यादि उत्कृष्टदर्शनाराधनावतो हि ज्ञानं प्रति त्रिप्रकारस्यापि प्रयत्नस्य सम्भवोऽस्तीति त्रिप्रकाराऽपि तदाराधना भजनया भवतीति। उत्कृष्टज्ञानचारित्राराधना-संयोगसूत्रे तूत्तरं–यस्योत्कृष्टा ज्ञानाराधना तस्य चारित्राराधना उत्कृष्टा मध्यमा वा स्यात्, उत्कृष्टज्ञानाराधनावतो हि चारित्रं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति नात्यन्तमप्रयत्नता स्यात्तत्स्वभावात्तस्येति, उत्कृष्ट-चारित्राराधनावतस्तु ज्ञानं प्रति प्रयत्नत्रयमपि भजनया स्यात्, एतदेवातिदेशत आह–'जहा उक्कोसिये' त्यादि, उत्कृष्टदर्शन-चारित्राराधना संयोगसूत्रे तूत्तरं–'जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा' इत्यादि, यस्योत्कृष्टा दर्शनाराधना तस्य चारित्राराधना त्रिविधाऽपि भजनया स्यात्, उत्कृष्ट-दर्शनाराधनावतो हि चारित्रं प्रति प्रयत्नस्य त्रिविध-स्याप्यविरुद्धत्वादिति। उत्कृष्टायां तु चारित्राराधनायामुत्कृष्टैव दर्शनाराधना, प्रकृष्टचारित्रस्य प्रकृष्टदर्शनानुगतत्वादिति॥

अथाराधनाभेदानां फलप्रदर्शनायाह–

८/४५८-४६६. 'उक्कोसियं णं' मित्यादि, 'तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ' त्ति उत्कृष्टां ज्ञानाराधनामाराध्य तेनैव भवग्रहणेन सिद्ध्यति, उत्कृष्टचारित्राराधनायाः सद्भावे, 'कप्पोवएसु व' त्ति 'कल्पोपगेषु' सौधर्मादिदेवलोकोपगेषु देवेषु मध्ये उपपद्यते, मध्यमचारित्राराधनासद्भावे, 'कप्पातीएसु व' त्ति ग्रैवेयकादिदेवेषूत्पद्यते मध्यमोत्कृष्टचारित्राराधनासद्भावे इति, तथा–'उक्कोसियं णं भंते! दंसणाराहणं' मित्यादि, 'एवं चेव' त्ति करणात् 'तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ' इत्यादि दृश्यं, तद्भवसिद्ध्यादि च तस्यां स्यात्, चारित्राराधनायास्त्वोत्कृष्टाया मध्यमायाश्चोक्तत्वादिति, तथा–'उक्कोसियणं भंते! चारित्ताराहणं' मित्यादौ 'एवं चेव' त्ति करणात् 'तेणेव भवग्गहणेण' मित्यादि दृश्यं, केवलं तत्र 'अत्थेगइए कप्पोवगेसु वे' त्यभिहितमिह तु तत्र वाच्यं, उत्कृष्टचारित्राराधनावतः सौधर्मादिकल्पेष्वगमनाद्, वाच्यं पुनः 'अत्थेगइए कप्पातीएसु उववज्जइ' त्ति सिद्धिगमनाभावे तस्यानुत्तरसुरेषु गमनात्, एतदेव दर्शयतोक्तं 'नवरं' मित्यादि। मध्यमज्ञानाराधनासूत्रे मध्यमत्वं ज्ञानाराधनाया अधिकृतभव एव निर्वाणाभावात्, भावे पुनरुत्कृष्टत्वमवश्यम्भावीत्यवसेयं, निर्वाणान्यथाऽनुपपत्तेरिति, दोच्चेणं' ति अधिकृतमनुष्यभवापेक्षया द्वितीयेन मनुष्यभवेन 'तच्चं पुण भवग्गहणं' ति अधिकृतमनुष्यभवग्रहणापेक्षया तृतीयं मनुष्यभवग्रहणं, एताश्च चारित्राराधनासंवलिताः ज्ञानाद्याराधना इह विवक्षिताः, कथमन्यथा जघन्यज्ञानाराधनामाश्रित्य वक्ष्यति, 'सत्तट्ठभवग्गहणाइं पुण णाइक्कमइ' त्ति, यतश्चारित्राराधनाया एवेदं, फलमुक्तं, यदाह–'अट्ठभवा उ चरित्ते' त्ति (अष्टौ भवास्तु चारित्रे), श्रुतसम्यक्त्वदेश-विरतिभवास्त्वसङ्ख्येया उक्ताः, ततश्चरणाराधनारहिता ज्ञानदर्शनाराधना असंख्येयभविका अपि भवन्ति नत्वष्टभविका एवेति॥

अनन्तरं जीवपरिणाम उक्तोऽथ पुद्गलपरिणामाभिधानायाह–

८/४६७,४६८. 'कइविहे णं' मित्यादि, 'वन्नपरिणामे' त्ति यत्पुद्गलो वर्णान्तरत्यागाद्वर्णान्तरं यात्यसौ वर्णपरिणाम इति, एवमन्यत्रापि।

८/४६९. 'परिमंडलसंठाणपरिणामे' त्ति इह परिमण्डलसंस्थानं वलयाकारं, यावत्करणाच्च 'वट्टसंठाणपरिणामे तंससंठाण-परिणामे चउरंससंठाणपरिणामे' त्ति दृश्यम्॥

पुद्गलाधिकारादिदमाह–

८/४७०. 'एगे भंते! पोग्गलत्थिकाये' इत्यादि, पुद्गलास्ति-कायस्य–एकाणुकादिपुद्गलराशेः प्रदेशो–निरंशोऽंशः पुद्गलास्ति-कायप्रदेशः–परमाणुः द्रव्यं–गुणपर्याययोगि द्रव्यदेशो–द्रव्यावयवः, एवमेकत्वबहुत्वाभ्यां प्रत्येकविकल्पाश्चत्वारः द्विकसंयोगा अपि चत्वार एवेति प्रश्नः, उत्तरं तु स्याद्द्रव्यं द्रव्यान्तरासम्बन्धे सति, स्याद्द्रव्यदेशो द्रव्यान्तरसम्बन्धे सति, शेषविकल्पानां तु प्रतिषेधः, परमाणोरेकत्वेन बहुत्वस्य द्विकसंयोगस्य चाभावादिति।

८/४७१. 'दो भंते!' इत्यादि, इहाष्टासु भङ्गकेषु मध्ये आद्याः पञ्च भवन्ति, न शेषाः, तत्र द्वौ प्रदेशौ स्याद्द्रव्यं, कथं?, यदा तौ द्विप्रदेशिकस्कन्धतया परिणतौ तदा द्रव्यं १, यदा तु द्व्यणुकस्कन्धभावगतावेव तौ द्रव्यान्तर-सम्बन्धमुपगतौ तदा द्रव्यदेशः २, यदा तु तौ द्वावपि भेदेन व्यवस्थितौ तदा द्रव्ये ३, यदा तु तावेव द्व्यणुकस्कन्धतामनापद्य द्रव्यान्तरेण सम्बन्ध-मुपगतौ तदा द्रव्यदेशाः ४, यदा पुनस्तयोरेकः केवलतया स्थितो द्वितीयश्च द्रव्यान्तरेण सम्बद्धस्तदा द्रव्यं च द्रव्यदेशश्चेति पञ्चमः, शेषविकल्पानां तु प्रतिषेधोऽसम्भवादिति।

८/४७२. 'तिन्नि भंते!' इत्यादि, त्रिषु प्रदेशेष्वष्टमविकल्पवर्जाः सप्त विकल्पाः संभवन्ति, तथाहि–यदा त्रयोऽपि त्रिप्रदेशिक-स्कन्धतया परिणतास्तदा द्रव्यं १, यदा तु त्रिप्रदेशिक-स्कन्धतापरिणता एव द्रव्यान्तरसम्बन्धमुपगतास्तदा द्रव्यदेशः २, यदा पुनस्ते त्रयोऽपि भेदेन व्यवस्थिताः द्वौ वा द्व्यणुकीभूतावेकस्तु केवल एव स्थितस्तदा 'दव्वाइं' ति ३, यदा तु ते त्रयोऽपि स्कन्धतामनागता एव द्वौ वा द्व्यणुकीभूतावेकस्तु केवल एवेत्येवं द्रव्यान्तरेण सबंद्धास्तदा 'दव्वदेसा' इति ४, यदा तु तेषां द्वौ द्व्यणुकतया परिणतावेकश्च द्रव्यान्तरेण संबद्धः अथवैकः केवल एव स्थितो द्वौ तु द्व्यणुकतया परिणम्य द्रव्यान्तरेण संबद्धौ तदा 'दव्वं च दव्वदेसे य' त्ति ५, यदा तु तेषामेकः केवल एव स्थितो द्वौ च भेदेन द्रव्यान्तरेण संबद्धौ तदा 'दव्वं च दव्वदेसा य' त्ति ६, यदा पुनस्तेषां द्वौ भेदेन स्थितावेकश्च द्रव्यान्तरेण संबद्धस्तदा 'दव्वाइं च दव्वदेसे य' त्ति ७, अष्टमविकल्पस्तु न संभवति, उभयत्र त्रिषु प्रदेशेषु बहुवचनाभावात्।

८/४७३,४७४. प्रदेशचतुष्टयादौ त्वष्टमोऽपि संभवति, उभयत्रापि बहुवचनसद्भावादिति।

अनन्तरं परमाण्वादिवक्तव्यतोक्ता, परमाण्वादयश्च लोकाकाश-प्रदेशावगाहिनो भवन्तीति तद्वक्तव्यतामाह–

८/४७५. 'केवइया णं' मित्यादि, 'असंखेज्ज' त्ति यस्मादसङ्ख्येय-प्रदेशिको लोकस्तस्मात्तस्य प्रदेशा असंख्येया इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशाधिकारादेवेदमाह–

८/४७६. 'एगमेगस्से' त्यादि. एकैकस्य जीवस्य तावन्तः प्रदेशा यावन्तौ लोकाकाशस्य. कथं?, यस्माज्जीवः केवलिसमुद्घातकाले सर्वं लोकाकाशं व्याप्यावतिष्ठति तस्माल्लोकाकाशप्रदेशप्रमाणस्त इति।

जीवप्रदेशाश्च प्रायः कर्म्मप्रकृतिभिरनुगता इति तद्वक्तव्यतामभिधित्सुमाह–

८/४७७-४८३. 'कइ णं' मित्यादि. 'अविभागपलिच्छेद' त्ति परिच्छिद्यन्त इति परिच्छेदा–अंशास्ते च सविभाग। अपि भवन्त्यतो विशेष्यन्ते–अविभागाश्च ते परिच्छेदाश्चेत्यविभागपरिच्छेदाः. निरंशा अंशा इत्यर्थः. ते च ज्ञानावरणीयस्य कर्म्मणोऽनन्ताः. कथं?. ज्ञानावरणीयं यावतो ज्ञानस्याविभागान् भेदान् आवृणोति तावन्त एव तस्याविभागपरिच्छेदाः. दलिकापेक्षया वाऽनन्ततत्परमाणुरूपाः. 'अविभागपलिच्छेदेहिं' ति तत्परमाणुभिः 'आवेढिए परिवेढिए' त्ति आवेष्टितपरिवेष्टितोऽत्यन्तं परिवेष्टित इत्यर्थः आवेष्ट्य परिवेष्टित इति वा 'सिय नो आवेढियपरिवेढिए' त्ति केवलिनं प्रतीत्य तस्य क्षीणज्ञानावरणत्वेन तत्प्रदेशस्य ज्ञानावरणीयाविभागपलिच्छेदैरावेष्टनपरिवेष्टनाभावादिति। 'मणूसस्स जहा जीवस्स' त्ति 'सिय आवेढिये' त्यादि वाच्यमित्यर्थः मनुष्यापेक्षयाऽऽवेष्टितपरिवेष्टितत्वस्य तदितरस्य च सम्भवात्;

८/४८४. एवं दर्शनावरणीयमोहनीयान्तरायेष्वपि वाच्यं. वेदनीयायुष्कनामगोत्रेषु पुनर्जीवपद एव भजना वाच्या सिद्धापेक्षया. मनुष्यपदे तु नासौ, तत्र वेदनीयादीनां भावादित्येतदेवाह–'नवरं वेयणिज्जस्से' त्यादि।

अथ ज्ञानावरणं शेषैः सह चिन्त्यते–

८/४८५-४८६. 'जस्स ण' मित्यादि. 'जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि' त्ति अकेवलिनं केवलिनं च प्रतीत्य अकेवलिनो हि वेदनीयं ज्ञानावरणीयं चास्ति, केवलिनस्तु वेदनीयमस्ति न तु ज्ञानावरणीयमिति।

८/४८७. 'जस्स णाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि' त्ति अक्षपकं क्षपकं च प्रतीत्य, अक्षपकस्य हि ज्ञानावरणीयं मोहनीयं चास्ति, क्षपकस्य तु मोहक्षये यावत् केवलज्ञानं नोत्पद्यते तावज्ज्ञानावरणीयमस्ति न तु मोहनीयमिति।

८/४८८. एवं च यथा ज्ञानावरणीयं वेदनीयेन सममधीतं तथाऽऽयुषा नाम्ना गोत्रेण च सहाध्येयं, उक्तप्रकारेण भजनायाः सर्वेषु तेषु भावात्, 'अंतराएणं च समं' ज्ञानावरणीयं तथा वाच्यं यथा दर्शनावरणं, निर्भजनमित्यर्थः. एतदेवाह–'एवं जहा वेयणिज्जेण समं' मित्यादि. 'नियमा परोप्परं भाणियव्वाणि' त्ति कोऽर्थः?–'जस्स नाणावरणिज्जं तस्स नियमा अंतराइयं जस्स अंतराइयं तस्स नियमा नाणावरणिज्ज' मित्येवमनयोः परस्परं नियमो वाच्य इत्यर्थः।

अथ दर्शनावरणं शेषैः षड्भिः सह चिन्तयन्नाह–

८/४८९. 'जस्से' त्यादि, अयं च गमो ज्ञानावरणीयगमस्यम एवेति।

८/४९०. 'जस्स णं भंते! वेयणिज्जं' मित्यादिना तु वेदनीयं शेषैः पञ्चभिः सह चिन्त्यते. तत्र च 'जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि' ति अक्षीणमोहं क्षीणमोहं च प्रतीत्य. अक्षीणमोहस्य हि वेदनीयं मोहनीयं चास्ति, क्षीणमोहस्य तु वेदनीयमस्ति न तु मोहनीयमिति।

८/४९१. 'एवं एयाणि परोप्परं नियम' त्ति कोऽर्थः? यस्य वेदनीयं तस्य नियमादायुर्यस्यायुस्तस्य नियमाद्वेदनीय-मित्येवमेते वाच्ये इत्यर्थः. एवं नामगोत्राभ्यामपि वाच्यं. एतदेवाह–'जहा आउएणं' त्यादि।

८/४९२. अन्तरायेण तु भजनया यतो वेदनीयं अन्तरायं चाकेवलिनामस्ति केवलिनां तु वेदनीयमस्ति न त्वन्तरायं. एतदेव दर्शयतोक्तं 'जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि' त्ति।

अथ मोहनीयमन्यैश्चतुर्भिः सह चिन्त्यते।

८/४९३. तत्र यस्य मोहनीयं तस्यायुर्नियमादकेवलिन इव, यस्य पुनरायुस्तस्य मोहनीयं भजनया, यतोऽक्षीणमोहस्यायुर्मोहनीयं चास्ति क्षीणमोहस्य त्वायुरेवेति–'एवं नामं गोयं अंतराइयं च भाणियव्वं' ति. अयमर्थः–यस्य मोहनीयं तस्य नाम गोत्रमन्तरायं च नियमादस्ति. यस्य पुनर्नामादिकं तस्य मोहनीयं स्यादस्त्यक्षीणमोहस्येव. स्यान्नास्ति क्षीणमोहस्येवेतिः।

अथायुरन्यैस्त्रिभिः सह चिन्त्यते–

८/४९४. 'जस्स णं भंते! आउयं' मित्यादि. दोवि परोप्परं नियम' त्ति कोऽर्थः?–'जस्स आउयं तस्स नियमा नामं जस्स नामं तस्स नियमा आउयं' इत्यर्थः, एवं गोत्रेणापि।

८/४९५. 'जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि' त्ति यस्यायुस्तस्यान्तरायं स्यादस्ति अकेवलिवत् स्यान्नास्ति केवलिवदिति।

८/४९६-४९८. 'जस्स णं भंते! णामं' इत्यादिना नामान्येन द्वयेन सह चिन्त्यते, तत्र यस्य नाम तस्य नियमाद्गोत्रं यस्य गोत्रं तस्य नियमान्नाम, तथा यस्य नाम तस्यान्तरायं स्यादस्त्यकेवलिवत् स्यान्नास्ति केवलिवदिति। एवं गोत्रान्तराय्योरपि भजना भावनीयेति।

अनन्तरं कर्मोक्तं तच्च पुद्गलात्मकमतस्तदधिकारादिदमाह–

८/४९९,५००. 'जीवे ण' मित्यादि, 'पोग्गलीवि' त्ति पुद्गलाः–श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते यस्यासौ पुद्गली, 'पुग्गलेवि' त्ति पुद्गल इति सञ्ज्ञा जीवस्य ततस्तद्योगात् पुद्गल इति। एतदेव दर्शयन्नाह–'से केणट्ठेणं' मित्यादि॥

अष्टमशते दशमः॥८-१०॥

सद्भक्त्याहुतिना विवृद्धमहसा पार्श्वप्रसादाग्निना,
तन्नामाक्षरमन्त्रजप्तिविधिना विघ्नेन्धनप्लोषितः।
सम्पन्नेऽनघशान्तिकर्म्मकरणे क्षेमादहं नीतवान्,
सिद्धिं शिल्पिवदेतदष्टमशतव्याख्यानसन्मन्दिरम्॥१॥

॥ समाप्तं चाष्टमशतम्॥८॥ ग्रन्थाग्रम् ९४३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ नवमं शतकम्

प्रथम उद्देशकः

व्याख्यातमष्टमशतमथ नवममारभ्यते. अस्य चायमभिसम्बन्धः–अष्टमशते विविधाः पदार्था उक्ताः, नवमेऽपि त एव भङ्ग्यन्तरेणोच्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्योद्देशकार्थसंसूचिकेयं गाथा–

'जंबुद्दीवे' इत्यादि. तत्र 'जंबुद्दीवे' त्ति तत्र जम्बूद्वीपवक्तव्यताविषयः प्रथमोद्देशकः १. 'जोइस' त्ति ज्योतिष्कविषयो द्वितीयः २, 'अंतरदीव' त्ति अन्तरद्वीपविषया अष्टाविंशतिरुद्देशकाः ३०. 'असोच्च' त्ति अश्रुत्वा धर्मं लभेतेत्याद्यर्थप्रतिपादनार्थ एकत्रिंशत्तमः ३१, 'गंगेय' त्ति गाङ्गेयाभिधानागारवक्तव्यतार्थो द्वात्रिंशत्तमः ३२, 'कुंडग्गामे' त्ति ब्राह्मणकुण्डग्रामविषयस्त्रयस्त्रिंशत्तमः ३३, 'पुरिसे' त्ति पुरुषः पुरुषं घ्नन्नित्यादिवक्तव्यतार्थश्चतुस्त्रिंशत्तम ३४ इति॥

९/१. 'कहिं णं भंते' इत्यादि कस्मिन् देशे इत्यर्थः 'एवं जंबुद्दीवपन्नत्ती भाणियव्व' त्ति, सा चेयम्–'केमहालए णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे किमागारभावपडोयारे णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे पन्नत्ते?' कस्मिन्नाकारभावे प्रत्यवतारो यस्य स तथा 'गोयमा! अयन्नं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तिल्लपूयसंठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए पन्नत्ते एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं'मित्यादि, किमन्तेयं व्याख्या? इत्याह–'जगवे'त्यादि. 'एवामेव' त्ति उक्तेनैव न्यायेन पूर्वापरसमुद्रगमनादिना 'सपुव्वावरेण' ति सह पूर्वेण नदीवृन्देनापरं सपूर्वापरं तेन 'चोद्दस सलिला सयसहस्सा छप्पन्नं च सहस्सा भवन्तीति वा मक्खाय' त्ति इह सलिलाशतसहस्राणि नदीलक्षाणि, एतत्सङ्ख्या चैवं–भरतैरावतयोर्गङ्गासिन्धुरक्तारक्तवत्यः प्रत्येकं चतुर्दशभिर्नदीनां सहस्रैर्युक्ताः तथा हैमवतैरण्यवतयोः रोहिद्रोहितांशा सुवर्णकूला रूप्यकूलाः प्रत्येकमष्टाविंशत्या सहस्रैर्युक्ताः, तथा हरिवर्षरम्यकवर्षयोर्हरिहरिकान्तानरकान्तानारीकान्ताः प्रत्येकं षट्पञ्चाशता सहस्रैर्युक्ताः समुद्रमुपयान्ति, तथा महाविदेहेशीताशीतोदे प्रत्येकं पञ्चभिर्लक्षैर्द्वात्रिंशता च सहस्रैर्युक्ते समुद्रमुपयात इति, सर्वासां च मीलने सूत्रोक्तं प्रमाणं भवति, वाचनान्तरे पुनरिदं दृश्यते–'जहा जंबूदीवपन्नत्तीए तहा णेयव्वं जोइसविहूणं जाव–

खंडा जोयण वासा पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ।
विजयद्दहसलिलाउ स पिंडए होंति संगहणी॥१॥'

त्ति. तत्र 'जोइसविहूणं' ति जंबूद्वीपप्रज्ञप्त्यां ज्योतिष्कवक्तव्यताऽस्ति तद्विहीनं समस्तं जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रमस्योद्देशकस्य सूत्रं ज्ञेयं, किंपर्यवसानं पुनस्तत्? इत्याह–'जाव खंडे' त्यादि, तत्र 'खंडे' त्ति जम्बूद्वीपो भरतक्षेत्रप्रमाणानि खण्डानि कियन्ति स्यात्?, उच्यते, नवत्यधिकं खण्डशतं, 'जोयण' त्ति जम्बूद्वीपः कियन्ति योजनप्रमाणानि खण्डानि स्यात्?, उच्यते,–

'सत्तेव य कोडिसया णउया छप्पन्नसयसहस्साइं।
चउणउइं च सहस्सा सयं दिवड्ढं च साहीयं॥१॥
गाउयमेगं पन्नरस धणुस्सया तह धणूणि पन्नरस।
सट्ठिं च अंगुलाइं जंबुद्दीवस्स गणियपयं॥२॥'

इति, गणितपदमित्येवंप्रकारस्य गणितस्य सञ्ज्ञा 'वास' त्ति जम्बूद्वीपे भरतहैमवतादीनि सप्त वर्षाणि क्षेत्राणीत्यर्थः, 'पव्वय' त्ति जम्बूद्वीपे कियन्तः पर्वता?, उच्यन्ते, षड् वर्षधरपर्वता हिमवदादयः एको मन्दरः एकश्चित्रकूटः एक एव विचित्रकूटः, एतौ च देवकुरुषु, द्वौ यमकपर्वतौ, एतौ चोत्तरकुरुषु, द्वे शते काञ्चनकानाम्, एते च शीताशीतोदयोः पार्श्वतो, विंशतिः वक्षस्काराः, चतुस्त्रिंशद्दीर्घवैताढ्यपर्वताश्चत्वारो वर्त्तुलवैताढ्याः एवं द्वे शते एकोनसप्तत्यधिके पर्वतानां भवतः, 'कूड' त्ति कियन्ति पर्वतकूटानि?, उच्यते, षट्पञ्चाशद्वर्षधरकूटानि षण्णवतिर्वक्षस्कारकूटानि त्रीणि षडुत्तराणि वैताढ्यकूटानां शतानि नव च मन्दरकूटानि, एवं चत्वारि सप्तषष्ट्यधिकानि कूटशतानि भवन्ति। 'तित्थ' त्ति जम्बूद्वीपे कियन्ति तीर्थानि?, उच्यते, भरतादिषु चतुस्त्रिंशति खण्डेषु मागधवरदामप्रभासाख्यानि त्रीणि त्रीणि तीर्थानि भवन्ति, एवं चैकं द्व्युत्तरं तीर्थशतं भवतीति, 'सेढीओ' त्ति विद्याधरश्रेण्यः आभियोगिकश्रेण्यश्च कियन्त्यः?, उच्यते, अष्टषष्टिः प्रत्येकमासां भवन्ति, विजयार्द्धपर्वतेषु प्रत्येकं द्वयोर्द्वयोर्भावात्, एवं च षट्त्रिंशदधिकं श्रेणिशतं भवतीति, 'विजय' त्ति कियन्ति चक्रवर्त्तिविजेतव्यानि भूखण्डानि?, उच्यते, चतुस्त्रिंशत्, एतावन्त एव राजधान्यादयोऽर्था इति, 'दह' त्ति कियन्तो महाह्रदाः? उच्यते, पद्मादयः षड् दश च नीलवदादय उत्तरकुरुदेवकुरुमध्यवर्त्तिन इत्येवं षोडश, 'सलिल' त्ति नद्यस्तत्प्रमाणं च दर्शितमेव, 'पिंडए होंति संगहणि' त्ति उद्देशकार्थानां पिण्डके–मीलके विषयभूते इयं सङ्ग्रहणीगाथा भवन्तीति॥

नवमशते प्रथमः॥९-१॥

---

१. सप्तैव कोटीशतानि नवतिः कोट्यः षट्पञ्चाशल्लक्षाश्चतुर्नवतिः सहस्राणि साधिकं सार्धं शतं च॥१॥ गव्यूतमेकं पञ्चदशाधिकानि पञ्चदश शतानि धनूंषि षष्टिश्चाङ्गुलानां जम्बूद्वीपस्यैतद् गणितपदम्॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके जम्बूद्वीपवक्तव्यतोक्ता द्वितीये तु जम्बूद्वीपादिषु ज्योतिष्कवक्तव्यताऽभिधीयते, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

९/३. 'रायगिहे' इत्यादि. 'एवं जहा जीवाभिगमे' त्ति तत्र चैतत्सूत्रमेवम्–'केवतिया चंदा पभासिंसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा ३? केवतिया सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा? केवइया नक्खत्ता जोयं जोइंसु वा ३? केवइया महग्गहा चारं चरिंसु वा ३? केवइयाओ तारागणकोडाकोडीओ सोहिं सोहिंसु वा ३?' शोभां कृतवन्त्य इत्यर्थः, 'गोतमा! जंबूदीवे दीवे दो चंदा पभासिंसु वा ३ दो सूरिया तविंसु वा ३ छप्पन्नं नक्खत्ता जोगं जोइंसु वा ३ छावत्तरं गहसयं चारं चरिंसु वा ३' बहुवचनमिह छान्दसत्वादिति. 'एगं च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं' शेषं तु सूत्रपुस्तके लिखितमेवास्ते॥

९/४. 'लवणे णं भंते!' इत्यादौ एवं जहा जीवाभिगमे' त्ति तत्र चेदं सूत्रमेवं–'केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ केवतिया सूरिया तविंसु वा ३' इत्यादि प्रश्नसूत्रं पूर्ववत्, उत्तरं तु 'गोयमा! लवणे णं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा ३ चत्तारि सूरिया तविंसु वा ३ बारसोत्तरं नक्खत्तसयं जोगं जोइंसु वा ३ तिन्नि बावन्ना महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ दोन्नि सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा नवसया तारागणकोडिकोडीणं सोहं सोहिंसु वा ३' सूत्रपर्यन्तमाह–'जाव ताराओ' त्ति तारकाभूत्रं यावत्तच्च दर्शितमेवेति। 'धायइसंडे' इत्यादौ यदुक्तं 'जहा जीवाभिगमे' तदेवं भावनीयं–'धायइसंडे णं भंते! दीवे केवतिया चंदा पभासिंसु वा ३ केवतिया सूरिया तविंसु वा ३?' इत्यादिप्रश्नाः पूर्ववत्, उत्तरं तु 'गोयमा! बारस चंदा पभासिंसु वा ३ बारस सूरिया तविंसु वा ३, एवं–

'चउवीसं ससिरविणो नक्खत्तसया य तिन्नि छत्तीसा।
एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे॥१॥
अट्ठेव सयसहस्सा तिन्नि सहस्साइं सत्त य सयाइं।
धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीणं॥२॥

सोहं सोहिंसु वा ३'। 'कालोए णं भंते! समुद्दे केवतिया चंदा' इत्यादि प्रश्नः, उत्तरं तु 'गोयमा!

'बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता।
कालोदहिंमि एए चरंति संबद्धलेसागा॥१॥
नक्खत्तसहस्सं एगं एगं छावत्तरं च समयन्नं।
छच्च सया छन्नउया महागहा तिन्नि य सहस्सा॥२॥
अट्ठावीसं कालोदहिंमि बारस य तह सहस्साइं।
णव य सया पन्नासा तारागणकोडीकोडीणं॥३॥

सोहं सोहिंसु वा ३।' तथा 'पुक्खरवरदीवे णं भंते! दीवे केवइया चंदा' इत्यादि प्रश्नः, उत्तरं त्वेतद्गाथाऽनुसारेणावसेयं–

'चोयालं चंदसयं चोयालं चेव सूरियाण सयं।
पुक्खरवरंमि दीवे भमंति एए पयासिंता॥१॥'

इह च यद्भ्रमणमुक्तं न तत्सर्वांश्चन्द्रादित्यानपेक्ष्य, किं तर्हि?, पुष्करार्द्धापाभ्यन्तरार्द्धवर्तिनीं द्विरूपमित्येवेति,

चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति नक्खत्ता।
छच्च सया बावत्तरि महागहा बारससहस्सा॥१॥
छन्नउइ सयसहस्सा चोयालीसं भवे सहस्साइं।
चत्तारि सया पुक्खरि तारागणकोडिकोडीणं॥२॥

सोहं सोहिंसु वा।' तथा–'अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतिया चंद?' इत्यादि प्रश्नः, उत्तरं तु–

'बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणयरा दित्ता।
पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एए पभासिंता॥१॥
तिन्नि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु।
नक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं॥२॥
अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
दो य सय पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं॥३॥

सोभं सोभिंसु वा३।' तथा–'मणुस्सखेत्ते णं भंते! केवइया चंदा?' इत्यादि प्रश्नः, उत्तरं तु–

'बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं।
सयलं मणुस्सलोयं चरंति एए पयासिंता॥१॥
एक्कारस य सहस्सा छप्पिय सोला महागहाणं तु।
छच्च सया छण्णउया नक्खत्ता तिन्नि य सहस्सा॥२॥
अडसीइ सयसहस्सा चालीस सहस्स मणुयलोगंमि।
सत्त य सया अणूणा तारागणकोडिकोडीणं॥३॥'

इत्यादि. किमन्तमिदं वाच्यम्? इत्याह–'जाव' त्यादि, अस्य च सूत्रांशस्यायं पूर्वोंऽशः–

'अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होइ नक्खत्ता।
एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि॥१॥

छावट्ठि सहस्साइं नव चेव सयाइं पंच सयराइं' ति।

९/५. 'पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवइया चंदा' इत्यादौ प्रश्ने इदमुत्तरं दृश्यं–'संखेज्जा चंदा पभासिंसु वा ३' इत्यादि, एवं सव्वेसु दीवसमुद्देसु' त्ति पूर्वोक्तेन प्रश्नेन यथासम्भवं सङ्ख्याता असङ्ख्याताश्च चन्द्रादय इत्यादिना चोत्तरेणेत्यर्थः, द्वीपसमुद्रनामानि चैवं–पुष्करोदसमुद्रादनन्तरो वरुणवरो द्वीपस्ततो वरुणोदः समुद्रः एवं क्षीरवरक्षीरोदौ घृतवरघृतोदौ क्षोदवरक्षोदोदौ नन्दीश्वरवरनन्दीश्वरोदौ अरुणारुणोदौ अरुणवरारुणवरोदौ अरुणवरावभासारुणवरावभासौदौ कुण्डलकुण्डलोदौ कुण्डलवरकुण्डलवरोदौ कुण्डलवरावभासकुण्डलवरावभासोदौ रुचकरुचकोदौ रुचकवररुचकवरोदौ रुचकवरावभासरुचकरावभासोदौ इत्यादीन्यसङ्ख्यातानि, यतोऽसङ्ख्याता द्वीपसमुद्रा इति॥

नवमशते द्वितीयः॥९/२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय-त्रिंशत्तम उद्देशकः

द्वितीयोद्देशके द्वीपवरवक्तव्यतोक्ता, तृतीयेऽपि प्रकारान्तरेण सैवोच्यते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

९/७. 'रायगिहे' इत्यादि, 'दाहिणिल्लाणं' ति उत्तरान्तरद्वीपव्यवच्छेदार्थम् 'एवं जहा जीवाभिगमे' त्ति, तत्र चेदमेवं सूत्रं–'चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयनामं दीवे पन्नत्ते. तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं नवएगूणपन्ने जोयणसए किंचिसेसूणे परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते' इत्यादि. इह च वेदिकावनखण्डकल्पवृक्ष[1]मनुष्यमनुष्यीवर्णकोऽभिधीयते. तथा तन्मनुष्याणां चतुर्थभक्तादाहारार्थं उत्पद्यते, ते च पृथिवीरसपुष्पफलाहाराः, तत्पृथिवी च रसतः खण्डादितुल्या, ते च मनुष्या वृक्षगेहाः, तत्र च गेहाद्यभावः, तन्मनुष्याणां च स्थितिः पल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमाणा. षण्मासावशेषायुषश्च ते मिथुनकानि प्रसुवते, एकाशीतिं च दिनानि तेऽपत्यमिथुनकानि पालयन्ति, उच्छ्वसितादिना च ते मृत्वा देवेषूद्यन्ते, इत्यादयश्चार्था अभिधीयन्ते इति, वाचनान्तरे त्विदं दृश्यते–'एवं जहा जीवाभिगमे उत्तरकुरुवत्तव्वयाए णेयव्वो, नाणत्तं अट्ठधणुसया उस्सेहो चउसट्ठी पिट्ठकरंडया अणुसज्जणा नत्थि' त्ति, तत्रायमर्थः–उत्तरकुरुषु मनष्याणां त्रीणि गव्यूतान्युत्सेध उक्त इह त्वष्टौ धनुःशतानि, तथा तेषु मनुष्याणां द्वे शते षटपञ्चाशदधिके पृष्ठकरण्डकानामुक्ते इह तु चतुःषष्टिरिति, तथा–'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए कइविहा मणुस्सा अणुसज्जंति?, गोयमा! छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जंति, तं जहा–पम्हगंधा मियगंधा अममा तेयली सहा सणिचारी' इत्येवं मनुष्याणामनुषक्तना तत्रोक्ता इह तु सा नास्ति, तथाविधमनुष्याणां तत्राभावात्, एवं चेह त्रीणि नानात्वस्थानान्युक्तानि, सन्ति पुनरन्यान्यपि स्थित्यादीनि, किन्तु तान्यभियुक्तेन भावनीयानीति, अयं चेहैकोरुकद्वीपोद्देशकस्तृतीयः। अथ प्रकृतवाचनामनुसृत्योच्यते–किमन्तमिदं जीवाभिगमसूत्रमिह वाच्यम? इत्याह–'जावे' त्यादि 'यावत् शुद्धदन्तद्वीपः' शुद्धदन्ताभिधानाष्टाविंशतितमान्तरद्वीपवक्तव्यतां यावत्, साऽपि कियदूरं यावद्वाच्या? इत्याह–'देवलोकपरिग्गहे' त्यादि, देवलोकः परिग्रहो येषां ते देवलोकपरिग्रहाः देवगतिगामिनः इत्यर्थः, इह चैकैकस्मिन्नन्तरद्वीपे एकैक उद्देशकः, तत्र चैकोरुकद्वीपोद्देशकानन्तरमाभासिकद्वीपोद्देशकः, तत्र चैवं सूत्रं–'कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणूसाणं आभासिए नामं दीवे पन्नत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आभासियनामं दीवे पन्नत्ते' शेषमेकोरुकद्वीपवदिति चतुर्थः। एवं वैषाणिकद्वीपोद्देशकोऽपि नवरं दक्षिणापराच्चरमान्तादिति पञ्चमः ५। एवं लाङ्गूलिकद्वीपोद्देशकोऽपि, नवरमुत्तरापराच्चरमान्तादिति षष्ठः ६। एवं हयकर्णद्वीपोद्देशको नवरमेकोरुकस्योत्तरपौरस्त्याच्चरमान्तात्लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतान्यवगाह्य चतुर्योजनशतायामविष्कम्भो हयकर्णद्वीपो भवतीति सप्तमः ७। एवं गजकर्णद्वीपोद्देशकोऽपि, नवरं गजकर्णद्वीप आभासिकद्वीपस्य दक्षिणपौरस्त्याच्चरमान्तात्लवणसमुद्रमवगाह्य चत्वारि योजनशतानि हयकर्णद्वीपसमो भवतीत्यष्टमः ८। एवं गोकर्णद्वीपोद्देशकोऽपि, नवरमसौ वैषाणिकद्वीपस्य दक्षिणापराच्चरमान्तादिति नवमः ९। एवं शष्कुलीकर्णद्वीपोद्देशकोऽपि, नवरमसौ लाङ्गूलिकद्वीपस्योत्तरापराच्चरमान्तादिति दशमः १०। एवमादर्शमुखद्वीपमेण्ढ्रमुखद्वीपायोमुखद्वीपगोमुखद्वीपा हयकर्णादीनां चतुर्णां क्रमेण पूर्वोत्तरपूर्वदक्षिणदक्षिणापरापरोत्तरेभ्यश्चरमान्तेभ्यः पञ्च योजनशतानि लवणोदधिमवगाह्य पञ्चयोजनशतायामविष्कम्भा भवन्ति, तत्प्रतिपादकाश्चान्ये चत्वार उद्देशका भवन्तीति १४ एतेषा मेवादर्शमुखादीनां पूर्वोत्तरादिभ्यश्चरमान्तेभ्यः षड् योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य षड्योजनशतायामविष्कम्भाः क्रमेणाश्वमुखद्वीपहस्तिमुखद्वीपसिंहमुखद्वीपव्याघ्रमुखद्वीपा भवन्ति, तत्प्रतिपादकाश्चान्ये चत्वार उद्देशका भवन्तीति १८। एतेषामेवाश्वमुखादीनां तथैव सप्त योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य सप्तयोजनशतायामविष्कम्भा अश्वकर्णद्वीपहस्तिकर्णद्वीपकर्णप्रावरणद्वीपाः प्रावरणद्वीपा भवन्ति, तत्प्रतिपादकाश्चापरे चत्वार एवोद्देशका इति २२। एतेषामेवाश्वकर्णादीनां तथैवाष्टयोजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्याष्टयोजनशतायामविष्कम्भा उल्कामुखद्वीपमेघमुखद्वीपविद्युन्मुखद्वीपविद्युद्दन्तद्वीपा भवन्ति, तत्प्रतिपादकाश्चान्ये चत्वार एवोद्देशका इति २६। एतेषामेवोल्कामुखद्वीपादीनां तथैव नव योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य नवयोजनशतायामविष्कम्भाः घनदन्तद्वीपलष्टदन्तद्वीपगूढदन्तद्वीपशुद्धदन्तद्वीपा भवन्ति, तत्प्रतिपादकाश्चान्ये चत्वार एवोद्देशका इति, एवमादितोऽत्र त्रिंशत्तमः शुद्धदन्तोद्देशकः॥

इति तृतीय-त्रिंशत्तम उद्देशः समाप्त।

---

१. अतः अग्रे निर्देक्ष्यमाणात् 'जहा जीवाभिगमे उत्तरकुरुवत्तव्वयाए' इत्यनिदेशाच्चानुमीयते एतद्यदुत केषुचित्तदानींतनेषु जीवाभिगमादर्शेषु अभूत एकोरुकवक्तव्यतासूत्रे कल्पवृक्षादिवर्णनं केषुचिच्चोत्तरकुरुवक्तव्यतायां, तथा च जीवाभिगमसूत्रे एकोरुकवक्तव्यतायां कल्पवृक्षादिवर्णनेऽपि वृत्तौ प्रतीकधृतिपूर्वमुत्तरकुरुवक्तव्यतायां व्याख्यानं कल्पवृक्षादेस्तादृशादर्शदर्शनमूलमेव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्रिंशत्तमः उद्देशकः

उक्तरूपाश्चार्थाः केवलिधर्माद् ज्ञायन्ते तं चाश्रुत्वाऽपि कोऽपि लभत इत्याद्यर्थप्रतिपादनपरमेकत्रिंशत्तममुद्देशकमप्याह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

९/९. 'रायगिहे' इत्यादि, तत्र च 'असोच्च' त्ति अश्रुत्वा–धर्म्मफलादिप्रतिपादकवचनमनाकर्ण्य प्राक्कृतधर्म्मानुरागादेवेत्यर्थः 'केवलिस्स व' त्ति 'केवलिनः' जिनस्य 'केवलिसावगस्स व' त्ति केवली येन स्वयमेव पृष्टः श्रुतं वा येन तद्वचनमसौ केवलिश्रावकस्तस्य 'केवलिउवासगस्स व' त्ति केवलिन उपासनां विदधानेन केवलिनैवान्यस्य कथ्यमानं श्रुतं येनासौ केवल्युपासकः 'तप्पक्खियस्स' त्ति केवलिनः पाक्षिकस्य स्वयंबुद्धस्य 'धम्मं' ति श्रुतचारित्ररूपं 'लभेज्ज' त्ति प्राप्नुयात् 'सवणयाए' त्ति श्रवणतया श्रवणरूपतया श्रोतुमित्यर्थः॥

९/१०. 'नाणावरणिज्जाणं' ति बहुवचनं ज्ञानावरणीयस्य मतिज्ञानावरणादिभेदेनावग्रहमत्यावरणादिभेदेन च बहुत्वात्, इह च क्षयोपशमग्रहणात् मत्यावरणाद्येव तद् ग्राह्यं न तु केवलावरणं तत्र क्षयस्यैव भावात्, ज्ञानावरणीयस्य क्षयोपशमश्च गिरिसरिदुपलघोलनान्यायेनापि कस्यचित्स्यात्, तत्सद्भावे चाश्रुत्वाऽपि धर्म्मं लभते श्रोतुं, क्षयोपशमस्यैव तल्लाभेऽन्तरङ्गकारणत्वादिति॥

९/११. 'केवलं बोहिं' ति शुद्धं सम्यग्दर्शनं 'बुज्झेज्ज' त्ति बुद्ध्येतानुभवेदित्यर्थः यथा प्रत्येकबुद्धादिः, एवमुत्तरत्राप्युदाहर्त्तव्यं।

९/१२. 'दरिसणावरणिज्जाणं' ति इह दर्शनावरणीयं दर्शमोहनीयमभिगृह्यते, बोधेः सम्यग्दर्शनपर्यायत्वात् तल्लाभस्य च तत्क्षयोपशमजन्यत्वादिति॥

९/१३. 'केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं' ति 'केवलां' शुद्धां सम्पूर्णां वाऽनगारितामिति योगः।

९/१४. 'धम्मंतराइयाणं' ति अन्तरायो–विघ्नः सोस्ति येषु तान्यन्तरायिकाणि धर्म्मस्य–चारित्रप्रतिपत्तिलक्षणस्यान्तरायिकाणि धर्म्मान्तरायिकाणि तेषां, वीर्यान्तरायचारित्रमोहनीयभेदानामित्यर्थः।

९/१६. 'चारित्तावरणिज्जाणं' ति, इह वेदलक्षणानि चारित्रावरणीयानि विशेषतो ग्राह्याणि, मैथुनविरतिलक्षणस्य ब्रह्मचर्यवासस्य विशेषतस्तेषामेवावारकत्वात्,

९/१७. 'केवलेणं संजमेणं संजमेज्ज' त्ति इह संयमः प्रतिपन्नचरित्रस्य तदतिचारपरिहाराय यतनाविशेषः।

९/१८. 'जयणावरणिज्जाणं' ति इह तु यतनावरणीयानि चारित्रविशेषविषयवीर्यान्तरायलक्षणानि मन्तव्यानि।

९/१९. 'अज्झवसाणावरणिज्जाणं' ति संवरशब्देन शुभाध्यवसायवृत्तेर्विवक्षितत्वात् तस्याश्च भावचारित्ररूपत्वेन तदावरणक्षयोपशमलभ्यत्वात् अध्यवसानावरणीयशब्देनेह भावचारित्रावरणीयान्युक्तानीति।

९/२०. पूर्वोक्तानेवार्थान् पुनः समुदायेनाह–'असोच्चा णं भंते!' इत्यादि॥ अथाश्रुत्वैव केवल्यादिवचनं यथा कश्चित् केवलज्ञानमुत्पादयेत्तथा दर्शयितुमाह–

९/३३. 'तस्से' त्यादि 'तस्स' त्ति योऽश्रुत्वैव केवलज्ञानमुत्पादयेत्तस्य कस्यापि 'छट्ठंछट्ठेणं' मित्यादि च यदुक्तं तत्प्रायः षष्ठतपश्चरणवतो बालतपस्विनो विभङ्गः–ज्ञानविशेष उत्पद्यत इति ज्ञापनार्थमिति, 'पगिज्झिय' त्ति प्रगृह्य धृत्वेत्यर्थः 'पगतिभद्दयाए' इत्यादीनि तु प्राग्वत्, 'तयावरणिज्जाणं' ति विभङ्गज्ञानावरणीयानाम् 'ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स' त्ति इहेहा–सदर्थाभिमुखा ज्ञानचेष्टा अपोहस्तु–विपक्षनिरासः मार्गणं च अन्वयधर्म्मालोचनं गवेषणं तु–व्यतिरेकधर्मालोचनमिति। 'से णं' ति असौ बालतपस्वी 'जीवेवि जाणइ' त्ति कथञ्चिदेव न तु साक्षात् मूर्त्तगोचरत्वात्तस्य 'पासंडत्थे' त्ति व्रतस्थान् 'सारंभे सपरिग्गहे' त्ति सारम्भान् सपरिग्रहान् सतः, किंविधान् जानाति? इत्याह–'संकिलिस्समाणेवि जाणइ' त्ति महत्यां संक्लिश्यमानतया सङ्क्लिश्यमानानपि जानाति 'विसुज्झमाणेवि जाणइ' त्ति अल्पीयस्यापि विशुद्ध्यमानतया विशुद्ध्यमानानपि जानाति, आरम्भादिमतामेवंस्वरूपत्वात्, 'से णं' ति असौ विभङ्गज्ञानी जीवाजीवस्वरूपपाषण्डस्थसङ्क्लिश्यमानतादिज्ञायकः सन् 'पुव्वामेव' त्ति चारित्रप्रतिपत्तेः पूर्वमेव 'सम्मत्तं' ति सम्यग्भावं 'समणधम्मं' ति साधुधर्म्मं 'रोएइ' त्ति श्रद्धत्ते चिकीर्षति वा 'ओही परावत्तइ' त्ति अवधिर्भवर्तीत्यर्थः, इह च यद्यपि चारित्रप्रतिपत्तिमादावभिधाय सम्यक्त्वपरिगृहीतं विभङ्गज्ञानमवधिर्भवतीति पश्चादुक्तं तथाऽपि चारित्रप्रतिपत्तेः पूर्वं सम्यक्त्वप्रतिपत्तिकाल एव विभङ्गज्ञानस्यावधिभावो द्रष्टव्यः, सम्यक्त्वचारित्रभावे विभङ्गज्ञानस्याभावादिति॥

अथैनमेव लेश्यादिभिर्निरूपयन्नाह–

९/३४. से णं भंते!' इत्यादि, तत्र 'से णं' ति स यो विभङ्गज्ञानी भूत्वाऽवधिज्ञानं चारित्रं च प्रतिपन्नः 'तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्ज' त्ति यतो भावलेश्यासु प्रशस्तास्वेव सम्यक्त्वादि प्रतिपद्यते नाविसुद्धास्विति।

९/३५. 'तिसु आभिनिबोहिए' त्यादि, सम्यक्त्वमतिश्रुतावधिज्ञानिनां विभङ्गविनिवर्त्तनकाले तस्य युगपद्भावादाद्ये ज्ञानत्रय एवासौ तदा वर्त्तत इति।

९/३६. 'णो अजोगी होज्ज' त्ति अवधिज्ञानकालेऽयोगित्वस्याभावात्, 'मणजोगी' त्यादि चैकतरयोगप्राधान्यापेक्षयाऽवगन्तव्यं।

'सागारोवउत्ते वे' त्यादि, तस्य हि विभङ्गज्ञानान्निवर्त्तमानस्योपयोगद्वयेऽपि वर्त्तमानस्य सम्यक्त्वावधिज्ञानप्रतिपत्तिरस्तीति, ननु 'सव्वाओ लद्धीओ सागारोवओगोवउत्तस्स भवंती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यागमादनाकारोपयोगे सम्यक्त्वावधिलब्धिविरोधः?, नैवं प्रवर्द्धमानपरिणामजीवविषयत्वात् तस्यागमस्य, अवस्थित-परिणामापेक्षया चानाकारोपयोगेऽपि लब्धिलाभस्य सम्भवादिति।

९/३८. 'वइरोसभनारायसंघयणे होज्ज' त्ति प्राप्तव्यकेवल-ज्ञानत्वात्तस्य, केवलज्ञानप्राप्तिश्च प्रथमसंहनन एव भवतीति, एवमुत्तरत्रापीति॥

९/४२. 'सवेयए होज्ज' त्ति विभङ्गस्यावधिभावकाले न वेदक्षयोऽ-स्तीत्यसौ सवेद एव, 'नो इत्थिवेयए होज्ज' त्ति स्त्रिया एवंविधस्य व्यतिकरस्य स्वभावत एवाभावात्।

९/४३. 'पुरिसनपुंसगवेयए' त्ति वर्द्धितकत्वादित्वे नपुंसकः पुरुषन-पुंसकः 'सकसाई होज्ज' त्ति विभङ्गावधिकाले कषायक्षय-स्याभावात् 'चउसु संजलणकोहमाणमायालोभेसु होज्ज' त्ति स ह्यवधिज्ञानतापरिणतविभङ्गज्ञानश्चरणं प्रतिपन्नः उक्तः, तस्य च तत्काले चरणयुक्तत्वात्संज्वलना एव क्रोधादयो भवन्तीति।

९/४५. 'पसत्थ' त्ति विभङ्गस्यावधिभावो हि नाप्रशस्ताध्यवसानस्य भवतीत्यत उक्तं–प्रशस्तान्यध्यवसायस्थानानीति।

९/४६. 'अणंतेहिं' ति अनन्तैः अनन्तानागतकालभाविभिः। 'विसंजोएइ' त्ति विसंयोजयति, तत्प्राप्तियोग्यताया अपनो-दादिति। 'जाओऽविय' त्ति यापि च 'नेरइयतिरिक्खजोणिय-मणुस्सदेवगतिनामाओ' त्ति एतदभि-धानाः 'उत्तरपयडीओ' त्ति नामकर्माभिधानाया मूलप्रकृतेरुत्तरभेदभूताः 'तासिं च णं' ति तासां च नैरयिकगत्याद्युत्तरप्रकृतीनां चशब्दादन्यासां च 'उवग्गहिए' त्ति औपग्रहिकान्–उपष्टम्भप्रयोजनान् अनन्तानु-बंधिनः क्रोधमानमायालोभान् क्षपयति, तथाऽप्रत्याख्यानादींश्च तथाविधानेव क्षपयतीति, 'पंचविहं नाणावरणिज्जं' ति मतिज्ञानावरणादिभेदात् 'नवविहं दंसणावरणिज्जं' ति चक्षुर्दर्शनाद्यावरणचतुष्कस्य निद्रापञ्चकस्य च मीलनान्नवधि-त्वमस्य 'पंचविहं अंतराइयं' ति दानलाभभोगोपभोगवीर्य-विशेषितत्वादिति पञ्चविधत्वमन्तरायस्य, तत्र क्षपयतीति सम्बन्धः, किं कृत्वा? इत्यत आह–'तालमत्थकडं च णं मोहणिज्जं कट्टु' त्ति मस्तकं–मस्तकशूची कृत्तं–छिन्नं यस्यासौ मस्तककृत्तः, तालश्चासौ मस्तककृत्तश्च तालमस्तककृत्तः, छान्दसत्वाच्चैवं निर्देशः, तालमस्तककृत्त इव यत्तत्तालमस्तककृत्तम्, अयमर्थः–छिन्नमस्तकतालकल्पं च मोहनीयं कृत्वा, यथा हि छिन्नमस्तकस्तालः क्षीणो भवति एवं मोहनीयं च क्षीणं कृत्वेति भावः, इदं चोक्तमोहनीय-भेदशेषापेक्षया द्रष्टव्यमिति, अथवाऽथ कस्मादनन्तानु-बन्ध्यादिस्वभावे तत्र क्षपिते सति ज्ञानावरणीयादि क्षपयत्येव? इति, अत आह–'तालमत्थे' त्यादि, तालमस्तकस्येव कृत्तं–क्रिया यस्य तत्तालमस्तककृत्तं तदेवंविधं च मोहनीयं 'कट्टु' त्ति इतिशब्दस्येह गम्यमानत्वादितिकृत्वा–इतिहेतोस्तत्र क्षपिते ज्ञानावरणीयादि क्षपयत्येवेति, तालमस्तकमोहनीययोश्च क्रियासाधर्म्यमेव, यथा हि तालमस्तकविनाशक्रियाऽ-वश्यम्भावितालविनाशा एवं मोहनीयकर्मविनाशक्रियाऽ-प्यवश्यम्भाविशेषकर्म्मविनाशेति, आह च–

'मस्तकसूचिविनाशे तालस्य यथा ध्रुवो भवति नाशः।
तद्वत्कर्मविनाशोऽपि मोहनीयक्षये नित्यम्॥१॥'

ततश्च कर्मरजोविकरणकरं–तद्विक्षेपकम् अपूर्वकरणम्–असदृ-शाध्यवसायविशेषमनुप्रविष्टस्य, अनन्तं विषयानन्त्यात् अनुत्तरं सर्वोत्तमत्वात् निर्व्याघातं कटकुट्यादिभिरप्रतिहननात् निरावरणं सर्वथा स्वावरणक्षयात् कृत्स्नं सकलार्थग्राहकत्वात् प्रतिपूर्णं सकलस्वांशयुक्तयोत्पन्नत्वात् केवलवरज्ञानदर्शनं–केवलमभिधानतो वरं ज्ञानान्तरापेक्षया ज्ञानं च दर्शनं च ज्ञानदर्शनं समाहारद्वन्द्वस्ततः केवलादीनां कर्मधारयः, इह च क्षपणाक्रमः–

अणमिच्छमीससम्मं अट्ठ नपुंसित्थिवेयछक्कं च।
पुमवेयं च खवेई कोहाईए य संजलणे॥१॥'

(अनन्तानुबन्धिनो मिश्रं सम्यक्त्वं अष्टकं नपुंसकं स्त्रीवेदं षट्कं च। पुंवेदं च क्षपयति क्रोधादिकांश्च संज्वलनान्॥१॥) इत्यादिग्रन्थान्तरप्रसिद्धो, न चायमिहाश्रितो यथा कथञ्चित्क्षपणामात्रस्यैव विवक्षितत्वादिति।

९/४७. 'आघवेज्ज' त्ति आग्राहयेच्छिष्यान् अर्थापयेद्वा–प्रतिपादनतः पूजां प्रापयेत् 'पन्नवेज्ज' त्ति प्रज्ञापयेद्भेदभणनतो बोधयेद्वा 'परूवेज्ज' त्ति उपपत्तिकथनतः 'नन्नत्थ एगनाएण व' त्ति न इति योऽयं निषेधः सोऽन्यत्रैकज्ञाताद्, एकमुदाहरणं वर्जयित्वेत्यर्थः, तथाविधकल्पत्वादस्येति, 'एगवागरणेण व' त्ति एकव्याकरणा-देकोत्तरादित्यर्थः।

९/४८. 'पव्वावेज्ज व' त्ति प्रव्राजयेद्रजोहरणादिद्रव्यलिङ्गदानतः 'मुंडावेज्ज व' त्ति मुण्डयेच्छिरोलुञ्चनतः 'उवएसं पुण करेज्ज' त्ति अमुष्य पार्श्वे प्रव्रजेत्यादिकमुपदेशं कुर्यात्।

९/५०. 'सहावई'त्यादि, शब्दापातिप्रभृतयो यथाक्रमं जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्त्यभिप्रायेण हैमवतहरिवर्षरम्यकैरण्यवतेषु क्षेत्रसमासाभि-प्रायेण तु हैमवतैरण्यवतहरिवर्षरम्यकेषु भवन्ति, तेषु च तस्य भाव आकाशगमनलब्धिसम्पन्नस्य तत्र गतस्य केवलज्ञा-नोत्पादसद्भावे सति, 'साहरणं पडुच्च' त्ति देवेन नयनं प्रतीत्य 'सोमणसवणे' त्ति सौमनसवनं मेरौ तृतीयं 'पंडगवणे' त्ति मेरौ चतुर्थं 'गड्ढाए व' त्ति गर्त्ते–निम्ने भूभागेऽधोलोकग्रामादौ 'दरिए व' त्ति तत्रैव निम्नतरप्रदेशे 'पायाले व' त्ति महापातालकलशे वलयामुखादौ 'भवणे व' त्ति भवन-वासिदेवनिवासे 'पन्नरससु कम्मभूमीसु' त्ति पञ्चः भरतानि पञ्च ऐरवतानि पञ्च महाविदेहा इत्येवंलक्षणासु कर्मणि–कृषिवाणिज्यादीनि तत्प्रधाना भूमयः कर्म्मभूमयस्तासु 'अड्ढाइज्जे' त्यादि अर्द्धं तृतीयं येषां तेऽर्द्धतृतीयास्ते च ते द्वीपाश्चेति समासः, अर्द्धतृतीयद्वीपाश्च समुद्रौ च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्परिमितावर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रास्तेषां स चासौ विवक्षितो देशरूपो भागः—अंशोऽर्द्ध-तृतीयद्वीपसमुद्रतदेकदेशभागस्तत्र॥

अनन्तरं केवल्यादिवचनाश्रवणे यत्स्यात्तदुक्तमथ तच्छ्रवणे यत्स्यात्तदाह—

९/५२. 'सोच्चाण मित्यादि. अथ यथैव केवल्यादिवचनाश्रवणावाप्तबोध्यादेः केवलज्ञानमुत्पद्यते न तथैव तच्छ्रवणावाप्तबोध्यादेः किन्तु प्रकारान्तरेणेति दर्शयितुमाह—

९/५५. 'तस्स ण' मित्यादि. 'तस्स' त्ति यः श्रुत्वा केवलज्ञानमुत्पादयेत्तस्य कस्याप्यर्थात् प्रतिपन्नसम्यग्दर्शनचारित्रलिङ्गस्य 'अट्ठमंअट्ठमेण' मित्यादि च युदक्तं तत्प्रायो विकृष्टतपश्चरणवतः साधोरवधिज्ञानमुत्पद्यत इति ज्ञापनार्थमिति, 'लोयप्पमाणमेत्ताइं' ति लोकस्य यत्प्रमाणं तदेव मात्रा—परिमाणं येषां तानि तथा॥

अथैनमेव लेश्यादिभिर्निरूपयन्नाह—

९/५६. 'से णं भंते!' इत्यादि, तत्र 'से णं' ति सोऽनन्तरोक्तविशेषणोऽधिज्ञानी 'छसु लेसासु होज्ज' त्ति यद्यपि भावलेश्यासु प्रशस्तास्वेव तिसृष्वपि ज्ञानं लभते तथाऽपि द्रव्यलेश्याः प्रतीत्य षट्स्वपि लेश्यासु लभते सम्यक्त्वश्रुतवत्[1] यदाह—'सम्मत्तसुयं सव्वासु लब्भइ' त्ति तल्लाभे चासौ षट्स्वपि भवतीत्युच्यत इति।

९/५७. 'तिसु व' त्ति अवधिज्ञानस्याद्यज्ञानद्वयाविनाभूतत्वादधिकृतावधिज्ञानी त्रिषु ज्ञानेषु भवेदिति, 'चउसु वा होज्ज' त्ति मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनोऽवधिज्ञानोत्पत्तौ ज्ञानचतुष्टयभावाच्चतुर्षु ज्ञानेष्वधिकृतावधिज्ञानी भवेदिति।

९/६४. 'सवेयए वा' इत्यादि. अक्षीणवेदस्यावधिज्ञानोत्पत्तौ सवेदकः सन्नवधिज्ञानी भवेत् क्षीणवेदस्य चावधिज्ञानोत्पत्ताववेदकः सन्नयं स्यात्, 'नो उवसंतवेयए होज्ज' त्ति उपशान्तवेदोऽयमवधिज्ञानी न भवति, प्राप्तव्यकेवलज्ञानस्यास्य विवक्षितत्वादिति।[2]

९/६५. 'सकसाई वा' इत्यादि, यः कषायाक्षये सत्यवधिं लभते स सकषायी सन्नवधिज्ञानी भवेत्, यस्तु कषायक्षयेऽसावकषायीति। 'चउसु वे' त्यादि, यद्यक्षीणकषायः सन्नवधिं लभते तदाऽयं चारित्रयुक्तत्वाच्चतुर्षु सञ्ज्वलनकषायेषु भवति, यदा तु क्षपकश्रेणिवर्त्तित्वेन सञ्ज्वलनक्रोधे क्षीणेऽवधिं लभते तदा त्रिषु सञ्ज्वलनमानादिषु, यदा तु तथैव सञ्ज्वलनक्रोधमानयोः क्षीणयोस्तदा द्वयोः, एवमेकत्रेति॥

नवमशते एकत्रिंशत्तम उद्देशकः समाप्तः॥९-३१॥

द्वात्रिंशत्तम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके केवल्यादिवचनं श्रुत्वाः केवलज्ञानमुत्पादयेदित्युक्तम्, इह तु येन केवलिवचनं श्रुत्वा तदुत्पादितं स दर्श्यते, इत्येवंसंबद्धस्य द्वात्रिंशत्तमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्—

९/७७. 'ते ण' मित्यादि. संतरं' ति समयादिकालापेक्षया सविच्छेदं, तत्र चैकेन्द्रियाणामनुसमयमुत्पादात् निरंतरत्वमन्येषां तूत्पादे विरहस्यापि भावात् सान्तरत्वं निरन्तरत्वं च वाच्यमिति॥

उत्पन्नानां च सतामुद्वर्त्तना भवतीत्यतस्तां निरूपयन्नाह—

९/८२ 'संतरं भंते! नेरइया उववट्टंती' त्यादि॥ उद्वृत्तानां च केषाञ्चिद्गत्यन्तरे प्रवेशनं भवतीत्यतस्तन्निरूपणायाह—

९/८६. 'कइविहे ण' मित्यादि, 'पवेसणए' त्ति गत्यन्तरापेक्षया विजातीयगतौ जीवस्य प्रवेशनं, उत्पाद इत्यर्थः।

९/८८. 'एगे भंते! नेरइए' इत्यादौ सप्त विकल्पाः।

९/८९. 'दो भंते! नेरइए' त्यादावष्टाविंशतिर्विकल्पास्तत्र रत्नप्रभायाः सप्तापि पृथिव्यक्रमेण षट्सादौ व्यवस्थाप्याक्षसञ्चारणयः पृथिवीनामेकत्वद्विसंयोगाभ्यां तेऽवसेयाः, तत्रैकैकपृथिव्यां नारकद्वयोत्पत्ति, लक्षणैकत्वे सप्त विकल्पाः, पृथिवीद्वये नारकद्वयोत्पत्तिलक्षणद्विकयोगे त्वेकविंशतिरित्येवमष्टाविंशतिः 'एवं एक्केक्का पुढवी छड्डेयव्वे' ति अक्षसञ्चारणापेक्षयेदमुक्तमिति॥

९/९०. 'तिन्नि भंते! नेरइए' त्यादौ चतुरशीतिर्विकल्पाः, तथाहि—पृथिवीनामेकत्वे सप्त विकल्पाः, द्विकसंयोगे तु तासामेको द्वावित्यनेन नारकोत्पादविकल्पेन रत्नप्रभया सह शेषाभिः क्रमेण चारिताभिर्लब्धाः षट्, द्वावेक इत्यनेनापि नारकोत्पादविकल्पेन षडेव, तदेते द्वादश १२, एवं शर्कराप्रभया पञ्च पञ्चेति दश एवं वालुकाप्रभयाऽष्टौ पङ्कप्रभया षट्, धूमप्रभया चत्वारः तमःप्रभया द्वाविति, द्विकयोगे द्विचत्वारिंशत्, त्रिकयोगे तु तासां पञ्चत्रिंशद्विकल्पास्ते चाक्षसञ्चारणया गम्यास्तदेवमेते सर्वेऽपि चतुरशीतिरिति। ७।४२।३५।८४॥

९/९१. 'चत्तारि भंते! नेरइया' इत्यादौ दशोत्तरे द्वे शते विकल्पानां, तथाहि—पृथिवीनामेकत्वे सप्त विकल्पाः, द्विकसंयोगे तु तासामेकस्त्रय इत्यनेन नारकोत्पादविकल्पेन रत्नप्रभया सह शेषाभिः क्रमेण चारिताभिर्लब्धाः षट्, द्वौ द्वावित्यनेनापि षट्, त्रय एक इत्यनेनापि षडेव, तदेवमेतेऽष्टादश, शर्कराप्रभया तु तथैव त्रिषु पूर्वोक्तनारकोत्पादविकल्पेषु पञ्च पञ्चेति

---

१. यद्यपि अत्र श्रुत्वाकेवल्यधिकारात् मनुष्येणैवाधिकारः, तस्य च द्रव्यलेश्याभावलेश्यापार्थक्यं द्रव्यलेश्याया अवस्थितिश्च चिरं यावन्न, तथापि भवन्नित्यस्य जायमान इत्यर्थकत्वाभावे विद्यमान इत्यर्थकस्य च ग्रहणे न काप्यनुपपत्तिः, प्राप्तेऽवधिज्ञाने लेश्यापरावृत्तिः प्रमादात्, अत्र द्रव्यलेश्योक्तिस्तु तल्लेश्यकद्रव्याणां तथा तथा परिणतिमपेक्ष्य, न चैतदन्यलेश्याद्रव्यणामन्यलेश्यतया परिणमनमसंभवि, नृतिरश्चां द्रव्यलेश्याद्रव्यपरिणामान्तरस्वीकारात्, एवं स्यात्तदापि नासंगतिः।

२. पूर्वं यद्युपशान्तः स्यात्तदापि पातस्यस्य भूतपूर्व एव, अधुनोपशमे तु द्विरूपशमे श्रेण्यारोहेण केवलस्योत्पाद एव न स्यात् तत युक्तं उक्तं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चदश, एवं वालुकाप्रभया चत्वारश्चत्वार इति द्वादश, पङ्कप्रभया त्रयस्त्रय इति नव, धूमप्रभया द्वौ द्वाविति षट्, तमःप्रभयैकैक इति त्रयः, तदेवमेते द्विकसंयोगे त्रिषष्टिः ६३, तथा पृथिवीनां त्रिकयोगे एक एको द्वौ चेत्येवं नारकोत्पाद-विकल्पे रत्नप्रभाशर्कराप्रभाभ्यां सहान्याभिः क्रमेण चारिताभिर्लब्धाः पञ्च, एको द्वावेकश्चेत्येवं नारकोत्पाद-विकल्पान्तरेऽपि पञ्च, द्वावेक एकश्चेत्येवमपि नारकोत्पाद-विकल्पान्तरे पञ्चैवेति पञ्चदश १५, एवं रत्नप्रभावालुका-प्रभाभ्यां सहोत्तराभिः क्रमेण चारिताभिर्लब्धा द्वादश १२, एवं रत्नप्रभापङ्कप्रभाभ्यां नव, रत्नप्रभाधूमप्रभाभ्यां षट्, रत्नप्रभातमःप्रभाभ्यां त्रयः, शर्कराप्रभावालुकाप्रभाभ्यां द्वादश १२, शर्कराप्रभापङ्कप्रभाभ्यां नव, शर्कराप्रभाधूमप्रभाभ्यां षट्, शर्कराप्रभातमःप्रभाभ्यां त्रयः, वालुकाप्रभापङ्कप्रभाभ्यां नव, वालुकाप्रभाधूमप्रभाभ्यां षट्, वालुकाप्रभातमःप्रभाभ्यां त्रयः, पङ्कप्रभाधूमप्रभाभ्यां षट् पङ्कप्रभातमःप्रभाभ्यां त्रयः, धूमप्रभादिभिस्तु त्रय इति, तदेवं त्रिकयोगे पञ्चोत्तरं शतं चतुष्कसंयोगे तु पञ्चत्रिंशदिति, एवं सप्तानां त्रिषष्टेः पञ्चोत्तरशतस्य पञ्चत्रिंशतश्च मीलने द्वे शते दशोत्तरे भवत इति॥ चतुष्प्रवेशे त्रिकयोगे ४५ रत्न. ३० शर्करा. १८ वालुका. ९ पंकप्रभा ३ धूमप्रभा।

९/९२. 'पंच भंते! नेरइया' इत्यादि, पूर्वोक्तक्रमेण भावनीयं, नवरं सङ्क्षेपेण विकल्पसङ्ख्या दर्श्यते–एकत्वे सप्त विकल्पाः, द्विकसंयोगे तु चतुरशीतिः, कथं?, द्विकसंयोगे सप्तानां पदानामेकविंशतिर्भङ्गा, पञ्चानां च नारकाणां द्विधाकरणेऽक्ष-सञ्चारणावगम्याश्चत्वारो विकल्पा भवन्ति, तद्यथा–एकश्च-त्वारश्च, द्वौ त्रयश्च, त्रयो द्वौ च, चत्वार एकश्चेति, तदेवमेक-विंशतिश्चतुर्भिर्गुणिता चतुरशीतिर्भवतीति, त्रिकयोगे तु सप्तानां पदानां पञ्चत्रिंशद्विकल्पाः, पञ्चानां च त्रित्वेन स्थापने षड् विकल्पास्तद्यथा–एक एकस्त्रयश्च, एको द्वौ द्वौ च, द्वावेको द्वौ च, एकस्त्रय एकश्च, द्वौ द्वावेकश्च, त्रय एक एकश्चेति, तदेवं पञ्चत्रिंशतः षड्भिर्गुणने दशोत्तरं भङ्गकशतद्वयं भवति, चतुष्कसंयोगे तु सप्तानां पञ्चत्रिंशद्विकल्पाः, पञ्चानां चतूराशितया स्थापने चत्वारो विकल्पास्तद्यथा–१११२। ११२१। १२११। २१११। तदेवं पञ्चत्रिंशतश्चतुर्भिर्गुणने चत्वारिंशदधिकं शतं भवतीति, पञ्चकयोगे त्वेकविंशतिरिति, सर्वमीलने च चत्वारि शतानि द्विषष्ट्यधिकानि भवन्तीति॥

९/९३. 'छब्भंते नेरइये' त्यादि॥ इहैकत्वे सप्त, द्विकयोगे तु षण्णां द्वित्वे पञ्च विकल्पास्तद्यथा–।१५।२४।३३।४२।५१। तैश्च सप्तपदद्विकसंयोगएकविंशतेर्गुणनात् पञ्चोत्तरं भङ्गकशतं भवति, त्रिकयोगे तु षण्णां त्रित्वे दश विकल्पास्तद्यथा–११४।१२३।२१३।१३२।२२२।३१२।१४१।२३१।३२१। ४११। एतैश्च पञ्चत्रिंशतः सप्तपदत्रिकसंयोगानां गुणनात् त्रीणि शतानि पञ्चाशदधिकानि भवन्ति, चतुष्कसंयोगे तु षण्णां चतूराशितया स्थापने दश विकल्पास्तद्यथा–।१११३। ११२२।१२१२।२११२।११३१।१२२१।२१२१।१३११।२२११।३१११। पञ्चत्रिंशतश्च सप्तपदचतुष्कसंयोगानां दशभिर्गुणनात्त्रीणि शतानि पञ्चाशदधिकानि भवन्ति, पञ्चकसंयोगे तु षण्णां पञ्चधाकरणे पञ्च विकल्पास्तद्यथा–११११२।१११२१। ११२११।१२१११।२११११। सप्तानां च पदानां पञ्चक-संयोगे एकविंशतिर्विकल्पाः तेषां च पञ्चभिर्गुणने पञ्चोत्तरं शतमिति, षट्कसंयोगे तु सप्तैव, ते च सर्वमीलने नव शतानि चतुर्विंशत्युत्तराणि भवन्तीति॥

९/९४. 'सत्त भंते!' इत्यादि, इहैकत्वे सप्त, द्विकयोगे तु सप्तानां द्वित्वे षड् विकल्पास्तद्यथा–१६।२५।३४।४३। ५२।६१। षड्भिश्च सप्तपदद्विकसंयोगएकविंशतिर्गुणनात् षड्विंशत्युत्तरं भङ्गकशतं भवति, त्रिकयोगे तु सप्तानां त्रित्वे पञ्चदश विकल्पास्तद्यथा–११५।१२४।२१४।१३३।२२३। ३१३।१४२।२३२।३२२।४१२।१५१।२४१।३३१।४२१।५११। एतैश्च पञ्चत्रिंशतः सप्तपदत्रिकसंयोगानां गुणनात् पञ्च शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि भवन्तीति, चतुष्कयोगे तु सप्तानां चतूराशितया स्थापने एक एक एकश्चत्वारश्चेत्यादयो विंशतिर्विकल्पाः ते च वक्ष्यमाणाश्च पूर्वोक्तभङ्गकानुसारेणाक्ष-सञ्चारणाकुशलेन स्वयमेवावगन्तव्याः, विंशत्या च पञ्चत्रिंशतः सप्तपदचतुष्कसंयोगानां गुणनात् सप्त शतानि विकल्पानां भवन्ति, पञ्चकसंयोगे तु सप्तानां पञ्चतया स्थापने एक एक एक एकस्त्रयश्चेत्यादयः पञ्चदश विकल्पाः, एतैश्च सप्तपदपञ्चकसंयोगएकविंशतेर्गुणनात्त्रीणि शतानि पञ्चदशो-त्तराणि भवन्ति, षट्कसंयोगे तु सप्तानां षोढाकरणे पञ्चैकका द्वौ चेत्यादयः १११११२ षड् विकल्पाः, सप्तानां च पदानां षट्कसंयोगे सप्त विकल्पाः, तेषां च षड्भिर्गुणने द्विचत्वारिंशद्विकल्पा भवन्ति, सप्तकसंयोगे त्वेक एवेति, सर्वमीलने च सप्तदश शतानि षोडशोत्तराणि भवन्ति॥

९/९५. 'अट्ठ भंते!' इत्यादि, इहैकत्वे सप्त विकल्पाः, द्विकसंयोगे त्वष्टानां द्वित्वे एकः सप्तेत्यादयः सप्त विकल्पाः प्रतीता एव, तैश्च सप्तपदद्विकसंयोगैकविंशतेर्गुणनाच्छतं सप्तचत्वारिंश-दधिकानां भवतीति, त्रिकसंयोगे त्वष्टानां त्रित्वे एक एकः षड् इत्यादय एकविंशतिर्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदत्रिकसंयोगे पञ्चत्रिंशतो गुणने सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि भवन्ति, चतुष्कसंयोगे त्वष्टानां चतुर्द्धात्वे एक एक एकः पञ्चेत्यादयः पञ्चत्रिंशद्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदचतुष्कसंयोगानां पञ्चत्रिंशतो गुणने द्वादश शतानि पञ्चविंशत्युत्तराणि भङ्गकानां भवन्तीति, पञ्चकसंयोगे त्वष्टानां पञ्चत्वे एक एक एक एकश्चत्वार-श्चेत्यादयः पञ्चत्रिंशद्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदपञ्चकसंयोगैक-विंशतेर्गुणने सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि भवन्तीति, षट्कसंयोगे त्वष्टानां षोढात्वे पञ्चैककास्त्रयश्चेत्यादयः १११११३ एकविंशतिर्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदषट्कसंयोगानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तकस्य गुणने सप्तचत्वारिंशदधिकं भङ्गकशतं भवतीति, सप्तसंयोगे पुनरष्टानां सप्तधात्वे सप्त विकल्पाः प्रतीता एव, तैश्चैकैकस्य सप्तकसंयोगस्य गुणने सप्तैव विकल्पा, एषां च मीलने त्रीणि सहस्राणि त्र्युत्तराणि भवन्तीति॥

९/९६. 'नव भंते!' इत्यादि, इहाप्येकत्वे सप्तैव, द्विकसंयोगे तु नवानां द्वित्वेऽष्टौ विकल्पाः प्रतीता एव, तैश्चैकविंशतेः सप्तपदद्विकसंयोगानां गुणनेऽष्टषट्यधिकं भङ्गकशतं भवतीति, त्रिकसंयोगे तु नवानां द्वावेककौ तृतीयश्च सप्तकः ११७ इत्येवमादयोऽष्टाविंशतिर्विकल्पाः तैश्च सप्तपदत्रिकसंयोग-पञ्चत्रिंशतो गुणने नव शतान्यशीत्युत्तराणि भङ्गकानां भवन्तीति, चतुष्कयोगे तु नवानां चतुर्द्धात्वे त्रय एककाः षट् चेत्यादयः १११६ षट्पञ्चाशद्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदचतुष्क-संयोगपञ्चत्रिंशतो गुणने सहस्रं नव शतानि षष्टिश्च भङ्गकानां भवन्तीति, पञ्चकसंयोगे तु नवानां पञ्चधात्वे चत्वार एककाः पञ्चकश्चेत्यादयः ११११५ सप्ततिर्विकल्पाः, तैश्च सप्तपद-पञ्चकसंयोगएकविंशतेर्गुणने सहस्रं चत्वारि शतानि सप्ततिश्च भङ्गकानां भवन्तीति, षट्कसंयोगे तु नवानां षोढात्वे पञ्चैककाश्चतुष्ककश्चेत्यादयः १११११४ षट्पञ्चाशद्वि-कल्पा भवन्ति, तैश्च सप्तपदषट्कसंयोगसप्तकस्य गुणने शतत्रयं द्विनवत्यधिकभङ्गकानां भवन्तीति, सप्तकपदसंयोगे पुनर्नवानां सप्तत्वे एककाः षट् त्रिकश्चेत्यादयो १११११११३ ऽष्टाविंशतिर्विकल्पा भवन्तीति, तैश्चैकस्य सप्तकसंयोगस्य गुणनेऽष्टाविंशतिरेव भङ्गकाः, एषां च सर्वेषां मीलने पञ्च सहस्राणि पञ्चोत्तराणि विकल्पानां भवन्तीति॥

९/९७. 'दस भंते!' इत्यादि, इहाप्येकत्वे सप्तैव, द्विकसंयोगे तु दशानां द्विधात्वे एको नव चेत्येवमादयो नव विकल्पाः, तैश्चैकविंशतेः सप्तपदद्विकसंयोगानां गुणने एकोननवत्यधिकं भङ्गकशतं भवतीति, त्रिकयोगे तु दशानां त्रिधात्वे एक एकोष्टौ चेत्येवमादयः षट्त्रिंशद्विकल्पाः, तैश्च सप्तपदत्रिकसंयोग-पञ्चत्रिंशतो गुणने द्वादश शतानि षष्ट्यधिकानि भङ्गकानां भवन्तीति, चतुष्कसंयोगे तु दशानां चतुर्धात्वे एककत्रयं सप्तकश्चेत्येवमादयश्चतुरशीतिर्विकल्पाः, तैश्च सप्तपद-चतुष्कसंयोगपञ्चत्रिंशतो गुणने एकोनत्रिंशच्छतानि चत्वारिं-शदधिकानि भङ्गकानां भवन्तीति, पञ्चकसंयोगे तु दशानां पञ्चधात्वे चत्वारः एककाः षट्कश्चेत्यादयः षड्विंशत्युत्तर-शतसङ्ख्या विकल्पा भवन्ति तैश्च सप्तपदपञ्चकसंयोगैक-विंशतेर्गुणने षड्विंशतिः शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि भङ्गकानां भवन्तीति, षट्कसंयोगे तु दशानां षोढात्वे पञ्चैककाः पञ्चकश्चेत्यादयः षड्विंशत्युत्तरशतसङ्ख्या विकल्पा भवन्ति, तैश्च सप्तपदषट्कसंयोगसप्तकस्य गुणनेऽष्टौ शतानि द्व्यशीत्यधिकानि भङ्गकानां भवन्तीति, सप्तकसंयोगे तु दशानां सप्तधात्वे षडेककाश्चतुष्क-श्चेत्येवमादयश्चतुरशीतिर्विकल्पाः, तैश्चैकस्य सप्तक-संयोगस्य गुणने चतुरशीतिरेव भङ्गकानां भवन्ति, सर्वेषां चैषां मीलनेऽष्ट सहस्राणि अष्टोत्तराणि विकल्पानां भवन्तीति॥

९/९८. 'संखेज्जा भंते!' इत्यादि, तत्र सङ्ख्याता एकादशादयः शीर्षप्रहेलिकान्ताः, इहाप्येकत्वे सप्तैव द्विकसंयोगे तु सङ्ख्यातानां द्विधात्वे एकः सङ्ख्याताश्चेत्यादयो दश सङ्ख्याताः सङ्ख्याताश्चेत्येतदन्ता एकादश विकल्पाः, एते चोपरितन-पृथिव्यामेकादीनामेकादशानां पदानामुच्चारणे अधस्तनपृथिव्यां तु सङ्ख्यातपदस्यैवोच्चारणे सत्यवसेयाः, ये त्वन्ये उपरितन-पृथिव्यां सङ्ख्यातपदस्याधस्तनपृथिव्यां त्वेककादीनामेका-दशानां पदानामुच्चारणे लभ्यन्ते ते इह न विवक्षिताः, पूर्वसूत्रक्रमाश्रयणात्, पूर्वसूत्रेषु हि दशादिराशीनां द्वैविध्यकल्प-नायामुपर्येकादयो लघवः सङ्ख्याभेदाः पूर्वं न्यस्ता अधस्तु नवादयो महान्तः एवमिहाप्येकादय उपरि सङ्ख्यातराशिश्चाधः, तत्र च सङ्ख्यातराशेरधस्तनस्यैकाद्याकर्षणेऽपि सङ्ख्यातत्व-मवस्थितमेव प्रचुरत्वात्, न पुनः पूर्वसूत्रेषु नवादीनामि-वैकादितया तस्यावस्थानमित्यतो नेहाध एकादिभावः, अपि तु सङ्ख्यातसम्भव एवेति नाधिकविकल्पविवक्षेति, तत्र रत्नप्रभा एकादिभिः सङ्ख्यानान्तैरेकादशभिः पदैः क्रमेण विशेषिता सङ्ख्यातपदविशेषिताभिः शेषाभिः सह क्रमेण चारिता षट्षष्टिर्भङ्गकाल्लभते एवमेव शर्क्करप्रभा पञ्चपञ्चाशतं वालुकाप्रभा चतुश्चत्वारिंशतं पङ्कप्रभा त्रयस्त्रिंशतं धूमप्रभा द्वाविंशते तमःप्रभा त्वेकादशेति, एवं च द्विकसंयोगविकल्पानां शतद्वयमेकत्रिंशदधिकं भवति, त्रिकयोगे तु विकल्पपरिमाण-मात्रमेव दर्श्यते—रत्नप्रभा शर्क्करप्रभा वालुकाप्रभा चेति प्रथमस्त्रिकयोगः, तत्र चैक एकः सङ्ख्याताश्चेति प्रथम-विकल्पस्ततः प्रथमायामेकस्मिन्नेव तृतीयायां सङ्ख्यातण्ड एव स्थिते द्वितीयायां क्रमेणाक्षविन्यासे च द्व्याद्यक्षभावेन दशमचारे सङ्ख्यातपदं भवति, एवमेते पूर्वेण सहैकादश, ततो द्वितीयायां तृतीयायां च सङ्ख्यातपद एव स्थिते प्रथमायां तथैव द्व्याद्यक्षभावेन दशमचारे सङ्ख्यातपदं भवति, एवं चैते दश, समाप्यते चेतोऽक्षविन्यासोऽन्त्यपदस्य प्राप्तत्वात्, एवं चैते सर्वेऽप्येकत्र त्रिकसंयोगे एकविंशतिः, अनया च पञ्चत्रिंशतः सप्तपदत्रिकसंयोगानां गुणने सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि भवन्ति, चतुष्कसंयोगेषु पुनराद्याभिश्चतसृभिः प्रथम-श्चतुष्कसंयोगः, तत्र चाद्यासु तिसृष्वेकैकचतुर्थ्यां तु सङ्ख्याता इत्येको विकल्पस्ततः पूर्वोक्तक्रमेण तृतीयायां दशमचारे सङ्ख्यातपदं, एवं द्वितीयायां प्रथमायां च, तत एते सर्वेऽप्येकत्र चतुष्कयोगे एकत्रिंशत्, अनया च सप्तपदचतुष्कसंयोगानां पञ्चत्रिंशतो गुणने सहस्रं पञ्चाशीत्यधिकं भवति, पञ्चकसंयोगेषु त्वाद्याभिः पञ्चभिः प्रथमः पञ्चकयोगः, तत्र चाद्यासु चतसृष्वेकैकः पञ्चम्यां तु सङ्ख्याता इत्येको विकल्पः ततः पूर्वोक्तक्रमेण चतुर्थ्यां दशमचारे सङ्ख्यातपदं, एवं शेषास्वपि, तत एते सर्वेऽप्येकत्र पञ्चकयोगे एकचत्वारिंशत्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्याश्च प्रत्येकं सप्तपदपञ्चकसंयोगानामेकविंशतेर्लाभादष्ट शतानि एकषष्ट्यधिकानि भवन्ति, षट्कसंयोगेषु तु पूर्वोक्तक्रमेणैकत्र षट्कसंयोगे एकपञ्चाशद्विकल्पा भवन्ति, अस्याश्च प्रत्येकं सप्तपदषट्कयोगे सप्तकलाभात्त्रीणि शतानि सप्तपञ्चाशदधिकानि भवन्ति, सप्तकसंयोगे तु पूर्वोक्तभावनयैकषष्टिर्विकल्पा भवन्ति, सर्वेषां चैषां मीलने त्रयस्त्रिंशच्छतानि सप्तत्रिंशदधिकानि भवन्ति॥

९/९९. 'असंखेज्जा भंते!' इत्यादि सङ्ख्यातप्रवेशनकवदेवैतदसङ्ख्यातप्रवेशनकं वाच्यं, नवरमिहासङ्ख्यातपदं द्वादशमधीयते, तत्र चैकत्वे सप्तैव, द्विकसंयोगादौ तु विकल्पप्रमाणवृद्धिर्भवति, सा चैवं–द्विकसंयोगे द्वे शते द्विपञ्चाशदधिके २५२, त्रिकसंयोगेऽष्टौ शतानि पञ्चोत्तराणि ८०५, चतुष्कसंयोगे त्वेकादश शतानि नवत्यधिकानि ११९०, पञ्चकसंयोगे पुनर्नव शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि ९४५, षट्कसंयोगे तु त्रीणि शतानि द्विनवत्यधिकानि ३९२, सप्तकसंयोगे पुनः सप्तषष्टिः, एतेषां च सर्वेषां मीलने षट्त्रिंशतच्छतानि अष्टपञ्चाशदधिकानि भवन्तीति॥

अथ प्रकारान्तरेण नारकप्रवेशनकमेवाह–

९/१००. 'उक्कोसेणं' मित्यादि, उत्कर्षा–उत्कृष्टपदिनो येनोत्कर्षत उत्पद्यन्ते 'ते सव्वे वि' त्ति ये उत्कृष्टपदिनस्ते सर्वेऽपि रत्नप्रभायां भवेयुः तद्गामिनां तत्स्थानानां च बहुत्वात्, इह प्रक्रमे द्विकयोगे षड् भङ्गकास्त्रिकयोगे पञ्चदश चतुष्क-संयोगे विंशतिः पञ्चकसंयोगे पञ्चदश षड्योगे षट् सप्तकयोगे त्वेक इति॥

९/१०१. अथ रत्नप्रभादिष्वेव नारकप्रवेशनकस्याल्पत्वादिनिरूपणायाह–'एयस्स ण' मित्यादि, तत्र सर्वस्तोकं सप्तमपृथिवीनारकप्रवेशनकं, तद्गामिनां शेषापेक्षया स्तोकत्वात्, ततः षष्ठ्यामसङ्ख्यातगुणं, तद्गामिनामसङ्ख्यातगुणत्वात्, एवमुत्तरत्रापि॥

अथ तिर्यग्योनिकप्रवेशनकप्ररूपणायाह–

९/१०२-१०३. 'तिरिक्खे' त्यादि, इहैकस्तिर्यग्योनिक एकेन्द्रियेषु भवेदित्युक्तं, तत्र च यद्यप्येकेन्द्रियेष्वेकः कदाचिदप्युत्पद्यमानो न लभ्यतेऽनन्तानामेव तत्र प्रतिसमयमुत्पत्तेस्तथाऽपि देवादिभ्य उद्वृत्य यस्तत्रोत्पद्यते तदपेक्षयैकोऽपि लभ्यते, एतदेव च प्रवेशनकमुच्यते यद्विजातीयेभ्य आगत्य विजातीयेषु प्रविशति सजातीयस्तु सजातीयेषु प्रविष्ट एवेति किं तत्र प्रवेशनकमिति, तत्र चैकस्य क्रमेणैकेन्द्रियादिषु पञ्चसु पदेषूत्पादे पञ्च विकल्पाः॥

९/१०४. द्वयोरप्येकैकस्मिन्नुत्पादे पञ्चैव, द्विकयोगे तु दश, एतदेव सूचयता 'अहवा एगे एगिंदिएसु' इत्याद्युक्तम्। अथ सङ्ग्रहपार्थं व्यादीनामसङ्ख्यातपर्यन्तानां तिर्यग्योनिकानां प्रवेशनकमतिदेशेन दर्शयन्नाह–'एवं जहे' त्यादि, नारकप्रवेशनकसमानमिदं सर्वं, परं तत्र सप्तसु पृथिवीष्वेकादयो नारका उत्पादिताः तिर्यञ्चस्तु तथैव पञ्चसु स्थानेषूत्पादनीयाः, ततो विकल्पनानात्वं भवति, तच्चाभियुक्तेन पूर्वोक्तन्यायेन स्वयमवगन्तव्यमिति, इह चानन्तानामेकेन्द्रियाणामुत्पादेऽप्यनन्तपदं नास्ति प्रवेशनकस्योक्तलक्षणस्यासङ्ख्यातानामेव लाभादिति॥

९/१०५. 'सव्वेवि ताव एगिंदिएसु होज्ज' त्ति एकेन्द्रियाणामतिबहूनामनुसमयमुत्पादात्, 'दुयासंजोगो' इत्यादि, इह प्रक्रमे द्विकसंयोगश्चतुर्द्धा त्रिकसंयोगः षोढा चतुष्कसंयोगश्चतुर्द्धा पञ्चकसंयोगस्त्वेक एवेति॥

९/१०६. 'सव्व थोवा पंचिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए' त्ति पञ्चेन्द्रियजीवानां स्तोकत्वादिति, ततश्चतुरिन्द्रियादिप्रवेशनकानि परस्परेण विशेषाधिकानीति॥

९/१०७-१०९. मनुष्यप्रवेशनकं देवप्रवेशनकं च सुगमं, तथाऽपि किञ्चिल्लिख्यते–मनुष्याणां स्थानकद्वये संमूर्च्छिमगर्भजलक्षणे प्रविशतीति द्वयमाश्रित्यैकादिसङ्ख्यातान्तेषु पूर्ववद्विकल्पाः कार्याः, तत्र चातिदेशानामन्तिमं सङ्ख्यातपदमिति तद्विकल्पान् साक्षाद्दर्शयन्नाह–

९/११०,१११. 'संखेज्जे' त्यादि, इह द्विकयोगे पूर्ववदेकादश विकल्पाः, असंङ्ख्यातपदे तु पूर्वं द्वादश विकल्पा उक्ता इह पुनरेकादशैव, यतो यदि संमूर्च्छिमेषु गर्भजेषु चासङ्ख्यातत्वं स्यात्तदा द्वादशोऽपि विकल्पो भवेत्, न चैवं, इह गर्भजमनुष्याणां स्वरूपोऽप्यसङ्ख्यातानामभावेन तत्प्रवेशनकेऽसङ्ख्यातासम्भवाद्, अतोऽसङ्ख्यातपदेऽपि विकल्पैकादशकदर्शनायाह–'असंखेज्जा' इत्यादि।

९/१२,१३. 'उक्कोसा भंते' इत्यादि, 'सव्वेवि ताव संमुच्छिममणुस्सेसु होज्ज' त्ति संमूर्च्छिमानामसङ्ख्यातानां भावेन प्रविशतामप्यसङ्ख्यातानां सम्भवस्ततश्च मनुष्यप्रवेशनकं प्रत्युत्कृष्टपदिनस्तेषु सर्वेऽपि भवन्तीति, अत एव संमूर्च्छिममनुष्यप्रवेशनकमितरापेक्षयाऽसङ्ख्यातगुणमवगन्तव्यमिति।

९/११७. देवप्रवेशनके 'सव्वेवि ताव जोइसिएसु होज्ज' त्ति ज्योतिष्कगामिनो बहव इति तेषूत्कृष्टपदिनो देवप्रवेशनकवन्तः सर्वेऽपि भवन्तीति।

९/११८. 'सव्वत्थोवे वेमाणियदेवप्पवेसणए' त्ति तद्गामिनां तत्स्थानानां चाल्पत्वादिति॥

९/११९. अथ नारकादिप्रवेशनकस्यैवाल्पत्वादि निरूपयन्नाह–'एयस्स ण' मित्यादि, तत्र सर्वस्तोकं मनुष्यप्रवेशनकं, मनुष्यक्षेत्र एव तस्य भावात्, तस्य च स्तोकत्वात् नैरयिकप्रवेशनकं त्वसङ्ख्यातगुणं, तद्गामिनामसङ्ख्यातगुणत्वात्, एवमुत्तरत्रापीति॥

अनन्तरं प्रवेशनकमुक्तं तत्पुनरुत्पादोद्वर्त्तनारूपमिति नारकादीना-मुत्पादमुद्वर्त्तनां च सान्तरनिरन्तरतया निरूपयन्नाह–

९/१२०. 'संतरं भंते!' इत्यादि, अथ नारकादीनामुत्पादादेः सान्तरादित्वं प्रवेशनकात्पूर्वं निरूपितमेवेति किं पुनस्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्निरूप्यते? इति, अत्रोच्यते, पूर्वं नारकादीनां प्रत्येकमुत्पादस्य सान्तरत्वादि निरूपितं, ततश्च तथैवोद्वर्त्तनायाः, इह तु पुनर्नारकादिसर्वजीवभेदानां समुदायतः समुदितयोरेव चोत्पादोद्वर्त्तनयोस्तन्निरूप्यत इति॥

९/१२१. अथ नारकादीनामेव प्रकारान्तरेणोत्पादोद्वर्त्तने निरूपयन्नाह–'सओ भंते'! इत्यादि, तत्र च 'सओ नेरइया उववज्जंति' त्ति 'सन्तः' विद्यमाना द्रव्यार्थतया, नहि सर्वथैवासत् किञ्चिदुत्पद्यते, असत्त्वादेव खरविषाणवत्, सत्त्वं च तेषां जीवद्रव्यापेक्षया नारकपर्यायापेक्षया वा, तथाहि–भाविनारकपर्यायापेक्षया द्रव्यतो नारकाः सन्तो नारका उत्पद्यन्ते, नारकायुष्कोदयाद्वा भावनारका एव नारकत्वेनोत्पद्यन्त इति। अथवा 'सओ' त्ति विभक्तिपरिणामात् सत्सु प्रागुत्पन्नेष्वन्येषु समुत्पद्यन्ते नासत्सु, लोकस्य शाश्वतत्वेन नारकादीनां सर्वदैव सद्भावादिति॥

९/१२२. 'से णूणं भंते! गंगेया' इत्यादि, अनेन च तत्सिद्धान्तेनैव स्वमतं पोषितं, यतः पार्श्वेनार्हता शाश्वतो लोक उक्तोऽतो लोकस्य शाश्वतत्वात्सन्त एव सत्स्वेव वा नारकादय उत्पद्यन्ते च्यवन्ते चेति साध्वेवोच्यत इति॥

अथ गाङ्गेयो भगवतोऽतिशयिनीं ज्ञानसम्पदं सम्भावयन् विकल्पयन्नाह–

९/१२३-१२४. 'सयं भंते!' इत्यादि, स्वयमात्मना लिङ्गानपेक्षमित्यर्थः 'एवं' ति वक्ष्यमाणप्रकारं वस्तु 'असयं' ति अस्वयं परतो लिङ्गत इत्यर्थः, तथा 'असोच्च' त्ति अश्रुत्वाऽऽगमानपेक्षम् 'एतेवं' ति एतदेवमित्यर्थः 'सोच्च' त्ति पुरुषान्तरवचनं श्रुत्वाऽऽगमत इत्यर्थः 'सयं एतेवं जाणामि' त्ति स्वयमेतदेवं जानामि, पारमार्थिकप्रत्यक्षसाक्षात्कृतसमस्तवस्तुस्तोमस्वभावत्वान्मम।

९/१२५. 'सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति' त्ति स्वयमेव नारका उत्पद्यन्ते नास्वयं–नेश्वरपारतन्त्र्यादेः, यथा कैश्चिदुच्यते–

'अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥१॥'

इति, ईश्वरस्य हि कालादिकारणकलापव्यतिरिक्तस्य युक्तिभिर्विचार्यमाणस्याघटनादिति।

९/१२६. 'कम्मोदएणं' ति कर्म्मणामुदितत्वेन, न च कर्म्मोदयमात्रेण नारकेषूत्पद्यन्ते, केवलिनामपि तस्य भावाद् अत आह–'कम्मगुरुयत्ताए' त्ति कर्म्मणां गुरुकता कर्म्मगुरुकता तया 'कम्मभारियत्ताए' त्ति भारोऽस्ति येषां तानि भारिकाणि तद्भावो भारिकता कर्म्मणां भारिकता कर्म्मभारिकता तया चेत्यर्थः, तथा महदपि किञ्चिदल्पभारं दृष्टं तथाविधभारमपि च किञ्चिदमहदित्यत आह–'कम्मगुरुसंभारियत्ताए' त्ति गुरोः सम्भारिकस्य च भावो गुरुसम्भारिकता, गुरुता सम्भारिकता चेत्यर्थः, कर्म्मणां गुरुसम्भारिकता कर्म्मगुरुसम्भारिकता तया, अतिप्रकर्षावस्थयेत्यर्थः, एतच्च त्रयं शुभकर्म्मापेक्षयाऽपि स्यादत आह–'असुभाण' मित्यादि, उदयः प्रदेशतोऽपि स्यादत आह–'विवागेणं' ति विपाको यथाबद्धरसानुभूतिः, स च मन्दोऽपि स्यादत आह–'फलविवागेणं' ति फलस्येवालाबुकादेर्विपाको–विपच्यमानता रसप्रकर्षावस्था फलविपाकस्तेन।

९/१२८. असुरकुमारसूत्रे 'कम्मोदएणं' ति असुरकुमारोचितकर्म्मणामुदयेन, वाचनान्तरेषु 'कम्मोवसमेणं' ति दृश्यते, तत्र चाशुभकर्म्मणामुपशमेन सामान्यतः 'कम्मविगईए' त्ति कर्म्मणामशुभानां विगत्या–विगमेन स्थितिमाश्रित्य 'कम्मविसोहीए' त्ति रसमाश्रित्य 'कम्मविसुद्धीए' त्ति प्रदेशापेक्षया, एकार्था वैते शब्दा इति॥

९/१३०. पृथ्वीकायिकसूत्रे 'सुभासुभाणं' ति शुभानां शुभवर्णगन्धादीनाम् अशुभानां तेषामेकेन्द्रियजात्यादीनां च।

९/१३३. 'तप्पभिइं च' त्ति यस्मिन् समयेऽनन्तरोक्तं वस्तु भगवता प्रतिपादितं ज्ञानस्य तत्तथा, चशब्दः पुनरर्थे समुच्चये वा 'से' त्ति असौ 'पच्चभिजाणइ' त्ति प्रत्यभिजानाति स्म, किं कृत्वा? इत्याह–सर्वज्ञं सर्वदर्शिनं, जातप्रत्ययत्वादिति॥

नवमशते द्वात्रिंशत्तमोद्देशकः॥९।३२॥(ग्रन्थाग्रम् १००००)

त्रयस्त्रिंशत्तम उद्देशकः

गाङ्गेयो भगवदुपासनातः सिद्धः अन्यस्तु कर्मवशाद्विपर्ययमप्यवाप्नोति यथा जमालिरित्येतद्दर्शनाय त्रयस्त्रिंशत्तमोद्देशकः, तस्य चेदं प्रस्तावनासूत्रम्–

९/१३७. 'तेणं कालेणं' मित्यादि, 'अड्ढे' त्ति समृद्धः दित्ते' त्ति दीप्तः–तेजस्वी दृप्तो वा–दर्पवान् 'वित्ते' त्ति प्रसिद्धः, यावत्करणात् 'विच्छिन्नविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे' इत्यादि दृश्यं।

९/१३९. 'हियाए' त्ति हिताय पथ्यान्नवत् 'सुहाए' त्ति सुखाय शर्म्मणे 'खमाए' त्ति क्षमत्वाय सङ्गतत्वायेत्यर्थः 'आणुगामियत्ताए' त्ति अनुगामिकत्वाय शुभानुबन्धायेत्यर्थः

९/१४०. 'हट्ठ' इह यावत्करणादेवं दृश्यं–'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया' हृष्टतुष्टम्–अत्यर्थं तुष्टं हृष्टं वा–विस्मितं तुष्टं–तोषवच्चित्तं यत्र तत्तथा, तद्यथा भवत्येवमानंदिता–र्षोन्मुखसौम्यतादिभावैः समृद्धिमुपगता, ततश्च नन्दिता–स्मृतितरतामुपगता 'पीइमणा' प्रीतिः–प्रीणनं–आप्यायनं मनसि यस्याः सा प्रीतिमनाः 'परमसोमणस्सिया' परमसौमनस्यं–सुष्ठुसुमनस्कता सञ्जातं यस्याः सा परमसौमनस्यिता 'हरिसवसविसप्पमाणहियया, हर्षवशेन विसर्प्पद्–विस्तारयायि हृदयं यस्याः सा तथा।

९/१४१. 'लहुकरणजुत्तजोइए' इत्यादि, लघुकरणं शीघ्रक्रियादक्षत्वं तेन युक्तौ यौगिकौ च–प्रशस्तयोगवन्तौ प्रशस्तसदृशरूपत्वाद्यौ तौ तथा, समाः खुराश्च–प्रतीताः 'वालिहाण' त्ति वालधाने–पुच्छौ ययोस्तौ तथा, समानि लिखितानि उल्लिखितानि शृङ्गाणि ययोस्तौ तथा, ततः कर्मधारयोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्ताभ्यां लघुकरणयुक्तयौगिकसमखुरवालिधानसमलिखित-शृङ्गकाभ्यां, गोयुवाभ्यां युक्तमेव यानप्रवरमुपस्थापयतेति सम्बन्धः, पुनः किंभूताभ्याम्? इत्याह–जाम्बूनदमयौ सुवर्णनिर्वृत्तौ यौ कलापौकण्ठाभरणविशेषौ ताभ्यां युक्तौ प्रतिविशिष्टकौ च–प्रधानौ जवादिभिर्यौ तौ तथा ताभ्यां जाम्बूनदमयकलापयुक्तप्रतिविशिष्टकाभ्यां रजतमय्यौ–रूप्य-विकारौ घण्टे ययोस्तौ तथा, सूत्ररज्जुके–कार्प्पासिकसूत्र-दवरकमय्यौ वरकाञ्चने–प्रवरसुवर्णमण्डितत्वेन प्रधानसुवर्णे ये नस्ते–नासिकारज्जू तयोः प्रग्रहेण–रश्मिनाऽवगृहीतकौ–बद्धौ यौ तौ तथा ततः कर्मधारयोऽतस्ताभ्यां रजतमयघण्टसूत्र-रज्जुकवरकाञ्चननस्ताप्रग्रहावगृहीतकाभ्यां, नीलोत्पलैः–जल-जविशेषैः कृतो–विहितः 'आमेल' त्ति आपीडः–शेखरो ययोस्तौ तथा ताभ्यां नीलोत्पलकृतापीडकाभ्यां 'पवरगोजुवाणएहिं' ति प्रवरगोयुवाभ्यां नानामणिरत्नानां सत्कं यद् घण्टिकाप्रधानं जालं–जालकं तेन परिगतं–परिक्षिप्तं यत्तत्था, सुजातं–सुजात-दारुमयं यद् युगं–यूपस्तत् सुजातयुगं तच्च योक्त्ररज्जुकायुगं च–योक्त्राभिधानरज्जुकायुग्मं सुजातयुगयोक्त्ररज्जुकायुगे ते प्रशस्ते–अतिशुभे सुविरचिते–सुघटिते निर्मिते–निवेशिते यत्र यत् सुजातयुगयोक्त्ररज्जुकायुगप्रशस्तसुविरचितनिर्मितम्।

९/१४२. 'एव' मित्यादि, एवं स्वामिन्! तथेत्याज्ञया इत्येवं ब्रुवाणा इत्यर्थः 'विनयेन' अञ्जलिकरणादिना॥

९/१४४. 'तए णं सा देवाणंदा माहणी' त्यादि, इह च स्थाने वाचनान्तरे देवानन्दावर्णकः एवं दृश्यते–'अंतो अंतेउरंसि ण्हाया' 'अन्तः' मध्येऽन्तःपुरस्य स्नाता, अनेन च कुलीनाः स्त्रियः प्रच्छन्नाः स्नान्तीति दर्शितं, 'कयबलिकम्मा' गृहदेवताः प्रतीत्य 'कयकोउयमंगलपायच्छित्ता' कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तान्यवश्यंकार्यत्वान् यया सा तथा, तत्र कौतुकानि–मषीतिलकादीनि मङ्गलानि–सिद्धार्थकदूर्वादीनि। किञ्च' त्ति किञ्चान्यद् 'वरपादपत्तनेउरमणिमेहलाहारविरइयउचियकडग-खुड्डुयएगावलीकंठसुत्तउरत्थगेवेज्जजोणिसुत्तगाणामणि-रयणभूसणविराइयंगी' वराभ्यां पादप्राप्तनूपुराभ्यां मणिमेखलया हारेण विरचितै रतिदैर्वा उचितैः–युक्तैः कटकैश्च 'खुड्डाग' त्ति अङ्गुलीयकैश्च एकावल्या च–विचित्रमणिकमय्या कण्ठसूत्रेण च–उरःस्थेन च रूढिगम्येन ग्रैवेयकेण च–प्रतीतेन उरःस्थ-ग्रैवेयकेण वा श्रोणिसूत्रकेण च–कटीसूत्रेण नानामणिरत्नानां भूषणैश्च विराजितमङ्गं–शरीरं यस्याः सा तथा, 'चीणंसुय-वत्थपवरपरिहिया' चीनांशुकं नाम यद्वस्त्राणां मध्ये प्रवरं तत्परिहितं–निवसनीकृतं यया सा तथा 'दुगुल्लसुकुमाल-उत्तरिज्जा' दुकूलः–वृक्षविशेषस्तद्वल्काज्जातं दुकूलं–वस्त्र-विशेषस्तत् सुकुमारमुत्तरीयम्–उपरिकायाच्छादनं यस्याः सा तथा 'सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरया' सर्व्वर्तुकसुरभि-कुसुमैर्वृता–वेष्टिताः शिरोजा यस्याः सा तथा 'वरचंदणचंदिया' वरचन्दनं चन्दितं–ललाटे निवेशितं यया सा तथा 'वराभरणभूसियंगी' ति व्यक्तं 'कालागुरुधूवधूविया' इत्यपि व्यक्तं 'सिरीसमाणवेसा' श्रीः–देवता तया समानवेषत्वात्, इतः प्रकृतवाचनाऽनुश्रियते–'खुज्जाहिं' ति कुब्जिकाभिर्वक्र-जङ्घाभिरित्यर्थः 'चिलाइयाहिं' ति चिलातदेशोत्पन्नाभिः, यावत्करणादिदं दृश्यं–'वामणियाहिं' ह्रस्वशरीराभिः 'वडहियाहिं' मडहकोष्ठाभिः 'बब्बरियाहिं पउसियाहिं ईसिगणियाहिं वासगणियाहिं जोणियाहिं पल्हवियाहिं लहासियाहिं लउसियाहिं आरबीहिं दमिलाहिं सिंहलीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं नाणादेसविदेसपरिपिंडियाहिं' नानादेशेभ्यो–बहुविधजनपदेभ्यो विदेशे–तद्देशापेक्षया देशान्तरे परिपिण्डिता यास्तास्तथा 'सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं' स्वदेशनेपथ्यमिव गृहीतो वेषो यकाभिस्तास्तथा ताभिः 'इंगियचिंतियपत्थियवियाणियाहिं' इङ्गितेन–नयनादिचेष्टया चिन्तितं च परेण प्रार्थितं च–अभिलषितं विजानन्ति यास्तास्तथा ताभिः 'कुसलाहिं विणीयाहिं' युक्ता इति गम्यते 'चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकंचुइज्जमहत्तरयवंदपरिक्खित्ता' चेटीचक्रवालेनार्था-त्स्वदेशसम्भवेन वर्षधराणां–वर्धितककरणेन नपुंसकीकृतानां-मन्तःपुरमहल्लकानां 'थेरकंचुइज्ज' त्ति स्थविरकञ्चुकिनां अन्तःपुरप्रयोजननिवेदकानां प्रतीहाराणां वा महत्तरकाणां च–अन्तःपुरकार्यचिन्तकानां वृन्देन परिक्षिप्ता या सा तथा, इदं च सर्वं वाचनान्तरे साक्षादेवास्ति।

९/१४६. 'सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए' त्ति पुष्पताम्बूलादि-द्रव्याणां व्युत्सर्जनया त्यागेनेत्यर्थः 'अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए' त्ति वस्त्रादीनामत्यागेनेत्यर्थः 'मणस्स एगत्तीभावकरणेणं' अनेकस्य सत एकतालक्षणभावकरणेन 'ठिय चेव' त्ति ऊर्ध्वस्थानस्थितैव अनुपविष्टेत्यर्थः।

९/१४७. 'आगयपण्हय' त्ति 'आयातप्रस्नवा' पुत्रस्नेहा-दागतस्तन-मुखस्तन्येत्यर्थः 'पप्फुयलोयणा' प्रफुल्लितलोचना पुत्रदर्शनात् प्रवर्त्तितानन्दजलेन 'संवरियवलयबाहा' संवृतौ–हर्षातिरेकादति-स्थूरीभवन्तौ निषिद्धौ वलयैः–कटकैर्बाहू–भुजौ यस्याः सा तथा 'कंचुयपरिक्खित्तिया' कञ्चुको–वारवाणः परिक्षिप्तोविस्तारितो हर्षातिरेकस्थूरीभूतशरीरतया यया सा तथा 'धाराहय-कयंबगंपिव समूसवियरोमकूवा' मेघधाराभ्याहतकदम्ब-पुष्पमिव समुच्छ्वसितानि रोमाणि कूपेषु–रोमरन्ध्रेषु यस्याः सा तथा 'देहमाणी' ति प्रेक्षमाणा, आभीक्ष्ण्ये चात्र द्विरुक्तिः॥

९/१४८. 'भंते त्ति भदन्त! इत्येवमामन्त्रणवचसाऽऽमन्त्र्येत्यर्थः 'गोयमाइ' त्ति गौतम इति एवमामन्त्र्येत्यर्थः अथवा गौतम इति नामोच्चारणम् 'अयी' ति आमन्त्रणार्थो निपातः हे भो इत्यादिवत् 'अत्तए' त्ति आत्मजः–पुत्र पुव्वपुत्तसिणेहाणुराएणं' ति पूर्वः–प्रथमगर्भाधानकालसम्भवो यः पुत्रस्नेहलक्षणो-ऽनुरागः स पूर्वपुत्रस्नेहानुरागस्तेन।

९/१४९. 'महतिमहालियाए' त्ति महती चासावतिमहती चेति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महातिमहती तत्र्चे, आलप्रत्ययश्चेह प्राकृतप्रभवः, 'इसिपरिसाए' त्ति पश्यन्तीति ऋषयो–ज्ञानिनस्तद्रूपा पर्षत्–परिवार ऋषिपर्षत्तस्यै, यावत्करणादिदं दृश्यं–'मुणिपरिसाए जइपरिसाए अणगारपरिसाए अणेगसयविंदपरिवाराए' इत्यादि, तत्र मुनयो–वाचंयमाः, यतयस्तु–धर्मक्रियासु प्रयतमानाः अनेकानि शतानि यस्याः सा तथा तस्यै अनेकशतप्रमाणानि वृन्दानि–परिवारो यस्याः सा तथा तस्यै॥

९/१५४. 'तए णं सा अज्जचंदणा अज्जे' त्यादि, इह च देवानन्दाया भगवता प्रव्राजनकरणेऽपि यदार्यचन्दनया पुनस्तत्करणं तत्तत्रैवानवगतावगमकरणादिना विशेषाधानमित्यवगन्तव्यमिति। 'तमाणाए' त्ति तदाज्ञया– आर्यचन्दनाज्ञया॥

९/१५६. 'फुट्टमाणेहिं' ति अतिरभसाऽऽस्फालनात्स्फुटद्भिरिव विदलद्भिरिवेत्यर्थः 'मुइंगमत्थएहिं' ति मृदङ्गानां–मर्दलानां मस्तकानीव मस्तकानि–उपरिभागाः पुटानीत्यर्थः मृदङ्गमस्तकानि 'बत्तीसतिबद्धेहिं' ति द्वात्रिंशताऽभि-नेतव्यप्रकारैः पात्रैरित्येके बद्धानि द्वात्रिंशद्बद्धानि तैः 'उवनच्चिज्जमाणे' त्ति उपनृत्यमानः तमुपश्रित्य नर्त्तनात् 'उवगिज्जमाणे' त्ति तद्गुणगानात् 'उवलालिज्जमाणे' त्ति उपलाल्यमान ईप्सितार्थसम्पादनात् 'पाउसे' त्यादि, तत्र प्रावृट् श्रावणादिः वर्षारात्रोऽश्वयुजादि शरत् मार्गशीर्षादिः हेमन्तो माघादिः वसन्तः चैत्रादिः ग्रीष्मो ज्येष्ठादिः ततश्च प्रावृट् च वर्षारात्रश्च शरच्च हेमन्तश्च वसन्तश्चेति प्रावृड्वर्षारात्रशरद्धेमन्तवसन्तास्ते च ते ग्रीष्मपर्यन्ताश्चेति कर्म्मधारयोऽतस्तान् षडपि 'ऋतून्' कालविशेषान् 'माणमाणे' त्ति मानयन् तदनुभावमनुभवन् 'गालेमाणे' त्ति 'गालयन्' अतिवाहयन्॥

९/१५७. 'सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'चउम्मुहमहापहपहेसु' त्ति, 'बहुजणसद्देइ व' त्ति यत्र शृङ्गाटकादौ बहूनां जनानां शब्दस्तत्र बहुजनोऽन्योऽन्यस्यैवमाख्यातीति वाक्यार्थः, तत्र च बहुजनशब्दः परस्परालापादिरूपः, इतिशब्दो वाक्यालङ्कारे वाशब्दो विकल्पे, 'जहा उववाइए' त्ति तत्र चेदं सूत्रमेवं लेशतः–'जणवूहेइ वा जणबोलेइ वा जणकलकलेति वा जणुम्मीइ वा जणुक्कलियाइ वा जणसन्निवाएइ वा बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ' त्ति, अस्यायमर्थः–'जनव्यूहः' जनसमुदायः बोलः–अव्यक्तवर्णो ध्वनिः कलकलः–स एवोपलभ्यमानवचनविभागः ऊर्म्मिः–सम्बाधः उत्कलिका–लघुतरः समुदायः संनिपातः–अपरापरस्थानेभ्यो जनानामेकत्र मीलनं आख्याति सामान्यतः भाषते व्यक्तपर्यायवचनतः, एतदेवार्थद्वयं पर्यायतः क्रमेणाह–एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयतीति, 'अहपडिरूवं' इह यावत्करणादिदं दृश्यम् उग्गहं–ओगिण्हति ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे' त्ति, 'जहा उववाइए' त्ति, तदेव लेशतो दर्श्यते–'नामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमणवंदणणमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए एगस्सवि आयरियस्स सुवयणस्स सवणयाए? किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं ३ वंदामो ४ एयं णे पेच्च भवे हियाए ५ भविस्सइ त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता एवं भोगा राइन्ना खत्तिया भडा जोहपसत्थारो अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कारवत्तियं (सम्माणवत्तियं) कोउहल्लवत्तियं अप्पेगतिया जीयमेयं ति कट्टु ण्हाया कयबलिकम्मा' इत्यादि 'एवं जहा उववाइए' तत्र चैतदेवं सूत्रं–'तेणामेव उवागच्छंति तेणामेव उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्थयरातिसए पासंति जाणवाहणाइं ठाइंति' इत्यादि॥

९/१५८. 'अयमेयारूवे' त्ति अयमेतद्रूपो वक्ष्यमाण-स्वरूपः 'अज्झत्थिए' त्ति आध्यात्मिकः–आत्माश्रितः, यावत्करणादिदं दृश्यं–'चिंतिए' त्ति स्मरणरूपः 'पत्थिए' त्ति प्रार्थितः–लब्धुं प्रार्थितः 'मणोगए' त्ति अबहिःप्रकाशितः 'संकप्पे' त्ति विकल्पः 'इंदमहेइ व' त्ति इन्द्रमहः–इन्द्रोत्सवः 'खंदमहेइ व' त्ति स्कन्दमहः–कार्त्तिकेयोत्सवः 'मुगुंदमहेइ व' त्ति इह मुकुन्दो वासुदेवो बलदेवो वा 'जहा उववाइए' त्ति तत्र चेदमेवं सूत्रं–'माहणा भडा जोहा मल्लई लेच्छई अन्ने य बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठिसेणावइ' त्ति तत्र 'भटाः' शूराः 'योधाः' सहस्रयोधादयः, मल्लई लेच्छई राजविशेषाः 'राजानः' सामन्ताः 'ईश्वराः' युवराजादयः 'तलवराः' राजवल्लभाः 'माडम्बिकाः' संनिवेशविशेषनायकाः 'कोडुम्बिकाः' कतिपयकुटुम्बनायकाः 'इभ्याः' महाधनाः 'जहा उववाइए' त्ति अनेन चेदं सूचितं–'कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सिरसाकंठेमालाकडा' इत्यादि, शिरसा कंठे च माला कृता–धृता यैस्ते तथा, प्राकृतत्वाच्चैवं निर्देशः, 'आगमणगहियविणिच्छए' त्ति आगमने गृहीतः–कृतो विनिश्चयो–निर्णयो येन स तथा 'जएणं विजएणं वद्धावेइ' त्ति जय त्वं विजयस्व त्वमित्येवमाशीर्वचनेन भगवतः स्वागमनसूचनेन तमानन्देन वर्द्धयतीति भावः। 'अप्पेगतिया वंदणवत्तिअं जाव निग्गच्छंति' इह यावत्करणादिदं दृश्यम्–'अप्पेगइया पूयणवत्तियं एवं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं कोउहल्लवत्तियं असुयाइं सुणिस्सामो सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो अप्पेगइया हयगया एवं गयरहसिवियासंदमाणियागया अप्पेगइया पायविहारचारिणो पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महता उक्कट्ठिसीहणायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूयंपि व करेमाणा खत्तियकुंडग्गामस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं' ति।

९/१६०. 'चाउग्घंटं' ति चतुर्घण्टोपेतम् 'आसरहं' ति अश्ववाह्यरथं 'जुत्तमेव' त्ति युक्तमेव।

९/१६३. 'जहा उववाइए परिसावन्नओ' त्ति यथा कौणिकस्यौपपातिके परिवारवर्णक उक्तः स तथाऽभ्यार्थान्यर्थः, स चायम्–'अणेगगणनायगदंडनायगराईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियमंतिमहामंतिगणगदोवारियअमच्चचेडपीढमद्दनगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगमस्येट्ठिसत्थवाहदूयसंधिवालसद्धिं संपरिवुडे' त्ति, तत्रानेके ये गणनायकाः–प्रकृतिमहत्तराः दण्डनायकाः–तन्त्रपालकाः राजानो–माण्डलिकाः ईश्वरा–युवराजानः तलवराः परितुष्ट-नरपतिप्रदत्तपट्टबन्धविभूषिता राजस्थानीयाः माडम्बिकाः–छिन्नमडम्बाधिपाः कौटुम्बिकाः कतिपयकुटुम्बप्रभवः अवलगकाः सेवकाः मन्त्रिणः–प्रतीताः महामन्त्रिणो–मन्त्रि-मण्डलप्रधानाः हस्तिसाधनोपरिका इति च वृद्धाः गणकाः–गणितज्ञाः भाण्डागारिका इति च वृद्धाः दौवारिकाः प्रतीहाराः अमात्या–राज्याधिष्ठायकाः चेटाः–पादमूलिकाः पीठमर्दाः–आस्थाने आसनार्हासनसेवकाः वयस्या इत्यर्थः नगरं–नगरवासिप्रकृतयः निगमाः–कारणिकाः श्रेष्ठिनः–श्रीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गाः सेनापतयः–सैन्यनायकाः दूताः–अन्येषां राजादेशनिवेदकाः सन्धिपाला–राज्यसन्धिरक्षकाः। एषां द्वन्द्वस्तनस्तैः, इह तृतीया-बहुवचनलोपो द्रष्टव्यः 'सार्द्धं सह, न केवलं सहितत्वमेवापि तु तैः समिति–समन्तात् परिवृतः–परिकरित इति 'चंदणुक्खित्तगायसरीरे' ति चन्दनोपलिप्ताङ्गदेहः इत्यर्थः 'महयाभडचडगरपहकरवंद परिक्खित्ते' त्ति 'महय त्ति महत्ता बृहता प्रकारेणेति गम्यते, भटानां प्राकृतत्वान्महाभटानां वा 'चडगर' त्ति चटकरवन्तो–विस्तरवन्तः 'पहकर' त्ति समूहास्तेषां यद्वृन्दं तेन परिक्षिप्तो यः स तथा 'पुप्फतंबोलाउहमाइयं' ति इहादिशब्दाच्छेखरच्छत्र-चामरादिपरिग्रहः 'आयंते' त्ति शौचार्थं कृतजलस्पर्शः 'चोक्खे' त्ति आचमनादपनीताशुचिद्रव्यः। 'परमसुइब्भूए' त्ति अत एवात्यर्थं शुचीभूतः 'अंजलियमउलियहत्थे' त्ति अञ्जलिना मुकुलमिव कृतौ हस्तौ येन स तथा॥

९/१६२. 'सद्दहामि' त्ति श्रद्दधे सामान्यतः 'पत्तियामि' त्ति उपपत्तिभिः प्रत्येमि प्रीतिविषयं वा करोमि 'रोएमि' त्ति चिकीर्षामि 'अब्भुट्ठेमि' त्ति अभ्युत्तिष्ठामि 'एवमेयं' ति उपलभ्य-मानप्रकारवत् 'तहमेयं' ति आप्तवचनावगतपूर्वाभिमतप्रकारवत् 'अवितहमेयं' ति पूर्वमभिमतप्रकारयुक्तमपि सदन्यदा विगताभिमतप्रकारमपि किञ्चित्स्यादत उच्यते–'अवितथमेतत्' न कालान्तरेऽपि विगताभिमतप्रकारमिति॥

९/१६५. 'अम्म! ताओ' त्ति हे अम्ब! हे मातरित्यर्थः हे तात! हे पितरित्यर्थः 'निसंते' त्ति निशमितः श्रुत इत्यर्थः 'इच्छिए' त्ति इष्टः 'पडिच्छिए' त्ति पुनः पुनरिष्टः भावतो वा प्रतिपन्नः 'अभिरुइए' त्ति स्वादुभावमिवोपगतः।

९/१६६. 'धन्नेऽसि' त्ति धन्यं लब्धा 'असि' भवसि जाय' त्ति हे पुत्र! 'कयत्थेऽसि' त्ति 'कृतार्थः' कृतस्वप्रयोजनोऽपि 'कयलक्खणे' त्ति कृतानि–सार्थकानि लक्षणानि–देहचिह्नानि येन स कृतलक्षणः॥

१६८. 'अनिट्ठं' ति अवाञ्छितम् 'अकंतं' ति अकमनीयाम् 'अप्पियं' ति अप्रीतिकराम् 'अमणुन्नं' ति न मनसा ज्ञायते सुन्दरतयेत्य-मनोज्ञा ताम् 'अमणामं' ति न मनसा अभ्यते–गम्यते पुनः पुनः संस्मरणेनेत्यमनोज्ञा तां 'सेयागयरोमकूवपगलंतविलीणगत्तो' स्वेदेनागतेन रोमकूपेभ्यः प्रगलन्ति–क्षरन्ति विलीनानि च–क्लिन्नानि गात्राणि यस्याः सा तथा 'सोगभरपवेवियंगमंगी' शोकभरेण प्रवेपितं–प्रकम्पितमङ्गमङ्गं यस्याः सा तथा 'निस्तेया' निर्वीर्या 'दीणविमणवयणा' दीनस्येव विमनस इव (च) वदनं यस्याः सः तथा 'तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीरलावन्नसुन्न-निच्छाय' त्ति तत्क्षणमेव–प्रव्रजामीतिवचनश्रवणक्षण एव अवरुग्णं–म्लानं दुर्बलं च शरीरं यस्याः सा तथा, लावण्येन शून्या लावण्यशून्या निश्छाया–निष्प्रभा, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, 'गयसिरीय' त्ति निःशोभा 'ससिविद्धिलभूसण-पडंतखुन्नियसंचुन्नियधवलवलयपब्भट्ठउत्तरिज्जा' प्रशिथिलानि भूषणानि दुर्बलत्वाद्यस्याः सा तथा पतन्ति–कृशीभूत-बाहुत्वाद्विगलन्ति 'खुन्निय' त्ति भूमिपतनात् प्रदेशान्तरेषु नमितानि संचूर्णितानि च–भग्नानि कानिचिद्धवलवलयानि–तथाविधकटकानि यस्याः सा तथा, प्रभृष्टं व्याकृत-त्वादुत्तरीयं–वसनविशेषो यस्याः सा तथा, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, 'मुच्छा-वसणट्ठचेयगरुइ' त्ति मूर्च्छावशान्नष्टे चेतसि गुर्वी–अलघुशरीरा या सा तथा 'सुकुमालविकिण्ण-केसहत्थ' त्ति सुकुमारः–स्वरूपेण विकीर्णोव्याकुलचित्ततया केशहस्तो–धम्मिल्लो यस्याः सा तथा सुकुमाला वा विकीर्णाः केशा हस्तौ च यस्याः सा तथा 'परसुनियत्तव्व चंपगलय' त्ति परशुच्छिन्नेव चम्पकलता 'मिद्दत्तमहे व्व इंदलट्ठि' त्ति निवृन्तोत्सवे-वेन्द्रयष्टिः 'विमुक्कसंधिबंधण' त्ति शैथिल्यात्कृतसन्धिबन्धना।

९/१६९. 'ससंभमोयत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गयसीय-लजलविमलधारापरिसिंचमाणनिव्वावियगायलट्ठि' त्ति ससम्भ्रमं व्याकुलचित्ततया अपवर्त्तयति–क्षिपति या सा तथा तया ससम्भ्रमापवर्त्तिकया चेट्येति गम्यते त्वरितं–शीघ्रं काञ्चन-भृङ्गारमुखविनिर्गता या शीतजलविमलधारा तया परिषिच्यमाना निर्व्वापिता–स्वस्थीकृता गात्रयष्टिर्यस्याः सा तथा, अथवा ससम्भ्रमापवर्त्तितया–ससम्भ्रमक्षिप्तया काञ्चनभृङ्गारमुख-विनिर्गतशीतलजलविमलधारयेत्येवं व्याख्येयं, लुप्ततृतीयैक-वचनदर्शनात्, 'उक्खेवगतालियंटवीयणगजणिय-वाएणं' ति उत्क्षेपकोवंशदलादिमयो मुष्टिग्राह्यदण्डमध्यभागः तालवृन्तं–तालाभिधानवृक्षपत्रवृन्तं तत्पत्रच्छोट इत्यर्थः तदाकारं वा चर्म्ममयं बीजनकं तु–वंशादिमयमेवान्तर्ग्राह्यदण्डं एतैर्जनितो यो वातः स तथा तेन 'सफुसिएणं' सोदकबिन्दुना 'रोयमाणी' अश्रुविमोचनात् 'कंदमाणी' महाध्वनिकरणात् 'सोयमाणी' मनसा शोचनात् 'विलवमाणी' अत्तवचनकरणात्॥ 'इट्ठे' इत्यादि पूर्ववत् 'थेज्जे' त्ति स्थैर्यगुणयोगात्स्थैर्यं: 'वेसासिए' त्ति विश्वासस्थानं 'संमए' त्ति संमतस्तत्कृतकार्याणां संमतत्वात् 'बहुमए' त्ति बहुमतः–बहुष्वपि कार्येषु बहु वा–अनल्पत-याऽस्तोकतया मतो बहुमतः 'अणुमए' त्ति कार्यव्यापातस्य पश्चादपि मतोऽनुमतः 'भंडकरण्डगसमाणे' भण्डं–आभरणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करण्डकः–तद्भाजनं तत्समानस्तस्यादेयत्वात् 'रयणे' त्ति रत्नं मनुष्यजातावुत्कृष्टत्वात् रजनो वा रञ्जक इत्यर्थः 'रयणभूए' त्ति चिन्तारत्नादिविकल्पः 'जीविऊसविए' त्ति जीवितमुत्सूते–प्रसूत इति जीवितोत्सवः स एव जीवितोत्सविकः जीवितविषये वा उत्सवो–महः स इव यः स जीवितोत्सविकः जीवितोच्छ्वासिक इति पाठान्तरं 'हियया-णंदिजणणे' मनःसमृद्धिकारकः 'उंबरे' त्यादि, उदुम्बरपुष्पं ह्यलभ्यं भवत्यतस्तेनोपमानं 'सवणयाए' त्ति श्रवणतायै श्रोतुमित्यर्थः 'किमंग पुण' त्ति किं पुनः अंगेत्यामन्त्रणे 'अच्छाहि ताव जाया! जाव ताव अम्हे जीवामो' त्ति, इत्यत्राऽऽस्व तावद् हे तात! यावद्वयं जीवाम इत्यैतावतैव विवक्षितसिद्धौ यत्पुनस्तावच्छब्दस्योच्चारणं तद्भाषामात्रमेवेति 'वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरयवक्खे' त्ति 'वड्ढिय' त्ति सप्तम्येकवचनलोपदर्शनाद्वर्द्धिते – पुत्रपौत्रादिभिर्वृद्धिमुपनीते कुलरूपो वंशो न वेणुरूपः कुलवंशः–सन्तानः स एव तन्तुर्दीर्घत्वसाधर्म्यात् कुलवंशतन्तुः स एव कार्यं–कृत्यं कुलवंशतन्तुकार्यं तत्र, अथवा वर्द्धितशब्दः कर्म्मधारयेण सम्बन्धनीयस्तत्र सति 'निरवकाङ्क्षः' निरपेक्षः सन् सकलप्रयोजनानाम्॥

९/१७०. 'तहावि णं तं' त्ति तथैव नान्यथेत्यर्थः यदुक्तं 'अम्हेहिं कालगएहिं पव्वइहिसि' तदाश्रित्यासावाह– 'एवं खलु' इत्यादि, एवं वक्ष्यमाणेन न्यायेन 'अणेगजाइजरामरणरोगसारीरमाणसए कामदुक्खवेयणवसणसओवद्दवाभिभूए' त्ति अनेकानि यानि जातिजरामरणरोगरूपाणि शारीराणि मानसिकानि च प्रकामं–अत्यर्थं दुःखानि तानि तथा तेषां यद्वेदनं, व्यसनानां च–चौर्यद्यूतादीनां यानि शतानि उपद्रवाश्च–राजचौर्यादि-कृतास्तैरभिभूतो यः स तथा, अत एव 'अधुवे' त्ति न ध्रुवः–सूर्योदयवत्र प्रतिनियतकालेऽवश्यम्भावी 'अणितिए' त्ति इतिशब्दो नियतरूपोपदर्शनपरः ततश्च न विद्यत इति यत्रासावनितिकः–अविद्यमाननियतस्वरूप इत्यर्थः, ईश्वरादेरपि दारिद्र्यादिभावात्, 'असासए' त्ति क्षणनश्वरत्वात्, अशाश्वत-त्वमेवोपमानैर्दर्शयन्नाह–'संझे' त्यादि, किमुक्तं भवति? इत्याह–'अणिच्चे' त्ति अथवा प्राग् जीवितापेक्षयाऽनित्यत्व-मुक्तमथ शरीरस्वरूपापेक्षया तदाह–'अणिच्चे' 'सडणपडण-विद्धंसणधम्मे' त्ति शटनं–कुष्ठादिनाऽङ्गुल्यादेः पतनं बाह्वादेः खड्गच्छेदादिना विध्वंसनं–क्षयः एत एव धर्मा यस्य स तथा 'पुव्विं वि' त्ति विवक्षितकालात्पूर्वं वा 'पच्छा वि' त्ति विवक्षितकालात्पश्चाद्वा 'अवस्सविप्पजहियव्वे' त्ति अवश्यं विप्रजहातव्यः त्याज्य 'से केस णं जाणइ' त्ति अथ कोऽसौ जानात्यस्माकं, न कोऽपीत्यर्थः, 'के पुव्विं गमणयाए' त्ति कः पूर्वं पित्रोः पुत्रस्य वाऽन्यतोगमनाय परलोके उत्सहते कः पश्चाद्गमनाय तत्रैवोत्सहते, कः पूर्वं को वा पश्चान्म्रियत इत्यर्थः॥

९/१७१. 'पविसिट्ठरूवं' ति प्रविशिष्टरूपं 'लक्खणवंजण-गुणोववेयं' लक्षणम्।

'अस्थिष्वर्थः सुखं मांसे, त्वचि भोगाः स्त्रियोऽक्षिषु।
गतौ यानं स्वरे चाज्ञा, सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम्॥१॥'

इत्यादि, व्यञ्जनं–मषतिलकादिकं तयोर्यो गुणः–प्रशस्तत्वं तेनोपपेतं–सङ्गतं यत्तत्तथा 'उत्तमबलवीरियसत्तजुत्तं' उत्तमैर्बल-वीर्यसत्त्वैर्युक्तं यत्तत्तथा, तत्र बलं–शारीरः प्राणो वीर्यं–मानसोऽवष्टम्भः सत्त्वं–चित्तविशेष एव, यदाह–'सत्त्वमवैक्ल-व्यकरमध्यवसानकरं च' अथवा उत्तमयोर्बलवीर्ययोर्यत्सत्त्वं–सत्ता तेन युक्तं यत्तत्तथा 'ससोहग्गगुणसमुस्सियं' ति ससौभाग्यं गुणसमुच्छ्रितं चेत्यर्थः 'अभिजायमहक्खमं' ति अभिजातं–कुलीनं महती क्षमा यत्र तत्तथा, ततः कर्म्मधारयः, अथवाऽभि-जातानां मध्ये महत्–पूज्यं क्षमं–समर्थं च यत्तत्तथा, 'निरुवहयउदत्तलट्ठपंचिंदियपडु' ति निरूपहतानि–अविद्यमान-वाताद्युपघातानि उदात्तानि–उत्तमवर्णादिगुणानि अत एव लष्टानि–मनोहराणि पञ्चापीन्द्रियाणि पटूनि च–स्वविषय-ग्रहणदक्षाणि यत्र तत्तथा।

९/१७२. 'विविहवाहिसयसंनिकेयं' ति इह संनिकेतं–स्थानम् 'अट्ठियकट्ठट्ठियं' ति अस्थिकान्येव काष्ठानि काठिन्य-साधर्म्यात्तेभ्यो यदुत्थितं तत्तथा 'छिराण्हारुजालओणद्धसंपिणद्धं' ति शिरा–नाड्यः 'ण्हारु' त्ति स्नायवस्तासां यज्जालं–समूहस्तेनोपनद्धं संपिनद्धं–अत्यर्थं नेष्टितं यत्तत्तथा 'असुइसंकिलिट्ठं' ति अशुचिना–अमेध्येन सङ्क्लिष्टं–दुष्टं यत्तत्तथा। 'अणिट्ठवियसव्वकालसंठप्पयं' ति अनिष्ठापिता–असमापिता सर्वकालं–सदा संस्थाप्यता–तत्कृत्यकरणं यस्य स तथा 'जराकुणिमजज्जरघरं व' जराकुणपश्च–जीर्णता-प्रधानशब्दो जर्जरगृहं, च जीर्णगेहं समाहारद्वन्द्वाज्जरा-कुणपजर्जरगृहं, तदेवं किम्? इत्याह–'सडणे' त्यादि॥

९/१७३. 'विपुले' त्यादि, विपुलकुलाश्च ता बालिकाश्चेति विग्रहः कलाकुशलाश्च ताः सर्वकाललालिताश्चेति कलाकुशल-सर्वकाललालिताः ताश्च ताः सुखोचिताश्चेति विग्रहः, मार्दवगुणयुक्तो निपुणो यो विनयोपचारस्तत्र पण्डितविचक्षणा–अत्यन्तविशारदा यास्तास्तथा ततः कर्म्मधारयः, 'मंजुलमियमहुरभणियविहसियविप्पेक्खियगइविलासविड्ढिय-विसारयाओ' मञ्जुलं–कोमलं शब्दतः मितं–परिमितं मधुरं–अकठोरमर्थतो यद्भणितं तत्तथा तच्च विहसितं च विप्रेक्षितं च गतिश्च विलासश्च–नेत्रविकारो गतिविलासो वा–विलसन्ती गतिः विस्थितं च–विशिष्टा स्थितिरिति द्वन्द्वः एतेषु विशारदा यास्तास्तथा, 'अविकलकुलसीलसालिणीओ' अविकलकुलाः–ऋद्धिपरिपूर्णकुलाः शीलशालिन्यश्च–शील-शोभिन्य इति विग्रहः, 'विसुद्धकुलवंससंताणतंतुवद्धणपगब्भ-वयभाविणीओ' विशुद्धकुलवंश एव सन्तानतन्तुः–विस्तारि-तन्तुस्तद्वर्द्धनेन–पुत्रोत्पादनद्वारेण तद्वृद्धौ प्रगल्भं–समर्थं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्वयो-यौवनं तस्य भावः-सत्ता विद्यते यासां तास्तथा 'विसुद्धकुलवंससंताणतंतुवद्धणगब्भमब्भवप्पभाविणीओ' त्ति पाठान्तरं तत्र च विशुद्धकुलवंशसन्ततन्तुवर्द्धना ये प्रगल्भाः-प्रकृष्टगर्भास्तेषां य उद्भवः-सम्भूतिस्तत्र यः प्रभावः-सामर्थ्यं स यासामस्ति तास्तथा 'मणाणुकूल-हियइच्छियाओ' मनोऽनुकूलाश्च ता हृदयेनेप्सिताश्चेति कर्मधारयः 'अट्ठ तुज्झ गुणवल्लभाओ' त्ति गुणैर्वल्लभा यास्तास्तथा 'विसयविगयवोच्छिन्नकोउहल्ले' त्ति विषयेषु-शब्दादिषु विगतव्यवच्छिन्नम्-अत्यन्तक्षीणं कौतूहलं यस्य स तथा।

९/१७४. 'माणुस्सगा कामभोग' त्ति, इह कामभोगग्रहणेन तदाधारभूतानि स्त्रीपुरुषशरीराण्यभिप्रेतानि, 'उच्चारे' त्यादि, उच्चारादिभ्यः समुद्भवो येषां ते तथा 'अमणुन्नदुरूव-मुत्तपूयपुरीसपुन्ना' अमनोज्ञाश्च ते दुरूपमूत्रेण पूतिकपुरीषेण च पूर्णाश्चेति विग्रहः, इह च दूरूपं-विरूपं पूतिकं च-कुथितं, मयगंधुस्सासअसुभनिस्सासउव्वेयणगा' मृतस्येव गन्धो यस्य स मृतगन्धिः स चासावुच्छ्वासश्च मृतगन्धुच्छ्वासस्तेनाशुभनिःश्वासेन चोद्वेगजनका-उद्वेगकारिणो जनस्य ये ते तथा, उच्छ्वासश्च-मुखादिना वायुग्रहणं निःश्वासस्तु-तन्निर्गमः 'बीभच्छ' त्ति जुगुप्सोत्पादकाः 'लहुस्सग' त्ति लघुस्वकाः लघुस्वभावाः 'कलमलाहिवासदुक्खबहुजण-साहारणा' कलमलस्य-शरीरसत्काशुभद्रव्यविशेषस्याधिवासेन-अवस्थानेन दुःखा-दुःखरूपा ये ते तथा तथा बहुजनानां साधारणा भोग्यत्वेन ये ते तथा, ततःकर्मधारयः, 'परिकिलेसकिच्छदुक्खसज्झा' परिक्लेशेन- महामानसायासेन कृच्छ्रदुःखेन च-गाढशरीरायासेन ये साध्यन्ते-वशीक्रियन्ते ये ते तथा 'कडुगफलविवागा' विपाकःपाकोऽपि स्यादतो विशेष्यते-फलरूपो विपाकः फलविपाकः कटुकः फलविपाको येषां ते तथा 'चुडलिव्व' त्ति प्रदीप्ततृणपूलिकेव 'अमुच्चमाणे' त्ति इह प्रथमाबहुवचनलोपो दृश्यः॥

९/१७५. 'इमे य ते जाया! अज्जयपज्जयपिउपज्जयागए' इदं च तव पुत्र! आर्यः-पितामहः प्रार्यकः-पितुः पितामहः पितृप्रार्यकः-पितुः प्रपितामहस्तेभ्यः सकाशादागतं यत्तत्तथा, अथवाऽऽर्यकप्रार्यक-पितृणां यः पर्ययः-पर्यायः परिपाटिरित्यर्थः तेनागतं यत्तत्तथा 'विपुलधणकणग' इह यावत्करणादिदं दृश्यं-'रयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइए' त्ति तत्र 'विपुलधणे' त्ति प्रचुरं गवादि 'कणग' त्ति धान्यं 'रयण' त्ति कर्केतनादीनि 'मणि' त्ति चन्द्रकान्ताद्याः मौक्तिकानि शङ्खाश्च प्रतीताः 'सिलप्पवाल' त्ति विद्रुमाणि 'रत्तरयण' त्ति पद्मरागास्तान्यादिर्यस्य तत्तथा 'संतसारसावएज्जे' त्ति 'संत' त्ति विद्यमानं स्वायत्त-मित्यर्थः 'सार' त्ति प्रधानं 'सावएज्ज' त्ति स्वापतेयं द्रव्यं, ततः कर्मधारयः, किम्भूतं तत्? इत्याह-'अलाहि' त्ति अलं-पर्याप्तं भवति 'याव' त्ति यत्परिमाणं 'आसत्तमाओ कुलवंसाओ' त्ति आसप्तमात् कुलवंश्यात्-कुललक्षणवंशे भवः कुलवंश्यस्तस्मात्, सप्तमं पुरुषं यावदित्यर्थः 'पकामं दाउ' न्ति अत्यर्थं दीनादिभ्यो दातुम्, एवं भोक्तुं-स्वयं भोगेन 'परिभाएउं' ति परिभाजयितुं दायादादीनां, प्रकामदानादिषु यावत् स्वापतेयमलं तावदस्तीति हृदयम्।

९/१७६. 'अग्गिसाहिए' इत्यादि, अग्न्यादेः साधारणमित्यर्थः 'दाइयसाहिए' त्ति दायादाः-पुत्रादयः, एतदेव द्रव्यस्यातिपारवश्यप्रतिपादनार्थं पर्यायान्तरेणाह-'अग्गिसामन्ने' इत्यादि।।

९/१७७. 'विसयाणुलोमाहिं' ति विषयाणां-शब्दादीनामनुलोमाः-तेषु प्रवृत्तिजनकत्वेनानुकूला विषयानुलोमास्ताभिः 'आघवणाहि य' त्ति आख्यापनाभिः- सामान्यतो भणनैः 'पन्नवणाहि य' त्ति प्रज्ञापनाभिश्च-विशेषकथनैः 'सन्नवणाहि य' त्ति सञ्ज्ञापनाभिश्च-सम्बोधनाभिः 'विन्नवणाहि य' त्ति विज्ञापनाभिश्च विज्ञप्तिकाभिः सप्रणयप्रार्थनैः, चकाराः समुच्चयार्थाः, 'आघवित्तए व' त्ति आख्यातुम्, एवमन्यान्यपि पूर्वपदेषु क्रमेणोत्तराणि योजनीयानि, 'विसयपडिकूलाहिं' ति विषयाणां प्रतिकूलाः-तत्परिभोगनिषेधकत्वेन प्रतिलोमा यास्तास्तथा ताभिः 'संजमभउव्वेयणकरीहिं' ति संयमाद्भयं-भीतिं उद्वेजनं च-चलनं कुर्वन्तीत्येवंशीला यास्तास्तथा ताभिः। 'सच्चे' त्ति सदभ्यो हितत्वात् 'अणुत्तरे' त्ति अविद्यमानप्रधानतरम्, अन्यदपि तथाविधं भविष्यतीत्याह-'केवल' त्ति केवलं-अद्वितीयं 'जहावस्सए' त्ति एवं चेदं तत्र सूत्रं-'पडिपुन्ने' अपवर्गप्रापकगुणैर्भृतं 'नेयाउए' नायकं मोक्षगमकमित्यर्थः नैयायिकं वा न्यायानपेतत्वात् 'संसुद्धे' सामस्त्येन शुद्धं 'सल्लगत्तणे' मायादिशल्यकर्त्तनं 'सिद्धिमग्गे' हितान् प्राप्त्युपायः मुक्तिमग्गे अहितविच्युतेरुपायः 'निज्जाणमग्गे' सिद्धिक्षेत्रगमनोपायः 'निव्वाणमग्गे' सकलकर्मविरहजसुखोपायः 'अवितहे' कालान्तरेऽप्यनपगततथाविधाभिमतप्रकारम् 'अविसंधि' प्रवाहेणाव्यवच्छिन्नं 'सव्वदुक्खपहीणमग्गे' सकलाशर्मक्षयोपायः 'एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति' त्ति 'अहीवेगंतदिट्ठीए' अहेरिव एकोऽन्तो-निश्चयो यस्याः सा (एकान्ता सा) दृष्टिः-बुद्धिर्यस्मिन् निर्ग्रन्थप्रवचने चारित्रपालनं प्रति तदेकान्तदृष्टिकम्, अहिपक्षे आमिषग्रहणैकतानतालक्षणा एकान्ता-एकनिश्चया दृष्टिः दृग् यस्य स एकान्तदृष्टिकः 'खुरो इव एगंतधाराए' त्ति एकान्ता-उत्सर्गलक्षणैकविभागाश्रया धारेव धारा-क्रिया यत्र तत्तथा, 'लोहमये' त्यादि, लोहमया यवा इव चर्वयितव्याः, नैर्ग्रन्थं प्रवचनं दुष्करमिति हृदयं, 'वालुये' त्यादि, वालुकाकवल इव निरास्वादं वैषयिकसुखास्वादनापेक्षया, प्रवचनमिति, गंगे' त्यादि, गङ्गा वा-गङ्गेव महानदी प्रतिस्रोतसा गमनं प्रतिस्रोतोगमनं तद्भावस्तत्ता तया, प्रतिस्रोतोगमनेन गङ्गेव दुस्तरं प्रवचनमिति भावः, एवं समुद्रोपमं प्रवचनमपि, 'तिक्खं कमियव्वं' ति यदेतत् प्रवचनं तत्तीक्ष्णं खड्गादिक्रमितव्यं यथा हि खड्गादि क्रमितुमशक्यमेवमशक्यं प्रवचनमनुपालयितुमितिभावः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गरुयं लंबेयव्वं' ति 'गुरुकं' महाशिलादिकं 'लम्बयितव्यम्' अवलम्बनीयं रज्ज्वादिनिबद्धं हस्तादिना धरणीयं प्रवचनं, गुरुकलम्बनमिव दुष्करं तदिति भावः, असी' त्यादि, असेर्धारा यस्मिन् व्रते आक्रमणायतया तदसिधारकं 'व्रतं' नियमः 'चरितव्यम्' आसेवितव्यं, यदेतत् प्रवचनानुपालनं तदबहुदुष्करमित्यर्थः। अथ कस्मादेतस्य दुष्करत्वम्?, अत्रोच्यते 'नो' इत्यादि, आधाकर्म्मिकमिति, एतद्धा 'अज्झोयरए वा' अध्यवपूरक इति वा, तल्लक्षणं चेदं–स्वार्थं मूलाद्ग्रहणे कृते साध्वाद्यर्थमधिकतरकणक्षेपणमिति 'कंतारभत्तेइ व' त्ति कान्तारं–अरण्यं तत्र यद्भिक्षुकार्थं संस्क्रियते तत्कान्तारभक्तम्, एवमन्यान्यपि, भोत्तए व' त्ति भोक्तुं 'पायए व' त्ति पातुं वा 'नालं' न समर्थः शीताद्यधिसोढुमिति योगः, इह च व्यत्ययप्राकृतत्वेन द्वितीयार्थे प्रथमा दृश्या, 'वाल' त्ति व्यालान्–श्वापदभुजगलक्षणान् 'रोगायंके' त्ति इह रोगाः–कुष्ठादयः आतङ्काः–आशुघातिनः शूलादयः।

९/१७८. 'कीवाणं' ति मन्दसंहननानां 'कायराणं' ति चित्तावष्टम्भवर्जितानाम् अत एव 'कापुरिसाणं' ति, पूर्वोक्तमेवार्थमन्वयव्यतिरेकाभ्यां पुनराह–'दुरणु' इत्यादि, 'दुरनुचरं' दुःखासेव्यं प्रवचनमिति प्रकृतं 'धीरस्स' त्ति साहसिकस्य तस्यापि 'निश्चितस्य' कर्त्तव्यमेवेदमितिकृतनिश्चयस्य तस्यापि 'व्यवसितस्य' उपायप्रवृत्तस्य 'एत्थं' ति प्रवचने लोके वा, दुष्करत्वं च ज्ञानोपदेशापेक्षयाऽपि स्यादत आह–'करणतया' करणेन संयमस्य अनुष्ठानेनेत्यर्थः॥

९/१८०. 'सब्भिंतरबाहिरियं' ति सहाभ्यन्तरेण बाहिरिकया च–बहिर्भवेन यत्तत्तथा 'आसित्तसम्मज्जिओवलित्तं' ति आसिक्तमुदकेन संमार्जितं प्रमार्जनिकादिना उपलिप्तं च गोमयादिना यत्तत्तथा 'जहा उववाइए' त्ति एवं चैतत्तत्र–'सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु आसित्तसित्तसुइयसंमट्ठरत्थंतरावणवीहियं' आसिक्तानि–ईषन्त्सिक्तानि सिक्तानि च–तदन्यान्यत्र एव शुचिकानि–पवित्राणि संमृष्टानि कचवरापनयनेन रथ्यान्तराणि–रथ्यामध्यानि आपणवीथ्यश्च–हट्टमार्गा यत्र तत्तथा 'मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियझयपडागाइपडागमंडियं' नानाविधरागैरुच्छ्रितैर्ध्वजैः–चक्रसिंहादिलाञ्छनोपेतैः पताकाभिश्च–तदितराभिरतिपताकाभिश्च–पताकोपरिवर्त्तिनीभिर्मण्डितं यत्तत्तथा इत्यादि।

९/१८१. 'महत्थं' ति महाप्रयोजनं 'महग्घं' ति महामूल्यं महरिहं' ति महार्हं–महापूज्यं महतां वा योग्यं 'निक्खमणाभिसेयं' ति निष्क्रमणाभिषेकसामग्रीम्।

९/१८२. 'एव जहा रायप्पसेणइज्जे' ति एवं चैतत्तत्र–'अट्ठसएणं सुवन्नमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं रूप्पमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं मणिमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं सुवन्नरूप्पमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं सुवन्नमणिमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं रुप्पमणिमयाणं अट्ठसएणं सुवण्णरूप्पमणिमयाणं कलसाणं अट्ठसएणं 'भोमेज्जाणं' ति मृन्मयानां 'सव्विड्ढीए' त्ति सर्व्वर्द्ध्या–समस्तछत्रादिराजचिह्नरूपया, यावत्करणादिदं दृश्यं–'सव्वजुईए' सर्वद्युत्या–आभरणादिसम्बन्धिन्या सर्वयुक्तया वा–उचितेष्टवस्तुघटनालक्षणया 'सव्वबलेणं' सर्व्वसैन्येन 'सव्वसमुदएणं' पौरादिमीलनेन 'सव्वायरेणं' सर्वोचितकृत्यकरणरूपेण 'सव्वविभूईए' सर्वसम्पदा 'सव्वविभूसाए' समस्तशोभया 'सव्वसंभ्रमेणं' प्रमोदकृतौत्सुक्येन 'सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दसंनिनाएणं' सर्व्वतूर्यशब्दानां मीलने यः सङ्गतो निनादो–महाघोषः स तथा तेन, अत्रेष्वपि ऋद्ध्यादिषु सर्वशब्दप्रवृत्तिर्दृष्टेत्यत आह–'महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं 'महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं' यमकसमकं युगपदित्यर्थः 'संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरयमृइंगदुंदुहिनिग्घोसनाइय' त्ति पणवो–भाण्डपटहः भेरी–महती ढक्का महाकाहला वा झल्लरी–अल्पोच्छ्रया महामुखा चर्म्मावनद्धा खरमुखी–काहला मुरजो–महामर्दलः मृदङ्गो–मर्दलः दुन्दुभी–ढक्काविशेष एव ततः शङ्खादीनां निर्घोषो महाप्रयत्नोत्पादितः शब्दो नादितं तु–ध्वनिमात्रं एतद्धयलक्षणो यो रवः स तथा तेन॥

किं देमो' त्ति किं दद्मो भवदभिमतेभ्यः 'किं पयच्छमो' त्ति भवते एव, अथवा दद्मः सामान्यतः प्रयच्छामः प्रकर्षेणेति विशेषः 'किणा व' त्ति केन वा;

९/१८३. 'कुत्तियावणाओ' त्ति कुत्रिकं–स्वर्गमर्त्यपाताललक्षणं भूत्रयं तत्सम्भवि वस्त्वपि कुत्रिकं तत्सम्पादको य आपणो–हट्टो देवाधिष्ठितत्वेनाद्यौ कुत्रिकापणस्तस्मात् 'कालवगं' ति नापितं।

९/१८४. 'सिरियराओ भण्डागारात् त्ति।

९/१८८. 'अग्गकेसे' त्ति अग्रभूताः केशा अग्रकेशास्तान्।

९/१८९. 'हंसलक्खणेणं' शुक्लेन हंसचिह्नेन वा 'पडसाडएणं' ति पटरूपः शाटकः पटशाटकः, शाटको हि शटनकारकोऽप्युच्यत इति तद्व्यवच्छेदार्थं पटग्रहणम्, अथवा शाटको वस्त्रमात्रं स च पृथुलः पटोऽभिधीयत इति पटशाटकः, 'अग्गेहिं' ति 'अग्र्यैः' प्रधानैः, एतदेव व्याचष्टे–'वरेहिं' ति 'हारवारिधारसिंदुवरच्छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं' ति इह 'सिंदुवार' त्ति वृक्षविशेषो निर्गुंडीति केचित् तत्कुसुमानि सिन्दुवाराणि तानि च शुक्लानीति 'एस णं' ति एतत्, अग्रकेशवस्तु अथवैतद्दर्शनमिति योगो णमित्यलङ्कारे 'तिहीसु य' गदनत्रयोदश्यादितिथिषु 'पव्वणीसु य' त्ति पर्व्वणीषु च कार्त्तिक्यादिषु 'उस्सवेसु य' त्ति प्रियसङ्गमादिमहेषु 'जन्नेसु य' त्ति नागादिपूजासु 'छणेसु य' त्ति इन्द्रोत्सवादिलक्षणेषु 'अपच्छिमे' त्ति अकारश्चात्रमङ्गलपरिहारार्थत्वात् पश्चिमं दर्शनं भविष्यति एतत् केशदर्शनमपनीतकेशावस्थस्य जमालिकुमारस्य यद्दर्शनं सर्वदर्शनपाश्चात्यं तद्भविष्यतीति भावः, अथवा न पश्चिमं पौनःपुन्येन जमालिकुमारस्य दर्शनमेतद्दर्शने भविष्यतीत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९/१९०. 'दोच्चंपि' त्ति द्वितीयं वारं 'उत्तरावक्कमणं' ति उत्तरस्यां दिश्यपक्रमणं–अवतरणं यस्मात्तद् उत्तरापक्रमणम्–उत्तराभिमुखं पूर्वं तु पूर्वाभिमुखमासीदिति 'सरिआवीयएहिं' ति रूप्यमयैः सुवर्णमयैश्चेत्यर्थः 'पम्हलसुकुमालाए' ति पक्ष्मवत्या सुकुमालया चेत्यर्थः 'गंधकासाइए' ति गन्धप्रधानया कषायरक्तया शाटिकयेत्यर्थः 'नस्सानीसासे' त्यादि नासानिःश्वासवातवाह्यमतिलघुत्वात् चक्षुर्हरं–लोचनानन्ददायकत्वात् चक्षूरोधकं वा घनत्वात् 'वन्नफरिसजुत्तं' ति प्रधानवर्णस्पर्शयुक्तमित्यर्थः हयलालायाः सकाशात् पेलवं–मृदु अतिरेकेण–अतिशयेन यत्तत्तथा कनकेन खचितं–मण्डितं अन्तयोः–अञ्चलयोः कर्म–वानलक्षणं यत्तत्तथा 'हारं' ति अष्टादशसरिकं 'पिणद्धंति' पिनह्यतः पितरावितिं शेषः 'अद्धहारं' ति नवसरिकम् 'एवं जहा सूरियाभस्स अलंकारो तहेव' त्ति, स चैवम्–'एगावलिं पिणद्धंति एवं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं अंगयाइं केऊराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तयं दसमुद्दियाणंतयं वच्छसुत्तं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं' ति तत्रैकावली–विचित्रमणिकमयी मुक्तावली–केवलमुक्ताफलमयी कनकावली–सौवर्णमणिकमयी रत्नावली–रत्नमयी अङ्गदं केयूरं च बाह्याभरणविशेष एतयोश्च यद्यपि नामकोशे एकार्थतोक्ता तथाऽपीहाऽऽकारविशेषाद् भेदोऽवगन्तव्यः, कटकं–कलाचिकाभरणविशेषः त्रुटिकं–बाहुरक्षिका दशमुद्रिकानन्तकं–हस्ताङ्गुलीमुद्रिकादशकं वक्षःसूत्रं–हृदयाभरणभूतसूवर्णसङ्कलकं 'वेकच्छसुत्तं' ति पाठान्तरं तत्र वैकक्षिकासूत्रम्–उत्तरासङ्गपरिधानीयं सङ्कलकं–मुरवीमुरजाकारमाभरणं कण्ठमुरवी–तदेव कण्ठासन्नतरावस्थानं प्रालम्बं–झुम्बनकं, वाचनान्तरे त्वयमलङ्कारवर्णकः साक्षाल्लिख्यत एव दृश्यत इति, 'रयणसंकडुक्कडं' ति रत्नसङ्कटं च तदुत्कटं च–उत्कृष्टं रत्नसङ्कटोत्कटं 'गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेणं' ति इह ग्रन्थिमं–ग्रन्थननिर्वृत्तं सूत्रग्रथितमालादि वेष्टिमं–वेष्टिननिष्पन्नं पुष्पलम्बूसकादि पूरिमं–येन वंशशलाकामयपञ्जरकादि कूर्चादि वा पूर्यते सङ्घातिमं तु यत्परस्परतो नालसङ्घातनेन सङ्घात्यते 'अलंकियविभूसियं' ति अलङ्कृतश्चासौ कृतालङ्कारोऽत एव विभूषितश्च–सञ्जातविभूषश्चेत्यलङ्कृतविभूषितस्तं, वाचनान्तरे पुनरिदमधिकं 'दद्दरमलयसुगंधिगंधिएहिं गायाइं भुकुंडेंति' त्ति दृश्यते, तत्र च दर्दरमलयाभिधानपर्वतयोः सम्बन्धिनस्तदुद्भूतचन्दनादिद्रव्यजत्वेन ये सुगन्धयो गन्धिका–गन्धवासास्तै तथा, अन्ये त्वाहुः–दर्दरः–चीवरावनद्धं कुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालितास्तत्र पक्त्वा वा ये 'मलय' त्ति मलयोद्भवत्वेन मलयजस्य–श्रीखण्डस्य सम्बन्धिनः सुगन्धयो गन्धिका–गन्धास्तै तथा तैर्गात्राणि 'भुकुंडेंति' ति उद्भूलयन्ति॥

९/१९१. 'अणेगखंभसयसन्निविट्ठं' ति अनेकेषु स्तम्भ-शतेषु सन्निविष्टा या सा तथा अनेकानि वा स्तम्भशतानि संनिविष्टानि यस्यां सा तथा तां 'लीलट्ठियसालभंजियागं' ति लीलास्थिताः शालभञ्जिकाः–पुत्रिकाविशेषा यत्र सा तथा तां, वाचनान्तरे पुनरिदमेवं दृश्यते–'अब्भुग्गयसुकयवइरवेइयतोरणवररइयलीलट्ठियसालभंजियागं' ति तत्र चाभ्युद्गते–उच्छ्रिते सुकृतवज्रवेदिकायाः सम्बन्धिनि तोरणवरे रचिता लीलास्थिता शालभञ्जिका यस्यां सा तथा तां 'जहा रायप्पसेणइज्जे विमाणवन्नओ' त्ति एवमस्या अपि वाच्य इत्यर्थः, स चायम्–'ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं' ईहामृगादिभिर्भक्तिभिः–विच्छित्तिभिश्चित्रा–चित्रवती या सा तथा तां, तत्र ईहामृगा–वृकाः ऋषभाः वृषभा व्यालकाः–श्वापदा भुजङ्गा वा किन्नरा–देवविशेषाः रुरवो–मृगविशेषाः सरभाः–परासराः वनलता–चम्पकलतादिकाः पद्मलता– मृणालिकाः शेषपदानि प्रतीतान्येव 'खंभुग्गयवइरवेइया-परिगयाभिरामं' स्तम्भेषु उद्गता–निविष्टा या वज्रवेदिका तया परिगता–परिकरिता अत एवाभिरामा च–रम्या या सा तथा तां 'विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तंपिव' विद्याधरयोर्यद् यमलं–समश्रेण्यकं युगलं– द्वयं तेनेव यन्त्रेण–सञ्चरिष्णुपुरुषप्रतिमाद्वयरूपेण युक्ता या सा तथा ताम्, आर्षत्वाच्चैवंविधः समासः, 'अच्चीसहस्समालिणीयं' अर्चिःसहस्रमालाः–दीप्तिसहस्राणामावल्यः सन्ति यस्यां सा तथा, स्वार्थिककप्रत्यये च अर्चिःसहस्रमालिनीका तां, 'रूवगसहस्सकलियं' भिसमाणं' दीप्यमानां 'भिब्भिसमाणं' अत्यर्थं दीप्यमानां 'चक्खुल्लोयणलेसं' चक्षुः कर्तृ लोकने–अवलोकने सति लिशतीव–दर्शनं यत्वातिशयात् श्लिष्यतीव यस्यां सा तथा तां 'सुहफासं सस्सिरीयरूवं सशोभरूपकां 'घंटावलिचलियमहुरमणहरसरं' घण्टावल्याश्चलिते–चलने मधुरो मनोहरश्च स्वरो यस्यां सा तथा तां 'सुहं कंतं दरिसणिज्जं निउणोवियमिसिमिसिंतमणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं' निपुणेन–शिल्पिना ओपितं–परिकर्मितं 'मिसिमिसिंतं' चिकचिकायमानं मणिरत्नानां सम्बन्धि यद् घण्टिकाजालं–किङ्किणीवृन्दं तेन परिक्षिप्ता–परिकरिता या सा तथा तां, वाचनान्तरे पुनरयं वर्णकः साक्षाद् दृश्यते एवेति॥

९/१९२. 'केसालंकारेणं' ति केशा एवालङ्कारः केशालङ्कारस्तेन, यद्यपि तस्य तदानीं केशाः कल्पिता इति केशालङ्कारो न सम्यक् तथाऽपि कियतामपि सद्भावात्तद्भाव इति, अथवा केशानामलङ्कारः पुष्पादि केशालङ्कारस्तेन, 'वत्थालंकारेणं' ति वस्त्रलक्षणालङ्कारेण।

९/१९५. 'सिंगारागारचारुवेसं' ति शृङ्गारस्य–रसविशेषस्यागारमिव यश्चारुश्च वेषो–नेपथ्यं यस्याः सा तथा, अथवा शृङ्गारप्रधान आकारश्चारुश्च वेषो यस्याः सा तथा 'संगते' त्यादौ यावत्करणादेवं दृश्यं–'संगयगयहसियभणियचिट्ठियविलाससंलावुल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसल' त्ति तत्र च सङ्गतेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतादिषु निपुणा युक्तेषूपचारेषु कुशला च या सा तथा, इह च विलासो नेत्रविकारो, यदाह–

'हावो मुखविकारः स्याद्भावश्चित्तसमुद्भवः।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो, विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः॥१॥'

इति, तथा संलापो–मिथोभाषा उल्लापस्तु काकुवर्णनं, यदाह–

'अनुलापो मुहुर्भाषा, प्रलापोऽनर्थकं वचः।
काक्वा वर्णनमुल्लापः, संलापो भाषणं मिथः॥१॥'

इति, 'रूवजोव्वणविलासकलिय' त्ति इह विलासशब्देन स्थानासनगमनादीनां सुश्लिष्टो यो विशेषोऽसावुच्यते, यदाह–

'स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्म्मणां चैव।
उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टोऽसौ विलासः स्यात्॥१॥'

सुन्दरथणं इत्यनेन 'सुन्दरथणजहणवयणकरचरणणयण-लावण्णरूव-जोव्वणगुणोववेयं' त्ति सूचितं, तत्र च सुन्दरा ये स्तनादयोऽर्थास्तैरुपेता या सा तथा, लावण्यं चेह स्पृहणीयता रूपं–आकृतिर्यौवनं–तारुण्यं गुणा–मृदुस्वरत्वादयः 'हिमरयय-कुमुयकुंदेदुप्पगासं' ति हिमं च रजतं च कुमुदं च कुन्दश्चेन्दुश्चेति द्वन्द्वस्तेषामिव प्रकाशो यस्य तत्तथा 'सकोरेंटमल्लदामं' ति सकोरेण्टकानि–कोरण्टपुष्पगुच्छ-युक्तानि माल्यदामानि–पुष्पमाला यत्र तत्तथा।

९/१९६. 'नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जउज्जल-विचित्तदंडाओ' ति नानामणिकनकरत्नानां विमलस्य महार्हस्य महार्घस्य वा तपनीयस्य च सत्कावुज्ज्वलौ विचित्रौ दण्डकौ ययोस्ते तथा, अथात्र कनकतपनीययोः को विशेषः?, उच्यते, कनकं पीतं तपनीयं रक्तमिति। 'चिल्लियाओ' त्ति दीप्यमाने लीने इत्येके 'संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंज-संनिगासाओ' त्ति शङ्खाङ्ककुंददकरजसाममृतस्य मथितस्य सतो यः फेनपुञ्जस्तस्य च संनिकाशे–सदृशे ये ते तथा, इह चाङ्को रत्नविशेष इति, 'चामराओ' त्ति यद्यपि चामरशब्दो नपुंसकलिङ्गो रूढस्तथाऽपीह स्त्रीलिङ्गतया निर्दिष्टस्तथैव क्वचिद्रूढ-त्वादिति॥

९/१९७. 'मत्तगयमहामुहाकिइसमाणं' ति मत्तगजस्य यन्महामुखं तस्य याऽऽकृतिः–आकारस्तथा समानं यत्तत्तथा।

९/१९९. 'एगाभरणवसणगहियणिज्जोय' त्ति एकः–एकादृश आभरण-वसनलक्षणो गृहीतो निर्योगः–परिकरो यैस्ते तथा।

९/२०४. 'तप्पढमयाए' त्ति तेषां विवक्षितानां मध्ये प्रथमता तत्प्रथमता तया 'अट्ठट्ठमंगलग' त्ति अष्टाष्टावितिवीप्सायां द्विर्वचनं मङ्गलकानि–माङ्गल्यवस्तूनि, अन्ये त्वाहुः–अष्टसङ्ख्यानि अष्टमङ्गलकसञ्ज्ञानि वस्तूनि 'जाव दप्पणं' ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'नंदियावत्तवद्धमाणगभद्दासणकल-समच्छ' त्ति तत्र वर्द्धमानकं–शरावं (वसंपुटं) पुरुषारूढपुरुष इत्यन्ये स्वस्तिकपञ्चकमित्यन्ये प्रासादविशेषमित्यन्ये 'जहा उववाइए' त्ति, अनेन च यदुपात्तं तद्वाचनान्तरे साक्षादेवास्ति, तच्चेदं–'दिव्वा य छत्तपडागा' दिव्येव दिव्या–प्रधाना छत्रसहिता पताका छत्रपताका तथा 'सचामरादरसरइयआलोयदरि-सणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंती य ऊसिय' त्ति सह चामराभ्यां या सा सचामरा आदर्शो रचितो यस्यां साऽऽदर्शरचिता आलोकं–दृष्टिगोचरं यावद् दृश्यतेऽत्युच्चत्वेन या साऽऽलोक-दर्शनीया, ततः कर्म्मधारयः, 'सचामरा दंसणरइयआलोय-दरिसणिज्ज' त्ति पाठान्तरे तु सचामरेति भिन्नपदं, तथा दर्शने–जनानांदृष्टिपथे रचिता–विहिता दर्शनरचिता दर्शने वा सति रतिदा–सुखप्रदा दर्शनरतिदा सा चासावालोकदर्शनीया चेति कर्म्मधारयः काऽसौ? इत्याह–वातोद्धूता विजयसूचिका वैजयन्ती–पार्श्वतो लघुपताकिकाद्वययुक्ता पताकाविशेषा वातोद्धूतविजयवैजयन्ती 'उच्छ्रिता' उच्चा, कथमिव? 'गगण-तलमणुलिहंती' ति गगनतलं आकाशतलमनुलिखन्ती-वानुलिखन्ती अत्युच्चतयेति।

'जहा उववाइए' त्ति अनेन यत्सूचितं तदिदं–'तयाणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदंडं' भिसंत' त्ति दीप्यमानं 'पलंबकोरंटमल्लदामोवसोहियं चंदमंडलनिभं समूसियं विमलमायवत्तं पवरं सीहासणं च मणिरयणपायपीढं सपाउयाजुगसमाउत्तं' स्वकीयपादुकायुगसमायुक्तं 'बहुकिंकरकम्मगरपुरिसपायत्तपरिक्खित्तं' बहवो ये किङ्कराः–प्रतिकर्म्म प्रभोः पृच्छाकारिणः कर्म्मकराश्च तदन्यथाविधास्ते च ते पुरुषाश्चेति समासः पादातं च–पत्तिसमूहः बहुकिङ्करादिभिः परिक्षिप्तं यत्तत्तथा 'पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

'तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा चावग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढयग्गाहा वीणग्गाहा कूवयग्गाहा' कुतुपः–तैलादिभाजनविशेषः 'हडप्पग्गाहा' हडप्पो–द्रम्मादिभाजनं ताम्बूलार्थं पूगफलादि-भाजनं वा 'पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तयाणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो–शिखाधारिणः जटिणो–जटाधराः पिच्छिणो–मयूरादिपिच्छवाहिनः हासकरा ये हसन्ति डमरकरा–विड्वरकारिणः दवकराः–परिहासकारिणः चाटुकराः–प्रियवादिनः कंदप्पिया–कामप्रधानकेलिकारिणः कुक्कुइया–भाण्डाः भाण्डप्राया वा 'वायंता गायंता य नच्चंता य हासंता य भासंता य सासिंता य सिक्खयन्तः 'सावेंता य' इदं चेदं भविष्यतीत्येवंभूतवचांसि श्रावयन्तः 'रक्खंता य' अन्यायं रक्षन्तः 'आलोकं च करेमाणे' त्यादि तु लिखितमेवास्ति इति। एतच्च वाचनान्तरे प्रायः साक्षाद्दृश्यत एव, तथेदमपरं तत्रैवाधिकं–'तयाणंतरं च णं जच्चाणं वरमल्लिहाणाणं चंचुच्चियललियपुलयविक्कमविलासियगईणं हरिमेलामउल-मल्लियच्छाणं थासगअमिलाणचमरगंडपरिमंडियकडीणं अट्ठसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं, तयाणंतरं च णं ईसिं दंताणं ईसिं मत्ताणं ईसिं उन्नयविसालधवलदंताणं कंचणकोसीपविट्ठदंतोवसोहियाणं अट्ठसयं गयकलहाणं पुरओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं, तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सखिखिणीहेमजाल-पेरंतपरिक्खित्ताणं सनन्दिघोसाणं हेमवयचित्ततिणिसकणग-निज्जुत्तदारुगाणं सुसंविद्धचक्कमंडलधुराणं कालायस-सुकयनेमिजंतकम्माणं आइन्नवरतुरगसुसंपउत्ताणं कुसल-नरच्छेयसारहिसुसंपग्गहियाणं सरसयबत्तीसतोणपरिमंडियाणं सकंकडवडेंसगाणं सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाणं अट्ठसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं, तयाणंतरं च णं असिसत्तिकोंततोमरसूललउडभिंडिमालधणुबाणसज्जं पायत्ताणीयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं, तयाणंतरं च णं बहवे राईसरतलवरकोडुंबियमाडंबिय - इब्भसेट्ठिसेणावइसत्थवाह-पभिइओ अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया अप्पेगइया रहगया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिय' त्ति तत्र च 'वरमल्लिहाणाणं' ति वरं माल्याधानं–पुष्पबन्धनस्थानं शिरः केशकलापो येषां ते वरमाल्याधानास्तेषाम्, इकारः प्राकृत-प्रभवो 'बालिहाण' मित्यादाविवेति, अथवा वरमल्लिकावद् शुक्लत्वेन प्रवरविचकिलकुसुमवद् घ्राणं–नासिका येषां ते तथा तेषां, क्वचित् 'तरमल्लिहायणाणं' ति दृश्यते तत्र च तरो–वेगो बलं, तथा 'मल मल्ल धारणे' ततश्च तरोमल्ली–तरोधारको वेगादिधारको हायनः–संवत्सरो वर्त्तते येषां ते तरोमल्लिहायनाः–यौवनवन्त इत्यर्थः। अतस्तेषां वरतुर-गाणामितियोगः 'वरमल्लिभासणाणं' ति क्वचिद्दृश्यते, तत्र तु प्रधानमाल्यवतामत एव दीप्तिमतां चेत्यर्थः 'चंचुच्चिय-ललियपुलियविक्कमविलासियगईणं' ति 'चंचुच्चियं' ति प्राकृतत्वेन चञ्चुरितं–कुटिलगमनम्, अथवा चञ्चुः–शुकचञ्चुस्तद्वद्वक्रतया उच्चितम्–उच्चताकरणं पदस्योत्पाटनं वा (शुक) पादस्येवेति चञ्चुच्चितं तच्च ललितं क्रीडितं पुलितं च–गतिविशेषः प्रसिद्ध एव विक्रमश्च–विशिष्टं क्रमणं क्षेत्रलङ्घनमिति द्वंद्वस्तदेतत्प्रधाना विलासिता–विशेषेणो-ल्लासिता गतिर्यैस्ते तथा तेषां, क्वचिदिदं विशेषणमेवं दृश्यते–'चंचुच्चियललियपुलियचलचवलचंचलगईणं' ति तत्र च चञ्चुरितललितपुलितरूपा चलानां–अस्थिराणां सतां चञ्चलेभ्यः सकाशाच्चञ्चला–अतीवचटुला गतिर्येषां ते। तथा तेषां 'हरिमेलमउलमल्लियच्छाणं' ति हरिमेलको–वनस्पति-विशेषस्तस्य मुकुलं–कुड्मलं मल्लिका च–विचकिलस्तद्व-दक्षिणा येषां, शुक्लाक्षाणामित्यर्थः, 'थासगअभिलाणचामर-गंडपरिमंडियकरीणं' ति स्थासका–दर्पणकाकारा अश्वालङ्कार-विशेषास्तैरम्लानचामरैर्गण्डैश्च–अमलिनचामरदण्डैः परिमण्डिता कटिर्येषां ते तथा तेषां, क्वचित्पुनरेवमिदं विशेषणमेवं दृश्यते–'मुहभंडगओचूलगथासगमिलाणचामरगण्डपरिमंडियकडीणं' ति तत्र मुखभाण्डकं–मुखाभरणम् अवचूलाश्च–प्रलम्बमानपुच्छाः स्थासकाः प्रतीताः 'मिलाण' त्ति पर्याणानि च येषां सन्ति ते तथा मत्वर्थीयलोपदर्शनात्, चमरी (चामर) गण्डपरि-मण्डितकटय इति पूर्ववत्, ततश्च कर्म्मधारयोऽतस्तेषां, क्वचित्पुनरेवमिदं दृश्यते–'थासगअहिलाणचामरगंडपरिमंडिय-कडीणं' ति तत्र तु अहिलाणं–मुखसंयमनं ततश्च 'थासगअहिलाण' इत्यत्र मत्वर्थीयलोपेनोत्तरपदेन सह कर्म्मधारयः कार्यः, तथा ईसिं दंताणं' ति 'ईषद्दान्तानां' मनाग्गृहीतशिक्षाणां गजकलभानामिति योगः ईसिंउच्छं-गउन्नयविसालधवलदंताणं' ति उत्सङ्गः–पृष्ठदेशः ईषदुत्सङ्गे उन्नता विशालाश्च ये यौवनारम्भवर्त्तित्वात्ते तथा ते च ते धवलदन्ताश्चेति समासोऽतस्तेषां 'कंचणकोसीपविट्ठदंतोव-सोहियाणं' ति इह काञ्चनकोशी–सुवर्णमयी खोला, रथवर्णके तु 'सज्झयाणं सपडागाणं' इत्यत्र गरुडादिरूपयुक्तो ध्वजः तदितरा तु पताका 'सखिखिणीहेमजालपेरंतपरिक्खित्ताणं' ति सकिङ्किणीकं–क्षुद्रघण्टिकोपेतं यद् हेमजालं–सुवर्णमयस्तदा-भरणविशेषस्तेन पर्यन्तेषु परिक्षिप्ता ये ते तथा तेषां, 'सनंदिघोसाणं' ति इह नन्दी–द्वादशतूर्यसमुदायः, तानि चेमानि–

'भंभा १ मउंद २ मद्दल ३ कडंब
४ झल्लरि ५ हुडुक्क ६ कंसाला ७।
काहल ८ तलिमा ९ वंसो १० संखो
११ पणवो १२ य बारसमो॥१॥'

इति 'हेमवयचित्ततिणिसकणगनिज्जुत्त-दारुगाणं' ति हैमवतानि–हिमवद्गिरिसम्भवानि चित्राणि–विविधानि तैनिशानि–तिनिशा-भिधाननरुसम्बन्धीनि कनकनियुक्तानि–सुवर्णखचितानि दारुकाणि–काष्ठानि येषु ते तथा तेषां, 'सुसंविद्धचक्क-मंडलधाराणं' ति सुष्ठु संविद्धानि चक्राणि मण्डलाश्च वृत्ता धारा येषां ते तथा तेषां 'सुसिलिट्ठचिन्नमंडलधुराणं' ति क्वचिद्दृश्यते तत्र सुष्ठु संश्लिष्टाः चित्रवन्कुर्वन्त्ये' मण्डलाश्च–वृत्ता धुरो येषां ते तथा तेषां 'कालायसम्सुकयनेमिजंतकम्माणं' ति कालायसेन–लोहविशेषेण सुष्ठु कृतं नेमेः–चक्रमण्डल-धाराया यन्त्रकर्म–बन्धनक्रिया येषां ते तथा तेषाम् 'आइन्नवरतुरगसुसंपउत्ताणं' ति आकीर्णैः–जात्यैर्वरतुरगैः सुष्ठु संप्रयुक्ता ये ते तथा तेषां 'कुसलनरच्छेयसारहिसु-संपग्गहियाणं' ति कुशलनरैः–विज्ञपुरुषैश्छेकसारथिभिश्च–दक्षप्राजितृभिः सुष्ठु संप्रगृहीता ये ते तथा तेषां 'सरसय-बत्तीसतोणपरिमंडियाणं' ति शरशतप्रधाना ये द्वात्रिंशत्तोणा–भस्त्रकास्तैः परिमण्डिता ये ते तथा तेषां 'सकंकडवडेंसगाणं' ति सह कङ्कटैः–कवचैरवतंसकैश्च शेखरकैः शिरस्त्राणैर्वा ये ते तथा तेषां 'सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाणं' ति सह चापैः शरैश्च यानि प्रहरणानि–कुन्तादीनि आवरणानि च–स्फुरकादीनि तेषां भरिता युद्धसज्जाश्च–युद्धप्रगुणा ये ते तथा तेषां, शेषं तु प्रतीतार्थमेवेति।

अथाधिकृतवाचनाऽनु-श्रियते–

'तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा' इत्यादि, तत्र 'उग्राः'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिदेवेनारक्षकत्वे नियुक्तास्तद्वंश्याश्च। भोगास्तेनैव गुरुत्वेन व्यवहृतास्तद्वंश्याश्च। 'जहा उववाइए' त्ति करणादिदं दृश्यं–'राइन्ना खत्तिया इक्खागा नाया कोरव्वा' इत्यादि, तत्र 'राजन्या' आदिदेवेनैव वयस्यतया व्यवहृतास्तद्वंश्याश्च क्षत्रियाश्च प्रतीताः 'इक्ष्वाकवः' नाभेयवंशजाः 'ज्ञाताः' इक्ष्वकुवंशविशेषभूताः 'कोरव्व' त्ति कुरवः–कुरुवंशजाः, अथ कियदन्तमिदं सूत्रमिहाध्येयम्? इत्याह–'जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते' त्ति वागुरा–मृगबन्धनं वागुरेव वागुरा सर्वतः परिवारणसाधर्म्यात् पुरुषाश्च ते वागुरा च पुरुषवागुरा महती चासौ पुरुषवागुरा च महापुरुषवागुरा तया परिक्षिप्ता ये ते तथा।

९/२०६. 'महंआस' त्ति महाश्वाः, किम्भूताः? इत्याह–'आसवरा' अश्वानां मध्ये वराः 'आसवार' त्ति पाठान्तरं तत्र 'अश्ववाराः' अश्वारूढपुरुषाः 'उभओ पासिं' ति उभयोः पार्श्वयोः 'नाग' त्ति नागहस्तिनः नागवरा–हस्तिनां प्रधानाः' 'रहसंगेल्लि' ति रथसमुदायः।

९/२०७. 'अब्भुग्गयभिंगारे' त्ति अभ्युद्गतः–अभिमुखमुत्पाटितो भृङ्गारो यस्य स तथा 'पग्गहियतालियंटे' प्रगृहीतं तालवृन्तं यं प्रति स तथा 'ऊसवियसेयच्छत्ते' उच्छ्रितश्वेतच्छत्रः 'पवीइयसेयचामरवालवीयणीए' प्रवीजितः श्वेतचामरवालानां सत्का व्यजनिका यं अथवा प्रवीजिते श्वेतचामरे बालव्यजनिके च यं स तथा।

९/२०८. 'जहा उववाइए' त्ति करणादिदं दृश्यं–'कामत्थिया भोगत्थिया' कामौ–शुभशब्दरूपे भोगाः–शुभगन्धादयः 'लाभत्थिया' धनादिलाभार्थिनः 'इड्ढिसिय' त्ति रूढिगम्याः 'किट्टिसिय' त्ति किल्बिषिकः भाण्डादय इत्यर्थः, क्वचित् किट्टिसिकस्थाने 'किव्विसिय' त्ति पठ्यते 'कारोडिया' कापालिकाः 'कारवाहिया' कारं–राजदेयं द्रव्यं वहन्तीत्येवंशीलाः कारवाहिनस्त एव कारवाहिकाः करवाधिना वा 'संखिया' चन्दनगर्भशङ्खहस्ता माङ्गल्यकारिणः शङ्खवादका वा 'चक्किया' चाक्रिकाः–चक्रप्रहरणाः कुम्भकारादयो वा 'नंगलिया' गलावलम्बितसुवर्णादिमयलाङ्गलप्रतिकृतिधारिणो भट्टविशेषाः कर्षका वा 'मुहमंगलिया' मुखे मङ्गलं येषामस्ति ते मुखमङ्गलिकाः–चाटुकारिणः 'वद्धमाणा' स्कन्धारोपितपुरुषाः 'पूसमाणवा' मागधाः 'इज्जिसिया पिंडिसिया घंटिय' त्ति क्वचिद्दृश्यते, तत्र च इज्यां–पूजामिच्छन्त्येषयन्ति वा ये ते इज्यैषास्त एव स्वार्थिके कप्रत्ययविधानाद् इज्यैषिकाः, एवं पिण्डैषिका अपि, नवरं पिण्डो–भोजनं, घाण्टिकास्तु ये घण्टया चरन्ति तां वा वादयन्तीति, 'ताहिं' ति ताभिर्विवक्षिताभिरित्यर्थः, विवक्षितत्वमेवाह–'इट्ठाहिं' इष्यन्ते स्मेतीष्टास्ताभिः, प्रयोजनवशादिष्टमपि किञ्चित्स्वरूपतः कान्तं स्यादकान्तं चेत्यत आह–'कंताहिं' कमनीयशब्दाभिरित्यर्थः 'पियाहिं' प्रियार्थाभिः 'मणुन्नाहिं' मनसा ज्ञायन्ते सुन्दरतया यास्ता मनोज्ञा भावतः सुन्दरा इत्यर्थः ताभिः 'मणामाहिं' मनसाऽभ्यन्ते–गम्यन्ते पुनः पुनर्याः सुन्दरत्वातिशयात्ता मनोऽमास्ताभिः। 'ओरालाहिं' उदाराभिः शब्दतोऽर्थतश्च 'कल्लाणाहिं' कल्याणप्राप्तिसूचिकाभिः 'सिवाहिं' उपद्रवरहिताभिः शब्दार्थदूषणरहिताभिरित्यर्थः 'धन्नाहिं' धनलाभिकाभिः 'मंगल्लाहिं' मङ्गले–अनर्थप्रतिघाते साध्वीभिः 'सस्सिरीयाहिं' शोभायुक्ताभिः 'हिययगमणिज्जाहिं' गम्भीरार्थतः सुबोधाभिरित्यर्थः 'हिययपल्हायणिज्जाहिं' हृदयगतकोपशोकादिग्रन्थिविलयनकरीभिरित्यर्थः 'मियमहुरगंभीरगाहियाहिं' मिताः–परिमिताक्षरा मधुराः–कोमलशब्दाः गम्भीरा–महाध्वनयो दुरवधार्यमप्यर्थं श्रोतॄन् ग्राहयन्ति यास्ता ग्राहिकास्ततः पदचतुष्टयस्य कर्म्मधारयोऽतस्ताभिः 'मियमहुरगंभीरसस्सिरीयाहिं' ति क्वचिद् दृश्यते, तत्र च मिताः अक्षरतो मधुराः शब्दतो गम्भीरा–अर्थतो ध्वनितश्च स्वश्रीः–आत्मसम्पद् यासां तास्तथा ताभिः 'अट्ठसइयाहिं' अर्थशतानि यासु सन्ति ता अर्थशतिकास्ताभिः, अथवा सह–बहुफलत्वं अर्थतः सइयाओ अट्ठसइयाओ 'ताहिं अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं' वाग्भिर्गीर्भिरेकार्थिकानि वा प्राय इष्टादीनि वाग्विशेषणानीति 'अणवरयं' सन्ततम् 'अभिनंदंता ये' त्यादि तु लिखितमेवास्ते। तत्र चाभिनन्दयन्तो–जय जीवेत्यादि भणन्तोऽभिवृद्धिमाचक्षाणाः 'जय जये' त्यार्षत्वेवचनं भक्तिसम्भ्रमे च द्विर्वचनं 'नंदा धम्मेणं' ति 'नन्द' वर्द्धस्व धर्मेण एवं तपसाऽपि, अथवा जय जय विपक्षं, केन?–धर्मेण हे नन्द! इत्येवमक्षरघटनेति 'जय जय नंदा! भद्दं ते' जय त्वं हे जगन्नन्दिकर! भद्रं ते भवतादिति गम्यं 'जियविग्घोऽवि य' त्ति जितविघ्नश्च 'वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे' त्ति वस त्वं हे देव! सिद्धिमध्ये देवसिद्धिमध्ये वा 'निहणाहि ये' त्यादि निर्घातय च रागद्वेषमल्लौ तपसा, कथम्भूतः सन्? इत्याह–धृतिरेव धनिकं अत्यर्थं बद्धा कक्षा (कच्छोटः) येन स तथा, मल्लो हि मल्लान्तरजयसमर्थो भवति गाढबद्धकक्षः सन्निति कृत्वोक्तं 'धिइधणिए' त्यादि, तथा 'अप्पमत्तो' इत्यादि, 'हराहि' त्ति गृहाण आराधना–ज्ञानादिसम्यक्पालना सैव पताका जयप्रासनटग्राह्या आराधनापताका तां त्रैलोक्यमेव रङ्गमध्यं–मल्लयुद्धद्रष्टृमहाजनमध्यं तत्र। 'हंता परीसहचमूं' ति हत्वा परीषहसैन्यं, अथवा 'हन्ता' घातकः परीषहचम्वा इति विभक्तिपरिणामात् शीलार्थकतृन्नन्तत्वाद्वा हन्ता परीषहचमूमिति 'अभिभविय' त्ति अभिभूय–जित्वा-'गामकंटकोवसग्गाणं' ति इन्द्रियग्रामप्रतिकूलोपसर्गानित्यर्थः णं वाक्यालङ्कारे अथवा 'अभिभविता' जेता ग्रामकण्टकोपसर्गाणामिति, किं बहुना?–'धम्मे ते' इत्यादि॥

९/२०९. 'नयणमालासहस्सेहिं' ति नयनमालाः–श्रेणीभूतजननेत्रपङ्क्तयः 'एवं जहा उववाइए' त्ति अनेन यत्सूचितं तदिदं–'वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २ हिययमाला-सहस्सेहिं अभिनंदिज्जमाणे २' जनमनःसमूहैः समृद्धिमुपनीयमानो जय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव नन्देत्यादिपर्यालोचनादिति भावः 'मणोरहमालासहस्सेहिं णिच्छिप्पमाणे २' एतस्य पादमूले वत्स्याम इत्यादिभिर्जनविकल्पैर्विशेषेण स्पृश्यमान इत्यर्थः 'कंतिरूवसोहग्गजोव्वणगुणेहिं पत्थिज्जमाणे २' कान्त्यादिभिर्गुणैर्हेतुभूतैः प्रार्थ्यमानो भर्तृतया स्वामितया वा जनैरिति 'अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २' 'दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छेमाणे २ भवणभित्तीं (पन्ती) सहस्साइं' 'समइच्छिमाणे २' समतिक्रामन्नित्यर्थः 'तंतीतलतालगीयवाइयरवेणं तन्त्री–वीणा तलाः–हस्ताः तालाः–कांसिकाः तलतालाः वा–हस्ततालाः गीतवादिते–प्रतीते एषां यो रवः स तथा तेन 'महुरेणं मणहरेणं' 'जय जय सद्दुग्घोसमीसएणं' जयेतिशब्दस्य यद् उद्घोषणं तेन मिश्रो यः स तथा तेन तथा 'मंजुमंजुणा घोसेणं' अतिकोमलेन ध्वनिना स्तावकलोकसम्बन्धिना नूपुरादिभूषणसम्बन्धिना वा 'अप्पडिबुज्झमाणे' त्ति अप्रतिबुद्ध्यमानः–शब्दान्तराण्यनवधारयन् अप्रत्युह्यमानो वा–अनपह्रियमाणमानसो वैराग्यगतमानसत्वादिति 'कंदरगिरिविवरकुहरगिरिवरपासादुद्धवणभवणदेवकुलसिंघाडगतिगचउक्कचच्चरआरामुज्जाणकाणणसभप्पवप्पदेसदेसभागे' त्ति कन्दराणि–भूमिविवराणि गिरीणां विवरकुहराणि–गुहाः पर्वतान्तराणि वा गिरिवराः–प्रधानपर्वताः प्रासादाः–सप्तभूमिकादयः ऊर्ध्वघनभवनानि–उच्चाविरलगेहानि–देवकुलानि प्रतीतानि शृङ्गाटकत्रिकचतुष्कचत्वराणि प्राग्वत् आरामाः–पुष्पजातिप्रधाना वनखण्डाः उद्यानानि–पुष्पादिमद्वृक्षयुक्तानि काननानि–नगराद् दूरवर्तीनि सभा–आस्थायिकाः प्रपा–जलदानस्थानानि एतेषां ये प्रदेशदेशरूपा भागास्ते तथा तान्, तत्र प्रदेशा–लघुतरा भागाः देशास्तु महत्तराः। अयं पुनर्दण्डकः क्वचिदन्यथा दृश्यते–'कंदरदरिकुहरविवरगिरिपायारट्टालचरियदारगोउरपासायदुवारभवणदेवकुलआरामुज्जाणकाणणसभपवएसु' त्ति प्रतीतार्थश्चायं, 'पडिसुयासयसहस्ससंकुले करेमाणे' त्ति प्रतिश्रुच्छतसहस्रसङ्कुलान् प्रतिशब्दलक्षसङ्कुलानित्यर्थः कुर्वन् कुर्वन् निर्गच्छतीति सम्बन्धः। 'हयहेसियहत्थिगुलुगुलाइयरहघणघणाइयसद्दमीसएणं महया कलकलरवेण य जणस्स सुमहुरेणं पूरेंतोऽंबरं समंता सुयंधवरकुसुमचुन्नउव्विद्धवासरेणुम्इलं णंभं करेंते' सुगन्धीनां–वरकुसुमानां चूर्णानां च 'उव्विद्धः' ऊर्ध्वगतो यो वासरेणुः–वासकं रजस्तेन मलिनं यत्तत्तथा। 'कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवनिवहेण जीवलोगमिव वासयंते' कालागुरुः–गन्धद्रव्यविशेषः प्रवरकुन्दुरुक्कं–वरचीडा तुरुक्कं–सिल्हकं धूपः–तदन्यः एतल्लक्षणो वा एषामेतस्य वा यो निवहः स तथा तेन जीवलोकं वासयन्निवेति 'समंतओ खुब्भियचक्कवालं' क्षुभितानि चक्रवालानि–जनमण्डलानि यत्र गमने तत्तथा तद्यथा भवत्येवं निर्गच्छतीति सम्बन्धः। 'पउरजणबालवुड्ढपमुइयतुरियपहाविय विउलाउलबोलबहुलं नभं करेंते' पौरजनाश्च अथवा प्रचुरजनाश्च बाला वृद्धाश्च ये प्रमुदिताः त्वरितप्रधाविताश्च–शीघ्रं गच्छन्तस्तेषां व्याकुला-कुलानां अतिव्याकुलानां यो बोलः स बहुलो यत्र तत्तथा तदेवम्भूतं नभः कुर्वन्निति 'खत्तियकुंडग्गामस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं' ति शेषं तु लिखितमेवास्त इति॥

९/२१०. 'पउमेइ व' त्ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'कुमुदेइ वा नलिणेइ वा सुभगेइ वा सोगंधिएइ वा' इत्यादि, एषां च भेदो रूढिगम्यः, 'कामेहिं जाए' त्ति कामेषु–शब्दादिरूपेषु जातः 'भोगेहिं संवुड्ढे' त्ति भोगा–गन्धरसस्पर्शास्तेषु मध्ये संवृद्धो–वृद्धिमुपगतः 'नोवलिप्पइ कामरएणं' त्ति कामलक्षणं रजः कामरजस्तेन कामरजसा कामरतेन वा–कामानुरागेण 'मित्तनाई' इत्यादि, मित्राणि–प्रतीतानि ज्ञातयः–स्वजातीयाः निजका–मातुलादयः स्वजनाः–पितृपितृव्यादयः सम्बन्धिनः श्वशुरादयः परिजनो–दासादिः, इह समाहारद्वन्द्वस्तत्तस्तेन नोपलिप्यते–स्नेहतः सम्बद्धो न भवतीत्यर्थः।

९/२१३. 'हारवारि' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'धारासिंदुवारच्छिन्नमुत्तावलिपयासाइं अंसूणि' त्ति। 'जइयव्वं' ति प्राप्तेषु संयमयोगेषु प्रयत्नः कार्यः 'जाया!' हे पुत्र! 'घडियव्वं' ति अप्राप्तानां संयमयोगानां प्राप्तये घटना कार्या 'परिक्कमियव्वं' ति पराक्रमः कार्यः पुरुषत्वाभिमानः सिद्धफलः कर्त्तव्य इति भावः, किमुक्तं भवति?–'अस्सिं चे' त्यादि, अस्मिंश्चार्थे–प्रव्रज्यानुपालनलक्षणे न प्रमादयितव्यमिति।

९/२१४. 'एवं जहा उसभदत्तो' इत्यनेन यत्सूचितं तदिदं– 'तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं पकरेइ पकरेइ वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– आलित्ते णं भंते! लोए' इत्यादि, व्याख्यातं चेदं प्रागिति।

९/२१७. 'नो आढाइ' त्ति नादियते तत्रार्थे नादरवान् भवति 'नो परिजाणइ' त्ति न परिजानातीत्यर्थः भाविदोषत्वेनोपेक्षणीयत्वात्तस्येति॥

९/२२४. 'अरसेहि य' त्ति हिङ्ग्वादिभिरसंस्कृतत्वादविद्यमानरसैः 'विरसेहि य' त्ति पुराणत्वाद्विगतरसैः 'अंतेहि य' त्ति अरसतया सर्वधान्यान्तवर्त्तिभिर्वल्लचणकादिभिः 'पंतेहि य' त्ति तैरेव भुक्तावशेषत्वेन पर्युषितत्वेन वा प्रकर्षेणान्तवर्त्तित्वात्प्रान्तैः 'लूहेहि य' त्ति रूक्षैः 'तुच्छेहि य' त्ति अल्पैः 'कालाइक्कंतेहि य' त्ति तृष्णाबुभुक्षाकालाप्राप्तैः। 'पमाणाइक्कंतेहि य' त्ति बुभुक्षापिपासामात्रानुचितैः 'रोगायंके' त्ति रोगो–व्याधिः स चासावातङ्कश्च–कृच्छ्रजीवितकारीति रोगातङ्कः 'उज्जले' त्ति उज्ज्वलो–विपक्षलेशेनाप्यकलङ्कितत्वात् 'तिउले' त्ति त्रीनपि मनःप्रभृतिकानर्थान् तुलयति–जयतीति त्रितुलः क्वचिद्विपुल इत्युच्यते, तत्र विपुलः सकलकायव्यापकत्वात्, 'पगाढे' त्ति प्रकर्षवृत्तिः 'कक्कसे' त्ति कर्क्कशद्रव्यमिव कर्क्कशोऽनिष्ट इत्यर्थः 'कडुए' त्ति कटुकं नागरादि तदिव यः स कटुकोऽनिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवेति 'चंडे' त्ति रौद्रः 'दुक्खे' त्ति दुःखहेतुः 'दुग्गे' त्ति कष्टसाध्य इत्यर्थः 'तिव्वे' त्ति तीव्रं—तिक्तं निम्बादिद्रव्यं तदिव तीव्रः, किमुक्तं भवति?— 'दुरहियासे' त्ति दुरधिसह्यः 'दाहवक्कंतिए' त्ति दाहो व्युत्क्रान्तः—उत्पन्नो यस्यासौ दाहव्युत्क्रान्तः स एव दाहव्युत्क्रान्तिकः।

९/२२५. 'सेज्जासंथारगं' ति शय्यायै—शयनाय संस्तारकः शय्यासंस्तारकः॥

९/२२७. 'बलियतरं' ति गाढतरं 'किं कडे कज्जइ' त्ति किं निष्पन्न उत निष्पाद्यते?, अनेनातीतकाल-निर्देशेन वर्त्तमानकालनिर्देशेन च कृतक्रियमाणयोर्भेद उक्तः, उत्तरेऽप्येवमेव, तदेवं संस्तारक-कर्तृसाधुभिरपि क्रियमाणस्याकृततोक्ता।

९/२२८. ततश्चासौ स्वकीयवचनसंस्तारककर्तृसाधुवचन-योर्विमर्शात् प्ररूपितवान्—क्रियमाणं कृतं यदभ्युपगम्यते तत्र सङ्गच्छते, यतो येन क्रियमाणं कृतमित्यभ्युपगतं तेन विद्यमानस्य करणक्रिया प्रतिपन्ना, तथा च बहवो दोषाः, तथाहि—यत्कृतं तत्क्रियमाणं न भवति, विद्यमानत्वा-च्चिरन्तनघटवत्, अथ कृतमपि क्रियते ततः क्रियतां नित्यं कृतत्वात् प्रथमसमय इवेति, न च क्रियासमाप्तिर्भवति सर्वदा क्रियमाणत्वादादिसमयवदिति, तथा यदि क्रियमाणं कृतं स्यात्तदा क्रियावैफल्यं स्याद् अकृतविषय एव तस्याः सफलत्वात्, तथा पूर्वमसदेव भवददृश्यते इत्यध्यक्षविरोधश्च, तथा घटादिकार्य-निष्पत्तौ दीर्घः क्रियाकालो दृश्यते, यतो नारम्भकाल एव घटादिकार्यं दृश्यते नापि स्थासकादिकाले, किं तर्हि, तत्क्रियाऽवसाने, यतश्चैवं ततो न क्रियाकालेषु युक्तं कार्यं किन्तु क्रियाऽवसान एवेति, आह च भाष्यकारः—

"जस्सेह कज्जमाणं कयंति तेणेव विज्जमाणस्स।
करणकिरिया पवन्ना तहा य बहुदोसपडिवत्ती॥१॥
कयमिह न कज्जमाणं तब्भावाओ चिरंतणघडोव्व।
अहवा कयंपि कीरइ कीरउ निच्चं न य समत्ती॥२॥
किरियावेफल्लंपि य पुव्वमभूयं च दीसए हुंतं।
दीसइ दीहो य जओ किरियाकालो घडाईणं॥३॥
नारंभे च्चिय दीसइ न सिवादद्धाइ दीसइ तदंते।
तो नहि किरियाकाले जुत्तं कज्जं तदंतंमि॥४॥'

इति।

९/२२९. 'अत्थेगइया समणा णिग्गंथा एयमट्ठं णो सद्दहंति' त्ति ये च न श्रद्दधति तेषां मतमिदं—नाकृतं अभूतमविद्यमानमित्यर्थः क्रियते अभावात्। खपुष्पवत्, यदि पुनरकृतमपि उत्सदर्पीत्यर्थः क्रियते तदा खरविषाणमपि क्रियतामसत्त्वाविशेषात्, अपि च—ये कृतकरणपक्षे नित्यक्रियादयो दोषा भणितास्ते च असत्करण-पक्षेऽपि तुल्या वर्त्तन्ते, तथाहि—नात्यन्तमसत् क्रियतेऽसद्भावात् खरविषाणमिव, अथात्यन्तासदपि क्रियते तदा नित्यं तत्करण-प्रसङ्गः, न चात्यन्तासतः करणे क्रियासमाप्तिर्भवति, तथाऽत्य-न्तासतः करणे क्रियावैफल्यं च स्यादसत्त्वादेव खरविषाणवत्, अथ च अविद्यमानस्य करणाभ्युपगमे नित्यक्रियादयो दोषाः कष्टतरका भवन्ति, अत्यन्ताभावरूपत्वात् खरविषाण इवेति, विद्यमानपक्षे तु पर्यायविशेषेणापर्ययणात् स्यादपि क्रिया-व्यपदेशो यथाऽऽकाशं कुरु, तथा च नित्यक्रियादयो दोषा न भवन्ति, न पुनरयं न्यायोऽत्यन्तासति खरविषाणादावर्स्तीति, यच्चोक्तं—'पूर्वमसदेवोत्पद्यमानं दृश्यत इति प्रत्यक्षविरोधः', तत्रोच्यते, यदि पूर्वमभूतं सद्भवद्दृश्यते तदा पूर्वमभूतं सद्भवत् कस्मात्त्वया खरविषाणमपि न दृश्यते, यच्चोक्तं—'दीर्घः क्रियाकालो दृश्यते, तत्रोच्यते', प्रतिसमयमुत्पन्नानां परस्परे-णेषद्विलक्षणानां सुबहूनां स्थासकोसादीनामारम्भसमयेष्वेव निष्ठानुयायिनीनां कार्यकोटीनां दीर्घः क्रियाकालो यदि दृश्यते तदा किमत्र घटस्यायातं? येनोच्यते—दृश्यते दीर्घश्च क्रियाकालो घटादीनामिति, यच्चोक्तं—'नारम्भ एव दृश्यते' इत्यादि, तत्रोच्यते, कार्यान्तरारम्भे कार्यान्तरं कथं दृश्यतां पटारम्भे घटवत्?, शिवकस्थासकादयश्च कार्यविशेषा घटस्वरूपा न भवन्ति, ततः शिवकादिकाले कथं घटो दृश्यतामिति?, किंच—अन्त्यसमय एव घटः समारब्धः?, तत्रैव च यद्यसौ दृश्यते तदा को दोषः?, एवं च क्रियमाण एव कृतो भवति, क्रियमाणसमयस्य निरंशत्वात्, यदि च संप्रतिसमये क्रियाकालेऽप्यकृतं वस्तु तदाऽतिक्रान्ते कथं क्रियतां कथं वा एष्यति? क्रियाया उभयोरपि विनष्टत्वानुत्पन्नत्वेनासत्त्वाद-सम्बध्यमानत्वात्, तस्मात् क्रियाकाल एव क्रियमाणं कृतमिति, आह च—

"थेराण मयं नाकयमभावओ कीरए खपुप्फं व।
अहव अकयंपि कीरइ कीरउ तो खरविसाणंपि॥१॥

---

१. यस्येह क्रियमाणं कृतमिति मतं तेनेह विद्यमानस्य करणक्रियाऽङ्गीकृता तथा च बहुदोषापत्तिः॥१॥ इह कृतं न क्रियमाणं तद्भावाच्चिरन्तनघट इव। अथवा कृतमपि चेत् क्रियते करोतु नित्यं न च समाप्तिः॥२॥ क्रियावैफल्यमपि च पूर्वमभूतं च भवददृश्यते (दृष्टापलापः) यतो घटादीनां क्रियाकालश्च दीर्घो दृश्यते॥३॥ न चारम्भे दृश्यते (घटादि) न स्यासकाद्यवस्थायां किन्तु तदंते ततः क्रियाकाले कार्यं न युक्तं युक्तम् तदन्त एव॥४॥

२. खपुष्पमिवाकृतं न क्रियतेऽभावादिति स्थविरमतम्। अथ चाकृतमपि क्रियते तदा खरविषाणमपि क्रियताम्॥१॥ नित्यक्रियादयो दोषा ननु तुल्या असति कष्टतरका वा। खरविषाणमपि पूर्वमभूतं त्वया किं न दृश्यते?॥२॥ प्रतिसमयोत्पन्नानां सुबहूनां परस्परविलक्षणानां। क्रियाणां कालो दीर्घो यदि दृश्यते कुम्भस्य किम्?॥३॥ अन्यारम्भेऽन्यत् कथं दृश्यताम्? यथा पटारम्भे घटः। शिवकादयो न कुभो दृश्यन्ते कथं स तत्काले?॥४॥ अन्त एवं यदारब्धोऽन्त एव यदि दृश्यते को दोषः। वर्त्तमानेऽकृतं च चेत्कथं अतीते क्रियतां? कथं चैष्यति कालं? भविष्यति॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निच्चकिरियाइ दोसा नणु तुल्ला असइ कट्ठतरया वा।
पुव्वमभूयं च न ते दीसइ किं खरविसाणंपि?॥२॥
पइसमउप्पन्नाणं परोप्पर-विलक्खणाण सुबहूणं।
दीहो किरियाकालो जइ दीसइ किं च कुंभस्स॥३॥
अन्नारंभे अन्नं किह दीसउ? जह घडो पडारंभे।
सिवगादओ न कुंभो किह दीसउ सो तदद्धाए?॥४॥
अंते च्चिय आरद्धो जइ दीसइ तंमि चेव को दोसो?।
अकयं च संपइ गए किहु कीरउ किह व एसंमि?॥५॥'

इत्यादि बहु वक्तव्यं तच्च विशेषावश्यकादवगन्तव्यमिति।

९/२३०. 'छउमत्थावक्कमणेणं' ति छद्मस्थानां सतामपक्रमणं–गुरुकुलान्निर्गमनं छद्मस्थापक्रमणं तेन।

९/२३१. 'आवरिज्जइ' त्ति ईषद्व्रियते 'निवारिज्जइ' त्ति नितरां वार्यते प्रतिहन्यत इत्यर्थः।

९/२३३. 'न कयाइ नासी' त्यादि तत्र न कदाचिन्नासीदनादित्वात् न कदाचिन्न भवति सदैव भावात् न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि?, 'भुविं चे' त्यादि ततश्चायं त्रिकालभावित्वेनाचलत्वाद् ध्रुवो मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव 'नियतः' नियताकारो नियतत्वादेव शाश्वतः प्रतिक्षणमप्यसत्त्वस्याभावात् शाश्वतत्वादेव 'अक्षयः' निर्विनाशः, अक्षयत्वादेवाव्ययः प्रदेशापेक्षया, अवस्थितो द्रव्यापेक्षया, नित्यस्तदुभयापेक्षया, एकार्थाः वैते शब्दाः।

९/२३५. 'आयाए' त्ति आत्मना 'असब्भावुब्भावणाहिं' त्ति असद्भावानां–वितथार्थानामुद्भावना–उत्प्रेक्षणानि असद्भावोद्भावनास्ताभिः 'मिच्छत्ताभिनिवेसेहिं य' त्ति मिथ्यात्वान् मिथ्यादर्शनोदयाद् येऽभिनिवेशा–आग्रहास्ते तथा तैः 'वुग्गाहेमाणे' त्ति व्युग्राहयन् विरुद्धग्रहवन्तं कुर्वन्नित्यर्थः 'वुप्पाएमाणे' त्ति व्युत्पादयन् दुर्विदग्धीकुर्वन्नित्यर्थः।

९/२४०. 'केसु कम्मादाणेसु' त्ति केषु कर्महेतुषु सत्स्वित्यर्थः 'अजसकारगे' त्यादौ सर्वदिग्गामिनी प्रसिद्धिर्यशस्तत्प्रतिषेधादयशः, अवर्णस्त्वप्रसिद्धिमात्रम्, अकीर्तिः पुनरेकदिग्गामिन्यप्रसिद्धिरिति।

९/२४२. 'अरसाहारे' त्यादि, इह च 'अरसाहारे' इत्याद्यपेक्षया 'अरसजीवी' त्यादि न पुनरुक्तं शीलादिप्रत्ययार्थेन भिन्नार्थत्वादिति, 'उवसंतजीवि' त्ति उपशान्तोऽन्तर्वृत्त्या जीवतीत्येवंशील उपशान्तजीवी, एवं प्रशान्तजीवी नवरं प्रशान्तो बहिर्वृत्त्या, 'विवित्तजीवि' त्ति इह विविक्तः स्त्र्यादिसंसक्तासनादिवर्जनत इति। अथ भगवता श्रीमन्महावीरेण सर्वज्ञत्वादमुं तद्व्यतिकरं जानताऽपि किमिति प्रव्राजितोऽसौ? इति, उच्यते, अवश्यम्भाविभावानां महानुभावैरपि प्रायो लङ्घयितुमशक्यत्वाद् इत्थमेव वा गुणविशेषदर्शनाद्, अमूढलक्षा हि भगवन्तोऽर्हन्तो न निष्प्रयोजनं क्रियासु प्रवर्त्तन्त इति॥

नवमशते त्रयस्त्रिंशत्तम उद्देशकः समाप्तः॥९/३३॥

चतुस्त्रिंशत्तम उद्देशकः

अनंतरोद्देशके गुरुप्रत्यनीकतया स्वगुणव्याघात उक्तश्चतुस्त्रिंशत्तमे तु पुरुषव्याघातेन तदन्यजीवव्याघात उच्यत इत्यैवंसंबद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

९/२४६-२४७. 'तेणं' मित्यादि, 'नोपुरिसं हणइ' त्ति पुरुषव्यतिरिक्तं जीवान्तरं हन्ति 'अणेगे जीवे हणइ' त्ति 'अनेकान् जीवान्' यूकाशतपदिकाकृमिगण्डोलकादीन् तदाश्रितान् तच्छरीरावष्टब्धांस्तद्रुधिरप्लावितादींश्च हन्ति, अथवा स्वकायस्याकुञ्चनप्रसारणादिनेति, 'छणइ' त्ति क्वचित्पाठस्तत्रापि स एवार्थः, क्षणधातोर्हिंसार्थत्वात्, बाहुल्याश्रयं चेदं सूत्रं, तेन पुरुषं घ्नन् तथाविधसामग्रीवशात् कञ्चित्तमेव हन्ति कञ्चिदेकमपि जीवान्तरं हन्तीत्यपि द्रष्टव्यं, वक्ष्यमाणभङ्गकत्रयान्यथाऽनुपपत्तेरिति।

९/२४८. 'एते सव्वे एक्कगमा' 'एते हस्त्यादयः 'एकगमाः' सदृशाभिलापाः।

९/२४९,२५०. 'इसिं' ति ऋषिम् 'अणंते जीवे हणइ' त्ति ऋषिं घ्नन्ननन्तान् जीवान् हन्ति, यतस्तद्घातेऽनन्तानां घातो भवति, मृतस्य तस्य विरतेर्-भावेनानन्तजीवघातत्वभावात्, अथवा ऋषिर्जीवन् बहून् प्राणिनः प्रतिबोधयति, ते च प्रतिबुद्धाः क्रमेण मोक्ष-मासादयन्ति, मुक्ताश्चानन्तानामपि संसारिणामघातका भवन्ति, तद्वधे चैतत्सर्वं न भवत्यतस्तद्वधेऽनन्तजीववधो भवतीति, 'निक्खेवओ' त्ति निगमनं।

९/२५१. 'नियमा पुरिसवेरेणं' त्यादि, पुरुषस्य हतत्वान्नियमात्पुरुषवधपापेन स्पृष्ट इत्येको भङ्गः, तत्र च यदि प्राण्यन्तरमपि हतं तदा पुरुषवैरेण नोपुरुषवैरेण चेति द्वितीयः, यदि तु बहवः प्राणिनो हतास्तत्र तदा पुरुषवैरेण नोपुरुषवैरैश्चेति तृतीयः, एवं सर्वत्र त्रयम्।

९/२५२. ऋषिपक्षे तु ऋषिवैरेण नोऋषिवैरैश्चेत्येवमेक एव, ननु यो मृतो मोक्षं यास्यत्यविरतो न भविष्यति तस्यर्षेर्वधे ऋषिवैरमेव भवत्यतः प्रथमविकल्पसम्भवः, अथ चरमशरीरस्य निरुपक्रमायुष्यकत्वान्न हननसम्भवस्ततोऽचरमशरीरापेक्षया यथोक्तभङ्गकसम्भवो, नैवं, यतो यद्यपि चरमशरीरो निरुपक्रमायुष्कस्तथाऽपि तद्वधाय प्रवृत्तस्य यमुनराजस्येव वैरमस्त्येवेति प्रथमभङ्गकसम्भव इति, सत्यं, किन्तु यस्य ऋषेः सोपक्रमायुष्कत्वात् पुरुषकृतो वधो भवति तमाश्रित्येदं सूत्रं प्रवृत्तं, तस्यैव हननस्य मुख्यवृत्त्या पुरुषकृतत्वादिति॥

प्राग् हननमुक्तं, हननं चोच्छ्वासादिवियोगऽत उच्छ्वासादिवक्तव्यतामाह–

९/२५३-२५७. 'पुढविक्काइए णं भंते' इत्यादि, इह पूज्यव्याख्या यथा वनस्पतिरन्ययोपर्यन्यः स्थितस्तत्तेजोग्रहणं करोति एवं पृथिवीकायिकादयोप्यन्योन्यसंबद्धत्वात्तद्रूपं प्राणापानादि कुर्वन्तीति, तत्रैकः पृथिवीकायिकोऽन्यं स्वसंबद्धं पृथिवीकायिकम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिति–तद्रूपमुच्छ्वासं करोति। यथोदर-स्थितकर्प्पूरः पुरुषः कर्पूरस्वभावमुच्छ्वासं करोति, एवमप्य-कायादिकानिति। एवं पृथिवीकायिकसूत्राणि पञ्च, एवमेवाप्कायादयः प्रत्येकं पञ्च सूत्राणि लभन्त इति पञ्चविंशतिः सूत्राण्येतानीति।

९/२५८-२६०. क्रियासूत्राण्यपि पञ्चविंशतिस्तत्र 'सिय तिकिरिए' त्ति यदा पृथिवीकायिकादिः पृथिवीकायिकादिरूपमुच्छ्वासं कुर्वन्नपि न तस्य पीडामुत्पादयति स्वभावविशेषात्तदाऽसौ कायिक्यादित्रिक्रियः स्यात्, यदा तु तस्य पीडामुत्पादयति तदा पारितापनिकीक्रियाभावाच्चतुष्क्रियः, प्राणातिपातसद्भावे तु पञ्चक्रिय इति॥

क्रियाधिकारादेवेदमाह–

९/२६१. 'वाउक्काइए ण' मित्यादि, इह च वायुना वृक्षमूलस्य प्रचलनं प्रपातनं वा तदा संभवति यथा नदीभित्त्यादिषु पृथिव्याः अनावृत्तं तत्स्यादिति। अथ कथं प्रपातेन त्रिक्रियत्वं परितापादेः सम्भवात्?, उच्यते, अचेतनमूलापेक्षयेति॥

नवमशते चतुस्त्रिंशत्तमः

अस्मन्मनोव्योमतलप्रचारिणा,श्रीपार्श्वसूर्यस्य विसर्प्पितेजसा।
दुर्धृष्यसमोहतमोऽपसारणाद्,विभक्तमेवं नवमं शतं मया॥१॥

॥ **समाप्तं नवमं शतम्॥१॥**

॥ इति श्रीमदभयदेवसूरिविरचितवृत्तियुतं नवमं शतकं समाप्तं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ दशमं शतकम्

व्याख्यातं नवमं शतम्, अथ दशमं व्याख्यायते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–अनन्तरशते जीवादयोऽर्थाः प्रतिपादिताः इहापि त एव प्रकारान्तरेण प्रतिपाद्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्योद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथेयम्–

'दिसे' त्यादि, 'दिस' त्ति दिशमाश्रित्य प्रथम उद्देशकः १ 'संवुडअणगारे' त्ति संवृतानगारविषयो द्वितीयः २ 'आइड्ढि' त्ति आत्मर्द्ध्या देवो देवी वा वासान्तराणि व्यतिक्रामेदित्याद्यर्थाभिधायकस्तृतीयः ३ 'सामहत्थि' त्ति श्यामहस्त्यभिधानश्रीमन्महावीरशिष्यप्रश्नप्रतिबद्धश्चतुर्थः ४ 'देवि' त्ति चमरायग्रमहिषीप्ररूपणार्थः पञ्चमः ५ 'सभ' त्ति सुधर्म्मसभाप्रतिपादनार्थः षष्ठः ६ 'उत्तरअंतरदीवि' त्ति उत्तरस्यां दिशि येऽन्तरद्वीपास्तत्प्रतिपादनार्था अष्टाविंशति-रुद्देशकाः, एवं चादितो दशमे शते चतुस्त्रिंशदुद्देशका भवन्तीति॥

प्रथम उद्देशकः

१०/१. 'किमियं भंते! पाईणत्ति पवुच्चइ' त्ति किमेतद्वस्तु यत् प्रागेव प्राचीनं दिगविवक्षायां 'प्राचीं वा' प्राची पूर्वेति प्रोच्यते, उत्तरं तु जीवाश्चैव अजीवाश्चैव, जीवा–जीवरूपा प्राची, तत्र जीवा–एकेन्द्रियादयः अजीवास्तु–धर्मास्तिकायादिदेशादयः, इदमुक्तं भवति–प्राच्यां दिशि जीवा अजीवाश्च सन्तीति।

१०/२. 'इंदे' त्यादि, इन्द्रो देवता यस्याः सैन्द्री, अग्निर्देवता यस्याः साऽऽग्नेयी, एवं यमो देवता याम्या, निर्ऋतिर्देवता नैर्ऋती, वरुणो देवता वारुणी, वायुर्देवता वायव्या, सोमदेवता सौम्या, ईशानदेवता ऐशानी, विमलतया विमला, तमा–रात्रिस्तदाकारत्वात्तमाऽन्धकारेत्यर्थः। अत्र ऐन्द्री पूर्वा शेषाः क्रमेण, विमला तूर्ध्वा तमा पुनरधोदिगिति, इह च दिशः शकटोद्धिसंस्थिताः विदिशस्तु मुक्तावल्याकाराः ऊर्ध्वाधोदिशौ च रुचकाकारे, आह च–

''सगडुद्धिसंठियाओ महादिसाओ हवंति चत्तारि।
मुत्तावलीव चउरो दो चेव य होंति रुयगनिभे॥१॥'

इति।

१०/५. 'जीवावी' त्यादि, ऐन्द्री दिग् जीवा तस्यां जीवानामस्तित्वात्, एवं जीवदेशा जीवप्रदेशाश्चेति, तथाऽजीवानां पुद्गलादीनामस्तित्वादजीवाः धर्मास्तिकायादिदेशानां पुनरस्तित्वादजीवदेशाः एवमजीवप्रदेशा अपीति, तत्र ये जीवास्त एकेन्द्रियादयोऽनिन्द्रियाश्च केवलिनः, ये तु जीवदेशास्त एकेन्द्रियादीनाम् ६, एवं जीवप्रदेशा अपि, 'जे अरूवी अजीवा ते सत्तविह' त्ति कथं?, नोधम्मत्थिकाए, अयमर्थः–धर्मास्तिकायः समस्त एवोच्यते, स च प्राचीदिग् न भवति, तदेकदेशभूतत्वात्तस्याः, किन्तु धर्मास्तिकायस्य देशः, सा तदेकदेशभागरूपेति १, तथा तस्यैव प्रदेशाः सा भवति, असङ्ख्येयप्रदेशात्मकत्वात्तस्याः २, एवमधर्म्मास्तिकायस्य देशः प्रदेशाश्च ३-४, एवमाकाशास्तिकायस्यापि देशः प्रदेशाश्च ५-६, अद्धासमयश्चेति ७, तदेवं सप्तप्रकारारूप्यजीवरूपा ऐन्द्री दिगिति॥

१०/६. 'अग्गेयी ण' मित्यादिप्रश्नः, उत्तरे तु जीवा निषेधनीयाः, विदिशामेक-प्रदेशिकत्वादेकप्रदेशे च जीवानामवगाहाभावात्, असङ्ख्यात-प्रदेशावगाहित्वात्तेषां, तत्र 'जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेस' त्ति एकेन्द्रियाणां सकललोकव्यापकत्वादाग्नेय्यां नियमादे-केन्द्रियदेशाः सन्तीति, 'अहवे' त्यादि, एकेन्द्रियाणां सकललोकव्यापकत्वादेव द्वीन्द्रियाणां चाल्पत्वेन क्वचिदेकस्यापि तस्य सम्भवादुच्यते एकेन्द्रियाणां देशाश्च द्वीन्द्रियस्य देशश्चेति द्विकयोगे प्रथमः, अथवैकेन्द्रियपदं तथैव द्वीन्द्रियपदे त्वेकवचनं देशपदे पुनर्बहुवचनमिति द्वितीयः अयं च यदा द्वीन्द्रियो द्व्यादिभिर्देशैस्तां स्पृशति तदा स्यादिति, अथवैकेन्द्रियपदं तथैव द्वीन्द्रियपदं देशपदं च बहुवचनान्तमिति तृतीयः, स्थापना–'एगिं. देसा ३ बेइं १ देसे एगिं. देसा ३ बेइं १ देसा ३ एगिं. देसा ३ बेइं. ३ देसा३।' एवं त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियानिन्द्रियैः सह प्रत्येकं भङ्गकत्रयं दृश्यम्, एवं प्रदेशपक्षोऽपि वाच्यो, नवरमिह द्वीन्द्रियादिषु प्रदेशपदं बहुवचनान्तमेव, यतो लोकव्यापकावस्थानिन्द्रियवर्जजीवानां यत्रैकः प्रदेशस्तत्रासङ्ख्यातास्ते भवन्ति। लोकाव्यापकावस्थानिन्द्रियस्य पुनर्यद्यप्येकत्र क्षेत्रप्रदेशे एक एव प्रदेशस्तथाऽपि तत्प्रदेशपदे बहुवचनमेवाग्नेय्यां तत्प्रदेशानामसङ्ख्यातानामवगाढत्वाद्, अतः सर्वेषु द्विकयोगेष्वाद्यविरहितं भङ्गकद्वयमेव भवतीत्येतदेवाह–'आइल्लविरहिओ'–त्ति द्विकभङ्ग इति शेषः।

१०/७. 'विमलाए जीवा जहा अग्गेईए' त्ति विमलायामपि जीवानामनवगाहात् 'अजीवा जहा इंदाए' त्ति समानवक्तव्यत्वात्, 'एवं तमावि' त्ति विमलावत्तमाऽपि वाच्येत्यर्थः, अथ विमलायामनिन्द्रियसम्भवात्तद्देशादयो युक्तास्तमायां तु तस्यासम्भवात्कथं ते? इति, उच्यते, दण्डाद्यवस्थं तमाश्रित्य तस्य देशो देशाः प्रदेशाश्च विवक्षायां तत्रापि युक्ता एवेति। अथ तमायां विशेषमाह– 'नवर' मित्यादि, 'अद्धासमयो न भन्नइ' त्ति

---

१. शकटोद्धिसंस्थिताश्चतस्रो महादिशो भवन्ति चतस्रो।
मुक्तावल्येव चतसः, द्वे च रुचकनिभे भवतः॥१॥ (ऊर्ध्वाधोदिशौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयव्यवहारो हि सञ्चरिष्णुसूर्यादिप्रकाशकृतः स च तमायां नास्तीति तत्राद्धासमयो न भण्यत इत्यर्थः। अथ विमलायामपि नास्त्यसाविति कथं तत्र समयव्यवहारः? इति, उच्यते, मन्दरावयवभूयस्फटिककाण्डे सूर्यादिप्रभासङ्क्रान्तिद्वारेण तत्र सञ्चरिष्णुसूर्यादिप्रकाशभावादिति॥

अनन्तरं जीवादिरूपा दिशः प्ररूपिताः। जीवाश्च शरीरिणोऽपि भवन्तीति शरीरप्ररूपणायाह–

१०/८-९. 'कइ णं भंते! इत्यादि, 'ओगाहणसंठाणं' ति प्रज्ञापनायामेकविंशतितमं पदं, तच्चैवं–'पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा–एगिंदियओरालियशरीरे जाव पंचिंदियओरालियसरीरे इत्यादि, पुस्तकान्तरे त्वस्य सङ्ग्रहगाथोपलभ्यते, सा चेयम्–

'कइसंठाणपमाणं पोग्गलचिणणा सरीरसंजोगो।
दव्वपए-सप्पबहुं सरीरओगाहणाए या॥१॥'

तत्र च कतीति कति शरीराणीति वाच्यं, तानि पुनरौदारिकादीनि पञ्च, तथा 'संठाणं' ति औदारिकादीनां संस्थानं वाच्यं, यथा नानासंस्थानमौदारिकं, तथा 'पमाणं' ति एषामेव प्रमाणं वाच्यं, यथा–औदारिकं जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रमुत्कृष्टतस्तु सातिरेकयोजनसहस्रमानं, तथैषामेव पुद्गलचयो वाच्यो, यथौदारिकस्य निर्व्याघातेन षट्सु दिक्षु व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशीत्यादि, तथैषामेव संयोगो वाच्यो, यथा यस्यौदारिकशरीरं तस्य वैक्रियं स्यादस्तीत्यादि, तथैषामेव द्रव्यार्थप्रदेशार्थतयाऽल्पबहुत्वं, वाच्यं यथा 'सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए' इत्यादि, तथैषामेवावगाहनाया अल्पबहुत्वं वाच्यं, यथा 'सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहन्निया ओगाहणा' इत्यादि॥

दशमशते प्रथमोद्देशकः॥१०।१॥

द्वितीय उद्देशकः

अनन्तरोद्देशकान्ते शरीराण्युक्तानि शरीरी च क्रियाकारी भवतीति क्रियाप्ररूपणाय द्वितीय उद्देशकः, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१०/११. 'रायगिहे' इत्यादि, तत्र 'संवुडस्स' त्ति संवृतस्य सामान्येन प्राणातिपातद्याश्रवद्वारसंवरोपेतस्य 'वीईपंथे ठिच्चे' ति वीचिशब्दः सम्प्रयोगे, स च सम्प्रयोगोर्द्वयोर्भवति, ततश्चेह कषायाणां जीवस्य च सम्बन्धो वीचिशब्दवाच्यः ततश्च वीचिमतः कषायवतो मतुप्प्रत्ययस्य षष्ठ्याश्च लोपदर्शनात्, अथवा 'विचिर् पृथग्भावे' इति वचनाद् विविच्य–पृथग्भूय यथाऽऽख्यातसंयमात् कषायोदयमनपवार्येत्यर्थः, अथवा विचिन्त्य रागादिविकल्पादित्यर्थः, अथवा विरूपा कृतिः–क्रिया सरागत्वात् यस्मिन्नवस्थाने तद्विकृति यथा भवतीत्येवं स्थित्वा 'पंथे' ति मार्गे 'अवयक्खमाणस्स' त्ति अवकाङ्क्षतोऽपेक्षमाणस्य वा, पथिग्रहणस्य चोपलक्षणत्वादन्यत्राप्याधारे स्थित्वेति द्रष्टव्यं, 'नो ईरियावहिया किरिया कज्जइ' त्ति न केवलयोगप्रत्यया कर्म्मबन्धक्रिया भवति सकषायत्वानस्येति।

१०/१२. 'जस्स णं कोहमाणमायालोभा' इह 'एवं जहे' त्यादतिदेशादिदं दृश्यं–'वोच्छिन्ना भवंति तस्स णं ईरियावहिया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोहमाणमायालोभा अवोच्छिन्ना भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ, अहासुत्तं रीयं रीयमाणस्स ईरियावहिया किरिया कज्जइ, उस्सुत्तं रीयं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ' त्ति व्याख्या चास्य प्राग्वदिति। 'से णं उस्सुत्तमेव' त्ति स पुनरुत्सूत्रमेवागमातिक्रमणत एव 'रीयइ' त्ति गच्छति।

१०/१३. 'संवुडस्से' त्याद्युक्तविपर्ययसूत्रं, तत्र च 'अवीइ' त्ति 'अवीचिमतः' अकषायसम्बन्धवतः 'अविचिच्य' वा अपृथग्भूय यथाऽऽख्यातसंयमात्, अविचिन्त्य वा रागविकल्पाभावेनेत्यर्थः अविकृति वा यथा भवतीति॥

अनन्तरं क्रियोक्ता, क्रियावतां च प्रायो योनिप्राप्तिर्भवतीति योनिप्ररूपणायाह–

१०/१५. 'कतिविहा णं' मित्यादि, तत्र च 'जोणि' त्ति 'यु मिश्रणे' इतिवचनाद् युवन्ति–तैजसकार्म्मणशरीरवन्त औदारिकादिशरीरयोग्यस्कन्धसमुदायेन मिश्रीभवन्ति जीवा यस्यां सा योनिः, सा च त्रिविधा शीतादिभेदात्, तत्र 'सीय' त्ति शीतस्पर्शा 'उसिण' त्ति उष्णस्पर्शा 'सीओसिण' त्ति द्विस्वभावा 'एवं जोणीपयं निरवसेसं भाणियव्वं' ति योनिपदं च प्रज्ञापनायां नवमं पदं, तच्चेदं–'नेरइयाणं भंते! किं सीया जोणी उसिणा जोणी सीओसिणा जोणी?,

गोयमा! सीयावि जोणी उसिणावि जोणी नो सीओसिणा जोणी' त्यादि, अयमर्थः– 'सीयावि जोणि' त्ति आद्यासु तिसृषु नरकपृथिवीषु चतुर्थ्यां च केषुचिन्नरकावासेषु नारकाणां यदुपपातक्षेत्रं तच्छीतस्पर्शपरिणतमिति तेषां शीताऽपि योनिः, 'उसिणावि जोणि' त्ति शेषासु पृथिवीषु चतुर्थपृथिवीनरकावासेषु च केषुचिन्नारकाणां यदुपपातक्षेत्रं तदुष्णस्पर्शपरिणतमिति तेषामुष्णाऽपि योनिः, 'नो सीओसिणा जोणि' त्ति न मध्यमस्वभावा योनिस्तथास्वभावत्वात्, शीतादियोनिप्रकरणार्थसङ्ग्रहस्तु प्रायेणैवं–

'सीओसिणजोणीया सव्वे देवा य गब्भवक्कंती।
उसिणा य तेउकाए दुह निरए तिविह सेसेसु॥१॥'

'गब्भवक्कंति' त्ति गर्भोत्पत्तिकाः,।

(शीतोष्णयोनिकाः सर्वे देवाश्च गर्भव्युत्पत्तिकाः।
उष्णा च तेजःकाये द्विधा नरके त्रिविधा शेषेषु॥१॥)

तथा–'कतिविहा णं भंते! जोणी पन्नत्ता?, गोयमा! तिविहा जोणी पन्नत्ता, तं जहा–सच्चित्ता अचित्ता मीसिया' इत्यादि, सच्चित्तादियोनिप्रकरणार्थसङ्ग्रहस्तु प्रायेणैवम्–

'अच्चित्ता खलु जोणी नेरइयाणं तहेव देवाणं।
मीसा य गब्भवासे तिविहा पुण होइ सेसेसु॥२॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अचित्ता खलु योनिर्नारकाणां तथैव देवानां।
मिश्रा च गर्भवासे त्रिविधा पुनर्भवति शेषेषु॥१॥)

सत्यप्येकेन्द्रियसूक्ष्मजीवनिकायसम्भवे नारकदेवानां यदुपपातक्षेत्रं तत्र केनचिज्जीवेन परिगृहीतमित्यचित्ता तेषां योनिः। गर्भवासयोनिस्तु मिश्रा शुक्रशोणितपुद्गलानामचित्तानां गर्भगतस्य सचेतनस्य भावादिति, शेषाणां पृथिव्यादीनां सम्मूर्च्छनजानां च मनुष्यादीनामुपपातक्षेत्रे जीवेन परिगृहीतेऽपरिगृहीते उभयरूपे चोत्पत्तिरिति त्रिविधाऽपि योनिरिति। तथा–'कतिविहा णं भंते! जोणी पन्नत्ता?, गोयमा! तिविहा जोणी पन्नत्ता, तं जहा–संवुडाजोणी वियडाजोणी संवुडवियडाजोणी' त्यादि, संवृतादियोनिप्रकरणार्थसङ्ग्रहस्तु प्राय एवम्–

'एगिंदियनेरइया संवुडजोणी तहेव देवा य।
विगलिंदिएसु वियडा संवुडवियडा य गब्भंमि॥१॥'

(एकेन्द्रिया नैरयिकाः संवृतयोनयस्तथैव देवाश्च।
विकलेन्द्रियाणां विवृता संवृतविवृता च गर्भे॥१॥)

एकेन्द्रियाणां संवृता योनिस्तथास्वभावत्वात्, नारकाणामपि संवृतैव, यतो नरकनिष्कुटाः संवृतगवाक्षकल्पास्तेषु च जातास्ते वर्द्धमानमूर्तयस्तेभ्यः पतन्ति शीतेभ्यो निष्कुटेभ्य उष्णेषु नरकेषु उष्णेभ्यस्तु शीतेष्विति, देवानामपि संवृतैव यतो देवशयनीये दृष्यान्तरितोऽङ्गुलासङ्ख्यातभागमात्रावगाहनो देव उत्पद्यत इति। तथा–'कतिविहा णं भंते! जोणी पन्नत्ता?, गोयमा! तिविहा जोणी पन्नत्ता, तं जहा–कुम्मुन्नया संखावत्ता वंसीपत्ते' त्यादि, एतद्व्याख्यातव्यतासङ्ग्रहश्चैवं–

संखावत्ता जोणी इत्थीरयणस्स होति विन्नेया।
तीए पुण उप्पन्नो नियमा उ विणस्सई गब्भो॥१॥
कुम्मुन्नयजोणीए तित्थयरा चक्किवासुदेवा य।
रामावि य जायंते सेसाए सेसगजणो उ॥२॥'

(स्त्रीरत्नस्य शङ्खावर्ता योनिर्भवति विज्ञेया।
तस्यामुत्पन्नो गर्भः पुनर्नियमात्तु विनश्यति॥१॥
कूर्मोन्नतायां योनौ तीर्थङ्करचक्रिवासुदेवाः।
रामाश्च जायन्ते शेषायां तु शेषकजनः॥२॥)

१०/१६. अनन्तरं योनिरुक्ता, योनिमतां च वेदना भवन्तीति तत्प्ररूपणायाह–'कइविहा णं' मित्यादि, 'एवं वेयणापयं भाणियव्वं ति वेदनापदं च प्रज्ञापनाया पञ्चत्रिंशत्तमं, तच्च लेशतो दर्शयति–'नेरइयाणं भंते! किं सीयं वेयणं वेयंति उसिणं?, गोयमा! सीयंपि वेयणं वेयंति एवं उसिणंपि णेो सीओसिणं' एवममुरादयो वैमानिकान्ताः 'एवं चउव्विहा वेयणा दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ' तत्र पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाद्द्रव्यवेदना नारकादिक्षेत्रसम्बन्धात्क्षेत्रवेदना नारकादिकालसम्बन्धात्कालवेदना शोकक्रोधादिभावसम्बन्धाद्भाववेदना, सर्वे संसारिणश्चतुर्विधामपि, तथा 'तिविहा वेयणा–सारीरा माणसा सारीरमाणसा' समनस्कास्त्रिविधामपि असञ्ज्ञिनस्तु शारीरीमेव, तथा 'तिविहा वेयणा साया असाया सायासाया' सर्वे संसारिणस्त्रिविधामपि। तथा 'तिविहा वेयणा–दुक्खा सुहा अदुक्खमसुहा' सर्वे त्रिविधामपि, सातासातसुखदुःखयोश्चायं विशेषः–सातासाते अनुक्रमेणोदयप्राप्तानां वेदनीयकर्मपुद्गलानामनुभवरूपे, सुखदुःखे तु परोदीर्यमाणवेदनीयानुभवरूपे, तथा 'दुविहा वेयणा–अब्भुवगमिया उवक्कमिया' आभ्युपगमिकी या स्वयमभ्युपगम्य वेद्यते यथा साधवः केशोल्लुञ्चनातापनादिभिर्वेदयन्ति औपक्रमिकी तु स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन चोदयमुपनीतस्य वेद्यस्यानुभवात्, द्विविधामपि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च शेषास्त्वौपक्रमिकीमेवेति, तथा 'दुविहा वेयणा–निदा य अनिदा य' निदा–चित्तवती विपरीता त्वनिदेति, सञ्ज्ञिनो द्विविधामसञ्ज्ञिनस्त्वनिदामेवेति। इह च प्रज्ञापनायां द्वारगाथाऽस्ति, सा चेयं–

'सीया य दव्व सारीर साय तह वेयणा हवइ दुक्खा।
अब्भुवगमुवक्कमिया निदा य अनिदा य नायव्वा॥१॥'

अस्याश्च पूर्वार्द्धोक्तान्येव द्वाराण्यधिकृतवाचनायां सूचितानि यतस्तत्राप्युक्तं 'निदा य अनिदा य वज्जं' ति॥

वेदनाप्रस्तावाद्वेदनाहेतुभूतां प्रतिमां निरूपयन्नाह–

१०/१८. 'मासियण्ण' मित्यादि, मासः परिमाणं यस्याः सा मासिकी तां 'भिक्षुप्रतिमां' साधुप्रतिज्ञाविशेषं 'वोसट्ठे काए' त्ति व्युत्सृष्टे स्नानादिपरिकर्म्मवर्जनात् 'चियत्ते देहे' त्ति त्यक्ते वधबन्धाद्यवारणात्, अथवा 'चियत्ते' संगते प्रीतिविषये धर्मसाधनेषु प्रधानत्वाद्देहस्येति 'एवं मासिया भिक्खु-पडिमा' इत्यादि, अनेन च यदतिदिष्टं तदिदं–'जे केइ परीसहोवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा–दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेई' त्यादि, तत्र सहते स्थानाविचलनतः क्षमते क्रोधाभावात् तितिक्षते दैन्याभावात् क्रमेण वा मनःप्रभृतिभिः किमुक्तं भवति?–अधिसहत इति॥

आराहिया भवतीत्युक्तमथाराधनाः यथा न स्याद्यथा च स्यात्तद्दर्शयन्नाह–

१०/१९. 'भिक्खू य अन्नयरं अकिच्चट्ठाण' मित्यादि, इह चशब्दश्चेदितस्यार्थे वर्त्तते, स च भिक्षोरकृत्यस्थानासेवनस्य प्रायेणासम्भवप्रदर्शनपरः 'पडिसेवित्त' त्ति अकृत्यस्थानं प्रतिषेविता भवतीति गम्यं, वाचनान्तरे त्वस्य स्थाने 'पडिसेविज्ज' त्ति दृश्यते, 'से णं' ति स भिक्षुः 'तस्स ठाणस्स' त्ति तत्स्थानम्।

१०/२१. 'अणपन्नियदेवत्तणंपि नो लभिस्सामि' त्ति अणपन्निका–व्यन्तरनिकायविशेषास्तत्सम्बन्धिदेवत्वमणपन्निकदेवत्वं तदपि नोपलप्स्य इति॥

दशमशतस्य द्वितीयोद्देशकः॥१०।२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय उद्देशकः

द्वितीयोद्देशकान्ते देवत्वमुक्तम्। अथ तृतीये देवस्वरूपमभिधीयते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१०/२३. 'रायगिहे' इत्यादि. 'आइड्ढीए णं' ति आत्मद्ध्र्या स्वकीयशक्त्या, अथवाऽऽत्मन एव ऋद्धिर्यस्यासावात्मर्द्धिकः 'देवे' ति सामान्यः 'देवावासंतराइं' ति देवावासविशेषान् 'वीइक्कंते' त्ति 'व्यतिक्रान्तः' लङ्घितवान्, क्वचिद् व्यतिव्रजतीति पाठः, 'तेण परं' ति ततः परं 'परिड्ढीए' त्ति परद्ध्र्या परर्द्धिको वा।

१०/२६. 'विमोहित्ता पभु' त्ति 'विमोह्य' महिकाद्यन्धकारकरणेन मोहमुत्पाद्य अपश्यन्तमेव तं व्यतिक्रामेदिति भावः।

१०/३१. 'एवं असुरकुमारेणवि तिन्नि आलावगं' त्ति अल्पर्द्धिकमहर्द्धिकयोरेकः समर्द्धिकयोरन्यः महर्द्धिकाल्पर्द्धिकयोरपर इत्येवं त्रयः, 'ओहिएणं देवेणं' ति सामान्येन देवेन १,।

१०/३२,३३. एवमालापकत्रयोपेतो देवदेवीदण्डको वैमानिकान्तोऽन्यः २।

१०/३४,३५. एवमेव च देवीदेवदण्डको वैमानिकान्त एवापरः ३,।

१०/३६-३८. एवमेव च देव्योर्दण्डकोऽन्यः ४ इत्येवं चत्वार एते दण्डकाः॥

अनन्तरं देवक्रियोक्ता, सा चातिविस्मयकारिणीति विस्मयकरं वस्त्वन्तरं प्रश्नयन्नाह–

१०/३९. 'आसस्से' त्यादि, 'हियय्स्स य जगयस्स य' त्ति हृदयस्य यकृतश्च–दक्षिणकुक्षिग्नोदरावयवविशेषस्य 'अन्तरा' अन्तराले॥

अनन्तरं 'खुखु' त्ति प्ररूपितं तच्च शब्दः, स च भाषारूपोऽपि स्यादिति भाषाविशेषान् भाषणीयत्वेन प्रदर्शयितुमाह–

१०/४०. 'अह भंते!' इत्यादि, अथेति परिप्रश्नार्थः भंते!' ति भदन्त! इत्येवं भगवन्तं महावीरमामन्त्र्य गौतमः पृच्छति–'आसइस्सामो' त्ति आश्रयिष्यामो वयमाश्रयणीयं वस्तु 'सइस्सामो' त्ति शयिष्यामः 'चिट्ठिस्सामो' त्ति ऊर्ध्वस्थानेन स्थास्यामः 'निसिइस्सामो' त्ति निषेत्स्याम उपवेक्ष्याम इत्यर्थः 'तुयट्टिस्सामो' त्ति संस्तारके भविष्याम इत्यादिकाका भाषा किं प्रज्ञापनी? इति योगः॥

अनेन चोपलक्षणपरवचनेन भाषाविशेषाणामेवंजातीयानां प्रज्ञापनीयत्वं पृष्टमथ भाषा-जातीनां तत्पृच्छति–'आमंतणि' गाहा. तत्र आमन्त्रणी हे देवदत्त! इत्यादिका, एषा च किल वस्तुनोऽविधायकत्वादनिषेधकत्वाच्च सत्यादिभाषात्रयलक्षणवियोगतश्चासत्यामृषेति प्रज्ञापनादावुक्ता, एवमाज्ञापन्यादिकामपि, 'आणवणि' त्ति आज्ञापनी कार्ये परस्य प्रवर्त्तनी यथा घटं कुरु 'जायणि' त्ति याचनी–वस्तुविशेषस्य देहीत्येवंमार्गणरूपा तथेति समुच्चये 'पुच्छणी य' त्ति प्रच्छनी–अविज्ञातस्य संदिग्धस्य वाऽर्थस्य ज्ञानार्थं तदभियुक्तप्रेरणरूपा 'पण्णवणि' त्ति प्रज्ञापनी–विनेयस्योपदेशदानरूपा यथा–

पाणवहाओ नियत्ता भवंति दीहाउया अरोगा य।
एमाई पन्नवणी पन्नत्ता वीयरागेहिं॥१॥'

(प्राणवधान्निवृत्ता दीर्घायुषोऽरोगाश्च भवन्तीत्यादिः प्रज्ञापनी भाषा वीतरागैः प्रज्ञप्ता॥१॥)

'पच्चक्खणीभास' त्ति प्रत्याख्यानी याचमानस्यादित्सा मे अतो मां मा याचस्वेत्यादि प्रत्याख्यानरूपा भाषा 'इच्छाणुलोम' त्ति प्रतिपादयितुर्या इच्छा तदनुलोमा–तदनुकूला इच्छानुलोमा यथा कार्ये प्रेरितस्य एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतदिति वचः। 'अणभिग्गहिया भासा' अनभिगृहीता–अर्थानभिग्रहेण योच्यते डित्थादिवत् 'भासा य अभिग्गहंमि बोद्धव्वा' भाषा चाभिग्रहे बोद्धव्या–अर्थमभिगृह्य योच्यते घटादिवत्, 'संसयकरणी भास' त्ति याऽनेकार्थप्रतिपत्तिकरी सा संशयकरणी यथा सैन्धवशब्दः पुरुषलवणवाजिषु वर्त्तमान इति 'वोयड' त्ति व्याकृता लोकप्रतीतशब्दार्था 'अव्वोयड' त्ति अव्याकृता–गम्भीरशब्दार्था मन्मनाक्षरप्रयुक्ता वाऽनाविर्भावितार्था, 'पन्नवणी णं' ति प्रज्ञाप्यतेऽनयेति प्रज्ञापनी–अर्थकथनी वक्तव्येत्यर्थः। 'न एसा मोस' त्ति नैषा मृषा–नार्थानभिधायिनी नावक्तव्येत्यर्थः, पृच्छतोऽयमभिप्रायः–आश्रयिष्याम इत्यादिका भाषा भविष्यत्कालविषया सा चान्तरायसम्भवेन व्यभिचारिण्यपि स्यात् तथैकार्थविषयाऽपि बहुवचनान्त-नयोक्तेत्येवमयथार्था तथा आमन्त्रणीप्रभृतिका विधिप्रतिषेधाभ्यां न सत्यभाषावद्वस्तुनि नियतेत्यतः किमियं वक्तव्या स्यात्? इति, उत्तरं तु 'हंता' इत्यादि, इदमत्र हृदयम्–आश्रयिष्याम इत्यादिकाऽनवधारणत्वाद्वर्त्तमानयोगेनेत्येकिल्पगर्भत्वादात्मनि गुरौ चैकार्थत्वेऽपि बहुवचनस्यानुमतत्वात्प्रज्ञाप्न्येव, तथाऽऽमन्त्रण्यादिकाऽपि वस्तुनो विधि-प्रतिषेधाविधायकत्वेऽपि या निरवद्यपुरुषार्थसाधनी सा प्रज्ञापन्येवेति॥

दशमशते तृतीयोद्देशकः

चतुर्थ उद्देशकः

तृतीयोद्देशके देववक्तव्यतोक्ता, चतुर्थेऽप्यसावेवोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१०/४२. 'तेण' मित्यादि।

१०/४६. 'तायत्तीसग' त्ति त्रायस्त्रिंशा–मन्त्रिविकल्पाः।

१०/४७. 'तायत्तीसं सहाया गाहावइ' त्ति त्रयस्त्रिंशत्परिमाणाः 'सहायाः' परस्परेण साहायककारिणः 'गृहपतयः' कुटुम्बनायकाः।

१०/४८. 'उग्ग' त्ति उग्रा उदात्ता भावतः 'उग्गविहारि' त्ति उदात्ताचाराः सदनुष्ठानत्वात् 'संविग्ग' त्ति संविग्नाः–मोक्षं प्रति प्रचलिताः संसारभीरवो वा 'संविग्गविहारि' त्ति संविग्नविहारः–संविग्नानुष्ठानमस्ति येषां ते तथा 'पासत्थि' त्ति ज्ञानादिबहिर्वर्त्तिनः 'पासत्थविहारी' त्ति आकालं पार्श्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थसमाचाराः 'ओसण्णि' त्ति अवसन्ना इव–श्रान्ता इवावसन्ना आलस्यादनुष्ठानासम्यक्करणात् 'ओसन्नविहार' त्ति आजन्म शिथिलाचारा इत्यर्थः 'कुसील' त्ति ज्ञानाद्याचारविराधनात् 'कुसीलविहारि' त्ति आजन्मापि ज्ञानाद्याचारविराधनात् 'अहाछंद' त्ति यथाकथञ्चिन्नागमपरतन्त्रतया छन्दः–अभिप्रायो बोधः प्रवचनार्थेषु येषां ते यथाच्छन्दाः, ते चैकदाऽपि भवन्तीत्यत आह–'अहाच्छंदविहारि' त्ति आजन्मापि यथाच्छन्दा एवेति।

१०/४९. 'तप्पभिइं च णं' ति यत्प्रभृति त्रयस्त्रिंशत्सङ्घ्योपेतास्ते श्रावकास्तत्रोत्पन्नास्तत्प्रभृति न पूर्वमिति॥

दशमशते चतुर्थोद्देशकः समाप्तः॥

पंचम उद्देशकः

चतुर्थोद्देशके देववक्तव्यतोक्ता, पञ्चमे तु देवी-वक्तव्यतोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१०/६४-६६. 'तेणं' मित्यादि, 'से तं तुडिए' त्ति तुडिकं नाम वर्गः।

१०/६८. 'वइरामएसु' त्ति वज्रमयेषु 'गोलवट्टसमुग्गएसु' त्ति गोलकाकारा वृत्तसमुद्गकाः गोलवृत्तसमुद्गकास्तेषु 'जिणसक्कहाओ' त्ति 'जिनसक्थीनि' जिनास्थीनि 'अच्चणिज्जाओ' त्ति चन्दनादिना 'वंदणिज्जाओ' त्ति स्तुतिभिः 'नमंसणिज्जाओ' प्रणामतः 'पूयणिज्जाओ' पुष्पैः 'सक्कारणिज्जाओ' वस्त्रादिभिः 'सम्माणणिज्जाओ' प्रतिपत्तिविशेषैः कल्याण-मित्यादिबुद्ध्या 'पज्जुवासणिज्जाओ' त्ति।

१०/६९. 'महयाहय' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'महतीयवाइय-तंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं' ति तत्र च महता–बृहता आहतानि– अच्छिन्नानि आख्यानकप्रतिबद्धानि वा यानि नाट्यगीत-वादितानि तेषां तन्त्रीतलतालानां च 'तुडिय' त्ति शेषतूर्याणां च घनमृदङ्गस्य च–मेघसमानध्वनिमर्द्दलस्य पटुना पुरुषेण प्रवादितस्य यो रवः स तथा तेन प्रभुर्भोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुमित्युक्तं, तत्रैव विशेषमाह–'केवलं परियारिड्ढीए' त्ति 'केवलं' नवरं परिवारः–परिचारणा स चेह स्त्रीशब्दश्रवणरूपसंदर्शनादिरूपः स एव ऋद्धिः–सम्पत् परिवारर्द्धिस्तया परिवारर्द्ध्या वा कलत्रादिपरिजनपरिचारणामात्रेणेत्यर्थः 'नो चेव णं मेहुणवत्तियं' ति नैव च मैथुनप्रत्ययं यथा भवति एवं भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति प्रकृतमिति॥

१०/७४. 'परियारो जहा मोउद्देसए' त्ति तृतीयशतस्य प्रथमोद्देशके इत्यर्थः।

१०/७८. 'सओ परिवारो' त्ति धरणस्य स्वकः परिवारो वाच्यः, स चैवं–'छहिं सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं छहिं अग्गमहिसीहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउवीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं नागकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे' त्ति।

१०/९०. 'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यादि, अनेन च यत्सूचितं तदिदं– 'तत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि २ देविसाहस्सीओ परिवारो पन्नत्तो, पहू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं चत्तारि २ देवीसहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देविसाहस्सीओ पन्नत्ताओ' इति 'सेत्तं तुडिय' मित्यादीति।

१०/९१. 'एवं अट्ठासीतिएवि महागहाणं भाणियव्वं' ति, तत्र द्वयोर्वक्त-व्यतोक्तैव शेषाणां तु लोहिताक्षशनैश्चराधुणिक-प्राधुणिककणककणकणकर्दानां सा वाच्येति।

१०/९५. 'विमाणाइं जहा तइयसए' त्ति तत्र सोमस्योक्तमेव यमवरुणवैश्रमणानां तु क्रमेण वरसिट्ठे सयंजले वग्गुत्ति।

१०/९७. विमाणा 'जहा चउत्थसए' त्ति क्रमेण च तानीशानलोक-पालानामिमानि–'सुमणे सव्वओभद्दे वग्गू सुवग्गू' इति॥

दशमशते पञ्चमोद्देशकः॥

षष्ठम उद्देशकः

पञ्चमोद्देशके देववक्तव्यतोक्ता, षष्ठे तु देवाश्रयविशेषं प्रतिपादयन्नाह–

१०/९९. 'कहि णं' मित्यादि, 'एव जहा रायप्पसेणइज्जे' इत्यादिकरणादेवं दृश्यं–'पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमि-भागाओ उड्ढं चंदमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं एवं सहस्साइं एवं सयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं सोहम्मे नामं कप्पे पन्नत्ते इत्यादि, 'असोग-वडेंसए' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'सत्तवन्नवडेंसए चंपगवडेंसए चूयवडेंसए' त्ति, विवक्षिताभिधेयसूचिका चेयमतिदेशगाथा–

'एवं जह सूरियाभे तहेव माणं तहेव उववाओ।
सक्कस्स य अभिसेओ तहेव जह सूरियाभस्स॥१॥'

इति, 'एवम्' अनेन क्रमेण यथा सूरिकाभे विमाने राजप्रश्न-कृताख्यग्रन्थोक्ते प्रमाणमुक्तं तथैवास्मिन् वाच्यं, तथा यथा सूरिकाभाभिधानदेवस्य देवत्वेन तत्रोपपातः शक्रस्येह वाच्योऽभिषेकश्चेति, तत्र प्रमाणं–आयामविष्कम्भ-सम्बन्धि दर्शितं, शेषं पुनरिदम्–'ऊयालीसं च सयसहस्साइं बावन्नं सहस्साइं अट्ठ य अडयाले जोयणसए परिक्खेवेणं' ति। उपपातश्चैवं–'तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया अहुणोववन्नमेत्ते चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा–आहारपज्जत्तीए ५' इत्यादि। अभिषेकः पुनरेवं– 'तए णं सक्के देविंदे देवराया जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता अभिसेयसभं अणुप्प-याहिणीकरेमाणे २ पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता सीहासण-वरगते पुरच्छाभिमुहे निसन्ने, तए णं तस्स सक्कस्स ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाणियपरिसोववन्नगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पमेव भो देवाणुप्पिया! सक्कस्स ३ महत्थं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह' इत्यादि, 'अलंकार अच्चणिया य तहेव' त्ति यथा सूरिकाभस्य तथैवान्तङ्कारः अर्चनिका चेन्द्रस्य वाच्या तत्रालङ्कारः–'तए णं से सक्के देवे तप्पढमयाए चम्हलसूमालाए सुरभीए गंधकासाईयाए गायाइं लूहेइ २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ २ नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वन्नफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलकणगखचियंतकम्मं आगासफालियसमप्पभं दिव्वं देवदूसजुयलं नियंसेति २ हारं पिणद्धेति' त्यादीनि,, अर्चनिकालेशस्त्वेवं–'तए णं से सक्के ३ सिद्धायययणं पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं अणुप्पविसइ २ जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ २ लोमहत्थगं गेण्हइ २ जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ २ जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ' त्ति 'जाव आयरक्ख' त्ति अर्चनिकायाः परो ग्रन्थस्तावद्वाच्यो यावदात्मरक्षाः, स चैवं लेशतः–'तए णं से सक्के ३ सभं सुहम्मं अणुप्पविसइ २ सीहासणे पुरच्छाभिमुहे निसीयइ, तए णं तस्स सक्कस्स ३ अवरुत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं चउरासीई सामाणियसाहस्सीओ निसीयंति पुरच्छिमेणं अट्ठ अग्गमहिसीओ दाहिणपुरच्छिमेणं अभिंतरिया परिसा बारस देवसाहस्सीओ निसीयंति दाहिणेणं मज्झिमियाए परिसाए चोद्दस देवसाहस्सीओ दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवईणो, तए णं तस्स सक्कस्स ३ चउद्दिसिं चत्तारि आयरक्खदेवचउरासीसाहस्सीओ निसीयंती' त्यादीति।

१०/१००. 'के महड्ढीए' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'केमहज्जुइए केमहाणुभागे केमहायसे केमहाबले?' त्ति, 'बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'चउरासीए सामाणिय-साहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं (गन्थाग्रम् ११०००) अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं जाव देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव कारेमाणे पालेमाणे' त्ति॥

दशमशते षष्ठोद्देशकः॥

सप्त-चतुस्त्रिंशत्तम उद्देशकः

षष्ठोद्देशके सुधर्मसभोक्ता, सा चाश्रय इत्याश्रयाधिकारादाश्रयविशेषानन्तरद्वीपाभिधानान् मेरोरुत्तरदिग्वर्त्तिशिखरिपर्वतदंष्ट्रागतान् लवणसमुद्रान्तर्वर्त्तिनोऽष्टाविंशतिमभिधित्सुरष्टाविंशतिमुद्देशकानाह–

१०/१०२. 'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाण' मित्यादि॥ 'जहा जीवाभिगमे' इत्ययमतिदेश–पूर्वोक्तदाक्षिणात्यान्तरद्वीपवक्तव्यताऽनुसारेणावगन्तव्यः॥

दशमशते चतुस्त्रिंशत्तम उद्देशकः समाप्तः॥

समाप्तं दशमं शतम्॥

इतिगुरुजनशिक्षापार्श्वनाथप्रसाद
प्रसृततरपतत्रद्वन्द्वसामर्थ्यमाप्य।
दशमशतविचारक्ष्माधराग्र्येऽधिरूढः।
शकुनिशिशुरिवाहं तुच्छबोधाङ्कोऽपि॥१॥

॥इति श्रीमदभयदेवसूरिवरविहितभगवतीवृत्तौ दशमं शतकं समाप्तम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकादशम शतकः

व्याख्यातं दशमं शतं। अथैकादशं व्याख्यायते। अस्य चायमभिसम्बन्धः–अनन्तरशतस्यान्तेऽन्तरद्वीपा उक्तास्ते च वनस्पतिबहुला इति वनस्पतिविशेषप्रभृतिपदार्थस्वरूपप्रतिपादनायैकादशं शतं भवतीत्येवंसम्बन्धस्यास्योद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा–

'उप्पले' त्यादि, उत्पलार्थः प्रथमोद्देशकः १ 'सालु' त्ति शालूकं–उत्पलकन्दस्तदर्थो द्वितीयः २ 'पलासे' त्ति पलाशः–किंशुकस्तदर्थस्तृतीयः ३ 'कुंभी' ति वनस्पतिविशेषस्तदर्थश्चतुर्थः ४ नाडीवद्यस्य फलानि स नाडीको–वनस्पतिविशेष एव तदर्थः पञ्चमः ५ 'पउम' त्ति पद्मार्थः षष्ठः ६ 'कण्णिय' त्ति कर्णिकार्थः सप्तमः ७ 'नलिण' त्ति नलिनार्थोऽष्टमः ८ यद्यपि चोत्पलपद्मनलिनानां नामकोशे एकार्थनोच्यते तथाऽपीह रूढेर्विशेषोऽवसेयः, 'सिव' त्ति शिवराजर्षिवक्तव्यतार्थो नवमः ९ 'लोग' त्ति लोकार्थो दशमः १० 'कालालभिए' त्ति कालार्थ एकादशः ११ आलभिकायां नगर्यां यत्प्ररूपितं तत्प्रतिपादक उद्देशकोऽप्यालभिक इत्युच्यते ततोऽसौ द्वादश १२. 'दस दो य एक्कारि' त्ति द्वादशोद्देशका एकादशे शते भवन्तीति।

प्रथम उद्देशकः

तत्र प्रथमोद्देशकद्वारसङ्ग्रहगाथा वाचनान्तरे दृष्टास्ताश्चेमाः– 'उववाओ' इत्यादि, एतासां चार्थ उद्देशकार्थाधिगमगम्य इति॥

११/१. 'उप्पले णं भंते! एगपत्ते' इत्यादि, 'उत्पले' नीलोत्पलादि एकं पत्रं यत्र तदेकपत्रकं अथवा एकं च तत्पत्रं चैकपत्रं तदेवैकपत्रकं तत्र सति, एकपत्रकं चेह किशलयावस्थाया उपरि द्रष्टव्यम्। 'एगजीवे' त्ति यदा हि एकपत्रावस्थं तदैकजीवं तत्, यदा तु द्वितीयादिपत्रं तेन समारब्धं भवति तदा नैकपत्रावस्था तस्येति बहवो जीवास्तत्रोत्पद्यन्त इति। एतदेवाह–'तेण पर' मित्यादि, 'तेण परं' ति ततः–प्रथमपत्रात् परतः 'जे अन्ने जीवा उववज्जंति' त्ति येऽन्ये–प्रथमपत्रव्यतिरिक्ता जीवा जीवाश्रयत्वात्पत्रादयोऽवयवा उत्पद्यन्ते ते 'नैकजीवाः' नैकजीवाश्रयाःकिन्त्वनेकजीवाश्रयः इति, अथवा 'तेणे' त्यादि, ततः–एकपत्रात्परतः शेषपत्रादिष्वित्यर्थः येऽन्ये जीवा उत्पद्यन्ते ते 'नैकजीवा' नैकाः किन्त्वनेकजीवा अनेके इत्यर्थः॥

११/२. 'ते णं भंते! जीव' त्ति ये उत्पले प्रथमपत्राद्यवस्थाया-मुत्पद्यन्ते 'जहा वक्कंतीए' त्ति प्रज्ञापनायाः षष्ठपदे, स चैवमुपपातः–जइ 'तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति? गोयमा! एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतोवि उववज्जंति' इत्यादि, एवं मनुष्यभेदा वाच्याः–'जइ देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासी' त्यादि प्रश्नो निर्वचनं च ईशानान्तदेवेभ्य उत्पद्यन्त इत्युपयुज्य वाच्यमिति, तदेतेनोपपात उक्तः॥

११/३. 'जहन्नेण एक्को वे' त्यादिना तु परिमाणम् २।

११/४. 'ते णं असंखेज्जा समए' इत्यादिना त्वपहार उक्तः, एवं द्वारयोजना कार्या ३।

११/५. उच्चत्वद्वारे 'साइरेगं जोयणसहस्सं' ति तथाविधसमुद्रगोतीर्थकाडाविदमुच्चत्वमुत्पलस्यावसेयम् ४।

११/६. बन्धद्वारे 'बंधए बंधया व' त्ति एकपत्रावस्थायां बन्धक एकत्वात् द्व्यादिपत्रावस्थायां च बन्धका बहुत्वादिति।

११/७. एवं सर्वकर्मसु, आयुष्के तु तदबन्धावस्थाऽपि स्यात् तदपेक्षया चाबन्धकोऽपि अबन्धका अपि च भवन्तीति, एतदेवाह–'नवर' मित्यादि, इह बन्धका-बन्धकपदयोरेकत्वयोगे एकवचनेन द्वौ विकल्पौ बहुवचनेन च द्वौ द्विकयोगे तु यथायोगमेकत्वबहुत्वाभ्यां चत्वारः एत्येवमष्टौ विकल्पाः, स्थापना–बं १, अ १, बं ३, अ ३, बं १ अ १, बं १ अ ३, बं ३ अ १, बं ३ अबं ३।५।

११/८-१०. वेदनद्वारे ते भदन्त! जीवा ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः किं वेदका अवेदकाः?, अत्रापि एकपत्रतायामेकवचनान्तता अन्यत्र तु बहुवचनान्तता एवं यावदन्तरायस्य, वेदनीये सातासाताभ्यां पूर्ववदष्टौ भङ्गाः, इह च सर्वत्र प्रथमपत्रापेक्षयैकवचनान्तता, ततः परं तु बहुवचनान्तता, वेदनं अनुक्रमोदितस्योदीरणोदीरितस्य वा कर्म्मणोऽनुभवः उदयश्चानुक्रमोदितस्यैवेति वेदकत्वप्ररूपणेऽपि भेदेनोदयित्वप्ररूपण ७ मिति॥

११/११. उदीरणाद्वारे 'नो अणुदीरग' त्ति तस्यामवस्थायां तेषामनुदीरकत्वस्यासम्भवात्। 'वेयणिज्जाउएसु अट्ठ भंग' त्ति वेदनीये–सातासातापेक्षया आयुषि पुनरुदीरकत्वानुदीरकत्वापेक्षयाऽष्टौ भङ्गाः, अनुदीरकत्वं चायुष उदीरणायाः कादाचित्कत्वादिति॥

११/१२. लेश्याद्वारेऽशीतिर्भङ्गाः, कथम्?, एककयोगे एकवचनेन चत्वारो बहुवचनेनापि चत्वार एव, द्विकयोगे तु यथायोगमेकवचनबहुवचनाभ्यां चतुर्भङ्गी, चतुर्णां च पदानां षड् द्विकयोगास्ते च चतुर्गुणाश्चतुर्विंशतिः, त्रिकयोगे तु त्रयाणां पदानामष्टौ भङ्गाः, चतुर्णां च पदानां चत्वारस्त्रिकसंयोगास्ते चाष्टाभिर्गुणिता द्वात्रिंशत्, चतुष्कसंयोगे तु षोडश भङ्गाः, सर्वमीलने चाशीतिरिति, अत एवोक्तं 'गोयमा! कण्हलेसे वे' त्यादि॥

११/१३. वर्णादिद्वारे 'ते पुण अप्पणा अवन्न' त्ति शरीराण्येव तेषां पञ्चवर्णादीनि ते पुनरुत्पलजीवाः 'अप्पणा' त्ति स्वरूपेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अवर्णा' वर्णादिवर्जिताः अमूर्तत्वानेषामिति॥

११/१८. उच्छ्वासकद्वारे 'नो उस्सासनिस्सासए' त्ति अपर्याप्तावस्थायाम्, इह च षड्विंशतिर्भङ्गाः, कथम्?, एकयोगे एकवचनान्तास्त्रयः बहुवचनान्ता अपि त्रयः, द्विकयोगे तु यथायोगमेकत्वबहुत्वाभ्यां तिस्रश्चतुर्भङ्गिका इति द्वादशः, त्रिकयोगे त्वष्टाविति, अत एवाह–'एए छव्वीसं भंगा भवंति' त्ति॥

११/१९. आहारकद्वारे 'आहारए वा अणाहारए वा' त्ति विग्रहगतावनाहारकोऽन्यदा त्वाहारकस्तत्र चाष्टौ भङ्गाः पूर्ववत्।

११/२३,२४. सञ्ज्ञाद्वारे कषायद्वारे चाशीतिर्भङ्गाः लेश्याद्वारवद्व्याख्येयाः।

११/२९. 'से णं भंते! उप्पलजीवे' त्ति इत्यादिनोत्पलत्वस्थितिरनुबन्धपर्यायतयोक्ता।

११/३०. 'से णं भंते! उप्पलजीवे पुढविजीवे' त्ति इत्यादिना तु संवेधस्थितिरुक्ता, तत्र च 'भवादेसेणं' ति भवप्रकारेण भवमाश्रित्येत्यर्थः 'जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं' ति एकं पृथिवीकायिकत्वे ततो द्वितीयमुत्पलत्वे ततः परं मनुष्यादिगतिं गच्छेदिति। 'कालादेसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्त' त्ति पृथिवीत्वेनान्तर्मुहूर्तं पुनरुत्पलत्वे नान्तर्मुहूर्त्तमित्येवं कालादेशेन जघन्यतो द्वे अन्तर्मुहूर्त्ते इति।

११/३३. एवं द्वीन्द्रियादिषु नेयम।

११/३४. 'उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं' ति चत्वारि पञ्चेन्द्रियतिरश्चश्चत्वारि चोत्पलस्येत्येवमष्टौ भवग्रहणान्युत्कर्षत इति, 'उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहुत्तं' ति चतुर्षु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवग्रहणेषु चतस्रः पूर्वकोट्यः उत्कृष्टकालस्य विवक्षितत्वेनोत्पलकायोद्वृत्तजीवस्योत्कृष्टपञ्चेन्द्रियतिर्यक्स्थितेर्ग्रहणात्, उत्पलजीवितं त्वेतास्वधिकमित्येवमुत्कृष्टतः पूर्वकोटीपृथक्त्वं भवतीति।

११/३५. 'एवं जहा आहारुद्देसए वणस्सइ-काइयाणं' मित्यादि, अनेन च यदतिदिष्टं तदिदं–'खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं कालओ अन्नयरकालट्ठिइयाइं भावओ वन्नमंताइं' इत्यादि, 'सव्वप्पणयाए' त्ति सर्वात्मना 'नवरं नियमा छद्दिसिं' ति पृथिवीकायिकादयः सूक्ष्मतया निष्कुटगतत्वेन स्यादिति स्यात् तिसृषु दिक्षु स्याच्चतसृषु दिक्षु इत्यादिनापि प्रकारेणाहारमाहारयन्ति, उत्पलजीवास्तु बादरत्वेन तथावि-धनिष्कुटेष्वभावान्नियमात्षट्सु दिक्ष्वाहारयन्तीति।

११/३९. 'वक्कंतीए' त्ति प्रज्ञापनायाः षष्ठपदे 'उवट्टणाए' त्ति उद्वर्त्तनाधिकारे, तत्र चेदमेवं सूत्रं–'मणुएसु उववज्जंति देवेसु उववज्जंति?, गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिएसु उववज्जंति मणुएसु उववज्जंति नो देवेसु उववज्जंति।

११/४०. 'उप्पलकेसरत्ताए' त्ति इह केसराणि–कर्णिकायाः परितोऽवयवाः 'उप्पलकन्नियत्ताए' त्ति इह तु कर्णिका–बीजकोशः 'उप्पलथिभुगत्ताए' त्ति थिभुगा च यतः पत्राणि प्रभवन्ति॥

एकादशशते प्रथमोद्देशकः॥

द्वितीय उद्देशकः

११/४२-५६. शालूकोद्देशकादयः सप्तोद्देशकाः प्राय उत्पलोद्देशकसमानगमाः, विशेषः पुनर्यो यत्र स तत्र सूत्रसिद्ध एव, नवरं पलाशोद्देशके यदुक्तं 'देवेसु न उववज्जंति' त्ति तस्यायमर्थः–उत्पलोद्देशके हि देवेभ्य उद्वृत्ता उत्पले उत्पद्यन्त इत्युक्तमिह तु पलाशे नोत्पद्यन्त इति वाच्यम्, अप्रशस्तत्वात्तस्य, यतस्ते प्रशस्तेष्वेवोत्पलादिवनस्पतिषूत्पद्यन्त इति। तथा 'लेसासु' त्ति लेश्याद्वारे इदमध्येयमिति वाक्यशेषः, तदेव दर्श्यते–'ते ण' मित्यादि, इयमत्र भावना–यदा किल तेजोलेश्यायुतो देवो देवभवादुद्वृत्य वनस्पतिषूत्पद्यते तदा तेषु तेजोलेश्या लभ्यते, न च पलाशे देवत्वोद्वृत्त उत्पद्यते पूर्वोक्तयुक्तेः, एवं चेह तेजोलेश्या न संभवति, तदभावादाद्या एव तिस्रो लेश्या इह भवन्ति, एतासु च षड्विंशतिर्भङ्गकाः, त्रयाणां पदानामेतावतामेव भावादिति। एतेषु चोद्देशकेषु नानात्वसङ्ग्रहार्थास्तिस्रो गाथाः–

''सालंमि धणुपुहत्तं होइ पलासे य गाउयपुहत्तं।
जोयणसहस्समहियं अवसेसाणं तु छण्हंपि॥१॥
कुंभीए नालियाए वासपुहत्तं ठिई उ बोद्धव्वा।
दस वाससहस्साइं अवसेसाणं तु छण्हंपि॥२॥
कुंभीए नालियाए होंति पलासे य तिन्नि लेसाओ।
चत्तारि उ लेसाओ अवसेसाणं तु पंचण्हं॥३॥'

एकादशशते द्वितीयादयोऽष्टमान्ताः॥

नवम उद्देशकः

अनन्तरमुत्पलादयोऽर्था निरूपिताः, एवंभूतांश्चार्थान् सर्वज्ञ एव यथावज्ज्ञातुं समर्थो न पुनरन्यो, द्वीपसमुद्रानिव शिवराजर्षिः, इति सम्बन्धेन शिवराजर्षिसंविधानकं नवमोद्देशकं प्राह। तस्य चेदमादिसूत्रम्–

११/५७. 'तेणं कालेणं' मित्यादि।

११/५८. 'महया हिमवंत वन्नओ' त्ति अनेन 'महाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे' इत्यादि राजवर्णको वाच्य इति सूचितं, तत्र महाहिमवानिव महान् शेषराजापेक्षया तथा मलयः–पर्वतविशेषो मन्दरो–मेरुः महेन्द्रः–शक्रादिर्देवराजस्तद्वत्सारः–

---

१. शाले धनुःपृथक्त्वं भवति पलाशे च गव्यूतपृथक्त्वं।
योजनसहस्रमधिकमवशेषाणां तु षण्णामपि॥१॥
कुंभ्यां नालिकायां वर्षपृथक्त्वं तु स्थितिर्बोद्धव्या।
दश वर्षसहस्राणि अवशेषाणां तु षण्णामपि॥२॥
कुंभ्यां नालिकायां भवन्ति पलाशे च तिस्रो लेश्याः।
चतस्रो लेश्यास्तु अवशेषाणां पञ्चानां तु॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधानो यः स तथा, 'सुकुमाल.....वन्नओ' त्ति अनेन च 'सुकुमालपाणिपाये' त्यादी राज्ञीवर्णको वाच्य इति सूचितं, 'सुकुमालजहा सूरियकंते जाव पच्चुवेक्खमाणे २ विहरइ' त्ति अस्यायमर्थः–'सुकुमालपाणिपाए लक्खणवंजणगुणोववेए' इत्यादिना यथा राजप्रश्नकृताभिधाने ग्रन्थे सूर्यकान्तो राजकुमारः 'पच्चुवेक्खमाणे २ विहरइ' इत्येतदन्तेन वर्णकेन वर्णितस्तथाऽयं वर्णयितव्यः, 'पच्चुवेक्खमाणे २ विहरइ' इत्येतच्चैवमिह सम्बन्धनीयं–'मे णं सिवभद्दे कुमारे जुवराया यावि होत्था सिवस्स रन्नो रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च पुरं च अंतेउरं च जणवयं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहरइ' त्ति।

११/५९. 'वाणपत्थ' त्ति। वने भवा वानी प्रस्थानं प्रस्था–अवस्थितिर्वानी प्रस्था येषां ते वानप्रस्थाः, अथवा–'ब्रह्मचारी गृहस्थश्च, वानप्रस्थो यतिस्तथा' इति चत्वारो लोकप्रतीता आश्रमाः, एतेषां च तृतीयाश्रमवर्त्तिनो वानप्रस्थाः, 'होत्तिय' त्ति अग्निहोत्रिकाः 'पोत्तिय' त्ति वस्त्रधारिणः सोत्तिय त्ति क्वचित्पाठस्तत्राप्ययमेवार्थः 'जहा उववाइए' इत्येतस्मादति-देशादिदं दृश्यं–'कोत्तिया जन्नई सड्ढई थालई हुंवउट्ठा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा संमज्जगा निमज्जगा संपक्खाला दक्खिणकूलगा उत्तरकूलगा संखधमगा कूलधमगा मिगलुद्धया हत्थितावसा उद्दंडगा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो चेलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकंद-मूलतयपत्तपुप्फफलाहारा जलाभिसेयकढिणगायाया आयावणाहिं पंचग्गितवेहिं इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं ति तत्र 'कोनिय' त्ति भूमिशायिनः 'जन्नइ' त्ति यज्ञयाजिनः 'सड्ढइ' त्ति श्राद्धाः 'थालइ' त्ति गृहीतभाण्डाः 'हुंवउट्ठ' त्ति कुण्डिकाश्रमणाः 'दंतुक्खलिय' त्ति फलभोजिनः 'उम्मज्जग' त्ति 'उन्मज्जनमात्रेण ये स्नान्ति 'संमज्जग' त्ति उन्मज्जन-स्यैवासकृत्करणेन ये स्नान्ति 'निमज्जग' त्ति स्थानार्थं निमग्ना एव ये क्षणं तिष्ठन्ति 'संपक्खाल' त्ति मृत्तिकादिघर्षणपूर्वकं येऽङ्गं क्षालयन्ति 'दक्खिणकूलग' त्ति यैर्गङ्गाया दक्षिणकूल एव वास्तव्यम् 'उत्तरकूलग' त्ति उक्तविपरीताः 'संखधमग' त्ति शङ्खं ध्मात्वा ये जेमन्ति यद्यन्यः कोऽपि नागच्छतीति 'कूलधमग' त्ति ये कूले स्थित्वा शब्दं कृत्वा भुञ्जते 'मियलुद्धय' त्ति प्रतीता एव 'हत्थितावस' त्ति ये हस्तिनं मारयित्वा तेनैव बहुकालं भोजनतो यापयन्ति 'उद्दंडग' त्ति ऊर्ध्वकृतदण्डा ये संचरन्ति 'दिसापोक्खिणो' त्ति उदकेन दिशः प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुचिन्वन्ति 'वक्कलवासिणो' त्ति वल्कलवाससः 'चेलवासिणो' त्ति व्यक्तं पाठान्तरे 'वेल-वासिणो' त्ति समुद्रवेलासंनिधिवासिनः 'जलवासिणो' त्ति ये जलनिमग्ना एवासते, शेषाः प्रतीता, नवरं 'जलाभि-सेयकढिणगाय' त्ति येऽस्नात्वा न भुंजते स्नानाद्वा पाण्डुरीभूतगात्राः इति वृद्धाः, क्वचित् 'जलाभिसेय-कढिणगायभूय' त्ति' दृश्यते तत्र जलाभिषेककठिनं गात्रं भूताः–प्राप्ता ये ते तथा, 'इंगालसोल्लियं' ति अङ्गारैरिव पक्वं 'कंदुसोल्लियं' ति कन्दुपक्वमिवेति। 'दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं' ति एकत्र पारणके पूर्वस्यां दिशि यानि फलादीनि तान्याहृत्य भुङ्क्ते द्वितीये तु दक्षिणस्यामित्येवं दिक्चक्रवालेन यत्र तपःकर्मणि पारणककरणं तत्तपःकर्म्म दिक्चक्रवालमुच्यते तेन तपःकर्म्मणेति।

११/६१. 'ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं' इत्यत्र 'एवं जहा उववाइए' इत्येतत्करणादिदं दृश्यं–'मणुन्नाहिं मणामाहिं जाव वग्गूहिं अग्गवरयं अभिनंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी–जय २ नंदा जय जय भद्दा! जय २ नंदा! भद्दं ते अजियं जिणाहि जियं पालियाहि जियमज्झे वसाहि अजियं च जिणाहि सत्तुपक्खं जियं च पालेहि मित्तपक्खं जियविग्घोऽविय वसाहि तं देव! सयणमज्झे इंदो इव देवाणं चंदो इव ताराणं धरणो इव नागाणं भरहो इव मणुयाणं बहूइं वासाइं बहूइं वाससयाइं बहूइं वाससहस्साइं अणहसमग्गे य हट्ठतुट्ठो' त्ति, एतच्च व्यक्तमेवेति॥

११/६४. 'वागलवत्थनियत्थे' त्ति वल्कलं–वल्कलतस्येदं वाल्कलं तद्वस्त्रं निवसितं येन स वाल्कलवस्त्रनिवसितः 'उडए' त्ति उटजः–तापसगृहं 'किढिणसंकाइयगं' ति 'किढिण' त्ति वंशमयस्तापसभाजनविशेषस्ततश्च तयोः साङ्घायिकं–भारोद्व-हनयन्त्रं किढिणसाङ्घायिकं 'महाराय' त्ति लोकपालः 'पत्थाणे पत्थियं' ति 'प्रस्थाने' परलोकसाधनमार्गे 'प्रस्थितं' प्रवृत्तं फलाद्याहरणार्थं गमने वा प्रवृत्तं शिवराजर्षिं 'दब्भे य' त्ति समूलान् 'कुसे य' त्ति दर्भानेव निर्मूलान् 'समिहाओ य' त्ति समिधः–काष्ठिकाः 'पत्तामोडं च' तरुशाखामोटितपत्राणि 'वेदिं वड्ढेइ' त्ति वेदिकां–देवार्चनस्थानं वर्द्धनी–बहुकरिका तां प्रयुङ्क्त इति वर्द्धयति–प्रमार्जयतीत्यर्थः 'उवलेवणसंमज्जणं करेइ' त्ति इहोपलेपनं गोमयादिना संमर्जनं तु जलेन संमार्जनं वा शोधनं 'दब्भकलसाहत्थगए' त्ति दर्भाश्च कलशश्च हस्ते गता यस्य स तथा 'दब्भसगब्भकलसगहत्थगए' त्ति क्वचित् तत्र दर्भेण सगर्भो यः कलशकः स हस्ते गतो यस्य स तथा 'जलमज्जणं' ति जलेन देहशुद्धिमात्रं 'जलकीडं' ति देहशुद्धावपि जलेनाभिरतं 'जलाभिसेयं' ति जलक्षरणम् 'आयंते' ति जलस्पर्शात् 'चोक्खे' ति अशुचिद्रव्यापगमात् किमुक्तं भवति?–'परमसुइभूए' ति, 'देवयपिइकयकज्जे' ति देवतानां पितॄणां च कृतं कार्यं–जलाञ्जलिदानादिकं येन स तथा, 'सरएणं अरणिं महेइ' त्ति 'शरकेन' निर्मन्थनकाष्ठेन 'अरणिं' निर्मन्थनीयकाष्ठं 'मथ्नाति' घर्षयति, 'अग्गिस्स दाहिणे' इत्यादि सार्द्धः श्लोकस्तद्यथाशब्दवर्जः, तत्र च 'सत्तंगाइं' सप्ताङ्गानि 'समादधाति' संनिधापयति सकथां १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वल्कलं २ स्थानं ३ शय्याभाण्डं ४ कमण्डलुं ५ दंडदारु ६ तथाऽऽत्मान ७ मिति। तत्र सकथा–तत्समयप्रसिद्ध उपकरणविशेषः स्थानं–ज्योतिःस्थानं पात्रस्थानं वा शय्याभाण्डं–शय्योपकरणं दण्डदारु–दण्डकः आत्मा–प्रतीत इति, 'चरुं साहेति' त्ति चरुः–भाजनविशेषस्तत्र पच्यमानद्रव्यमपि चरुरेव तं चरुं बलिमित्यर्थः 'साधयति' रन्धयति 'बलिवइस्सदेवं करेइ' त्ति बलिना वैश्वानरं पूजयतीत्यर्थः, 'अतिहिपूयं करेइ' त्ति अतिथेः–आगन्तुकस्य पूजां करोतीति।

११/७७. 'से कहमेयं मन्ने एवं' ति अत्र मन्येशब्दो वितर्कार्थः 'बितियसए नियंठुद्देसए' त्ति द्वितीयशते पञ्चमोद्देशक इत्यर्थः 'एगविहिविहाण' त्ति एकेन विधिना–प्रकारेण विधानं–व्यवस्थानं येषां ते तथा, सर्वेषां वृत्तत्वात्, 'वित्थारओ अणेगविहिविहाण' त्ति द्विगुण द्विगुण विस्तारत्वात्तेषामिति 'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यनेन यदिह सूचितं तदिदं–'दुगुणादुगुणं पडुप्पाएमाणा पवित्थरमाणा ओभासमाणवीइया' अवभासमानवीचयः–शोभमानतरङ्गाः, समुद्रापेक्षमिदं विशेषणं, 'बहुप्पलकुमुदनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीयमहापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तसयसहस्सपत्तपफुल्लकेसरोववेया' बहूनामुत्पलादीनां प्रफुल्लानां–विकसितानां यानि केशराणि तैरुपचिताः संयुक्ता ये ते तथा, तत्रोत्पलानि–नीलोत्पलादीनि कुमुदानि–चन्द्रबोध्यानि पुण्डरीकाणि–सितानि शेषपदानि तु रूढिगम्यानि 'पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्त' त्ति॥

११/७८. 'सवन्नाइंपि' त्ति पुद्गलद्रव्याणि 'अवन्नाइंपि' त्ति धर्मास्तिकायादीनि 'अन्नमन्नबद्धाइं' ति परस्परेण गाढाश्लेषाणि 'अन्नमन्नपुट्ठाइं' ति परस्परेण गाढाश्लेषाणि, इह यावत्करणादिदमेवं दृश्यम्–'अन्नमन्नबद्धपुट्ठाइं अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति' तत्र चान्योऽन्यबद्धस्पृष्टान्यनन्तरोक्तगुणद्वययोगात्, किमुक्तं भवति?–अन्योऽन्यघटतया–परस्परसम्बद्धतया तिष्ठंति।

११/८५. 'तावसावसहे' त्ति तापसावसथः–तापसमठ इति।

अनन्तरं शिवराजर्षेः सिद्धिरुक्ता, तां च संहननादिभिर्निरूपयन्निदमाह–

११/८८. 'भंते त्ति' इत्यादि, अथ लाघवार्थमतिदेशमाह–'एवं जहेवे' त्यादि, 'एवम्' अनन्तरदर्शितेनाभिलापेन यथौपपातिके सिद्धानधिकृत्य संहननाद्युक्तं तथैवेहापि वाच्यं, तत्र च संहननादिद्वाराणां सङ्ग्रहाय गाथापूर्वार्द्धं–'संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउयं च परिवसणा' त्ति तत्र संहननमुक्तमेव, संस्थानादि त्वेवं–तत्र संस्थाने षण्णां संस्थानानामन्यतरस्मिन् सिद्ध्यन्ति, उच्चत्वे तु जघन्यतः सप्तरत्निप्रमाणे उत्कृष्टस्तु पञ्चधनुःशतके, आयुषि पुनर्जघन्यतः सातिरेकाष्टवर्षप्रमाणे उत्कृष्टतस्तु पूर्वकोटीमाने, परिवसना पुनरेवं–रत्नप्रभादिपृथिवीनां सौधर्मादीनां चेषत्प्राग्भारान्तानां क्षेत्रविशेषाणामधो न परिवसन्ति सिद्धाः किन्तु सर्वार्थसिद्धमहाविमानस्योपरितनात्स्तूपिकाग्रादूर्ध्वं द्वादशयोजनानि व्यतिक्रम्येषत्प्राग्भारा नाम पृथिवी पञ्चचत्वारिंशद्योजनलक्षप्रमाणाऽऽयामविष्कम्भाभ्यां वर्णतः श्वेताऽत्यन्तरम्याऽस्ति तस्याश्चोपरि योजने लोकान्तो भवति, तस्य च योजनस्योपरितनगव्यूतोपरितनषड्भागे सिद्धाः परिवसन्तीति, 'एवं सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्व' त्ति एवमिति–पूर्वोक्तसंहननादिद्वारनिरूपणक्रमेण 'सिद्धिगण्डिका' सिद्धिस्वरूपप्रतिपादनपरा वाक्यपद्धतिरौपपातिकप्रसिद्धाऽध्येया, इयं च परिवसनद्वारं यावदर्थलेशतो दर्शिता, तत्परतस्त्वेवं–'कहिं पडिहया सिद्धा कहिं सिद्धा पइट्ठिया?' इत्यादिका, अथ किमन्तेयम्? इत्याह–'जावे' त्यादि। 'अव्वाबाहं सोक्खं' मित्यादि चेह गाथोत्तरार्द्धमधीतं, समग्रगाथा पुनरियं–

'निच्छिन्नसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधण-विमुक्का।
अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा॥१॥'

इति॥

एकादशशते नवमोद्देशकः॥

दशमः उद्देशकः

नवमोद्देशकस्यान्ते लोकान्ते सिद्धपरिवसनोक्तेत्यतो लोकस्वरूपमेव दशमे प्राह। तस्य चेदमादिसूत्रम्–

११/९०. 'रायगिहे' इत्यादि, 'दव्वलोए' त्ति द्रव्यलोक आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो द्रव्यलोको लोकशब्दार्थज्ञस्तत्रानुपयुक्तः 'अनुपयोगो द्रव्य' मिति वचनात्, आह च मङ्गलं प्रतीत्य द्रव्यलक्षणम्–

'आगमओऽणुवउत्तो मंगलसद्दाणुवासिओ वत्ता।
तन्नाणलद्धिजुत्तो उ नोवउत्तोत्ति दव्वं॥१॥'

त्ति (आगमतो मङ्गलशब्दानुवासितोऽनुपयुक्तो वक्ता तज्ज्ञानलब्धियुक्तोऽप्यनुपयुक्त इति द्रव्यमिति॥१॥) नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदात्त्रिविधः, तत्र लोकशब्दार्थज्ञस्य शरीरं मृतावस्थं ज्ञानापेक्षया भूतलोकपर्यायतया घृतकुम्भवल्लोकः स च ज्ञशरीररूपो द्रव्यभूतो लोको ज्ञशरीरद्रव्यलोकः, नोशब्दश्चेह सर्वनिषेधे, तथा लोकशब्दार्थं ज्ञास्यति यस्तस्य शरीरं सचेतनं भाविलोकभावत्वेन मधुघटवद् भव्यशरीरद्रव्यलोकः, नोशब्द इहापि सर्वनिषेध एव, ज्ञशरीरव्यतिरिक्तश्च, द्रव्यलोको द्रव्याण्येव धर्मास्तिकायादीनि, आह च–

जीवमजीवे रूविमरूवि सपएस अप्पएसे य।
जाणाहि दव्वलोयं निच्चमणिच्चं च जं दव्वं॥१॥

(जीवा अजीवा रूपिणोऽरूपिणः सप्रदेशा अप्रदेशाश्च जानीहि द्रव्यलोकं नित्यमनित्यं च यद्द्रव्यम्॥१॥) इहापि नोशब्दः सर्वनिषेधे आगमशब्दवाच्यस्य ज्ञानस्य सर्वथा निषेधात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'खेत्तलोए' त्ति क्षेत्ररूपो लोकः स क्षेत्रलोकः, आह च–

'आगासस्स पएसा उड्ढं च अहे य तिरियलोए य।
जाणाहि खेत्तलोयं अणंतजिणदेसियं सम्मं॥१॥'

(आकाशस्य प्रदेशा ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यग्लोके च। जानीहि क्षेत्रलोकमनन्तजिनदेशितं सम्यक्॥१॥)

'काललोए' त्ति कालः–समयादिः तद्रूपो लोकः काललोकः, आह च–

'समयावली मुहुत्ता दिवसअहोरत्तपक्खमासा य।
संवच्छरजुगपलिया सागरउस्सप्पिपरियट्टा॥१॥'

(समय आवलिका मुहूर्त्तः दिवसः अहोरात्रं पक्षो मासश्च संवत्सरो युगं पल्यः सागरः उत्सर्पिणी परावर्त्तः॥१॥)

'भावलोए' त्ति भावलोको द्वेधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो लोकशब्दार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः भावरूपो लोको भावलोके इति नोआगमतस्तु भावा–औदयिकादयस्तद्रूपो लोको भावलोकः, आह च–

'ओदइए उवसमिए खइए य तहा खओवसमिए य।
परिणामसन्निवाए य छव्विहो भावलोगो उ॥१॥'

(औदयिक औपशमिकः क्षायिकश्च तथा क्षायोपशमिकश्च। पारिणमिकश्च सन्निपातश्च षड्विधो भावलोकस्तु॥१॥ इति, इह नोशब्दः सर्वनिषेधे मिश्रवचनो वा, आगमस्य ज्ञानत्वात् क्षायिकक्षायोपशमिकज्ञानस्वरूपभावविशेषेण च मिश्रत्वादौदयिकादिभावलोकस्येति।

११/९१. 'अहेलोयखेत्तलोए' त्ति अधोलोकरूपः क्षेत्रलोकोऽधोलोकक्षेत्रलोकः, इह किलाष्टप्रदेशो रुचकस्तस्य चाधस्तनप्रतरस्याधो नव योजनशतानि यावत्तिर्यग्लोकस्ततः परेणाधः स्थितत्वादधोलोकः साधिकसप्तरज्जुप्रमाणः, 'तिरियलोयखेत्तलोए' त्ति रुचकापेक्षयाऽध उपरि च नव २ योजनशतमानस्तिर्यग्रूपत्वात्तिर्यग्लोकस्तद्रूपः क्षेत्रलोकस्तिर्यग्लोकक्षेत्रलोकः, 'उड्ढलोयखेत्तलोए' त्ति तिर्यग्लोकस्योपरि देशोनसप्त रज्जुप्रमाण ऊर्ध्वभागवर्त्तित्वादूर्ध्वलोकस्तद्रूपः क्षेत्रलोक ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकः, अथवाऽधः–अशुभः परिणामो बाहुल्येन क्षेत्रानुभावाद् यत्र लोके द्रव्याणामसावधोलोकः, तथा तिर्यङ्–मध्यमानुभावं क्षेत्रं नातिशुभं नाप्यत्यशुभं तद्रूपो लोकस्तिर्यग्लोकः, तथा ऊर्ध्वं–शुभः परिणामो बाहुल्येन द्रव्याणां यत्रासावूर्ध्वलोकः, आह च–

अहव अहोपरिणामो खेत्तणुभावेण जेण ओसन्नं।
असुहो अहोत्ति भणिओ दव्वाणं तेणऽहोलोगो॥१॥

इत्यादि।

११/९५. 'तप्पागारसंठिए' त्ति तप्रः उदुपकः, अधोलोकक्षेत्रलोकोऽधोमुखशरावाकारसंस्थान इत्यर्थः।

११/९६. स्थापना चेयं △ 'झल्लरिसंठिए' त्ति अल्पोच्छ्रायत्वान्महाविस्तारत्वाच्च तिर्यग्लोकक्षेत्रलोको झल्लरीसंस्थितः।

११/९७. स्थापना चेयं– □ 'उड्ढमुइंगागारसंठिए' त्ति ऊर्ध्वः-ऊर्ध्वमुखो यो मृदङ्गस्तदाकारेण संस्थितो यः स तथा शरावसंपुटाकार इत्यर्थः।

११/९८. स्थापना चेयम्– ⧠ 'सुपइट्ठगसंठिए' त्ति सुप्रतिष्ठकं–स्थापनकं तच्चेहारोपितवारकादि गृह्यते, तथाविधेनैव लोकसादृश्योपपत्तेरिति, स्थापना चेयं–

'जहा सत्तमसए' इत्यादौ यावत्करणादिदं दृश्यम्–'उप्पिं विसाले अहे पलियंकसंठाणसंठिए मज्झे वरवइरविग्गहिए उप्पिं उद्धमुइंगागारसंठिए तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा विच्छिन्नंसि जाव उप्पिं उद्धमुइंगागारसंठियंसि उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली जीवेवि जाणइ अजीवेवि जाणइ तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ' इत्यादीति।

११/९९. 'झुसिरगोलसंठिए' त्ति अन्तःशुषिरगोलकाकारो यतोऽलोकस्य लोकः शुषिरमिवाभाति, स्थापना चेयम्। ⊙

११/१००. 'अहेलोयखेत्त लोए णं भंते!' इत्यादि, 'एवं जहा इंदा दिसा तहेव निरवसेसं भाणियव्वं' ति दशमशते प्रथमोद्देशके यथा ऐन्द्री दिगुक्ता तथैव निरवशेषधोलोकस्वरूपं भणितव्यं, तच्चैवम्–'अहोलोयखेत्तलोए णं भंते! किं जीवा जीवदेसा जीवपएसा अजीवा अजीवदेसा अजीवपएसा?, गोयमा! जीवावि जीवदेसावि जीवपएसावि अजीवावि अजीवदेसावि अजीवपएसावि' इत्यादि।

११/१०१. नवरमित्यादि, अधोलोकतिर्यग्लोकयोररूपिणः सप्तविधाः प्रागुक्ताः धर्माधर्माकाशास्तिकायानां देशाः ३ प्रदेशाः ३ कालश्चेत्येवम्, ऊर्ध्वलोके तु रविप्रकाशाभिव्यङ्ग्यः कालो नास्ति, तिर्यगधोलोकयोरेव रविप्रकाशस्य भावाद्, अतः षडेव त इति।

११/१०२. 'लोए णं' मित्यादि जहा बीयसए अत्थिउद्देसए' त्ति यथा द्वितीयशते दशमोद्देशक इत्यर्थः 'लोयागासे' त्ति लोकाकाशे विषयभूते जीवादय उक्ता एवमिहापीत्यर्थः, 'नवरं' मिति केवलमयं विशेषः–तत्रारूपिणः पञ्चविधा उक्ता इह तु सप्तविधा वाच्याः, तत्र हि लोकाकाशमाधारतया विवक्षितमत आकाश-भेदास्तत्र नोच्यन्ते, इह तु लोकोऽस्तिकायसमुदायरूप आधारतया विवक्षितोऽत आकाशभेदा अप्याधेया भवन्तीति सप्त, ते चैवं–धर्मास्तिकायः, लोके परिपूर्णस्य तस्य विद्यमानत्वात्, धर्मास्तिकायदेशस्तु न भवति, धर्मास्तिकायस्यैवं तत्र भावात्, धर्मास्तिकायप्रदेशाश्च सन्ति, तद्रूपत्वाद्धर्मास्तिकायस्येति द्वयं, एवमधर्मास्तिकायेऽपि द्वयं ४, तथा नो आकाशास्तिकायो, लोकस्य तस्यैतदेशत्वात्, आकाशदेशस्तु भवति, तदंशत्वात् लोकस्य, तत्प्रदेशाश्च सन्ति ६, कालश्चे ७ ति सप्त।

११/१०३. 'अलोए णं भंते!' इत्यादि, इदं च 'एवं जहे' त्याद्यतिदेशादेवं दृश्यम्–'अलोए णं भंते! किं जीवा जीवदेसा जीवपएसा अजीवा अजीवदेसा अजीवपएसा?, गोयमा! नो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवदेसा नो जीवपएसा नो अजीवदेसा नो अजीवपएसा एगे अजीवदव्वदेसे अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे' त्ति तत्र सर्वाकाशमनन्तभागोनमित्यस्यायमर्थः—लोकलक्षणेन समस्ताकाशस्यानन्तभागेन न्यूनं सर्वाकाशमलोक इति।

११/१०४. 'अहोलोगखेत्तलोगस्स णं भंते! एगंमि आगासपएसे' इत्यादि, नो जीवा एकप्रदेशे तेषामनवगाहनात्, बहूनां पुनर्जीवानां देशस्य प्रदेशस्य चावगाहनात् उच्यते 'जीवदेसावि जीवपएसावि' त्ति, यद्यपि धर्मास्तिकायादयोऽजीवद्रव्यं नैकत्राकाशप्रदेशेऽवगाहते तथाऽपि परमाणुकादिद्रव्याणां कालद्रव्यस्य चावगाहनादुच्यते—'अजीवावि' त्ति, द्व्यणुकादिस्कन्धदेशानां त्ववगाहनादुक्तम्—'अजीवदेसावि' त्ति, धर्माधर्मास्तिकायप्रदेशयोः पुद्गलद्रव्यप्रदेशानां चावगाहनादुच्यते—'अजीवपएसावि' त्ति। 'एवं मज्झिल्लविरहिओ' त्ति दशमशतप्रदर्शितत्रिकभङ्गे 'अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियदेसा य' इत्येवंरूपो यो मध्यमभङ्गस्तद्विरहितोऽसौ त्रिकभङ्गः, 'एव' मिति सूत्रप्रदर्शितभङ्गद्वयरूपोऽध्येतव्यो, मध्यमभङ्गस्येहासम्भवात्, तथाहि—द्वीन्द्रियस्यैकस्यैकत्राकाशप्रदेशे बहवो देशा न सन्ति, देशस्यैव भावात्, 'एवं आइल्लविरहिओ' त्ति 'अहवा एगिंदियस्स पएसा य बेंदियस्स पएसा य' इत्येवंरूपाद्यभङ्गकविरहितस्त्रिभङ्गः, 'एव' मिति सूत्रप्रदर्शितभङ्गद्वयरूपोऽध्येतव्यः, आद्यभङ्गकस्येहासम्भवात्, तथाहि—नास्त्येवैकत्राकाशप्रदेशे केवलिसमुद्घातं विनैकस्य जीवस्यैकप्रदेशसम्भवोऽसङ्ख्यातानामेव भावादिति, 'अणिंदिएसु तियभंगो' त्ति अनिन्द्रियेषूक्तभङ्गकत्रयमपि सम्भवतीतिकृत्वा तेषु तद्वाच्यमिति। 'रूवी तहेव' त्ति स्कन्धाः देशाः प्रदेशाः अणवश्चेत्यर्थः 'नो धम्मत्थिकाये' त्ति नो धर्मास्तिकाय एकत्राकाशप्रदेशे संभवत्यसङ्ख्यातप्रदेशावगाहित्वात्तस्येति। 'धम्मत्थिकायस्स देसे' त्ति यद्यपि धर्मास्तिकायस्यैकत्राकाशप्रदेशे प्रदेश एवास्ति तथाऽपि देशोऽवयव इत्यनर्थान्तरत्वेनावयवमात्रस्यैव विवक्षितत्वात् निरंशतायाश्च तत्र सत्या अपि अविवक्षितत्वाद्धर्मास्तिकायस्य देश इत्युक्तं। प्रदेशस्तु निरुपचरित एवास्तीत्यत उच्यते—'धम्मत्थिकायस्स पएसे' त्ति, 'एवमहम्मत्थिकायस्सवि' त्ति 'नो अधम्मत्थिकाए अहम्मत्थिकायस्स देसे अहम्मत्थिकायस्स पएसे' इत्येवमधर्मास्तिकायसूत्रं वाच्यमित्यर्थः।

११/१०५. 'अद्धासमओ नत्थि, अरूवी चउव्विहे' त्ति ऊर्ध्वलोकेऽद्धासमयो नास्तीति अरूपिणश्चतुर्विधाः—धर्मास्तिकायदेशादयः ऊर्ध्वलोक एकत्राकाशप्रदेशे सम्भवन्तीति।

११/१०६. 'लोगस्स जहा अहोलोगखेत्तलोगस्स एगंमि आगासपएसे' त्ति अधोलोकक्षेत्रलोकस्यैकत्राकाशप्रदेशे यद्वक्तव्यमुक्तं तल्लोकस्याप्येकत्राकाशप्रदेशे वाच्यमित्यर्थः, तच्चेदं—लोगस्स णं भंते! एगंमि आगासपएसे किं जीवा०? पुच्छा गोयमा! 'नो जीवे' त्यादि प्राग्वत्। 'अहेलोयखेत्तलोए अणंता वन्नपज्जव' त्ति अधोलोकक्षेत्रलोकेऽनन्ता वर्णपर्यवाः एकगुणकालकादीनामनन्तगुणकालाद्यवसानानां पुद्गलानां तत्र भावात्।

११/१०७. अलोकसूत्रे 'नेवत्थि अगुरुलहुयपज्जव' त्ति अगुरुलघुपर्यवोपेतद्रव्याणां पुद्गलादीनां तत्राभावात्।

११/१०९. 'सव्वदीव' त्ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं—'समुद्दाणं अब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकन्नियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं' ति, 'ताए उक्किट्ठाए' त्ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं—'तुरियाए चवलाए चंडाए सिहाए उद्धुयाए जयणाए छेयाए दिव्वाए' त्ति तत्र 'त्वरितया' आकुलया 'चपलया' कायचापल्येन 'चण्डया' रौद्रया गत्युत्कर्षयोगात् 'सिंहया' दार्ढ्यस्थिरतया 'उद्धुतया' दर्प्पातिशयेन 'जयिन्या' विपक्षजेतृत्वेन 'छेकया' निपुणया 'दिव्यया' दिवि भवयेति। 'पुरच्छाभिमुहे' त्ति मेर्वपेक्षया, 'आसत्तमे कुलवंसे पहीणे' त्ति कुलरूपो वंशः प्रहीणो भवति आसप्तमादपि वंश्यात्, सप्तममपि वंश्यं यावदित्यर्थः, 'गयाउ से अगए असंखेज्जइभागे अगयाउ से गए असंखेज्जगुणे' त्ति, ननु पूर्वादिषु प्रत्येकमर्द्धरज्जुप्रमाणत्वाल्लोकस्योर्ध्वाधश्च किञ्चिन्न्यूनाधिकसप्तरज्जुप्रमाणत्वात्तुल्यया गत्या गच्छतां देवानां कथं षट्स्वपि दिक्षु गतादगतं क्षेत्रमसङ्ख्यातभागगतं अगताच्च गतमसङ्ख्यातगुणमिति?, क्षेत्रवैषम्यादिति भावः, अत्रोच्यते, घनचतुरस्रीकृतस्य लोकस्यैव कल्पितत्वान्न दोषः, ननु यद्युक्तस्वरूपयाऽपि गत्या गच्छन्तो देवा लोकान्तं बहुनापि कालेन न लभन्ते तदा कथमच्युताज्जिनजन्मादिषु द्रागवतरन्ति? बहुत्वात्क्षेत्रस्याल्पत्वादवतरणकालस्येति, सत्यं, किन्तु मन्देयं गतिः जिनजन्माद्यवतरणगतिस्तु शीघ्रतमेति।

११/११०. 'असब्भावपट्ठवणाए' त्ति असद्भूतार्थकल्पनयेत्यर्थ।

पूर्वं लोकालोकवक्तव्यतोक्ता, अथ लोकैकप्रदेशगतं वक्तव्यविशेषं दर्शयन्नाह—

११/१११. 'लोगस्स ण' मित्यादि, 'अत्थि णं भंते' त्ति अस्त्येयं भदन्त! पक्षः, इह च त इति शेषो दृश्यः।

११/११२. 'जाव कलिय' त्ति इह यावत्करणादेवं दृश्यं—'संगयगयहसियभणियचिट्ठियविलाससललियसंलावनिउणजुत्तोवयारकलिय' त्ति, 'बत्तीसइविहस्स नट्टस्स' त्ति द्वात्रिंशद् विधा—भेदा यस्य तत्तथा तस्य नाट्यस्य, तत्र ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहगव्यालकिन्नरादिभक्तिचित्रो नामैको नाट्यविधिः एतच्चरिताभिनयनमिति संभाव्यते, एवमन्येऽप्येकत्रिंशद्विधयो राजप्रश्नकृतानुसारतो वाच्याः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकैक प्रदेशाधिकारादेवेदमाह–

११/११३. 'लोगस्स ण' मित्यादि, अस्य व्याख्या–यथा किलैतेषु त्रयोदशसु प्रदेशेषु त्रयोदशप्रदेशकानि दिग्दशकस्पर्शानि त्रयोदश द्रव्याणि स्थितानि तेषां च प्रत्याकाशप्रदेशं त्रयोदश त्रयोदश प्रदेशा भवन्ति, एवं लोकाकाशप्रदेशेऽनन्तजीवावगाहेनैकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽनन्ता जीवप्रदेशा भवन्ति, लोके च सूक्ष्मा अनन्तजीवात्मका निगोदाः पृथिव्यादिसर्वजीवासङ्ख्येयकतुल्याः सन्ति, तेषां चैकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे जीवप्रदेशा अनन्ता भवन्ति, तेषां च जघन्यपदे एकत्राकाशप्रदेशे सर्वस्तोका जीवप्रदेशाः तेभ्यश्च सर्वजीवा असङ्ख्येयगुणाः, उत्कृष्टपदे पुनस्तेभ्यो विशेषाधिका जीवप्रदेशा इति।

अयं च सूत्रार्थोऽमूभिर्वृद्धोक्तगाथाभिर्भावनीयः–

लोगस्सेगपएसे जहन्नयपयंमि जियपएसाणं।
उक्कोसपए य तहा सव्वजियाणं च के बहुया?॥१॥

इति प्रश्नः, उत्तरं पुनरत्र–

थोवा जहण्णयपए जियप्पएसा जिया असंखगुणा।
उक्कोसपयपएसा तओ विसेसाहिया भणिया॥२॥

अथ जघन्यपदमुत्कृष्टपदं चोच्यते–

तत्थ पुण जहन्नपयं लोगंतो जत्थ फासणा तिदिसिं।
छद्दिसिमुक्कोसपयं समत्तगोलंमि णण्णत्थ॥३॥

तत्र–तयोर्जघन्येतरपदयोर्जघन्यपदं लोकान्ते भवति 'जत्थ' त्ति यत्र गोलके स्पर्शना निगोददेशैस्तिसृष्वेव दिक्षु भवति, शेषदिशामलोकेनावृतत्वात्, सा च खण्डगोल एव भवतीति भावः। 'छद्दिसिं' ति यत्र पुनर्गोलके षट्स्वपि दिक्षु निगोददेशैः स्पर्शना भवति तत्रोत्कृष्टपदं भवति, तच्च समस्तगौलैः परपूर्णगोलके भवति, नान्यत्र, खण्डगोलके न भवतीत्यर्थः, सम्पूर्णगोलकश्च लोकमध्य एव स्यादिति।

अथ परिवचनामाशङ्कमान आह–

उक्कोसमसंखगुणं जहन्नयाओ पयं हवइ किं तु?।
नणु तिदिसिफुसणाओ छद्दिसिफुसणा भवे दुगुणा॥४॥

उत्कर्षं–उत्कृष्टपदमसङ्ख्यातगुणं जीवप्रदेशापेक्षया जघन्यकात्पदादिति गम्यं, भवति 'किन्तु' कथं तु, न भवतीत्यर्थः, कस्मादेवम्? इत्याह–'ननु' निश्चितम्, अक्षमायां वा ननुशब्दः, त्रिदिक्स्पर्शनायाः सकाशात् षड्दिक्स्पर्शना भवेद्द्विगुणेति, इह च काकुपाठाद्धेतुत्वं प्रतीयत इति, अतो द्विगुणमेवोत्कृष्टं पदं स्यादसङ्ख्यातगुणं च तदिष्यते, जघन्यपदाश्रितजीवप्रदेशापेक्षयाऽसङ्ख्यातगुणसर्वजीवेभ्यो विशेषाधिकजीवप्रदेशोपेतत्वात्तस्येति। इहोत्तरम्–

थोवा जहन्नयपए निगोयमित्तावगाहणाफुसणा।
फुसणासंखगुणत्ता उक्कोसपए असंखगुणा॥५॥

स्तोका जीवप्रदेशा जघन्यपदे, कस्मात्? इत्याह–निगोदमात्रे क्षेत्रेऽवगाहना येषां ते तथा एकावगाहना इत्यर्थः, तैरेव यत्स्पर्शनं–अवगाहनं जघन्यपदस्य तन्निगोदमात्रावगाहनस्पर्शनं तस्मात्, खण्डगोलकनिष्पादकनिगोदैस्तस्यासंस्पर्शनादित्यर्थः, भूम्यासन्नापवरककोणान्तिमप्रदेशसदृशो हि जघन्यपदाख्यः प्रदेशः तं चालोकसम्बन्धादेकावगाहना एव निगोदाः स्पृशन्ति, न तु खण्डगोलनिष्पादकाः, तत्र किल जघन्यपदं कल्पनया जीवशतं स्पृशति, तस्य च प्रत्येकं कल्पनयैव प्रदेशलक्षं तत्रावगाढमित्येवं जघन्यपदे कोटी जीवप्रदेशानामवगाढेत्येवं स्तोकास्तत्र जीवप्रदेशा इति। अथोत्कृष्टपदजीवप्रदेशपरिमाणमुच्यते–'फुसणासंखगुणत्त' त्ति स्पर्शनायाः–उत्कृष्टपदस्य पूर्णगोलकनिष्पादकनिगोदैः संस्पर्शनाया यदसङ्ख्यातगुणत्वं जघन्यपदापेक्षया तत्तथा तस्माद्धेतोरुत्कृष्टपदेऽसङ्ख्यातगुणा जीवप्रदेशा जघन्यपदापेक्षया भवन्ति, उत्कृष्टपदं हि सम्पूर्णगोलकनिष्पादकनिगोदैरेकावगाहनैरसङ्ख्येयैः तथोत्कृष्टपदाविमोचनेनैकैकप्रदेशपरिहानिभिः प्रत्येकमसंङ्ख्येयैरेव स्पृष्टं, तच्च किल कल्पनया कोटीसहस्रेण जीवानां स्पृश्यते, तत्र च प्रत्येकं जीवप्रदेशलक्षस्यावगाहनाज्जीवप्रदेशानां दशकोटीकोट्योऽवगाढाः स्युरित्येवमुत्कृष्टपदे तेऽसङ्ख्येयगुणा भावनीया इति। अथ गोलकप्ररूपणायाह–

उक्कोसपयममोत्तुं निगोयओगाहणाए सव्वत्तो।
निप्फाइज्जइ गोलो पएसपरिवुड्ढिहाणीहिं॥६॥

'उत्कृष्टपदं' विवक्षितप्रदेशम् अमुञ्चद्भिः निगोदावगाहनाया एकस्याः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु निगोदान्तराणि स्थापयद्भिर्निष्पाद्यते गोलः, कथं?, प्रदेशपरिवृद्धिहानिभ्यां–कांश्चित् प्रदेशान् विवक्षितावगाहनाया आक्रामद्भिः कांश्चिद्विमुञ्चद्भिरित्यर्थः, एवमेकगोलकनिष्पत्तिः, स्थापना चेयम्–०। गोलकान्तरकल्पनायाह–

तत्तोच्चिय गोलाओ उक्कोसपयं मुइत्तु जो अन्नो।
होइ निगोओ तंमिवि अन्नो निप्फज्जती गोलो॥७॥

तमेवोक्तलक्षणं गोलकमाश्रित्यान्यो गोलको निष्पद्यते, कथम्?, उत्कृष्टपदं प्राक्तनगोलकसम्बन्धि विमुच्य योऽन्यो भवति निगोदस्तस्मिन्नुत्कृष्टपदकल्पनेनेति। तथा च यत्स्यात्तदाह–

एवं निगोयमेत्ते खेत्ते गोलस्स होइ निप्फत्ती।
एवं निप्फज्जंते लोगे गोला असंखिज्जा॥८॥

'एवम्' उक्तक्रमेण निगोदमात्रे क्षेत्रे गोलकस्य भवति निष्पत्तिः, विवक्षितनिगोदावगाहातिरिक्तनिगोददेशानां गोलकान्तरानुप्रवेशात्, एवं च निष्पद्यन्ते लोके गोलका असंङ्ख्येया, असङ्ख्येयत्वात् निगोदावगाहनानां, प्रतिनिगोदावगाहनं च गोलकनिष्पत्तेरिति। अथ किमिदमेव प्रतिगोलकं यदुक्तमुत्कृष्टपदं तदेवेह ग्राह्यमुतान्यत्? इत्यस्यामाशङ्कायामाह–

ववहारनएण इमं उक्कोसपयादि एत्तिया चेव।
जं पुण उक्कोसपयं नेच्छइयं होइ तं वोच्छं॥९॥

'व्यवहारनयेन' सामान्येन 'इदम्' अनंतरोक्तमुत्कृष्टपदमुक्तं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काक्वा चेदमध्येयं, तेन नेहेदं ग्राह्यमित्यर्थः स्यात्, अथ कस्मादेवम्? इत्याह–'उक्कोसपयावि एत्तिया चेव' त्ति न केवलं गोलका असङ्ख्येयाः उत्कर्षपदान्यपि परिपूर्णगोलकप्ररूपितानि एतावन्त्येव–असङ्ख्येयान्येव भवन्ति यस्मात्ततो न नियतमुत्कृष्टपदं किञ्चन स्यादिति भावः, यत्पुनरुत्कृष्टपदं नैश्चयिकं भवति सर्वोत्कर्षयोगाद् यदिह ग्राह्यमित्यर्थः तद्वक्ष्ये। तदेवाह–

बायरनिगोयविग्गहगहयाई जत्थ समहिया अन्ने।
गोला हुज्ज सुबहुला नेच्छइयपयं तदुक्कोसं॥१०॥

बादरनिगोदानां–कन्दादीनां विग्रहगतिकादयो बादरनिगोदविग्रहगतिकादयः आदिशब्दश्चेहाविग्रहगतिकावरोधार्थः, यत्रोत्कृष्टपदे समधिका अन्ये–सूक्ष्मनिगोदगोलकेभ्योऽपरे गोलका भवेयुः सुबहवो नैश्चयिकपदं तदुत्कर्षं, बादरनिगोदा हि पृथिव्यादिषु पृथ्व्यादयश्च स्वस्थानेषु स्वरूपतो भवन्ति न सूक्ष्मनिगोदवत्सर्वत्रेत्यतो यत्र क्वचित्ते भवन्ति तदुत्कृष्टपदं तात्त्विकमिति भावः। एतदेव दर्शयन्नाह–

इहरा पडुच्च सुहुमा बहुतुल्ला पायसो सगलगोला।
तो बायराइगहणं कीरइ उक्कोसयपयंमि॥११॥

'इहर' त्ति बादरनिगोदाश्रयणं विना सूक्ष्मनिगोदान् प्रतीत्य बहुतुल्याः–निगोदसङ्ख्यया समानाः प्रायशः, प्रायोग्रहणमेकादिना न्यूनाधिकत्वे व्यभिचारपरिहारार्थं, क एते? इत्याह–सकलगोलाः, न तु खण्डगोलाः, अतो न नियतं किञ्चिदुत्कृष्टपदं लभ्यते, यत एवं ततो बादरनिगोदादिग्रहणं क्रियते उत्कृष्टपदे। अथ गोलकादीनां प्रमाणमाह–

गोला य असंखेज्जा होंति निओया असंखया गोले।
एक्केक्को उ निगोओ अणंतजीवो मुणेयव्वो॥१२॥

अथ जीवप्रदेशपरिमाणप्ररूपणापूर्वकं निगोदादीनामवगाहनामानमभिधित्सुराह–

लोगस्स य जीवस्स य होन्ति पएसा असंखया तुल्ला।
अंगुलअसंखभागो निगोयजियगोलगोगाहो॥१३॥

लोकजीवयोः प्रत्येकमसङ्ख्येयाः प्रदेशा भवन्ति ते च परस्परेण तुल्या एव, एषां च सङ्कोचविशेषाद् अङ्गुलासङ्ख्येयभागो निगोदस्य तज्जीवस्य गोलकस्य चावगाह इति निगोदादिसमावगाहना। तामेव समर्थयन्नाह–

जंमि जिओ तंमेव उ निगोअ तो तम्मि चेव गोलोवि।
निप्फज्जइ जं खेत्ते तो ते तुल्लावगाहणया॥१४॥

यस्मिन् क्षेत्रे जीवोऽवगाहते तस्मिन्नेव निगोदो, निगोदव्याप्त्या जीवस्यावस्थानात्, 'तो' त्ति ततः–तदनन्तरं तस्मिन्नेव गोलोऽपि निष्पद्यते, विवक्षितनिगोदावगाहनातिरिक्तायाः शेषनिगोदावगाहनाया गोलकान्तरप्रवेशेन निगोदमात्रत्वाद् गोलकावगाहनाया इति, यद्–यस्मात्क्षेत्रे–आकाशे ततस्ते–जीवनिगोदगोलाः 'तुल्यावगाहनाकाः' समानावगाहनाका इति। अथ जीवाद्यवगाहनासमतासामर्थ्येन यदेकत्र प्रदेशे जीवप्रदेशमानं भवति तद्विभणिषुरन्तप्रस्तावनार्थं प्रश्नं कारयन्नाह–

उक्कोसपय पएसे किमेगजीवप्पएसरासिस्स।
होज्जेगनिगोयस्स व गोलस्स व किं समोगाढं?॥१५॥

तत्र जीवमाश्रित्योत्तरम्–

जीवस्स लोगमेत्तस्स सुहुमओगाहणावगाढस्स।
एक्केक्कंमि पएसे होंति पएसा असंखेज्जा॥१६॥

ते च किल कल्पनया कोटीशतसङ्ख्यस्य जीवप्रदेशराशेः प्रदेशदशसहस्रीस्वरूपजीवावगाहनया भागे हृते लक्षमाना भवन्तीति। अथ निगोदमाश्रित्याह–

लोगस्स हिए भागे निगोयओगाहणाएँ जं लद्धं।
उक्कोसपएऽतिगयं एत्तियमेक्केक्कजीवाओ॥१७॥

'लोकस्य' कल्पनया प्रदेशकोटीशतमानस्य हृते भागे निगोदावगाहनया कल्पनातः प्रदेशदशसहस्रीमानया यल्लब्धं तच्च किल लक्षपरिमाणमुत्कृष्टपदेऽतिगतं–अवगाढमेतावदेकैकजीवात्, अनन्तजीवात्मकनिगोदसम्बन्धिन एकैकजीवसत्कमित्यर्थः। अनेन निगोदसत्कमुत्कृष्टपदं यदवगाढं तदर्शितमथ गोलकसत्कं यत्तदवगाढं तदर्शयति–

एवं दव्वट्ठाओ सव्वेसिं एक्कगोलजीवाणं।
उक्कोसपयमइगया होंति पएसा असंखगुणा॥१८॥

यथा निगोदजीवेभ्योऽसङ्ख्येयगुणास्तत्प्रदेशा उत्कृष्टपदेऽतिगता एवं 'दव्वट्ठाओ' द्रव्यार्थतया न तु प्रदेशार्थतया 'सव्वेसिं' ति सर्वेभ्य एकगोलगतजीवद्रव्येभ्यः सकाशादुत्कृष्टपदमतिगता भवन्ति प्रदेशा असङ्ख्यातगुणाः। इह किलानन्तजीवोऽपि निगोदः कल्पनया लक्षजीवः, गोलकश्चासङ्ख्यातनिगोदोऽपि कल्पनया लक्षनिगोदः, ततश्च लक्षस्य लक्षगुणने कोटीसहस्रसङ्ख्याः कल्पनया गोलके जीवा भवन्ति, तत्प्रदेशानां च लक्षे लक्षमुत्कृष्टपदेऽतिगतं, अतश्चैकगोलकजीवसङ्ख्यया लक्षगुणने कोटाकोटीदशकसङ्ख्या एकत्र प्रदेशे कल्पनया जीवप्रदेशः भवन्तीति। गोलकजीवेभ्यः सकाशादेकत्र प्रदेशेऽसङ्ख्येयगुणा जीवप्रदेशा भवन्तीत्युक्तमथ तत्र गुणकारराशेः परिमाणनिर्णयार्थमुच्यते–

तं पुण केवइएणं गुणियमसंखेज्जयं भवेज्जाहि।
भन्नइ दव्वट्ठाइ जावइया सव्वगोलत्ति॥१९॥

तत्पुनरनन्तरोक्तमुत्कृष्टपदातिगतजीवप्रदेशराशिसम्बन्धि 'कियता' किंपरिमाणेनासङ्ख्येयराशिना गुणितं सत् 'असंखेज्जयं' ति असङ्ख्येयकम्–असङ्ख्यातगुणनाद्वारायातं 'भवेत्' स्यादिति?, भण्यते अत्रोत्तरं, द्रव्यार्थतया न तु प्रदेशार्थतया यावन्तः 'सर्वगोलकाः' सकलगोलकास्तावन्त इति गम्यं, स चोत्कृष्टपदगतैकजीवप्रदेशराशिर्मन्तव्यः सकलगोलकानां तत्तुल्यत्वादिति।

किं कारणमोगाहणतुल्लत्ता जियनिगोयगोलाणं।
गोला उक्कोसपएक्कजियपएसेहिं तो तुल्ला॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'किं कारणं' ति कस्मात्कारणाद् यावन्तः सर्वगोलास्तावन्त एवोत्कृष्टपदगतैकजीवप्रदेशाः? इति प्रश्नः, अत्रोत्तरम्–अवगाहनातुल्यत्वात्, केषामियमित्याह–जीवनिगोदगोलानाम्, अवगाहनातुल्यत्वं चैषामङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रावगाहित्वादिति प्रश्नः, यस्मादेवं 'तो' त्ति तस्माद्गोलाः सकललोकसम्बन्धिनः उत्कृष्टपदे ये एकस्य जीवस्य प्रदेशास्ते तथा तैरुत्कृष्टपदैकजीवप्रदेशैस्तुल्या भवन्ति। एतस्यैव भावनार्थमुच्यते–

गोलेहि हिए लोगे आगच्छइ जं तमेगजीवस्स।
उक्कोसपयगयपएसरासितुल्लं हवइ जम्हा॥२१॥

'गोलैः' गोलावगाहनाप्रदेशैः कल्पनया दशसहस्रसङ्ख्यैः 'हृते' विभक्ते हृतभाग इत्यर्थः 'लोके' लोकप्रदेशराशौ कल्पनया एककोटीशतप्रमाणे 'आगच्छति' लभ्यते 'यत्' सर्वगोलसङ्ख्यास्थानं कल्पनया लक्षमित्यर्थः तदेकजीवस्य सम्बन्धिना पूर्वोक्तप्रकारतः कल्पनया लक्षप्रमाणेनैवोत्कृष्टपदगतप्रदेशराशिना तुल्यं भवति यस्मात्तस्माद्गोला उत्कृष्टपदैकजीवप्रदेशैस्तुल्या भवन्तीति प्रकृतमेवेति। एवं गोलकानामुत्कृष्टपदगतैकजीवप्रदेशानां च तुल्यत्वं समर्थितं, पुनस्तदेव प्रकारान्तरेण समर्थयति–

अहवा लोगपएसे एक्केक्के ठविय गोलमेक्केक्कं।
एवं उक्कोसपएक्कजियपएसेसु मायंति॥२२॥

अथवा लोकस्यैव प्रदेशे एकैकस्मिन् 'स्थापय' निधेहि विवक्षितसमत्वबुभुत्सो! गोलकमेकैकं, ततश्च 'एवम्' उक्तक्रमस्थापने उत्कृष्टपदे ये एकजीवप्रदेशास्ते तथा तेषु तत्परिमाणेष्वाकाशप्रदेशेष्वित्यर्थः मान्ति गोला इति गम्यं, यावन्त उत्कृष्टपदे एकजीवप्रदेशास्तावन्तो गोलका अपि भवन्तीत्यर्थः, ते च कल्पनया किल लक्षप्रमाणा उभयेऽपीति। अथ सर्वजीवेभ्य उत्कृष्टपदजीवप्रदेशा विशेषाधिका इति विभणिषुस्तेषां सर्वजीवानां च तावत्समतामाह–

गोलो जीवो य समा पएसो जं च सव्वजीवावि।
होंति समोगाहणया मज्झिमओगाहणं पप्प॥२३॥

गोलको जीवश्च समौ प्रदेशतः–अवगाहनाप्रदेशानाश्रित्य, कल्पनया द्वयोरपि प्रदेशदशसहस्र्यामवगाढत्वात्, 'जं च' त्ति यस्माच्च सर्वजीवा अपि सूक्ष्मा भवन्ति समावगाहनका मध्यमावगाहनामाश्रित्य, कल्पनया हि जघन्यावगाहना पञ्चप्रदेशसहस्राणि उत्कृष्टा तु पञ्चदशेति द्वयोश्च मीलनेनार्द्धीकरणेन च दशसहस्राणि मध्यमा भवतीति।

तेण फुडं चिय सिद्धं एगपएसंमि जे जियपएसा।
ते सव्वजीवतुल्ला सुणसु पुणो जह विसेसहिया॥२४॥

इह किलासद्भावस्थापनया कोटीशतसङ्ख्यप्रदेशस्य जीवस्याकाशप्रदेशदशसहस्र्यामवगाढस्य जीवस्य प्रतिप्रदेशं प्रदेशलक्षं भवति, तच्च पूर्वोक्तप्रकारतो निगोदवर्त्तिना जीवलक्षेण गुणितं कोटीसहस्रं भवति, पुनरपि च तदेकगोलवर्त्तिना निगोदलक्षेण गुणितं कोटीकोटीदशकप्रमाणं भवति, जीवप्रमाणमप्येतदेव, तथाहि–कोटीशतसंख्यप्रदेशे लोके दशसहस्रावगाहिनां गोलानां लक्षं भवति, प्रतिगोलकं च निगोदलक्षकल्पनात् निगोदानां कोटीसहस्रं भवति, प्रतिनिगोदं च जीवलक्षकल्पनात् सर्वजीवानां कोटीकोटीदशकं भवतीति। अथ सर्वजीवेभ्य उत्कृष्टपदगतजीवप्रदेशा विशेषाधिका इति दर्श्यते–

जं संति केइ खंडा गोला लोगंतवत्तिणो अन्ने।
बायरविग्गहिएहि य उक्कोसपयं जमब्भहियं॥२५॥

यस्माद्विद्यन्ते केचित्खण्डा गोला लोकान्तवर्त्तिनः 'अन्ने' त्ति पूर्णगोलकेभ्योऽपरेऽतो जीवराशिः कल्पनया कोटीकोटीदशकरूप ऊनो भवति पूर्णगोलकतायामेव तस्य यथोक्तस्य भावात्, ततश्च येन जीवराशिना खण्डगोलका पूर्णीभूताः स सर्वजीवराशेरपनीयते असद्भूतत्वात्तस्य, स च किल कल्पनया कोटीमानः, तत्र चापनीते सर्वजीवराशिः स्तोकतरो भवति, उत्कृष्टपदं तु यथोक्तप्रमाणमेवेति तत्त्वतो विशेषाधिकं भवति, समता पुनः खण्डगोलानां पूर्णताविवक्षणादुक्तेति, तथा बादरविग्रहिकैश्च–बादरनिगोदादिजीवप्रदेशैश्चोत्कृष्टपदं यद्–यस्मात्सर्वजीवराशेरभ्यधिकं ततः सर्वजीवेभ्य उत्कृष्टपदे जीवप्रदेशा विशेषाधिका भवन्तीति, इयमत्र भावना–बादरविग्रहिगतिकादीनामनन्तानां जीवानां सूक्ष्मजीवासङ्ख्येयभागवर्त्तिनां कल्पनया कोटीप्रायसङ्ख्यानां पूर्वोक्तजीवराशिप्रमाणे प्रक्षेपणेन समताप्राप्तावपि तस्य बादरादिजीवराशेः कोटीप्रायसङ्ख्यस्य मध्यादुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयभागस्य कल्पनया शतसङ्ख्यस्य विवक्षितसूक्ष्मगोलकावगाहनायामवगाहनात् एकैकस्मिंश्च प्रदेशे प्रत्येकं जीवप्रदेशलक्षस्यावगाढत्वात् लक्षस्य च शतगुणत्वेन कोटीप्रमाणत्वात् तस्याश्चोत्कृष्टपदे प्रक्षेपात्पूर्वोक्तमुत्कृष्टपदजीवप्रदेशमानं कोट्याऽधिकं भवतीति। यस्मादेवं–

तम्हा सव्वेहिंतो जीवेहिंतो फुडं गहेयव्वं।
उक्कोसपयपएसा होंति विसेसाहिया नियमा॥२६॥

इदमेव प्रकारान्तरेण भाव्यते–

अहवा जेण बहुसमा सुहुमा लोएऽवगाहणाए य।
तेणेक्केक्कं जीवं बुद्धीए विरल्लए लोए॥२७॥

यतो बहुसमाः–प्रायेण समाना जीवसङ्ख्यया कल्पनया एकैकावगाहनायां जीवकोटीसहस्रस्यावस्थानात्, खण्डगोलकैर्व्यभिचारपरिहारार्थं चेह बहुग्रहणं, 'सूक्ष्माः' सूक्ष्मनिगोदगोलकाः कल्पनया लक्षकल्पाः 'लोके' चतुर्दशरज्ज्वात्मके, तथाऽवगाहनया च समाः, कल्पनया दशसु दशसु प्रदेशसहस्रेष्ववगाढत्वात्, तस्मादेकप्रदेशावगाढजीवप्रदेशानां सर्वजीवानां च समतापरिज्ञानार्थमेकैकं जीवं बुद्ध्या 'विरल्लए' त्ति केवलिसमुद्घातगत्या विस्तारयेल्लोके, अयमत्र भावार्थः–यावन्तो गोलकस्यैकत्र प्रदेशे जीवप्रदेशा भवन्ति कल्पनया कोटीकोटीदशकप्रमाणास्तावन्त एव विस्तारितेषु जीवेषु लोकस्यैकत्र प्रदेशे ते भवन्ति, सर्वजीवा अप्येतत्समाना एवेति, अत एवाह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंपि समा जीवा एगपएसगयजियपएसेहिं।
बायरबाहुल्ला पुण होंति पएसा विसेसहिया॥२८॥

एवमपि न केवलं 'गोलो जीवो य समा' इत्यादिना पूर्वोक्तन्यायेन समा जीवा एकप्रदेशगतैर्जीवप्रदेशैरिति, उत्तरार्द्धस्य तु भावना प्राग्वदवसेयेति। अथ पूर्वोक्तराशीनां निदर्शनान्यभिधित्सुः प्रस्तावयन्नाह–

तेसिं पुण रासीणं निदरिसणमिणं भणामि पच्चक्खं।
सुहुगहणगाहणत्थं ठवणारासिप्पमाणेहिं॥२९॥
गोलाण लक्खमेक्कं गोले २ निगोयलक्खं तु।
एक्केक्के य निगोए जीवाणं लक्खमेक्केक्कं॥३०॥
कोडिसयमेगजीवप्पएसमाणं तमेव लोगस्स।
गोलनिगोयजियाणं दस उ सहस्सा समोगाहो॥३१॥
जीवस्सेक्केक्कस्स य दससाहस्सावगाहिणो लोगे।
एक्केक्कंमि पएसे पएसलक्खं समोगाढं॥३२॥
जीवसयस्स जहन्ने पयंमि कोडी जियप्पएसाणं।
ओगाढा उक्कोसे पयंमि वोच्छं पएसग्गं॥३३॥
कोडिसहस्सजियाणं कोडाकोडीदसप्पएसाणं।
उक्कोसे ओगाढा सव्वजियाऽवेत्तिया चेव॥३४॥
कोडी उक्कोसपयंमि बायरजियप्पएसपक्खेवो।
सोहणथमेत्तियं चिय कायव्वं खंडगोलाणं॥३५॥

उत्कृष्टपदे सूक्ष्मजीवप्रदेशराशेरुपरि कोटीप्रमाणो बादरजीवप्रदेशानां प्रक्षेपः कार्यः, शतकलप्त्यादिवक्षितसूक्ष्मगोलकावगाढबादरजीवानां, तेषां च प्रत्येकं प्रदेशलक्षस्योत्कृष्टपदेऽवस्थितत्वात्, तन्मीलने च कोटीसद्भावादिति, तथा सर्वजीवराशेर्मध्याच्छोधनकं–अपनयनम् 'एत्तियं चियं' त्ति एतावतामेव–कोटीसङ्ख्यानामेव कर्त्तव्यं, 'खण्डगोलानां' खण्डगोलकपूर्णताकरणे नियुक्तजीवानां तेषामसद्भावित्वादिति॥

एएसि जहासंभवमत्थोवणयं करेज्ज रासीणं।
सब्भावओ य जाणिज्ज ते अणंता असंखा वा॥३६॥

इहार्थोपनयो यथास्थानं प्रायः प्राग् दर्शित एव, 'अणंत' त्ति निगोदे जीवा यद्यपि लक्षमाना उक्तास्तथाऽप्यनन्ताः, एवं सर्वजीवा अपि, तथा निगोदादयो ये लक्षमाना उक्तास्तेऽप्यसङ्ख्येया अवसेया इति।

एकादशशते दशमोद्देशकः समाप्तः॥

एकादशम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके लोकवक्तव्यतोक्ता, इह तु लोकवर्त्तिकालद्रव्यवक्तव्यतोच्यते, इत्येवंसम्बद्धस्यास्यैकादशोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्–

११/११५. 'तेणं' मित्यादि।

११/११९. 'पमाणकाले' त्ति प्रमीयते–परिच्छिद्यते येन वर्षशतादि तत् प्रमाणं स चासौ कालश्चेति प्रमाणकालः प्रमाणं वा–परिच्छेदनं वर्षादिस्तत्प्रधानस्तदर्थो वा कालः प्रमाणकालः अद्धाकालस्य विशेषो दिवसादिलक्षणः, आह च–

'दुविहो पमाणकालो दिवसपमाणं च होइ राई य।
चउपोरिसिओ दिवसो राई चउपोरिसी चेव॥१॥'

(द्विविधः प्रमाणकालो दिवसप्रमाणश्च भवति रात्रिश्च। चतुष्पौरुषीको दिवसः रात्रिश्चतुष्पौरुषीका चैव॥१॥)

'अहाउनिव्वत्तकाले' त्ति यथा–येन प्रकारेणायुषो निर्वृत्तिः–बन्धनं तथा यः कालः–अवस्थितिरसौ यथायुर्निर्वृत्तिकालो–नारकाद्यायुष्कलक्षणः, अयं चाद्धाकाल एवायुः कर्मानुभवविशिष्टः सर्वेषामेव संसारिजीवानां स्यात्, आह च–

'नेरइयतिरियमणुया देवाण अहाउयं तु जं जेणं।
निव्वत्तियमन्नभवे पालेंति अहाउकालो सो॥१॥'

(नैरयिकतिर्यग्मनुजानां देवानामथायुर्यद्येनान्यस्मिन् भवे निर्वर्त्तितं तथा पालयन्ति स यथाऽऽयुष्कालः॥२॥) 'मरणकाले' त्ति मरणेन वि अद्धा–शिष्टः कालः मरणकालः–अद्धाकालः एव, मरणमेव वा कालो मरणस्य कालपर्यायत्वान्मरणकालः, 'अद्धाकाले' त्ति समयादयो विशेषास्तद्रूपः कालोऽद्धाकालः–चन्द्रसूर्यादिक्रियाविशिष्टोऽर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्ती समयादिः, आह च–

'समयावलिय मुहुत्ता दिवसअहोरत्तपक्खमासा य।
संवच्छरजुगपलिया सागरओस्सप्पिपरियट्टा॥१॥'

अनन्तरं चतुष्पौरुषीको दिवसश्चतुष्पौरुषीका च रात्रिर्भवतीत्युक्तमथ पौरुषीमेव प्ररूपयन्नाह–

११/१२०. 'उक्कोसिये' त्यादि, 'अद्धपंचमुहुत्तं' ति अष्टादशमुहूर्त्तस्य दिवसस्य रात्रेर्वा चतुर्थो भागो यस्मादर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता नवघटिका इत्यर्थः ततोऽर्द्धपञ्चमा मुहूर्त्ता यस्यां सा तथा, 'तिमुहुत्त' त्ति द्वादशमुहूर्त्तस्य दिवसादेश्चतुर्थो भागस्त्रिमुहूर्त्ता भवति अतस्त्रयो मुहूर्त्ताः–षट् घटिका यस्यां सा तथा।

११/१२१. 'कइभागमुहुत्तभागेणं' ति कतिभागः–कतिथभागस्तद्रूपो मुहूर्त्तभागः कतिभागमुहूर्त्तभागस्तेन, कतिथेन मुहूर्त्तांशेनेत्यर्थः 'बावीससयभागमुहूत्तभागेणं' ति इहार्द्धपञ्चमानां त्रयाणां च मुहूर्त्तानां विशेषः सार्द्धो मुहूर्त्तः स च त्र्यशीत्यधिकेन दिवसशतेन वर्द्धते हीयते च, स च सार्द्धो मुहूर्त्तस्त्र्यशीत्यधिकशतभागतया व्यवस्थाप्यते, तत्र च मुहूर्त्ते द्वाविंशत्यधिकं भागशतं भवत्यतोऽभिधीयते–'बावीसे' त्यादि, द्वाविंशत्यधिकशततमभागरूपेण मुहूर्त्तभागेनेत्यर्थः।

११/१२३. 'आसाढपुन्निमाए' इत्यादि, इह 'आषाढपौर्णमास्या' मिति यदुक्तं तत् पञ्चसंवत्सरिकयुगस्यान्तिमवर्षापेक्षयाऽवसेयं, यतस्तत्रैवाषाढपौर्णमास्यामष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, अर्द्धपञ्चममुहूर्त्ता च तत्पौरुषी भवति, वर्षान्तरे तु यत्र दिवसे कर्कसङ्क्रान्तिर्जायते तत्रैवासौ भवतीति समवसेयमिति, एवं पौषपौर्णमास्यामप्यौचित्येन वाच्यमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तरं रात्रिदिवसयोर्वैषम्यमभिहितं, अथ तयोरेव समतां दर्शयन्नाह–

११/१२४,१२५. 'अत्थि णं' मित्यादि, इह च 'चेत्तासोयपुन्निमाएसु ण' मित्यादि यदुच्यते तद्व्यवहारनयापेक्षं निश्चयतस्तु कर्कसंक्रान्तिदिनादारभ्य यद् द्विनवतितममहोरात्रं तस्यार्द्धे समा दिवारात्रिप्रमाणतेति, तत्र च पञ्चदशमुहूर्त्ते दिने रात्रौ वा पौरुषीप्रमाणं त्रयो मुहूर्त्तास्त्रयश्च मुहूर्त्तचतुर्भागा भवन्ति, दिनचतुर्भागरूपत्वात्तस्याः, एतदेवाह–'चउभागे' त्यादि, चतुर्भागरूपो यो मुहूर्त्तभागस्तेनोना चतुर्भागमुहूर्त्तभागेना चत्वारो मुहूर्त्ता यस्यां पौरुष्यां सा तथेति।

११/१२६. से किं तं अहाउनिव्वत्तियकाले' इत्यादि, इह च 'जेणं' ति सामान्यनिर्देशे ततश्च येन केनचिन्नारकाद्यन्यतमेन 'अहाउयं निव्वत्तियं' ति यत्प्रकारमायुष्कं–जीवितमन्तर्मुहूर्त्तादि यथाऽऽयुष्कं 'निर्वर्त्तितं' निबद्धं।

११/१२७. 'जीवो वा सरीरे' त्यादि, जीवो वा शरीरात् शरीरं वा जीवात् वियुज्यत इति शेषः, वा शब्दौ शरीरजीवयोरवधिभावस्येच्छानुसारिताप्रतिपादनार्थाविति।

११/१२८. से किं तं अद्धाकाले' इत्यादि, अद्धाकालोऽनेकविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–'समयट्ठयाए' त्ति समयरूपोऽर्थः समयार्थस्तद्भावस्तत्ता तया समयभावेनेत्यर्थः एवमन्यत्रापि, यावत्करणात् 'मुहुत्तट्ठयाए' इत्यादि दृश्यमिति। अथानन्तरोक्तस्य समयादिकालस्य स्वरूपमभिधातुमाह–'एस ण' मित्यादि, एषा अनन्तरोक्तोत्सर्पिण्यादिका 'अद्धा दोहारच्छेयणेणं ति द्वौ हारौ–भागौ यत्र छेदने द्विधः वा कारः–करणं यत्र तद् द्विहारं द्विधाकारं वा तेन 'जाहे' त्ति यदा तदा समय इति शेषः 'सेत्त' मित्यादि निगमनम्। 'असंखेज्जाणं' मित्यादि, असङ्ख्यातानां समयानां सम्बन्धिनो ये समुदया–वृन्दानि तेषां याः समितयो–मीलनानि तासां यः समागमः–संयोगः स समुदयसमितिसमागमस्तेन यत्कालमानं भवतीति गम्यते सैकावलिकेति प्रोच्यते, 'सालिउद्देसए' त्ति षष्ठशतस्य सप्तमोद्देशके।

११/१२९. पल्योपमसागरोपमाभ्यां नैरयिकादीनामायुष्कापि मीयन्त इत्युक्तमथ तदायुष्कमानमेव प्रज्ञापयन्नाह–

११/१३०. 'नेरइयाणं' मित्यादि, 'ठितिपयं' ति प्रज्ञापनायां चतुर्थं पदं।

अथ पल्योपमसागरोपमयोरतिप्रचुरकालत्वेन क्षयमसम्भावयन् प्रश्नयन्नाह–

११/१३१. 'अत्थि णं' मित्यादि, 'खये' त्ति सर्वविनाशः 'अवचए' त्ति देशतोऽपगम इति।

अथ पल्योपमादिक्षयं तस्यैव सुदर्शनस्य चरितेन दर्शयन्निदमाह–

११/१३२. 'एवं खलु सुदंसणे' त्यादि।

११/१३३. 'तंसि तारिसगंसि' त्ति तस्मिंस्तादृशके–वक्तुमशक्यस्वरूपे पुण्यवतां योग्य इत्यर्थः 'दूमियघट्ठमट्ठ' त्ति दूमितं–धवलितं घृष्टं कोमलपाषाणादिना अत एव मृष्टं–मसृणं यत्तत्तथा तस्मिन् 'विचित्तउल्लोयचिल्लियतले' त्ति विचित्रो–विविधचित्रयुक्तः उल्लोकः–उपरिभागो यत्र 'चिल्लियं' ति दीप्यमानं तलं च–अधोभागो यत्र तत्तथा तत्र 'पंचवन्नसरसमुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए' त्ति पञ्चवर्णेन सरसेन सुरभिणा च मुक्तेन–क्षिप्तेन पुष्पपुञ्जलक्षणेनोपचारेण–पूजया कलितं यत्तत्तथा। तत्र 'कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे' ति कालागुरुप्रभृतीनां धूपानां यो मघमघायमानो गन्ध उद्धूतः–उद्धूतस्तेनाभिरामं–रम्यं यत्तथा तत्र, कुन्दरुक्का–चीडा तुरुक्कं–सिल्हकं, 'सुगंधिवरगंधिए' त्ति सुगन्धयः–सद्गन्धाः वरगन्धाः–वरवासाः सन्ति यत्र तत्तथा तत्र, 'गंधवट्टिभूए' त्ति सौरभ्यातिशयाद्गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पे 'सालिंगणवट्टिए' त्ति सहालिङ्गनवर्त्त्या–शरीरप्रमाणोपधानेन यत्तत्तथा तत्र 'उभओ विब्बोयणे' उभयतः–शिरोऽन्तपादान्तावाश्रित्य विब्बोयणे–उपधानने यत्र तत्तथा। तत्र 'दुहओ उन्नए' उभयत उन्नते 'मज्झेणयगंभीरे' मध्ये नतं च–निम्नं गम्भीरं च महत्त्वाद् यत्तत्तथा तत्र; अथवा मध्येन च–मध्यभागेन च गम्भीरे यत्तत्तथा, (पण्णत्त), 'गंडविब्बोयणे' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्र च सुपरिकर्मितगण्डोपधाने इत्यर्थः। 'गंगापुलिणवालुउद्दालसालिसए' गङ्गापुलिनवालुकाया योऽवदालः–अवदलन पादादिन्यासेऽधोगमनमित्यर्थः तेन सदृशकमतिमृदुत्वाद्यत्तत्तथा तत्र, दृश्यते च हंसतूल्यादीनामयं न्याय इति, 'उवचियखोमियदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे' 'उवचिय' त्ति परिकर्मितं यत् क्षौमिकं दुकूलं–कार्पासिकमतसीमयं वा वस्त्रं युगलापेक्षया यः पट्टः–शाटकः स प्रतिच्छादनं–आच्छादनं यस्य तत्तथा। तत्र 'सुविरइयरयत्ताणे' सुष्ठु विरचितं–रचितं रजस्त्राणं–आच्छादनविशेषोऽपरिभोगावस्थायां यस्मिंस्तत्तथा। तत्र 'रत्तंसुयसंवुए' रक्तांशुकसंवृते–मशकगृहाभिधानवस्त्रविशेषावृते। 'आइणगरूयबूरनवणीयतूलफासे' आजिनकं–चर्म्ममयो वस्त्रविशेषः स च स्वभावादतिकोमलो भवति रूतं च–कर्पासपक्ष्म बूरं च–वनस्पतिविशेषः नवनीतं च–म्रक्षणं तूलश्च–अर्कतूल इति द्वन्द्वस्ततः एषामिव स्पर्शो यस्य तत्तथा। तत्र 'सुगंधवरकुसुमचुन्नसयणोवयारकलिए' त्ति सुगन्धीनि यानि वरकुसुमानि चूर्णा एतद्व्यतिरिक्ततथाविधशय-नोपचाराश्च तैः कलितं यत्तत्तथा। तत्र 'अद्धरत्तकालसमयंसि' त्ति समयः समाचारोऽपि भवतीति कालेन विशेषितः कालरूपः समयः कालसमयः स चानर्द्धरात्रिरूपोऽपि भवतीत्यतोऽ-र्द्धरात्रिशब्देन विशेषितस्ततश्चार्द्धरात्ररूपः कालसमयोऽर्द्धरात्रकालसमयस्तत्र 'सुत्तजागर' त्ति नातिसुप्ता नातिजागरेति भावः किमुक्तं भवति?–'ओहीरमाणी' त्ति प्रचलायमाना, ओरालादिविशेषणानि पूर्ववत् 'सुविणे' त्ति स्वप्नक्रियायां 'हाररययखीरसागरससंककिरणदगरयरययमहासेलपंडुरतरोरुर - मणिज्जपेच्छणिज्जं' हारतय इव पाण्डुरतरः–अतिशुक्लः उरुः–विस्तीर्णो रमणीयो–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रमणीयो–रम्योऽत एव प्रेक्षणीयश्च–दर्शनीयो यः स तथा तम्, इह च रजतमहाशैलो वैताढ्य इति, 'थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबियमुहं' स्थिरौ–अप्रकम्पौ लष्टौ–मनोज्ञौ प्रकोष्ठौ–कर्पूरागेतनभागौ यस्य स तथा तं वृत्ता–वर्तुलाः पीवराः–स्थूलाः सुश्लिष्टा–अविशीर्णराः विशिष्टा–वराः तीक्ष्णा–भेदिका या दंष्ट्रास्ताभिः कृत्वा विडम्बितं मुखं यस्य स तथा। ततः कर्मधारयोऽतस्तं 'परिकम्मियजच्चकमलकोमलमाइयमोहंतलट्ठउट्ठं' परिकर्मितं–कृतपरिकर्म्मयज्जात्यकमलं तद्वत्कोमलौ मात्रिकौ–प्रमाणोपपन्नौ शोभमानानां मध्ये लष्टौ–मनोज्ञौ ओष्ठौ–दशनच्छदौ यस्य स तथा तं 'रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहं' रक्तोत्पलपत्रवत् मृदूनां मध्ये सुकुमाले तालुजिह्वे यस्य स तथा। तं, वाचनान्तरे तु 'रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुनिल्लालियग्गजीहं महुगुलियाभिसंतपिंगलच्छं' ति तत्र च रक्तोत्पलपत्रवत् सुकुमालं तालु निर्लालिताग्रं च जिह्वा यस्य स तथा तं मधुगुटिकादिवत् 'भिसंत' ति दीप्यमाने पिङ्गले अक्षिणी यस्य स तथा। तं 'मूसागयपवरकणगतावियआवत्तायंतवट्टनडिविमलसरिसनयणं' मूषा–स्वर्णादितापनभाजनं तद्वतं यत्प्रवरकनकं तापितं–कृताग्नितापम् 'आवत्तायंत' त्ति आवर्त्तं कुर्वाणं तद्वद् ये वर्णतः वृत्ते च तडिदिव विमले च सदृशे च परस्परेण नयने–लोचने यस्य स तथा तं। 'विसालपीवरोरुपडिपुन्नविपुलखंधं' विशाले–विस्तीर्णे पीवरे–उपचिते ऊरू–जङ्घे यस्य परिपूर्णो विपुलश्च स्कन्धो यस्य स तथा तं। 'मिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थविच्छिन्नकेसरसडोवसोहियं' मृदवः 'विसद' त्ति स्पष्टाः सूक्ष्माः 'लक्खणपसत्थ' त्ति प्रशस्तलक्षणाः विस्तीर्णाः पाठान्तरेण विकीर्णा याः केशरसटाः–स्कन्धकेशच्छटास्ताभिरुपशोभितो यः स तथा तं 'ऊसियसुनिम्मियसुजायअप्फोडियलंगूलं' उच्छ्रितं–ऊर्द्ध्वीकृतं सुनिर्मितं–सुष्ठु अधोमुखीकृतं सुजातं–शोभनतया जातं आस्फोटितं च–भूमावास्फालितं लाङ्गूलं येन स तथा तं 'अतुरियमचवलं' ति देहमनश्चापल्यरहितं यथा भवत्येवम् 'असंभंताए' त्ति अनुत्सुकया 'रायहंससरिसीए' त्ति राजहंसगतिसदृश्येत्यर्थः 'आसत्थ' त्ति आश्वस्ता गतिजनितश्रमाभावात् 'वीसत्थ' त्ति विश्वस्ता सङ्क्षोभाभावात् अनुत्सुका वा 'सुहासणवरगय' त्ति सुखेन सुखं वा शुभं वा आसनवरं गता या सा तथा।

११/१३४. 'धाराहयनीवसुरहिकुसुमचंचुमालइयतणुं' त्ति धाराहतनीपसुरभिकुसुममिव 'चंचुमालइय' त्ति पुलकिता तनुः–शरीरं यस्य स तथा, किमुक्तं भवति?–'ऊसवियरोमकूवे' त्ति उच्छ्रितानि रोमाणि कूपेषु–तद्रन्ध्रेषु यस्य स तथा, 'मइपुव्वेणं' ति आभिनिबोधिकप्रभवेन 'बुद्धिविन्नाणेणं' ति मतिविशेषभूतौत्पत्तिक्यादिबुद्धिरूपपरिच्छेदेन 'अत्थोग्गहणं' ति फलनिश्चयम् 'आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारए णं' ति इह कल्याणानि–अर्थप्राप्तयो मङ्गलानि–अनर्थप्रतिघाताः। 'अत्थलाभो देवाणुप्पिए!' भविष्यतीति शेषः 'कुलकेउं' ति केतुश्चिह्नं ध्वज इत्यनर्थान्तरं केतुरिव केतुरद्भुतत्वात् कुलस्य केतुः कुलकेतुस्तं, एवमन्यत्रापि, 'कुलदीवं' ति दीप इव दीपः प्रकाशकत्वात् 'कुलपव्वयं' ति पर्वतोऽनभिभवनीयस्थिराश्रयतासाधर्म्यात् 'कुलवडेंसयं' ति कुलावतंसकं कुलस्यावतंसकः–शेखर उन्नतत्वात् 'कुलतिलयं' ति तिलको–विशेषको भूषकत्वात् 'कुलकित्तिकरं' ति इह कीर्तिरेकदिग्गामिनी प्रसिद्धिः। 'कुलनंदिकरं' ति तत्समृद्धिहेतुत्वात्। 'कुलजसकरं' ति इह यशः–सर्वदिग्गामी प्रसिद्धिविशेषः 'कुलपायवं' ति पादपश्चाश्रयणीयच्छायत्वात्। 'कुलविवड्ढणकरं' ति विविधैः प्रकारैर्वर्द्धनं विवर्धनं तत्करणशीलं। 'अहीणपुन्नपंचिंदियसरीरं' ति अहीनानि–स्वरूपतः पूर्णानि–सङ्ख्यया पुण्यानि वा–पूतानि पञ्चेन्द्रियाणि यत्र तत्तथा। तदेवंविधं शरीरं यस्य स तथा तं, यावत्करणात् 'लक्खणवंजणगुणोववेयं' मित्यादि दृश्यं। तत्र लक्षणानि–स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि–मषतिलकादीनि तेषां यो गुणः–प्रशस्तता तेनोपपेतो–युक्तो यः स तथा तं 'ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं' शशिवत् सौम्याकारं कान्तं च–कमनीयं अत एव प्रियं द्रष्टृणां दर्शनं–रूपं यस्य स तथा तं 'विन्नायपरिणयमित्ते' त्ति विज्ञ एव विज्ञकः स चासौ परिणतमात्रश्च कलादिष्विति गम्यते विज्ञकपरिणतमात्रः 'सूरे' त्ति दानतोऽभ्युपेतनिर्वाहणतो वा 'वीरे' त्ति सङ्ग्रामतः 'विक्कंते' त्ति विक्रान्तः–परकीय-भूमण्डलाक्रमणतः 'विच्छिन्नविपुलबलवाहणे' त्ति विस्तीर्णविपुले–अतिविस्तीर्णे बलवाहने–सैन्यगजादिके यस्य स तथा 'रज्जवइ' त्ति स्वतन्त्र इत्यर्थः।

११/१३५. 'मा मे से' त्ति मा ममासौ स्वप्न इत्यर्थः 'उत्तमे' त्ति स्वरूपतः 'पहाणे' त्ति अर्थप्राप्तिरूपप्रधानफलतः 'मंगल्ले' त्ति अनर्थप्रतिघातरूपफलापेक्षयेति। 'सुमिणजागरियं' ति स्वप्नसंरक्षणाय जागरिका–निद्रानिषेधः स्वप्नजागरिका तां 'पडिजागरणमाणी-पडिजागरमाणी' ति प्रतिजाग्रती–कुर्वन्ती, आभीक्ष्ण्ये च द्विर्वचनम्।

११/१३६. 'गंधोदयसित्तसुइयसम्मज्जिओवलित्तं ति गन्धोदकेन सिक्ता शुचिका–पवित्रा संमार्जिता कचवरापनयनेन उपलिप्ता छगणादिना या सा तथा तां, इदं च विशेषणं गन्धोदकसिक्तसंमार्जितोपलिप्तशुचिकामित्येवं दृश्यं, सिक्ताद्यनन्तरभावित्वाच्छुचिकत्वस्येति।

११/१३८. 'अट्टणसालं' त्ति व्यायामशाला 'जहा उववाइए तहेव अट्टणसाला तहेव मज्जणघरे' त्ति यथौपपातिकेऽट्टणशालाव्यतिकरे मज्जनगृहव्यतिकरश्चार्थतस्तथेहाप्यध्येतव्य इत्यर्थः। स चायम्–'अणेगवायामजोग्गवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं संते' इत्यादि, तत्र चानेकानि व्यायामार्थं यानि योग्यादीनि तानि तथा तैः, तत्र योग्याः–गुणनिष्पन्नाः वल्गनं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्ललनं व्यमर्दनं–परस्परेणाङ्गमोटनमिति. मज्जनगृहव्यतिकरस्तु 'जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ समंतजालाभिरामे' समन्ततो जालकाभिरामणीये 'विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे पहाणमंडवंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि पहाणपीढंसि सुहनिसण्णे' इत्यादिरिति। 'महग्घवरपट्टणुग्गयं' ति महार्घा च सा वरपत्तनोद्गता च–वरवस्त्रोत्पत्तिस्थानसम्भवेति समासोऽतस्तां वरपट्टनाद्वा–प्रधानवेष्टनाद् उद्गता–निर्गता या सा तथा तां 'सण्हपट्टभत्तिसयचित्ततणुं' ति श्लक्ष्ण पट्ट ति सूक्ष्मपट्टः सूत्रमयो भक्तिशतचित्रस्तानः–तानको यस्यां सा तथा ताम् 'ईहामिए' त्यादि यावत्करणादेवं दृश्यम्–'ईहामियउसभणरतुरगमकरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं' ति तत्रेहामृगा–वृकाः ऋषभाः–वृषभाः नरतुरगमकरविहगाः प्रतीताः व्यालाः–स्वापदभुजगाः किन्नराः–व्यन्तरविशेषाः रुरवो–मृगविशेषाः शरभा–अाटव्या महाकायाः पशवः परासरेति पर्यायाः चमरा–आटव्या गावः कुञ्जरा–गजाः वनलता–अशोकादिलताः पद्मलताः–पद्मिन्यः एतासां यका भक्तयो–विच्छित्तयस्ताभिश्चित्रा या सा तथा। तां 'अब्भिंतरियं' ति अभ्यन्तरां 'सवणियं' ति यवनिकाम् 'अंछावेइ' ति आकर्षयति 'अत्थरयमउयमसूरगोत्थयं' ति आस्तरकेण–प्रतीतेन मृदुमसूरकेण वा अथवाऽस्तरजस्या–निर्मलेन मृदुमसूरकेणावस्तृतं–आच्छादितं यत्तत्तथा। 'अंगसुहफासयं' अङ्गसुखो देहस्य शर्महेतुः स्पर्शो यस्य तदङ्गसुखस्पर्शकम्। 'अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए' त्ति अष्टाङ्गं–अष्टावयवं यन्महानिमित्तं–परोक्षार्थप्रतिपत्तिकारणं व्युत्पादकं महाशास्त्रं तस्य यौ सूत्रार्थौ तौ धारयन्ति ये ते तथा तान्, निमित्ताङ्गानि चाष्टाविमानि–

'अट्ठ निमित्तंगाइं दिव्वु १ प्पातं २ तरिक्ख ३ भोमं च ४।
अंगं ५ सर ६ लक्खण ७ वंजणं च ८ तिविहं पुणेक्केक्कं॥१॥'

(अष्ट निमित्ताङ्गानि दिव्यमुत्पातमन्तरिक्षं भौमं चाङ्गं स्वरं लक्षणं व्यञ्जनं च पुनरेकैकं त्रिविधम्॥१॥)।

११/१३९. 'सिग्घं' मित्यादीन्येकार्थानि पदानि औत्सुक्योत्कर्षप्रतिपादनपराणि।

११/१४०. 'सिद्धत्थगहरियालियाकयमंगलमुद्धाण' त्ति सिद्धार्थकाः–सर्षपाः हरितालिका–दूर्वा तल्लक्षणानि कृतानि मङ्गलानि मूर्ध्नि यैस्ते तथा।

११/१४२. संचालंति' ति सञ्चारयन्ति 'लब्भट्ठ' त्ति स्वतः 'गहियट्ठ' त्ति परस्मात् 'पुच्छियट्ठ' त्ति संशये सति परस्परतः 'विणिच्छियट्ठ' त्ति प्रश्नानन्तरं अत एवाभिगतार्था इति। 'सुविण' त्ति सामान्यफलत्वात् 'महासुविण' त्ति महाफलत्वात् 'बावत्तरिं' ति त्रिंशतो द्विचत्वारिंशतश्च मीलनादिति 'गब्भं वक्कममाणंसि' त्ति गर्भं व्युत्क्रामति–प्रविशति सतीत्यर्थः, 'गयवसहे' त्यादि, इह च 'अभिसेय' त्ति लक्ष्म्या अभिषेकः 'दाम' त्ति पुष्पमाला। 'विमाणभवण' त्ति एकमेव, तत्र विमानाकारं भवनं विमानभवनं, अथवा देवलोकाद्योऽवतरति तन्माता विमानं पश्यति यस्तु नरकात् तन्माता भवनमिति. इह च गाथायां केषुचित्पदेष्वनुस्वारस्याश्रवणं गाथाऽनुलोम्यात् दृश्यमिति।

११/१४३. जीवियारिहं ति जीविकोचितम्।

११/१४५. 'उउभयमाणसुहेहिं ति ऋतौ २ भज्यमानानि यानि सुखानि–सुखहेतवः शुभानि वा तानि तथा तैः। 'हियं' ति तमेव गर्भमपेक्ष्य 'मियं' ति परिमितं–नाधिकमूनं वा 'पत्थं' ति सामान्येन पथ्यं। किमुक्तं भवति?–'गब्भपोसणं' ति गर्भपोषकमिति 'देसे य' त्ति उचितभूप्रदेशे 'काले य' त्ति तथाविधावसरे। 'विवित्तमउएहिं' ति विविक्तानि–दोषवियुक्तानि लोकान्तरासङ्कीर्णानि वा मृदुकानि च–कोमलानि यानि तानि तथा तैः 'पइरिक्कसुहाए' त्ति प्रतिरिक्तत्वेन तथाविधं जनापेक्षया विजनत्वेन सुखा शुभा वा या सा तथा तया। 'यसत्थदोहल' त्ति अनिन्द्यमनोरथा 'संपुन्नदोहला' अभिलषितार्थपूरणात् 'संमाणियदोहला' प्रामरस्याभिलषितार्थस्य भोगात् 'अविमाणियदोहल' त्ति क्षणमपि लेशेनापि च नापूर्णमनोरथेत्यर्थः। अत एव 'वोच्छिन्नदोहल' त्ति त्रुटितवाञ्छेत्यर्थः। दोहदव्यवच्छेदस्यैव प्रकर्षाभिधानायाह–'विणीयदोहल' त्ति 'ववगए' इत्यादि, इह च मोहो–मूढता भयं–भीतिमात्रं परित्रासः–सकस्माद्भयम्; इह स्थाने वाचनान्तरे 'सुहंसुहेणं आसयइ सुयइ चिट्ठइ निसीयइ तुयट्टइ' त्ति दृश्यते तत्र च 'सुहंसुहेणं' ति गर्भानाबाधया 'आसयइ' त्ति आश्रयत्याश्रयणीयं वस्तु 'सुयइ' त्ति शेते 'चिट्ठइ' त्ति ऊर्ध्वस्थानेन तिष्ठति 'निसीयइ' त्ति उपविशति 'तुयट्टइ' त्ति शय्यायां वर्त्तते इति।

११/१४७. 'पियट्ठयाए' त्ति प्रियार्थतायै–प्रीत्यर्थमित्यर्थः 'पियं निवेएमो' त्ति 'प्रियम्' इष्टवस्तु पुत्रजन्मलक्षणं निवेदयामः 'पियं भे भवउ' त्ति एतच्च प्रियनिवेदनं प्रियं भवतां भवतु तदन्यद्वा प्रियं भवत्विति।

११/१४८. 'मउडवज्जं' ति मुकुटस्य राजचिह्नत्वात् स्त्रीणां चानुचितत्वात्तस्येति तद्वर्जनं 'जहामालियं' ति यथामालितं–यथा धारितं यथा परिहितमित्यर्थः। 'ओमोयं' ति अवमुच्यते–परिधीयते यः सोऽवमोकः–आभरणं तं 'मत्थए धोवइ' त्ति अङ्गप्रतिचारिकाणां मस्तकानि क्षालयति दासत्वप्रपनयनार्थं, स्वामिना धौतमस्तकस्य हि दासत्वमपगच्छतीति लोकव्यवहारः।

११/१४९. 'चारगसोहणं' ति बन्दिविमोचनमित्यर्थः 'माणुम्माणवद्धणं करेह' त्ति इह मानं–रसधान्यविषयम् उन्मानं–तुलारूपम्।

११/१५१. 'उस्सुक्कं' ति उच्छुल्कां मुक्तशुल्कां स्थितिपतितां कारयतीति सम्बन्धः, शुल्कं तु विक्रेयभाण्डं प्रति राजदेयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यम् 'उक्करं' ति उन्मुक्तकरां, करस्तु गवादीन् प्रति प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यं, 'उक्किट्ठं' ति उत्कृष्टां-प्रधानं कर्षणनिषेधाद्वा 'अदिज्जं' ति विक्रयनिषेधेनाविद्यमानदातव्यां 'अभिज्जं' ति विक्रयप्रतिषेधादेवाविद्यमानमातव्यां अविद्यमानमाथां वा 'अभडप्पवेसं' ति अविद्यमानो भटानां-राजाज्ञादायिनां पुरुषाणां प्रवेशः कुटुम्बिगेहेषु यस्यां सा तथा तां। 'अदंडकोदंडिमं' ति दण्डलभ्यं द्रव्यं दण्ड एव कुदण्डेन निर्वृत्तं द्रव्यं कुदण्डिमं तदस्ति यस्यां साऽदण्डकुदण्डिमा तां, तत्र दण्डः-अपराधानुसरेण राजग्राह्यं द्रव्यं कुदण्डस्तु-कारणिकानां प्रज्ञापराधान्महत्यप्यपराधिनोऽपराधे ऊनं राजग्राह्यं द्रव्यमिति 'अधरिमं' ति अविद्यमानधारणाद्यद्द्रव्यम् ऋणमुत्कलनात् 'गणियावरणाडइज्जकलियं' गणिकावरैः-वेश्याप्रधानैर्नाटकीयैः-नाटकसम्बन्धिभिः पात्रैः कलिता या सा तथा ताम्, 'अणेगतालाचराणुचरियं' नानाविधप्रेक्षाचारिसेवितमित्यर्थः 'अणुद्धुयमुइंग' ति अनुद्धृता-वादनार्थं वादकैरविमुक्ता मृदङ्गा यस्यां सा तथा ताम्। 'अभिलायमल्लदामं' अम्लानपुष्पमालां 'पमुइयपक्कीलियं' ति प्रमुदितजनयोगात्प्रमुदिता प्रक्रीडितजनयोगात्प्रक्रीडिता। ततः कर्मधारयोऽतस्तां 'सपुरजणजाणवयं' सह पुरजनेन जानपदेन च-जनपदसम्बन्धिजनेन या वर्तते सा तथा ताम्। वाचनान्तरे 'विज्यवेजइयं' ति दृश्यते तत्र चातिशयेन विजयो विजयविजयः स प्रयोजनं यस्याः सा विजयवैजयिकी ताम्। 'ठिइवडियं' ति स्थितौ-कुलस्य लोकस्य वा मर्यादायां पतिता-गता या पुत्रजन्ममहप्रक्रिया सा स्थितिपतितास्तां।

११/१५२. 'दसाहियाए' ति दशाहिकायां-दशदिवसप्रमाणायां। 'जाए य' ति यागान्-पूजाविशेषान् 'दाए य' ति दायांश्च दानानि 'भाए य' ति भागांश्च-विवक्षितद्रव्यांशान्।

११/१५३. 'चंदसूरदंसणियं' ति चन्द्रसूर्यदर्शनाभिधानमुत्सवं 'जागरियं' ति रात्रिजागरणरूपमुत्सवविशेषं। 'निव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे' ति 'निवृत्ते' अतिक्रान्ते अशुचीनां जातकर्म्मणां करणमशुचिजातकर्म्मकरणं तत्र। संपत्ते बारसाहदिवसे' ति संप्राप्ते द्वादशाख्यदिवसे, अथवा द्वादशनामह्नां समाहारो द्वादशाहं तस्य दिवसो द्वादशाहदिवसो येन स पूर्यते तत्र, 'कुलाणुरूवं' ति कुलोचितं, कस्मादेवम्? इत्याह-'कुलस्सरिसं' ति कुलसदृशं, तत्कुलस्य बलवत्पुरुषकुलत्वान्महाबल इति नाम्नश्च बलवदर्थाभिधायकत्वात् तत्कुलस्य महाबल इति नाम्नश्च सादृश्यमिति 'कुलसंताणतंतुवद्धणकरं' ति कुलरूपो यः सन्तानः स एव तन्तुर्दीर्घत्वात्तद्वर्द्धनकरं। माङ्गल्यत्वाद् यत्र तत्तथा 'अयमेयारूवं' ति इदमेतद्रूपं 'गोणं' ति गौणं तच्चामुख्यमप्युच्यत इत्यत आह-'गुणनिप्फन्नं' ति, 'जम्हा णं अम्हं' इत्यादि अस्माकमयं दारकः प्रभावतीदेव्यात्मजो यस्माद्बलस्य राजः पुत्रस्तस्मान्पितुर्नामानुसारिनामास्य दारकस्यास्तु महाबल इति।

११/१५४. 'जहा दढपइन्ने' ति यथौपपातिके दृढप्रतिज्ञोऽधीतस्तथाऽत्र वक्तव्यः, तत्रैवं-'मज्जणधाईए मंडणधाईए कीलावणधाईए अंकधाईए' इत्यादि, 'निवायनिव्वाघायंसी' त्यादि च वाक्यमिहैवं सम्बन्धनीयं 'गिरिकंदरमल्लीणोव्व चंपगपायवे निवायनिव्वाघायंसि सुहंसुहेण परिवड्ढइ' ति।

११/१५५. 'परंगामणंति' भूमौ सर्प्पणं 'पयचंकमणं' ति पद्भ्यां सञ्चारणं 'जेमामणं' ति भोजनकारणं 'पिंडवड्ढणं' ति कवलवृद्धिकारणं 'पज्जपावणं' ति प्रजल्पनकारणं। 'कण्णवेहणं' ति प्रतीतं 'संवच्छरपडिलेहणं' ति वर्षग्रन्थिकरणं 'चोलोवणयणं' चूडाधरणम् 'उवणयणं' ति कलाग्राहणं। 'गब्भाहाणजम्मणमाइयाइं कोउयाइं करेंति' ति गर्भाधानादिषु यानि कौतुकानि-रक्षाविधानादीनि तानि गर्भाधानादीन्येवोच्यन्त इति गर्भाधानजन्मादिकानि कौतुकानीत्येवं समानाधिकरणतया निर्देशः कृतः।

११/१५६. 'एवं जहा दढपइन्नो' इत्यनेन यत्सूचितं तदेवं दृश्यं-'सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं गहया इहिं सत्तकरसमुग्गएणं कलायरियस्स उवणयंति' त्यादीति।

११/१५७. 'अब्भुग्गयमूसियपहसिते इव' अभ्युद्गतोच्छ्रितानत्युच्चान् इह चैवं व्याख्यानं द्वितीयाबहुवचनलोपदर्शनात्, 'पहसिते इव' ति प्रहसितानिव-श्वेतप्रभापटलप्रकलतया हसत इवेत्यर्थः 'वन्नओ जहा रायप्पसेणइज्जे' इत्यनेन यत्सूचितं तदिदं-'मणिकणगरयणभत्तिचित्तधाउब्भवविविहवेरुलियथंभपइट्ठागाढणाइच्छत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे' इत्यादि, एतच्च प्रतीतार्थमेव, नवरं 'मणिकनकरत्नानां भक्तिभिः-विच्छित्तिभिश्चित्रा ये ते तथा, वातोद्धूता या विजयसूचिका वैजयन्त्यभिधानाः पताकाश्छत्रातिछत्राणि च तैः कलिता ये ते तथा ततः कर्मधारयस्तान् 'अणेगखंभसयसंनिविट्ठे' ति अनेकेषु स्तम्भशतेषु संनिविष्टं यदनेकानि वा स्तम्भशतानि संनिविष्टानि यत्र तत्तथा 'वन्नओ जहा रायप्पसेणइज्जे पेच्छाघरमंडवंसि' ति यथा राजप्रश्नकृते प्रेक्षागृहमण्डपविषयो वर्णक उक्तस्तथाऽत्र वाच्य इत्यर्थः, स च 'लीलट्ठियसालभंजियाग' मित्यादिरिति।

११/१५८. पमकरणगहणगंथवाइयपसाहणट्ठंगनिलगकंकणअविहवबहुवण्णीयं' ति प्रमृक्षणक-अभ्यञ्जनं स्नानगीतवादितानि प्रतीतानि प्रसाधनं-मण्डनं अष्टाङ्गतिलकाः कङ्कणं च-रक्तदवरकरूपं एतानि अविधवावधूभिः-जीवत्पतिकनारीभिरुपनीतानि यस्य स तथा तं। 'मंगलमुज्जणिएहि य' ति मङ्गलानि-दध्यक्षतादीनि गीतगानविशेषा वा तासु जल्पितानि च-आशीर्वचनानीति द्वन्द्वस्तैः करणभूतैः 'पाणिगिण्हावियंसु' ति सम्बन्धः, किंभूतं तम्? इत्याह-'वरकोउयमंगलोवयारकयसंतिकम्मं' वराणि यानि कौतुकानि-भूतिरक्षादीनि मङ्गल्यानि च-सिद्धार्थकादीनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्रूपो य उपचारः–पूजा तेन कृतं शान्तिकर्म–दुरितोपशमक्रिया यस्य स तथा तं। 'सरिसियाणं' ति सदृशानां परस्परतो महाबलापेक्षया वा। 'सरित्तयाणं' ति सदृक्त्वचां–समशरीरच्छवीनां 'सरिव्वयाणं' ति सदृग्वयसां, 'सरिसलावण्णे' त्यादि, इह च लावण्यं–मनोज्ञता रूपं–आकृतिर्वपुः–युवता गुणाः प्रिय-भाषित्वादयः।

११/१५१. 'कुण्डलजोए' ति कुण्डलयुगानि 'कडगजोए' ति कलाचिकाभरणयुगानि 'तुडिय' त्ति बाह्याभरणं 'खोमं' ति कार्पासिकं अतसीमयं वा वस्त्रं 'वडगं' ति त्रसरीमयं 'पट्टं' ति पट्टसूत्रमयं 'दुगुल्लं' ति दुकूलाभिधानवृक्षत्वग्निष्पन्नं श्लक्ष्णमृतयः षड्देवनाप्रतिमाः नन्दादीनि मङ्गलवस्तूनि अन्ये त्वाहुः–नन्दं वृत्तं लोहासनं भद्रं–शरावसंपुटकं इति यत्प्रसिद्धं। 'तले' ति तालवृक्षान् 'वए' ति व्रजान–गोकुलानि 'सिरिघरपडिरूवए' ति भाण्डागारतुल्यान् रत्नमयत्वात् 'जाणाइं' ति शकटादीनि 'जुग्गाइं' ति गोल्लविषयप्रसिद्धानि जम्पानानि। 'सिबियाओ' ति शिबिकाः–कूटाकारच्छादितजम्पानरूपाः 'संदमाणियाओ' ति स्यन्दमानिकाः पुरुषप्रमाणजम्पानविशेषाभेन। 'गिल्लिं' ति हस्तिन उपरि कोल्लराकाराः 'थिल्लीओ' ति लाटानां यानि अश्वपल्यानानि तान्यन्यविषयेषु थिल्लीओ अभिधीयन्तेऽतस्ताः। 'वियडजाणाइं' ति विवृतयानानि नल्लटकवर्णितशकटानि, 'पारियाणिए' ति परियानप्रयोजनाः पारियानिकास्तान् 'संगामिए' ति सङ्ग्रामप्रयोजनाः साङ्ग्रामिकास्तान्, तेषां च कटीप्रमाणा फलकवेदिका भवति। 'किंकरे' ति प्रतिकर्म पृच्छाकारिणः 'कंचुइज्जे' ति प्रतीहारान् 'वरसयरे' ति वर्षधरान् वर्द्धितकमहत्तरकान् 'महत्तरगे' अन्तःपुरकार्यचिन्तकान् 'ओलंबणदीवे' ति शृङ्खलाबद्धदीपान् 'उक्कंबणदीवे' ति उत्कंबनदीपान् ऊर्ध्वदण्डस्थितः 'एवं चेव तिप्पिदिवे' ति रूप्यसुवर्णसुवर्णरूप्यभेदात् 'पंजरदीवे' ति अभ्रपटलादिपञ्जरस्थितान्। 'थासगाइं' ति आदर्शकाकारान् 'तलियाओ' ति पात्रीविशेषान्। 'कविचियाओ' ति कलाचिकाः 'अवएडए' ति तापिकाहस्तकान् 'अवयक्काओ' ति अवपाट्यास्तापिका इति संभाव्यते 'मिसियाओ' ति आसनविशेषान् 'पलिंजणाओ' ति उत्तरशय्याः हंसरुतनादीनि हंसाद्याकारोपलक्षितानि उन्नताद्याकारोपलक्षितानि च शब्दतोऽवगन्तव्यानि, 'जहा रायप्पसेणइज्जे' इत्यनेन यत्सूचितं तदिदम्–'अट्ठ कुट्ठसमुग्गे एवं पत्तचोयतगरएलहरियालहिंगुलयमणोसिलअंजणसमुग्गे' ति, 'जहा उववाइए' इत्यनेन यत्सूचितं तदिहैव देवानन्दाव्यतिकरेऽस्तीति तत एव दृश्यं। 'करोडियाधारीओ' ति स्थगिकाधारिणीः 'अट्ठ अंगमहियाओ अट्ठ अंगमहियाओ' ति ऊर्ध्वाङ्गमर्दिकानामुन्मर्दिकानां चात्यबहुमर्दनकृतो विशेषः 'पसाहियाओ' ति मण्डनकारिणीः। 'वन्नगपेसीओ' ति चन्दनपेषणकारिका हरितालादिपेषिका वा 'चुन्नगपेसीओ' ति इह चूर्णः–ताम्बूलचूर्णो गन्धद्रव्यचूर्णो वा 'दवकारीओ' ति परिहासकारिणीः 'उवत्थाणियाओ' ति या आस्थानगतानां समीपे वर्त्तन्ते 'नाडइज्जाओ' ति नाटकसम्बन्धिनीः 'कुडुंबिणीओ' ति पदातिरूपाः 'महाणसिणीओ' ति रसवतीकारिकाः शेषपदानि रूढिगम्यानि।

११/१६२. 'विमलस्स' ति अस्यामवसर्पिण्यां त्रयोदश-जिनेन्द्रस्य 'पउप्पए' ति प्रपौत्रकः–प्रशिष्यः अथवा प्रपौत्रिके– शिष्ये सन्तने 'जहा केसिस्सामिस्स' ति यथा केशिनाम्न आचार्यस्य राजप्रश्नकृताधीतस्य वर्णक उक्तस्तथाऽस्य वाच्यः, स च 'कुलसंपन्ने बलसंपन्ने रूवसंपन्ने विणयसंपन्ने' इत्यादिरिति।

११/१६६. 'वुत्तपडिवुत्तय' ति उक्तप्रत्युक्तिका भणितानि मातुः प्रतिभणितानि च महाबलस्येत्यर्थः, नवरमित्यादि, जम्बालिचरिते हि विपुलकुलबालिका इत्यर्थान्तमिह तु विपुलराजकुलबालिका इत्येतदध्येतव्यं। कला इत्यनेन चेदं सूचितं–कलाकुसलसव्वकालालियसुहोइयाओ' ति।

११/१६८. 'सिवभद्दस्स' ति एकादशशतनवमोद्देशकाभिहितस्य शिवराजर्षिपुत्रस्य।

११/१६९. 'जहा अम्मडो' ति यथौपपातिके अम्मडोऽधीतस्तथाऽयमिह वाच्यः, तत्र च यावत्करणादेतत्सूत्रमेवं दृश्यं–'गहगणनक्खत्ततारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूइं जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदे कप्पे वीईवइत्ता' ति, इह च किल चतुर्दशपूर्वधरस्य ब्रह्मलोकोपपात उक्तस्तत्र केनापि मनाग् विस्मरणादिना प्रकरणेन चतुर्दशपूर्वाणामपरिपूर्णत्वादिति संभावयन्तीति।

११/१७१. 'सन्नी पुव्वजाईसरणे' ति सन्निरूपा या पूर्वा जातिस्तस्याः स्मरणं यतस्था 'अहिरूवेइ' त्ति अधिगच्छतीत्यर्थः।

११/१७२. 'दुगुणणवियसड्ढसंवेगे' ति पूर्वकालापेक्षया द्विगुणावनीतौ श्रद्धासंवेगौ यस्य स तथा, तत्र श्रद्धा–तत्त्वश्रद्धानं सदनुष्ठानाभिलाषो वा संवेगो–भवभयं मोक्षाभिलाषो वेति।

'उत्तमदत्तस्स' त्ति नवमशते त्रयस्त्रिंशत्तमोद्देशकेऽभिहितस्येति।

एकादशशतस्यैकादशः॥

द्वादशम उद्देशकः

एकादशोद्देशके काल उक्तो। द्वादशेऽपि स एव भङ्गकान्तरेणोच्यत इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

११/१७४-१७७. 'तेणं' मित्यादि, 'एगओ' ति एकत्र 'समुवगयाणं' ति समागतानां 'सहियाणं' ति मिलितानां 'समुविट्ठाणं' ति आसनग्रहणेन। 'सन्निसन्नाणं' ति संनिहिततया निषण्णानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मिहो' त्ति परस्परं 'देवद्वितिगहियट्ठे' त्ति देवस्थितिविषये गृहीतार्थो—गृहीतपरमार्थो यः स तथा। 'तुंगिउद्देसए' त्ति द्वितीयशतस्य पञ्चमे॥

एकादशशते द्वादशः॥

॥एकादशं शतं समाप्तम्॥

एकादशशतमेवं व्याख्यातमबुद्धिनाऽपि यन्मयका।
हेतुस्तत्राग्रहिता श्रीवाग्देवीप्रसादो वा॥१॥

॥इति श्रीमदभयदेवसूरिविवृतायां भगवत्यां शतकमेकादशम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-६

आधारभूत ग्रंथ-सूची

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
१. अणुओगदाराइं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा तुलनात्मक टिप्पण)	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	८/९७-१०३,१३९-१४६,२२२-२२३; ९/९-३२
२. अनुकंपा की चौपाई भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर, प्रथम खंड	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	९/२५१-२५२
३. अनुयोगद्वार वृत्ति	कर्ता–मलधारी हेमचन्द्र सूरि	सन् १९३९	केशरदेवी ज्ञान मंदिर (पाटन)	९/९-३२
४. अभिधान चिन्तामणिः (नाममाला)	कर्ता–आचार्य हेमचन्द्र	वि.सं.२०२०	चौखंबा विद्या भवन (वाराणसी)	९/१४८
५. अष्टसहस्री	रचयिता–आचार्य विद्यानंद			८/१८४-१८८
६. आप्त मीमांसा	रचयिता–आचार्य समन्तभद्र	वी.नि.सं. २५०	श्री गणेशवर्णी दिगम्बर, जैन संस्थान	८/१८४-१८८
७. आयारचूला (अंगसुत्ताणि भाग-१)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९७४	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	८/९७-१०३,१८४-१८८; ९/आमुख, १७७,२२६-२२९
८. आयारो (मूलपाठ, अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	वि. सं. २०३१	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	८/२४५-२४७,२५८-२६९; ११/आमुख
९. आवश्यक (नवसुत्ताणि)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१०/१-७
१०. आवश्यक चूर्णि	कर्ता–श्री जिनदासगणि	सन् १९२९	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम (मालवा)	८/९७-१०३; ९/१७७
११. आवश्यक निर्युक्ति	कर्ता–भद्रबाहु	वि. सं. २०३८	श्री भैरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, आर. आर. ठक्कर मार्ग, बम्बई	८/९७-१०३,१८४-१८८,४४९-४५०; ९/२२६-२२९
१२. आवश्यक निर्युक्ति दीपिका	मुनि मानविजय	सन् १९३९	श्री विजयदान सूरीश्वर जैन ग्रंथ माला, सूरत	९/२२६-२२९
१३. आवश्यक वृत्ति	मलयगिरि	सन् १९२८	आगमोदय समिति, बंबई	८/९७-१०३;१०/१-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
१४. उत्तरज्झयणाणि (मूलपाठ, संस्कृत छाया) हिन्दी अनुवाद तथा तुलनात्मक टिप्पण	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	द्वितीय संस्करण सन् १९९२	जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं (राजस्थान)	८/२-३९,२४५-२४७, ३१५-३२८,४५१-४६६, ४६७-४६८; ९/९-३२, ५१,१३३-१३५; १०/आमुख
१५. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९६८	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	८/२४१-२४२
१६. उत्तराध्ययन निर्युक्ति	कर्ता–भद्रबाहु	सन् १९१७	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बंबई	८/३१५-३२८; ९/५६
१७. ओववाइयं (उवंगसुत्ताणि, भाग-४, खंड १)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	९/१२५-१३२, १३९, २०४; १०/१९-२१
१८. औपपातिक वृत्ति	चन्द्रकुलीन श्री अभयदेवसूरि	सन् १९९४	पं. भूरालाल कालिदास	९/१४८,२०८
१९. कथावस्थु पालि				८/४९९-५०३
२०. कर्मग्रंथ (भाग ४-५)	कर्ता–देवेन्द्र सूरि		श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन धार्मिक शिक्षा समिति	८/१०७-११०,४७७-४८४
२१. कर्म प्रकृति	श्रीमद् शिवशर्मसूरि विरचित तत्त्वाधान–आचार्य श्री नानेश सं. देवकुमार जैन	संस्करण प्रथम सन् १९८२	श्री गणेश स्मृति ग्रंथमाला बीकानेर	८/३६६
२२. कल्पसूत्र (कप्पो, नवसुत्ताणि भाग-५	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	९/आमुख
२३. कसाय पाहुड	सं.पं.फूलचंद्र, पं. महेंद्र कुमार पं. कैलाशचन्द्र	सन् १९४४	भा. दि. जैन संघ चौरासी, मथुरा	८/१८४-१८८
२४. गोम्मटसार	कर्ता–श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, सं. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये	सन् १९७९	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, बंबई	८/३७६-३७७,४७७-४८४; ९/३६
२५. जीवाजीवाभिगमे (उवंगसुत्ताणि भाग-४, खंड-१)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	९/७; १०/आमुख
२६. जैन दर्शन : मनन और मीमांसा	ले. आचार्य महाप्रज्ञ सं. मुनि दुलहराज	चतुर्थ सं. सन् १९९५	आदर्श साहित्य संघ चूरू (राजस्थान)	८/४२,४३-८४
२७. जैन सिद्धांत दीपिका	ले. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९९८	आदर्श साहित्य संघ चूरू (राजस्थान)	८/९७-१०३
२८. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश	सं. क्षु. जिनेन्द्रवर्णी	सन् १९४४	भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली	८/२४१-२४२
२९. ज्ञाताधर्मकथा वृत्ति	कर्ता–अभयदेव सूरि	सन् १९५२	श्री सिद्ध चक्र साहित्य प्रचारक समिति, बंबई	९/१४१,२०४,२०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
३०. ठाणं (मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	वि. सं. २०३३	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	८/९७-१०३,१८४-१८८,२९५-३००, ३०२-३१४, ४२४, ४७५-४७६; ९/९-३२,१२५-१३२, १३३-१३५,२२६-२२९, १०/आमुख, १५,४०; ११/आमुख, १२
३१. तत्त्व संग्रह	ले. शान्तरक्षित	सन् १९८२	बौद्ध भारती, वाराणसी	८/१८४-१८८
३२. तत्त्वार्थ भाष्य	कर्ता–उमास्वाति		सेठ मणीलाल रेवाशंकर जगजीवन जौहरी,बंबई-२	८/१,२२२-२२३
३३. तत्त्वार्थ राजवार्तिक	कर्ता भट्ट अकलंक देव सं. पं. महेन्द्र कुमार जैन	वि.सं.२००९	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गा कुंड रोड, बनारस-४	८/१,८६-९१,३१५-३२८,३५४,३५५,३६३-३६५,४२४,४२५-४२८,४३३,४३९-४४४
३४. तत्त्वार्थ सूत्र	कर्ता–उमास्वाति	वि.सं.१९८९	सेठ मणीलाल रेवाशंकर जगजीवन जौहरी,बंबई-२	८/३१५-३२८,४१९-४२०,४२२-४२३, ४२४, ४२५-४२८, ४७७-४८४; १०/४६-५१
३५. तत्त्वार्थ सूत्राधिगम भाष्य वृत्ति	टीकाकार सिद्धसेन गणि		देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बंबई	८/१,२-३१,९७-१०३, १८४-१८८,१८९-१९१, २४१-२४२,३१५-३२८, ३५४,३६६,४१९-४२०, ४२४,४२५-४२८,४३१-४३२,४३३,४३९-४४४, ४६७-४६८;१०/१-७,२३
३६. तिलोय पण्णत्ति	कर्ता–यति वृषभाचार्य	वि.सं.१९९९	जीवराज ग्रंथमाला, शोलापुर	८/८६-९१; १०/२३; ११/९०,९२
३७. दर्शन और चिंतन	ले.–पं. सुखलाल संघवी	सन् १९४७	सुखलाल सम्मान समिति गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद	८/१८४-१८८
३८. दसवेआलियं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९७४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/२१६-२२१,२४५-२४७,२४८-२५०
३९. दसाओ (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१०/१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
४०. देशी शब्दकोश	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८८	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	२/१७५
४१. धवला	वीरसेनाचार्य	सन् १९४२	सेठ शीतलराय लक्ष्मीचंद्र, अमरावती	८/४७७-४८४
४२. ध्यानविचार	विवेचन कर्ता–आचार्यश्री विजय कनकसूरिजी, आचार्यश्री विजय कलापूर्णसूरिजी	वि.सं.२०४९	जैन साहित्य विकास मंडल, मुंबई	९/१-३२,४०
४३. नंदी (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/९७-१०३,१८४-१८८; ११/आमुख
४४. नंदी चूर्णि	सं. अमरमुनि	सन् १९८२	भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली	८/१८४-१८८
४५. नंदी मलयगिरीयावृत्ति	कर्ता–मलयगिरि	सन् १९१९	आगमोदय समिति, सूरत	८/१८४-१८८; १०/१-१७
४६. नयचक्र (लिखित प्रति)	ले. माइल्ल धवल सं. पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री	सन् १९७१	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,नई दिल्ली	८/१८४-१८८
४७. नायाधम्मकहाओ (अंगसुत्ताणि भाग-३)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	९/१४१,१८९; ११/आमुख
४८. नियमसार	ले. आचार्य कुंदकुंद	सन् १९८७	श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली	८/१८४-१८८
४९. निशीथ सूत्र (भाष्य व चूर्णि सहित)	सं. उपाध्याय कविश्री अगरमुनि मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल'	सन् १९८२	सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा	८/२३०-२३५
५०. निसीह (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/२४८-२५०
५१. न्यायमंजरी	ले. जयन्त भट्ट	सन् १९९२	एल. डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॉजी, अहमदाबाद	८/१८४-१८८
५२. न्याय विनिश्चय कारिका				८/१८४-१८८
५३. पंचसंग्रह (दिगम्बर)	सं. हीरालाल जैन	वि.सं.२०१७	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	८/४७७-४८४
५४. पज्जोवसणाकप्पो (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	९/आमुख, १५३-१५५,१५६,१८९
५५. पण्णवणा (उवंगसुत्ताणि भाग-४, खंड-२)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८९	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/२-३९,९२,१८४-१८८,२५८-२६९, ३४५-३५३,३६३, ४३३,१०/आमुख, १५,४०;११/आमुख, १,२,१२,३२,३९,१०९-११०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
५६. प्रज्ञापना वृत्ति	कर्ता–श्रीमन्मलयगिर्याचार्य	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेहसाणा, गुजरात	११/१,५
५७. प्रमाण मीमांसा	रचयिता–हेमचन्द्राचार्य	सन् १९८९	सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद	८/१८४-१८८
५८. प्रमेयकमलमार्तण्ड	रचयिता–आचार्य अकलंक भट्ट	सन् १९४१	निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई	८/१८४-१८८
५९. प्रवचनसार	रचयिता–कुन्दकुन्दाचार्य	सन् १९४८	श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, सौराष्ट्र (गुजराज)	८/२३०-२३५, ४७७-४८४
६०. बारहव्रत चौपाई (भिक्षु ग्रंथ रत्नकार)	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	८/२४१-२४२
६१. बृहत्कल्प भाष्य	सं. मुनि पुण्यविजय	सन् १९३६	जैन आत्मानंद सभा, भावनगर (गुजरात)	८/२४५-२४७,२९५-३००,४५१-४६६
६२. बृहद् हिंदी कोश	ले. कालिका प्रसाद	सन् १९८४	ज्ञानमंडल, वाराणसी	११/४०
६३. बौद्ध धर्म और बिहार	ले. श्री धवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'			८/२७१-२८४
६४. भगवती आराधना	रचयिता आचार्यश्री शिवार्य	सन् १९३५	सखाराम दोशी, सोलापुर महाराष्ट्र	८/४५१-४६६
६५. भगवती जोड़ (खंड १-७)	कर्ता–जयाचार्य प्रवाचक आचार्य तुलसी प्रधान सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	प्रथम संस्करण सन् १९८१ से १९९७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	अनेक स्थल
६६. भगवती वृत्ति (प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट)	कर्ता–अभयदेवसूरि	सन् १९१९	आगमोदय समिति, बंबई	अनेक स्थल
६७. भिक्षु विचार दर्शन	ले. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००३	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	९/२५१-२५२
६८. भ्रमविध्वंसनम्	कर्ता–श्रीमद् जयाचार्य		जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	८/४४९-४५०
६९. मनुस्मृति	सं. नारायणराम आचार्य	सन् १९४६	काव्य तीर्थ निर्णयसागर प्रेस, बंबई	८/आमुख
७०. मूलाचार	रचयिता–श्रीमद् वट्टेकराचार्य	सन् १९८४	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	८/४५१-४६६
७१. मिथ्यात्वीरी करणीरी चौपाई (भिक्षुग्रंथरत्नाकर, प्रथम खंड)	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	८/४४९-४५०
७२. रायपसेणइयं (उवंगसुत्ताणि भाग-४, खंड-१)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	९/१५६.२०४
७३. ववहारो (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/२४८-२५०; १०/४६-५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
७४. वाद्य यंत्र	बी. चैतन्य देव		नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ग्रीन पार्क, नई दिल्ली	११/९०
७५. विशेषणवती	रचयिता–आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण			८/१८४-१८८
७६. विशेषावश्यक भाष्य	कर्ता–श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण	वि.सं.१९८६	दिव्य दर्शन कार्यालय, कालुशा नी पोल, कालुपुर रोड, अहमदाबाद	८/९७-१०३,१५०, १८४-१८८; ९/३६, ३७,५५,२२६-२२९
७७. वैशेषिक सूत्र	सं. मुनि जम्बूविजय			१०/आमुख
७८. व्यवहार भाष्य	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/३०१,४५१-४६६
७९. व्रताव्रत की चौपाई (भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर)	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	८/२४५-२४७
८०. शार्ङ्गधर संहिता	शार्ङ्गधराचार्य विरचित	सन् १९८४	श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड	९/१७२
८१. शास्त्रवार्ता समुच्चय	रचना–आचार्य हरिभद्र	सन् १९६९	लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद	८/१८४-१८८
८२. श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	९/१४८
८३. श्वेताम्बर				८/४३-८४
८४. षट्खंडागम	कर्ता–पुष्पदन्त भूतबलि	सन् १९४२	सेठ शीतलराय लक्ष्मीचंद्र अमरावती, महाराष्ट्र	८/८६-९१,९७-१०३,१८४-१८८, ३४५-३५३, २५४, ३५५,३५६-३६२, ३६३-३६५,३६७-३७२
८५. संगीतसार	तानसेन			९/१४८
८६. सन्मति टीका	रचयिता–आचार्य मल्लवादी			८/१८४-१८८
८७. सन्मति तर्क	रचयिता–आचार्य सिद्धसेन			८/४७७-४८४
८८. समवाओ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/४७५-४७६; ९/ १५३-१५५; १०/ १८,६७-६८
८९. सर्वार्थसिद्धि	कर्ता–आचार्य पूज्यपाद, सं. पं. फूलचन्द सिद्धांत शास्त्री	सन् १९७१	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	८/४१९-४२०, ४२४,४२५-४२८, ४३३,४७७-४८४
९०. सांख्यकारिका	कर्ता–ईश्वरकृष्ण टीका, माध्वाचार्य		चौखंबा संस्कृत सिरीज, वाराणसी	८/१८४-१८८, ४७७-४८४
९१. सागर धर्मामृत				८/१४१-१४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
९२. सुश्रुत संहिता	अनु. अत्रिदेव	सन् १९७५	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	९/२०४
९३. सूत्रकृतांग चूर्णि	कर्ता–श्री जिनदासगणि	वि.सं.१९९८	श्री ऋषभदेव जी केशरी-मलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम	९/२५१-२५२
९४. सूयगडो (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद. टिप्पण तथा परिशिष्ट)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. विवेचक युवाचार्य महाप्रज्ञ	(भाग-१) सन् १९८४ (भाग-२) सन् १९८६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	८/२३०-२३५, २४५-२४७,३०२-३१४,९/२५१-२५२; १०/आमुख, ११/९९
९५. सेन प्रश्नोत्तर उल्लास				८/२४१-२४५
९६. स्थानांग वृत्ति	कर्ता–अभयदेवसूरि	सन् १९३७	सेठ माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद	८/९६,३०१.११/१२
९७. हरिहरानंद पा.यो.द. टीका				८/४३-८४
९८. हेमप्रकाश महाव्याकरणम् (पूर्वार्ध)	रचयिता–श्री विनयविजयगणी	वि.सं.१९९४	मांगरोल निवासी शाह हीरालाल सोमचन्द, कोट, मुंबई	९/१४८
99. (Apte's) Sanskrit English Dictionary	V. S. Apte	Revised and enlarged edition 1957	Prasad Prakashan Pune	8/499-503; 9/208
100. Viyah Panntti Jozef deleu				8/ 241-242

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचना-प्रमुख : आचार्य तुलसी
संपादक-भाष्यकार : आचार्य महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी (१९९४-१९९७) के वाचना-प्रमुखत्व में सन् १९५५ में आगम-वाचना का कार्य प्रारंभ हुआ, जो सन् ४५३ में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के सान्निध्य में हुई संगति के पश्चात होनेवाली प्रथम वाचना थी। सन् २००५ तक ३२ आगमों के अनुसंधानपूर्ण मूलपाठ संस्करण और ११ आगम संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित प्रकाशित हो चुके हैं। आयारो (आचारांग का प्रथम श्रुतस्कंध) मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी-संस्कृत भाष्य एवं भाष्य के हिन्दी अनुवाद से युक्त प्रकाशित हो चुका है। आचारांग-भाष्य तथा भगवई खंड-१ का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हो गया है।

इस वाचना के मुख्य संपादक एवं विवेचक (भाष्यकार) हैं—आचार्यश्री महाप्रज्ञ (मुनि नथमल/युवाचार्य महाप्रज्ञ) (जन्म १९२०) जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से जैन आगम-वाङ्मय को आधुनिक भाषा में समीक्षात्मक भाष्य के साथ प्रस्तुति देने का गुरुतर कार्य किया है। भाष्य में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, आयुर्वेद, पाश्चात्य दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर समीक्षात्मक टिप्पण लिखे गए हैं।

आचार्यश्री तुलसी ११ वर्ष की आयु में जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के पास दीक्षित होकर २२ वर्ष की आयु में नवमाचार्य बने।

आपकी औदार्यपूर्ण वृत्ति एवं असाम्प्रदायिक चिंतन-शैली ने धर्म के सम्प्रदाय से पृथक् अस्तित्व को प्रकट किया। नैतिक क्रांति, मानसिक शांति और शिक्षा-पद्धति में परिष्कार और जीवन-विज्ञान का त्रि-आयामी कार्यक्रम प्रस्तुत किया। युगप्रधान आचार्य, भारत-ज्योति, वाक्पति जैसे गरिमापूर्ण अलंकरण, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (१९९३) जैसे सम्मान आपको प्राप्त हुए। साधु और श्रावक के बीच की कड़ी के रूप में आपने सन् १९८० में समणश्रेणी का प्रारंभ किया, जिसके माध्यम से देश-विदेश में अनाबाध रूपेण धर्मप्रसार किया जा रहा है। आपने ६० हजार कि. मी. की भारत की पदयात्रा कर जन-जन में नैतिकता का भाव जगाने का प्रयास किया था।

हिन्दी, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा में अनेक विषयों पर ६० से अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। १८ फरवरी १९९४ को अपने आचार्यपद का विसर्जन कर उसे अपने उत्तराधिकारी युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ में प्रतिष्ठित कर दिया। २३ जून सन् १९९७ को आपका महाप्रयाण हुआ। सन् १९९८ में भारत सरकार ने आपकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया।

दशमाचार्य श्री महाप्रज्ञ दस वर्ष की अवस्था में मुनि बने, सूक्ष्म चिंतन, मौलिक लेखन एवं प्रखर वक्तृत्व आपके व्यक्तित्व के आकर्षक आयाम हैं। जैन दर्शन, योग, ध्यान, काव्य आदि विषयों पर आपके १५० से अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत आगम-वाचना के आप कुशल संपादक एवं भाष्यकार हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगम साहित्य

वाचना प्रमुख : **आचार्य तुलसी**

संपादक विवेचक : **आचार्य महाप्रज्ञ**

(मूल पाठ पाठान्तर शब्द सूची सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• **अंगसुत्ताणि भाग-१** (दूसरा संस्करण) (आयारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ)	७००
• **अंगसुत्ताणि भाग-२** (दूसरा संस्करण) **(भगवई-विआहपण्णत्ती)**	७००
• **अंगसुत्ताणि भाग-३** (दूसरा संस्करण) (नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगड-दसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्णावागरणाइं, विवागसुयं)	५००
• **उवंगसुत्ताणि खंड-१** (ओवाइयं, रायपसेणइयं, जीवाजीवाभिगम)	५००
• **उवंगसुत्ताणि खंड-२** (पण्णवणा, जंबूद्दीवपण्णत्ती, चंदपण्णत्ती, कप्पवडिंसियाओ, निरयावलियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ)	६००
• **नवसुत्ताणि (द्वितीय संस्करण)** (आवस्सयं, दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, नंदी, अणुओगदाराइं)	६९५

कोश

• **आगम शब्दकोष** (अंगसुत्ताणि तीनों भागों की समग्र शब्द सूची)	३००
• **श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१**	५००
• **श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-२**	५००
• **देशी शब्दकोश**	१००
• **निरुक्त कोश**	६०
• **एकार्थक कोश**	१००
• **जैनागम वनस्पति कोश (सचित्र)**	३००
• **जैनागम प्राणी कोश (सचित्र)**	२५०
• **जैनागम वाद्य कोश (सचित्र)**	२५०

अन्य भाषा में आगम साहित्य

• **भगवती जोड़** खंड-१ से ७ श्रीमज्जयाचार्य सेट का मूल्य	२९००
• **आयारो** (अंग्रेजी)	२५०
• **आचारांगभाष्यम्** (अंग्रेजी)	४००
• **भगवई खंड-१** (अंग्रेजी)	५००
• **उत्तरज्झयणाणि भाग-१,२** (गुजराती)	१०००
• **सूयगडो** (गुजराती)	

(मूल, छाया, अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट-सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• **आयारो**	२००
• **आचारांगभाष्यम्**	५००
• **सूयगडो भाग-१** (दूसरा संस्करण)	३००
• **सूयगडो भाग-२** (दूसरा संस्करण)	३५०
• **ठाणं**	७००
• **समवाओ** (दूसरा संस्करण)	प्रेस में
• **भगवई** (खंड-१)	५९५
• **भगवई** (खंड-२)	६९५
• **भगवई** (खंड-३)	५००
• **भगवई** (खंड-४)	प्रेस में
• **नंदी**	३००
• **अणुओगदाराइं**	४००
• **दसवेआलियं** (दूसरा संस्करण)	५००
• **उत्तरज्झयणाणि** (तीसरा संस्करण)	६००
• **नायाधम्मकहाओ**	५००
• **दसवेआलियं** (गुटका)	७
• **उत्तरज्झयणाणि** (गुटका)	२५

अन्य आगम साहित्य

• **निर्युक्तिपंचक** (मूल, पाठान्तर)	५००
• **व्यवहार भाष्य** (हिन्दी अनुवाद)	५००
• **व्यवहार भाष्य** (मूल, पाठान्तर, भूमिका, परिशिष्ट)	७००
• **गाथा** (आगमों के आधार पर भगवान महावीर का जीवन दर्शन रोचक शैली में)	३५०
• **आत्मा का दर्शन** (जैन धर्म : तत्त्व और आचार)	५००

प्राप्ति स्थान :

जैन विश्व भारती

लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)

ISBN - 81-7195-103-8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org